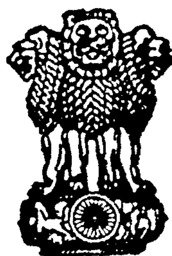
शल्य-विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक
(TEXT BOOK OF SURGERY)

भाग I

सम्पादक :
सगम लाल
F. R. C S. (ENG), D O. M S (LOND.)
भूतपूर्व प्रोफेसर सर्जरी, इन्स्टीट्यूट ऑफ
मेडिकल साइन्सेज, नई दिल्ली
और
सी. पी वी मेनन
M. S. (MAD), F.RCS (ENG
अवैतनिक भूतपूर्व प्रोफेसर
मेडिकल कालेज, मद्रास

अनुवादक :
डा० मुकन्द स्वरूप वर्मा, एम० बी० बी० एस०
डा० महेश चन्द्र, एम० बी० बी० एस०



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार

प्रथम संस्करण, वर्ष 1969

प्रस्तुत पुस्तक सर्वश्री बटर वर्थ, लन्दन द्वारा प्रकाशित सर्वश्री नरसिम्हन तथा सी पी वी मेनन की अंग्रेजी पुस्तक Text Book of Surgery के 1962 के संस्करण का हिन्दी अनुवाद है और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की मानक ग्रंथ-योजना के अन्तर्गत शिक्षा मन्त्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित हुई है।

मूल्य . 12 00

प्रधान प्रकाशन अधिकारी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का स्थायी आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, वेस्ट ब्लॉक-7, रामाकृष्णापुरम, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, के-18 नवीन शाहदरा दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओ को शिक्षा के माध्यम के रूप मे अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमे उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रथ अधिक से अधिक सख्या मे तैयार किए जाए । भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ मे सौपा है और उसने इसे बडे पैमाने पर करने की योजना बनाई है । इस योजना के अन्तर्गत अग्रेजी और अन्य भाषाओ के प्रामाणिक ग्रथो का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रथ भी लिखाए जा रहे है । यह काम अधिकतर राज्य-सरकारो, विश्वविद्यालयो तथा प्रकाशको की सहायता मे प्रारम्भ किया गया है । कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वय अपने अधीन भी करवा रहा है । प्रसिद्ध विद्वान् और अध्यापक हमे इस योजना मे सहयोग दे रहे है । अनूदित और नए साहित्य मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा-सस्थाओ मे एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके ।

'शल्य-विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक' नामक पुस्तक आयोग द्वारा प्रस्तुत की जा रही है । इसके मूल लेखक **श्री सगम लाल और श्री सी० पी० वी० मेनन और अनुवादक डा० मुकन्द स्वरूप वर्मा और कैप्टन महेश चन्द्र है** । आशा है भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थो के प्रकाशन सबधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जाएगा ।

बाबूराम सक्सेना
अध्यक्ष

नई दिल्ली

मार्च, 1969

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
शिक्षा मत्रालय, भारत सरकार

प्राक्कथन

भारतवर्ष मे 2500 वर्ष पूर्व शल्य-विज्ञान उन्नति की चरम सीमा पर पहुच गया था। उसकी तुलना केवल मिस्र के पुरातन शल्य-विज्ञान से की जा सकती है। केवल आधुनिक समय ही मे उसके आगे प्रगति हो सकी है। हिन्दू तथा भारतीय शल्य-विज्ञान के जन्मदाता, सुश्रुत ने अपनी सहिता 2500 वर्ष पूर्व लिखी थी जो उससे भी 300 वर्ष पूर्व लिखे गए आयुर्वेद पर आधारित है। अत यह उचित ही है कि जिस जाति के लोगो ने उस समय शल्य-विज्ञान के इस सर्वोत्तम विस्तृत पाठ्य ग्रथ का निर्माण किया हो जब कि ब्रिटिश द्वीपो के निवासी लिखना और पढना तक नही जानते थे, उस जाति के कुछ प्रतिनिधि मिलकर अग्रेजी भाषा मे प्राक्-स्नातको और स्नातको के लिए शल्य-विज्ञान की एक नई पाठ्य-पुस्तक तैयार करे।

शल्य-विज्ञान अब इतना अधिक विस्तृत और जटिल हो गया है कि यह तय करना कठिन है कि आयुर्विज्ञान के प्राक्-स्नातको को कौन-सा भाग पढाया जाए और कौन-सा छोड दिया जाए क्योकि कोई भी व्यक्ति आज समस्त शल्य-विज्ञान का ज्ञाता नही हो सकता। इस पुस्तक के लेखक आवश्यक भाग को लेने और अनावश्यक भाग को छोडने मे सफल हुए हैं। परिणामस्वरूप यह पुस्तक विशेषकर भारत और एशिया के छात्रो और सर्जनो के लिए बहुत ही उपयोगी बन गई है। हमे विश्वास है कि शल्य-विज्ञान की इस पाठ्य-पुस्तक मे वाछनीय सफलता प्राप्त होगी।

चार्ल्स रोब
रोडने मेनाट

लन्दन, 1962

INTRODUCTION TO HINDI EDITION

It is with a sense of exhilaration and pardonable pride that I, as a Member for "Medicine" in this Commission, write this Introduction to the Hindi translation of a "Textbook of Surgery" in English edited by Sangam Lal & Menon. This is a pioneering venture being the first of the Standard works of University level to be published by this Commission in Hindi in one of the major subjects of Medical Sciences Having been intimately associated with the teaching, practice, and pursuit of 'Surgery' for over 3 decades and also Medical Education for about 5 years, it gives me particular pleasure to have this authoritative book on Surgery translated and published by this Commission in our National language, Hindi

It is a happy and welcome co-incidence that this first book in a Medical Science to be translated into Hindi should in its English original version be a publication by multiple Indian authors, all of whom are eminent and senior Professors in the subject This must be a sufficient guarantee for the excellence of its contents and its appropriateness to Indian conditions

I must seek the indulgence of Principals and Deans of Medical Colleges, senior Professors of the subject and my senior Colleagues in the profession for encouragement and popularization of this book among the staff and the students of Medical Colleges and medical men in general It may well be that some seniors may remark that this translation is more tough going than the original in English That is natural and arises not from any defect in translation or in Hindi language itself, but in the fact that it has for centuries not been used for expression of modern scientific thought The translators of this book are medical men, highly proficient in Hindi and have done a good job In order to facilitate easy understanding, the English technical term is given within brackets following every Hindi equivalent used in the text The book, at the present stage, is mainly intended for the benefit of considerable number of students who get into Medical Colleges without an

adequate grasp of English language both in comprehension and expression As the National policy on Education is being implemented in the years to come, with the replacement in stages of English by Hindi or other regional languages, the need for this book and several similar others to follow, will become more and more urgent

I am confident that this book will occupy a pre-eminent place in the Library of medical books in Hindi to be built up under this programme I do hope that this book on Surgery in Hindi will contribute to the basic and better understanding of the fundamentals of the subject by medical students and in general the advancement of the standards of education in the subject of Surgery in our Medical Colleges

Dt. · 25-3-1969

S BALASUBRAMANIAM
Member, Medicine
Commission For Scientific And
Technical Terminology
(Ministry of Education)

भूमिका

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही से भारतीय विद्यार्थियो के लिए शल्य-विज्ञान की एक ऐसी पाठ्यपुस्तक लिखने का प्रस्ताव भारत के सर्जनो और अध्यापको के विचाराधीन रहा है, जिसमे विषय का प्रतिपादन भारत की प्रचलित दशाओ के अनुसार किया जाए। शल्यविज्ञान की अन्य कितनी ही पाठ्य-पुस्तको के उपलब्ध होने पर एक और पुस्तक को प्रकाशित करने का हमारा यही उद्देश्य है। इस आकाक्षा की पूर्ति का श्रेय उन सब विद्वानो को, जिन्होने इस पुस्तक मे अपने लेख दिये है, तथा प्रकाशको को, है।

भारतवर्ष की शल्यविज्ञान-सम्बन्धी समस्याये ससार के अन्य देशो की तत्सम्बन्धी समस्याओ के प्राय समान ही हैं। किन्तु देश, काल तथा सामाजिक परिस्थितियो के कारण रोगो के लक्षणो मे भिन्नता स्वाभाविक है और इन्ही कारणो से चिकित्सा मे भी भिन्नता आवश्यक होती है। फिर कुछ रोग भी देश के भिन्न-भिन्न भागो ही मे विशेषतया अधिक होते है।

पुस्तक मे रोगो के लाक्षणिक तथा नैदानिक विवेचन पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। केवल सैद्धान्तिक विचारो का न्यूनतम समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। यह हमारा प्रथम प्रयास होने के कारण पुस्तक मे त्रुटियो के रह जाने और कुछ विषयो के छूट जाने की सम्भावना है। हमारी यह हार्दिक प्रार्थना है कि सर्जन और अध्यापक इस पुस्तक को पढकर अपनी सम्मति और प्रस्ताव हमारे पास भेजने की कृपा करें, जिससे पुस्तक के भावी सस्करणो मे हम उन सब विषयो को सम्मिलित करके पुस्तक की उपयोगिता बढाने मे सफल हो सके।

यद्यपि यह पुस्तक विशेषतया प्राक्-स्नातको के लिए ही लिखी गई है, हमे आशा है स्नातकोत्तर विद्यार्थी (post-graduate) भी इससे लाभ उठा सकेंगे।

पुस्तक के भिन्न-भिन्न परिच्छेदो के लेखक सब ही अपने अपने विषयो के विशेषज्ञ है और मेडिकल कालेजो मे अध्यापन का कार्य कर रहे है अथवा कर चुके है।

लेखको के देश के भिन्न भागो से चुने जाने के कारण विषयो के प्रतिपादन की शैली मे कुछ विभिन्नता होना स्वाभाविक है। किन्तु इससे पुस्तक की उपयोगिता मे कोई कमी नहीं हुई है।

उन सभी लेखको के प्रति, जिन्होंने कार्यव्यस्त होने और अल्पकालिक सूचना पर भी इस पुस्तक के तैयार करने मे सहर्ष अपना सहयोग दिया है, अपनी कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। हम हृदय से उनके अत्यन्त आभारी हैं। अन्य विभागो के कर्मचारीगण के प्रति जो इस पुस्तक के प्रकाशन मे समय पर अपनी सलाह देते रहे हैं, भी हम अत्यन्त अनुगृहीत है। विशेषकर आल इडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइन्सेज के सर्जरी विभाग के वी० शकरन, आत्म प्रकाश, एस० ए० सिंह, और के० एस० मेहदीरत्त हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रकाशको की अमूल्य सहायता के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन कदाचित्, सम्भव न होता। समय-समय पर उनके सुझावो और आर्थिक भार से हमे मुक्त कर देने से ही पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। पुस्तक की छपाई और सामान्य प्रस्तुतीकरण उसी उच्च स्तर का है जो आयुर्वेदीय पुस्तको के रूप मे बटरवर्थस ने अपने सब ही प्रकाशनो मे अपनाया है।

सगमलाल

नई दिल्ली 1962 सी० पी० वी० मेनन.

विषय-सूची

प्राक्कथन — पृष्ठ संख्या

भूमिका

परिच्छेद

1 शल्यविज्ञान के सिद्धान्तो की प्रस्तावना । 1
मगमलाल, F R C S (Eng), D O M S (LOND)
शल्यविज्ञान के भूतपूर्व प्रोफेसर, आल इडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइन्सेज, नई दिल्ली

2 शल्यप्रविधि के बुनियादी सिद्धान्त तथा शल्यपूर्व और शल्योत्तर देख भाल 43
सगमलाल, F R.C S (Eng), D O.M S (LOND)

3 रक्तस्रॉव, शॉक, रक्ताधान तथा द्रव-वैद्युत अपघट्य-सतुलन 82
ए. वी. मुदलियार, M S ,F A C S ,F I C.S
अवैतनिक सर्जन, गवर्न्मेन्ट जनरल हौस्पिटल मद्रास, क्लिनिकल सर्जरी के प्रोफेसर, मद्रास-विश्वविद्यालय

4 आनन, ओष्ठ और दोनो हनु 125
सी राघवाचारी M S (मद्रास), F R C S (Edin)
सर्जरी के प्रोफेसर, मेडिकल कालेज, त्रिवेन्द्रम

5 मुख, जिह्वा, तालु और लसीकाग्रन्थिया 149
सी राघवाचारी M.S (मद्रास), E R C.S (Edin)

6 कर्ण, नासिका और गले के रोग 182
ए. सिन्हा, M S , F.R C S, D L O
आल इडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइन्सेज, नई दिल्ली,

के कर्ण-स्वरयन्त्र-विज्ञान (otolaryngology) के सयुक्त प्रोफेसर

7 उदरभित्ति और पर्युदर्या 247

सी पी वी. मेनन, M.S. (मद्रास), F R.C S (Eng.)
अवैतनिक प्रोफेसर, मेडिकल कालेज, मद्रास

8 आमाशय और ग्रहणी

सी पी वी मेनन, M S (मद्रास), F R C. S. (Eng)

9. उण्डुकपुच्छ, क्षुद्रान्त्र तथा बृहदान्त्र, आन्त्रावरोध 293

ए. ई दे सा, F R C. S (Eng)
अवैतनिक सर्जन, के. ई एम. हास्पिटल, वम्वई, तथा वाई जेरबाई वाडिया चिल्ड्रेन हास्पिटल, वम्वई, अध्यापक सर्जरी, सेठ गोवर्धनदास मेडिकल कालेज, वम्वई

10. मलाशय और गुदनलिका 355

ए ई. दे सा, F. R. C. S (Eng)

11 यकृत, पित्तवाहकपथ, अग्न्याशय और प्लीहा 387

आर निगम M. D., M A. (Hons.) (Luck.), F. R (Eng.) C S , F R. C. S
प्रोफेसर-सर्जरी, मौलाना आज़ाद मेडिकल कालेज, नई दिल्ली

12. हर्निया 445

ए ई दे सा, F. R C S (Eng)

13 मूत्रपथ 472

एस एस आनन्द, M B , B S., F. R. C S (Eng.), F A C. S., F C C. P
डाइरेक्टर-प्रोफेसर, इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च, चण्डीगढ, हन्टेरियन प्रोफेसर, रायल कालेज आफ सर्जन्स आफ इंगलैड, भारत के राष्ट्रपति के अवैतनिक सर्जन,

14 पुरुष-जननपथ 541

एस एस आनन्द M B , B. S , F. R C S (Eng.),

F. A. C. S , F. C. C. P.

15. स्तन के रोग 568.

ए के बसु, M. S. (Cal), F. R. C. S. (Eng),
F A C S,

डाइरेक्टर-प्रोफेसर, इन्स्टीट्यूट आफ पोस्टग्रेजुएट मेडिकल एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च, कलकत्ता, हुटेरियन प्रोफेसर और मेम्बर, कोर्ट आफ एक्जामिनर्स, रायल कालेज आफ सर्जन्स, इंग्लैंड

और

रानेस, सी चक्रवर्ती M. B., B. S (Cal), F R. C. S. (Eng.),

सर्जन, इन्स्टीट्यूट आफ पोस्टग्रेजुएट एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च और एस. एस के. एम हास्पिटल, कलकत्ता, डिप्टी विजिटिंग सर्जन, चित्तरजन कैन्सर हास्पिटल, कलकत्ता

शल्य-विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक

(TEXT BOOK OF SURGERY)

शल्य-चिकित्सा के सिद्धांतों की प्रस्तावना

सगम लाल

शल्य-चिकित्सा का विकास

आधुनिक काल मे शल्य-चिकित्सा (Surgery) अत्यन्त उच्च स्तर तक पहुच गई है । परन्तु ऐसा पिछली अनेक शताब्दियो मे शनै -शनै हुई उन्नति के कारण ही सभव हुआ है ।

उपचार की कला केवल मनुष्य मे ही नही बल्कि पशु-पक्षियो मे भी पाई जाती है । आदिकाल मे ही मानव ने देखा कि रोगग्रस्त जन्तु अपने घावो और चोटो को ठीक करने के लिए उन्हे चाटते-चूसते है और उन पर फूक मारते है । इसी प्रकार एक पैर टूट जाने पर कुत्ता केवल तीन पैरो द्वारा ही भागता है, फलस्वरूप अस्थिभग वाला पैर निश्चल हो जाता है तथा उसके विरोहण (healıng) मे सहायता मिलती है ।

शल्य-चिकित्सा की कला प्रागैतिहासिक काल से ही चली आ रही हे । मनुष्य के फॉसिलीभूत अस्थिपजरो (fossılısed skeletons) मे विरोहित (healed) अस्थिभग (fracture), सन्धिच्युति (dıslocatıon) तथा अगोच्छेदन (amputatıon) के प्रमाण पाए गए है । कुछ तथ्य यह भी इगित करते है कि पाषाण काल मे सिरदर्द, मिरगी (अपस्मार) आदि रोगो के लिए मस्तिष्क पर आपरेशन किए जाते थे ।

सर्जरी के विकास मे प्राचीन भारत का पर्याप्त हाथ रहा है । ऋग्वेद मे, जिसे ससार का प्राचीनतम साहित्यिक ग्रथ माना जाता है कृत्रिम अगो (artıficıal lımbs) के प्रयोग का वर्णन मिलता है। भारत के महाकाव्य महा-भारत (सन् 1000 ईसापूर्व) मे कहा गया है कि जब पितामह भीष्म युद्धक्षेत्र मे घायल हुए तो सेना के कुशल सर्जनो द्वारा उनकी चिकित्सा की गई । वेदो मे शल्य-रोगो, यहा तक कि प्रायोगिक शल्य-विज्ञान (experımental surgery), का भी वर्णन किया गया है । चरक और सुश्रुत (प्राचीन भारत के प्रसिद्ध

चिकित्सक) ने अपने ग्रथो, विशेषत सुश्रुत सहिता, मे अपनी चिकित्सा पद्धति को लिपिबद्ध किया है तथा अनेक शस्त्रकर्मो (operations) का वर्णन किया है। अस्थिभग, सन्धि-च्युति व अगोच्छेदन की चिकित्सा का वर्णन विस्तार से किया गया है। नासासधान (rhinoplasty) नामक आधुनिक शस्त्रकर्म भी उन दिनो किया जाता था। सुश्रुत सहिता मे लोहनिर्मित 121 शल्य-यत्रो का वर्णन किया गया है। उसमे रक्तस्राव रोकने के लिए दबाव (pressure), काटरी (cautery) तथा उबलते तेल का प्रयोग आदि साधन बताए गए है। उस काल मे मानव-शरीर-रचना के अध्ययन के लिए शव का व्यवच्छेदन (dissection) भी किया जाता था।

प्राचीन भारत मे सवेदनाहरण (anaesthesia) का प्रयोग भी किया जाता था। सुश्रुत ने लिखा है कि शस्त्रकर्म से पहले सवेदनाहरण की स्थिति उत्पन्न करने के लिए मदिरा का प्रयोग करना चाहिए। प्राचीन काल मे इस प्रयोजन के लिए भाग (cannabis indica) की धूनी का भी प्रयोग किया जाता था। दुर्भाग्यवश धीरे-धीरे भारत मे शल्यविज्ञान (surgery) का ह्रास होता गया, परन्तु अन्य देशो मे यह ज्ञान फैलता रहा। चरक और सुश्रुत के महान ग्रथो का अरबी व फारसी मे अनुवाद किया गया तथा इस प्रकार उन देशो के चिकित्सा विज्ञान मे पर्याप्त समृद्धि हुई।

मिस्रवासियो को भी शल्यविज्ञान का पर्याप्त ज्ञान था। मिस्र-देवता थोठ (Thoth) की बयालीस धर्मपुस्तको (Hermetic books) मे से अतिम छह चिकित्सा-विज्ञान से ही सम्बन्धित हैं। इनमे कायचिकित्सा (medicine) व शरीररचना-विज्ञान (anatomy) के अतिरिक्त रोगो, औषधियो एव शल्ययत्रो का भी वर्णन किया गया है। पैपाइरस (Papyrus) मे मानव-शरीर की रक्त-वाहिकाओ, यकृत, प्लीहा व वृक्क का उल्लेख आता है। अर्बुद सम्बन्धी एक अध्याय मे लिखा है यदि सस्पर्शन (palpation) द्वारा अर्बुद मे स्पर्श-तरग (fluctuation) की प्रतीति हो तो यह इस बात का प्रमाण है कि उसमे वसा (fat) अथवा द्रव विद्यमान है, उसकी चिकित्सा शिराछेदन (phlebotomy), दहन (cautery) या छुरिका (चाकू) के प्रयोग द्वारा की जानी चाहिए। मिस्री अभिलेखो से विदित होता है कि वे घाव भरने के लिए उसके किनारो को परस्पर मिलाने का महत्त्व समझते थे। इस प्रयोजन के लिए घाव पर लोबान (myrrh) और शहद मे भीगी पट्टी बाँधते थे जिसे चार दिन बाद उतारा जाता था। उन्हे अस्थिभग की चिकित्सा का भी ज्ञान था।

सुमेरिया, बेबीलोन और चीन ने शल्यविज्ञान की उन्नति मे कोई विशेष

योग नही दिया। चीनी लोग पीडा के लिए सूचीवेध (acupuncture), दहन (cautery), चपक-प्रयोग (cupping) और प्रच्छान (scarification) का प्रयोग करते थे।

बुद्धकाल मे मनुष्यो व पशुओ का व्यवच्छेदन धार्मिक सिद्धान्तो के कारण वर्जित कर दिया गया। तभी से भारत मे शल्यविज्ञान की प्रगति मे शिथिलता आ गई।

यूनान मे चिकित्साशास्त्र के देवता एपोलो (Apollo) ने चिकित्सा का ज्ञान चिरोन (chiron) नामक अश्वमानव (centaur) को प्रदान किया, जो ट्राय (Troy) पर चढाई करने वाली यूनानी सेना का चिकित्सक था। उसके द्वारा घावो की पट्टी करने, एषणी (probe) का आविष्कार करने तथा दात उखाडने का उल्लेख मिलता है। चिरोन जिसे शल्य-चिकित्सा का देवता माना जाता है, उसके प्रसिद्ध शिष्यो मे एकिलीज (Achilles) तथा यूनानी चिकित्सा के प्रवर्त्तक देवता एस्क्युलेपियस (Aesculapius) के नाम प्रमुख है।

हिपोक्रेटीज (Hippocrates) ने 460-357 ईसापूर्व आयुर्विज्ञान और शल्य-चिकित्सा की प्रक्रिया की उन्नति मे बहुत योग दिया। उसने आयुर्विज्ञान को दर्शन, धर्म, चमत्कार और जादू-टोने के प्रभाव से मुक्त किया तथा प्रायोगिक शल्य-विज्ञान (experimental surgery) के महत्त्व पर बल दिया। उसने दो प्रकार की विद्रधि (abscess), स्थानीकृत (localized) और विसृत (diffuse) को स्वीकार किया तथा अस्थिभग और शिर-अभिघात (head injury) की चिकित्सा का वर्णन किया। उसके ग्रथ 'हिपोक्रेटीज सहिता' (Carpus Hippocraticum) मे विभिन्न आपरेशनो का वर्णन किया गया है। उसने प्राथमिक विरोहण (primary healing) तथा द्वितीयक विरोहण (secondary healing) मे भेद की भी व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त उसने आपरेशन से पूर्व सर्जन के हाथो व नाखूनो की सफाई और घावो की सफाई-धुलाई के लिए मदिरा व उबाले हुए पानी के प्रयोग पर भी बल दिया है। इन कार्यों को अपूति (asepsis) की दिशा मे प्रथम प्रयास की सज्ञा दी जा सकती है।

ईसापूर्व तीसरी शताब्दी मे अलेक्जेंड्रिया मत (Alexsandiian School) की स्थापना हुई। इससे शरीर-रचना-विज्ञान की प्रगति मे पर्याप्त सहायता मिली, क्योकि इसके अनुसार शव-व्यवच्छेदन तथा शवपरीक्षा (necropsy) पर विशेष बल दिया गया।

रोमन काल के सुयोग्य डाक्टर, महान् लेखक तथा अपने समय के कुशलतम अन्वेषक गेलन (सन् 130-201) का कथन है कि यदि अभिनव व्यापक घावो

को मदिरा से साफ करके सूती धागे से सी दिया जाय तो वे शीघ्र पूय-रहित होकर भर जाते हैं। उसने घावो की चिकित्सा करते समय शरीर-रचना सम्बन्धी अवयवो (anatomical structures) की स्थिति की पर्याप्त जानकारी पर विशेष बल दिया है। उसके अनुसार 'यदि ऐसी परिस्थिति मे किसी चिकित्सक को महत्त्वपूर्ण धमनियो, तन्त्रिकाओ और पेशियो की स्थिति का ज्ञान न हो तो सम्भव है कि वह रोगी को लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक पहुचाए तथा इस प्रकार उसे मृत्यु के द्वार तक पहुचा दे।'

गेलन ने प्रायोगिक जन्तुओ (experimental animals) पर सुषुम्ना (spinal cord) और तन्त्रिकाओ के विभाजन के प्रभाव का अध्ययन किया। उस समय विश्वास किया जाता था कि क्षत-विरोहण (wound healing) के लिए पूय की उत्पत्ति न केवल आवश्यक बल्कि लाभदायक भी है। यह विश्वास इस कारण था कि शरीर मे उग्र (virulent) जीवाणुओ (bacteria) के विद्यमान होने पर तो पूयोत्पत्ति से पहले ही रोगी की मृत्यु हो जाती थी, किन्तु कम उग्र जीवाणु मृत्यु का कारण न बन कर केवल पूय ही उत्पन्न कर पाते थे।

रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही आयुर्विज्ञान तथा विज्ञान की सभी शाखाओ के अन्धकाल का सूत्रपात हो गया। चौथी से दसवी शताब्दी तक शल्यचिकित्सा का कार्य अशिक्षित और गवार नाइयो के हाथो मे रहा। उनके द्वारा आपरेशन हीनतम परिस्थितियो मे किए जाते थे। रोमन काल के अतिम दिनो मे घोर नैतिक पतन के कारण मठ और चर्च एक प्रकार से रोगी एव अपगु व्यक्तियो के आवासो के रूप मे ही परिणत हो गए थे। इन व्यक्तियो की देखभाल का उत्तरदायित्व मठवासी फकीरो ने अपने ऊपर ले लिया। वे चिकित्सा के लिए प्रार्थना एव मन्त्रोच्चारण का प्रयोग भी करते थे। उन दिनो फकीरो को लम्बे बाल रखने पडते थे। उनके लिए दाढी रखना वर्जित था तथा वर्ष मे पाच बार नियमानुसार रक्तमोक्षण (blood letting) कराना अनिवार्य था। इन दोनो कार्यो के लिए, अर्थात् दाढी बनाने तथा जर्राही का काम करने के लिए, नाइयो की आवश्यकता पडती थी तथा इस प्रकार उनका सम्पर्क मठो से बना रहता था। फलस्वरूप नाइयो को विभिन्न शस्त्रकर्मो की जानकारी रहती थी। यही कारण था कि तत्कालीन नाइयो को नाई-सर्जन के नाम से पुकारा जाने लगा।

यूरोप मे तेरहवी शताब्दी मे हुए पुनर्जागरण के समय यूरोप और इगलैड मे कई प्रमुख सर्जनो का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1540 मे इग्लैंड मे नाइयो और सर्जनो की एक सयुक्त परिषद की नीव पडी। इस समय सर्जन केवल शस्त्रकर्म करते थे

तथा नाई अपने व्यवसाय के अतिरिक्त रक्तमोक्षण भी करते थे। पुनर्जागरण (renaissance) के समय शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र मे अधिकतम सुधार लाने वाला व्यक्ति फ्रास का एक नाई-सर्जन एम्ब्रोज पारे (Ambrose Pare, 1510-90) था, जिसे 'आधुनिक सर्जरी का पिता' कहा जाता है। उसने युद्ध के घावो की चिकित्सा के लिए अडे के सार (digestive of egg), गुलाब के तेल और तारपीन के प्रयोग का प्रचलन किया। उसने इस विधि को तत्कालीन प्रचलित विधि—घाव को उबलते तेल से धोना—से अधिक कारगर पाया। वेसेलियस (Vessalius, 1514-64) द्वारा आधुनिक शरीर-रचना-विज्ञान की आधारशिला रखा जाना भी सर्जरी की प्रगति मे एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

सन् 1745 मे नाइयो और सर्जनो की सयुक्त परिषद टूट गई तथा वे एक-दूसरे से पृथक हो गए। बाद मे शल्यचिकित्सको का एक अलग सघ बनाया गया जिसके आधार पर ही उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे 'रॉयल कॉलिज आफ सर्जन्स' की स्थापना की गई।

जान हटर (John Hunter, 1728-93) के प्रयत्नो के फलस्वरूप शल्य-विज्ञान की कला और कार्यविधि को आयुर्विज्ञान की ही एक शाखा के रूप मे समझा जाने लगा। जान हटर शस्त्रकर्म सम्बन्धी शरीर-रचना-विज्ञान (operative anatomy), शरीर-क्रिया-विज्ञान (physiology) तथा प्रायोगिक विकृति विज्ञान (experimental pathology) के क्षेत्र मे एक प्रवर्त्तक था। ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी और अमरीका के अनेक विख्यात सर्जनो ने हटर का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया। इनमे ब्रिटेन के एबर्नेथी (Abernethy), कूपर (Cooper), लिस्टर (Lister) और साइम (Syme) के नाम उल्लेखनीय है। फ्रास मे लीफ्रान्क (Lisfranc) ने शल्यचिकित्सा के कई क्षेत्रो मे बढावा दिया। जर्मनी के फॉन ग्रैफ लैंगनबेक (Von Graefe Langenbeck) और डिफनबैक (Dieffenbach) ने कई दिशाओ मे मूल कार्य किए। अमरीका मे सर्जरी के क्षेत्र मे जान हटर का प्रभाव लगभग सन् 1820 तक ही रहा। इसके पश्चात् लगभग चालीस वर्ष तक अमरीकावासियो ने फ्रास से प्रेरणा प्राप्त की, जिसे उस समय एक प्रमुख शल्यचिकित्सा-केन्द्र माना जाता था। तदनन्तर सर्जरी पर जर्मनी के शल्यचिकित्सको का बोलबाला हो गया।

पूतिरोध तथा अपूति (Antisepsis and Asepsis)

सन् 1846 मे लुई पेस्चर (Louis Pasteur) ने सिद्ध कर दिया कि किण्वन (fermentation) की क्रिया सूक्ष्मजीवो (micro-organisn) के कारण ही

होती है। इस खोज मे प्रेरित होकर जोसेफ लिस्टर ने इस मान्यता को जन्म दिया कि घावो मे होने वाला सक्रमण (infection) भी मदिरा मे होने वाले प्रकिण्वन की भाति ही होता है। उसका कहना था कि घावो मे पूय जीवाणुओ के कारण पडता है न कि वायु मे विद्यमान दूषित गैसो के कारण।

लिस्टर ने 1867 मे 'शल्य-कार्य-विधि मे पूतिरोध का सिद्धान्त' नामक एक निवन्ध लिखा। यही से पूतिरोध पदार्थों (antiseptics) तथा पूतिरोधी सर्जरी का श्रीगणेश हुआ। उसने वायु मे विद्यमान जीवाणुओ को नष्ट करने के लिए कार्बोलिक एसिड की फुहार (spray) की विधि निकाली। 1878 मे रावर्ट काक ने अपने लेख 'क्षतो मे सक्रमण के कारण' मे सिद्ध किया कि प्रत्येक भिन्न प्रकार के सक्रमण के मूल मे विशेष प्रकार के जीवाणु होते है। इस प्रकार इस लेख द्वारा लिस्टर की मान्यता का वैज्ञानिक प्रमाण मिल गया। 1886 मे निर्जीवाणुकरण (sterilization) के लिए भाप देने तथा उबालने की विधियो का प्रयोग किया गया। यह अपूतित शल्यचिकित्सा के विकास की ओर एक वडा कदम था। इसी प्रकार की एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना 1890 मे हुई जव हाल्स्टेड (Halsted) ने आपरेशन के लिए रवर के दस्तानो का प्रयोग आरम्भ किया। इन सव प्रगतिसूचक घटनाओ के फलस्वरूप उन्नीसवी शताब्दी के समाप्त होते-होते उदर-सर्जरी (abdominal surgery) का काफी विकास हो गया।

संवेदनाहरण (Anaesthesia)

शल्य-चिकित्सा के आदिकाल से ही ऐसे पदार्थों की खोज चली आ रही है जिनके प्रयोग से आपरेशन की पीडा कम की जा सके, किन्तु रोगी का जीवन सकट मे न पडे। इस प्रयोजन के लिए ईसा से कई शताब्दी पूर्व सर्वप्रथम भाग का और वाद मे अफीम व अल्कोहल का प्रयोग किया गया था। आधुनिक काल मे सवेदनाहरण के लिए विशिष्ट पदार्थो की खोज हो जाने से शल्य-चिकित्सा की उन्नति मे वहुत योग मिला है। व्यापक आपरेशन के लिए ईथर का प्रयोग सर्वप्रथम 1846 मे किया गया था। यद्यपि दात उखाडने के लिए नाइट्रस आक्साइड का प्रयोग पहली वार 1844 मे किया गया, फिर भी दन्त-सर्जरी मे गैस और आक्सीजन का नियमित प्रयोग 1868 से ही चालू हुआ। सिम्पसन (Simpson) ने 1847 मे प्रसूति-रोगियो (obstetric patients) के लिए प्रथम वार क्लोरोफार्म का प्रयोग किया। यह शीघ्र ही एक लोकप्रिय सवेदनाहारी औषधि सिद्ध हुई। इस समय तक शल्यचिकित्सा के क्षेत्र मे अपूति

(asepsis) तथा पूतिरोध (antisepsis) के अतिरिक्त स्थानिक सवेदनाहरण (local anaesthesia) का प्रयोग भी प्रचलित हो चला था। इस शताब्दी की प्रथम दशाब्दी मे नोवोकेन (novocaine) की खोज के पश्चात् इसकी लोकप्रियता और अधिक बढ गई। 1930 मे पहली बार साइक्लोप्रोपेन (cyclopropane) को प्रयुक्त किया गया। पिछले कुछ वर्षों मे अत श्वासप्रणाल (intratrachial) सवेदनाहरण, पेशी शिथिलको (muscle relaxants) तथा नियत्रित श्वसन (controlled respiration) के प्रयोग के कारण सवेदनाहरण की क्षमता अत्यन्त बढ गई है। तापन्यूनता तथा रक्तदाबह्रासी औषधियो (hypotensive drugs) की सहायता से अब मस्तिष्क तथा हृदय-वाहिका तत्र (cardiovascular system) की शल्यचिकित्सा भी सम्भव हो गई है।

एक्सकिरणें

1895 मे विलियम के० रोन्टजन द्वारा एक्सरे अथवा रोन्टजन किरणो (Roentgen rays) की खोज सर्जरी के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। आरम्भ मे इनका प्रयोग अस्थिभग व आगतुक-शल्यो (foreign body) के अध्ययन के लिए किया गया था। बाद मे आतरिक अगो की परीक्षा के लिए भी इनका उपयोग किया जाने लगा।

बीसवीं शताब्दी मे प्रगति

सवेदनाहरण, अपूति एव एक्सरे को शल्यचिकित्सा के विकास मे उन्नीसवी शताब्दी की तीन मुख्य घटनाए माना जा सकता है। वर्तमान शताब्दी मे तो और भी अधिक प्रगति हुई है। प्रथम महायुद्ध के अनुभवो द्वारा घावों की काट-छाट (debridement), पूतिरोधी पदार्थो द्वारा घावो की सफाई, एटीगैस-गैग्रीन सीरम (antigasgangrene serum) और टिटेनस एटिटाक्सिन(Tetanus antitoxin) की उपयोगिता सिद्ध हो गई। अत इनका व्यापक प्रयोग किया जाने लगा। 1931 मे बैन्टिग (Banting) और बेस्ट (Best) द्वारा इसुलिन की खोज के फलस्वरूप मधुमेह के रोगियो की सफल शल्यचिकित्सा सम्भव हो गई।

1906 मे एहर्लिक (Ehrlich) द्वारा सल्वार्सन (salvarsan) नामक औषधि की खोज द्वारा रसायन चिकित्सा (chemotherapy) और प्रतिजैवियो या एटीबायटिको (antibiotics)के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। सल्फोनेमाइड

का सश्लेपण (synthesis) यो तो 1908 मे ही कर लिया गया था, किन्तु इमका क्लिनिकल प्रयोग सर्वप्रथम 1930 मे प्रोन्टोसिल (Prontosil) के रूपमे किया गया। यह रक्तसलायी स्ट्रेप्टोकोकम (haemolytic streptococcus) के सक्रमण मे वहुत लाभदायक सिद्ध हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सल्फा-पिरिडीन (sulfapyridine), मल्फाथायजोल (sulfathiazole) मल्फामेराजीन (sulfamerazine), सल्फाडायजीन (sulfadiazine) आदि कई अन्य मल्फा औपधियो की भी खोजकी गई। अलेक्जेंडर फ्लेमिंग (Alexander Fleming) ने 1929 मे पेनिसिलिन की खोज की। किन्तु 1940 तक, जव तक आक्सफोर्ड मे चेन और फ्लोरे (Chain & Florey) ने इस दिशा मे और अधिक कार्य नही किया, इस खोज से व्यावहारिक लाभ नही उठाया गया। पेनिसिलीन के पश्चात् अन्य एटीवायटिको, उदाहरणत स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसेटिन, टेट्रासाइक्लीन आदि की भी खोज की गई। आजकल भी उत्तमोत्तम एन्टीवायटिको की खोज के समाचार मिल रहे है। इन पदार्थों के प्रयोग से सक्रमण का सकट वहुत कुछ टल गया है तथा इस कारण वहुत से कठिन आपरेशन निरापद हो गए हैं। हेपेरिन (Heparin) तथा डायकुमेरोल (Dicoumarol) की खोज ने शल्योत्तर काल (post operative period) की प्रमुख जटिलताओ, जैसे कि फुप्फुस घ्रनास्रता (pulmonary thrombosis) और फुप्फुम अत शल्यता (pulmonary embolism) के वचाव और इलाज मे वहुत योग दिया है। ये दो पदार्थ हृदय और रक्तवाहिकाओ के आपरेशनो मे वहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। 1930 मे विटामिन K की खोज के पश्चात् ऐसे रक्तस्राव की रोकथाम भी सम्भव हो गई जो रुद्धपथ कामला (Obstructive jaundice) के रोगियो मे शल्यो-परान्त काल मे पाया जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की आड मे अस्थिभग-चिकित्सा, प्लास्टिक सर्जरी और रक्ताधान (blood transfusion) के क्षेत्रो मे सर्जरी की विशेप प्रगति हुई। कैंसर का कारण और उपचार खोजने के लिए आजकल भी निरन्तर अनुसधान हो रहा है। इस उद्देश्य के लिए रेडियोधर्मी आइसोटोपो (radioactive isotopes) का प्रयोग भी किया जा रहा है। वीसवी शताव्दी की एक अन्य महत्त्व-पूर्ण घटना मस्तिष्क-सर्जरी का विकास है। वक्ष-सर्जरी (thoracic surgery) के क्षेत्र मे भी पर्याप्त प्रगति हुई है। हाल मे हृदय-फुप्फुस मशीन(heart-lung machine) के निर्माण से तो हृदय की विवृत शल्य-चिकित्सा (open heart surgery) भी सँभव हो गई है।

अभिघात एवं रोग (Injury & Disease)

ऊतको को किसी भी कारणवश क्षति पहुचने का परिणाम रोग की उत्पत्ति होता है। अभिघात के कारण ऊतको और कोशिकाओ के वातावरण मे ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि शरीरक्रियात्मक अनुकूलन (physiological adaptation) द्वारा उसका प्रतिकार असम्भव हो जाता है। रोग के कारण दो प्रकार के हो सकते है—वाह्य तथा आन्तरिक (extrinsic & intrinsic)।

रोग के बाह्य कारण

वाह्य करणो को तीन श्रेणियो मे बॉटा जा सकता है

(1) भौतिक, यथा यान्त्रिक अभिघात (mechanical trauma), अत्यधिक ताप-शीत, अथवा वायुमण्डलीय दबाव (atmospheric pressure) का उतार-चढाव, (2) रासायनिक, यथा अनिवार्य भोजन तत्त्वो का अभाव, विषैले द्रव्य और कार्सिनोमा-उत्पादक पदार्थ (carcinogens), (3) सूक्ष्मजीव, यथा जीवाणु (bacteria)वायरस व परजीवी जतु (parasites)। इसके अतिरिक्त इजेक्शन द्वारा या अन्य मार्गो से शरीर मे प्रविष्ट होने वाले आगतुक शल्य भी वाह्य क्षति का कारण बन सकते है।

रोग के आतरिक कारण

आतरिक कारणो को स्पष्टतापूर्वक वर्गीकृत नही किया जा सकता तथा उनका प्रभाव भी पूर्णतः विदित नही है। ये निम्नलिखित है : (1) आयुवृद्धि से सम्बन्धित शारीरिक परिवर्तन, (2) मन कायिक कारण (Psychosomatic causes), (3) दैहिक अभाव (Constitutional deficiencies) अथवा आनुवशिक रोग-प्रवृत्तिया, (4) किसी पिछले रोग के कारण उत्पन्न ऐसे सरचनात्मक (structural) परिवर्तन या अभाव जिनके कारण ऊतक सहज ही क्षतिग्रस्त हो जाए।

जिन रोगो का कारण विदित न हो उन्हे अज्ञातहेतुक (idiopathic) कहा जाता है।

अभिघात की प्रतिक्रिया (Reaction to injury)

प्रतिक्रिया का ढग इस बात पर निर्भर करता है कि अभिघात किस प्रकार का है, कौन-सा ऊतक क्षतिग्रस्त हुआ है, तथा शरीर की प्रतिरोध शक्ति कितनी

है। यह शक्ति भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न होती है। अभिघात की प्रतिक्रिया दो प्रकार की होती है—स्थानीय (local), जो अभिघात-स्थल पर ही हो, तथा सर्वांगी (Systemic),जो सारे शरीर को प्रभावित करे।

सर्वांगी प्रतिक्रिया

शल्यकर्म द्वारा होने वाली शारीरिक क्षति के शरीरक्रियात्मक (physiological) परिणामस्वरूप शारीरिक ताप और नाडी की गति मे अस्थायी वृद्धि हो जाती है। पहले 3-7 दिन तक शरीर मे नाइट्रोजन का परिमाण घटता है, तथा इसके वाद धनात्मक नाइट्रोजन सतुलन (positive nitrogen balance) स्थापित हो जाता है। अभिघात के पश्चात् 2-5 दिन तक पोटाशियम का ह्रास तथा तत्पश्चात् सग्रह होता है। इसी प्रकार 2-5 दिन तक मूत्र तथा सोडियम के निष्कासन मे कमी आ जाती है, व तदुपरात मूत्रलता (diuresis) व सोडियम-ह्रास होने लगता है। शरीर के भार मे भी तनिक कमी आ जाती है। अभिघातज प्रतिक्रिया के फलस्वरूप शरीर मे पिट्यूटरी ग्रथि तथा अधिवृक्क प्रान्तस्था (adrenal cortex) के मध्य सतुलन मे भी कुछ ऐसा परिवर्तन आता है कि उसके कारण रक्त सचरण मे इयोसिनोफिलो की सख्या मे कमी हो जाती है और हारमोन उत्पादो (hormone products) का उत्सर्ग अधिक परिमाण मे होने लगता है। आरोग्यप्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि कैलोरीसतुलन तथा नाइट्रोजन सतुलन पुन उचित स्तर पर आ जाए।

स्थानीय प्रतिक्रिया

ऊतको की क्षति के प्रति स्थानिक प्रतिक्रिया को शोथ (inflammation) कहते हैं। शोथ की परिभाषा निम्न प्रकार की गई है, 'यह वह क्रिया है जिसके द्वारा क्षोभित ऊतको (irritated tissues) मे निस्राव (exudate) और कोशिकाए एकत्र हो जाते हैं तथा उन्हे और अधिक क्षति से वचाने की चेप्टा करते है।' यह एक विकासशील (progressive) क्रिया होती है तथा इसके साथ या इसके पश्चात् ही विरोहण (repair) या पुनर्जननात्मक विरोहण (regenerative healing) की क्रिया भी सम्पन्न होती रहती है। क्षति के पश्चात् ऊतक मे सर्वप्रथम अल्पकालीन वाहिका सकुचन उत्पन्न हो जाता है। परन्तु इसके वाद तुरत ही केशिकाओ (capillaries) और शिरिकाओ (venules) का प्रसार (dialatation) होने के फलस्वरूप अतिरक्तता (hyperaemia) की स्थिति हो जाती है। रक्त का यह वढा हुआ प्रवाह कुछ देर ही रहता है और

फिर धीरे धीरे घटने लगता है। इस कारण वाहिकाओ मे रक्त स्थिर और कुठित हो जाता है। इस प्रवाहहीनता के कारण वाहिकाओ की भित्ति से छन-कर द्रव व श्वेत कोशिकाए निस्राव (exudate) के रूप मे बाहर आ जाती है। इस निस्राव का द्रव भाग मुख्यत प्लाज़्मा (plasma) होता है और शोफ (oedema) उत्पन्न करता है। फाइब्रिन अवक्षेप (precipitation) के कारण यह द्रव जम जाता है। इस प्रकार शोथयुक्त स्थान सीमित होने लगता है। फाइब्रिनयुक्त पदार्थ के जमाव तथा लसीकावाहिनियो के घनास्री अन्तर्रोध (thrombotic occlusion) के कारण अभिघात का कारक (agent of injury) इस प्रकार सीमावद्ध हो जाता है।

शोथ के प्रधान चिह्न गर्मी, लाली, सूजन, दर्द और कार्यहीनता (heat, redness, swelling, pain & loss of function) है। गर्मी और लाली अतिरक्तता के कारण प्रकट होती है, सूजन निस्राव के कारण होती है और पीडा तन्त्रिकाओ पर पडने वाले दबाव तथा ऊतको मे होने वाले सूजन और तनाव के कारण होता है। अग की क्रियात्मकता मे कितनी कमी आती है, यह इस बात पर निर्भर होता है कि अन्य परिवर्तनो का उस अग पर कैसा प्रभाव पडा है। क्लिनिकलरूप से शोथ तीन प्रकार का हो सकता है—तीव्र (acute), अनुतीव्र (subacute) और चिरकारी (Chronic)।

तीव्र शोथ—तीव्र शोथ का विकास द्रुत गति से होता है। इसमे शोथ के प्रमुख चिह्नो के अतिरिक्त उग्र सर्वांगी-प्रतिक्रिया के लक्षण भी पाए जाते है। इसके मुख्य अभिलक्षण वाहिका-सम्बन्धी परिवर्तन तथा द्रव व न्यूट्रोफिलो का निस्रवण (exudation) है। परन्तु इसका विकास तीव्र गति से होने के कारण सयोजी ऊतक (connective tissue) के बनने या लसीका व प्लाज्मा कोशिकाए (plasma cells) को एकत्रित होने का समय नही मिल पाता। तीव्र शोथ आगे चल कर शान्त हो सकता है अथवा अनुतीव्र या चिरकारी रूप ग्रहण कर सकता है।

अनुतीव्र शोथ—यह तीव्र शोथ का अनुवर्ती (follower) हो सकता है अथवा स्वय भी इस रूप मे उत्पन्न हो सकता है। इसकी विशिष्टता है कि इसमे ऊतक के स्थिर तत्वो (fixed tissue elements) का प्रफलन (proliferation) होता है। शोथ-क्षेत्र मे एककेन्द्री कोशिकाओ (mononucear cells) की विशाल सख्या दृष्टिगोचर होने का यह मुख्य कारण है। अनुतीव्र शोध मे जालक-अत कला तन्त्र (reticulo-endothelial system) की कोशिकाओ का बहुगुणन होता है और वृहद्भक्षको (mocrophages) का निर्माण होने लगता है, छोटी

गोल कोशिकाओ (small round cells) का अन्त स्यदन (Infiltration) भी आरम्भ हो जाता है। तदुपरान्त तन्तुप्रसू (fibroblasts) व अन्त:कला कोशिकाए प्रफलित होती है; इस प्रकार सक्रमण के प्रसार मे बाधा उत्पन्न हो जाती है।

चिरकारी शोथ—इसके विशिष्ट अभिलक्षण निस्रवणीय परिवर्तनो (exudative changes) का दीर्घकाल तक रहना तथा ऊतको, विशेषत सयोजी ऊतको, का अधिक मात्रा मे प्रफलन होना है। यह स्वतत्र रूप मे अथवा तीव्र शोथ के अनुवर्ती रूप मे पाया जा सकता है। यदि सक्रामक जीवाणुओ की उग्रता कम हो और शरीर की प्रतिरोध शक्ति (Body resistance) अधिक हो तो चिरकारी शोथ उत्पन्न होता है। इसमे अधिकाशत पाई जाने वाली कोशिकाएँ लसीका कोशिकाए, प्लाज्मा कोशिकाए और वृहद् भक्षक है। इसमे तन्तु ऊतक (fibrous tissue) का निर्माण बहुत अधिक परिमाण मे होता है।

शोथ को निस्राव के प्रधान गुण के अनुसार निम्नलिखित प्ररूपो (types) मे बाटा जा सकता है—सीरमीय (serous), फाइब्रिनी (fibrinous), रक्तस्रावी (haemorrhagic), पूयमय (purulent) तथा श्लेष्मी (catarrhal)।

कणिकार्बुदी शोथ—(Granulamatous inflmmation)

अनेक सक्रमण के कारक (infectious agents), उदाहरणतया तपेदिक, कुष्ठ, आतशक (syphilis) के जीवाणु और विभिन्न कवक (fungi) व प्रजीवाणु (protozoa), एक प्रकार का चिरकारी शोथ उत्पन्न करते है जो कणिकार्बुदी शोथ कहलाता है। आगतुक शल्यो के विरुद्ध भी ऊतको मे ऐसी ही प्रतिक्रिया होती है। इस शोथ की विशिष्टता है कि इसमे प्रधानत जालक-अन्त कला कोशिकाए भाग लेती है तथा इसमे ऐसे नाभीय पर्वको (focal nodules) का विकास होता है जो मुख्यत एककेन्द्री कोशिकाओ, कणिक ऊतक (granulation tissue) और तन्तु ऊतक के सम्मिश्रण से बने होते है।

आगतुक शल्य प्रतिक्रियाए—(Foreign body reactions)—जो आगतुक द्रव्य इतने विशाल होते है कि भक्षक कोशिकाएँ (phagocytes) उन्हे उदरस्थ नही कर सकती, उनके चारो ओर वृहद् भक्षक (mocrophages) एकत्रित होकर व आपस मे जुड कर दीर्घाकार वहुकेन्द्रकी महा-कोशिकाओ (multinu cleated giant cells) का रूप धारण कर लेते है। आगतुक शल्य के समीपवर्ती क्षेत्र मे चिरकारी शोथ-कोशिकाओ (chronic inflammatory cells) तथा ततुप्रसुओ का जमाव

हो जाता है । धीरे-धीरे यह द्रव्य या तो घुल जाता है या श्वेत कोशिकाओ और मयोजी ऊतको द्वारा सीमाबद्ध हो जाता है ।

परिगलन अथवा ऊतक-क्षय (Necrosis)

यह ऊतक-क्षय का सबसे गम्भीर परिणाम है । लगभग हर प्रकार का तीक्ष्ण अभिघात परिगलन का कारक बन सकता है । मृत ऊतक प्राय अपारदर्शी और श्वेन या हल्का पीला रग लिए हुए होता है, किन्तु इसका रग-रूप ऊतक तथा अभिघात के कारक की प्रकृति के अनुसार भिन्न हो सकता है । परिगलन के निम्नलिखित कई प्रकार हो सकते है ।

आतंची परिगलन (Coagulation necrosis)—यह प्राय उस दशा मे होता है जब किसी अग का रक्त सम्भरण (blood supply) रुक जाता है । उदाहरणत रोधगलन (infarction) । इसमे जीवद्रव्य आतचित हो जाता है । ऐसे परिगलन मे ऊतक की शिल्प-सरचना मोटे तौर पर बनी रहती है, हालाकि कोशिकाओ के सूक्ष्म रग-रूप मे परिवर्तन आ जाता है ।

किलाटी परिगलन (Caseation necrosis)—यह विशेषरूप से ऐसे ऊतक मे पाया जाता है जो तपेदिक से सक्रमणग्रस्त हो । स्थूल रूप से देखने मे यह पनीर के समान लगता है तथा इसी कारण इसका नाम ऐसा रखा गया है (किलाट-फटे हुए दूध का गाढा, जमा हुआ भाग) । इसमे ऊतक की सूक्ष्म सरचना पूर्णत नष्ट हो जाती है ।

गम्मी परिगलन (Gummatous necrosis)—यह तृतीयक सिफिलिस मे (Tertiary syphilis) पाया जाता हे तथा इसका सूक्ष्मदर्शी स्वरूप किलाटी परिगलन से मिलता-जुलता है । परन्तु स्थूल रूप मे यह भिन्न होता है क्योंकि इसका विन्यास (consistency) रबड के समान,लचीला होता है ।

द्रवी परिगलन (Liquefying necrosis)—यह विशेषत केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र मे पाया जाता है । इसमे मृत ऊतक नर्म पड जाता है तथा अततोगत्वा द्रवीभूत हो जाता है ।

वसा परिगलन (Fat necrosis)—इसका कारण प्राय तीव्र अग्न्याशय रोग होता है । इसका विशिष्ट अभिलक्षण श्वेताभ, अपारदर्शी पर्वक (nodules) है जो वपा (omentum) और आत्रयोजनी (mesentery) की वसा पर अग्न्याशय-प्रकिण्व की क्रिया के कारण उत्पन्न होते है । वसा परिगलन स्तन तथा अधस्त्वक ऊतक (subcutaneous tissue) मे भी पाया जा सकता है तथा इसके विभिन्न कारण हो सकते है, यथा अभिघात (trauna), विषज

परिवर्तन (toxic changes), परिसंचरणीय व्यतिकरण तथा संक्रमण। जब वसा कोशिकाओ का परिगलन होता है तो उनकी उदासीन (neutral) वसा ऊतक मे फैल जाती है। तदनन्तर यह वसाम्लो (fatty acids) और साबुनो (soaps) मे परिणत हो जाती है और इस कारण आगन्तुक शल्य की भांति ही शोथ प्रतिक्रिया को जन्म देती है। कभी-कभी इस प्रकार एक अर्बुद समान पिंड (tumour like mass) भी बन जाता है।

इस बात का कोई अतिम प्रमाण नही है कि अभिघात के कारण किसी ऊतक मे दुर्दम अर्बुद (malignant tumour) की उत्पत्ति हो जाती है। किन्तु इसमे भी कोई सन्देह नही कि यदि पूर्वस्थित अर्बुद को अभिघात पहुंचे तो उसमे वृद्धि होने लगती है।

विरोहण
(Repair & healing)

ऊतक के अभिघातग्रस्त होने के पश्चात् उसमे पूर्वस्थिति की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्नात्मक क्रिया होती है उसे विरोहण (repair) कहते है। इस क्रिया मे कोशिकाओं का बहुगुणन (multiplication) और परिपक्वन (maturation) होता है। सयोजी ऊतक की क्रिया अभिघात के प्रति शरीर की एक मूल प्रतिक्रिया है तथा यह ऊतको की क्षतिपूर्ति मे सहायता देता है। प्रफलन (proliferation) तथा विरोहण की क्रियाए प्राय शोथ की वाहिका विस्फार और निस्रवण नामक प्रावस्थाओ (phases) के पश्चात् सम्पन्न होती है, परन्तु ये उसकी समसामयिक भी हो सकती है। विरोहण के अन्तिम चरण मे सयोजी ऊतक-युक्त एक क्षतचिह्न या स्कार (Scar) बन जाता है तथा नष्ट कोशिकाओ का स्थान पुनर्जनित कोशिकाए ले लेती है।

स्कार-निर्माण (scar formation) तथा पुनर्जनन (regeneration) के मध्य सतुलन मुख्यत ऊतक के प्रकार तथा अभिघात की व्यापकता पर निर्भर होता है। पुनर्जनन द्वारा ऊतक की नष्ट कोशिकाओ का स्थान उसी प्रकार की नई कोशिकाए ले लेती है। कोई ऊतक जितना अधिक विशेषीकृत (specialized) होता है उसमे पुनर्जनन की क्षमता उतनी ही कम होती है। इस प्रकार सयोजी ऊतक सरलतापूर्वक पुनर्जनित हो जाता है जब कि केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र की गण्डिका कोशिकाए (ganglion cells) कदापि द्विगुणित नही हो सकती। ऊतक विरोहण (tissue repair) और क्षत विरोहण (wound healing) की क्रिया तीन प्रावस्थाओ (phases) मे सम्पन्न होती है —

मद प्रावस्था (Lag phase)—अवघात के पश्चात् ऊतक की प्रथम प्रतिक्रिया-स्वरूप निस्राव उत्पन्न होता है जो प्लाज्मा, रक्त कोशिकाओ और फाईब्रिन के सयोग से बनता है। यह निस्राव क्षत को सपूरित करके उसे सीलबन्द कर देता है। यह अवस्था 3-6 दिन तक रहती है।

तंतुविकसन प्रावस्था (Phase of fibroplasia)—3-6 दिन के बाद ततुप्रसू (fibroblasts) व केशिका कलिकाए (capillary buds) दोनो ओर से विकसित होने लगती है तथा क्षत को सपूरित कर देती है। इस प्रकार शीघ्र ही दोनो किनारे आपस मे मिल जाते है। यह क्रिया दसवे दिन तक चलती है।

स्कार-सकुचन प्रावस्था (Phase of contraction of scar) – इस अवस्था मे सयोजी ऊतक के विभिन्न तत्व परिपक्व होते हैं, जालकततु (reticulum fibres) और कोलेजेन ततु (collagen fibres) का निर्माण होता है। इस प्रकार स्कार या क्षतचिह्न का निर्माण होता है।

प्राथमिक विरोहण (Healing by first intention)—जब विभाजित ऊतक के पृथक् भाग परस्पर निकट होते है तो विरोहण सरल होता है क्योकि यहा कोई रिक्त स्थान भरने की आवश्यकता नही होती। इसे प्राथमिक विरोहण कहते है। इसका उदाहरण सीवनयुक्त क्षत है।

द्वितीयक विरोहण (Healing by second intention)—

यदि किसी कारणवश क्षत के किनारे परस्पर मिलाए न जा सके, सक्रमण से ऊतक की पर्याप्त मात्रा नष्ट हो गई हो (उदाहरणतया व्रण या ulcer मे) अथवा अभिघात के कारण रक्त का परिस्राव (extravasation) भी हुआ हो, तो विरोहण मे बाधा उत्पन्न हो जाती है। कारण यह है कि ऐसी दशा मे क्षत के अतराल (gap) को भी विरोहण द्वारा भरने की आवश्यकता होती है। यह रिक्त स्थान कणिकोतक (granulation tissue) द्वारा भरा जाता है। इस प्रकार होने वाले विरोहण को द्वितीयक विरोहण कहते है। कणिकोतक लगभग चौथे-पाचवें दिन प्रकट होता है। यह लम्बे ततुप्रसुओ (fibroblasts) और केशिकाओ व अत कला-कोशिकाओ (endothelial cells) की कलिकाओ (buds) से बना होता है जो निस्राव के क्षेत्र मे अग्रसर या विकसित होती है। स्वस्थ कणिकोतक एक पतली, दृढ चमकदार, लाल, महीन, दानेदार झिल्ली के रूप मे होता है। इस झिल्ली को छूने पर इससे सहज रक्तस्राव नही होता, यह दुर्गन्ध-रहित होती है, और इससे केवल बहुत थोडी मात्रा मे ही पतला सीरमीय विसर्जन (discharge) होता है। कणिकोतक उपरिस्थ क्षतो (super-

ficial wound) के लिए [illegible] (in-fective process) को सीमित करने के लिए [illegible] है। इस प्रकार [illegible] क्षत से परिस्रवित [illegible] ऊतकों में क्षोभ (irritation) [illegible] परिस्थ किनारा (peripheral margin) [illegible] होने लगता है। [illegible] (cyanatic) शोफयुक्त (oedematous) [illegible] (friable) [illegible] सहज ही रिसने लगता है। [illegible] और [illegible] इससे काफी मात्रा में पूय-निस्सरण होता है [illegible] क्षोभित हो जाती है। इसके [illegible] चिह्न भी पाए जा सकते हैं, यथा ज्वर, [illegible] (malaise), [illegible] और प्रादेशिक लसीकापर्वशोथ (regional lymphadenitis)।

तृतीयक विरोहण (Healing by third Intention)

जब किसी विस्तृत, कणिकागुक्त क्षत (granulating wound) [illegible] के लिए शल्य-साधनों (surgical procedures) का प्रयोग किया जाता है उसे तृतीयक विरोहण कहा जाता है। [illegible] निमीलन (delayed closure) और त्वचा-निरोपण (skin grafting) है। उनका उद्देश्य विरोहण की गति तीव्र करना, [illegible] तथा [illegible] और सुरूप बनाए रखना है।

विरोहण को प्रभावित करने वाले घटक (Factors affecting Healing)

विरोहण क्रिया अनेक घटकों द्वारा प्रभावित होती है। ये घटक स्थानिक (local) अथवा व्यापक (general) हो सकते हैं।

व्यापक घटक

सर्वांग रक्त रोग (Systemic blood diseases)—गम्भीर अरक्तता (anaemia), हृदय-क्षतिअपूर्ति (cardiac decompensation), [illegible] (obliterviiac) धमनी रोग और रक्त-आयतन-न्यूनता (diminished blood volume), इन सभी अवस्थाओं में कोशिकाओं का रक्तसम्भरण घट जाता है तथा इस कारण विरोहण पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। गम्भीर अरक्तता

वाले रोगियो मे घावो के सुचारु रूप से न भरने का कारण प्रोटीन और विटामिनो की कमी माना जाता है ।

पोषण (Nutrition)—उपयुक्त तथा शीघ्र विरोहण के लिए शरीरक्रियात्मक अवस्था का सामान्य होना आवश्यक है । यदि कोशिका-पोषण ठीक ढग मे न हो तो शरीर अपने रक्षा-साधनो का भली प्रकार उपयोग नही कर सकता, तथा इस प्रकार सूक्ष्मजीवो की वृद्धि मे सहायता मिलती है । प्रोटीन की कमी (रक्तप्रोटीनन्यूनता) निम्नलिखित कारणो से हो सकती है—गम्भीर अथवा पुनरावर्ती (repeated) रक्तस्राव, दीर्घकालीन व अत्यधिक विसर्जनयुक्त पूतिता (sepsis), यकृत सिरोसिस (cirrhosis) और जलोदर (ascites) । प्रोटीनन्यूनता मे क्षत-कोर (wound edges) फूल जाते है तथा इस प्रकार विरोहण मे बाधा पडती है । रक्तगामाग्लोबुलिनहीनता (agammaglobulinaimia) अर्थात् रक्त मे गामाग्लोबुलिन की कमी से भी सक्रमथ के प्रति रोगी की प्रतिरोध शक्ति कम हो जाती है ।

विटामिन—यकृत का सम्बन्ध अधिकाश विटामिनो के सचय और चयापचय (metabolism) से होता है । शस्त्रकर्म और शारीरिक अभिघात के फलस्वरूप यकृत की कार्यक्षमता घट जाती है । क्षतो एव सक्रमणो के विरोहण मे सहायता देने वाले विटामिन निम्नलिखित है ।

(1) **विटामिन C**—इसकी दीर्घकालीन न्यूनता से विरोहण की क्रिया मे बहुत बाधा पडती है । यह अतराकोशिकी सीमेट (intercellular cement) और कोलेजन (collagen) ततुओ के निर्माण के लिए आवश्यक होता है । यदि कणिकाऊतक तथा केशिका शैया (capillary bed) मे अतराकोशिकी पदार्थों की कमी हो तो क्षत-स्थल मे रक्तस्राव होने लगता है । फलस्वरूप मद प्रावस्था (lag phase) की अवधि बढ जाती है, ततुविकसन की गति धीमी पड जाती है और स्कार ऊतक (scar tissue) के विकास मे विलम्ब होता है ।

(2) **विटामिन A**—विटामिन A की कमी से सक्रमण के स्थानीय प्रतिरोध मे ह्रास हो सकता है । विटामिन A प्रोटीन के साथ मिलकर सभी विशेषीकृत उपकला ऊतको (specialized epithelial tissues) के निर्माण मे योग देता है तथा उन्हे दृढता प्रदान करता है ।

(3) **विटामिन K**—यह रक्तस्राव को नियत्रित करने के लिए अनिवार्य है । इसकी कमी के कारण रक्त-प्रोथ्राम्बिन-न्यूनता (hypoprothrombinaemia) हो जाती है । यह स्थिति प्राय कामला और गम्भीर यकृत अक्षमता

के रोगियो मे पाई जाती है।

(4) **विटामिन D**—कैल्शियम के समुचित अवशोषण (absorption) और अस्थियो मे कैल्शियम के समावेश के लिए विटामिन D का पर्याप्त मात्रा मे ग्रहण करना आवश्यक है। शस्त्रकर्म के उपरान्त यकृत की क्रियात्मकता मे कमी हो जाने के कारण विटामिन D के अवशोषण और उपयोग (utilization) मे गम्भीर बाधा पड सकती है।

विश्राम—विक्षत अग को विश्राम पहुचाना महत्वपूर्ण है। देह-शाखाओ मे सधियो के निकट स्थित क्षतो के लिए तो विश्राम विशेष रूप से आवश्यक है। इसका कारण है कि पेशीक्रिया और जोडो की गति के फलस्वरूप उस माध्यम मे हलचल हो जाती है जिसमे कोशिकाए विकसित हो रही होती हैं। इस हलचल के फलस्वरूप रक्त और द्रव का परिस्राव (extravasation) होने लगता है, जो विरोहण मे बाधा डालता है।

चयापचयी रोग (Metabolic disease)—यकृत सिरोसिस और मधुमेह आदि रोगो मे विरोहण की गति कम हो जाती है। अनियन्त्रित मधुमेह मे जीवाणु-सक्रमण के प्रति ऊतको का प्रतिरोध घट जाता है। फलस्वरूप क्षतो मे ऊतकनाश होने लगता है और विरोहण मे विलम्ब होता है। इस रोग मे धमनियो मे जो अवरोधी परिवर्तन (obliterative changes) होते है उनका भी स्थानीय रक्त सम्भरण पर प्रभाव पडता है। प्रतिहारी सिरोसिस (portal cirrhosis) मे रक्तप्रोटीनन्यूनता, रक्त-प्रोथ्राम्बिनन्यूनता और विटामिनन्यूनता के कारण विरोहण धीमा पड जाता है। यूरीमिया (uraemia) मे भी विरोहण मे काफी विलम्ब होता है।

स्थानीय कारक (Local factors)

घाव मे निर्जीव और परिगलित ऊतक की उपस्थिति—इसके कारण स्थानीय क्षोभ होता है और जीवाणु-वृद्धि मे सहायता मिलती है। इस प्रकार श्वेतकोशिकाओ की प्रतिक्रिया, द्रव-हानि (fluid loss) और विषज पदार्थों के अवशोषण मे वृद्धि हो जाती है। निर्बल हुए ऊतको (devitalised tissues) के पास होने वाली इन प्रतिक्रियाओ से विरोहण मे विलम्ब होता है, क्योकि जीवित ऊतक परिगलित पदार्थ के निष्कासन और सक्रमण के नियत्रण मे जुटे रहते है। ऐसे घाव मे शोथ के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं तथा प्रचुर मात्रा मे विसर्जन पाया जाता है। जब तक परिगलित द्रव्य नष्ट अथवा निष्कासित न हो जाए, विरोहण की प्रगति असम्भव होती है। यही कारण है कि क्षत के

सक्रमित होने से पहले ही उसमे से सभी निर्जीव व परिगलित पदार्थों को शस्त्र उच्छेदन (surgical excision) द्वारा पृथक् करने को इतना महत्व दिया जाता है। आपरेशन के दौरान अगो को परिघर्षण (abrasion) या अभिघात से बचाने की आवश्यकता भी इसीलिए होती है।

क्षत-संक्रमण—इसके कारण ऊतक का नाश होता है तथा फलस्वरूप विरोहण मे विलम्ब होता है।

आगतुक शल्य की उपस्थिति—आगतुक शल्य बाहर से तो प्रवेश पा ही सकते है, इसके अतिरिक्त स्वय ऊतक मे भी विकसित हो सकते है, जैसे कि पित्ताश्मरी (gall stones) और मूत्राश्मरी (urinary stones)। यदि शरीर के स्राव (secretions) या विसर्जित द्रव (discharges) सामान्य पथ से विमुख होकर समीपवर्ती ऊतको मे प्रविष्ट हो जाए, जैसे कि मूत्र-परिस्राव (extravasation of urine) मे, तो वे भी आगतुक शल्य की भाति व्यवहार करते हे। रक्त अथवा लसीका का असामान्य सग्रह और निर्जीव ऊतक का विशाल पिंड, उदाहरणत विविक्ताश (sequestrum), भी आगतुक शल्य का ही कार्य करते है। आगतुक शल्य के प्रति ऊतक की प्रतिक्रिया निम्न घटको पर निर्भर होती है—आगतुक शल्य की भौतिक और रासायनिक प्रकृति, उसके समीपवर्ती ऊतक का प्रकार तथा सक्रमण की उपस्थिति या अनुपस्थिति। यदि आगतुक शल्य के रहते क्षत मे सक्रमण सस्थापित (establish) हो जाए तो विसर्जन प्रचुर मात्रा मे होने लगता है तथा जब तक आगतुक शल्य बाहर न निकल जाए, विरोहण की सम्भावना नही रहती।

स्थानीय रक्त सम्भरण (Local blood supply)—कणिकाऊतक के निर्माण तथा क्षत के समुचित विरोहण के लिए रक्त सम्भरण का पर्याप्त मात्रा मे होना नितान्त आवश्यक होता है। रक्तसम्भरण मे व्यतिकरण (interference) का कारण आरम्भिक अभिघात (initial trauma), रक्तवाहिका को क्षति पहुचना या स्कार-ऊतक द्वारा दबाव पडना हो सकता है। शोफ (oedemo), सकुलता (congestion), रक्तस्राव (haemorrhage) तथा सक्रमण (infection) के कारण जो सूजन उत्पन्न होती है वह भी रक्तसम्भरण मे बाधा डाल सकती हे। अपर्याप्त रक्तसम्भरण के कारण विरोहण की गति मद पड जाती है। फलस्वरूप कणिकाऊतक विलम्ब से निर्मित होता है, ऊतक फीका पड जाता है और घाव पर उपकला बहुत धीमी गति से आच्छादित होती हे। यदि घाव को खोल कर देखा जाए तो इसमे फीके रग का मृदु, मदवर्धी कणिकाऊतक दृष्टिगोचर होता है। ऐसे घाव को ढकने वाली त्वचा

शीघ्र ही निर्जीव हो जाती है तथा निरोप (graft) भी [illegible] न्यून रक्तसम्भरण वाले ऊतकों पर प्लास्टिक [illegible] (plastic surgery) नहीं करना चाहिए। यदि क्षत [illegible] ऊतक के उच्छेदन (excision) से रक्तसम्भरण युक्त [illegible] सम्भरण-युक्त ऊतकों का समसन्धान (apposition) [illegible] यदि त्रुटिपूर्ण रक्तसम्भरण [illegible] हो तो उसका उच्छेदन करके [illegible] निरोप (graft) [illegible] देना चाहिए। अपर्याप्त रक्तसम्भरण [illegible] (ischaemia) के कारण ऊतकों में तीव्र वेदना [illegible]।

शोफ और लसीका-अवरोध (Oedema & lymphatic obstruction)—शिरा-प्रवाह अथवा लसीका प्रवाह [illegible] हो जाता है, जो विरोहण को रोकता और [illegible] है। इस शोफ के कारण ऊतक फूल जाते हैं [illegible] कम हो जाता है, घाव में विगलन बढ़ जाता है [illegible] (vesicles) प्रकट हो जाते हैं। यदि ये [illegible] फूट जाएँ तो [illegible] हो जाते हैं। स्तम्भन (stasis) और शोफ के कारण [illegible] निर्माण को बढ़ावा मिलता है। इसका प्रारूपिक उदाहरण (typical example) टाँग के निचले तिहाई भाग में होने वाला अभिघात है, जो शरीर [illegible] सभी भागों के अभिघातों की अपेक्षा मंद गति से विरोहित होता है। चलने-फिरने वाले रोगियों की टाँगों के दीर्घकालीन व्रण शैया में विश्राम करने तथा टाँग को उन्नमित (elevate) रखने से शीघ्र ठीक हो जाते हैं, क्योंकि इस प्रकार संचरणहीनता घट जाती है।

रक्तस्राव—रक्तस्राव का प्रभाव विरोहण पर दो तरह पड़ता है—प्रथम, रक्त-आयतन (blood volume) कम हो जाने से अरक्तता (anaemia) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, और, द्वितीय, क्षत में स्थानीय रक्तस्राव के कारण विरोहण में बाधा पड़ती है। आदर्श रूप में रक्तस्राव की मात्रा ठीक इतनी होनी चाहिए कि थक्का (clot) क्षत के अंतराल को भर दे और उसके किनारों को आपस में चिपका दे। यदि अभिघात के कारण अथवा आपरेशन के समय अपर्याप्त स्तम्भन (haemostasis) से ऊतकों में रक्तसंग्रह हो जाय तो वह घाव के पार्श्वों को पृथक् रखता है और उन्हें परस्पर मिलने नहीं देता। इस रक्तसंग्रह (haemotoma) के कारण ऊतकों में तनाव बढ़ जाता है तथा फलस्वरूप वेदना, स्थानिक अरक्तता, परिगलन और विरोहण में विलम्ब हो

जाता है। रक्तसग्रह (haematoma) मे कीटाणुओ की तीव्र वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त उसमे रक्त सचरण न होने के कारण सर्वांगी एन्टीबायटिको (systemic antibiotics) की पहुच भी उस तक नही हो पाती। मद गति से अवशोषित होने वाले विशाल रक्त-सग्रहो को यदि शल्यकर्म द्वारा निकाला न जाए तो कभी-कभी वे एक कठोर भित्तियुक्त, द्रवपूर्ण गुहिका (cavity) का रूप ले लेते हैं।

विशेष ऊतको का विरोहण

उपकला मे पुनर्जनन की अपार शक्ति होती है। श्लेष्मलकला (mucous membranes) और पृष्ठीय (superficial) त्वचा के क्षत अति शीघ्र विरोहित हो जाते है तथा उनमे कोशिकाओ की लगभग पूर्ण क्षतिपूर्ति हो जाती है। किन्तु त्वचा के वे घाव उदाहरणत दाहक्षत (burn wounds), जिनमे रोम कूप (hair follicles) और स्वेद ग्रथिया (sweat glands) नष्ट हो जाती है, कोशिकाओ के पुनर्जनन द्वारा नही बल्कि स्कार ऊतक द्वारा विरोहित होते है। ग्रन्थि उपकला मे कोशिकाओ का पर्याप्त पुनर्जनन होता है, किन्तु विशेषीकृत अवयवो का पुनर्निर्माण कठिन होता है। उदाहरणत वृक्क नलिका (reval tubules) की उपकला तो सहज ही पुनर्जनित हो जाती है, किन्तु सम्पूर्ण नलिकाओ या केशिका-स्तवको (glomeruli) का पुन स्थापन (replacement) नही हो पाता।

पेशिया—सभी प्रकार का पेशी ऊतक (रेखित, अरेखित, हृत्पेशी) केवल स्कार (scar) ऊतक द्वारा ही विरोहित होता है, पुनर्जनन द्वारा नही।

अस्थिया—इनमे विरोहण की पर्याप्त क्षमता होती है तथा यह क्रिया पुनर्जनन द्वारा होती है।

सयोजी ऊतक—इसका पुनर्जनन शीघ्र होता है, किन्तु उपास्थि (cartilage) का पुनर्जनन अपेक्षाकृत कम होता है, और वह भी केवल पर्युपास्थि (perichondrium) के क्षेत्र मे।

तन्त्रिका ऊतक (Nervous tissue)—यदि परिसरीय तन्त्रिका (peripheral nereve) के विभक्त छोर परस्पर सटा दिए जाए तो तन्त्रिका ततु शीघ्र पुनर्जनित हो जाते है। परन्तु केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र के न्यूरोनो (nevrones) मे पुनर्जनन की क्षमता नही होती। तन्त्रिका तत्र मे विरोहण तन्त्रिकाबध कोशिकाओ (neuroglial cells) के प्रफलन और स्कार-निर्माण द्वारा होता है।

सीरमीय कलाए (Serous membranes)—पर्युदया, पाचन तत्र

श्लेष्मला आदि कलाओं में विरोहण की महान शक्ति होती है। पाचन नाल श्लेष्मल कला (mucous membrane) के दो सिरानों को जैसे ही टांकों द्वारा परस्पर जोड़ा जाता है, वहां निस्राव उत्पन्न होकर उनकी संधि को सीलबन्द कर देता है। इस निस्राव में कणिकऊतक विकसित होने लगता है, इस प्रकार विरोहण सम्पूर्ण हो जाता है।

शल्यसम्बन्धी संक्रमण

संक्रामक रोगों का कारण विविध सूक्ष्मजीव होते हैं जो ऊतकों में प्रविष्ट होकर अपनी चयापचय क्रियाएं सम्पन्न करते हैं तथा वर्धित होते हैं। जीवाणुओं का एक अपेक्षाकृत संक्षिप्त वर्ग ही शल्य-संक्रमण उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। विभिन्न संक्रमणों की प्रकृति जीवाणु-विशेष की किस्म और उसके द्वारा उत्पन्न पदार्थों पर निर्भर होती है। अन्य अनेक कारक, उदाहरणतः परपोषी (host) की संक्रमण के प्रति अनुक्रिया (response), भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं। यह अनुक्रिया ही परपोषी के प्रतिरोध (resistance) अथवा सुग्राह्यता (susceptibility) को निर्धारित करती है। संक्रमण के स्थान और शरीर की प्रतिरोध शक्ति का भी रोग की अभिव्यक्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

शरीर के कुछ भागों, उदाहरणतः पाचनतंत्र, त्वचा व श्लेष्मल कलाओं में कतिपय जीवाणु सामान्यतः बिना कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न किए भी रहते हैं। इनमें कुछ शरीर के लिए हितकारी भी होते हैं, उदाहरणतः आंतों में पाए जाने वाले विटामिन K का निर्माण करने वाले जीवाणु। परन्तु ये ही जीवाणु अपने सामान्य स्थान को छोड़ कर अन्य ऊतकों में पहुंच जाने पर रोगोत्पादक सिद्ध हो सकते हैं।

संक्रमण के लिए आवश्यक है कि विकृतिजनक (pathogenic) सूक्ष्मजीव न केवल शरीर के ऊतकों में प्रविष्ट हों, बल्कि संस्थापित (establish) और बहुगुणित भी हों। विकृतिजनक जीवाणु निम्नलिखित में से किसी एक रीति द्वारा रोग उत्पन्न कर सकते हैं—(1) जीवविषों (Toxins) या एन्ज़ाइमों (Enzymes) की उत्पत्ति—उदाहरणतः टिटेनस (Tetanus) या डिफ्थीरिया (Diphtheria)। इन जीवविषों का निर्माण जीवाणु के शरीर के अन्दर या बाहर, दोनों स्थानों पर हो सकता है। (2) जीवाणुओं के विकास व बहुगुणन के कारण संक्रमण-स्थल पर होने वाला ऊतक-विनाश, यथा स्टेफाइलोकोकस विद्रधि (staphylococcal abscess)। (3)जीवविषों तथा स्थानीय विनाश

(local damage) द्वारा सयुक्त हानि, यथा गैस कोथ (gas gangrene)। (4) रक्तधारा (blood stream) पर सक्रमण का तीव्र प्रभाव, यथा सिफिलिस या टाइफायड । कतिपय सूक्ष्मजीव केवल विशेष प्रकार के ऊतको की ओर ही प्रवृत्त होते हैं ।

शरीर की सुरक्षा के साधन

सक्रमण के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया सक्रामक जीवाणु की प्रकृति और शरीर के सुरक्षा के साधनो पर निर्भर करती है। सक्रमण होने से पूर्व आवश्यक है कि जीवाणु, ऊतको की प्राकृतिक विरोध शक्ति को पराजित करे । इस प्राकृतिक विरोध मे त्वचा का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जीवाणु त्वचा के अक्षत (intact) श्रगी स्तर (horny layer) को पार नही कर सकते । किन्तु कुछ जीवाणु (यथा स्टेफाइलोकोकस) स्वेद ग्रथियो और त्वगवसा ग्रथियो (sebaceous glands) की नलियो (ducts) मे विकसित और बहुगुणित होने की क्षमता रखते है । त्वचा पर खरोच लगने या अन्य क्षति पहुँचने से जीवाणुओ को शरीर मे प्रविष्ट होने का अवसर मिल जाता है । श्वसन तत्र का सक्रमण प्राय. नासा या नासाग्रसनी (nasopharynx) के मार्ग से होता है । मुख, नासा और नासाग्रसनी की अक्षत श्लेष्मल कला तथा उसके द्वारा उत्पन्न स्रावो से भी सक्रमण मे बाधा पडती है। श्लेष्म (mucous) मे लाइसोजाइम (lysozyme), एक जीवाणुसलायी (bacterialytic) प्रकिण्व, और प्रतिपिण्डो (antibodies) की उपस्थिति भी सक्रमण मे बाधक होती है । पाचनतत्र मे लार, जठर रस (gastric juice) और अन्य स्राव सक्रमण का विरोध करते है, यद्यपि कुछ विशेष प्रकार के कीटाणु न्यूनाधिक समय तक इन रसो मे जीवित रह सकते है । पाचनतत्र के विभिन्न भागो मे भिन्न भिन्न प्रकार के जीवाणु पाए जाते है । यदि इस तत्र की शरीरक्रिया मे किसी प्रकार की अपसामान्यता (abnormality) आ जाए तो विकृतिजनक कीटाणुओ को सस्थापित होने का अवसर मिल जाता है । अभ्यन्तरागो (viscera) की श्लेष्मलकला मे सक्रमण को रोकने मे त्वचा के समान क्षमता नही होती । इस कारण श्लेष्मल कला पर अपघर्षण (abrasion), रक्ताधिक्य (hyperaemia) अथवा जीवाणुजन्य पदार्थों का प्रभाव पडने पर अध श्लेष्म (submucous) ऊतको तक सक्रमण सरलतापूर्वक पहुँच जाता है ।

प्राय त्वचा की राह सक्रमण इसकी सतह का सातत्य (continuity) भग होने का कारण होता है, जबकि अध श्लेष्म ऊतक का सक्रमण जीवाणु-उत्पादो

(bacterial products) द्वारा श्लेष्मल कला के अपरदन (erosion) के कारण होता है।

जीवाणुभक्षण और स्थानीकरण (Phagocytosis & localization)

प्राथमिक बाधाओ को पार करके शरीर मे पहुँचने पर वहा जीवाणुओ का सामना अन्य रक्षाके साधनो—जीवाणुभक्षण और प्राकृतिक प्रतिपिण्डो (natural antibodies)—से होता है। शरीर हनिकारक पदार्थो से मुक्ति पाने के लिए जीवाणुभक्षण का सहारा लेता है तथा इस प्रकार बहुत से जीवाणुओ को नष्ट कर देता है। परन्तु फिर भी कुछ जीवाणु बच जाते है और वे गभीर ऊतको मे प्रविष्ट होकर बहुगुणित होने लगते है। उनका भविष्य एक ओर उनकी सख्या और उग्रता (virulence) तथा दूसरी ओर जीवाणुभक्षण, और रक्त व ऊतक द्रवो (tissue fluids) की परपोषी प्रतिक्रिया (host reaction) पर निर्भर होता है।

शरीर जिन जीवाणुओ का विनाश नही कर पाता वे बहुगुणित होने लगते है तथा उनके द्वारा उत्पन्न जीवविष (toxins) और अपशिष्ट उत्पाद (waste products) एकत्रित होते रहते है। इनके कारण ऊतको का विनाश होने की सम्भावना रहती है। अत सुरक्षात्मक दृष्टि से शरीर प्रभावित क्षेत्र को स्थानीकृत (localize)करने का प्रयास करता है। इस प्रयास का प्रथम क्लिनिकल चिह्न स्थानीय शोथ (local inflammation) की उत्पत्ति है। शोथ क्रिया के फलस्वरूप बहुरूपकेन्द्रकी कोशिकाए (polymorphonuclear cells) तथा कुछ समय बाद एककेन्द्रकी कोशिकाए, शोथ क्षेत्र की ओर अग्रसर होने लगती है। यदि फिर भी जीवाणुओ का पूरी तरह नाश न हो पाए तो वे लसीका व रक्तधारा मे प्रवेश पाकर व्यापक सक्रमण (generalised infection) उत्पन्न कर सकते हे। इस प्रकार ये जीवाणु प्रारम्भिक स्थल से दूरस्थ भागो मे सस्थापित हो सकते है। जीवाणु-उत्पादो (bacterial products) के प्रभाव से रक्तकेशिकाओ मे आतचन (clotting) भी हो सकता है तथा उसके थक्के मे जीवाणुओ का वर्द्धन हो सकता है। इस आतच का एक अश विलग होकर रक्तप्रवाह के माध्यम से यकृत या फेफडो मे भी पहुच सकता है। यदि ये जीवाणु अथवा जीवाणुयुक्त आतच फेफडो को पार कर जाए तो पुनः दैहिक परिसचरण (systemic circulation) मे प्रवेश पा कर अन्य अगो को सक्रमित कर सकते है।

प्रतिपिंड (Antibodies)

सीरम मे विद्यमान प्रतिपिंडो के कारण शरीर की सुरक्षा-क्षमता अत्यधिक बढ जाती है। विश्वास किया जाता है कि ये प्रतिपिंड सीरम ग्लोबुलिन (serum globulin) से सम्बद्ध होते है। प्रतिपिंड निम्न प्रकार के हो सकते हैं (1) प्राकृतिक या अविशिष्ट (nonspecific) प्रतिपिंड, जो रक्त मे स्वाभाविक रूपसे विद्यमान होते है। ये जीवाणुभक्षण (phogocytosis), समूहन (agglutinaion) तथा सलयन (lysis) के प्रति जीवाणुओ की सुग्राह्यता (susceptiblity) मे वृद्धि करते है, (2) प्रतिजीवविष (antitoxins), जिनका निर्माण जीवविषोत्पादक जीवाणुओं द्वारा अनुक्लिनिल (subclinical) सक्रमण के कारण होता है—यदि रक्त मे ऐसे प्रतिजीवविषो की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो तो शरीर मे रोगो के प्रति विशिष्ट रोगक्षमता (specific immunity) उत्पन्न हो सकती है, (3) ऐसे प्रतिपिंड, जिनका निर्माण विशिष्टि उद्दीपन (specific stimulus) के फलस्वरूप विषज व जीवाणुजन्य पदार्थो को निष्प्रभावित या निष्कासित करने के उद्देश्य से होता है। इसका सुरक्षात्मक महत्त्व अत्यधिक होता है। इन्हे विशिष्ट (specific) या रोगक्षम (immune) प्रतिपिंड कहते है।

अभी हाल तक, जब कि रसायन चिकित्सा और एटीबायटिक चिकित्सा का युग आरम्भ नही हुआ था, सक्रमण की चिकित्सा का एक महत्त्वपूर्ण साधन शरीर मे प्रतिपिंडो को उत्पन्न करना या बाहर से प्रविष्ट करना था। आधुनिक काल मे भी टिटेनस तथा गैस गेग्रीन आदि रोगो के उपचार मे प्रति-जीवविषो (antitoxins) व प्रतिजीवाणु सीरमो (antibacterial sera) का बहुत महत्व है।

विक्षति (lesion) का वैकृत-स्वरूप (pathological picture) और सक्रमण का अन्तिम परिणाम अन्ततोगत्वा परपोषी (host) व परजीवी (parasite) के मध्य होने वाली प्रतिक्रिया पर निर्भर होता है।

महत्वपूर्ण शल्यसम्बन्धी सक्रमण उत्पन्न करने वाले जीवाणु दो प्रकार के हो सकते है—वातापेक्षी (aerobic) व वातनिरपेक्षी (anaerobic)।

वातापेक्षी जीवाणु

ग्राम-धन कोकस (Gram positive cocci)

स्ट्रेप्टोकोकस (strepto coccus)—ये ग्राम-घनात्मक होते है तथा छोटी-बडी शृँखलाओ (chains) के रूप मे पाए जाते है। लोहिताणुओ (erythro-

cytes) पर होने वाले प्रभाव के अनुसार उन्हे रक्तसलायी (haemolytic) अथवा अरक्तसलायी (nonhaemolytic) कहा जाता है। प्राय' रक्तसलायी जीवाणु, अरक्तसलायी जीवाणुओ की अपेक्षा अधिक उग्र होते है। व्यक्तियो के गले मे सामान्यतया भी कुछ रक्तसलायी स्ट्रेप्टोकोकस पाए जाते है। बोलने या खासते समय नाक-मुह से निकलने वाले बिन्दुओ (droplets), गन्दे हाथो तथा रूमालो के माध्यम से इनका सचरण (transmission) होता है। ये प्राय आकस्मिक क्षतो (accidental wounds) की राह शरीर मे प्रवेश पाते है तथा ऊतिशोथ (cellulitis), लसीकापर्व शोथ (lymphadenitis), लसीका-वाहिनी शोथ (lymphangitis) और रक्तपूतिता (septicaemia) आदि को जन्म देते है। इसके अतिरिक्त इनके कारण तीव्र पर्युदया शोथ (acute peritonitis), टासिल शोथ (tonsillitis), अत.पूयता (empyema), निमोनिया (pneumonia), फुप्फुस विद्रधि (lung alscess) और अस्थिमज्जा शोथ (osteomyelitis) आदि रोग भी हो सकते है। बच्चोमे ये प्राय सधिशोथ (arthritis), विशेषत नितम्ब सन्धि शोथ, उत्पन्न करते है। रक्तसलायी जीवाणुओ के सक्रमण के साथ प्राय तीव्र दैहिक लक्षण (severe constitutional symptoms) भी पाए जाते है। इन जीवाणुओ के कई विभेद (strains) स्ट्रेप्टोकाइनेज (streptokinase) प्रोटीनेज (proteinase), हायलुरोनिडेज (hyaluronidase) आदि इन्जाइम भी उत्पन्न करते है तथा इस प्रकार सक्रमण के स्थानीकरण मे वाधा डालते है।

अरक्तसलायी स्ट्रेप्टोकोकस मुख व नासा-मार्ग मे सामान्य रूप मे प्राय पाए जाते है। ये ग्रहणी (duodenum) मे भी वहुधा पाए जाते है तथा इससे सिद्ध होता है कि ये जठररस द्वारा नष्ट नही होते। ज्यो-ज्यो हम ऊपर से नीचे की ओर जाए, पाचनतत्र मे इन जीवाणुओ की सख्या वढती जाती है। ग्रहणी व उण्डुक का छिद्र (perforation) होने पर जो पर्युदया निस्राव (peritoneal exudate) होता है, उसमे भी ये पाए जाते है। कुछ लोगो का विचार है कि पैप्सी व्रण (peptic ulcer), पित्ताश्मरता (cholelithiasis) और पित्ताशयशोथ (cholecystitis) मे भी इनका हाथ रहता है। इन जीवाणुओ के कारण दन्त विद्रधि, कर्णमूल शोथ (mastoiditis), अत पूयता, तीव्र व चिरकारी अस्थिमज्जा शोथ, ऊतिशोथ, क्षत-सक्रमण, अनुतीव्र जीवाणु अन्तर्हृदशोथ (subacute bacterial endocarditis) आदि रोग भी हो सकते हे। इसके अतिरिक्त इनके कारण पूतिजीवरक्तता (septicaemia) और पूयरक्तता (pyaemia) भी हो सकती है, जिसके फलस्वरूप यकृत व अन्य अगो

मे विद्रधि उत्पन्न हो सकती है ।

स्टेफिलोकोकस (Staphylococcus)—ये झुण्ड रूप मे विकसित होने वाले गोल, ग्राम-धन जीव होते हैं तथा सभी साधारण सवर्धन माध्यमो (cultural media) मे सरलतापूर्वक विकसित हो सकते है । ये विस्तृत रूप से पाए जाते है तथा तापन (heating) और शुष्कन (drying) का पर्याप्त प्रतिरोध करने की क्षमता रखते है । इस कारण स्टेफिलोकोकस सक्रमण बहुलता से पाया जाता है । परन्तु यह स्ट्रेप्टोकोकस सक्रमण से कम गम्भीर होता है । स्टेफिलोकोकस, जो सक्रिय जीवविष और प्रकिण्व उत्पन्न करते है, वेही रोग के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

स्टेफिलोकोकस पायोजेनीज (Staphylococcus pyogenes) से निम्नलिखित पदार्थ उत्पन्न होते हैं (1) एक विलेय (soluble), विस्यन्दी (filtrable), ताप परिवर्ती (thermolabile), बाह्य जीवविष (exotoxin) जिसके कारण ऊतक परिगलन उत्पन्न होता है, और (2) कुछ प्रकिण्व, यथा फाब्रिनोलाइसिन (fibrinolyin), कोएगुलेज (coagulase) व हायलुरोनिडेज (hyaluronidase) । कोएगुलेज रक्तप्लाज्मा का पृथक्करण करता है । हायलुरोनिडेज नामक प्रकिण्व सयोजी ऊतक की पारगम्यता (permeability) को बढाता है और इस प्रकार सक्रमण के प्रसार मे सहायता देता है ।

स्टेफिलोकाकस-सक्रमण मे प्रचुरमात्रा मे हल्की पीली क्रीम के समान गाढी पूय पाई जाती है, जिसमे बहुरूपीकेन्द्रकी श्वेताणुओ की प्रधानता होती है ।

स्टेफिलोकोकसो को ठोस सवर्धन माध्यमो (solid cultural media) मे सवर्धित करने पर देखा गया है कि उनकी कालोनियो (colonies) मे कतिपय रजक (pigments) उत्पन्न हो जाते है । इन रजको के अनुसार ही इन जीवाणुओ को स्टेफ० आरियस (staph aureus) या स्टेफ० एलबस (staph albus) नाम दिया जाता है । स्टेफ० आरियस त्वचा, नासा-मार्ग तथा स्वेद ग्रथियो और त्वगवसा ग्रथियो की नलियो मे प्राय पाया जाता है । मुख व पाचन-तत्र मे यह कदाचित् ही मिलता है । इसके कारण होने वाले रोगो मे फोडे (boils), कारबकल (carbuncle), कर्णपूर्वग्रथि शोथ (parotitis), दत विद्रधि (dental abseess) निमोनिया और वक्षपूयता (empyema) है । इनके अतिरिक्त बच्चो मे तीव्र अस्थि-मज्जा शोथ (acute osteomyelitis) उत्पन्न करने मे इनका बहुत महत्व है, क्योकि ये अस्थि को विशेष रूप से सक्रमित करते है । स्टेफ० आरियस के कारण पूतिजीवरक्तता (septicaemia)

व पूयरक्तता (pyaemia) भी हो सकते है। इसके विपरीत स्टेफ० एल्बस के कारण प्राय साधारण सक्रमण (मुहासे, फोडा-फुसी) ही होता है। खुले घाव भी इससे सदूषित हो सकते हैं। परन्तु अस्थि मज्जा-शोथ, पूयरक्तता आदि गम्भीर रोग इसके कारण कदाचित् ही होते हैं।

न्यूमोकोकस (Pneumococcus)—ये ग्रामधन, अडाकार सूक्ष्मजीव होते है। ये प्राय जोडियो या छोटी शृखलाओ के रूप मे पाए जाते हैं। न्यूमोकोकस, सम्पुटयुक्त (capsulated) होते हैं। यह सम्पुट सहज ही देखा जा सकता है। रक्त-एगर (blood agar) पर इन्हे सुगमतापूर्वक सवर्धित किया जा सकता है। ये प्राय ऊपरी श्वसनमार्ग मे पाए जाते है। इनके कारण होने वाले रोगो मे निमोनिया, अन्त पूयता, हृदयावरण शोथ (pericarditis), पर्युदया शोथ (peritonitis), सन्धिशोथ, पूतिजीवरक्तता, पूयरक्तता आदि है। न्यूमोकोकस द्वारा उत्पन्न पूय मे फाइब्रिन की काफी मात्रा होती है तथा इसी कारण यह गाढी होती है।

ग्राम-ऋण गोलाणु (Gram negative coccu)—नाइसीरिया गौनोरा (Neisseria gonorrhae)—इसकी आकृति सेम के दीज के समान होती है तथा यह जुडवा रूप (pairs) मे पाया जाता है। प्रयोगशाला मे इसका सवर्धन कठिन होता है। यह सुजाक (gonorrhea) के लिए उत्तरदायी होता है, जिसमे मूत्रमार्ग से क्रीम के समान श्लेष्मल पूय (mucopurulent hus) का विसर्जन होता है।

ग्राम-धन जीवाणु (Gram positive bacteria)—

माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस (Mycobaeterium tuberculosis)—यह एक गतिहीन, सम्पुटरहित, पतला जीवाणु होता है। अभिरजन (staining) के समय अम्ल इन्हे वर्णहीन (decolourise) नही कर पाते तथा इसी कारण इन्हे अम्लरोधी जीवाणु (acid-fast bacilli) भी कहा जाता है। ये शरीर के किसी भी अग या ऊतक मे सक्रमण (यक्ष्मा) उत्पन्न कर सकते हैं। यह रोग पश्चिमी देशो मे बहुत कम हो गया है, क्योकि वे देश सामाजिक व आर्थिक रूप से काफी उन्नत हैं। परन्तु भारत आदि विकासशील देशो मे अब भी तपेदिक एक महान् समस्या है। शरीर मे इसका सक्रमण प्राय श्वसन अथवा पाचनतत्र की राह होता है। अत. ग्रीवा व आन्त्रयोजनी (mesentery) के लसीकापर्वों (lymph nodes) मे तपेदिक के कीटाणु प्राय. पाए जाते हैं।

फुप्फुसीय यक्ष्मा (pulmonary tuberculosis) एक अत्यन्त प्रचलित रोग

है। ऐसे गम्भीर रोगियो के लिए अब औषधियो के अतिरिक्त शल्य-साधनो का प्रयोग भी किया जा सकता है। पाचनतन्त्र मे सर्वाधिक यक्ष्मा-ग्रस्त होने वाला भाग शेषान्त्रअन्धान्त्र क्षेत्र (ıleo-caecal regıon) है। इसके अतिरिक्त जनन-मूत्र तन्त्र (genıto-urınary system), हड्डियो, जोडो और सीरमीय कलाओ (फुप्फुसावरण, हृदयावरण, पर्यदया आदि) पर भी तपेदिक का प्रभाव होता है।

बैसिलस एन्थेसिस (**Bacillus anthracıs**)—यह एक बीजाणुग्राहा (spore bearıng) जीवाणु है जो ग्रामधन, सम्पुटयुक्त व गतिहीन होता है। यह प्राय लम्बी शृखलाओ के रूप मे पाया जाता है। यह विभिन्न प्रकार का एन्थ्क्स (anthrax) रोग उत्पन्न करता है।

कोर्नीबैक्टीरियम डिप्थरी (**Corynebacterıum dıphtherıae**)—थे एक प्रकार के स्पोरग्राही, गदाकार (club shaped) जीवाणु होते है जो प्राय पक्तियो के रूप मे पाए जाते है। ये वातापेक्षी होते है तथा साधारण माध्यमो मे सरलतापूर्वक सवर्धन-योग्य होते है। इनसे एक प्रचण्ड जीवविष उत्पन्न होता है तथा यही रोग के लक्षण उत्पन्न करता है। जो घाव और चिरजीवी व्रण बहुत समय तक विरोहित नही होते उनमे भी कभी-कभी ये जीवाणु पाए जाते है।

कोर्नीबैक्टीरियम वश (genus) के ही कुछ अन्य ऐसे ग्राम-धन जीवाणु भी होते है जिनकी आकृति सेम के समान न होकर दण्डाणु (bacıllus) या गोलाणु (coccı) से मिलती-जुलती होती है। इन्हे डिफ्थीरोइड (dıphtheroıd) कहते हैं। ये प्राय आन्त्रक्षेत्र (ıntestınal tract) मे पाए जाते है। वायु मे तथा त्वचा पर भी ये पाए जा सकते है। ये बहुधा स्वच्छ शल्य-घावो मे गौण सक्रमण के लिए उत्तरदायी होते है।

बैसिलस सटिलिस (**Bacıllus subtılıs**)—यह एक गौण-विकृतिजनक (mıldly pathogenıc), बीजाणु वाही जीवाणु है। आपरेशन शाला (Operatıon theatre) मे निर्जीवाणुकरण (sterılısatıon) की सफलता की जाच इस जीवाणु को सवर्धित करके की जा सकती है। यह उसी प्रकार का सक्रमण उत्पन्न करता है जैसा कि डिफ्थीरायड।

ग्राम-ऋण दण्डाणु (Gram negatıve bacıllı)

इनका महत्व पिछले कुछ वर्षो मे अधिक हो गया है क्योकि इनमे से कई पेनिसिलिनेज (penıcıllınase) नामक प्रकिण्व उत्पन्न करते हैं तथा इस

कारण पेनिसिलिन के प्रति संवेदनशील नही होते ।

एशेरिशिया कोलाइ (Escherichia coli)—ये कशाभिक-युक्त (flagellated), ग्रामऋण दण्डाणु होते है जिनका संवर्धन साधारण माध्यमों मे सरलतापूर्वक किया जा सकता है । ये मनुष्यों व अन्य जीवों के पाचनतंत्र मे बहुतायत से पाए जाते है परन्तु वहा किसी प्रकार की विकृति नही उत्पन्न करते । किन्तु यदि ये अन्य ऊतकों मे प्रविष्ट हो जाए तो गम्भीर रोग उत्पन्न कर देते है, यहा तक कि मृत्यु का कारण भी बन सकते है । पाचनतन्त्र की श्लैष्मिक कला मे कोई साधारण क्षति अथवा अपघर्षण होने पर ये वहां प्रविष्ट हो जाते है, और इस प्रकार यकृत तक पहुच जाते है । वहा से जब ये पित्त मे निष्कासित होते है तो पित्ताशय को संक्रमित कर देते है । इसके अतिरिक्त पित्तनलियों के सहारे चढते हुए ये जीवाणु पाचनक्षेत्र से पित्ताशय तक सीधे भी पहुंच सकते है । स्त्रियो, विशेषत शिशुओ, मे योनि तथा मूत्रमार्ग के संक्रमण के कारण ये जीवाणु विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन अगो के संदूषित (contaminated) होने की सम्भावना सदा बनी रहती है क्योंकि ये गुदाद्वार के निकट स्थित होते है । इसके अतिरिक्त कैथीटर प्रयोग (catheterization) करने से भी ये जीवाणु मूत्राशय तक पहुँच सकते है, क्योंकि इन अगो को भली प्रकार निर्जीवाणु (sterile) करना प्राय सम्भव नही होता ।

एश० कोलाइ द्वारा होनेवाले संक्रमणो का स्वरूप आमतौर पर स्थानीय (local) होता है तथा ये संक्रमण प्राय पाचनतन्त्र मे या उनसे सम्बद्ध अगों मे ही पाए जाते है । इनके आम उदाहरण मूत्राशयशोथ (cystitis), गोणिका-शोथ (pyelitis), गोणिकावृक्क शोथ (pyelonephritis), पर्युदया शोथ और पित्ताशय शोथ है । इन जीवाणुओ द्वारा उत्पन्न पूय प्राय दुर्गन्धयुक्त होती है ।

साल्मोनेला टाइफि (Salmonella typhi)—यह एक ग्राम-घन, गतिशील दण्डाणु है जिसके कारण टाइफायड ज्वर (मियादी बुखार, मोनीझरा) होता है । यहा यह इसलिए उल्लेखनीय है कि छोटी आत मे इसके कारण होने वाले व्रण (ulcers) कभी-कभी छिद्रित (perforate) हो सकते हैं तथा इस प्रकार शल्य-जटिलता (surgical complications) उत्पन्न कर सकते है । कभी-कभी इसके कारण पित्ताशय शोथ या चिरकारी अस्थि विद्रधि (chronic bone abscess) भी हो सकते है । संक्रमण की तीव्रावस्था (acute stage) मे अण्डशोथ (orchitis), अध्यण्ड शोथ (epididymitis) और बहिर्जविका का सपूय पर्यस्थिकला शोथ (suppurative periostitis) भी हो सकते हैं ।

स्यूडोमोनास पायोसायनियस (Pseudomonas pyocyaneus)—यह एक ग्रामऋण, प्राय गतिशील दण्डाणु (motile bacillus) होता है जो एक अत्यन्त विसरणशील (diffusible) हरा या हरा-नीला रजक (pigment) उत्पन्न करता है। यह प्राय चिरकारी सक्रमण-स्थलो मे द्वितीयक सदूषण (secondary contamination) के रूप मे पाया जाता है। इसके द्वारा उत्पन्न पूय का रग व गन्ध विशिष्ट होने के कारण घावो मे इसकी उपस्थिति सहज ही पहचानी जा सकती है। इसकी प्रतिरोधशक्ति (resistance) अत्यन्त प्रवल होती हे। कभी-कभी यह गभीर ऊतको (deep tissues) को भी सक्रमित कर सकता है। प्रकृति मे यह व्यापक रूप से मिलता है। यदा-कदा यह आतो मे भी पाया जाता है। यह जिन स्थलो को सक्रमित करता है उनमे मूत्रप्रदेश, मध्यकर्ण, दाह (burns) और घाव मुख्य है।

प्रोटियस वल्गेरिस (Proteus vulgaris)—यह जीवाणु प्राय पाचननाल (alimentary canal) से सम्बद्ध चिरकारी सक्रमणो तथा कोथकारी क्रियाओ (gangrenous processes) मे पाया जाता है। आमतौर पर यह द्वितीयक सदूपण के रूप मे मिलता है।

वातनिरपेक्षी जीवाणु (Anaerobic bacteria)—

इस श्रेणी मे पाँच जीवाणु ऐसे है जो सर्जन के लिए महत्त्वपूर्ण है। इनमे चार गैस कोथ (gas gangrene) वर्ग के है तथा पाचवा टिटेनस का दण्डाणु है। ये सव ग्राम-घन, अन्तस्थ-वीजाणुवाही (end-spore bearing) दण्डाणु है जो प्रचण्ड बहिर्जीवविप (exotoxin) उत्पन्न करते है। चूँकि ये सभी वीजाणुवाही है, इसके कारण इनके वश (genus) को क्लोस्ट्रिडियम (clostridium) की सज्ञा दी गई है।

क्लोस्ट्रिडियम वेल्शाइ (Clostridium welchii)—

गैस गेग्रीन उत्पन्न करने वाले जीवाणुओ मे यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह सभी मनुष्यो व पशुओ के पोपण नाल (alimentary canal) मे पाया जाता है। वीजाणु (spores) रूप मे यह चिरकाल तक उपजाऊ भूमि मे जीवित रह सकता है। इस कारण जो घाव धूल-मिट्टी के सपर्क मे आते है उनमे क्लोस्ट्रिडियम-सक्रमण की सम्भावना रहती है। ऐसा प्राय चोट-दुर्घटना मे लगनेवाले गहरे घावो मे होता है, विशेषतः जव उनमे कोई वाह्य द्रव्य प्रविष्ट हो जाते है। इसका प्ररूपी (typical) उदाहरण

गोली के घाव (gunshot wounds) है। युद्धक्षेत्र मे ऐसे घावो के कारण गैस गेग्रीन (गैस कोथ) होने की अत्यधिक सम्भावना होती है। यदा-कदा नागरिक जीवन मे भी यह रोग हो सकता है, उदाहरणत ऐसा विवृत अस्थि-भग जिसमे पेशियो को पर्याप्त क्षति पहुँची हो तथा जिस पर सडक या गली की धूल लग गई हो। क्लो० वेल्शाइ के सक्रमण के कारण शरीर मे गम्भीर विपाक्तता (severe toxaemia), तीव्र नाडी, उच्च ज्वर व अत्यधिक निर्वलता की स्थिति हो जाती है। पेशियो और ऊतक अवकाशो (tissue spaces) मे गैस उत्पन्न होने लगती है तथा इस कारण ऊतक फूल जाते है। सक्रमण के कारण पेशीऊतक का परिगलन होने लगता है तथा उसका रग ईट-लाल से बदल कर गहरा हरा और फिर काला पड जाता है। क्लो० नोवाइ (cl novii), क्लो० सेप्टिकम (cl septicum) तथा क्लो० सोर्डेलाइ (cl sordelli) नामक अन्य गैसकोथ-जीवाणु भी ऊतको पर ऐसा ही प्रभाव डालते है। ये प्राय क्लो० वेल्शाई के सग ही पाए जाते है। विशिष्ट सवर्धन गुणो (cultural characteristics) के आधार पर इनकी पहचान की जा सकती है।

क्लोस्ट्रिडियम जीवाणु ऊतको मे परिगलन उत्पन्न करते है तथा श्वेताणुओ पर विनाशकारी प्रभाव डालते है। इन दोनो कारणो से शरीर के स्थानीय सुरक्षा-साधनो मे बाधा पडती है। गैस गेंग्रीन मे पाए जाने वाले सर्वांगी (systemic) विषज (toxic) लक्षण इन जीवाणुओ द्वारा निर्मित प्रचण्ड वहिर्जीवविष के कारण होते है, परन्तु सम्भव है कि ये विषैले पदार्थ स्वय परिगलित पेशी ऊतक से ही निकलते हो।

क्लो० टिटेनाइ (cl tetani)—यह एक ग्राम-धन सूक्ष्म जीव है जिसके बीजाणु अन्तस्थ (end spores) होते है। यह मिट्टी मे बहुधा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मनुष्य व घोडो के मल मे भी यह विद्यमान होता है। प्राय घावो के खादयुक्त मिट्टी के ससर्ग मे आने से यह संक्रमण होता है।

एक्टिनोमाइकोसिस बोविस (Actinomycosis bovis)—

यह एक कवकरूपी (fungus like) ग्राम-धन, गतिहीन तन्तु-समान शाखायुक्त (branched) सूक्ष्मजीव होता है। इसकी प्रकृति अवायुजीवी (anaerobic) अथवा अल्पवायुजीवी होती है। यह बीजाणु (spore) रूप मे नही पाया जाता। यह घावो मे हल्के पीले रग के दाने उत्पन्न करता है जिन्हे उनके स्वरूप के कारण 'गन्धक कण' (sulphur granules) कहा जाता है।

ये गन्धककण सूक्ष्मदर्शी (microscope) मे तन्तुओ के एक उलझे हुए गुच्छे के समान दिखाई पडते है तथा इन तन्तुओ के छोर गदाकार (cluss shaped) रूप मे फूले हुए होते है। विशिष्ट आकृति के कारण ही इस सूक्ष्मजीव को किरण कवक (ray fungus) कहा जाता है।

अल्पवातरागी (Microaerophilic)—इस वर्ग मे रक्तलायी व अरक्तलायी स्ट्रेप्टोकाकस सम्मिलित है। रक्तलायी स्ट्रेप्टोकाकस प्राय उदर भित्ति (abdominal wall) के चिरकारी, अकोथयुक्त (nongangrenous) घावो मे मिलते हैं। प्लूरा (pleura) या पर्युदया (peritoneum) मे विद्यमान सक्रमण के उपचारार्थ किए गए निकास (drainage) के पश्चात् वक्ष भित्ति (chert wall) या उदर भित्ति मे हो जाने वाले घावो के मूल मे भी अरक्तलायी स्ट्रेप्टोकोकस पाए जा सकते है।

सक्रमणो की चिकित्सा (देखिए सारणी)

सक्रमण की उचित चिकित्सा कितनी हो शताब्दियो से निरन्तर एक जटिल समस्या रही है। इस दिशा मे पहला कदम सन् 1894 के लगभग प्रतिजवविषो का निर्माण तथा प्रयोग था। तभी से प्रतिजीवविष (antitoxins) व प्रतिसीरम (antisera) चिकित्सा के युग का सूत्रपात हुआ। इसके पश्चात् दूसरा कदम 1910 मे एर्हलिक द्वारा यौगिक 606 (सल्वार्सन, Salvarsan) की खोज थी। यह तथा इसने सम्बद्ध यौगिक लगभग 35 वर्ष तक आतशक की चिकित्सा के लिए व्यापकतापूर्वक प्रयुक्त किए गए। परन्तु 1935 मे पहले किसी को यह सम्भावना नही थी कि कभी औषधियो के सर्वांगी अनुप्रयोग (systemic administration) द्वारा भी जीवाणु-सक्रमण को नियन्त्रित किया जा सकेगा।

सल्फोनेमाइड

1935 मे डोमेक (Domagk) द्वारा प्रोन्टोसिल की खोज से सक्रमण-चिकित्सा के क्षेत्र मे एक महान क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। स्ट्रेप्टोकोकासी सक्रमणो की रोकथाम मे यह औषधि अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई। अन्वेषणो के फलस्वरूप विदित हुआ कि इसकी सक्रियता इसमे निहित सल्फेनिलेमाइड (sulfanilamide) नामक अश के कारण है। अत इसी को आधार मानकर वैज्ञानिको ने अनेक ऐसी नई औषधियो का निर्माण किया जिनकी क्षमता अधिक किन्तु विषैलापन (toxicity) कम था। इनमे सल्फापिरिडीन, सल्फाथायज़ोल, सल्फाडायजीन व सल्फामेराजीन प्रमुख है। सल्फेनिलेमाइड से व्युत्पन्न (derived)

इन सभी यौगिकों को सल्फोनेमाइड नामक वर्गीय संज्ञा (generic name) दी गई। सल्फोनेमाइड औषधिया जिन जीवाणुओं पर विशेष रूप से प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं उनमे रक्तलायी स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलोकोकस, न्यूमोकोकस, मेनिन्जोकोकस, गोनोकोकस, क्लो० वेल्शाइ, बैसिलस एन्थ्रेसिस, को० डिफ्थिरी, हीमोफिलस डुक्रेयि (Hemophilus ducreyi), एक्टिनोमाइसिज, डोनोवेनिया ग्रेन्युलोमेटिस (Donovania granulomatis) तथा लिम्फोग्रेन्युलोमा (lymphogranuloma) का कारक-जीव (causative organism) है। सल्फोनेमाइड औषधियो की उपयोगिता इस कारण और भी अधिक है कि इनका मुखीय सेवन किया जा सकता है। इनका प्रयोग विशेषत मूत्रतन्त्र के संक्रमणो, स्ट्रेप्टोकोकसी संक्रमणो तथा लिम्फोग्रेन्युलोमा और शैन्क्रायड (chancroid) रोगो की चिकित्सा के लिए किया जाता है।

अत्यन्त उपयोगी होते हुए भी सर्जिकल संक्रमणो की दृष्टि से सल्फा औषधियो मे कतिपय कमिया है। उदाहरणत यदि घाव मे पूय या मलबा (debris) विद्यमान हो तो सल्फा औषधियो का प्रभाव कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई सूक्ष्मजीव या तो प्राकृतिक रूप मे ही इनके प्रतिरोध मे समर्थ होते है या शीघ्र ही ऐसी क्षमता उपार्जित कर लेते है (acquired resistance)। सल्फा औषधियो के प्रति उपार्जित प्रतिरोध स्टेफ० आरियस मे विशेष रूप मे पाया जाता है, जो प्राय. सर्जिकल संक्रमणो का कारक होता है :

सारणी

सूक्ष्मजीव	प्रधान विक्षतिया (Major lesions)	सल्फो-नेमा-इड	पेनि-सि-लिन	स्ट्रेप्टो-माइ-सिन	टेट्रा साइ-क्लिन	टिप्पणी
स्ट्रेप्टोकोकस						
रक्तलायी	सेलुलाइटिस, प्रसूति-पूतिता (puerperal sepsis), पूतिजीव-रक्तता					

सूक्ष्मजीव	प्रधान विक्षतिया (Major lesions)	सल्फोनेमाइड	पेनिसिलिन	स्ट्रेप्टोमाइसिन	टेट्रासाइक्लिन	टिप्पणी
अरक्तलायी	अनुतीव्र जीवाणुज अन्तर्हृद-शोथ (subacute bacterial endocarditis)					
अवायुजीवी	विभिन्न सक्रमण					
स्टेफाइलोकोकस	पूयजन्य सक्रमण					ये प्रतिरोधक शक्ति उपार्जित कर सकते है।
न्यूमोकोकस	खण्ड निमोनिया (lobar pneumonia) अन्त पूयता					
गोनोकोकस	गोनोरिया (मुजाक)					चिकित्सा मे प्रतिजीवविष का प्रयोग होता है।
-						
को० डिप्थिरी डिप्थिरी	डिफ्थीरिया					
वैस० एन्थ्रेसिस	एथ्रेक्स					
क्लो टिटेनाइ	टिटेनस					ये पदार्थ प्रधानत इन जीवाणुओ को नही बल्कि
क्लो० वेल्शाइ	गैस कोथ					

सूक्ष्मजीव	प्रधान विक्षतिया (Major lesions)	सल्फोनेमाइड	पेनिसिलिन	स्ट्रेप्टोमाइसिन	टेट्रासाइक्लिन	टिप्पणी
						द्वितीयक संक्रमण को नियमित करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।
एश० कोलाइ	विविध सक्रमण					
प्रोटियस वल्गेरिस	मूत्रीय सक्रमण					
एयरो० एयरोजेनीज	मूत्रीय सक्रमण					
स्यूडो० पायोसायनियस	मूत्रीय सक्रमण					
सा० टाइफि	टाइफायड					
हीमो० डूकेयि	शेन्कायड (chancroid)					
ट्रीपोनीमा पैलिडम (treponema pallidum)	सिफिलिस					
माइको० ट्यूबरकुलोसिस	तपेदिक राजक्ष्मा					

सूक्ष्मजीव	प्रधान विक्षतियाँ (Major lesions)	सल्फो-नेमा-इड	पेनि-सि-लिन	स्ट्रेप्टो-माइ-सिन	टेट्रा साइ-क्लिन	टिप्पणी
एक्टिनो० वोविस	एक्टिनोमाइकोसिस					सल्फा और पैनिसिलिन विशेष उपयोगी है।
वायरस	लिम्फोग्रेन्युलोमा इगायनेल					
डोनो० ग्रेन्यु-लोमेटिस	ग्रेन्युलोमा इन्गायनेल					

कुछ सल्फा औपधिया, उदारहृणतया सल्फासेटेमाइड और सल्फामेथाजोल, मूत्रीय सक्रमणो की चिकित्सा के लिए विशेप उपयोगी रहती है, क्योकि ये कम विपाक्त होती है तथा मूत्र मे भली प्रकार विलेय (soluble) होती है। इसके विपरीत कुछ अन्य सल्फा यौगिको की अवशोपणीयता (absorbability) वहुत कम होती है तथा इस कारण वे जठर-आन्त्र पथ (gastro-intestinal tract) को निर्जर्म करने मे विशेप उपयोगी रहती है। इनके उदाहरण सल्फा-गुआनिडीन, सल्फासक्सिडीन, सल्फाथेलिडीन आदि हे। आन्त्र प्रदेश के शस्त्रकर्म पूर्व-प्रवन्ध (preoperative preparation) के लिए रोगी को ये औषधियाँ पृथक् रूप मे या स्ट्रेप्टोमाइसिन के साथ प्राय दी जाती है।

यह पाया गया है कि यदि कुछ सल्फा औपधियो का सयुक्त सेवन किया जाए तो अधिक लाभ होता है। इस कारण कई शल्य चिकित्सक त्रिसल्फा (triple sulfa), अर्थात् तीन सल्फा औपधियो का सूक्ष्मक्रिस्टलीय (micro crystalline) मिश्रण, प्रयोग करते है। सल्फा व किसी एक एन्टीवायटिक का सयुक्त प्रयोग भी उपयोगी रहता है। किन्तु धीरे-धीरे सल्फोनेमाइडो का स्थान एन्टीवायटिक ग्रहण करते जा रहे हैं।

एन्टीबायोटिक (प्रतिजैविक पदार्थ)

एन्टीवायोटिक युग का प्रारम्भ पैनिसिलिन से हुआ था। इसकी खोज 1929 मे फ्लेमिंग ने की थी तथा क्लिनिकल प्रयोग के लिए इस सम्वन्ध मे

और अधिक अनुसन्धान चेन, फ्लोरे आदि ने 1940 मे किया था। पेनिसिलिन ने शल्य-सक्रमणो के प्रति चिकित्सको का दृष्टिकोण ही बदल दिया है। इसके पश्चात् सूक्ष्मजीवो व सूक्ष्म वनस्पतियो मे और भी सैकडो प्रतिजैविक पदार्थ निकाले गये है, किन्तु इनमे से केवल कुछ ही क्लिनिकल के रूप मे उपयोगी सिद्ध हुए है। एन्टीबायोटिको के प्रयोग से अस्वस्थता दर व मृत्यु दर मे पर्याप्त कमी आ गई है। जिन सक्रमणो का उपचार रसायनी चिकित्सा द्वारा असम्भव था उन्हे नियन्त्रित करना भी सम्भव हो गया है। परन्तु ऐसा होते हुए भी सर्जन के लिए अपूति साधनो (aseptic techniques) का महत्व निस्सन्देह पूर्ववत् ही है।

एन्टीबायोटिक या प्रतिजैविक पदार्थ सूक्ष्म जीवो (जीवाणु, कवक, एक्टिनोमाइसेज) द्वारा उत्पन्न होते है व अन्य सूक्ष्मजीवो को नष्ट करते है या उनके विकास मे बाधा डालते हैं। किसी एन्टीबायोटिक के क्लिनिकल रूप मे उपयोगी होने के लिए उसमे पर्याप्त वरणात्मक (selective) जीवाणुनाशक (bactericidal) शक्ति का होना आवश्यक है। इसमे निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ।

(1) जीवाणुओ पर इसका प्रभाव वरणात्मक होना चाहिए। पूतिरोधी व प्रतिजैविक पदार्थों मे यही अन्तर है कि पूतिरोधियो (antiseptics) की क्रिया वरणात्मक व विशिष्ट (specific) नही होती। कोई एन्टीबायोटिक जिन सूक्ष्मजीवो के प्रति क्रियाशील होता है, उन्हे सयुक्त रूप मे जीवाणु-स्पेक्ट्रम (bacterial spectrum) की सज्ञा दी जाती है। इन जीवाणुओ की सख्या अधिक या कम होने के अनुसार ही जीवाणु-स्पेक्ट्रम को विकीर्ण (broad) या सकीर्ण (narrow) कहा जाता है।

(2) इसे मात्र जीवाणुनिरोधक (bacteriostatic) नही बल्कि जीवाणुनाशक (bactericidal) होना चाहिए।

(3) इसे शरीर के सुरक्षासाधनो के बिना स्वयमेव ही क्रियाशील होना चाहिए।

(4) इसके प्रति जीवाणुओ मे प्रतिरोध का उपार्जन नही होना चाहिए। आजकल एन्टीबायोटिक चिकित्सा के क्षेत्र मे एक मुख्य समस्या जीवाणुओ के प्रतिरोधक विभेदो (resistant strains) का विकास न होना है। इस समस्या का व्यावहारिक समाधान दो या अधिक एन्टीबायोटिको का अथवा एन्टीबायोटिक चिकित्सा व रसायनी चिकित्सा का सयुक्त प्रयोग है। ऐसे सयोग मे विभिन्न औषधियां एक-दूसरे की सहयोग (synergism) अथवा विरोधी (antagonism)

दोनो ही हो सकती है। यदि उनमे परस्पर सहयोग हो तो उनके जीवाणु-विरोधी प्रभाव मे वृद्धि हो जाती है। ऐसे उदाहरण प्रथम वर्ग के किन्ही दो एन्टीबायोटिको (group I antibiotics) का परस्पर सयोग है। उदाहरणतः पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, एरिथ्रोमाइसिन, बेसिट्रेसिन और पोलीमिक्सिन। परस्पर विरोध के उदाहरण प्रथम वर्गीय तथा द्वितीय वर्गीय एन्टीबायोटिको (ओरियोमाइसिन, टेरामाइसिन, एक्रोमाइसिन, क्लोरोमाइसेटिन) का सयोग है। इस कारण ऐसे सयोगो का प्रयोग नही करना चाहिए।

(5) एन्टीबायोटिक के कारण ऊतको मे सुग्राह्यता (sensitivity) उत्पन्न नही होनी चाहिए तथा जैव अगो (vital organs) और कृत्यो (functions) मे विघ्न नही पडना चाहिए।

(6) शरीर द्रवो (body fluids), निस्रावो (exudates), प्लाज्मा प्रोटीनो तथा ऊतक-प्रकिण्वो के कारण एन्टीबायोटिक की क्षमता मे कमी नही होनी चाहिए।

(7) एन्टीबायोटिक का जल मे विलेय होना तथा कक्षताप (room temperature) पर स्थायी (stable) होना भी वाछनीय होता है।

(8) सभी सेवन-मार्गो (routes of administration) द्वारा इसका उपयोग सम्भव होना चाहिए। यदि मुखीय उपयोग भी सम्भव हो तो अति उत्तम है।

एन्टीबायोटिक चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले यथासम्भव प्रयोगशाला मे जीवाणुओ का सवर्धन (culture) व विलगन (isolation) करके विभिन्न एन्टीबायोटिको के प्रति उनकी सवेदनशीलता की जाच कर लेनी चाहिए। सर्वांगी सक्रमण की चिकित्सा के लिए रक्त मे एन्टीबायोटिक का स्तर किसी जीवाणु विशेष के लिए न्यूनतम निरोधक मात्रा (minimal inhibitory amount) का 5-10 गुना होना चाहिए।

अनेक तीव्र, स्थानसीमित (localized) सर्जिकल सक्रमणो की चिकित्सा का सर्वोत्तम ढग एन्टीबायोटिको का स्थानीय अनुप्रयोग (local application) है। परन्तु यदि सक्रमण गभीर ऊतको (deep tissues) तक पहुच गया हो और उसके विस्तार का भय हो तो एन्टीबायोटिको का अनुप्रयोग स्थानीय तथा सर्वांगी, दोनो प्रकार से करना चाहिए।

पेनिसिलिन—यह एक लगभग आदर्श एन्टीबायोटिक है, क्योकि स्थानिक अथवा व्यापक रूप से इसका विषैला प्रभाव नगण्य होता है तथा ऊतक भजन (tissue breakdown) द्वारा उत्पन्न पदार्थ (पूय, परिगलित द्रव्य) इसका

प्रभाव नष्ट नहीं करते । हाल में पेनिसिलिन के प्रति एलर्जी (allergy) के कई उदाहरण सामने आए है, किन्तु इनमे से अधिकांश सम्भवत पिछले वर्षो मे पेनिसिलिन के अन्धाधुन्ध प्रयोगो के कारण है।

कुछ जीवाणु पेनिसिलिनेज (pinicillinase) नामक एक प्रकिण्व उत्पन्न करते है जो पेनिसिलिन को नष्ट कर देता है। इनके उदाहरण ई॰ कोलाइ और ग्राम-ऋणा वातनिरपेक्षी दण्डाणु है। इस कारण पेनिसिलिन इन जीवाणुओ से युक्त सक्रमणो मे प्रभावशाली सिद्ध नही होता । जिन जीवाणुओ पर इसका असर होता है उनमे स्टेफिलोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस और न्यूमोकोकस मुख्य है। ग्राम-ऋणात्मक जीवाणुओ, विशेषत ई॰ कोलाइ, स्यूडोमोनस पायोसायनियस, प्रो॰ वल्गेरिस और यक्ष्मा-जीवाणु के प्रति यह सर्वथा निष्क्रिय होती है। शल्योत्तर वार्डो (postoperative wards) मे स्टेफाइलोकोकस के पेनिसिलिन प्रतिरोधी विभेदो के कारण सक्रमण की समस्या आजकल प्रायः पाई जाती है।

आन्त्रेतर रूप मे अनुप्रयुक्त (parenteral administration) पेनिसिलिन यों तो लगभग शरीर के सभी ऊतको मे पहुच जाती है किन्तु अस्थि, मज्जा, सन्धियो, शरीर गुहिकाओ (body cavities), अक्षत (intact) तत्रिका ऊतक तथा प्रमस्तिष्क-मेरु द्रव मे इसकी पर्याप्त मात्रा नही पहुँच पाती । अन्त पूयता की चिकित्सा के लिए ऐसे स्थानसीमित सक्रमणो के नियन्त्रण के लिए जिन्हे स्थानीय रूप मे अभिकृत किया जा सके, स्थानीय तथा सर्वांगी पेनिसिलिन का सयुक्त प्रयोग उत्तम रहता है।

निम्न रोगो की चिकित्सा मे पेनिसिलिन का प्रयोग सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है स्टेफाइलोकोकसी सक्रमण, या फोडे, कार्बंकल व तीव्र अस्थि-मज्जा शोथ, रक्तलायी स्ट्रेप्टोकोकसा सक्रमण, यथा एरिसिपेलास (erysipelas), ग्रसनी शोथ (pharyngitis), कर्णशोथ (otitis), टासिल शोथ, निमोनिया, अन्त पूयता, फुप्फुस विद्रधि, पर्युदर्याशोथ (peritonitis), प्रसूति-पूतिता, व सेलुलाइटिस (cellulitis), न्यूमोकोकसी सक्रमण, गोनोकोकसी सक्रमण, डिफ्थीरिया और सिफिलिस।

स्ट्रेप्टोमाइसिन—अन्त पेशी (intramuscular) इजेक्शन के पश्चात् यह शीघ्र ही रक्तप्रवाह मे अवशोषित हो जाती है तथा इस प्रकार विभिन्न अगो तक पहुँच जाती है। इसमे दो त्रुटिया हैं—इसमे कुछ विषैला प्रभाव होता है तथा इसके प्रति जीवाणुओ मे प्रतिरोध उत्पन्न हो जाना है। तपेदिक की चिकित्सा के लिए इसका प्रयोग साधारणता PAS तथा आइसोनिएज़िड

(iosoniazid) के साथ ही किया जाता है । तपेदिक के अतिरिक्त जीवाणुरक्तता, मूत्रतन्त्र का सक्रमण, ग्रेन्युलोमा इगायनेल तथा पर्यदयाशोथ की चिकित्सा मे भी यह प्रभावकारी होती है ।

टेट्रासाइक्लीन (Tetracycline)—इस समूह मे आरियोमाइसिन (क्लोर-टेट्रासाइक्लीन), टेरामाइसिन (आक्सीटेट्रासाइक्लीन), एक्रोमाइसिन, पौली-साइक्लीन और टेट्रासिन सम्मिलित है। रिकेट्सिया (rickettsia), कतिपय वायरसो (viruses) तथा अनेक ग्राम-धन व ग्राम-ऋण गोलाणुओ (cocci) तथा दण्डाणुओ पर इनका अत्यधिक प्रभाव पडता है । इनके प्रतिजैविक स्पेक्ट्रम (antibiotic spectrum) पेनिसिलिन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन के स्पेक्ट्रमो को अतिव्यापित (overlap) करते है। मुखीय सेवन के उपरान्त ये शीघ्र ही अवशोषित हो जाते है । मूत्र मे इनका उत्सर्ग काफी अधिक मात्रा मे होता है। इनमे विषैले गुण नही होते, किन्तु यदा-कदा ओरियोमाइसिन तथा टेरामाइसिन के कारण मतली (nausea), वमन (vomiting) व अतिसार (diarrhea) हो जाता है। क्लिनिकल रूप मे इनका प्रयोग रिकेट्सिया रोगो, कुछ वायरस रोगो (उदाहरणत: लिम्फोग्रेन्युलोमा), कतिपय मूत्रतन्त्रीय सक्रमणो, रक्तलायी स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलोकोकस और गोनोकोकस-सक्रमणो, ग्रेन्युलोमा इगायनेल, शेन्क्रायड (chancroid) और आतशक की चिकित्सा के लिए किया जाता है।

क्लोरेमफेनिकाल—इसका उपयोग मुखीय, अन्त शिरा इजेक्शन द्वारा किया जाता है। टाइफायड के अतिरिक्त उन मूत्रीय सक्रमणो की चिकित्सा के लिए भी इसका प्रयोग होता है जो ग्राम-ऋण जीवाणुओ (ईश० कोलाइ, स्यूडो० पायोसायनियस, प्रोटियस वल्गेरिस आदि) के कारण होते है। लिम्फोग्रेन्युलोमा की चिकित्सा के लिए भी यह प्रयुक्त किया जाता है।

एरिथ्रोमाइसिन (Erythromycin)—इसका जीवाणु स्पेक्ट्रम काफी व्यापक होता है तथा इसका मुखीय सेवन भी प्रभावपूर्ण होता है । यह स्ट्रेप्टोकोकसी, स्टेफिलोकोकसी तथा न्यूमोकोकसी सक्रमणो मे विशेष लाभप्रद रहता है। इसकी उपयोगिता प्राय. पेनिसिलिन के समान ही होती है। इस कारण पेनिसिलिन-प्रतिरोधी स्टेफिलोकोकसी सक्रमणो व पेनिसिलिन-सुग्राही (penicillin sensitive) रोगियो की चिकित्सा के लिए इसका प्रयोग लाभ-पूर्वक किया जा सकता है ।

पौलीमिक्सिन—इसका प्रयोग ग्राम-ऋण जीवाणु सक्रमणो की चिकित्सा मे लाभप्रद होता है। इनमे ईश० कोलाइ व स्यूडो० पायोसायनियस के कारण होने वाले मूत्रीय सक्रमण मुख्य है।

नीओमाइसिन (Neomycin)—इसका प्रयोग मुख्यत दो प्रकार किया जाता है। प्रथम, बृहद्आन्त्र पर आपरेशन करने से पूर्व उसे निर्जीवाणुक करने के लिए 36-48 घंटे तक इसका मुखीय अनुप्रयोग किया जाता है। द्वितीय, फोड़ों (boils) दाहों (burns) और घाव-संक्रमणों (wound infections) की चिकित्सा के लिए इसका स्थानीय रूप में प्रयोग किया जाता है।

बैसिट्रेसिन (Bacitracin)—इसका मुख्य प्रयोग कार्बंकल, व्हिटलो (whitlow), विद्रधि, व्रण, अस्थिमज्जा-शोथ तथा मुख, नासाग्रसनी, कान आदि के संक्रमणों की स्थानीय चिकित्सा के लिए किया जाता है। इस निमित्त इसका उपयोग मलहम के रूप में तथा घोल (500 यूनिट प्रति मिलिलिटर) के स्थानीय अन्तर्निवेश (local infiltration) के रूप में किया जाता है। यों तो इसका स्थानीय प्रभाव पेनिसिलिन की भांति ही होता है, किन्तु इसकी विशेषता यह है कि पेनिसिलिन प्रतिरोधी संक्रमणों में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। संयुक्त संक्रमणों की उपस्थिति में भी इसका प्रभाव अक्षुण्ण रहता है। आन्त्र-अमीबीयता (intestinal amoebiasis) व चिरकारी पेचिश (chronic dysentery) के लिए इसका मुख द्वारा सेवन किया जाता है। अन्त पेशी अनुप्रयोग द्वारा इसे चिरकारी सेलुलाइटिस, अस्थि-अन्तस्था शोथ और गैंग्रीन के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है।

2

शल्य-प्रविधि के बुनियादी सिद्धान्त तथा शस्त्रकर्मपूर्व और शस्त्रकर्मोत्तर देखभाल

सगम लाल

शल्य प्रविधि

शल्य विज्ञान केवल एक विशद विज्ञान ही नही, बल्कि विज्ञान एव कला का गूढ सम्मिश्रण है। इस कारण यह आवश्यक है कि शल्यचिकित्सक को शरीरविज्ञान, शरीर क्रियाविज्ञान, विकृतिविज्ञान तथा अन्य मूल विज्ञानो (basic sciences) का समुचित ज्ञान हो। आपरेशन का उद्देश्य जीवन की रक्षा करना, पीडा व निर्योग्यता (disability) से मुक्ति देना तथा शारीरिक कृत्यो का पुन स्थापन (restoration of functions) करना होता है। इस कारण शल्य-विधि का मेकेनिकल व जोववैज्ञानिक दृष्टि से निरापद होना आवश्यक है। मेकेनिकल पक्ष की दृष्टि से जिस प्रकार विभिन्न अवयवो की शारीरिक रचना का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार जीववैज्ञानिक दृष्टि से विविध अगो के कृत्यो तथा उनकी विरोहण-रीतियो का ज्ञान होना आवश्यक है। किसी आपरेशन की सफलता के लिए अनिवार्य है कि वह शरीर-क्रिया विज्ञान तथा ऊतक विरोहण के मूल सिद्धान्तो के अनुसार हो। वास्तव मे शरीर-क्रियाविज्ञान की नवीनतम खोजो के बिना भविष्य मे शल्यविज्ञान की पर्याप्त उन्नति होनी ही असम्भव है।

शल्य विज्ञान का एक मुख्य आधारस्तम्भ विकृतिविज्ञान (Pathology) है। अत प्रत्येक सर्जन को चाहिए कि वह विकृति प्रयोगशाला (Pathogical laboratory) मे पर्याप्त समय व्यतीन करे तथा विभिन्न विक्षतियो (lesions) के स्थूल और सूक्ष्मदर्शी स्वरूप का विस्तृत अध्ययन करे। इस प्रकार

सर्जिकल महत्त्व के निष्कर्ष व निश्चय स्थापित करने की उसकी क्षमता मे पर्याप्त वृद्धि होगी।

शल्य-कुशलता

एक आदर्श सर्जन को केवल कुशल आपरेशनकर्ता ही नहीं, बल्कि कुशल तकनीकज्ञ भी होना चाहिए, उसे चुस्त, चौकन्ना तथा अनापेक्षित परिस्थितियो का सामना करने को तत्पर रहना चाहिए, उसमे शीघ्र निर्णय करने की तथा शान्ति व आत्मविश्वासपूर्वक आपरेशन करने की क्षमता होनी चाहिए। सर्जिकल निष्फलता का कारण प्राय प्राविधिक त्रुटिया (technigue errors) ही होती है।

सर्जन को प्रयत्न करना चाहिए कि आपरेशन के समय अगो को निम्नतम अवघात पहुचे। ऊनको को चुटकने (pinching), कुचलने (crushing), मरोडने (twisting), फाडने (tearing), खीचने (pulling) आदि से उन्हे क्षति पहुचती है। अत जहा तक हो सके ऐसा करने से बचना चाहिए। व्यवच्छेदन करते समय यथासम्भव तेज ब्लेडवाले चाकू का ही प्रयोग करना चाहिए। कैंची, गौज स्पज (spunge) तथा अगुलियो आदि से किये जाने वाले बलात ऊतक व्यवच्छेदन (forcible tissue dissection) से ऊतको को क्षति पहुच सकती है, रक्तस्राव आरम्भ हो सकता है तथा आपरेशनक्षेत्र के निकतिज भागो के स्थिज अवकाश (potential spaces) खल सकते है। इस कारण इन अपरिष्कृत साधनो का प्रयोग नही करना चाहिए।

सर्जिकल निर्जीवाणुकरण

आधुनिक सर्जरी पूर्णत अपूति (asepsis) के सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार घाव के सम्पर्क मे किसी भी ऐसे पदार्थ को नही आने देना चाहिए जो पूर्णत जीवाणुरहित न हो।

वस्तुओ का निर्जीवाणुकरण

वस्तुओ को जीवाणुरहित करने के साधन दो प्रकार के हो सकते है, भौतिक तथा रासायनिक।

भौतिक साधन—ये निम्नलिखित है (1) पानी मे 15 मिनट तक उबालना, (2) आटोक्लेव (Autoclave) मे 18 पौड दबाव (250° F के समकक्ष) पर गर्म करना, (3) वायुभट्टी (Oven) मे शुष्क ताप द्वारा गर्म करना। इन साधनो का चुनाव पदार्थो की प्रकृति के अनुसार किया जाता है।

रासायनिक साधन—रासायनिक जीवाणुनाशन के लिए निम्नलिखित पदार्थ प्रयुक्त किए जाते है—विशुद्ध कार्बोलिक एसिड, 70 प्रतिशत एथिल एलकोहल, मर्करी परक्लोराइड तथा आक्सीसायनाइड (1 1000) आदि।

ड्रेसिंग पदार्थों (Dressing materials), तौलियो, गाउनो, ब्रशो तथा पोर्सेलेन और काच के सामान को 30 मिनट तक, यन्त्रो को 10 मिनट तक और रबड़-द्रव्यों को 15 मिनट तक आटोक्लेव करना चाहिए। जिन वस्तुओ तथा यन्त्रो को अधिक क्षति पहुचने की आशका हो उन्हे विभिन्न अवधियो के लिए रासायनिक घोलो मे डुबा कर जीवाणुरहित किया जा सकता है।

व्यक्तियो का निर्जीवाणुकरण

शरीर को निर्जीव पदार्थों की भाँति पूर्णत जीवाणुरहित करना असम्भव है। शारीरिक अगो मे जीवाणुओ की सख्या मे केवल कमी ही की जा सकती है। इस उद्देश्य के लिए रासायनिक साधनो का उपयोग किया जाता है। आपरेशन से पूर्व हाथो को साफ करने के लिए उन्हे 10 मिनट तक साबुन से मल-मल कर कोहनी तक साफ किया जाता है। तत्पश्चात् उन्हे 1 मिनट के लिए किसी पूतिरोधी पदार्थ के मन्द घोल मे डुबोया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि हाथो व अग्रबाहु पर किसी प्रकार की खरोंच नही होनी चाहिए तथा नाखून, ठीक तरह कटे हुए और स्वच्छ होने चाहिए।

आपरेशन शाला मे प्रविष्ट होनेवाले सभी व्यक्तियो को स्वच्छ टोपी, मास्क (mask), गाउन तथा केन्वस के ओवरशू (overshoe) पहनने चाहिए। सर्जन तथा आपरेशन टीम के अन्य व्यक्तियो को इनके अतिरिक्त एक निर्जीवाणुकृत गाउन और रबर के दस्ताने भी पहनने चाहिए।

आपरेशन क्षेत्र

आपरेशन से एक दिन पूर्व सन्ध्या समय आपरेशन-स्थल की त्वचा को साबुन से साफ कर देना चाहिए तथा उस्तरा फेर कर उसे पूर्णत बालरहित कर देना चाहिए। अगले दिन आपरेशन शाला मे इस स्थान पर स्पिरिट से सफाई करके पूतिरोधी घोल पोत देना चाहिए। घोल पोतने की यह क्रिया उस स्थान के केन्द्र से आरम्भ करके विधिपूर्वक परिधि की ओर सम्पन्न करनी चाहिए ताकि सदूषित क्षेत्र की बारी सबसे अन्त मे आए। विकलाग रोगियो (Orthopaedic patients) के आपरेशन क्षेत्र के निर्जर्मीकरण के लिए इससे अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। अत रोगी को आपरेशन कक्ष मे लाने से 1-2 दिन पूर्व वार्ड मे भी एक दो बार पूतिरोधी घोल से अग की शुद्धि कर लेनी चाहिए

तथा प्रत्येक बार ऐसा करने के पश्चात् अग को सक्रमणरहित तौलिए मे लपेट देना चाहिए।

छेदन (Incisions)

छेदन इस प्रकार का होना चाहिए कि उससे विक्षति (lesion) का अधिकाँश भाग दृष्टिगोचर हो जाय किन्तु सलग्न अवयवो की अधिक खीचातानी न करनी पडे। यदि छेदन उपयुक्त न हो तो आपरेशन का खतरा बढ जाता है तथा समय भी अधिक लगता है। छेदन की लम्बाई पर्याप्त होनी चाहिए। छेदन की दिशा उस क्षेत्र-विशेष मे सामान्यत क्रियाशील तनावो की बलरेखा (line of forces) के लम्बरूप (Perpendicular) तथा त्वचा मिलवटो के समानान्तर होनी चाहिए। यदि हो सके तो इसे प्रावरणी वितानो (fascial aponeuroses) के तन्तुओ के भी समानान्तर होनी चाहिए। छेदन द्वारा मुख्य तन्त्रिकाओ व वाहिकाओ को क्षति नही पहुँचनी चाहिए।

रक्तस्तभन (Haemostasis)

सर्जन की आपरेशन-कुशलता का अनुमान इस से किया जा सकता है कि आपरेशन-घाव कितना साफ और सूखा है। इस कथन से स्पष्ट है कि आपरेशन के समय रक्तस्तभन का ध्यान रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जहा तक सम्भव हो वाहिकाओ को काटने से पहले उन्हे पृथक् करके क्लैम्प (clamp) और बन्ध (ligature) लगा देना चाहिए। हीमोस्टेट (haemostat) या रक्तस्थगक का प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसकी पकड मे केवल वाहिका ही आये, सलग्न (adjacent) ऊतक नही। यदि वाहिकाओ पर से बधो के फिसल जाने का डर हो, जैसा कि बहुत बडी या बहुत छोटी वाहिकाओ मे होता है तो उन्हे पारवेधन (transfixion) द्वारा बाँधना चाहिए। यदि किसी बडी रक्तवाहिका से रक्तस्राव आरम्भ हो जाय तो सर्वप्रथम अगुलि-दाब (digital pressure) द्वारा स्राव रोक देना चाहिए। इसके पश्चात् धीरे-धीरे दबाव कम करना चाहिए ताकि पुन धीमा रक्तस्राव होने लगे। इस प्रकार रक्तवाहिका के कटे हुए छोर की स्थिति मालूम पड जायगी तथा उसे भली प्रकार बाधने मे सहायता मिलेगी। किसी रक्तस्रावयुक्त क्षेत्र मे यदि स्राव का स्रोत न दिखाई पडता हो तो हीमोस्टेट का अन्धाधुन्ध प्रयोग नही करना चाहिए, बल्कि क्षत रक्तवाहिका की

स्थिति निश्चित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा न किया जा सके अथवा कोई वाहिका अनभिगम्य (inaccessible) होने के कारण बध न जा सके, तो रक्तस्राव रोकने के लिए उस स्थान को पैक (pack) कर देना चाहिए। 24-48 घटे बाद यह पैक निकाला जा सकता है, परन्तु आवश्यकतानुसार पुन स्थापित भी किया जा सकता है। इस पैकिग के लिए कतिपय अवशेषणीय रक्तस्तभक पदार्थो (absorbable haemostatic agents) का प्रयोग भी किया जा सकता है। इनके उदाहरण फाइब्रिन फेन (fibrin foam), आक्सीकृत सेलुलोज तथा जेलेटिन स्पज फेन है। ये पदार्थ न केवल रक्तस्राव के क्षेत्र मे आतचन मे सहयोग देते है वल्कि उस आतच को आधार भी प्रदान करते है।

सीवन द्रव्य (Suture material)

जो द्रव्य वाहिकाओ के वन्धन (ligature) के लिए प्रयुक्त किए जाते है वे वन्धक द्रव्य तथा जो ऊनक को परस्पर सोने के लिए प्रयुक्त किए जाते है उन्हे सीवन द्रव्य कहते हैं। एक आदर्श सीवन पदार्थ मे निम्नलिखित गुण होने चाहिए :

इसे जीवाणुरहित होना चाहिए ; यह ऐसा होना चाहिए कि निर्जीवाणुकरण विधियो द्वारा इसमे विकार न आये , इस पर केशिका क्रिया (capillary action) नही होनी चाहिए , यह नर्म तथा ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि इसमे सुविधापूर्वक गॉठ लगाई जा सके। इसके अतिरिक्त यदि सीवन-पदार्थ अवशोष्य (absorbable) हो तो उसका अवशोपण बहुत शीघ्र नही होना चाहिए, अन्यथा घाव के किनारे परस्पर दृढतापूर्वक नही जुड पाएगे। इसके विपरीत यदि वह अनवशोष्य हो तो उसकी प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि वह ऊतको मे किसी प्रकार का क्षोभ (irritation) या प्रतिक्रिया न उत्पन्न करे।

नीचे सीवन द्रव्य के इन दोनो प्रकारो, अर्थात् अवशोष्य (जैव या organic) व अनवशोष्य (यथा धात्विक, प्राणीजन्य, वनस्पतिजन्य या कृत्रिम) का वर्णन किया जाएगा।

अनवशोष्य सीवन

धात्विक (ucetallic) सीवन—सोना और चादी—इनका प्रयोग पहले किया जाता था, किन्तु आजकल नही किया जाता।

विटेलियम (Vitalliums)—यह कोवाल्ट (65 प्रतिशत), क्रोमियम

(30 प्रतिशत) तथा मोलिब्डेनम (5 प्रतिशत) के सयोग से वनी एक मिश्रधातु (alloy) है। इसका प्रयोग अस्थि सर्जरी मे पेच, कील और प्लेट के रूप मे किया जाता है। इसका तार नही वनाया जा सकता।

टैंटेलम (Tantallum)—यह नीलाभ-श्वेत रग का एक मूल तत्त्व है जिसके रासायनिक गुण काच के समान, भौतिक गुण इस्पात के समान होते हैं। यह लोहे से तिगुना भारी होता है तथा इसका तनन सामर्थ्य (tensile strength) लगभग इस्पात के समान होती है। इसका मनुष्य के वाल जितना पतला तार खीचा जा सकता है तथा महीन पन्नी (foil) भी वनाई जा सकती है। यह जैविक रूप मे निष्क्रिय (biologically inactive) तथा ऊतको के प्रति अकोशिका-घातक (noncytotoxic), असक्षारक (noncorrosive) व अक्षोभक (nonirritant) होता है। इस कारण गभीर सीवन (deep sutures) तथा त्वचा सीवन के लिए इसका उपयोग निरापद होता है।

स्टेनलैस स्टील—इसके वने तार मे अत्यधिक तनन सामर्थ्य होती है। यह ऊतको मे किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न नही करता तथा, न ही उनके रग-रूप मे परिवर्तन लाता है। इसका उपयोग अस्थिसम्वन्धी व हर्निया-आपरेशनो, कण्डराओ की मरम्मत (Tendon Repair) तथा गभीर या त्वचा सीवन के लिए किया जा सकता है।

मिचेल क्लिप (Michel's clips)—इनका उपयोग त्वचा के किनारो को सन्निकट लाने के लिए किया जाता है। ३-५ दिन पश्चात् ये निकाल दी जाती हैं।

प्राणीजन्य सीवन (Sutures of animal origin)

सिल्कवर्म गट (Silkworm gut)—यह रेशम के कीडे की रेश्मोत्पादक ग्रन्थियो से वनाया जाता है। यह कैपिलरी-क्रियारहित होता है तथा द्रव का अवशोषण नही करता। यह उवालने से नष्ट नही होता, ऊतको मे नही घुलता, न उन्हे हानि पहुँचाता है। इसका सवसे महत्त्वपूर्ण उपयोग तनाव सीवन (Tension suture) लगाना है।

घोड़े की पूँछ का वाल—इसका उपयोग सूक्ष्म (fine) प्लास्टिक सर्जरी मे किया जा सकता है। परन्तु इसके टूटने का डर रहता है। इसलिए आजकल इसका प्रयोग नही के वरावर किया जाता है।

रेशम—यह एक वहुप्रचलित पदार्थ है। यह उवाला जा सकता है तथा इसमे सरलतापूर्वक गाँठ लगाई जा सकती है।

वनस्पतिजन्य सीवन

लिनन—यह फ्लैक्स (flax) नामक पौधे से प्राप्त एक सेलुलोज-तन्तु होता है। आजकल इसका स्थान रेशम व सूती धागे ने ले लिया है। यह द्रव का अवशोषण नही करता तथा अत्यन्त लचकीला होता है। इसे आसानी से उबाला जा सकता है।

कृत्रिम पदार्थ

इनमे मुख्य नाइलोन है, जिसे रेशम के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है। उबालने से इसे कोई हानि नही पहुँचती। यह अत्यन्त चिकना होता है तथा इसकी गाठो के फिसलने और खुल जाने की आशका रहती है। कोई-कोई रोगी नाइलोन के प्रति सुग्राही होते हैं तथा उनमे यह पदार्थ ऊतक-प्रति-क्रिया उत्पन्न कर सकता है।

अवशोष्य सीवन

कंगारू कण्डरा (Kangaroo tendon)—यो तो यह काफी दृढ होता है, किन्तु अत्यधिक मूल्यवान होने के कारण कदाचित ही प्रयुक्त किया जाता है।

प्रावरणी सीवन (Fascial sutures)—इन्हे स्वजनित सीवन (Autogenous sutures) भी कहते है। इनका उपयोग हर्निया सधान (Hernioplasty), सधान सर्जरी (plastic surgery), विकलाग सर्जरी (Orthopaedic surgery) व जननमूत्र तन्त्र के आपरेशनो मे किया जाता है। ऊतको मे ऐसे रिक्त स्थानो को जिन्हे अन्य किसी प्रकार भरना सम्भव न हो, प्रावरणी सीवन द्वारा विरोहित (repair) किया जा सकता है।

कैटगट (Catgut)—यह भेड की आत के अध श्लेष्मला स्तर (Submucous layer) से बनाया जाता है। इसकी रचना मुख्यत सयोजी ऊतक व कुछ प्रत्यास्थ ततुओ (elastic fibres) से मिल कर होती है। साधारण कैटगट कुछ ही दिनो मे कमजोर पड जाता है तथा घुल जाता है। इस कारण इसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब ऊतको मे द्रुतगति से विरोहण होने की सम्भावना हो। उदाहरणत श्लेष्मल कलाओ या सीरमीय कलाओ (serous membranes) को सीने अथवा लघु रक्तवाहिकाओ को बधित करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। यदि इसे कुछ रासायनिक पदार्थो द्वारा अभिकृत कर दिया जाए तो इसकी अवशोष्यता घट जाती है। इस प्रयोजन के लिए प्राय क्रोमिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार निर्मित

क्रोमिक कैटगट (chromic catgut) का पूर्णत: अवशोषण होने में १४-६० दिन लगते है, किंतु सक्रमण की उपस्थिति मे अवशोषण गति काफी बढ जाती है ।

घावो का निकास (Drainage)

यदि आपरेशन का घाव साफ हो तो उसका निकास करने की आवश्यकता नही होती । अनावश्यक रूप मे निकास नली (drainage tube) का प्रयोग करने से हानि ही होती है, क्योंकि यह न केवल आगन्तुक शल्य के रूप मे व्यवहार करती है और निष्क्रिय अवकाश (dead space) उत्पन्न करती है, बल्कि घाव को सक्रमित करने मे भी योग दे सकती है । किंतु यदि घाव ऐसा हो कि उससे निरन्तर द्रव या रक्त रिसने का भय हो, अथवा विशाल ऊतक पिंड या अर्बुद (tumour) के उच्छेद (excision) के कारण घाव मे ऐसा बृहद रिक्त स्थान रह गया हो जिसमे सीरमरक्तीय (serosanguinous) द्रव भर जाने की आशका हो, तो उसमे निकासिका (drain) पर्याप्त लाभदायक रहती है । इसे २४-४८ घटे तक घाव मे रखना पर्याप्त होता है ।

घाव का निकास किया जाए या नही, यह निश्चय करने मे घाव के सक्रमित अथव असक्रमित होने का भी महत्त्व है । यदि आपरेशन के समय घाव का सदूषण (contamination) हो गया हो, तथा यह आशका हो कि स्थानीय ऊतक इस सक्रमण का सामना करने मे असफल रहेंगे, तो निकास नली का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होता है । जब यह सिद्ध हो जाए कि घाव मे सक्रमण नही हुआ है अथवा समाप्त हो गया है, तो इसे निकाला जा सकता है । शल्यचिकित्सा का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धात है कि सभी सक्रमित घावो को प्रत्यक्ष (उदाहरणत निकासिका द्वारा) रूप मे विवृत (open) रखा जाए, ताकि सक्रमण दूर करने मे सहायता मिले । यदि घाव मे गहरा स्थित सक्रमित द्रव्य (deep seated infected material) विद्यमान हो, तथा अधस्त्वक वसा (subcutaneous fat) को इसके सम्पर्क मे न आने देने की सावधानी रखी जाए, तो एक छोटे भाग को खुला रख के अधिकाश घाव को बद किया जा सकता है । इस प्रकार घाव का विरोहण भी शीघ्र हो जाता है और अनिमीलित (unclosed) भाग से निकास भी होता रहता है । सामान्यत सक्रमण का प्रसार रोकने मे पर्युदया पर्याप्त प्रभावशाली होती है, किंतु यदि यह शोथयुक्त हो तो इसका प्रभाव कम हो जाता है ।

पर्युदर्या गुहा का निकास निम्न दशाओ मे आवश्यक होता है स्थानीकृत

विद्रधि (localized abscess) तथा अवशिष्ट परिगलित ऊतक (residual necrotic tissue), पित्ताशय, पित्तनली, आमाशय व अग्न्याशय-सम्बन्धी आपरेशन, ग्रहणी-कूट (duodenal stump) का असंतोषजनक निमीलन (closure) तथा आन्त्रगत सङ्कुचित आन्त्र संयोजन (intestinal anastamosis)।

तीव्र विसरित पर्युदर्याशोथ (acute diffuse peritonitis) में निकास किया सर्वोपरि नहीं होती क्योंकि कुछ ही घंटों में निकासिका (drain) तथा पर्युदर्या गुहा के मध्य रोक उत्पन्न हो जाता है।

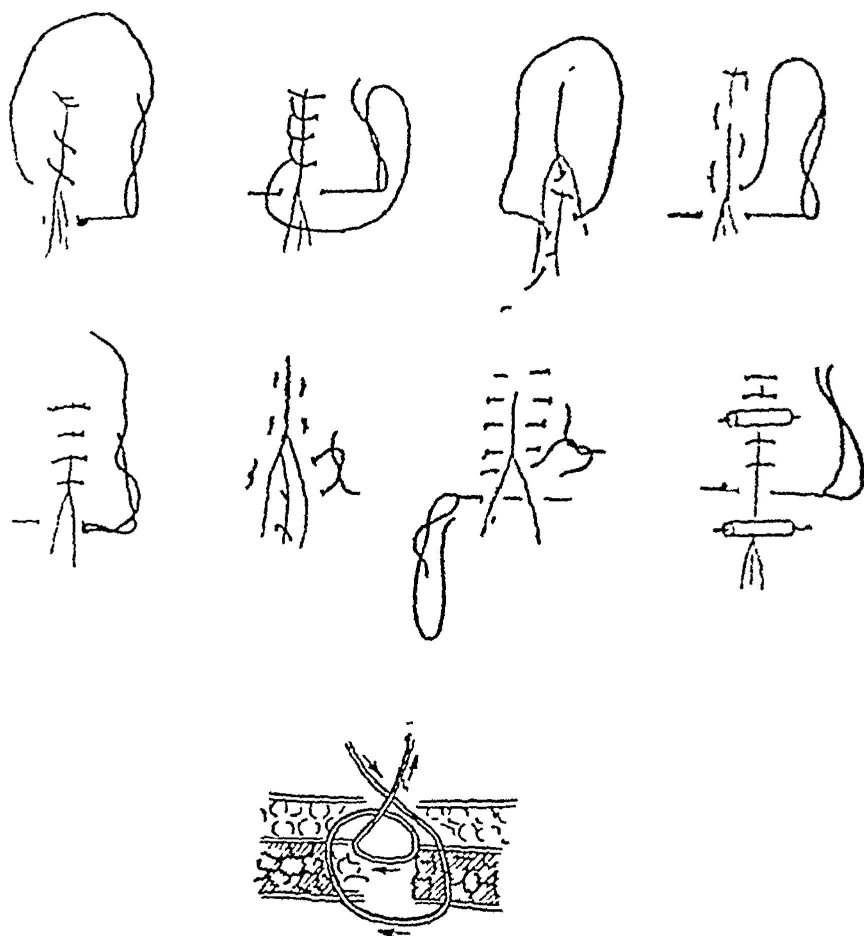
घाव निमीलन (wound closure) – घावों को बन्द करते समय शल्य-चिकित्सक का मुख्य ध्येय है कि किनारों, सीरमीय पृष्ठों (serous surfaces) और प्रावरणी स्तरों (fascial planes) को परस्पर इस प्रकार सन्निकट लाना होता है कि इनमें अधिक खिंचाव या तनाव न पड़े, उनके मध्य निष्क्रिय अवकाश (dead space) न रहे तथा उनके आसपास रक्तस्राव या रक्त संग्रह न हो।

घाव के निमीलन की विधि छेदन (incision) की स्थिति और प्रकार पर, तथा इस बात पर निर्भर होती है कि निकास की आवश्यकता है अथवा नहीं। घावों के निमीलन के लिए निम्न प्रकार की सीवनें प्रयुक्त की जा सकती हैं :—अविरत सीवन (continuous suture) इनका प्रयोग श्लेषक कला (synovial membrane), पर्युदर्या तथा आन्त्र-संयोजन के समय श्लेष्मला को सीने के लिए किया जाता है। यदि घाव में बहुत महीन स्कार अपेक्षित हो तो अविरत सबक्यूटिकुलर (subcuticular) सीवन का प्रयोग किया जा सकता है। अन्तरावित सीवन (Interrupted suture)—ये निम्न प्रकार के हो सकते हैं (अ) सादा विरत सीवन, जिसका उपयोग प्रावरणी स्तरों (fascial planes) तथा चपटे या उत्तल त्वचा पृष्ठों (convex skin surfaces) को परस्पर मिलाने के लिए किया जाता है, (आ) मेट्रेस सीवन, जिनके कारण ऊतक के किनारे अंतर्वर्तित (inverted) या बहिर्वर्तित (everted) हो जाते है , इस सीवन द्वारा ऊतकों का स्तराधान (apposition) भली प्रकार हो जाता है तथा वे दृढ़ हो जाते हैं। कक्ष (axilla) व वंक्षण (groin) आदि खोखले स्थानों मे आपरेशन के पश्चात् त्वचा के किनारों को अंतर्वर्तित होने मे बचाने के लिए खड़ी मेट्रेस सीवन (vertical mattress suture) अत्यन्त उपयोगी रहती है। गम्भीर व कृशकाय रोगियो मे उदर का अभिमध्य छेदन (paramedian incision) बंद करने की एक उत्तम विधि जोन्स (Jones) की खड़ी अष्टाक-रूपी विरत सीवन (vertical figure of eight interrupted suture) है। इसमे त्वचा और अध-

स्त्वक् वसा के सिवाय उदर भित्ति (Abdominal wall) को सभी स्तर सम्मिलित कर लिये जाते है।

व्रणोपचार, ड्रेसिंग (Dressings)

जो घाव पूरी तरह बद हो गये हो उन्हे केवल सादे गौज (gauze) की कुछ तहो से ढककर आसजी प्लास्टर (Adhesive plaster) की पट्टियों से चिपका देना ही पर्याप्त होता है। किन्तु यदि घाव मे अविरत-स्यन्दन (continuous oozing) हो रहा हो अथवा वहाँ रिक्त स्थान रह गया हो, तो ड्रेसिंग को रुई से ढक कर ऊपर से लचीला आसजी प्लास्टर या क्रेप पट्टी



चित्र 1

(crepe bandage) कस कर लगा देनी चाहिए। यदि घाव मे निकासिका (drain) भी हो तो उसके वाहरी छोर को सेफ्टीपिन द्वारा पारवेधित (transfix) कर देना चाहिए ताकि वह घाव के भीतर न फिसल जाए। तत्पश्चात ड्रेसिंग पर रूई की एक तह लगा कर ऊपर से पट्टी वाध देनी चाहिए।

पट्टियाँ (Bandages)

उत्तम पट्टी वाधने की कला केवल अभ्यास द्वारा ही सीखी जा सकती है। आजकल ड्रेसिंग को घाव पर स्थिर रखने के लिए पट्टी के स्थान पर प्राय आसजी प्लास्टर का प्रयोग किया जाता है। परन्तु ध्यान मे रखना चाहिए कि यह प्लास्टर शरीर की किसी देहशाखा को चारो ओर से न घेरे, अन्यथा उसके रक्त सम्भरण मे वाधा पड सकती है। पट्टियाँ प्राय साधारण गौज की वनी होती हैं, किंतु लचकीले पदार्थों, यथा क्रेप या फलालेन (flannel) की वनी पट्टी श्रेयस्कर होती है। पट्टी वाधते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह ड्रेसिंग को भली प्रकार व दृढतापूर्वक अपने स्थान पर सुस्थिर तो रखे, किंतु साथ ही अग को इतना न कसे कि उसके रक्त प्रवाह मे कमी आ जाए या अस्थि उत्सेधो (bony prominences) व उपरिस्थ तन्त्रिकाओ (superficial nerves) पर अनुचित दवाव पडे।

प्लास्टर-साँचे (Plaster casts)

शरीर के आहत या शल्यकृत (operated) भागो को निश्चल (immobilize) करने के लिए पेरिस प्लास्टर के साँचे (Plaster of paris casts) का प्रयोग किया जाता हे। इस प्रयोजन के लिए मोटे मलमल (muslin) की ऐसी पट्टियाँ प्रयुक्त की जाती हे जिनमे पेरिस प्लास्टर का पाउडर लगा होता है। प्रयोग के समय स्लैव (slab) या प्लास्टर की पट्टी को गुनगुने पानी मे इतनी देर भिगोया जाता है कि वुलवुले निकलने वद हो जाएँ। फिर उसे हल्का निचोड कर क्षत स्थल पर रख दिया जाता है आवश्यकतानुसार अग पर एक या अधिक स्लैव रख चुकने के वाद उसे भीगी पट्टी की सहायता से स्थिर कर दिया जाता है। तत्पश्चात इसके ऊपर प्लास्टर की भीगी पट्टी की तहे इस प्रकार लगाई जाती हे कि उपयुक्त मोटाई का सुदृढ व सुरूप साँचा तैयार हो जाय। इस साँचे के स्वरूप मे एक सामानता होनी चाहिए तथा यह अनावश्यक रूप से मोटा या भारी नही होना चाहिए। यह

इस प्रकार लगाना चाहिए कि क्षत स्थल से निकटस्थ (proximal) व दूरस्थ (distal) दोनों संधियाँ भी उसमें आ जाएं, ताकि आहत भाग पूर्णत निश्चेष्ट हो जाए। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि साँचे में बंद करते समय ये संधियाँ अधिकतम क्रियात्मक उपयोगिता (maximum functional utility) की स्थिति में हो।

यदि शरीर पर लगाए गये पेरिस प्लास्टर का शीघ्र सूखना अपेक्षित हो तो पट्टी भिगोने के लिए प्रयुक्त पानी में थोड़ा साधारण नमक मिला देना चाहिए। इसके विपरीत प्लास्टर के धीरे जमने के लिए पानी में बोरेक्स (Borax) मिलाना चाहिए।

यदि किसी शाखाअंग के आहत होने के तुरन्त बाद ही उस पर साँचा लगाया गया हो तो यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्लास्टर और त्वचा के मध्य रुई की एक मोटी तह अवश्य रखी गई हो। कारण यह है कि अवघात के कुछ समय पश्चात क्षत अंग का शोफयुक्त होना अवश्यम्भावी है। यदि साँचे में रूई की तह न हो तो इस सूजन का ऊतकों पर भारी दबाव पड़ेगा जिसका अवाँछनीय परिणाम होगा। इसके अतिरिक्त उपरिस्थ तंत्रिकाओं, अस्थि उत्सेधों एवं भारवाहक बिंदुओं (weight bearing points) को भी रूई अथवा नमदे (felt) की गद्दियों से सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। यदि साँचे में भीतर कोई खुला घाव विद्यमान हो तो उससे होने वाला स्राव एकत्र न हो कर प्लास्टर द्वारा अवशोषित हो जाता है। इस प्रकार उस भाग में निस्त्वचन (excoriation) होने या कणिकोतक के शोफयुक्त होने की सम्भावना नहीं रहती।

किसी शाखाअंग में प्लास्टर साँचा लगाने के बाद रोगी को निम्नलिखित निर्देश देना आवश्यक है। (अ) निश्चलीकृत शाखाअंग को अध स्थिति शोफ (dependency oedema) से बचाने के लिए साँचा लगाने के बाद २४ घंटे तक ऊँचा उठा कर रखो। यदि आवश्यकता हो तो इस प्रयोजन के लिए शैया में विश्राम करो। (आ) यदि साँचा बहुत तंग प्रतीत हो तथा अंग को ऊँचा उठाने पर भी यह प्रतीति यथापूर्व बनी रहे तो तुरत चिकित्सक को सूचना दो। प्लास्टर के तंग होने के चिन्ह प्राय हाथ-पैरों की अंगुलियों में पाये जाते हैं। ये निम्नलिखित है—अँगुलियों का ठंडा, सुन्न या नीला पड़ना, उनमें तीव्र पीड़ा होना, उनकी गति की असमर्थता। (इ) शाखाअंग की अँगुलियों को तथा उन सभी संधियों को जिन्हें निश्चलन किया गया हो, बारम्बार हिलाओ और चलाओ।

यदि सांचा-बद्ध अग मे दवाव-सूचक चिन्ह दिखाई पडे तो सम्पूर्ण सांचे को अनुदैर्घ्य दिशा मे विपाटित (split) करना आवश्यक होता है। यदि रोगी को प्रेक्षणगत (under observation) रखना सम्भव न हो तो साँचा लगाने के वाद उसे शीघ्र ही विपाटित कर देना श्रेयस्कर है, ताकि कालान्तर मे उत्पन्न होने वाली सूजन के कारण ऊतको को फैलने का अवसर मिल जाए। यदि रोगी प्लास्टर-सांचे मे वद भाग मे पीडा प्रतीत करे तो तुरत उस अग का दवाव-चिह्नो की उपस्थिति के लिए निरीक्षण करना चाहिए। दवाव के कारण ऊतको मे परिगलन उत्पन्न होने से एक जटिल स्थिति उत्पन्न हो जाती है। साँचा लगाने के कुछ दिन वाद अवघात के प्रति ऊतको की प्रतिक्रिया का ह्रास (subside) हो जाता है तथा शाखाअग का शोफ घट जाता है और पेशी-क्षय (muscular wasting) होने लगता है। फलस्वरूप साँचा ढीला पड जाता है और उसे वदलने की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है।

क्षत (Wounds)

अभिघात किसी प्रकार का हो, उससे मृदु ऊतको (soft tissues) को कुछ क्षति व नाश अवश्य पहुँचता है। मृदु ऊतको के घाव सवृत (closed) अथवा विवृत (open) हो सकते है। सवृत घावो मे त्वचा अक्षत (intact) रहती है।

सवृत अभिघात (Closed injuries)

सवृत अभिघातो का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

नील (Contusion)—यहाँ त्वचा तो अक्षत रहती है, किन्तु त्वचा के नीचे स्थित मृदु ऊनको मे रक्तस्राव तथा शोफ उत्पन्न हो जाता है। रक्त-परिस्राव (extravasation) के कारण त्वचा का रग नीलाभ पड सकता है। यदि किसी वडी रक्तवाहिका को क्षति पहुँची हो तो त्वचा के नीचे रक्त-सग्रह (haematoma) वन जाता है।

मोच (Sprain)—यह किसी स्नायु (ligament), कण्डरा (tendon) या पेशी-तन्तु के विदीर्ण (tear) होने के कारण होती है। इस दशा मे ऊतको मे रक्तस्राव व शोफ उत्पन्न हो जाता है तथा अग मे कार्यहीनता (loss of function) आ जाती है।

विस्फोट अभिघात (clast injury)—सहसा शक्तिशाली विस्फोट के कारण वायु मे धनात्मक व ऋणात्मक दवाव की तरगे उत्पन्न होती है। जव ये शरीर के अनावरित (exposed) भागो से टकराती है तो लघुरक्तवाहिकाए क्षति-

ग्रस्त हो जाती है और फलस्वरूप उस अग के व्यापक रूप से रुधिराक (petechial) उत्पन्न हो जाते हैं। यदि अभिघात गम्भीर हो तो रोगी की मृत्यु तक हो सकती है।

विवृत अभिघात

इनमे त्वचा विदीर्ण या नष्ट हो जाती है। इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जाता है।

छेदित क्षत (Incised wounds)—ये प्राय तेज धार वाले शस्त्रो के कारण होते हैं तथा फलस्वरूप इनके किनारे कटे-फटे नही होते। घाव के निकटवर्ती ऊतक क्षतिहीन रहते हैं।

विदीर्ण क्षत (Lacerated wounds)—ये कुण्ठित (blunt) हथियारो के कारण होते हैं। इनकी परिधि अनियमित व कटी-फटी होती है तथा घाव के किनारे नीलयुक्त (bruised) या परिगलित होते है। इन घावो मे त्वचा का भी कुछ अग लुप्त हो सकता है।

वेधित क्षत (Puncture wounds)—इनका कारण गोली लगना या तीव्र नोक वाले हथियारो मे चोट लगना है। इनका प्रवेश क्षत (entrance wound) आकार मे छोटा होता है, तथा क्षत का पथ (track) सकीर्ण व गहरा होता है। ऐसे क्षतो मे गभीर ऊतको को गम्भीर क्षति पहुँचने की सम्भावना रहती है। यदि प्रवेश क्षत व निर्गम क्षत (exit wound) दोनो विद्यमान हो तो यह विद्ध क्षत (perforating wound) कहलाता है।

क्षतो के प्रभाव

जव शरीर के किसी भाग को अभिघात पहुँचता है तो वहाँ अध स्थित (underlying) ऊतको मे रक्तस्राव व सीरम-परिस्राव के कारण कुछ सूजन उत्पन्न हो जाती है। यदि यह सूजन अत्यधिक हो तो इसके दवाव से रक्त-सम्भरण मे वाधा पडने के कारण ऊतको का परिगलन हो सकता है। इसके अतिरिक्त गभीर ऊतको, यथा रक्तवाहिकाओ, तन्त्रिकाओ, कडराओ, अस्थियो व विभिन्न आतरिक अगो को भी क्षति पहुँच सकती है। क्षति के कारण रक्त-हानि (blood loss) भी हो सकती है। यदि यह वाहर से ही स्पष्ट हो तो यह वाह्य रक्तस्राव (external hemorrhage) कहलाता हैं, किन्तु यदि यह गभीर ऊतको मे ही हो, वाहर से दिखाई न पडे, तो इसे आभ्यतर रक्तस्राव (internal hemorrhage) कहते हैं। क्षत के कारक, उसकी समीपवर्ती त्वचा

अथवा उसकी प्राथमिक चिकित्सा के लिए प्रयुक्त पट्टी आदि से क्षत के सक्रमित होने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त क्षति के कारण त्वचा व अन्य ऊतको की सक्रमण-प्रतिरोध शक्ति भी कम हो जाती है तथा फलस्वरूप सक्रमण होने की आशका वढ जाती है। आरम्भ मे यह सक्रमण केवल उपरिस्थ(superficial) ही होता है, ऊतको मे सस्थापित तथा वहुगुणित होने मे इसे लगभग छ घटे लगते हैं। अत यह समय (क्षति उपरान्त छ घटे) घाव को साफ व निमीलित करने, अथवा उसमे से विनष्ट ऊनक व आगन्तुक शल्यो को निकालने के लिए सर्वोत्तम है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये कार्य इस समय के भीतर ही सम्पन्न कर लिए जाएँ, अन्यथा गम्भीर जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। स्थानीय क्षत की चिकित्सा करते समय शरीर के अन्य अगो का निरीक्षण भी कर लेना चाहिए, ताकि उनमे भी कोई अभिघातजन्य क्षत विद्यमान हो तो वे उपेक्षित न रह जाए।

चिकित्सा

प्राथमिक उपचार

प्राथमिक उपचार की विधि सरल किन्तु प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। क्षत को किसी स्वच्छ पदार्थ से ढक देना चाहिए तथा यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो स्राव विन्दु पर पट्टी रखकर उस स्थान को अगुली से दवा देना चाहिए। टूर्निके का प्रयोग कम से कम तथा केवल उन रोगियो मे करना चाहिए जिनके अग से इतना अधिक स्राव हो रहा हो कि साधारण दवाव से बन्द न हो। प्राथमिक उपचार के पश्चात् रोगी को शीघ्र ही समीप के अस्पताल मे ले जाना चाहिए, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि रास्ते मे रोगी को और अधिक अभिघात न लगे।

सवृत क्षत (Closed wounds)

अभिघात स्थल का आसन्न परिगलन (impending necrosis) के चिह्नो की उपस्थिति के लिए ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना चाहिए। यदि कालातर मे आहत स्थल की त्वचा के विनष्ट (damaged) होने की सम्भावना हो तो उस स्थान पर सम्पीडन पट्टी (compression dressing) अथवा हो सके तो स्प्लिट (splint) लगा देना चाहिए।

अभिनव विवृत क्षत (Recent open wounds)

इन क्षतो मे सदूपण की उपस्थिति अवश्यम्भावी होती है। चिकित्सा का उद्देश्य इन्हे शीघ्रातिशीघ्र एक स्वच्छ क्षत का रूप प्रदान करना है। अत चिकित्सा करते समय अपूति का पूरा ध्यान रखना चाहिए। क्षत की परीक्षा करने से पूर्व मास्क पहन लेना चाहिए तथा केवल निर्जीवाणुक यन्त्रो व ड्रेसिगो का ही प्रयोग करना चाहिए। रोगी को उपयुक्त विधि से सवेदनाहरित (anaesthetised) करके घाव को एक निर्जीवाणुक ड्रेसिग से ढक देना चाहिए तथा निकटवर्ती स्थान पर उस्तरा और साबुन से सफाई करके वहां पूतिरोधी घोल पोत देना चाहिए।

क्षत की चिकित्सा का सबसे बडा महत्त्वपूर्ण अग उस का उच्छेदन (excision) है। इसका लक्ष्य सभी आगन्तुक शल्यो व निर्जीव ऊतको को घाव से निकाल देना है। यदि निर्जीव ऊतक (devitalised tissues) का अपनयन (removal) न किया जाय तो उसके सक्रमित व परिगलित होने से जटिलता उत्पन्न हो जाती है। अत क्षत के प्रत्येक स्तर का क्रमपूर्वक निरीक्षण करके विचार करना चाहिए कि वह स्वस्थ है अथवा परिगलित।

यदि त्वचा बुरी तरह नष्ट हो गई हो तो उसे उच्छेदित (excise) कर देना चाहिए। किन्तु स्वच्छ-कटे (clean cut) क्षतो मे केवल त्वचा के किनारो से एक पतली धज्जी (cthin strip) का उच्छेदन ही पर्याप्त है। वसा और अधस्त्वचा ऊनक का उच्छेदन तभी करना चाहिए जब वे विवर्ण (discol-oured) हो गये हो या उनमे आगन्तुक शल्य विद्यमान हो। प्रावरणी (fascia) का किनारा अनियमित या कटा-फटा हो तो उसे कतर देना चाहिए। पेशी-ऊतक की जीवनक्षमता का अनुमान उसके रग, सकुचनशीलता (contractility) तथा काटने पर रक्तस्राव होने या न हाने से लगाया जाता है। यदि उसका रग गोधूलि-लाल (dusky red) पड गया हो, वह सकुचनशील न रहा हो तथा काटने पर उससे रक्त न निकले तो यह इस बात का प्रमाण है कि वह विनष्ट (damaged) हो गया है। कडराओ (tendons) का उच्छेदन तभी करना चाहिए यदि उनका अधिकाश भाग नष्ट हो गया हो। आपरेशन करते समय तन्त्रिकाओ को यथासम्भव सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिए, यदि उनके किसी भाग को काटना ही पडे तो केवल सुस्पष्टत सदलित (crushed) या विदीर्ण (torn) खडो को ही उच्छेदित करना चाहिए। यदि कोई मुख्य वाहिका क्षतिग्रस्त हो गई हो तो सीवन द्वारा उसकी मरम्मत की जा सकती है, किन्तु अगो के उपरिस्थ क्षतो मे वाहिकाओ को नि शक बन्धित (ligature)

किया जा सकता है। अस्थि के टुकडो का अपहरण (removal) कम से कम करना चाहिए, और वह भी जब वे ऐसे श्लथ खडो (loose pieces) के रूप मे हो जो पेशी अथवा पर्यस्थिकला (periosteum) से आबद्ध न हो। यह एक मूल सिद्धान्त है कि ऊतक चाहे किसी भी प्रकार का या कितने ही महत्त्व का हो, यदि वह निर्जीव हो गया हो तो उसका अपहरण आवश्यक है।

क्षत (wound) के निमीलन की एक सरल विधि ऊतको की विभिन्न स्तरो को पृथक् सीवित करना है। सीवन के समय ध्यान रखना चाहिए कि टाँको पर अनुचित तनाव न पडे, अन्यथा क्षत-कोरो (wound edges) के परिगलन की आशका रहती है। यदि क्षत-स्थल पर विस्तृत त्वचा-हानि (skin loss) हुई हो तो उस स्थान को त्वचा निरोप (skin graft) द्वारा विरोहित किया जा सकता है। यदि रोगी की दशा अत्यन्त गम्भीर हो अथवा चिकित्सा-विलम्ब या व्यापक सदूषण के कारण क्षत मे सक्रमण होने की आशका हो तो घाव को स्वच्छ व उच्छेदित करके छोड देना चाहिए तथा सीवन 5-8 दिन पश्चात् करनी चाहिए। इस सीवन को द्वितीयक या विलम्बित सीवन कहते है। यदि तत्रिकाओ व अन्य गभीर ऊतक भी क्षतिग्रस्त हो गये हो तो उनकी विरोही शल्य-चिकित्सा (repartive surgery) कुछ समय पश्चात् की जा सकती है। आपरेशन के पश्चात् अग के सतोपपूर्ण विरोहण के लिए उसे विश्राम देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त रोगी को टिटेनस-निरोध के लिए टिटेनस प्रतिविष भी देना चाहिए। यदि क्षत मे सक्रमण वर्धित होने की सम्भावना हो तो एटीबायोटिक भी देने उचित है।

सक्रमित क्षत (Infected wounds)

आरम्भ मे सभी क्षत सक्रमणयुक्त होते है, किन्तु उनमे विद्यमान जीवाणु उपरिस्थ स्तर पर ही स्थित होते है। कुछ घटो के पश्चात् ये जीवाणु प्रफलित होकर गभीर ऊतको की ओर अग्रसर होने लगते है। इस क्रिया मे परिगलित ऊतक अथवा आगतुक शल्य की उपस्थिति से विशेष योग मिलता है। सक्रमण के कारण क्षत सूज जाता है, उसका पृष्ठ आर्द्र हो जाता है तथा उसमे पीडा होने लगती है। धीरे-धीरे परिगलित ऊतक की मात्रा बढती जाती है और क्षत-स्थल पर सूजन, ऊतिशोथ (cellulitis), पीडा और दाब वेदना (tenderness) उत्पन्न हो जाती है। तीव्र दशाओ मे लसीकावाहिनीशोथ (lymphangitis) या प्रादेशिक (regional) लसीकापर्वशोथ भी हो जाता है, जो विवर्धित और स्पर्शासह्य लसीकापर्वों के रूप मे अभिव्यक्त होता है। जब तीव्र सक्रमण की

अवस्था नियन्त्रण मे आ जाती है तो ऊतको की परपोषी प्रतिक्रिया (host reaction) की सहायता से क्षत-तल मे स्थित परिगलित द्रव्य पृथक होने लगता है। शीघ्र ही क्षत-पृष्ठ (wound surface) स्वस्थ, गुलाबी और महीन कणिकोतक से आच्छादित हो जाता है। यह कणिकोतक क्षत की सक्रमण मे रक्षा करता है, तथा उपकला की वृद्धि के लिए आधार प्रदान करता है। यह वृद्धि क्षत-कोर (wound edge) मे आरम्भ होती है। अन्ततोगत्वा उपकला सम्पूर्ण क्षत स्थल पर फैल जाती है तथा इस प्रकार क्षत पूर्णत विरोहित हो जाता है। यदि क्षत मे स्वस्थ कणिकोतक विद्यमान हो तो उस पर त्वचा निरोप (graft) भी स्थापित किए जा सकते हैं। क्षतो का कणिकोतक अस्वस्थ होता है। यह फीका, उभरा हुआ तथा सहज रक्तस्रावी होता है।

सक्रमित क्षतो की चिकित्सा

सक्रमणयुक्त क्षतो की चिकित्सा का उद्देश्य सक्रमण को स्थानीकृत करना, क्षत-स्थल को स्वच्छ करना और परिगलित द्रव्य व आगन्तुक शल्यो का अपनयन करना तथा क्षत को निमीलन-योग्य वनाना है। स्थानीय रूप से क्षत को केवल इतना वडा वनाना चाहिए जितना गलिता द्रव्य के अपहरण के लिए आवश्यक हो। ऐसा करते समय क्षत के आकार मे वृद्धि नही करनी चाहिए, अन्यथा सक्रमण का क्षेत्र विस्तृत हो जाएगा। उस अग को स्प्लिन्ट की सहायता से पर्याप्त विश्राम प्रदान करना चाहिए तथा उन्नमित (elevated) रखना चाहिए। क्षत की निकास-क्रिया मे वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए तथा क्षत-स्थल पर अपूतिक ड्रेसिग (aseptic dressing) का अनुप्रयोग करना चाहिए। ड्रेसिग के लिए पूतिरोधी घोल मे भीगी गौज का प्रयोग पर्याप्त रहता है। यह ड्रेसिग प्रतिदिन वदलना चाहिए। जव स्प्लिन्ट व ड्रेसिग के प्रयोग से क्षत की दशा सुधर जाय तथा सक्रमण नियन्त्रित हो जाय तो क्षत का द्वितीयक निमीलन (secondary closure) किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो सक्रमण के नियन्त्रण के लिए एटीवायोटिको का प्रयोग भी किया जा सकता है।

क्षत-चिकित्सा मे एटीवायोटिको का प्रयोग

इस सन्दर्भ मे क्षतो को तीन वर्गो मे वाँटा जा सकता है।

शस्त्रकर्म द्वारा क्षत (operation wounds)

यह उल्लेखनीय है कि एटीवायोटिको के उपलब्ध होते हुए भी आपरेशन-शाला मे अपूतिक साधनो का उचित उपयोग अनिवार्य है। उदाहरणत समस्त

शल्य-यन्त्रो व ड्रेसिंग पदार्थों का निर्जीवाणुकरण, आपरेशन से पूर्व हाथो को भली प्रकार साफ करना, नाक व मुँह को मास्क से ढकना, रोगी के शस्त्रकर्म क्षेत्र को आपरेशन के लिए विधिपूर्वक तैयार करना, आपरेशन-थियेटर की वायु को सदूषणरहित रखना, आपरेशन के समय ऊतको को कोमलतापूर्वक व्यवहृत करना, रक्तस्तम्भन (hemostasis) का ध्यान रखना, सीवन लगाते समय रेशम की न्यूनतम मात्रा का प्रयोग करना—इन सब का अपना ही विशेष महत्त्व है।

क्षत-चिकित्सा मे एटीबायोटिको के नित्य प्रयोग (routine use) की आवश्यकता नही होती। वास्तव मे ऐसा करना यह स्वीकृत करने के समान है कि आपरेशन-थियेटर मे पर्याप्त अपूति के आयोजन का अभाव है। किन्तु जिन आपरेशनो मे बहुत समय लगता है, उदाहरणत मस्तिष्क व हृदय के आपरेशन तथा ग्रीवा, वक्ष व स्तनो के सन्धान आपरेशन, उनमे एटीबायोटिको का प्रयोग अनिवार्य सा ही होता है। कारण यह है कि दीर्घकाल तक वायु के ससर्ग मे आने के कारण इन आपरेशनो मे क्षत-सक्रमण की सम्भावना बहुत बढ जाती है। आपरेशन क्षतो मे सक्रमण के लिए अधिकतम उत्तरदायी जीवाणु स्टेफिलो-कोकस होते हैं, जो वायु मे अथवा रोगी की त्वचा मे पाए जाते है। कई स्टेफिलोकोकस पेनिसिलिनरोधी, किन्तु निओमाइसिन के प्रति सुग्राही होते है। उनके नियन्त्रण के लिए क्षत का निमीलन करते समय उस पर निओमाइसिन का ३० प्रतिशत मिश्रण तथा बेसिट्रेसिन का २००० यूनिट/प्रति मिलीलिटर घोल महीन फुहार के रूप मे अनुप्रयुक्त करना चाहिए।

संदूषित क्षत (Contaminated wounds)

शरीर के कुछ स्थानो पर किए गये आपरेशनो मे सदूषण अवश्यम्भावी होता है। इनके उदाहरण आँख, नाक, कान, गला, ग्रासनली, जठरात्र क्षेत्र, योनि तथा शिश्न हैं। इस कारण इन सभी अगो के आपरेशन-क्षतो के सक्रमित होने की आशका होती है, किन्तु इनमे सदूषणकारी जीवाणु भिन्न होते है। उदाहरणत. नाक मे स्टेफिलोकोकस और अरक्तसलायी स्ट्रेप्टोकोकस, मुँह मे अरक्तसलायी और वातनिरपेक्षी स्ट्रेप्टोकोकस, तथा जठरात्र क्षेत्र मे कोलाई (coli) तथा क्लोस्ट्रिडियम वर्ग के जीवाणु (यथा क्लो० वेल्शाइ) क्षतो को सदूषित करते है। इनके अतिरिक्त यदि रोगी को चिरकारी पायरिया हो तो स्पायरोकीट (spirochaetes) और फ्यूजिफार्म दण्डाणु (fusiform bacilli) भी मुख मे विद्यमान होते है। उपरिलिखित विभिन्न जीवाणुओ से बचाव के

लिए आपरेशन क्षतो पर स्थानीय रूप से नीओमाइसिन-वेसीट्रैसिन-मिश्रण की फुहार करनी चाहिए तथा शस्त्रकर्मोत्तर काल मे रोगी का पेनिसिलिन व स्ट्रेप्टो-माइसिन का आन्त्रेतर सेवन (parenteral administration) कराना चाहिए। आपरेशन क्षतो के अतिरिक्त ऐसे साधारण क्षतो व दाहों का भी, जिनमें उपरिस्थ सदूषण (superficial contamination) विद्यमान हो, इसी भाँति उपचार करना चाहिए।

सक्रमित क्षत

सक्रमण के प्रचण्ड प्रसार को रोकने के लिए तथा अन्य स्थानों मे जीवाणुओं को सस्थापित न होने देने के लिए सर्वांगी रसायन-चिकित्सा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। यदि सम्भव हो तो सक्रमण के लिए उत्तरदायी जीवाणुओं की विभिन्न एटीवायोटिको के प्रति सवेदनशीलता की परीक्षा भी कर लेनी चाहिए तथा उपयुक्त एटीवायोटिको का प्रयोग ही करना चाहिए। किन्तु सर्वांगी रूप मे प्रयुक्त एटीवायोटिको का विद्रधि मे उपस्थित जीवाणुओ पर कोई प्रभाव नही पडता। अतः विद्रधि का छेदन और निकास (incision & drainage) आवश्यक होता है। इस विधि द्वारा विद्रधि मे से पूय और परिगलित ऊतक निकल जाता है। फलस्वरूप ऊतको का तनाव घट जाता है और उनमे रक्त-सचरण बढ जाता है। इस प्रकार विद्रधि के द्वितीयक विरोहण मे पर्याप्त सहायता मिलती है। एटीवायोटिको के सर्वांगी प्रयोग के अतिरिक्त यदि पूय-अपहरण के पश्चात् विद्रधि मे स्थानीय रूप से भी ये औषधियाँ एक या अधिक वार प्रविष्ट कर दी जाए तो सक्रमण के नियन्त्रण मे बहुत सहायता मिलती है।

शल्यविज्ञान मे ऊतिपरीक्षण

ऊतिपरीक्षण अथवा बायोप्सी (biopsy) वह विधि है जिसके द्वारा जीवित शरीर से ऊतक का एक छोटा टुकडा निकाल कर उसकी परीक्षा की जाती है। सर्जरी के क्षेत्र मे यह निदान का एक महत्त्वपूर्ण साधन है तथा इसका उपयोग अर्बुदो (tumours) एव अन्य विक्षतियो (lesions) के निदान की पुष्टि के लिए किया जाता है।

विधियाँ

ऊतक का अपनयन निम्नलिखित विधियो द्वारा किया जा सकता है —

उच्छेदन (Excision)—इसे अच्छिन्न ऊतिपरीक्षण भी कहते हैं। इसका

उद्देश्य ऊतक के एक छोटे टुकडे को परीक्षा के लिए प्राप्त करना है। यदि ऊतक के अर्बुदीय होने का सन्देह हो तो वायोप्सी के लिए उसका उच्छेदन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि ऊतक पिंड का अपहरण विक्षति (lesion) के किनारे से इस प्रकार किया जाय कि सामान्य तथा अपसामान्य (abnormal) दोनो प्रकार का ही ऊतक-खड प्राप्त हो जाए। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राप्त ऊनक पिड आकार मे इतना छोटा न हो कि वह सम्पूर्ण विक्षति का प्रतिनिधित्व न कर सके तथा दुर्दम कोशिकाओ (malignant cells) के प्रसार के सम्वन्ध मे उपयुक्त जानकारी प्रदान न कर सके। इससे स्पष्ट है कि ऐसा अश जो केवल विक्षति (lesion) के परिगलित भाग से लिया गया हो, अर्थहीन होता है। यदि विक्षति आकार मे छोटी हो तो वायोप्सी व जाँच के लिए उसका पूर्णउच्छेदन भी किया जा सकता है।

चूषण (Aspiration)—कुछ काल से सर्जरी के क्षेत्र मे चूषण द्वारा वायोप्सी प्राप्त करने की क्रिया काफी प्रचलित हो गई है। ऐसा करने के लिए एक चौडे वोर (bore) की सूचिका का प्रयोग किया जाता है, जिसका सामान्य प्रारूप विम-सिल्वरमैन सूचिका (Vim-Silverman needle) है। इसके प्रयोग के उदाहरण निम्नलिखित हैं यकृत रोगो की जाँच के लिए यकृत की चूषण-वायोप्सी, काला-अजार के निदान के लिए प्लीहा की चूषण-वायोप्सी, आदि। अर्बुदीय विक्षतियो के निदान के लिए भी इसका व्यापक प्रयोग किया जाता है। यह विधि इतनी सरल है कि वहिरग रोगी विभाग मे भी यह सम्पन्न की जा सकती है। इसका एक अन्य विशेप लाभ यह है कि वक्ष अथवा अस्थि आदि की गभीर विक्षतियो की वायोप्सी एक व्यापक सवृत आपरेशन के बिना ही उपलब्ध हो जाती है। चूषक विधि द्वारा प्राप्त ऊतक को जाँच-हेतु या तो स्लाइड पर लेपित (smear) व अभिरजित (stain)किया जा सकता है, अथवा स्थायीकर (fixative) घोल मे अभिकृत करके उसका परिच्छेदन (sectioning) किया जा सकता है।

पच बायोप्सी (Punch biopsy)—शरीर के ठोस अगो मे वायोप्सी के लिए पच विधि उत्तम रहती है। यकृत रोगो, यथा अर्बुद, की जाँच के लिए यह विशेप उपयोगी सिद्ध हुई है। शल्य-कामला (Surgical jaundice) का वैद्यक कामला से तथा अपवृक्कीय सलक्षण (Nephrotic syndrome) का स्तवकीवृवकशोथ (glomerularn ephritis) व वृक्क वाहिका रोगो (renal vaseular diseases) से विभेद करने मे भी पच बायोप्सी उपयोगी होती है।

विपत्रित कोशिकाविज्ञान (Exfoliative cytology)—यह विधि ऐसे

स्थानो के कैंसर के निदान मे विशेष उपयोगी व लोकप्रिय सिद्ध हुई है जिनकी विक्षतियो से वैकृत जाँच (pathological examination) के लिए निदर्श (specimen) प्राप्त करना कठिन होता है। ये स्थान गर्भाशय काय, निम्न श्वसन तन्त्र व जठरांत्र क्षेत्र है। इन स्थानो मे चूषित (aspirated) द्रव की जाँच से महत्त्वपूर्ण सूचना मिल सकती है। किन्तु इसके लिए जाँचकर्ता का भली-प्रकार प्रशिक्षित होना आवश्यक है। यदि इस विधि मे धनात्मक परिणाम (positive result) मिले तो भी इनकी पुष्टि ऊतक बायोप्सी द्वारा करनी चाहिये।

बायोप्सी की विधि कोई भी हो, उसकी जाँच के लिए एक कुशल विकृति विज्ञानी की सेवाओ का उपलब्ध होना आवश्यक है। यदि तुरन्त निदान अनिवार्य हो तो ऊतक का हिमीभूत परिच्छेद (frozen section) किया जा सकता है। इस विधि द्वारा प्राय कुछ मिनटो मे ही विकृति विज्ञानी यह बतला देता है कि ऊतक-विशेष अर्बुदीय (neoplastic) है या अनर्बुदीय, तथा अर्बुदीय है तो सुदम (benign) है अथवा दुर्दम (malignant)। किन्तु सम्भव है कि इस विधि द्वारा अर्बुद का परिशुद्ध वर्गीकरण (precise classification) न किया जा सके। यदि ऊतक की तुरन्त जाँच की आवश्यकता न हो तो उसे 40 प्रतिशत फार्मेलिन-सेलाइन (formalin-saline) मे स्थायीकृत करके विकृति विज्ञानी के पास भेज देना चाहिए।

विकृति विज्ञानी के पास जाँच के लिए ऊतक निदर्श (specimen) भेजते समय यह आवश्यक है कि रोगी के अभिलक्षणो का सक्षेप भी उसके पास भेजा जाए। अन्यथा वह ऊतक की जाँच के लिए उचित वैकृत प्रविधि (pathological technique) का चुनाव करने तथा रोग का सही निदान करने मे असमर्थ रहेगा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि विकृति विज्ञानी की रिपोर्ट नकारात्मक हो किन्तु क्लिनिकल आधार पर दुर्दम अर्बुदीय होने का प्रबल सन्देह हो तो पुन बायोप्सी करके इस सन्देह का निराकरण कर लेना चाहिए।

बायोप्सी के सूचक (Indications for biopsy)

बायोप्सी से निम्नलिखित अवस्थाओ मे विशेष सूचना मिलती है अर्बुद— सुदम तथा दुर्दम अर्बुद मे भेद करने के लिए। जो सुदम अर्बुद कालांतर मे दुर्दमता (malignancy) ग्रहण करने की प्रवृत्ति रखते है उनमे यह विभेद विशेष आवश्यक होता है। ऐसा एक उदाहरण मलाशय पोलिप (rectal polyp)

है, (आ) दुर्दम अर्बुद के लिए गम्भीर वा व्यापक आपरेशन करने से पूर्व निदान की पुष्टि के लिए; (इ) अर्बुद की चिकित्सा की सर्वोत्तम विधि खोजने मे सहायता के लिए। अर्बुद-कोशिकाओ के सूक्ष्मदर्शी अभिलक्षणो से रेडियम सुग्राहिता का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार यह निश्चय करने मे सहायता मिलती है कि अर्बुद की शल्य-चिकित्सा की जाए या रेडियम-चिकित्सा (radiotherapy)।

लसीका पर्व—अनेक रोगो मे व्यापक लसीकापर्व-विवर्धन तथा प्लीहा अतिवृद्धि पाई जाती है। इनके परिशुद्ध निदान मे लसीकापर्व बायोप्सी से पर्याप्त सहायता मिलती है। बायोप्सी के लिए ग्रीवा तथा कक्ष (axilla) के पर्व उचित रहते है, किन्तु वक्षण पर्वों (inguinal nodes) से विशेष सहायता नही मिलती। कारण यह है कि अध शाखा-अगो के बारम्बार अभिघात व सक्रमणग्रस्त होने के कारण इन पर्वों मे बहुधा चिरकारी शोथक्रिया पाई जाती है। सन्धि यक्ष्मा (joint tuberculosis) के निदान मे प्रादेशिक लसीका पर्व बायोप्सी पर्याप्त उपयोगी रहती है।

श्वसनीजन्य कार्सिनोमा (bronchogenic carcinoma) के निदान की पुष्टि के लिए स्केलीन पर्व (scalene node) बायोप्सी अत्यन्त उपयोगी रहती है।

अन्य रोग—अन्त गर्भाशय कला की हारमोन अक्रियात्मकता (dysfunction) की जाँच के लिए आखुरित (curetted) ऊतक का अध्ययन प्राय किया जाता है।

आजकल यकृत, वृक्क व जठरान्त्र-श्लेष्मला की विक्षतियो की वैकृत जाँच के लिए ऊतक बायोप्सी का प्रयोग अधिकाधिक किया जा रहा है।

बायोप्सी के खतरे

इस सम्बन्ध मे एक गम्भीर जटिलता यकृत, प्लीहा आदि मे ठोस अभ्यान्तरागो की बायोप्सी के पश्चात् रक्तस्राव का होना है। इसका निराकरण बायोप्सी से कुछ दिन पूर्व रोगी को विटामिन K का सेवन करने तथा बायोप्सी करते समय सावधानी रखने से किया जा सकता है।

कुछ व्यक्तियो का विचार है कि दुर्दम अर्बुद के छेदन से उसके स्थानीय विस्तार (local extension) तथा दूर-विक्षेपन (metastasis) मे योग मिलता है। किन्तु इस बात की क्लिनिकल अथवा प्रायोगिक तौर पर पुष्टि सम्भव नही हो सकी है। यदि अर्बुद के प्रसार की कुछ सम्भावना हो भी तो उसका

निराकरण इस नियम के पालन द्वारा किया जा सकता है कि दुर्दम अर्बुद की बायोप्सी के पश्चात् उसकी शल्य-चिकित्सा अथवा रेडियम-चिकित्सा अविलम्ब आरम्भ कर दी जाए।

शल्यपूर्व तथा शल्योत्तर देखभाल

आजकल शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र मे आपरेशन के पूर्व तथा पश्चात् रोगी की उचित देखभाल का महत्त्व अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है। इस कारण आपरेशनकृत रोगियो की गम्भीरता एव मृत्युदर मे पर्याप्त कमी आ गई है, तथा शिशुओ एव वृद्धो मे भी शल्य-चिकित्सा निरापद हो गई है।

शल्यपूर्व देखभाल

रोगी की दशा का शल्यपूर्व मूल्याकन करने के लिए उसकी आयु, गत रोग वृत्त (history of past illness), वर्तमान अवस्था तथा निर्धारित आपरेशन की प्रकृति—इन बातो का ध्यान रखना होता है। प्रत्येक रोगी का विस्तृत रोग वृत्त ज्ञात करने के अतिरिक्त उसकी कुशल शारीरिक परीक्षा, नित्य (routine) मूत्र परीक्षा, वक्ष एक्सरे तथा रक्त परीक्षा भी करनी चाहिए। अधिकाश रोगियो के लिए, विशेषत. युवा व्यक्तियो के लिए, ये परीक्षण पर्याप्त होते है। किन्तु वृद्धावस्था मे, तथा ऐसे रोगियो मे जिनमे अरक्तता, जल-क्षीणता, कुपोषणता, मधुमेह व गम्भीर हृत्वाहिका, फुफ्फुस या वृक्करोगो के लक्षण हो, और अधिक जाँच की आवश्यकता होती है। यदि शल्यकर्म पूर्व अवस्था मे ही रोगी का सही मूल्याकन कर लिया जाए तो शल्यकर्मोत्तर काल मे होने वाले अनेक गम्भीर उपद्रवो (complications) से बचा जा सकता है।

पोषण अवस्था

शारीरिक वजन मे अत्यधिक कमी तथा चिरकारी अनाहार (starvation) के चिह्नो से युक्त कुपोषित रोगियो मे आपरेशन-अवघात सहने की क्षमता नही होती तथा इस कारण वे अल्पक्षम रोगी कहलाते है। उनमे शल्यकर्मोत्तर उपद्रव होने की सम्भावना अधिक रहती है, यथा अपूर्ण व असन्तोषजनक क्षत-विरोपण, आन्त्रघात (paralytic ileus) आदि। पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने मे भी इन रोगियो को अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

पोषणाभाव (Nutritional deficiency) के निम्नलिखित कारण हो सकते है

(1) अपर्याप्त अन्तर्ग्रहण (उदाहरणत पेप्सी व्रण पथ्य, अनाहार)
(2) वर्धित चयापचय (अवटु अतिक्रियाशीलता, सगर्भता आदि)
(3) अवशोषणहीनता अथवा अत्यधिक पोषण-हानि (जठर निर्गम सकार्णता, स्ट्रिक्चर, वमन, अतिसार तथा कुपोषण सलक्षण)
(४) दोषपूर्ण उपयोग (उदाहरणत मधुमेह)

जो रोगी अनाहार की स्थिति मे हो उन्हे अधिक कैलोरी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा अल्प वसा से युक्त पथ्य देना चाहिए। यदि रोगी की भूख ठीक हो तो यह पथ्य मुख मार्ग से दिया जा सकता है, अन्यथा नली द्वारा उसका सेवन कराना पडता है।

प्रोटीन अभाव

पाचन क्रिया के दौरान अन्तर्ग्रहित प्रोटीन के जलअपघटन (hydrolysis) के फलस्वरूप एमाइनो अम्ल उत्पन्न होते है। ये क्षुद्र आत्र मे अवशोषित होने के पश्चात् शरीर के सघटन मे योग देते हैं। प्लाज्मा मे निम्नलिखित प्रोटीन होते है (1) एल्बुमिन—इसका मुख्य कार्य परासरण दाब (osmotic pressure) को बनाए रखना है, (2) ग्लोबुलिन—यह निरोधक पदार्थो (immune substances), प्रतिपिंडो (antibodies) तथा समूहको (agglutinins) के परिवहन मे योग देता है, (3) फिब्रिनोजन—यह रक्त-आतचन (clotting) के लिए अनिवार्य होता है।

शरीर मे प्रोटीन की कमी से शल्य रोगी मे अनेक गम्भीर उपद्रव उत्पन्न हो सकते है। आपरेशन के फलस्वरूप नाइट्रोजन अपचय की गति बढ जाती है तथा नाइट्रोजन निचय (nitrogen reserve) क्षीण होने लगता है। फलस्वरूप शरीर मे अस्थायी रूप से ऋणात्मक नाइट्रोजन सतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रक्तस्राव, सीरम-हानि तथा पूयता (suppuration) इस ऋणात्मक सतुलन मे वृद्धि करते है। अपर्याप्त प्रोटीन अन्तर्ग्रहण के फलस्वरूप क्षतो के शीघ्र व सुचारु विरोहण मे बाधा पडती है तथा वे मदरोही व्रणो (indolent ulcer) का रूप धारण कर लेते है। अल्पप्रोटीनरक्तता के कारण ऊतको मे शोफकारी प्रवृत्ति बढ जाती है तथा परिणामस्वरूप मयोजन रध्र (anastamotic stoma) के अवरुद्ध होने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त ऐसे रोगियो के यकृत पर भी आपरेशन का हानिकारक प्रभाव पडता है। साथ

मे यदि मिथायोनिन (methionine) व सिस्टीन (cystine) की भी कमी हो तो विपज पदार्थो के प्रति यकृत की प्रभाववश्यता विशेप रूप से वढ जाती हे।

प्रोटीन के साधारण अभाव को दूर करने के लिए भोजन मे 1 ग्राम प्रोटीन प्रति किलोग्राम भार का होना पर्याप्त होता हे। किन्तु गम्भीर अवघात के केसो मे प्रोटीन की विशाल मात्रा (300 ग्राम दैनिक तक) अन्तर्ग्रहित करने की आवश्यकता होती है। यदि केवल साधारण भोजन द्वारा ऐसा सम्भव न हो तो प्रोटीनयुक्त पेय पदार्थों का उपयोग लाभप्रद रहता है। दूध मे सान्द्रित (concentrated) या उपचारित (digested) प्रोटीन पदार्थ मिलाने से ऐसा ही एक उत्तम पेय बन जाता है। मखनिया दूध पाउडर (skimmed milk powder) मे 38 प्रतिशत से अधिक प्रोटीन होती हे तथा यह सस्ता भी होता हे। प्रोटीन से परिपूर्ण एक अन्य तरल खाद्य अडे, मखनिया दूध, शर्करा तथा लवण के मिश्रण से बनाया जा सकता है।

यदि रोगी भोजन उदरस्थ करने मे असमर्थ हो तो अन्य उपायो का सहारा लेना पडता है, यथा नालिका आहार (tube feeding), जठर छिद्रीकरण (gastrostomy), मध्यान्त्र छिद्रीकरण, अन्त शिरा पोषण आदि। अत्यन्त गम्भीर रोगियो मे अन्त शिरा मार्ग द्वारा सम्पूर्ण रक्त, प्लाज्मा, सीरम एल्बुमिन अथवा प्रोटीन जलअपघट्यो (hydrolysates) के आधान की आवश्यकता भी पड सकती है।

चिरकारी रोगियो मे अरक्तता तथा प्रोटीन अभाव की कुछ मात्रा प्राय पायी जाती है। थोडी रक्तहानि भी रोगियो के रक्तदाव मे पर्याप्त कमी ला सकती है। अत ऐसे रोगियो की दशा को 'चिरकारी स्तब्धता' (chronic shock) की सज्ञा दी जाती है। रक्ताधान तथा अधिक प्रोटीन अन्तर्ग्रहण द्वारा उन्हे लगभग सामान्य स्तर पर लाया जा सकता है।

विटामिन अभाव

चिरकारी रोगियो मे लक्षणहीन अथवा सुस्पष्ट अविटामिनता (avitaminosis) की स्थिति पाया जाना साधारण है। उनकी चिकित्सा के लिए विशिष्ट विटामिनो के प्रयोग की आवश्यकता होती है। शल्य रोगियो के नित्य के उपचार मे निम्नलिखित तीन विटामिनो का उपयोग विशेष महत्त्वपूर्ण है।

विटामिन B1, (थायमीन, Thiamine)—इसकी दैनिक मात्रा 10-20 mg होती है, विशेपत ऐसे रोगियो मे जो प्रधानत कार्बोहाइड्रेट-युक्त आहार अन्तर्ग्रहित करते है।

विटामिन C—इस विटामिन का क्षत विरोहण के लिए विशेष महत्त्व है। इसके अभाव को क्लिनिकल दशा अथवा प्लाज्मा स्तर आमापन (assay) द्वारा जाना जा सकता है। प्रतिदिन 500 mg विटामिन C का प्रयोग मुख अथवा आन्त्रेतर मार्ग से करना चाहिए।

विटामिन K—विटामिन K के सतत अभाव के फलस्वरूप यकृत मे प्रोथ्राम्बिन-निर्माण बन्द हो जाता है। इस विटामिन के अवशोषण के लिए आन्त्र मे पित्त का होना आवश्यक है। यही कारण है कि अवरोधी कामला और बाह्य पित्त नालव्रण (external biliary fistula) के रोगियो मे विटामिन K की कमी पाई जाती है। इसके अतिरिक्त जिन रोगियो को दीर्घ काल तक सल्फोनेमाइड या स्ट्रेप्टोमाइसिन का सेवन कराया जाता है उनमे भी विटामिन K का अभाव होता है। कारण यह है कि आँतो मे विद्यमान जीवाणु विटामिन K का निर्माण करते है, किन्तु उपरिलिखित औषधियाँ इस कार्य मे बाधा डालती है अत ऐसे रोगियो को 2-3 दिन तक आन्त्रेतर मार्ग से 5-10 mg विटामिन K प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए।

शस्त्रकर्मपूर्व प्रबन्ध

जहाँ आपरेशन करना हो उस स्थान को उस्तरा करके साबुन व पूतिरोधी पदार्थो से स्वच्छ कर देना चाहिए। आपरेशन से पहले दिन सध्या समय रोगी को हल्का भोजन कराना चाहिए, किन्तु पूर्णत निराहार नही रखना चाहिए। प्रात काल उसे हल्का एनीमा कराना चाहिए। रात्रि मे रोगी के लिए पर्याप्त विश्राम भी आवश्यक है। इस प्रयोजनार्थ उसे निद्राकारी औषधि (hypnotic) की एक खुराक का सेवन कराया जा सकता है। अधीर रोगियो को प्रशान्तको (tranquilizer) का सेवन कराना भी लाभप्रद रहता है। यदि आपरेशन आरम्भ करने मे अत्यधिक विलम्ब हो तो रोगी को 1000-1500 ml 5 प्रतिशत ग्लूकोज का अन्त शिरा आधान देना आरम्भ कर देना चाहिए ताकि शरीर को पर्याप्त कैलोरी तथा जल की प्राप्ति होती रहे। उदर आपरेशन के केसो मे जठर नलिका (gastric tube) का प्रयोग भी करना चाहिए [सवेदनाहरण के अध्याय मे premedication प्रकरण भी देखे]।

आपरेशन के दौरान निम्नलिखित बातो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए—रक्त की हानि, द्रव व विद्युत अपघट्यो (electrolytes) का सतुलन तथा यकृत, वृक्क एव फुफ्फुस की क्रिया। शल्य स्तब्धता (shock) मे बचने के लिए रक्ताधान तथा द्रव व विद्युत-अपघट्यो का प्रतिस्थापन आवश्यक होता

है । इनके अनुप्रयोग का सर्वोपयुक्त समय वह है जब वास्तव मे शरीर से रक्त या द्रव की हानि हो रही हो ।

शस्त्रकर्मोत्तर देखभाल

आपरेशन के वाद रोगियो को शल्यशाला से रिकवरी वार्ड (recovery ward) मे लाते समय रोगी की गर्दन एक ओर मुडी तथा सिर पैरो की अपेक्षा निम्न स्तर पर होना चाहिए। ऐसा करने से प्रत्यावहित (regurgitated) द्रवो का चूषण नही हो पाता । साथ ही श्वासमार्ग का अवरोधरहित होना भी आवश्यक है । जब तक रोगी शल्यशाला या रिकवरी वार्ड मे रहे, उसकी श्वासप्रणाल-श्वसनी प्रणाली को लार व अन्य स्रावो से मुक्त रखने की ओर विशेप ध्यान देना चाहिए । ऐसा तब तक आवश्यक होता है जब तक रोगी पुनः चेतनता प्राप्त न कर ले, अन्यथा फुप्फुस अनुन्मीलन (atelectasis) तथा निमोनिया आदि उपद्रव हो सकते है । रिकवरी वार्ड मे रोगी की शैय्या का पायताना सिरहाने की अपेक्षा ऊँचा रखना चाहिए । इस प्रकार उसकी श्वसनी प्रणाली की सफाई करने, निम्न अगो को शिरीय स्तभन (venous stasis) से बचाने तथा शरीर मे रक्तदाब को स्थिर करने मे सहायता मिलेगी । समय-समय पर रोगी की करवट भी बदलते रहना चाहिए तथा उसे खाँसने तथा दीर्घ श्वास लेने के लिए उत्साहित करना चाहिए । ऐसा करने से फेफडो मे सवातन (ventilation) वृद्धि तथा शल्यकर्मोत्तर फुप्फुस उपद्रवो मे कमी होगी । इसके अतिरिक्त द्रव व रक्त का आधान भी आवश्यकतानुसार तब तक चालू रखना चाहिए जब तक रक्तदवाव व नाडी स्थिर न हो जाॅए तथा द्रव विद्युत अपघट्य सतुलन पुन स्थापित हो जाए ।

आहार

यदि कोई विशेष उपद्रव न हो तो ऑत्रगति (peristalsis) पुन आरम्भ होने के पश्चात् (अर्थात् 2-4 दिन पश्चात्) जठर नलिका को निकाला जा सकता है तथा रोगी को तरल आहार एव मृदु ठोस पदार्थों का सेवन कराया जा सकता है । लगभग एक सप्ताह मे रोगी साधारण भोजन ग्रहण करने योग्य हो जाता है ।

पीड़ा और व्यग्रता

पीडा तथा व्यग्रता से मुक्ति के लिए रोगी को अत पेशी इजेक्शन द्वारा मार्फीन (7 5-15 mg.) या पेथिडीन (75-100 mg) देना चाहिए । प्रथम 24-

48 घन्टे मे आवश्यकतानुसार इस मात्रा की चार घन्टे के कालान्तर पर पुनरावृत्ति की जा सकती है। यदि इस अवधि के पश्चात् भी बेचैनी बनी रहे तो कोडीन, एस्पिरिन आदि मद प्रभावकारी पीडाहर औषधियो का प्रयोग किया जा सकता है।

निम्न जठरांत्र क्षेत्र की देखभाल

शस्त्रकर्मोत्तर काल मे पहले कुछ दिन अल्पावशेष आहार (low residue diet) दिया जाता है, अत 2-3 दिन तक मल-विसर्जन नही होता। इस अवधि मे रोगी के मलाशय का फैलाव (distension) कम करने के लिए मलाशय नलिका (rectal tube) का प्रयोग किया जा सकता है। यदि तीसरे या चौथे दिन भी मल-निष्कासन न हो तो ग्लिसरीन एनीमा का प्रयोग करना चाहिए।

चलनक्षमता (Ambulation)

प्राय सभी सहमत है कि आपरेशनकृत रोगी को शीघ्र चलायमान करने से शस्त्रकर्मोत्तर उपद्रवो मे कमी तथा उल्लाघ (convalescence) मे वृद्धि हो जाती है। बारम्बार इन रोगियो को करवट बदलते रहना चाहिए तथा उन्हे लबा साँस लेने, और खाँसने को प्रोत्साहित करना चाहिए। रोगी की सामान्य दशा आपरेशन की प्रकृति तथा उपद्रवो की उपस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए रोगी को यथाशीघ्र शैय्या से बाहर आने की अनुमति दे देनी चाहिए। कुछ रोगियो को तो उदर-आपरेशन के पश्चात् केवल 24 घटे बाद ही शैय्या से बाहर निकलने की अनुमति निरापद रूप से दी जा सकती है तथा 48 घँटे बाद उन्हे स्नानकक्ष जाने दिया जा सकता है। धीरे-धीरे उन्हे शैय्या से बाहर अधिकाधिक समय तक क्रियाशील रहने की प्रेरणा दी जानी चाहिए।

रोगियो मे, विशेषत वृद्ध व्यक्तियो मे, शीघ्र चलनक्षम होने का अत्युत्तम मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त शस्त्रकर्मोत्तर पीडा तथा उपद्रवो-आत्रघात (ileus), फुफ्फुस उपद्रव, मूत्रावधारण (urinary retention) आदि—मे भी पर्याप्त कमी हो जाती है। शीघ्र चलनक्षमता के कारण शस्त्रकर्मोत्तर रक्तस्राव, क्षत-अग (wound disruption) तथा हर्निया का कोई अतिरिक्त भय नही होता।

क्षत का उपचार

यदि स्थानीय विसर्जन, ज्वर व अत्यधिक पीडा न हो तो शस्त्रकर्मोत्तर

क्षतो की दैनिक ड्रेसिंग की आवश्यकता नही होती। बारम्बार ड्रेसिंग करने से रोगी को कष्ट तो होता ही है, सक्रमण की सम्भावना भी बढ जाती है। अत जब भी पट्टी की जाए तो आपरेशनशाला की भाँति ही सम्पूर्ण अपूतिसाधनो का प्रयोग करना चाहिए, यथा हाथो की सफाई तथा मास्क व दस्तानो का प्रयोग। सीवन का अपहरण प्राय आठवे या नौवे दिन किया जाता है, किन्तु ग्रीवा व चेहरे के आपरेशनो मे 3-4 दिन बाद ही टाँके निकाल देने चाहिएँ।

निकास

क्षत स्थल पर सीरम या रक्त का सग्रह न होने देने के लिए यदि निकासिका लगाई गई हो तो 24-48 घटे बाद उसे निकाल देना चाहिए। किन्तु यदि क्षत से निकास हो रहा हो तो आवश्यकतानुसार निकासिका को अधिक काल तक रखना पड सकता है।

उपद्रव (Complications)

श्वसन उपद्रव

श्वसन तत्र का प्रमुख शस्त्रकर्मोत्तर उपद्रव फुप्फुस अनुन्मीलन (atelectasis) है। यह मुख्य श्वसनी अथवा किसी श्वसनिका के श्लेष्म, स्राव आदि द्वारा अवरुद्ध हो जाने के कारण होता है। इस अवरोध के परे स्थित कोष्ठिकाओ की वायु अवशोषित हो जाती है तथा फलस्वरूप फुप्फुस का अनुन्मीलन हो जाता है। कालातर मे इस क्षेत्र मे सक्रमण का सस्थापन हो जाता है तथा खण्डकीय निमोनिया (lobular pneumonia) उत्पन्न हो जाता है।

क्लिनिकल तौर पर इस उपद्रव का सन्देह तब करना चाहिए जब आपरेशन के पश्चात् प्रथम 48 घटे मे रोगी को 102°F या अधिक ज्वर हो जाए उसकी श्वासदर बढ जाए या कदाचित् उसे श्यावता (cyanpsis) हो जाए। फुप्फुसपात के शारीरिक चिह्न निम्नलिखित है—प्रभावित पार्श्व की ओर मध्यस्थानिका (mediastinum) का वर्तन (shift), मध्यच्छद का उत्थान, परिताडन मदता (percussion dullness), मन्द अथवा लुप्त श्वसन ध्वनि तथा रालो (rales) की उपस्थिति। निदान की पुष्टि मे एक्सरे-चित्रण से पर्याप्त सहायता मिलती है।

अनुन्मीलन का मुख्य कारण अल्पसवातन (hypoventilation) है जो निम्नलिखित कारणो से हो सकता है—आपरेशन स्थल पर पीडा, शामक औषधियों (sedatives) का अत्यधिक सेवन तथा श्लेष्म व अन्य स्रावो के कारण

श्वसन मार्ग मे अवरोध। इस उपद्रव के निरोध के लिए आपरेशन से पूर्व तथा पश्चात् शमन (sedation) मे सावधानी रखनी चाहिए तथा श्वसनी प्रणाली (bronchial tree) को अतिसवातन, बलात् कास (forced cough) व चूषण द्वारा विवृत (patent) रखना चाहिए। यदि व्यापक आपरेशन करना हो, रोगी वृद्ध हो, अथवा आपरेशन के पश्चात् दीर्घकालीन निश्चलीकरण की आवश्यकता हो तो आपरेशन से कुछ दिन पूर्व रोगी को ऐसे श्वास व्यायामो का अभ्यास करा देना चाहिए जिनसे फुफ्फुस सवातन मे वृद्धि हो। रोगी को खाँसने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। चूषण यन्त्र (suction machine) से सम्बद्ध कैथीटर द्वारा अन्त श्वासप्रणाल-चूषण करने से भी रोगी को खासने तथा स्रावो को निष्कासित करने मे सहायता मिलती है। कभी-कभी जिस ओर अवरोध हो उस ओर छाती पर करारी चपत मारने से भी अटकी श्लेष्म-डाट स्थानच्युत हो जाती है। यदि इन प्रयत्नो के उपरात भी श्वास अवरोध बना रहे तो तुरन्त श्वसनीदर्शन (bronchoscopy) करके श्लेष्म-पिंड को निकालना और स्रावो का चूषण करना चाहिए। जिन रोगियो मे अत्यधिक स्राव विद्यमान हो, किन्तु निर्वलता के कारण जो खाँसने मे असमर्थ हो, उनमे श्वासप्रणाल-छिद्रीकरण (tracheostomy) अत्यन्त लाभप्रद रहता है। यदि रोगी के फुफ्फुस मे सपूय रोग हो तो सक्रमण के नियन्त्रण के लिए आपरेशन से पूर्व उसे कुछ दिन उपयुक्त एटीबायोटिको का सेवन कराना चाहिए। अनुन्मीलन की दशा मे भी एटीबायटिको के प्रयोग से प्रभावग्रस्त क्षेत्र मे सक्रमण व निमोनिया का प्रकोप नही होने पाता।

फुप्फुसी अन्त शल्यता

शस्त्रकर्मोत्तर रोगियो मे होने वाला एक ऐसा उपद्रव, जो प्राय चिकित्सक की दृष्टि से चूक जाता है, टागो की शिराघनास्रता (phlebothrombosis) है। यहाँ से उत्पन्न होने वाले अन्त शल्य फुप्फुस मे पहुँच कर गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर सकते है यदि अन्त शल्य छोटा हो तो स्थानीय फुप्फुस रोधगलन (infarction) होता है, यदि यह बृहदाकार हो तो फुप्फुस धमनी मे फँस कर सामूहिक फुप्फुसी अन्तःशल्यता (massive pulmonary embolism) की स्थिति उत्पन्न करता है तथा फलस्वरूप प्राणघातक सिद्ध होता है। लघु धमनियो के अवरोध की अभिव्यक्ति वक्ष-पीडा, श्यावता, श्वासकृच्छ्र (dyspnoea) ज्वर तथा किंचित् रक्तकास (haemoptysis) के रूप मे होती है, यथा कालातर मे परिफुप्फुस नि सरण (pleural effusion) भी उत्पन्न हो सकता है।

सामूहिक फुप्फुस अन्त शल्यता की अवस्था मे वक्ष मे प्रबल सकीर्णन पीडा (constricting pain) व तीव्र श्वसन कष्ट होता है तथा रोगी अतिपात (collapse) की दशा को प्राप्त हो जाता है। ऐसे रोगी की शीघ्र मृत्यु की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—यह भविष्यवाणी करना असम्भव होता है कि अमुक रोगी-विशेष मे फुप्फुस अन्त शल्यता उत्पन्न होगी। अत इसके निरोध के लिए उपयुक्त सावधानी व उपायो का ध्यान रखना आवश्यक होता है। उदाहरणतः सचरणरत रक्त आयतन की मात्रा पर्याप्त रखनी चाहिए ताकि स्तब्धता (shock) उत्पन्न न हो तथा टाँगो मे शिरा स्तम्भन (venous stasis) की स्थिति नही होने देनी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए आपरेशनकृत रोगियो के उदर को अत्यधिक फूलने या बाइडरो (binders) द्वारा अत्यधिक दबाए जाने से बचाना चाहिए तथा रोगियो को यथाशीघ्र शैय्या से बाहर आने की अनुमति देनी चाहिए। अध शाखा अगो का प्रतिदिन घनास्रता (thrombosis) के चिह्नो के लिए निरीक्षण करना चाहिए। यदि घनास्रता के लक्षण प्रतीत हो तो तुरन्त आतचनरोधी (anticoagulents) औषधियो का प्रयोग आरभ कर देना चाहिए तथा आवश्यकता हो तो दोनो और्वी शिराओ को उनके सगम से पूर्व बन्धित (ligate) करने की उपयुक्तता पर विचार करना चाहिए। सामूहिक फुप्फुसी अन्त शल्यता के उपचार के लिए निम्नलिखित का तत्काल उपयोग करना चाहिए आक्सीजन, वेगस के प्रतिवर्ती प्रभावो के प्रतिकार के लिए 1 2 mg एट्रोपीन, निलय विकम्पन (ventricular fibrillation) तथा श्वसनी आकर्ष (bronchospasm) के प्रतिकार के लिए 30 mg अन्त.शिरा पेपेवरीन, हेपेरिन प्रभावन (heparinization)। आपदकालीन अन्त शल्य-उच्छेदन (embolectomy) द्वारा भी कुछ रोगियो को मृत्यु से बचाया जा सकता है।

जठरात्र उपद्रव

वमन—सार्वदेहिक सज्ञाहरण के पश्चात् यदा-कदा वमन होने लगता है। यदि आपरेशन के तुरन्त बाद रोगी को द्रव व आहार का सेवन करा दिया जाए तो वमन की आशका अधिक होती है। मार्फीन के प्रति सवेदनशील रोगियो मे भी वमन की सम्भावना रहती है। पुनरावर्ती व चिरकारी वमन के कारण शरीर से क्लोराइड व द्रव की अत्यधिक हानि हो सकती है। गभीर रोगियो मे जठर-धावन (gastric wash), अविरत जठर, चूषण तथा द्रवो

एव विद्युत-उपघट्यों के उचित प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है ।

विस्फार (Distension)—अन्त उदर आपरेशनो के पश्चात् आँतो की क्रियाशीलता मे कुछ समय के लिए कमी आ जाती है, किन्तु यह अल्पकालिक (paresis) स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो जाती है । इस स्थिति मे आँतो मे संग्रहीत गैस (जिसका 85 प्रतिशत भाग निगरित वायु होता है), अनवशोपित भोजन, लार व जठरात्र स्रावो को नीचे धकेलने के लिए जो आत्रगति होती है उसके फलस्वरूप होने वाली पीडा को गैस पीडा (gas pain) कहते है । आपरेशन के समय अवयवो को रुक्षतापूर्वक व्यवहृत करने, आँतो को अत्यधिक समय तक अनावरित रखने, प्रत्यवपर्युदया क्षेत्र मे रक्तस्राव होने तथा पर्युदर्याशोथ उत्पन्न होने की स्थिति मे यह (paresis) अधिक काल तक रहती है । ज्यो-ज्यो आत्र मे विस्फारन बढता है, उसकी अतानता (atony) मे वृद्धि होती रहती है, अत विस्फारन का निरोध करना आवश्यक होता है । इसी प्रयोजन के लिए आपरेशन के दौरान तथा शस्त्रकर्मोत्तर काल मे भी 2-4 दिन तक जठर चूपण करते रहना चाहिए । रोगी को शीघ्र चलनक्षम वनाने से भी विस्फारन की प्रवृत्ति मे ह्रास होता है । यदि आत्र-विस्फारन का शमन न किया जाए तो आत्रघात (paralytic ileus) का रूप उत्पन्न हो सकता है ।

तीव्र जठर विस्फार—आमाशय का तीव्र विस्फार आपरेशन या अस्थिभग के पश्चात् हो सकता है । जिन रोगियो को मधुमेह या यूरीमिया हो उनमे इसकी सम्भावना अधिक रहती है । आरम्भ मे इसका लक्षण बारम्बार अत्यधिक परिमाण मे भूरे रग का वमन होता है शीघ्र ही रोगी की दशा कष्टमय हो जाती है तथा श्वासकृच्छ्र, श्यावता व हाथ-पैरो की शीतलता उत्पन्न हो जाती है । आमाशय मे द्रव व गैस की विशाल मात्रा का सग्रह हो जाने के कारण वह सस्पर्श्य (palpable) तथा कभी-कभी दृश्य (visible) भी हो जाता है । यदि इस दशा का समय रहते निदान व चिकित्सा न की जाए तो रोगी कालग्रस्त हो सकता है ।

तीव्र जठर विस्फार की चिकित्सा सतत जठर चूषण द्वारा की जाती है । चूपण के कारण होने वाली द्रव-हानि की क्षतिपूर्ति के लिए रोगी के शरीर मे समुचित द्रव-विद्युतअपघट्य सतुलन का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है ।

हिक्का (Hiccough)—हिक्का अथवा हिचकी का कारण मध्यच्छद के अभिवाही तन्त्रिका अतागो का उद्दीपन माना जाता है । यह प्राय उदरीय आपरेशनो तथा मध्यच्छद, जननमूत्र तन्त्र व केन्द्रीय तन्त्रिका तत्र से सम्बन्धित आपरेशनो

के पश्चात् पाया जाता है। प्राय यह अस्थायी होता है, किन्तु कभी-कभी दीर्घकाल तक रह सकता है।

हिक्का के उपचार मे आक्सीजन अथवा 5-10 प्रतिशत कार्बन-डाइ-आक्साइड का अभिश्वसन उपयोगी रहता है। कठिन रोगों मे मध्यच्छद तन्त्रिका के रोधन (block) अथवा विभाजन की आवश्यकता पड जाती है।

कर्णपूर्वग्रंथि शोथ (Parotitis)—शस्त्रकर्मोत्तर काल मे यह एक विरल उपद्रव होता है तथा प्रायः ऐसे कृशकाय रोगियों मे पाया जाता है जिनके मुख मे पर्याप्त स्वच्छता नही होती। मुख-शुष्कता से भी इस उपद्रव की उत्पत्ति मे योग मिलता है। यह शोथ प्राय स्टेफिलोकोकस जीवाणुओं के कारण होता है, जो कर्णपूर्वग्रंथि नली की राह इस ग्रंथि तक पहुँचते है। इस उपद्रव की अभिव्यक्ति आपरेशन के कुछ दिन पश्चात् कर्णपूर्व प्रदेश मे एक पीडायुक्त, दाववेदनशील, सूजन, ज्वर एव निगरण कष्ट के रूप मे होती है। यदि शोथ क्रिया विकसित होती जाए तो ग्रंथि मे पूय-निर्माण के फलस्वरूप विद्रधि उत्पन्न हो सकती है। इस दशा की चिकित्सा के लिए मुख को स्वच्छ रखना तथा एंटीबायोटिकों का प्रयोग करना ही प्राय पर्याप्त होता है, किंतु यदाकदा विद्रधि-छेदन की आवश्यकता भी पड सकती है।

मूत्रतंत्रीय उपद्रव

मूत्रावधारण (Urinary retention)—यह उपद्रव शस्त्रकर्म के पश्चात् बहुधा पाया जाता है। हर्निया हाइड्रोसील व मूलाधार (perineum) प्रदेश के अन्य आपरेशनों के बाद यह विशेष रूप से होता है। यह अवस्था प्रायः अस्थायी होती है तथा कुछ घंटे पश्चात् स्वयमेव समाप्त हो जाती है। अनेक रोगी लम्बावस्था मे मूत्रत्याग करने मे असमर्थता अनुभव करते है किंतु बैठने पर या शैय्या से नीचे आने पर वे ऐसा करने मे सक्षम हो जाते है। मूत्राशय प्रदेश मे गर्म पानी की बोतल रखना भी लाभप्रद रहता है। यदि 12 घंटे तक मूत्रावधारण की स्थिति मे सुधार न हो तो कैथीटरीकरण की आवश्यकता पड सकती है। यह क्रिया पूर्ण अपूति-सावधानीपूर्वक करनी चाहिए।

क्षत सम्बन्धी उपद्रव

आदर्श रूप मे एक स्वच्छ शस्त्रक्षत प्राथमिक विरोहण द्वारा विरोहित होता है।

सक्रमण—क्षतसक्रमण दो प्रकार का हो सकता है, वह क्षत के केवल

किसी विशेप भाग मे स्थित हो सकता है अथवा सम्पूर्ण क्षत-स्थल को व्यापकतापूर्वक प्रभावित करके ऊतिशोथ (cellulitis) का रूप धारण कर सकता हे। यदि आपरेशन के कुछ ही दिन पश्चात रोगी को ज्वर व स्थानीय पीडा हो तो क्षत सक्रमण का सन्देह करना चाहिए। क्षत का परिदर्शन करने पर लाली व सूजन पाई जाती है, हो सकता है क्षत मे सक्रमण का केवलमात्र चिह्न एक दाबवेदना का स्थानीकृत बिन्दु (localized point of tenderness) ही हो। ऐसी अवस्था मे क्षत को पुन विवृत करने पूय-निकास करने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त एटीबायोटिको का प्रयोग भी करना होता हे।

क्षतभंग (Wound disruption)—यह गम्भीर उपद्रव क्षत के अपर्याप्त विरोहण के कारण होता है। इसके लिए निम्नलिखित घटक उत्तरदायी होते है :—

शस्त्रकर्मपूर्व—वृद्ध, स्थूलकाय, कुपोषित, व्यक्तियो तथा अल्पप्रोटीनरक्तता, चिरकारी अरक्तता व C—विटामिनाभाव से ग्रस्त रोगियो मे क्षतभग होने की सभावना प्राय रहती है।

शस्त्रकर्मसम्बधी—अनुचित छेदन, अनुपयुक्त सीवन द्रव्य, दोषपूर्ण सीवन विधि तथा अपर्याप्त रक्तस्तम्भन।

शस्त्रकर्मोत्तर—प्रबल उबकाई (retching), हिक्का, आग्रही कास (persistent cough) अत्यधिक उदर विस्फार, यूरीमिया।

क्षतभग लगभग सातवे दिन होता है। ऐसा होते समय रोगी को क्षत-प्रदेश मे सहसा किसी चीज के टूटने या स्थानच्युत होने का आभास होता है। प्राय: खाँसते या जोर लगाते समय यह स्थिति उत्पन्न होती है। यदि क्षत से अचानक प्रचुर रक्तिम आस्राव होने लगे तो क्षतभग का प्रबल सन्देह करना चाहिए तथा क्षत का तुरत निरीक्षण करना चाहिए। क्षत के ऊपर की त्वचा निमीलित हो तो केवल साधारण भग समझना चाहिए। किन्तु क्षतस्थल मे से आतरिक अगो का बहिःक्षेपण (extrusion) भी हो तो इस अवस्था को evisceration कहा जाता है। यदि इन बहिःक्षेपित अगो मे कोई आन्त्र-कुण्डली भी हो तो वह क्षतस्थल पर विपाशित (strangulate) हो सकती है तथा इस प्रकार तीव्र वेदना व आन्त्र अवरोध (intestinal obstruction) के चिह्न उत्पन्न कर सकती है।

क्षतभग की चिकित्सा के लिए अनवशोष्य पदार्थ, विशेषत इस्पाती तार, द्वारा तुरत क्षत का आर-पार सीवन (through and through suture) करना चाहिए।

ज्वर

शस्त्रकर्मोत्तर काल मे ज्वर के विभिन्न कारण निम्नलिखित से सम्बन्धित हो सकते हैं—श्वसन तंत्र, मूत्र तंत्र, आपरेशन स्थल, अन्त शिरा आधान स्थल तथा यदाकदा, औषधि-संवेदनशीलता। उष्ण-कटिबन्धी देशों मे ज्वर का कारण मलेरिया भी हो सकता है। यह भी सम्भव है कि आधान के लिए प्रयुक्त रक्त के माध्यम से ही रोगी को मलेरिया संक्रमण हुआ हो। ज्वर की चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व उपरिलिखित मे से उपयुक्त कारण का निदान आवश्यक होता है।

विशेष समस्या वाले रोगी

शिशु व बच्चे

शस्त्रअभिघात के फलस्वरूप होने वाले चयापचयी परिवर्तनो का शिशुओं व बच्चो के शरीर पर विशेष प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे जलक्षीणता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण अत्यल्प जल अन्तर्ग्रहण अथवा अत्यधिक जल हानि (वमन, अतिसार, अतिस्वेद) के कारण हो सकता है।

शिशुओ व छोटे बच्चो की औसत 24 घण्टे मे जल अन्तर्ग्रहण तथा मूत्र-निष्कासन मात्रा प्रत्येक लगभग 700 ml होती है। आपरेशन के पश्चात् उन्हे मन्द आधान द्वारा प्रतिदिन 150 ml /kg वजन के अनुसार द्रव देना चाहिए। बच्चो का रक्त आयतन बहुत थोडा होता है। यदि उनके शल्यकर्म मे हुई रक्त हानि को शीघ्र प्रतिस्थापित न किया जाए तो इसका गम्भीर परिणाम हो सकता है। सर्जन को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आपरेशन के समय ऐसे रोगियो मे न्यूनतम रक्तस्राव हो।

वृद्ध रोगी

वृद्ध रोगियो मे शस्त्रअभिघात का सामना करने की शक्ति कम होती है। इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि केवल वर्षसंख्या से ही रोगी की शरीरक्रियात्मक आयु का उचित अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वृद्ध व्यक्ति प्राय कुपोषण तथा हृत्वाहिका, फुप्फुस व वृक्कीय रोगो से ग्रस्त होते हैं। उचित शल्यकर्म-पूर्व प्रबन्ध, उपयुक्त संज्ञाहरण, कुशल शल्य-प्रविधि तथा सुचारु शल्यकर्मोत्तर देखभाल द्वारा ऐसे केसो मे अनेक उपद्रवो व समस्याओ का समाधान किया जा सकता है। आपरेशन से पूर्व देख लेना चाहिए कि रोगी के मूत्रनिकास (urinary output) की मात्रा पर्याप्त हो। ऐसा होने का अर्थ है कि उसकी

वृक्क क्रिया सुचारु है। यदि हृत् उपद्रव होने की आशका हो तो आपरेशन से कुछ दिन पूर्व रोगी को लवणरहित आहार देना आरम्भ कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त परिसचरण पर अत्यधिक बोझ न पडे, इस हेतु अन्त शिरा द्रवो का प्रयोग भी सावधानीपूर्वक करना चाहिए। वृद्ध व्यक्तियो मे चिरकारी श्वसनीशोथ प्राय पाया जाता है, अत सक्रमण निरोध के लिए उन्हे एटीबायोटिक भी देने चाहिएँ। उनके रक्त आयतन की ओर विशेष जागरूक रहने की आवश्यकता होती है। तथाकथित 'चिरकारी स्तब्धता' के रोगियो को नियन्त्रित रक्ताधान देना चाहिए।

हृत्वाहिका-विकारग्रस्त रोगी

ऐसे रोगियो की शल्यचिकित्सा मे तनिक सकट उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है हृदय-क्षतिअपूर्ति, अभिनव हृत्धमनी आक्रमण (recent coronary attack) तथा जन्मजात हृदय विकृति के रोगियो मे यह सकट सर्वाधिक होता है। किन्तु कुछ पूर्वोपायो द्वारा इस सकट को बहुत कम किया जा सकता है। उदाहरणत आपरेशन से पूर्व निम्नलिखित परीक्षाओ द्वारा रोगी की क्षमता का मूल्याकन कर लेना चाहिए—विद्युतहृत्लेखन (electrocardiography), वक्ष एक्सरेचित्रण, शिरादाव अध्ययन (venous pressure studies) तथा श्वासधारिता (vital capacity)। आपरेशन से पूर्व रोगी का चित्त शान्त रखने के लिए निद्राकारी औषधि देनी चाहिए, सज्ञाहारी साधनो का चुनाव व प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए तथा अन्त शिरा आधान के समय दाहिने हृदय पर अत्यधिक बोझ पडने तथा फलस्वरूप फुप्फुसी शोफ होने की ओर से सावधान रहना चाहिए। अधिक परिमाण मे रक्तहानि होने से स्तब्धता उत्पन्न हो सकती है। इस गम्भीर स्थिति के निरोध हेतु रक्तहानि के पर्याप्त प्रतिस्थापन का प्रबन्ध करना चाहिए।

वृक्क-विकारग्रस्त रोगी

ये रोगी सर्जन के लिए अनेक समस्याएँ प्रस्तुत कर सकते है। यदि वृक्क रोग तीव्रावस्था मे हो, जैसे वृक्कशोथ (nephrites) या द्रोणिकाशोथ (pyelitis) तो आपरेशन उसके अवतालित होने के पश्चात् ही करना चाहिए। चिरकारी वृक्क रोगो मे वृक्क नलिकाओ की माद्रण व वरणात्मक अवशोषण क्षमता घट जाती है। अतः ऐसे रोगियो मे विद्युतअपघट्यो के सतुलन तथा अपशिष्ट उत्पादो के निष्कासन के लिए रोगी के द्रव-विद्युतअपघट्य सतुलन की ओर

विशेष ध्यान देना चाहिए। इन रोगियों में, विशेषतः यदि उन्हें अल्परक्तदाब या जलक्षीणता हो जाए, सहसा वृक्क पात (renal failure) का भय रहता है।

वृक्क रोगों की उपस्थिति नित्य मूत्र परीक्षण द्वारा जानी जा सकती है। मूत्र में एल्बुमिन, कास्ट (casts) या लोहित कोशिकाएं विद्यमान हों अथवा मूत्र का विशिष्ट घनत्व न्यून हो, तो मूत्राशय की विस्तृत जाँच की आवश्यकता होती है। इन जाँचों के उदाहरण रक्तयूरिया मापन, वृक्क क्रिया परीक्षण (renal function tests), मूत्राशयदर्शन (cystoscopy), द्रोणिकाचित्रण (pyelography) आदि हैं।

श्वसन-विकारग्रस्त रोगी

ऐसे रोगियों में शस्त्रकर्मोत्तर काल में श्वसनतन्त्रीय उपद्रव होने की सम्भावना अधिक होती है। यदि रोगी को तीव्र श्वसन रोग हो तो ऐच्छिक आपरेशनों (elective surgery) को स्थगित कर देना चाहिए। रोगी का विस्तृत इतिवृत्त जानने, कुशल शारीरिक परीक्षा करने तथा वक्ष का एक्सरे-चित्रण करने से आपरेशन-पूर्व काल में ही श्वसन रोगों का निदान किया जा सकता है। श्वासधारिता मापन भी उपयोगी रहता है। दमा, वातस्फीति, फुप्फुस अतिरिक्त-दाब आदि अवस्थाओं में इसमें पर्याप्त कमी हो जाती है।

चिरकारी श्वसन रोगों पर आपरेशन करते समय उन्हें पर्याप्त आक्सीजन प्रदान करनी चाहिए तथा श्वासमार्ग को विवृत रखना चाहिए। आपरेशन से पूर्व इन रोगियों को कुछ पेनिसिलिन अथवा अन्य उपयुक्त एंटीबायोटिकों का सेवन करना चाहिए ताकि शस्त्रकर्मोत्तर काल में अनुन्मीलन व निमोनिया आदि उपद्रव न होने पाए।

शल्यरोगियों में मधुमेह

इन रोगियों के उपचार के लिए सर्जन व कायचिकित्सक में पर्याप्त सहयोग की आवश्यकता होती है। यदि रोगी की मधुमेह अवस्था को नियन्त्रण में रखा जा सके तो प्रायः निरापद रूप में आपरेशन किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखना चाहिए कि शस्त्रअभिघात के फलस्वरूप मधुमेह अवस्था में अस्थायी वृद्धि हो जाती है। यदि मधुमेह का उचित नियन्त्रण न किया जाए तो अतिशर्करारक्तता के कारण क्षतविरोहण में विलम्ब होता है तथा संक्रमण की सम्भावना अत्यधिक बढ़ जाती है।

आपत्कालीन आपरेशन

अभिघात अथवा संक्रमण से ग्रस्त होने पर मधुमेह रोगी की इंसुलिन आवश्यकता अधिक हो जाती है। अतः ऐसे रोगियों को इंसुलिन की मात्रा सामान्य से कुछ अधिक देनी चाहिए तथा कीटोनरक्तता की स्थिति उत्पन्न न होने देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। क्षतपरिपूयन का मधुमेह के रोगी पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, अतः पूय-निकास यथाशीघ्र करना चाहिए।

शल्यकर्मपूर्व देखभाल

मधुमेह के रोगियों में प्रायः व्यापक धमनीकाठिन्य भी पाया जाता है। इस कारण उनके हृत्वाहिका तंत्र तथा मूत्र तंत्र का समुचित परीक्षण करना चाहिए। शल्यकर्मपूर्व काल में उनको भोजन में कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा प्रदान करनी चाहिए ताकि यकृत के ग्लाइकोजन व प्रोटीन निचयों (reserves) में वृद्धि हो जाए। आपरेशन से तुरत पूर्व व पश्चात् कुछ अवधि तक उनके मधुमेह को शीघ्र क्रियाशील इंसुलिन द्वारा नियन्त्रित करना चाहिए। इसकी मात्रा इतनी होनी चाहिए कि मूत्र शर्करा की अत्यल्प मात्रा बनी रहे, अन्यथा रोगी में अल्पशर्करारक्तता की गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने का भय रहता है।

संज्ञाहरण के लिए ऐसी औषधि का चुनाव करना चाहिए जिसके कारण वमन अथवा मतली न हो। लघु आपरेशनों के लिए नाइट्रस आक्साइड व आक्सीजन का प्रयोग पर्याप्त रहता है। व्यापक आपरेशन के लिए नाइट्रस आक्साइड के साथ क्यूरारे अथवा सौषुम्निक संवेदनाहरण का प्रयोग भी करना होता है। शल्यकर्मोत्तर काल में मुखीय मार्ग से जल की पर्याप्त मात्रा का सेवन करना चाहिए, आवश्यकता हो तो अन्तःशिरा आधान द्वारा इंसुलिन युक्त ग्लूकोज का विलयन भी दिया जा सकता है।

3

रक्तस्राव, शाक, रक्ताधान तथा द्रव-वैद्युत अपघट्य संतुलन

(Haemorrhage, Shock, Blood Transfusion and Fluid-Electrolyte Balance)

ए० वी० मुदलियार

रक्तस्राव

रक्तस्राव की परिभाषा दीर्ण रक्त वाहिका से रक्त की हानि के रूप मे की जाती है। ऐसा वाहिका विकार, अभिघात अथवा शस्त्रकर्म के कारण हो सकता है। कुछ दैहिक रोग भी रक्तस्राव को जन्म दे सकते है, उदाहरणत हीमोफिलिया (haemophilia), पर्पुरा (purpura), ल्यूकीमिया (leukaemia) तथा स्कर्वी (scurvy)।

वर्गीकरण

रक्तस्राव का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है

(1) प्रभावित रक्त वाहिका के अनुसार (अ) केशिका, (आ) शिरा, (इ) धमनी,

(2) बाह्य रक्तस्राव तथा आतरिक रक्तस्राव,

(3) प्राथमिक (primary), प्रतिक्रियात्मक (reactionary), द्वितीयक (secondary) रक्तस्राव।

केशिका रक्तस्राव

केशिका या कैपिलरी रक्तस्राव अभिघातग्रस्त वहिस्तल से सतत रिसाव के रूप मे प्रकट होता है। रक्त का रग तनिक गहरा होता है तथा यह अनेक पिन विन्दुओ से निकलता है।

चिकित्सा—इसे रोकने के लिए दृढ स्थानीय दवाव पर्याप्त होता है।

शिरा रक्तस्राव

यदि लघुशिराएँ अभिघातग्रस्त हुई हो तो रक्तस्राव केवल रिसाव के रूप मे प्रकट होता है। वडी शिराओ के क्षतिग्रस्त होने पर विशाल परिमाण मे सतत स्राव होता है। प्रचुर स्राव को रोकने के लिए दृढ अँगुलि-दवाव डालने तथा शिराओ को क्लेम्प (clamp)करने की आवश्यकता होती है। ग्रीवा की महा शिराओ को अभिघात पहुँचने पर उनमे वायु का प्रवेश होने तथा फलस्वरूप वायु अन्त.शल्यता (air embolism) होने का भय रहता है।

चिकित्सा—प्रभावित शिरा के बन्धन या लिगेशन (ligation) द्वारा रक्तस्राव तुरत रुक जाता है।

धमनी रक्तस्राव

अभिघात या शल्यकर्म-दुर्घटना के फलस्वरूप यदि धमनी कट जाए तो रक्त एक धार के रूप मे निकलता है जिसका प्रवाह हृदय धडकन का अनकालीन होता है। यदि कटी धमनी अग की मुख्य वाहिका हो तो उसके नीचे का क्षेत्र स्पदनहीन हो जाता है। प्रभावित क्षेत्र की जैवता तभी अक्षुण्ण रह पाती है जव पर्याप्त मपार्श्विक परिसचरण विकसित हो जाए।

चिकित्सा—छोटी धमनी शाखाओ को तत्काल क्लेम्प या वन्धित (ligate) किया जा सकता है किंतु विशाल धमनियो के सम्वन्ध मे कटे छोरो को अनावरित करके समीपस्थ व दूरस्थ भागो के मध्य शाखामिलन (anastamosis) स्थापित करना आवश्यक होता है।

वाह्य रक्तस्राव

वाह्य रक्तस्राव शारीरिक घावो से अथवा प्राकृतिक रध्रो से उत्पन्न हो सकता है। इसके प्राय घटित प्ररूप निम्नलिखित है:

(1) नासारक्तस्राव (epistaxis)—नाक से रक्त आना।

(2) रक्तकास (haemoptysis)—फुफ्फुस अथवा श्वसनी में रक्तस्राव के कारण खाँसी के साथ रक्त निकलना।
(3) रक्तवमन (haemetemesis)—वमन मे रक्त की उपस्थिति।
(4) रुधिरज कालामल (melaena)—मल मे रूपान्तरित रक्त की उपस्थिति (तारकोल-सम गहरा मल, dark tarry motions)।
(5) रक्तमेह (haematuria)—मूत्र मे रक्त का विद्यमान होना।

आतरिक रक्तस्राव

आतरिक रक्तस्राव दो प्रकार का हो सकता है—अधस्त्वचा रक्तस्राव, जो प्राय: सुस्पष्ट होता है, तथा गम्भीर या प्रच्छन्न (concealed) रक्तस्राव, जो सहज प्रकट नही होता।

अधस्त्वचा रक्तस्राव प्राय परिस्रवण (extravasation) या एकीमोसिस (ecchymosis) के नाम मे जाना जाता है। यदि इस रक्त का अधिक मात्रा मे सचय हो जाए तो अवस्था रक्तसग्रह (haematoma) कहलाती है। आतरिक रक्तसग्रह विविध स्थानो पर हो सकता है, उदाहरणत. प्लूरा गुहिका (रक्तवक्ष, haemothorax), पेरिटोनियम गुहिका (रक्त-पेरिटोनियम, haemoperitoneum), तथा सधि गुहिका (रक्तसधिता, haemarthrosis)।

स्वत. रक्तस्राव (Spontaneous haemorrhage)

स्वत. रक्तस्राव भी आतरिक या बाह्य होता है तथा इसके अनेक कारण हो सकते है। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—एन्यूरिज्म (aneurysm) या अपस्फीत शिराओ (varicose veins) का विदीरर्गन, जठरात्रक्षेत्र का व्रण, फुफ्फुस यक्ष्मा, तथा कुछ दैहिक रोग, यथा पर्पुरा (purpura), ल्यूकीमिया (leukaemia) और स्कर्वी (scurvy), जिसमे रक्तस्राव श्लेष्मल, सीरसी या त्वचा वहिस्तलो के नीचे होता है। रक्तस्राव के अन्य कारण सक्रमण (चेचक, प्लेग) तथा औषधविषाक्तता (पारा, आर्सेनिक, फासफोरस व सायनाइड) हैं।

प्राथमिक रक्तस्राव

इसका कारण रक्तवाहिकाओ का दीर्ण या अभिघातग्रस्त होना है। आहत वाहिका की प्रकृति के अनुसार प्राथमिक रक्तस्राव का स्वरूप केशिका, शिरा या धमनीय हो सकता है।

प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव

यह अवस्था अभिघात के 36 घटे के भीतर ही घटित होती है तथा ऐसे रोगियो मे अधिक पाई जाती है जिनमे दीर्घकालीन व व्यापक आपरेशन के पश्चात् प्रघात या शाक (shock) तथा अल्प रक्त दाब प्रकट हुआ हो। आपरेशन के पश्चात् जब रक्तदाव पुन सामान्य स्तर पर आता है तो वाहिकारो के कटे छोरो मे जमा थक्का विस्थापित हो जाता है तथा इस प्रकार प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव आरम्भ होता है। प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव का एक अन्य कारण लिगेचर (ligature) का स्थानच्युत होना भी है। शस्त्रकर्मोपरात पुन प्राप्ति काल 'recovery period) मे रोगी की बेचैनी के कारण भी यह दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था उत्पन्न हो सकती है।

द्वितीयक रक्तस्राव (Secondary haemorrhage)

द्वितीयक रक्तस्राव ऐसे क्षतो से होता है जो सक्रमित हो गए हो। सक्रमण के कारण वाहिका-भित्ति मृदु एव अपरदित हो जाती है। अभिघात या आपरेशन के 10-12 दिन पश्चात् प्रकट होने वाली यह अवस्था आरम्भ मे तनिक रिसाव के रूप मे अभिव्यक्त होती है, किन्तु कालातर मे स्राव की मात्रा बढ सकती है। घाव की पट्टी करते समय यदि ड्रैसिंग पर रक्त दृष्टिगोचर हो तो द्वितीयक रक्तस्राव के प्रति आशकित होना चाहिए। समीपवर्ती वाहिकाओ के अपरदन द्वारा दुर्दम वर्ध भी द्वितीयक रक्तस्राव उत्पन्न कर सकते है।

रक्तस्राव का शरीरक्रियात्मक स्थगन (Physiological arrest of haemorrhage)

रक्तस्राव के स्थगन मे निम्नलिखित अनेक घटक सहायक होते है

(1) स्कदन की क्रियाविधि त्वरित हो जाती है; रक्तस्राव के पश्चात् 10 मिनट मे ही रक्त की स्कदनशीलता (coagulability) मे वृद्धि हो जाती है तथा वाहिका के कटे छोर पर स्कदन के फलस्वरूप ल्यूमेन (lumen) अवरुद्ध हो जाता है।

(2) अभिघातग्रस्त धमनी के मध्य कचुक (tunica media) के निवर्तन (retraction) तथा सकुचन (contraction) के फलस्वरूप अत कला स्तर सिल्वटदार या दन्तिल (crenated) हो जाता है।

(3) वाह्य थक्के का मेकेनिकल दवाव।

(4) रक्तदाव का पात।

तीव्र रक्तस्राव के क्लिनिकल अभिलक्षण

त्वचा शीतल, चिपचिपी और भीगी-सी हो जाती है। त्वचा और श्लेष्मा कला का फीकापन बढ जाता है। नाडी तेज तथा अल्प आयतन (low volume) और अल्प तनाव (low tension) वाली होती है। गम्भीर अवस्था होने पर निम्नलिखित लक्षण व चिह्न पाए जाते है, बेचैनी, प्यास, दृष्टि का धुधलापन, स्वेद, वायु क्षुधा (air hunger) द्रुत व सूत्री (thready) नाडी। दशा के और गम्भीर होने पर चीनस्टोक्स श्वसन (cheyne-stokes respiration) हो जाता है तथा अतत. कोमा (coma) एव मृत्यु हो जाती है।

रक्तस्राव के उपद्रव (Complications of haemorrhage)

स्तब्धता (Shock)

स्तब्धता या शाक मात्र रक्तस्राव का पर्याय नही है। रक्त का ह्रास न होने पर भी स्तब्धता हो सकती है, उदाहरणत उन अवस्थाओ मे जहा शरीर से प्लाज्मा या अन्य द्रव की हानि हो। इन अवस्थाओ मे वायु क्षुधा (air hunger) या बेचैनी नही होती, क्योकि रक्तहानिजन्य स्तब्धता के विपरीत इनमे शरीर का प्रतिशत हीमोग्लोबिन नही गिरता।

तीव्र अरक्तता (Severe anaemia)

यह उपद्रव भी रक्तस्राव के कारण उत्पन्न हो सकता है।

सक्रमण और अमूत्रता (Infection and anuria)

रक्तसग्रह या हीमेटोमा मे सक्रमण के स्थापन की सभावना रहती है। रक्तदाव मे ह्रास के कारण वृक्क पात (renal failure) तथा हृदय या प्रमस्तिष्क की धमनियो मे घनास्रता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है।

मृत्यु

रक्त आयतन के 40-50 प्रतिशत से अधिक की सहसा हानि के कारण अगो का सभरण अत्यन्त न्यून हो जाता है तथा मृत्यु अवश्यम्भावी होती है। यदि केवल 20 प्रतिशत रक्त की हानि हुई हो तो रक्ताधान द्वारा रोगी का जीवन बच सकता है।

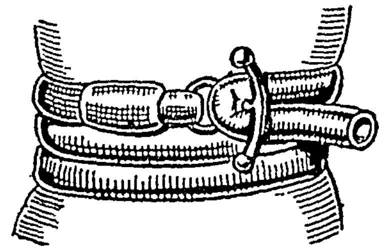
रक्तस्राव की चिकित्सा

प्राथमिक सहायता (First aid)

क्षत अथवा अभिघात के फलस्वरूप वाहिकाओ से होने वाले रक्तस्राव को दबाव पट्टी (pressure bandage) के प्रयोग द्वारा रोका जा सकता है;

शाखा अग की वाहिका से स्राव को रोकने के लिए टूर्निके (tourniquet) का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसके लिये उपलब्ध साधन निम्नलिखित हैं— सैमवे (samway) टूर्निके (चित्र 2), दाबमापी यन्त्र का कफ (sphygmomanometer cuff) तथा एस्मार्क (esmarch) रबर पट्टी। टूर्निके लगाने का समय यथावत नोट कर लेना चाहिए तथा 30-40 मिनट के भीतर ही रक्तस्राव के नियत्रणार्थ शल्य-चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिए।

यदि शस्त्रकर्म के दौरान रक्तस्राव उत्पन्न हो तो स्रावी वाहिका को पकड कर उस पर बन्धन (ligature) लगाया जा सकता है। यदि स्राव बडी शिरा से हो रहा हो तो वायु अतःशल्यता (air embolism) के निवारण की दृष्टि से आवश्यक है कि उस पर तुरन्त क्लेम्प (clamp) लगा दिया जाए, घाव को गौज द्वारा पैक कर दिया जाए अथवा गुनगुने सेलाइन (saline) से आप्लावित करके उस पर बन्धन लगाया जाए। ये उपाय ग्रीवा शिराओ के कटने या अभिघातग्रस्त होने पर विशेष महत्त्वपूर्ण होते है। केशिकीय रक्तस्राव के विराम के लिए गर्म पैक (hot pack) अथवा डायथर्मी (diathermy) का प्रयोग किया जा सकता है। यदि आपरेशन के पश्चात् विस्तृत पृष्ठ से रक्त रिसता हो तो क्षत मे जेलफोम (gelfoam) या आक्सीसेल (oxycel) पैंक करना लाभदायक होता है।



चित्र 2—सैमवे टूर्निके का प्रयोग

सामान्य चिकित्सा

इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित साधन उल्लेखनीय है।

रोगी को शान्तिपूर्ण वातावरण मे पूर्ण विश्राम कराना चाहिए। उष्ण जल की बोतलो अथवा विकिरणी ऊष्मा के पालने (radiant heat cradle) द्वारा रोगी को गर्म रखना भी आवश्यक होता है। शैय्या का पायताना ऊँचा उठाकर सिरहाने से तकिए हटा देने चाहिएँ ताकि सिर कुछ नीचा रहे। भय या उत्तेजना के शमन के लिए 15 mg मार्फीन का अधस्त्वक इजेक्शन उपयोगी होता है। गम्भीर रोगियो को मास्क द्वारा 5-10 लिटर आक्सीजन प्रति मिनट

सुघाना भी आवश्यक हो सकता है। रक्त की स्कन्दनीयता (coagulability) को वढाने वाली औपधो, यथा कैल्शियम ग्लूकोनेट (calcium gluconate) और हीमोप्लास्टिन (haemoplastin), का प्रयोग भी उपयोगी होता है। तीव्र रक्त-स्राव के कारण यदि हीमोग्लोविन 50 प्रतिशत से कम हो अथवा लोहित कोशिका गणना 25 लाख मे घट गयी हो तो रक्ताधान अनिवार्य होता है। तीव्र आपदावस्था के वीतने पर अरक्तता के लिए उपयुक्त चिकित्सा आरम्भ की जाती है।

प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव की चिकित्सा

अत्यधिक रक्तस्राव की अवस्था मे आपरेशन क्षत को पुन विवृत करके स्राव विन्दुओ का वन्धन आवश्यक हो सकता है।

द्वितीयक रक्तस्राव की चिकित्सा

आधुनिक ऐन्टिबायोटिक तथा रसायनी चिकित्सा के फलस्वरूप द्वितीयक रक्तस्राव का होना कम हो गया है। किन्तु जब भी ऐसा हो तो तत्काल चिकित्सा की आवश्यकता होती है, तुरन्त रक्ताधान आरम्भ करने के पश्चात् क्षत को विवृत करके रक्तस्रावी विन्दुओ का वन्धन किया जाता है और अवशोपक गौज, जेलफोम (gelfoam) या ऑक्सीसेल (oxycel) द्वारा घाव को पैक कर दिया जाता है। कभी-कभी रक्तस्राव विन्दुओ को डायथर्मी (diathermy) द्वारा स्कन्दित करना और तत्पश्चात् गौज (gauze) द्वारा दवाकर पैक करना पर्याप्त होता है।

स्वत रक्तस्राव (Spontaneous haemorrhage)

पर्पुरा (Purpura)—इस अवस्था मे विभिन्न ऊतको मे रक्तस्राव पाया जाता है। इसका कारण विम्वाणुओ (platelets) का अभाव अथवा केशिका भित्ति का व्यपजनन या भगुरता हो सकती है।

विटामिन 'के' का अभाव—विटामिन 'के' प्रोथ्राम्विन के निर्माण के लिए आवश्यक है। इसका अभाव जठरान्त्र क्षेत्र मे स्वत. रक्तस्राव तथा फलस्वरूप रक्त हानि का कारण वन सकता है।

यकृत दुष्क्रिया के कारण इस विटामिन के सचय मे व्यतिकरण पडता है अत अवरोधी कामला (obstructive jaundice) मे विलम्वित स्कन्दन तथा स्वत रक्तस्राव प्राय पाया जाता है।

हीमोफिलिया (Haemophilia)—इस जन्मजात रोग की विशिष्ट प्रवृत्ति स्वतः अथवा नगण्य अभिघात के फलस्वरूप रक्तस्राव का होना है। इस रोग का पारगमन माता से पुत्र को होता है किन्तु वह स्वय इस रोग से मुक्त रहती है। प्राय अल्प अभिघात, क्षत अथवा दन्त कर्षण के पश्चात् प्रचुर रक्तस्राव के कारण रोगी डाक्टर के सम्मुख उपस्थित होता है।

हीमोफिलिया का कारण रक्त मे एन्टिहीमोफिलिक ग्लोबुलिन फैक्टर (antihaemophilic globulin factor) नामक एक विशिष्ट स्कन्दनकारी कारक का अभाव होता है। यह कारक थ्रोम्बोप्लास्टिन (thromboplastin) के निर्माण के लिए आवश्यक है, जो प्रोथ्रोम्बिन (prothrombin) को थ्रोम्बिन मे परिवर्तित करता है।

हीमोफिलिया के रोगियो मे किसी प्रकार का नगण्यतम शल्यकर्म भी करने से बचना चाहिए। उन्हे सब प्रकार के अभिघातो से बचाना चाहिए तथा उनके रक्तस्राव काल (bleeding time) तथा स्कन्दन काल (clotting time) का मापन करना चाहिए। रक्तस्राव के निरोध के लिए विविध साधन प्रयुक्त किए जाते है सम्पूर्ण मानव रक्त या अश्व सीरम का अधस्त्वक इजेक्शन, विटामिन 'के' का प्रयोग, ताजे सम्पूर्ण रक्त अथवा प्लाज्मा का आधान।

दस दिन के भीतर तैयार किया प्लाज्मा का आधान शरीर को कतिपय रक्तस्राव नियन्त्रक कारकै को प्रदान करता है, जिनमे निम्नलिखित मुख्य है— प्रोथ्रोम्बिन, फिब्रिनोजन, एन्टिहीमोफिलिक ग्लोबुलिन।

क्रिसमस रोग (Christmas disease)—यह हीमोफिलिया के समान ही होता है। इसका कारण प्लाज्मा थ्रोम्बोप्लास्टिन (plasma thromboplastin) का अभाव है जो प्रोथ्राम्बिन (prothrombin) की सक्रियता के लिए आवश्यक होता है। आपदकालीन रक्तस्राव होने पर रोगी मे सम्पूर्ण रक्त (whole blood) का आधान करना चाहिए।

स्तब्धता (Shock)

स्तब्धता या शाक की परिभाषा इस प्रकार की जाती है—यह एक सलक्षण (syndrome) है जिसमे रक्तदाब अत्यधिक गिर जाता है तथा परिसचरण सम्बन्धी विक्षोभो के कारण जैव कार्य सम्पन्न नही हो पाते। रोगी मे निम्न अभिलक्षण पाये जाते है विवर्णता (pallor), श्यावता (cyanosis), स्वेदन, अतिपिपासा, शरीर ताप का ह्रास, शीतल शाखा अग, अल्प मूत्र निकास (low

urinary output)। नाडी द्रुत तथा सूत्री (thready) होती है क्योंकि रक्त परिसरीय परिसचरण से खिंच कर अभ्यन्तरांगों में चला जाता है।

हेतुकी

स्तब्धता की उत्पत्ति निम्नलिखित कारणों से हो सकती है

(1) ऊतकों से रक्त व द्रव की हानि। इस प्ररूप की स्तब्धता रक्तजन्य (haematogenic shock) कही जाती है।

(2) तन्त्रिकासम्बन्धी कारक (nervous factors), उदाहरणत: वेदना, भय, दुखद समाचार आदि। इनके कारण तन्त्रिकाजन्य स्तब्धता (neurogenic shock) उत्पन्न होती है।

(3) जीवविघातक परिस्थितियां, उदाहरणत सक्रमण, तीव्रग्राहिता (anaphylaxis)।

(4) अधिवृक्क विकार (adrenal disease)· यहां स्तब्धता का कारण प्रान्तस्था की अपर्याप्तता (cortical insufficiency) हो सकती है।

(5) अभिघातज (traumatic shock)।

(6) आपरेशन से (surgical shock)।

विकृति (Pathology)

स्तब्धता को प्राय प्राथमिक तथा द्वितीयक प्ररूपों मे बांटा जाता है। प्राथमिक या तन्त्रिकाजन्य स्तब्धता वाहिका तन्त्र (vascular system) के विस्फार के कारण होती है। द्वितीयक या अल्परक्तज स्तब्धता (oligeremic shock) द्रव-हानि तथा परिसचरणगत रक्त आयतन (circulating blood volume) में ह्रास के कारण होती है।

प्राथमिक स्तब्धता (Primary shock)

प्राथमिक स्तब्धता मनोजन्य (psychogenic) अथवा तन्त्रिकाजन्य (neurogenic) आवेगों के कारण हो सकती है। मनोजन्य प्ररूप मानसिक रूप से निर्बल व्यक्तियों में पाया जाता है तथा भय, उद्विग्नता अथवा घबराहट के कारण मेडुला केन्द्रों (medullary centres) के उद्दीपन के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्तियों में नगण्यतम अभिघात भी प्राथमिक स्तब्धता उत्पन्न कर सकता है। कायिक (somatic) तथा स्वचालित (autonomic) आवेग मेडुला

केन्द्रो के उद्दीपन द्वारा तत्काल तन्त्रिकाजन्य स्तब्धता उत्पन्न कर सकते हैं। प्राथमिक प्ररूप सदा अल्पस्थायी होता है। यह दाह, शस्त्रकर्म तथा उदर अभिघात के फलस्वरूप भी उत्पन्न हो सकता है।

क्लिनिकल अभिलक्षण

सर्वप्रथम रोगी मूर्छित होता है तथा फिर पीलापन (pallor), स्वेदन और रक्तदाव-पात प्रकट हो जाता है। नाडी की दर धीमी, आयतन अल्प और श्वसन उथला (shallow respiration) होता है। रक्तदाव दीर्घकाल तक घटी हुई रहती है। यदि शरीर प्राथमिक स्तब्धता पर विजय पा लेता है तो रोगी की सामान्य दशा सुधरने लगती है और शरीर पुन उष्ण हो जाता है। ऐसा होने से पूर्व कभी-कभी वमन हो जाता है। धीरे-धीरे रक्तदाव बढने लगता है और नाडी का आयतन व तनाव (volume and tension) प्रसामान्य हो जाता है।

चिकित्सा

रोगी को तुरन्त शैय्या मे विश्रान्त करके गर्म पानी की बोतलो द्वारा शरीर को उष्ण रखना चाहिए। रक्तदाब को गिरने से रोकने के लिए उद्दीपको (stimulants) का प्रयोग करना उचित है। मार्फीन के प्रयोग द्वारा रोगी को प्रशमित करना चाहिए ताकि वह सहज उत्तेजित न हो। तेज काफी तथा अन्य गर्म पेयो का प्रयोग रोगी को स्वस्थ करने मे सहायक होता है।

यदि प्राथमिकता सहायता द्वारा रोगी प्राथमिक स्तब्धता से बाहर न आ सके तो अवस्था द्वितीयक शाक मे परिणत हो जाती है, जिसकी अधिकतम तीव्रता कुछ घटो के पश्चात् प्रकट होती है ; यथासमय उपयुक्त उपचार न करने पर उसके कारण रोगी की मृत्यु हो सकती है।

द्वितीयक स्तब्धता

उत्पत्ति-सबधी मत

इस सम्बन्ध के विविध मतो का उल्लेख नीचे किया जाता है :

(1) रक्त अथवा द्रव की हानि—इसके कारण सक्रिय रूप से परिसचरणगत रक्त का परिमाण घट जाता है। रक्त की हानि आतरिक अथवा बाह्य अभिघात के कारण होती है, द्रव ह्रास प्लाज़्मा हानि के कारण हो सकता है, उदाहरणत पर्युदर्या शोथ (peritonitis), दाह आदि। जल व वैद्युतअपघट्यो (electro-

lytes) की हानि के कारण उत्पन्न प्रबल निर्जलीकरण भी अल्प रक्त आयतन का कारण हो सकता है ।

(2) क्राइल (Crile) के अनुसार पीडामय तन्त्रिकाजन्य उद्दीपन (nervous stimuli) अभिघात क्षेत्र से जैव केन्द्रो (Organic centres) मे पहुँचने पर उन्ही उद्दीप्त करते है। इस सम्बन्ध मे वाहिकाप्रेरक केन्द्र (vasomotor centre) के उद्दीपन का विशेष महत्त्व है ।

(3) केनन और बेलिस (Conon & Bayliss) के अनुसार विनष्ट ऊतको से एक हिस्टेमीन-सम पदार्थ (histamine-like substance) निर्मुक्त होता है जिसका अवशोषण केशिकाओ का अगघात उत्पन्न करता है । किन्तु उनके पश्चात् किये गये कार्य द्वारा सिद्ध हुआ है कि द्वितीयक स्तब्धता इन जीवविषो के कारण नही होती ।

(4) एक मत है कि स्तब्धता या शाक वृक्क द्वारा निर्मुक्त कतिपय जीव-विषो के कारण होती है । हाल मे शोर (Shorr) व उसके सहयोगियो ने वाहिकाप्रेरक अवसादी पदार्थ (vasomotor depression material) के अस्तित्व की खोज की है । रक्त मे इस पदार्थ की मात्रा बढने पर स्तब्धता अधिक प्रबल होती है । स्तब्धता उत्क्रमणीय अथवा अनुत्क्रमणीय हो सकती है ।

उत्क्रमणीय स्तब्धता (Reversible shock)

उत्क्रमणीय स्तब्धता मे अल्परक्तदाब की स्थिति उत्पन्न होते ही तुरत एक प्रतिकारी क्रियाविधि उसका सफल सामना करके द्रव व रक्त की हानि को सपूरित कर देती है । यह सपूरन दो प्रकार का होता है—प्रथम, अधिवृक्क प्रान्तस्था से निकलने वाले हारमोनो के कारण विसरित परिसरीय वाहिकासकीर्णन (peripheral vasoconstriction) ; तथा द्वितीय, द्रव एव इलेक्ट्रोलाइटो का ऊतक अवकाशो से रक्त की ओर स्थानातरण होने के कारण। रक्ततनूकरण (haemodilution) तत्कालिक रक्त आधान करने तथा रक्त का वैद्युत-अपघट्य सतुलन (electrolyte balance) सशुद्ध करने से इस प्रतिकारी क्रियाविधि को पर्याप्त बल मिलता है ।

अनुत्क्रमणीय स्तब्धता (Irreversible shock)

जब परिसरीय वाहिका पात (peripheral vascular failure) अथवा केशिकाघात (capillary paralysis) के फलस्वरूप केशिकाओ मे स्तम्भन तथा अन्तत रक्तस्राव प्रवाह का पूर्णविराम हो जाता है तो इस अवस्था को

अनुत्क्रमणीय स्तब्धता कहते है। ऐसा निम्नलिखित परिस्थितियो मे पाया जाता है : प्रबल सक्रमण, तन्त्रिका तत्र के अभिघात, दीर्घकालीन अल्परक्तदाब के कारण जैव केन्द्रो की अनाआक्सीरक्तता (anoxaemia) तथा हृद्पेशी अपर्याप्तता (myocardial insufficiency), जिसके फलस्वरूप हृदय प्रतिकारी उपायो के प्रति अनुक्रिया करने मे असमर्थ होता है।

दीर्घकालीन अल्परक्तदाब के फलस्वरूप हृद्पेशी, केशिका अन्त कला तथा मस्तिष्क के केन्द्रो को गम्भीर क्षति पहुँचती है तथा इसी कारण अनुत्क्रमणीय स्तब्धता उत्पन्न होती है। स्तब्धता किस प्रकार अनुत्क्रमणीय रूप धारण करती है, इस क्रम को रेवन (Raven)ने निम्न रूप मे चित्रित किया है .

रक्त व द्रव की हानि
ह्रसित रक्त आयतन
रक्तदाब का पात
ऊतको के रक्त-प्रवाह मे ह्रास
ऊतक अनक्सिता (tissue anoxia)
ऊतको का अपर्याप्त आक्सीजनीकरण (oxygenation)
अम्लमयता (acidosis)
उपापचय मे विकार तथा रक्त-रसायन मे परिवर्तन
रक्तवाहिकाओ की अन्त कला का अभिघात
क्षतिग्रस्त अन्तःकला से और अधिक द्रव-हानि
रक्त आयतन मे और अधिक कमी
रक्तदाब मे और और अधिक ह्रास के कारण अनुत्क्रमणीय स्तब्धता

इस चक्र के आरम्भ होने पर मृत्यु अवश्यभावी होती है। रक्तस्राव या जीवविषरक्तता (toxaemia) के कारण द्रव एव रक्त की जो हानि होती है उसका दुष्प्रभाव केशिकाओ पर पडता है; केशिका भित्ति का अगघात तथा फलस्वरूप रक्त की स्थैतिकता (stasis) हो जाती है। रक्त स्तम्भन तथा अन्त कला अभिघात के कारण वाहिकाओ से पारस्राव (transudate) सहज और अधिक परिमाण मे होने लगता है तथा ऊतक द्रव से परिपूर्ण हो जाते हैं, इस प्रकार रक्त आयतन और अधिक घट जाता है तथा शरीर मे रक्तसाद्रता (haemoconcentration) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप रक्त-साद्रता, रक्त की अधिक श्यानता (viscocity), रक्त-प्रवाह की गति मे ह्रास तथा ऊतक अनआक्सीयत्ता की एक कारण-शृखला आरम्भ हो जाती है जो स्तब्धता कुचक्र को पोषित करती है।

क्लिनिकल लक्षण एव चिह्न

स्तब्धता का अत्यन्त विश्वसनीय तथा निदानात्मक चिह्न धमनी रक्तदाव का निर्वन्ध ह्रास (persistent fall) है। प्रत्येक 15 मिनट पश्चात् रक्तदाव का मापन स्तब्धता की प्रगति तथा चिकित्सा के मूल्याकन मे अत्यन्त सहायक होता है। आरम्भावस्था मे मानसिक अवस्था प्रसामान्य, त्वचा विवर्ण, शीतल और चिपचिपी तथा नाडी द्रुत, आयतन व अल्प तनावयुक्त होती है। विलम्वावस्था मे नाडी अनियमित हो सकती है, श्वसन द्रुत गति से होता है। अनियमित श्वसन तथा चीन-स्टोक्स (cheyne-stokes) श्वसन भी पाया जा सकता है। रोगी तीव्र पिपासा तथा मुख-शुष्कता अनुभव करता है। मूत्र निकास (urinary output) का ह्रास तथा नियन्त्रण (sphincter control) का लोप भी हो सकता है। रोगी वेचैन तथा मृत्यु से पूर्व अचेतन हो जाता है।

स्तब्धता के निदान तथा चिकित्सा के लिए निम्नलिखित परीक्षण किए जाते हैं : रक्त गणनाए (blood counts), हीमोग्लोविन प्रतिशत, हीमेटोक्रिट सख्या (haematocrit reading), प्लाज्मा अथवा सीरम प्रोटीन, इवान डाइ (Evan's dye) के प्रयोग द्वारा रक्त आयतन के ह्रास का आमापन।

चिकित्सा

विश्राम तथा पीडा से मुक्ति—अभिघातग्रस्त अग को विश्राम देना चाहिए तथा मार्फीन के प्रयोग द्वारा रोगी को पीडा से मुक्त करना चाहिए। तत्कालिक प्रभाव के लिए मार्फीन का अन्त शिरा प्रयोग वाछनीय होता है क्योंकि परिसरीय वाहिकासकीर्णन (peripheral vasoconstriction) व परिणामस्वरूप अल्प अवशोषण के कारण अधस्त्वक इजेक्शन प्रभावहीन हो सकता है। रोगी को अन्धेरे कमरे मे तथा ऊचे किये पायताने वाली चारपाई पर विश्राम करना चाहिए।

रक्त आयतन का पुन स्थापन—द्रव हानि के स्वरूप के अनुसार रक्त, प्लाज्मा या दोनो के आधान द्वारा पुन प्रसामान्य रक्त आयतन स्थापित करने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए।

वाहिकादाववर्धक औषधें (Vasopresser drugs)—ईफेड्रीन (ephedrine), मीथेडीन (methedrine) आदि औषधे रक्तदाव वढाने मे सहायक होती है। यदि इनका प्रभाव समुचित न हो तो अत शिरा विन्दुपातन (intrevenous drip) द्वारा नोरएड्रिनेलिन (noradrenaline) का प्रयोग किया जा सकता है। एफ कार्टिलान (Ef cortelon), डेकाड्रोन (decadron) आदि एड्रेनल कार्टेक्स सत्वो

(adrenal cortical extracts) का अंत शिरा प्रयोग भी रक्तदाब के तुरत पुन स्थापन मे सहायक होता है ।

आक्सीजन—आक्सीजन का प्रयोग ऊतक अनाक्सता (tissue anoxia) के निवारण के लिए आवश्यक होता है । सिर तथा वक्ष के अभिघातो मे इसका विशेष महत्त्व है । BLB मास्क द्वारा दबाव के अतर्गत आक्सीजन देना सर्वोत्तम है । इस अवधि मे कम्बलो तथा गर्म पानी की बोतलो द्वारा रोगी की शारीरिक ऊष्मा की रक्षा करनी चाहिए । किन्तु इतना अधिक ताप न हो कि परिसरीय वाहिकाविस्फार के कारण रोगी को पसीना आ जाय तथा द्रव की हानि हो, अन्यथा परिसरीय वाहिकासकीर्णन (peripheral vasoconstriclor) द्वारा शरीर का क्षतिपूर्तिकारी प्रयत्न निष्फल जायगा ।

एन्टिबायोटिक (Antibiotic)—विवृत क्षतो से युक्त रोगी को समुचित मात्रा मे एन्टिबायोटिक औषध प्रयोग करना आवश्यक है ।

शस्त्रकर्मजन्य स्तब्धता (Surgical shock)

आपरेशन के पश्चात् द्वितीयक रूप मे स्तब्धता उत्पन्न हो सकती है जो शस्त्रकर्मज स्तब्धता कहलाती है । इसके निवारण के लिए शल्यकर्म के पूर्व, दौरान तथा पश्चात् रोगी की उचित देखभाल अत्यावश्यक होती है ।

निवारण—यह निम्न साधनो द्वारा किया जाता है —

(1) भय एव उद्विग्नता को दूर करना तथा रोगी को आश्वासन देना कि आपरेशन सकटरहित होगा ।

(2) विटामिन अभाव, अरक्तता, निर्जलता (*dehydration*) आदि दशाओ का प्रतिकार ।

(3) आपरेशन से पूर्व सक्रमण का नियत्रण ।

(4) आपरेशन से पूर्व हृदय, श्वसन एव वृक्क तत्रो को लगभग सामान्य स्तर पर लाना ।

(5) उपयुक्त सवेदनाहर (anaesthetic) का चुनाव ।

(6) कुशल शस्त्रकर्म प्रविधि —ऊतको का हल्के हाथ से सचालन, उचित रक्तस्तम्भन (haemostasis) तथा रक्तहानि की तत्काल पूर्ति ।

(7) द्रव एव वैद्युतअपघट्यो (*fluids and electrolytes*) की पुन पूर्ति ।

(8) शस्त्रकर्मोत्तर उपचार—रोगी की ऊष्मा की रक्षा, नाडी और रक्तदाब का कुशल प्रेक्षण, समुचित वायुमार्ग (airway), पर्याप्त प्रशमन

(sedation), रक्त, द्रव एव वैद्युतअपघट्यो की पुन पूर्ति तथा, आवश्यकतानुसार, एन्टिबायोटिको का प्रयोग ।

उपद्रव—अचिकित्सित स्तब्धता निम्नलिखित उपद्रवो (complications) का कारण बन सकती है वृक्क पात (renal failure), हृद्पेशी स्थानिक अरक्तता (myocardial ischaemia), वाहिका घनास्रता, वैद्युत-अपघट्य असतुलन तथा सहगामी रक्त रसायन सम्बन्धी परिवर्तन, अनुत्क्रमणीय स्तब्धता, जो प्राय प्राणघातक होती है।

जीवविषरक्तज स्तब्धता (Toxaemic shock)

यह दशा गैस कोथ (gas gangrene) आदि कुछ तीव्र सक्रमणो मे पाई जाती है। जीवविषरक्तता का कारण सक्रमण होता हे किन्तु स्तब्धता, निर्जलता, रक्त रसायन सम्बन्धी परिवर्तन, अमूत्रता तथा हृदपेशी पात (myocardial failure) आदि कारणो से उत्पन्न होती है। चिकित्सार्थ अभिघातजन्य स्तब्धता के लिए प्रयुक्त साधनो का ही उपयोग किया जाता है, अर्थात् रक्त या प्लाज्मा का आधान, रक्त के इलेक्ट्रोलाइट असतुलन (electrolyte imbalance) का सशोधन तथा सक्रमण के नियत्रणार्थ एन्टिबायोटिको व रसायनोपचारी (chemotherapeuntic) औषधो का प्रयोग।

दलन सलक्षण (Crush syndromse)

इसे सम्पीडन सलक्षण (compression syndrome) तथा अभिघातज अमूत्रता (traumatic anuria) के नाम से भी जाना जाता है। अभिघातज दलन सम्पीडन अथवा टूर्निके के दीर्घकालीन प्रयोग के कारण हो सकता है। ऐसे अभिघात अधिकतः द्वितीय विश्वयुद्ध के समय खानो, फैक्टरियो, युद्धस्थलो आदि मे विस्फोटो व दुर्घटनाओ के फलस्वरूप अधिक पाये जाते थे।

दलन सलक्षण के लिए जीवविष, द्रव-हानि, दलित ऊतक व पेशी से निर्मुक्त जीवविषात्मक उत्पाद, आदि अनेक कारक दोषी ठहराए गए हैं। ये कारक वृक्क सूक्ष्मनलिकाओ (renal tubules) को क्षति पहुचाते हैं तथा इस प्रकार वृक्कपात (renal failure) उत्पन्न करते हैं। मृत अथवा स्थानिक अरक्तताग्रस्त (irchaemic) पेशी से अम्ल मायोहीमेटिन (acid myohaematin) नामक पदार्थ उत्पन्न होता है जिसके क्रिस्टल वृक्क नलिकाओ को अवरुद्ध कर देते हैं। अभिघात के पश्चात् वाहिका आकर्ष (vasospasom) के रूप मे होने वाली स्तब्धता-प्रतिकारी क्रिया के कारण वृक्क रक्त प्रवाह (renal blood

flow) मे अल्पकालीन कमी हो जाती है , इसके फलस्वरूप होने वाली वृक्क अनावसता के कारण नलिकाओ मे कोशिका परिगलन (cellular necrosis) हो जाती है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि अभिघातज अमूत्रता अथवा दलन सलक्षण नामक अवस्था की उत्पत्ति मे तीन कारक भाग लेते है नलिका अवरोध वृक्क वाहिका आकर्ष तथा नलिका परिगलन।

आरभिक अवस्था मे स्तब्धता का कारण रक्त और द्रव की हानि होती है, कालातर मे जीवविषो (toxesis) के कारण अमूत्रता तथा यूरीमिया भी हो जाती हैं।

चिकित्सा

रक्त अथवा प्लाज्मा के आधान द्वारा द्रव अतर्ग्रहण (fluid intake) मे वृद्धि करना आवश्यक होता है। मूत्र का क्षारीकरण (alkalization) भी करना चाहिए ताकि वृक्क नलिकाओ को अवरुद्ध करने वाले अम्ल हीमेटिन (acid haematin) क्रिस्टल प्रवाहित हो जाए। इस प्रयोजन के लिए सोडियम साइट्रेट (sodium citrate) तथा सोडियम बाइकार्बोनेट (sodium bicarbonate) से युक्त क्षारीय मिक्सचर (alkaline mixture) का प्रयोग किया जा सकता है। यदि अभिघातज अमूत्रता का कारण वृक्क वाहिकाकर्ष (renal vasospasm) हो तो आशयिक सवेदनाहरण (splanchnic anaesthesia) लाभदायक हो सकता है। रोगी को 2-6 दिन मे ही यूरीमिया (uraemia) की दशा हो जाती है तथा मूत्र परिमाण दिन प्रति-दिन घटता जाता है। अतत अमूत्रता (anuria) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है , यदि सातवे दिन तक रोगी मूत्रत्याग न करे तो रक्त पोटाशियम और रक्त यूरिया की मात्रा अत्यत बढ जाती है और मृत्यु अवश्यभावी होती है। एक-तिहाई से अधिक रोगी छठे-सातवे दिन के लगभग मूत्रोत्सर्ग करने लगते है तथा इस प्रकार पुन आरोग्य प्राप्ति (recovery) कर लेते है। (अमूत्रता सम्बन्धी और अधिक विवरण के लिए मूत्र तत्र का अध्याय देखे)

रक्ताधान (Blood Transfusion)

स्तब्धता की चिकित्सा के लिए रक्ताधान का प्रचलन होने के पश्चात् शल्य-विज्ञान मे रक्ताधान का व्यावहारिक प्रयोग, 1900 मे लैडस्टीनर (Landsteiner) द्वारा रक्त वर्गो (blood groups) की सर्वप्रथम खोज के पश्चात्

ही सभव हो गया था। किन्तु स्तब्धता का सामना करने के लिए उसका व्यापक प्रचलन 1930 के पश्चात् हुआ।

1900-40 के मध्य लैंडस्टीनर ने केवल चार मुख्य रक्त वर्गों का वर्णन किया। बाद मे लेवाइन (Levine) तथा उसके सहयोगियो ने गौण रक्त वर्गों की एक द्वितीयक श्रेणी की खोज की, जिसमे Rh वर्ग (Rh groups) भी सम्मिलित थे। रक्ताधान के पश्चात् होने वाली गौण प्रतिक्रियाओ के कारण मुख्य रक्त वर्गों को विभाजित किया गया है। यह विभाजन रक्त मे विद्यमान एग्लूटिनिनो (agglutinins) के आधार पर है। ये उपवर्ग (subgroups) है, A_1, A_2, A_1B तथा A_2B। मुख्य वर्गों के ये एग्लूटिनिन ग्राहक के रक्त के ससर्ग मे आकर गौण प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते है। इसके अतिरिक्त कोशिकाओ मे M,N,P आदि कुछ अन्य गौण कारक भी विद्यमान होते है जो गौण प्रतिक्रियाओ के लिए उत्तरदायी होते है, ऐसा प्रत्यक्ष क्रास मेलन (direct cross matching) करने के बावजूद भी पाया जाता है, क्योकि स्वय एक वर्ग विशेष मे ही आतरिक असगति (incompatibility) विद्यमान होती है। वाइनर (Wiener) और लैंडस्टीनर (Landsteiner) ने Rh ग्रुप (Rh group) की खोज की। उन्होने पाया कि अनेक ऐसी रक्तमलायी (haemolytic) आधान प्रतिक्रियाएँ, जिनके लिए मुख्य रक्त वर्ग उत्तरदायी नही होते, Rh वर्ग के कारण होती है।

रक्त वर्ग (Blood groups)

मानव की लोहित रक्त कोशिकाओ मे दो प्रकार के एन्टिजन (antigen) या एग्लूटिनोजन (agglutinogen) विद्यमान होते हैं।

1 ऐसे प्रतिजन या एन्टिजन (antigen) जिनके प्रति प्राकृतिक प्रतिपिंड या एन्टिबाडी (antibody) पाए जाते हैं। ये केवल दो हैं—A तथा B।

2 ऐसे एन्टिजन, जिनके प्रति प्राकृतिक एन्टिबाडी नही पाए जाते, A और B के अतिरिक्त अन्य लोहित कोशिका एन्टिजनो के प्रति एन्टिबाडी या प्रतिपिंड तभी बनते हैं जब ये एन्टिजन इनसे मुक्त रोगियो मे प्रविष्ट किए जाते है। केवल एक वर्ग के एन्टिजन, अर्थात् Rh एन्टिजन, ही प्रतिपिंडो को जन्म देते है।

लोहित कोशिकाओ मे A और B एग्लूटिनोजनो (agglutinogens) मे से कोई एक, एक भी नही, अथवा दोनो विद्यमान हो सकते है। इस प्रकार रक्त

वर्गो के आधार पर व्यक्तियो को चार वर्गो मे बाटा जा सकता है। जो एग्लूटिनोजन लोहित कोशिकाओ मे अनुपस्थित होते है, सीरम मे उनके सगत एग्लूटिनिन (corresponding agglutinin) विद्यमान होते है।

रक्त ग्रुप (अतर्राष्ट्रीय नाम-पद्धति)	एग्लूटिनोजन (लोहित कोशिकाओ मे)	आइसो-एग्लूटिनिन (सीरम मे)
0	0	ab (एन्टि-A तथा एन्टि-B)
A	A	b (एन्टि-B)
B	B	a (एन्टि-A)
AB	AB	0

रक्ताधान के लिए आवश्यक है कि दाता (donor) की लोहित कोशिकाएँ तथा आदाता (recepient) का सीरम परस्पर सगत (compatible) हो। दूसरे शब्दो मे आदाता के सीरम मे विद्यमान एग्लूटिनिन ऐसे नही होने चाहिए कि वे दाता की कोशिकाओ का समूहन (agglutination) कर दे। स्पष्ट है कि 0 वर्ग का रक्त किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है क्योकि इसमे A अथवा B, कोई एग्लूटिनोजन विद्यमान नही होता। इसी प्रकार AB वर्ग के व्यक्ति किसी भी वर्ग का रक्त ग्रहण कर सकते है क्योकि उनके सीरम से एन्टि-A तथा एन्टि-B, दोनो एग्लूटिनिन (agglutinin) अनुपस्थित होते है। इन दो अपवादो के अतिरिक्त अन्य सभी आधानो के लिए आवश्यक है कि दाता तथा आदाता का रक्त वर्ग एक हो। इसका कारण नीचे दी गई सारणी से स्पष्ट है।

लोहित कोशिकाएँ (वर्ग के अनुसार)	सीरम (एग्लूटिनिन शून्य)	सीरम (एन्टि-एग्लूटिनिन)	सीरम (एन्टि-एग्लूटिनिन)	सीरम (एन्टि-व एन्टि-एग्लूटिनिन)
O	—	—	—	—
A	—	—	+	+
B	—	+	—	+
AB	—	+	+	+

+ = एग्लूटिनेशन — = एग्लूटिनेशन नही

रक्त वर्गीकरण की प्रविधि (Technique of blood grouping)

रक्त के किसी नमूने का वर्ग जानने के लिए निम्नलिखित विधि प्रयुक्त की जाती है।

एक स्लाइड पर A सीरम तथा B सीरम की एक-एक बूंद पृथक् रखी जाती हैं। नार्मल सेलाइन (normal saline) मे 10 प्रतिशत सोडियम साइट्रेट के विलयन द्वारा तनूकृत किये गये रक्त की एक बूंद प्रत्येक सीरम मे मिला दी जाती है। यदि उन दोनो मे रक्त कोशिकाओ का समूहन पाया जाये तो रक्त का ग्रुप AB अथवा सर्वादाता (universal recepient) है, यदि किसी मे प्रतिक्रिया न हो तो ग्रुप O अथवा सर्वदाता (universal donor) है। यदि कोशिकाओ का एग्लूटिनेशन A सीरम द्वारा हो तो रक्त का वर्ग B होता है तथा B सीरम द्वारा एग्लूटिनेशन होने पर दाता का रक्त वर्ग A होता है। वर्ग परीक्षण तथा प्रत्यक्ष मेलन (direct matching) करने के पश्चात् रक्त के Rh फैक्टर का निश्चय करना होता है। यदि Rh ऋण रोगी मे Rh धन रक्त आधानित किया जाय तो वह Rh फैक्टर के प्रति सुग्राही हो जायगा तथा फलस्वरूप भविष्य मे उपद्रव की संभावना रहेगी।

आधान करने मे पूर्व दाता तथा आदाता, दोनो के रक्तो को पृथकतः वर्गीकृत किया जाता है तथा तत्पश्चात् दाता के रक्त तथा आदाता के सीरम के मध्य प्रत्यक्ष क्रासमेलन (cross matching) किया जाता है। इस प्रकार असंगति (incompatibility) की संभावना नही रहती।

रक्त आधान के संकेत

(1) तीव्र रक्तस्राव।

(2) तीव्र स्तब्धता, विशेषतः जब परिसंचरणरत रक्त आयतन (circulating blood volume) मे अत्यधिक ह्रास हो।

(3) वृहत् आपरेशन के पूर्व, मध्य तथा पश्चात्, रक्त हानि की क्षतिपूर्ति के लिए।

(4) प्रबल संक्रमण और जीवविषरक्तता।

(5) ऐसे रक्त विकार जिनमे तीव्र रक्तस्राव प्रवृत्ति (bleeding tendency) पाई जाती है, उदाहरणतः हीमोफिलिया (haemophilia), अल्पप्रोथ्रोम्बिनरक्तता (hypoprothrombinaemia) तथा गाढ अरक्तता (severe anaemia)।

रक्ताधान का परिमाण तथा दर रोगी की अवस्था पर निर्भर होता है। सामान्यतः शल्य रोगियो मे अधिक परिमाण तथा तीव्र गति की आवश्यकता होती है जबकि कायचिकित्सात्मक (medical) अवस्थाओ मे मन्द गति द्वारा आधान द्रव की अपेक्षाकृत अल्प मात्रा पर्याप्त होती है।

दाता का चुनाव

प्राय 18 से 50 वर्ष के मध्य आयु के व्यक्तियो को रक्तदान के लिए चुना जाता है ऐसे व्यक्तियो का W R, VDRL तथा कान (kahn) परीक्षण ऋण होने चाहिएँ, उन्हे सिफिलिस, इफ्लूएंज़ा, कामला, यक्ष्मा, मलेरिया आदि सक्रामी रोगो से मुक्त होना चाहिए, उनके रक्त मे हीमोग्लोबिन प्रतिशत 80 से कम नही होनी चाहिए। रक्तदान करते समय दाता का खाली पेट होना वाछनीय होता है क्योकि इस प्रकार आधान प्रतिक्रियाओ की सभावना कम होती है। रक्त सग्रह करते समय अपूति साधन (aseptic precautions) का प्रयोग आवश्यक होता है। रक्त एकत्रित करने के लिए ऐसी निर्जीवाणुक (sterilized) बोतल का प्रयोग किया जाता है जिसमे नार्मल सेलाइन (normal saline) मे 3 प्रतिशत सोडियम साइट्रेट का विलयन भरा होता है। विलयन की मात्रा 66 ml प्रति लिटर रखी जाती है। रक्त सग्रह करने की गति अत्यधिक नही होनी चाहिए, अन्यथा दाता को वाहिकावेगस प्रतिक्रिया (vasovagal reaction) के कारण मूर्च्छा होने की सभावना रहती है। मोटे तौर पर दाता से 6 ml प्रति किलोग्राम (3 ml प्रति पौड) रक्त लेना निरापद होता है। सामान्य स्वास्थ्य के वयस्क व्यक्ति से एक बार मे 500 ml से अधिक रक्त नही लेना चाहिए।

रक्त का परिरक्षण (Preservation of blood)

रक्त का सग्रह ऐसे पात्र मे किया जाता है जिसमे रक्त परिमाण का एक-चौथाई भाग एसिड-साइट्रेट-डेक्सट्रोज तनूकरण द्रव (acid-citrate-dextrose diluting fluid) हो। इस मिश्रण का Ph या H लगभग 7 0 तथा ग्लूकोज सान्द्रता लगभग 200 mg प्रति 100 ml होती है। इसका सचय 40° c पर किया जाता है। 3 सप्ताह सचय के पश्चात् इन लोहित कोशिकाओ की रक्ताधानोत्तर जीविता (post-transfusion survival) लगभग 70 प्रतिशत पाई जाती है। यह प्राय सर्वमान्य है कि इस सख्या का 70 प्रतिशत से अधिक होना रक्ताधान के लिए अनुपयुक्त होता है।

सचित रक्त मे परिवर्तन (Changes in stored blood)

बोतल मे एकत्रित रक्त 4-60° c पर लगभग 10 दिन तक रखा जा सकता है। यदि इसमे डेक्सट्रोज मिला हो तो यह अवधि लगभग 3 सप्ताह होती है। सग्रह के पश्चात् रक्त को हिमीकृत (freeze) करने से लोहित कोशिकाए नष्ट

हो जाती है । 3 सप्ताह से अधिक पुरानी कोशिकाएं अनुपयुक्त होती हैं क्योंकि आधान के पश्चात् उनका उत्तरजीवन अल्प होता है । आधातित कोशिकाओं के रक्तसलयन (haemolysis) के फलस्वरूप हीमोग्लोबिनमेह (haemoglobinuria) हो जाता है, रोगी की वृक्क कार्यक्षमता अपर्याप्त हो तो अमूत्रता (anuria) हो सकती है ।

सचय द्वारा रक्त कोशिकाओं का अवक्षेपण हो जाता है और प्लाज्मा पृथक हो जाता है । इसे पृथक करके तरल अथवा शुष्क अवस्था में परिरक्षित किया जा सकता है । तरल प्लाज्मा एक वर्ष तक तथा शुष्कित प्लाज्मा अनेक वर्षों तक सुरक्षित रहता है । सचित रक्त (stored blood) का आधान आपदपूर्ण हो सकता है क्योंकि इसकी निर्जीवाणुता (sterility) कतिपय नियमों के कठोर पालन पर निर्भर करती है—नितान्त स्वच्छता, दोषरहित अपूति (asepsis) तथा उपयुक्त सतत प्रशीतन (continous refrigeration) । यदि सचित रक्त मे रक्तसलयन के कारण प्लाज्मा तनिक भी विवर्ण हो जाये तो उसका प्रयोग नही करना चाहिए । सचय के फलस्वरूप रक्त मे कुछ अन्य परिवर्तन भी होते है, उदाहरणत पोटाशियम मे वृद्धि तथा प्रोथ्राम्बिन, श्वेतकोशिकाओ और बिम्बाणुओ का ह्रास । सचय द्वारा बिम्बाणु शीघ्र, 2-5 दिन मे ही, नष्ट हो जाते हैं । श्वेतकोशिकाओ (leucocytes) की सख्या 5 दिन मे लगभग आधी रह जाती है । प्रोथ्रोम्बिन अश (prothrombin content) एक सप्ताह मे 25 प्रतिशत घट जाता है तथा पोटाशियम अश पाच गुणा हो जाता है । ऐसे रक्त का आधान अतिपोटाशियमरक्तता (hyperpotassaemia) उत्पन्न कर सकता है तथा फलस्वरूप हृदग्रह (cardiac arrest) या आक्षेप (convulsions) उत्पन्न हो सकते है ।

प्लाज्मा (Plasma)

प्लाज्मा रक्त के स्थान पर एक उत्तम विकल्प है । प्रबल दाहो के उपरात चयापचयी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तथा रक्तस्राव के पश्चात् स्तब्धता के निवारण के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है । प्लाज्मा का नित्यक प्रयोग निंदनीय है क्योकि इसके कारण कतिपय उपद्रव हो सकते है, तथा कामलायुक्त विलम्बित यकृतशोथ या समजात सीरम कामला (homologous serum jaundice)। प्लाज्मा मे तीन अश होते हैं एल्बूमिन (albumin), फाइब्रिनोजन (fibrinogen) तथा गामा-ग्लोबूलिन (gammaglobulin) । स्तब्धता की चिकित्सा की दृष्टि से इनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

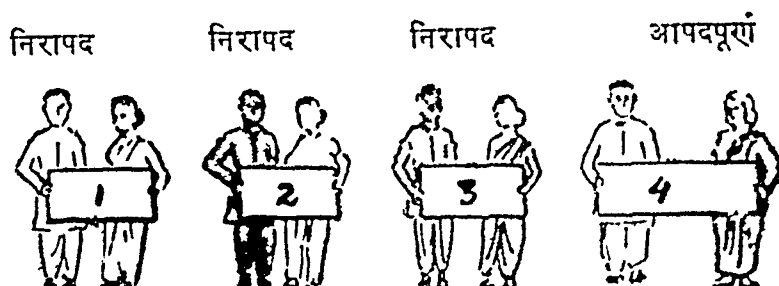
एल्बूमिन है। परासरण गुण (osmotic property) के कारण इसमे वाहिका वाह्य (extravascular fluid) को परिसचरण की ओर आकर्षित करने की क्षमता होती है। प्लाज्मा का फाइब्रिनोजन अश अल्प फाइब्रिनोजनरक्तता (hypo-fibrinogenaemia) के रोगियो के लिए विशेप महत्त्वपूर्ण होता है। यह स्थिति प्रवल यकृत रोगो, जीवविषरक्तता (toxaemia) अग्न्याशय रोगो तथा प्रसूति रोगियो मे पाई जाती है। प्लाज्मा के इस अ श के प्रयोग से अल्प फाइब्रिनोजनरक्तता के रोगियो मे स्कदन विकार दूर किये जा सकते है।

Rh फैक्टर (Rh factor)

85 प्रतिशत व्यक्तियो के रक्त मे र्‍हीसस फैक्टर (Rhesees factor) या Rh नामक एक एग्लूटिनोजन पाया जाता है जो र्‍हीसस नामक बन्दर मे भी विद्यमान होता है। यह Rh फैक्टर चारो रक्त वर्गों की लोहित कोशिकाओ मे पाया जा सकता है। इसकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर रक्त क्रमश Rh धन (Rh +) तथा Rh ऋण (Rh —) कहलाता है। Rh — व्यक्तियो की सख्या 15 प्रतिशत तथा Rh + व्यक्तियो की सख्या 85 प्रतिशत होती है किन्तु भारत मे दूसरी सख्या अतर्राष्ट्रीय गणना की अपेक्षा अधिक (93-95 प्रतिशत) पायी गई है। AB वर्ग की भाँति ही Rh + व्यक्तियो के सीरम मे भी आइसो-एग्लूटिनिन अनुपस्थित होती है। जब Rh फैक्टर से युक्त (Rh +) रक्त Rh — रोगी मे आधानित किया जाता है तो आदाता के रक्त मे 12 दिन मे एन्टि-Rh एग्लूटिनिन (anti-Rh agglutinin) नामक एक प्रतिपिंड विकसित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को पुन Rh फैक्टर युक्त रक्त का आधान दिया जाय तो इस प्रतिपिंड (antibody) तथा Rh + कोशिकाओ की अन्योन्यक्रिया (interaction) के फलस्वरूप गम्भीर आधान प्रतिक्रिया (transfusion reaction) उत्पन्न हो सकती है जिससे रोगी की मृत्यु सम्भव है। Rh — व्यक्तियो मे Rh — रक्त के आधान से स्वाभावत कोई प्रतिपिंड उत्पन्न नही होते।

Rh—रोगी मे Rh आधान प्रतिक्रिया के निवारण के लिए आवश्यक है कि केवल Rh—रक्त का ही प्रयोग किया जाए। शल्य तथा प्रसूति रोगियो मे इस फैक्टर का विशेप महत्त्व है। यदि पिता Rh+तथा माता Rh—हो तो परिणाम जटिल हो सकता है (चित्र 2)। प्राय उनकी सतान का रक्त वर्ग Rh+होता है। गर्भावस्था लघु अपरा विदरौ (small placental ruptures) द्वारा Rh+गर्भ का रक्त Rh—माँ के रक्त मे मिल जाता है तथा फलस्वरुप

माँ के रक्त मे Rh एन्टिवाडी (Rh antibodies) उत्पन्न हो जाती हैं। गर्भ के परिसचरण मे पहुँचने पर ये एन्टिवाडी गर्भ की Rh+कोशिकाओ के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। इस प्रकार शिशु को लोहितप्रसूमयता (erythroblastosis) नामक रोग हो जाता है जो प्रसव के समय प्रकट होता है।



चित्र 2 पति-पत्नी मे असगति के फलम्वरूप शिशु को खतरा
(जी० एस० प्रेस, मद्रास से आभार)

यदि रोगी को एक से अधिक वार रक्ताधान देना हो तो उसका Rhवर्ग भी निश्चित करना चाहिये। सगर्भा स्त्रियो को Rh—रक्त अथवा, यदि वे Rh+हो तो Rh+रक्त देना चाहिए। प्रसवोत्तर रक्तस्राव (postpartum haemorrhage) की रोगिणी को आपदकालीन रक्ताधान की आवश्यकता हो और उसका Rh फैक्टर अज्ञात हो तो केवल Rh—रक्त का ही प्रयोग करना चाहिए।

रक्ताधान का निषेध (Contraindications of blood transfusion)

निम्नलिखित दशाओ मे रक्ताधान केवल फिजिशियन (physician) के परामर्श पर ही देना चाहिए हृदय रोग, हृद्पेशी रोग, वृक्क पात, श्वसन उपद्रव, प्रवल एलर्जी (allergy)।

रक्ताधान के उपद्रव

रक्ताधान जीवन रक्षा के लिए अत्यत महत्त्वपूर्ण हो सकता है, किंतु इसका प्रयोग कतिपय गम्भीर उपद्रवो एव प्रतिक्रियाओ को भी जन्म दे सकता है।

असगत रक्ताधान (Incompatible transfusion)

असगत रक्ताधान के लक्षण तथा चिह्न कुछ मिनटो मे ही प्रकट हो जाते है। रोगी को कटि प्रदेश मे तीव्र पीडा अनुभव होती है तथा प्रवल शीत

(rigors) एव ज्वर हो जाता है । एनेफाइलेक्सिस (anaphylaxis) या तीव्र-ग्राहिता की भाँति परिसरीय वाहिकापात (peripheral vascular failure) के चिह्न भी पाए जाते है । कुछ समय पश्चात् कामला (jaundice), हीमोग्लोबिनमूत्रता (haemoglobinuria) अथवा अमूत्रता (anuria) भी प्रकट हो सकती है । जैसे ही असगत आधान अथवा रक्तसलायी प्रतिक्रिया (haemolytic reaction) का आघटन विदित हो, तुरन्त रक्त आधान रोक कर उसके स्थान पर 10 प्रतिशत ग्लूकोज सेलाइन विलयन आरम्भ कर देना चाहिये । यदि श्यावता (cyanosis) हो तो आक्सीजन भी देनी चाहिये । प्रवल एलर्जी प्रतिक्रिया का सामना एन्टिहिस्टेमीन (antihistamine) औपधो अथवा 15 mg अत शिरा इफेड्रीन (ephedrine) द्वारा किया जा सकता है । मूत्र सम्बन्धी उपद्रवों (urinary complications) के निवारण के लिए रोगी को प्रदत्त अत शिरा विन्दुपातन (intravenous drip) मे सोडियम लेक्टेट (sodium lactate) मिलाने से उन उपद्रवो के निवारण मे सहायता मिलती है । इस प्रयोजन के लिए मन्द ड्रिप द्वारा 2-4 प्रतिशत सोडियम साइट्रेट विलयन की 500 ml. मात्रा भी दी जा सकती है । रोगी के वृक्क कार्य (renal function) का अनुमान करने के लिए द्रव अतर्ग्रहण (fluid intake) तथा मूत्र निकास (urinary output) को नोट करते रहना चाहिये । पूर्ण मूत्र वन्ध (total urinary shut-down) की अवस्था होने पर उसका सामना करने के लिए उपयुक्त उपायो की आवश्यकता होती है ।

तापजनक प्रतिक्रियाएँ (Pyrogenic reactions)

ये शीतयुक्त ज्वर तथा, कभी-कभी परिसरीय पात (peripheral failure) के रूप मे प्रकट होती है । इनके उपचार के लिए एन्टिहिस्टेमिन (antihistamine) औपधो तथा इफेड्रिन (ephedrine), मार्फीन व कैल्शियम ग्लूकोनेट के इजेक्शनो का प्रयोग किया जाता है । आधान आरम्भ करने से कुछ समय पूर्व एन्टिहिस्टेमीनो तथा क्षारो (alkalis) के प्रयोग से इन प्रतिक्रियाओ की सभावना घट जाती है ।

एलर्जी प्रतिक्रिया (Allergic reaction)

यह प्राय शीतपित्त (urticaria) तथा कभी-कभी दमा (asthoma) अथवा वाहिकातत्रिकी शोफ (angioneurotic oldema) के रूप मे प्रकट होती है । ऐसा आधानित रक्त की कुछ मिलिलिटर मात्रा शरीर मे प्रविष्ट होते ही होने

लगता है। कैल्शियम ग्लूकोनेट तथा एन्टिहिस्टेमीनों (antihistamines) का तत्कालिक प्रयोग इन प्रतिक्रियाओं को नियन्त्रित कर सकता है।

शीत एग्लूटिनेशन (शीत समूहन) (Cold agglutination)

यदि रेफ्रिजरेटर से निकाली गई रक्त की बोतल को शरीर ताप तक गर्म किए बिना ही रक्ताधान आरम्भ कर दिया जाय तो शीत समूहन की सभावना होती है। आधान के पूर्व बोतल को हाथो मे पकड कर उष्ण करना आवश्यक है, किन्तु इस प्रयोजन के लिए किसी अन्य साधन का प्रयोग नही करना चाहिए।

कामला (Jauadice)

कामला या पीलिया का उपद्रव रक्तसलयन (haemolysis) के कारण नही, रक्तदाता से प्राप्त रक्त मे एक वायरस की उपस्थिति के कारण होता है। रक्ताधान के माध्यम से होने वाली यह कामला समजात सीरम कामला (homologous serum jaundice) कही जाती है। ऐसा अधिकतर सग्रहीत प्लाज्मा (pooled plasma) के प्रयोग के पश्चात् होता है। इस उपद्रव के पश्चात् रोगदर तथा मृत्युदर बहुत अधिक होती है।

अपसामान्य रक्तस्राव (Abnormal bleeding)

यह विषम उपद्रव रक्ताधान आरम्भ करने के कुछ देर पश्चात् ही अनावरित क्षेत्रो से रक्त-रिसाव के रूप मे प्रकट होता है। अल्पताप (hypothermia) के अतर्गत शस्त्रचिकित्सित रोगियो मे ऐसा अधिक होता है। आपरेशन के समय रक्त की अधिक मात्रा का आधान करने से यह उपद्रव अधिक होता है। यद्यपि आपरेशन के समय सवेदनाहीन रोगी को सतत आक्सीजन दी जाती है, रिसने वाले रक्त का रग काफी गहरा होता है और स्राव बिन्दु सख्या मे इतने अधिक होते है कि रक्तस्तम्भन (heamostasis) असम्भव होता है। रक्त की स्कन्दन क्षमता भी घट जाती है। इन रोगियो मे बिम्बाणु गणना अपसामान्य रूप मे कम होती है तथा प्रोथ्रौम्बिन क्रिया भी अल्प होती है, कुछ रोगियो के रक्त मे हेपेरिन (heparin) के समान एक स्कन्दनरोधी (anti-coagulant) पदार्थ पाया जाता है। इस अपसामान्य रक्तस्राव का कारण प्रोथ्रौम्बिन, फाइब्रिनोजन तथा बिम्बाणुओं का अभाव समझा जाता है। इस

अवस्था मे फाइब्रिन थक्को (fibrin clots) के सलयन की जो प्रवृत्ति पाई जाती है उसके लिए उत्तरदायी यथार्थ क्रियाविधि अज्ञात है।

आपरेशन के समय पाई जाने वाली वर्धित फिब्रिनसलायी (fibrinlytic) क्रिया परिसचरण मे कतिपय थ्राम्बोप्लास्टीय पदार्थों (thromboplastic substances) की उपस्थिति के कारण हो सकती है, इनकी व्युत्पत्ति शल्य शैय्या (operation bed) अथवा अप्रकट आधान से होती है। इस रक्तस्राव के नियन्त्रण के लिए शल्यचिकित्सक प्राय अपने अनुभव (empirically) के के अनुसार विविध रक्तस्रावरोधी औषधो का प्रयोग करते है ताकि उनमे से कोई एक औषध सफल हो जाए। आपरेशन के समय रक्त आधान प्राप्त करने वाले रोगियो मे अपसामान्य रक्तस्राव की सम्भावना को कम करने के लिए अत शिरा फाइब्रिनोजन (fibrinogen) का प्रयोग लाभदायक होता है, इस प्रकार अतिवर्धित फाइब्रिनसलायी (fibrinolytic) क्रिया घट जाती है। इस प्रयोजन के लिए 20 मिनट के समय मे 5-10 ग्राम फाइब्रिनोजन दिया जाता है, इसका प्रयोग कई घण्टो तक 4 ग्राम प्रति घटा की दर से चालू रखा जाता है, जब तक रक्त मे इसका स्तर 150 mg प्रति 100 ml नही हो जाता।

आधान के रक्त का जीवाणु संदूषण

सदूषित रक्त के आधान के फलस्वरूप अत्यन्त प्रबल प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो सकती है तथा इनके निवारण के लिए अपूति पूर्वोपायो का कठोर पालन आवश्यक है। दीर्घकाल से सचित रक्त के प्रयोग से इन प्रतिक्रियाओ के होने की सम्भावना अधिक होती है।

रक्ताधान सिफिलिस (Transfusion syphilis)

यह समझना ठीक नही है कि आधान सिफिलिस का आघटन अत्यन्त विरल है। तथापि इस घटना का निवारण सहज ही किया जा सकता है। यदि दाता से रक्त सग्रह करने से पूर्व VDRL, WR और कान परीक्षण (kahn test) कर लिए जाये।

आधान मलेरिया

भारत मे रक्त आधान के फलस्वरूप यह उपद्रव भी पाया जा सकता है।

आधान इफ्लुएजा या सक्रामी ज्वर

आधान इफ्लुएजा (transfusion influenza) की सभावना तब होती है

जब दाता (donor) को हाल मे इफ्लुएजा का प्रकोप हो चुका हो अथवा रक्त-दान के समय वह रोग के उद्‌भवन काल (incubation period) मे हो ।

बिम्बाणु आधान (Platelet transfusion)

बिम्बाणु आधान एक कठिन प्रक्रिया है क्योकि बिम्बाणुओ का सग्रह करने के लिए रक्त के विशाल परिमाण की आवश्यकता होती है । बिम्बाणु ऐसे व्यक्तियो को दिये जाते हैं जो अल्पबिम्बाणुक पर्पूरा (thrombocylopaenic purpura), अविकासी अरक्तता (aplastic anaemia) अथवा श्वेतकोशिका-रक्तता या ल्यूकीमिया (leukaemia) से पीडित हो ।

प्लाज्मा आधान (Plasma transfusion)

स्तब्धता की चिकित्सा के समय रक्त आयतन की क्षतिपूर्ति के लिए प्लाज्मा पर्याप्त उपयोगी होता है । यदि आधान के लिए रक्त उपलब्ध न हो तो सग्रहीत प्लाज्मा (pooled plasma) अथवा 60 प्रतिशत एल्बूमिन का प्रयोग लाभ-पूर्वक किया जा सकता है । एक पाइन्ट (570 ml) रक्त मे लगभग 300 ml प्लाज्मा होता है । रक्त का सचय करने पर प्लाज्मा ऊपरी तह के रूप मे पृथक हो जाता है , इसे पृथक करके 4° c पर एक वर्ष तक परिरक्षित किया जा सकता है ।

प्लाज्मा प्रयोग के अनेक लाभ हैं : इसे दीर्घकाल तक सचित रखा जा सकता है , इसे शुष्क करके दूरस्थ स्थानो पर भेजा जा सकता है , इसको वर्गीकृत करने की आवश्यकता नही होती । शुष्क प्लाज्मा हल्के भूरे रग का पाउडर होता है। प्लाज्मा मे उसके आदि परिमाण की समान मात्रा मे आस्रुत जल (distilled water) मिलाने से पुन. आधानयोग्य द्रव तैयार किया जा सकता है ।

अल्पप्रोटीनरक्तता (hypoprotinaemia) के शीघ्र सशोधन के लिए भी कभी-कभी प्लाज्मा आधान का प्रयोग किया जा सकता है ।

प्लाज्मा विकल्प (Plasma substitutes)

अल्पआयतन स्तब्धता (hypovolaemic shock) की चिकित्सा के लिए रक्त आयतन विस्तारको (blood volume expanders) के रूप मे प्लाज्मा विकल्पो का प्रयोग किया गया है । इनके उदाहरण बबूल का गोद (gum acacia), जेलेटिन (gelatin) तथा डेक्स्ट्रान (dextran) हैं । इनमे प्रथम दो

के प्रयोग के फलस्वरूप कतिपय प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो सकती है। डेक्स्ट्रान का प्रयोग द्वितीय विश्व युद्ध मे किया गया था। यह एक उपयोगी प्लाज्मा विकल्प है। इसकी 80 प्रतिशत मात्रा 3 दिन मे मूत्र द्वारा उत्सर्जित हो जाती है।

अल्पआयतन स्तब्धता की चिकित्सा के लिए प्लाज्मा विकल्प के रूप मे सीरम एल्बूमिन (serum albumin) का प्रयोग भी किया जा सकता है, किंतु यह अत्यन्त व्ययसाध्य है। प्लाज्मा मे विद्यमान केवल लगभग 40 प्रतिशत एल्बुमिन को ही प्राप्त किया जा सकता है। आधान से पूर्व सीरम एल्बुमिन को नार्मल सेलाइन (normal saline) द्वारा तनुकृत करना आवश्यक है, अन्यथा यह अणुभार (molecular weight) अल्प होने के कारण कोशिका-बाह्य ऊतको (extracellular tissues) से जल को आकर्षित कर सकता है।

प्रचुर परिमाण मे रक्त आधान की समस्याएँ

प्रचुर तीव्र रक्तस्राव होने पर अथवा नवजात शिशु मे विनिमय आधान (exchange transfusion) की आवश्यकता होने पर रक्त की अधिक मात्रा का प्रयोग करना होता है। ऐसी अवस्था मे विशेष समस्याएँ उत्पन्न हो आती हैं, जिनमे से कुछ निम्नलिखित है।

साइट्रेट मादकता (Citrate intoxication)

साइट्रेटयुक्त रक्त अत्यधिक परिमाण मे आधानित करने से साइट्रेट मादकता होने की सभावना रहती है। इस अवस्था मे अपसामान्य अल्परक्तदाब तथा कुछ अन्य लक्षण (उदाहरणत अपतानिका, tetany) पाये जाते है जो कैल्शियम आयनो के ह्रास के कारण प्रकट होते है। यही कारण है कि रक्त की प्रचुर मात्रा आधानित करते समय कैल्शियम ग्लूकोनेट (calcium gluconate) भी प्रयोग करने पर बल दिया जाता है। आपरेशन के समय दूसरी अथवा तीसरी बोतल समाप्त होने पर एक ग्राम कैल्शियम ग्लूकोनेट देने से अत्यधिक साइट्रेट के विषैले प्रभावो मे कमी हो जाती है। प्रबल यकृत रोग से पीड़ित व्यक्ति साइट्रेट का चयापचय करने मे समर्थ नही होते, अत उनके लिए साइट्रेट रहित रक्त का प्रयोग उपयोगी होता है। इस प्रयोजन के लिए रक्त को एक कैटायन विनिमय रेजिन (cation exchange resin) मे से निकाला जाता है ताकि कैल्शियम के अपनयन के फलस्वरूप रक्त स्कन्दनशील हो जाए। इस प्रकार उपचारित रक्त का उत्तरजीवन अत्यन्त लघु होता है, अत उसे दो दिन से अधिक समय तक नही रखा जा सकता।

पोटाशियम मादकता (Potassium intoxication)

पोटाशियम मादकता का कारण सचित रक्त मे होने वाला रक्तमलयन (haemolysis) है। सचित साइट्रेट युक्त रक्त मे पोटाशियम का स्तर 30-40 mg प्रति 100 ml तक पहुँच सकता है। साइट्रेटयुक्त रक्त मे ग्लूकोज मिलाने से लोहित कोशिकाओ का रक्तमलयन (haemolysis) घट जाता है तथा फलस्वरूप पोटाशियम विसरण की गति कम हो जाती है। अतिपोटाशियमरक्तता (hyperpotassaemia) के कारण प्रचुर मात्रा के आधान के पश्चात गम्भीर उपद्रव अथवा मृत्यु हो सकती है, अत 2-3 सप्ताह मे अधिक के संचित रक्त का प्रयोग नही करना चाहिये। परामर्श दिया गया है कि इस पुराने रक्त का प्रयोग अत धमनी (intra-arterial) आधान द्वारा किया जा सकता है क्योकि केशिका शैय्या (capillary bed) मे से प्रवाहित होने के फलस्वरूप यह हृदय तक पहुचने मे पूर्व तनूकृत हो जाता है। किन्तु स्मरण रहे कि इस विधि के भी कुछ कुपरिणाम हो सकते है, उदाहरणत धमनीवेधन (arterial puncture) से दूरस्थ भाग मे वाहिका आकर्ष (vasospasm) के फलस्वरूप शाखा-अग कोथ।

परिसंचरण अतिभार (Circulatory overload)

आपरेशन के समय अथवा अरक्तता का उपचार करते समय यदि अत्यधिक परिमाण मे रक्त आधान दिया जाय तो रोगी को परिसचरण पात (circulatory collapse) या फुफ्फुस शोफ (pulmonary oedema) हो सकता है। तुरन्त चिकित्सा न करने पर ये अवस्थाएँ प्राणघातक सिद्ध हो सकती हैं।

रक्तस्रावी प्रवृत्ति (Haemorrhagic diathesis)

रक्त के प्रचुर परिमाण के आधान के फलस्वरूप त्वचा मे रुधिर चिह्न (petechial) प्रकट हो सकते है अथवा आपरेशन स्थल, श्लेष्मिक पृष्ठो (mucous surfaces), जठरात्र क्षेत्र तथा मूत्र क्षेत्र से गम्भीर रक्तस्राव आरम्भ हो सकता है। इस घटना के तीन मुख्य कारण हो सकते है : साइट्रिक अम्ल मादकता (intoxication), अल्पबिम्बाणुरक्तता (thrombocytopaenia); परिसचरण अतिभार। बिम्बाणुओ का अभाव ताजे रक्त के आधान द्वारा पूरा किया जा सकता है किन्तु अत्यधिक आधान के कारण परिसचरण तत्र मे अतिभार होना निश्चय ही विपदात्मक है।

रक्ताधान की प्रविधि (Technique of transfusion)

रक्ताधान प्राय अत शिरा विधि द्वारा किया जाता है तथा इस प्रयोजन के लिए 'मेडिकल रिसर्च काउसिल' द्वारा मान्य रक्त प्रदान सेट (blood giving set) तथा रक्ताधान सुई या केनुला (cannula) का प्रयोग किया जाता है। इसके स्थान पर विवृत विधि द्वारा शिरा मे प्रविष्ट एक पोलीईथिलीन (प्लास्टिक) ट्यूब का प्रयोग भी किया जा सकता हे। इस विधि द्वारा शिरा से सुई फिसलने का भय नही रहता। शिशुओ मे इस विधि की विशेप आवश्यकता होती है।

कुछ अन्य विधियाँ, जो प्राय प्रयुक्त नही की जाती, नीचे वर्णित की गई हैं।

अस्थि-मज्जा रक्ताधान (Bone marrow transfusion)

अस्थि मज्जा आधान के लिए प्राय अन्त जंघिका के ऊपरी छोर अथवा उरोस्थि को चुना जाता है। उरोस्थि आधान के लिए पाँच वर्ष से अधिक आयु के रोगी उपयुक्त होते हैं। उरोस्थि वेधन सूचिका (sternal puncture needle) को उरोस्थि हस्तक (manubrium sterni) के क्षेत्र मे प्रविष्ट किया जाता है। विन्दुपातन दर (drip rate) मज्जा द्वारा अवशोषण की गति पर निर्भर करता है। शिशुओ मे सुई को अतर्जंघिका (tibia) मे प्रविष्ट करने की आवश्यकता पड सकती है। आधान समाप्त होने के पश्चात न्यूनतम 10 घटे तक आधान सूचिका को यथास्थान रहने देना चाहिए, अन्यथा वेधन-स्थल से द्रव बाहर निकल सकता है। अस्थि सक्रमण के निवारणार्थ सुई निकालने से पूर्व रोगी को एन्टिवायोटिक देना भी वाछनीय होता है। शिशुओ मे आधान की दर 20 वूद प्रति मिनट रखी जाती हे। आधान सूचिका को यथास्थान रखने के लिए उसे आसजी प्लस्तर की सहायता से वक्षभित्ति अथवा जघा-पार्श्व पर स्थिर किया जाता है।

अन्त धमनी रक्ताधान (Intra-arterial transfusion)

इस विधि का समर्थन विशेपत परिसरीय परिसचरण पात (peripheral circulatory failure) के रोगियो मे किया जाता है। इसमे लाभ यह है कि धमनी का अनावरण अपेक्षाकृत सरल होता है तथा तीव्र स्तब्धता की चिकित्सा के लिए यह मार्ग उत्तम रहता है।

द्रव एवं विद्युत्अपघट्य संतुलन

शल्य रोगियों में द्रव इलेक्ट्रोलाइट तथा द्रव-विद्युत्अपघट्य (fluid-electrolytes) संतुलन से सम्बन्धित समस्याएं बहुधा पायी जाती हैं।

शरीरक्रिया (Physiology)

शारीरिक द्रव को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है — रक्त, अन्तःकोशिका द्रव (intracellular fluid), अन्तराली द्रव (interstitial fluid)।

कोशिकाबाह्य कक्ष (extracellular compartment) अन्तराली द्रव (interstitial fluid) तथा अन्तर्वाहिका द्रव (intravascular fluid) से मिल कर बनता है। इस कक्ष के आयनों (ions) में धनायन (cation) सोडियम तथा ऋणायन (anion) क्लोराइड होता है। इसकी तुलना में अन्तःकोशिका (intracellular) कक्ष का कैटायन पोटाशियम और ऋणायन फास्फेट है। परासरण दाब (osmotic pressure) और द्रवस्थैतिक दाब (hydrostatic pressure) के प्रभाव से वाहिका एवं अन्तराली कक्षों के मध्य द्रव तथा इलेक्ट्रोलाइटों (मुख्यतः सोडियम) का गमन प्रवाह होता रहता है। जब प्लाज्मा में प्रोटीन की सान्द्रता अधिक होती है तो द्रव परासरण द्वारा अन्तराली कक्ष से वाहिका कक्ष की ओर आकर्षित होता है, जब द्रवस्थैतिक या हाइड्रोस्टेटिक दाब अधिक होता है तो द्रव वाहिकाओं से अन्तराली कक्ष की ओर निष्कासित हो जाता है। इस प्रकार वाहिका और अन्तराली कक्ष में प्रोटीन व इलेक्ट्रोलाइट सान्द्रता लगभग एक समान बनी रहती है, तथापि वाहिका कक्ष में यह किंचित अधिक हो सकती है।

सोडियम और क्लोराइड प्लाज्मा और अन्तराली द्रव के महत्त्वपूर्ण इलेक्ट्रोलाइट हैं। पोटाशियम का स्तर अल्प होता है, किन्तु यह पदार्थ मुख्यतः अन्तःकोशिका रूप में विद्यमान रहता है। कोशिका भित्ति कैटायनों (cations) के प्रति अपारगम्य होती है, अतः सोडियम कोशिकाओं के बाहर और पोटाशियम भीतर रहता है। कोशिकाबाह्य (extracellular) सोडियम स्तर का नियन्त्रण दो घटकों पर निर्भर करता है—सोडियम का अंतर्ग्रहण तथा वृक्कों की नियामक सोडियम उत्सर्जी क्रिया। यदि शरीर में सोडियम का अभाव हो तो वृक्कों द्वारा मूत्र में होने वाला सोडियम ह्रास कम हो जाता है ; इस प्रकार यह पदार्थ शरीर में संरक्षित रहता है। इसके विपरीत सोडियम का आधिक्य होने पर मूत्र में इसका उत्सर्जन बढ़ जाता है। रक्त में अधिक पोटाशियम होने पर

कोशिकाओ को क्षति पहुंचती है , पोटाशियम अभाव की अवस्था मे सोडियम कोशिकाओ मे प्रविष्ट होकर उनकी सुरक्षा करता है ।

अत कोशिका तथा कोशिकावाह्य कक्षो के मध्य जल की भी गति होता है । इन गति का इलेक्ट्रोलाइटो के वितरण मे गूढ सम्वन्ध होता है , प्रत्येक आयन की सान्द्रता उसके चारो ओर उपस्थित जल के अवधारण अथवा निष्कासन द्वारा होती है । इस प्रकार अत कोशिका एव कोशिकावाह्य कक्ष के मध्य जल की गति शरीर के निवेश-निर्गत तथा इलेक्ट्रोलाइट ह्रास पर निर्भर होती हे ।

अत कोशिका कक्ष मे पोटाशियम की मात्रा कोशिकावाह्य कक्ष की अपेक्षा वीस गुना होती है । यह अशत प्रोटीनवद्ध तथा अशत आयन रूप (ionic form) मे रहती है । अन्त कोशिका एव कोशिकावाह्य द्रव के मध्य समतानिता (isotonicity) वनाये रखने का उत्तरदायित्व आयन रूपी पोटाशियम पर होता है। असामान्य पोटाशियम स्तर मे वृद्धि अथवा ह्रास के फलस्वरूप कोशिकाओ को क्षति पहुंचती है ।

साराश

सामान्य आहार एव द्रव ग्रहण करने वाले स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे अम्ल-क्षार (acid-base) अथवा जल सतुलन सम्वन्धी कोई समस्या नही होती । अम्ल-क्षार सतुलन एव द्रव प्रयोग का विषय अत्यन्त जटिल है। स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट पुरुष के वसारहित शारीरिक वजन का 60 प्रतिशत जल होता है , यह सख्या वच्चो मे अधिक तथा शिशुओ मे अत्यधिक होती है । यह जल दो मुख्य कक्षो मे वितरित होता है कोशिकावाह्य (extracellular) तथा अन्त-कोशिका (intracellular) । इनमे प्रथम शरीर भार का लगभग 20 प्रतिशत तथा द्वितीय (मुख्यत पेशी मे वितारित) 40-50 प्रतिशत होता है। कोशिका-वाह्य द्रव के दो भाग है रक्त प्लाज्मा, जिसका परिमाण 70 किलोग्राम वजन के शरीर मे 5 प्रतिशत अथवा 3 लिटर होता है, तथा, अन्तराली द्रव एव लसीका (interstitial fluid and lymph), जिनकी मात्रा सयुक्त रूप मे लिटर अथवा शरीर भार का 15 प्रतिशत होती है । अन्त कोशिका द्रव के निर्माता अग निम्नलिखित हैं प्रोटीन, फास्फोरस, पोटाशियम, कैल्शियम, मेग्नेशियम तथा वाइकार्वोनेट । कोशिकावाह्य द्रव मे सोडियम क्लोराइड तथा वाइकार्वोनेट होते है । शरीर मे रक्त कुल द्रव आयतन का 9 प्रतिशत होता है । प्लाज्मा के मुख्य घटक सोडियज क्लोराइड, वाइकार्वोनेट तथा प्रोटीन है । यह दीर्घकाल से विदित है कि शरीर के द्रव आयतन मे 10 प्रतिशत तक का ह्रास विशेष

अम्लरक्तता उत्पन्न नहीं करता, किन्तु 22-25 प्रतिशत द्वारा प्राणघातक होता है। फलस्वरूप पिछली दशाब्दी में इस विषय के महत्त्व में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

पोटाशियम

अल्पपोटाशियमरक्तता (Hypopotassaemia)

वृक्क लगातार पोटाशियम का उत्सर्जन करते रहते हैं। शरीर में इस तत्त्व का अभाव गम्भीर परिवर्तनों को जन्म देता है। इसके विपरीत कोशिकाबाह्य कक्ष (extracellular compartment) में पोटाशियम स्तर की वृद्धि हृदय के लिए हानिकारक होती है। अल्पपोटाशियमरक्तता के लक्षण निम्न प्रकार हैं।

रोगी निर्बल, निश्चेष्ट, रुचिहीन तथा तन्द्रिल होता है। रक्त-दाब में कमी, उदर विस्फार (abdominal distension) तथा श्वसन विक्षोभ (respiratory disturbance) पाए जा सकते हैं। विद्युतहृल्लेख (electrocardiogram) में QT अवकाश (QT interval) लम्बा हो जाता है और T तरंग (T wave) का चपटापन या प्रतिलोमन हो सकता है। विलम्बित प्रावस्था में रोगी को कोमा (coma) या सन्यास हो जाता है।

यह दशा प्रायः क्षारता (alkalosis) की सहगामी होती है। क्लोराइडों का प्रयोग करने के पश्चात भी पोटाशियम अभाव पूर्ववत रहता है और इस अवस्था के लक्षण बने रहते हैं। अल्पपोटाशियमरक्तता निम्न अवस्थाओं में पाई जाती है: जठरान्त्र विकार, यथा अतिसार और वमन, मधुमेह अम्लमयता (diabetic acidosis), शल्य रोगियों में अपर्याप्त द्रव अन्तर्ग्रहण; कार्टेक्स स्टीरायडों (cortical steroids) का प्रयोग।

चिकित्सा—पोटाशियम अभाव के रोगियों में रक्त रसायन में पर्याप्त परिवर्तन आ जाता है, शरीर में पुनः प्रसामान्य एसिड-बेस साम्य (acid-base equilibrium) स्थापित करने के लिए केवल पोटाशियम नहीं, सोडियम क्लोराइड तथा जल की भी उपयुक्त मात्रा की आवश्यकता होती है। यदि प्लाज्मा की पोटाशियम सान्द्रता सामान्य हो तो पोटाशियम लवणों की अनुरक्षण आवश्यकता (maintenance requirement) ही पूरी करनी होती है, अल्प पोटाशियम स्तर की अवस्था में इस आवश्यकता के अतिरिक्त और अधिक मात्रा प्रदान करनी होती है, जब तक प्रसामान्य पोटाशियमरक्तता की स्थिति हो जाय। पोटाशियम का मुख प्रयोग सर्वोत्तम रहता है—प्रति 4 घंटे पश्चात् 20 ml पानी में 3 ग्राम पोटाशियम क्लोराइड का सेवन कराया जाता है।

पोटाशियम का अन्त शिरा प्रयोग आवश्यक हो तो ऐसा अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए, कही हृदय सस्तम्भन (cardiac standstill) न हो जाए। अमूत्रता (anuria) के रोगियो मे पोटाशियम का प्रयोग आपत्तिरहित नही होता, क्योकि उनके शरीर मे पोटाशियम के अधिक परिमाण की सम्भावना होती है।

शान्त्रकर्मोत्तर अल्पपोटाशियमरक्तता की चिकित्सा की सर्वोत्तम विधि 1-2 ग्राम पोटाशियम क्लोराइड का दैनिक सेवन है।

डैरो (Darrow) द्वारा विकसित पोटाशियम लेक्टेट विलयन (potassium lactate solution) इलेक्ट्रोलाइटो की पूर्ति के लिए लाभदायक होता है, इसकी रचना निम्न प्रकार है

सोडियम क्लोराइड	4 g /
पोटाशियम क्लोराइड	2 7 g /
मोलर (molar) सोडियम लेक्टेट	52 ml /
जल	1000 ml /तक

पोटाशियम अभाव की कोटि इतनी अधिक हो सकती है कि उसकी क्षतिपूर्ति मे एक सप्ताह लग जाय। डैरो का विलयन आवश्यकतानुसार अधस्त्वक इजेक्शन द्वारा भी दिया जा सकता है। यदि इसका अत शिरा प्रयोग करना हो तो डेक्सट्रोज (dextrose) के 5 प्रतिशत जलीय विलयन द्वारा इसे 1 · 3 के अनुपात मे तनुकृत कर लेना चाहिए। चिकित्सा के पश्चात् इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम प्रसामान्य रूप मे आ जाता है। यदि पोटाशियम की अत्यधिक मात्रा प्रयोग की जाय तो हृदय ग्रह (cardiac arrest) का भय रहता है।

अतिपोटाशियमरक्तता (Hyperpotassaemia)

अतिपोटाशियमरक्तता वृक्क वध (renal shutdown) की अवस्था मे पाई जाती है, उदाहरणत अमूत्रता अथवा यूरीमिया के रोगी। अत्यधिक परिमाण मे पोटाशियम का प्रयोग भी यह दशा उत्पन्न कर सकता है, विशेषत यदि रोगी का वृक्क निकास (renal output) सतोषप्रद न हो।

लक्षण एवं चिह्न—शाखाअगो मे सुन्नता और झनझनाहट पाई जाती है। पेशियो का श्लथ अगघात (flaccid paralysis) भी पाया जा सकता है। यूरीमिया के चिह्न, हृद्मदता (bradycardia) तथा अतत हृद्ग्रह प्रकट हो जाता है। रक्त सीरम मे पोटाशियम का स्तर अधिक होता है। इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम मे ST खड का अवनमन (depression of ST segment) पाया जाता है, T तरग का प्रतिलोमन (Inversion of T wave) भी हो सकता है।

यदि पोटाशियम स्तर 9 से बढकर 12 mg प्रति लिटर हो जाय तो हृदय सस्तभन (cardiac standstill) हो सकता है।

चिकित्सा—चिकित्सा के अग निम्नलिखित है . डेक्सट्रोज का अत:शिरा आधान, टेस्टोस्टीरोन इजेक्शन, पर्युदर्या धावन (peritoneal lavage) तथा कोल्फ (Kolff) का कृत्रिम वृक्क।

लवण संतुलन (Salt Balance)

लवण नि शेपण (salt depletion) प्राय आत्र रोध (intestinal obstruction) तथा उदर आपरेशनो के पश्चात् जठर चूषण के फलस्वरूप पाया जाता है। लवण अवशोषण के लक्षण निम्नलिखित हैं कोशिकावाह्य निर्जलीकरण (extracellular dehydration) , पिपासा लोप, बढता हुआ आलस्य, स्थितिक मूर्च्छा (orthostatic fainting), तीव्र वमन, ऐंठन या उद्वेष्टन (cramps)। मूत्र का परिमाण रोग की विलम्बित प्रावस्था तक सामान्य रहता है, किन्तु यह सोडियम क्लोराइड से रहित होता है।

यदि रोगी मुख मार्ग द्वारा द्रव ग्रहण करने मे समर्थ हो तो लवण असतुलन को सहज ही सशोधित किया जा सकता है। अन्य रोगियो मे सेलाइन (saline) का अत.शिरा आधान शीघ्र लाभ प्रदान करता है।

मूत्र क्लोराइडो को नियमपूर्वक मापने से लवण ह्रास का निदान सहज ही किया जा सकता है। अत शिरा सेलाइन आधान प्राप्त करने वाले रोगियो मे भी यह आमापन अवश्य करना चाहिये।

मूत्र क्लोराइडो का आकलन (Estimation of Urinary Chloride)

साधारण शल्य रोगियो मे लवण अभाव की पूर्ति करते समय मूत्र क्लोराइड आकलन एक विश्वसनीय सूचक है, सेलाइन का प्रयोग तब तक चालू रखा जा सकता है जब तक फैन्टस (Fantus) के सिल्वर नाइट्रेट परीक्षण द्वारा मूल मे क्लोराइड का पर्याप्त एव संतत स्तर न पाया जाये। फैन्टस द्वारा वर्णित परीक्षण निम्न प्रकार है।

एक टैस्ट ट्यूब मे 20 प्रतिशत पोटाशियम क्रोमेट विलयन की एक बूंद तथा मूत्र की दस बूंदे ली जाती है। इसमे सिल्वर नाइट्रेट का 29 प्रतिशत घोल बूंद-बूंद करके मिलाया जाता है तथा प्रत्येक बूंद के पश्चात् नली को भली प्रकार हिलाया जाता है। अन्तिम बिन्दु की प्राप्ति का सकेत मिश्रण का रग पीले से भूरा होने से मिलता है। इस बिंदु की प्राप्ति के लिए जितने बूंद सिल्वर

नाइट्रेट विलयन प्रयुक्त हो, मूत्र मे क्लोराइड की मात्रा उतने ही ग्राम प्रति लिटर होती है, उदाहरणत 6 बूंद का अर्थ है 6 ग्राम प्रति लिटर।

यह अति सरल परीक्षण, लवण नि शेपण के निदान ही मे नही, चिकित्सा मे भी सहायक होता है। यदि प्रथम बूंद डालते ही अतिम-बिन्दु की प्राप्ति हो जाये तो समझना चाहिए कि मूत्र क्लोराइड-रहित है। प्रसामान्य व्यक्तियो मे अत्यधिक द्रव अतर्ग्रहण के पश्चात् तनुकृत मूत्र मे भी ऐसी स्थिति पाई जा सकती है, किंतु मूत्रलता (diuresis) की अनुपस्थिति मे ऐसा होना निश्चय ही लवण नि शेपण का सूचक है, चाहे उसकी कोटि इतनी प्रगत न हो कि तद्रूपी लक्षण प्रकट हुए हो। १०१६ अथवा अधिक विशिष्ट घनत्व के सान्द्रित मूत्र मे 3 ग्राम प्रति लिटर अथवा अधिक स्तर पर लवण नि शेपण की सभावना नही होती। प्रसामान्य रक्त क्लोराइड स्तर लगभग 560-630 mg प्रति 100 ml होता है।

आवश्यकताओ का परिकलन (Calculation of Requirements)

रक्त क्लोराइड को प्रसामान्य स्तर तक लाने के लिए प्राय निम्न फार्मूला उपयोगी रहता है : प्लाज्मा क्लोराइड स्तर को प्रसामान्य तक लाने के लिए जितनी वृद्धि की आवश्यकता हो, उसके प्रत्येक 100 mg के लिए 0 5 ग्राम लवण प्रति किलोग्राम शरीर-भार की आवश्यकता होती है। एक लिटर नार्मल सेलाइन (normal saline) विलयन मे लगभग 9 ग्राम लवण होता है। रक्त क्लोराइड का प्रसामान्य स्तर स्थापित करने के लिए आवश्यक नार्मल सेलाइन की मात्रा परिकलित करने की विधि निम्न प्रकार है 70 kg के व्यक्ति का प्लाज्मा क्लोराइड स्तर 460 mg प्रति 100 ml. से सामान्य (560 mg प्रति 100 ml) तक लाना हो तो उसे लवण की निम्न मात्रा की आवश्यकता होगी

$$70 \times 0\,5 \times \frac{\text{प्रसामान्य प्लाज्मा क्लोराइड स्तर} = 560 \quad \text{माइनस} \quad \text{रोगी का प्लाज्मा क्लोराइड स्तर} = 460}{100}$$

$$70 \times 0\,5 \times 1 = 35 \text{ g.}$$

चूंकि एक लिटर नार्मल सेलाइन मे 9 ग्राम लवण होता है, 35—9 अर्थात् लगभग 4 लिटर सेलाइन के प्रयोग द्वारा रोगी का रक्त क्लोराइड स्तर

प्रसामान्य किया जा सकता है। यह मात्रा 5 प्रतिशत ग्लूकोज सेलाइन क रूप मे प्रदान की जाय तो रोगी को आवश्यक कैलोरिया भी प्राप्त हो जाती है।

सेलाइन की ऊपर बताई गई मात्रा अत्यधिक होने के कारण वह 24 घन्टो मे नही दी जा सकती, इसे इस प्रकार वितरित किया जाता है कि 2-3 दिन मे रक्त क्लोराइड प्रसामान्य हो जाय। रक्त क्लोराइड का आमापन एक समय-साध्य क्रिया है, अत शास्त्रकर्मोत्तर काल मे अन्त शिरा चिकित्सा करते समय सरल एव शीघ्र विधि के रूप मे फेन्टस परीक्षण (Fantus test) का प्रयोग किया जा सकता है।

अम्लमयता (Acidosis)

अम्लमयता या एसिडोसिस नामक अवस्था मे शरीर मे अम्ल की मात्रा बढ जाती है। यदि प्लाज्मा का बाइकार्बोनेट अग अल्प कार्बन-डाइआक्साइड के 55 आयतन प्रतिशत अथवा 20 mg. प्रति लिटर से कम हो तो ऐसा होने की सम्भावना रहती है।

कारण—अम्ल का आधिक्य निम्नलिखित अवस्थाओ मे पाया जाता है, मधुमेह, वृक्क पात (renal failure), क्लोराइड आयन का अधिक पुन अव-शोषण, तथा गवीनी (ureter) का प्रतिस्थापन (transplantation)। अति-सार तथा व्रणी वृहदात्र शोथ (ulcerative colitis) के कारण सोडियम की हानि और आत्र नालव्रण (intestinal fistula) तथा दीर्घकाल तक आत्र चूषण (intestinal suction) के कारण बाइकार्बोनेट की हानि होती है। फलस्वरूप रक्त के क्षार अग का ह्रास और एसिडोसिस की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अग्न्याशय नालव्रण (pancreatic fistula) के रोगियो मे भी अत्यधिक क्षार हानि के कारण ऐसिडोसिस हो सकती है।

क्लिनिकल रूप—एसिडोसिस या अम्लमयता मे हृदयक्षिप्रता (tachycardia), रक्तदाब का पतन, उदर उद्वेष्टन (abdominal cramps) तथा दीर्घ गभीर श्वसन (deep sighing respiration) पाये जाते हैं।

गम्भीर अवस्था मे रोगी कोमाग्रस्त (comatose) हो जाता है और सास मे एसिटोन (acetone) की गध आने लगती है, विशेपत यदि अत्यधिक अना-हार की स्थिति विद्यमान हो।

प्रयोगशाला परीक्षण—चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व रक्त रसायन का अध्ययन करना चाहिए, अर्थात् सोडियम, पोटाशियम, क्लोराइड तथा कार्बन डाइअक्साइड का स्तर मापना चाहिए।

चिकित्सा—सर्वोत्तम विधि डेरो (Darrow) के विलयन का अन्त शिरा प्रयोग है। कुछ रोगियो मे सोडियम लेक्टेट का एक-बटा-छह मोलर विलयन (one-sixth molar lactate) तथा तदुपरान्त नार्मल सेलाइन का प्रयोग एसिडोसिस को ठीक कर सकता है। आधान क्रिया मे समय-समय पर रक्त रसायन (blood chemistry) के अध्ययन के लिए परीक्षण किए जाते है। जैसे ही रोगी अन्तर्ग्रहण कर सके, पोटाशियम साइट्रेट और सोडियम लेक्टेट का मुख सेवन भी आरम्भ कर दिया जाय। किन्तु मूत्र निकास (urinary output) असन्तोषजनक हो तो पोटाशियम का सेवन नही कराना चाहिए। बृहदान्त्र मे गवीनियो का प्रतिस्थापन (transplantation) करने के पश्चात् प्रकट होने वाले एसिडोसिस के लिए रोगी की प्रति छह घटे पश्चात् 30 ml जल में 2g पोटाशियम साइट्रेट देना चाहिए। वस्तुत यह मिक्सचर प्रतिस्थापन आपरेशन से पूर्व भी लाभपूर्वक दियाजा सकता है क्योंकि शस्त्रकर्मोत्तर काल मे पोटाशियम की हानि अवश्यभावी होती है। अनिक्लोररक्तता (hyperchloraemia) के निवारण के लिए आवश्यक है कि मूत्र को बृहदान्त्र मे एकत्रित न होने दिया जाय बल्कि वारम्बार निकाला जाय।

यदि CO_2 सयोग शक्ति (CO_2 combining power) 25 और 40 आयतन प्रतिशत के मध्य हो तो वह गम्भीर एसिडोसिस का सूचक है। उसे अन्त शिरा मार्ग द्वारा रिंगर का विलयन (Ringer's solution) अथवा एक-बटा-छह मोलर सोडियम लेक्टेट विलयन देना चाहिए। मात्रा की गणना कैगन (Kagan) के फार्मूले द्वारा की जाती है

$$\left(\text{प्रसामान्य रक्त की सयोग शक्ति} - \text{रोगी के रक्त की सयोग शक्ति}\right) \times \text{पौंड मे शरीर भार}$$

= एक-बटा-छह मोलर सोडियम लेक्टेट की आवश्यक मात्रा, ml मे

उदाहरणत. यदि रोगी का वज़न 100 lb और CO_2 सयोग शक्ति 35 आयतन प्रतिशत (volumes per cent) हो तो एक-बटा-छह मोलर सोडियम लेक्टेट विलयन का निम्नलिखित परिमाण आवश्यक होगा

$(55-35) \times 100 = 2\,000$ ml

यदि रोगी की CO_2 सयोग शक्ति 15 प्रतिशत से कम हो तो उसे निम्न फार्मूले के अनुसार 5 प्रतिशत सोडियम बाइकार्बोनेट विलयन देना चाहिए.

(55-CO_2)—शरीर-भार पौंड मे × 0.24 = 5 प्रतिशत सोडियम बाइ-
कार्बोनेट विलयन की आवश्यक मात्रा, ml मे

क्षारमयता (Alkalosis)

क्षारमयता या एल्केलोसिस निम्नलिखित दशाओ मे पाया जाता है · तीव्र वमन या जठर चूषण (gastric suction), पूर्ण जठर निर्गम अवरोध (pyloric obstruction) के फलस्वरूप वमन मे क्लोराइड की हानि, पेप्टी व्रण के रोगियो द्वारा अत्यधिक क्षारो (alkalis) का सेवन, अत्यधिक कार्टिसोन (cortisone) का प्रयोग ।

इन रोगियो मे मूत्र द्वारा रक्त के सोडियम और पोटाशियम की हानि होने लगती है। सोडियम व पोटाशियम की इस हानि तथा वमन के कारण क्लोराइड हानि के फलस्वरूप रक्त के क्षार अश मे वृद्धि हो जाती है ।

एल्केलोसिस के लक्षण निम्नलिखित है सिरदर्द, मतली, वमन, घुमेड (dizziness), भ्रमि (vertigo), पेशी-स्फुरण (muscle twitching), जोडो मे दर्द, द्रुत एव उथला श्वसन । रोगी का स्वभाव रुचिहीन और तद्रिल हो जाता है । अन्तत अपतानिका (tetany) प्रकट हो सकती है ।

क्षारमयता की विलम्बित अवस्था मे श्वसन मद एव उथला होता है, अम्लमयता मे यह गहरा और तेज होता है (कुस्माल श्वसन, Kussmaul breathing) ।

क्षारमयता या एल्केलोसिस की कोटि रक्त के रासायनिक अध्ययन द्वारा निर्धारित की जा सकती है। स्वस्थ व्यक्ति मे रक्त की प्रसामान्य CO^2 सयोग शक्ति 55-75 आयतन प्रतिशत होती है। यह सख्या 80 अथवा 90 आयतन प्रतिशत तक पहुच जाय तो अपतानिका या टिटेनी प्रकट हो सकती है, 40 आयतन प्रतिशत से कम स्तर पर रोगी को एसिडोसिस होता है ।

चिकित्सा—टिटेनी (अपतानिका) विद्यमान न हो तो एल्केलोसिस के सशोधन की सर्वोत्तम विधि सेलाइन का अन्त शिरा प्रयोग है। टिटेनी (Tetany) की उपस्थिति मे 5 प्रतिशत केल्शियम क्लोराइड या 10 प्रतिशत केल्शियम ग्लूकोनेट भी अन्त शिरा मार्ग द्वारा पहुचाना चाहिये; प्रति छह घण्टे पर 10-20 ml आवश्यक हो सकता । साथ ही अल्पपोटाशियमरक्तता का सशोधन भी आवश्यक होता है ।

सोडियम का आधिक्य एव अभाव

सोडियम और क्लोराइड के आधिक्य के कारण जिह्वा तथा श्लेष्मल कलायें

सूख जाती है और अत्यधिक प्यास अनुभव होती है, अत रोगी अधिक जल पीता है। सोडियम आधिक्य की अल्प मात्रा भी हानिप्रद होती है, विशेषत यदि आन्त्र-सर्जरी करनी हो। इस अवस्था मे ऊतक शोफयुक्त हो जाते है तथा आन्त्र सम्मिलन (ıntestınal anastamosıs) के आपरेशन के पश्चात् अग का कार्य स्वँभित कर सकते है। सोडियम आधिक्य की दशा मे शरीर के निम्न भागो, यथा टखने और त्रिक प्रदेश, मे गर्तन शोफ (pıttıng oedema) भी पाया जा सकता है। मेरियट (Marrıott) के अनुसार यदि आनन तथा पावो पर गर्तन शोफ प्रकट हो तो ऊतक अवकाशो (tıssue spaces) मे 4 लिटर से अधिक द्रव विद्यमान होता है। इस अवस्था का कारण आपरेशन के पश्चात् अतिजलीकरण (overhydratıon) हो सकता है, यदि इसे चालू रखा जाय तो प्राय फुप्फुस शोफ (pulmonary oedema) हो जाता है। अत आवश्यक है कि सेलाइन आधान अत्यन्त ध्यानपूर्वक दिये जाये तथा केवल उतना ही परिमाण प्रयुक्त किया जाय जितना प्रसामान्य रक्त रसायन के स्थापनार्थ आवश्यक हो।

आधान द्रव मे सोडियम व क्लोराइड की मात्रा अपर्याप्त हो तो लवण नि शेपण (salt depletıon) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। दीर्घकाल तक आधान प्राप्त करने वाले रोगियो मे ऐसी सभावना अधिक होती है। सोडियम एव क्लोराइड सामान्यत मूत्र मे उत्सर्जित होते है। वृक्ककार्य यदि उत्तम हो तो मूत्र द्वारा क्लोराइड हानि होती रहती है , रोग की विलम्बित अवस्था मे मूत्र क्लोराइड का परिमाण घट जाता है। सोडियम अभाव की अवस्था मे रोगी को सिरदर्द एव सिर का चकराना (gıddıness) अनुभव होता है तथा रक्त का रासायनिक विश्लेषण करने पर सोडियम स्तर मे कमी पाई जा सकती है। इन रोगियो को अभावपूर्ति के लिए सोडियम क्लोराइड देना चाहिये।

जल सतुलन (Water Balance)

जल का उत्सर्जन मुख्यत. वृक्क द्वारा होता है, यद्यपि इसकी कुछ मात्रा फुप्फुस, त्वग्वसा ग्रन्थियो तथा मल द्वारा भी निकलती रहती है। वृक्क अपशिष्ट उत्पादो का उत्सर्जन जल के बिना नही कर सकते है , जल की न्यूनतम आवश्यक मात्रा लगभग 500 ml दैनिक होती है।

कोलर तथा मैडोक (Coller & Maddock, 1940) ने शल्य रोगियो को 24 घटे मे दिये जाने वाले द्रव के परिमाण का इस प्रकार आकलन किया है।

(1) वाष्पन तथा स्वेदन द्वारा खोया जल 1000-1500 ml
(2) मूत्र मे खोया गया जल ·1000 ml

यदि मौसम तनिक गर्म और आर्द्र हो, अथवा रोगी को ज्वर या अति-अवटुता (hyperthyroidism) हो, तो वाष्पन द्वारा लगभग 2000 ml. तथा मूत्र द्वारा 1500 ml जल की हानि होती है।

उक्त सख्याएँ शैय्यारूढ व्यक्ति के लिए उपयुक्त हैं। आपरेशन के पश्चात् द्रव की अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता होती है, विशेषत: यदि जठर चूषण, आंत्र नाल्व्रण अथवा वमन के कारण अपसामान्य द्रव हानि हुई हो। मोटे तौर पर रोगी की कुल दैनिक आवश्यकता लगभग 2000 ml होती है।

जल हानि (Water Loss)

यदि रोगी पर्याप्त जल को न ले सके (उदाहरणत अनाहार, निगरणकृच्छ, dysphagia) तो केवल जल की हानि होती है, इलेक्ट्रोलाइटो की नही। ऐसे निर्जलीभवन (dehydration) के फलस्वरूप अत्यन्त निर्बलता हो जाती है। यदि जल का पूर्ण त्याग हो तो लक्षण अति शीघ्र प्रकट होते हैं, क्योकि वृक्को एव त्वचा से जल की संतत हानि होती रहती है। कोशिकाबाह्य द्रव अतिपरा-सारी (hypertonic) हो जाता है तथा द्रव का कोशिकाओ से कोशिकाबाह्य अवकाश की ओर विस्थापन होता है, इस क्रिया के साथ पोटाशियम भी कोशिकाओ से बाहर आकर अतत मूत्र द्वारा निकलने लगता है। किन्तु अन्य इलेक्ट्रोलाइटो (विद्युत-अपघट्यो) की हानि पोटाशियम की अपेक्षा कम होती है। इसके अतिरिक्त रोगी का कैलोरी अन्तर्ग्रहण अत्यल्प होने के कारण कोशिकाओ का भजन होने लगता है, अत पोटाशियम हानि और अधिक बढ जाती है। केवल जल हानि के लक्षण निम्नलिखित हैं . प्यास, शुष्क मुख, नेत्र गोलक के तनाव (tension) का लोप, आँखें धसी हुई (sunken facies) तथा त्वचा टोन (skin tone) का लोप।

चिकित्सा—निर्जलीभवन की चिकित्सा के लिये निम्नलिखित विलयनो का प्रयोग किया जाता है।

नार्मल सेलाइन विलियन एसिडोसिस के निवारण तथा सशोधन मे सहायक होता है। वृक्को द्वारा क्लोराइड का उत्सर्जन और सोडियम का अवधारन होता है, जो बाइकार्बोनेट मे सयुक्त हो जाता है।

5 प्रतिशत ग्लूकोज विलयन आयनो के रूप मे वियोजित नही होता क्योकि ग्लूकोज इलेक्ट्रोलाइट नही है। डेक्सट्रोज का 5 प्रतिशत घोल समतानी

(isotonic) होता है तथा कीटोसिस (ketosis) के रोगियो के लिए विशेषत उपयोगी होता है।

सोडियम लेक्टेट विलयन का प्रयोग एसिडोसिस मे लाभकारी होता है। यह एक-वटा-छह मोलर सोडियम लेक्टेट (पाँच भाग आसवित जल मे एक भाग मोलर सोडियम लेक्टेट) के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। इसकी आवश्यक मात्रा का परिमाण रक्त के वाइकार्बोनेट अश पर निर्भर करता है। रक्त के कार्बन डाइआक्साइड अश मे 10 आयतन प्रतिशत की वृद्धि के लिए (टेल्बट, Talbott) इस विलयन की शरीर भार के अनुसार 10 ml प्रति kg मात्रा आवश्यक होती है।

रिंगर (Ringer) का विलयन अतिसार के कारण उत्पन्न निर्जलीभवन की चिकित्सा के लिए, विशेषत बच्चो मे, लाभदायक होता है। इसमे सोडियम, कैल्शियम तथा पोटाशियम विद्यमान होते हैं।

डैरो (Darrow) का विलयन अल्पपोटाशियमरक्तता तथा अल्पआयतन-रक्तता (hypovolaemia) के रोगियो मे विशेष उपयोगी होता है।

जलाधिक्य (Water Surplus)

ग्लूकोज या जल की अत्यधिक मात्रा के आधान से रोगी के शरीर मे जल आधिक्य की अवस्था उत्पन्न हो सकती है। यदि जल का आधिक्य हो किन्तु कोशिकावाह्य सोडियम क्लोराइड की मात्रा यथापूर्व रहे तो जल मादकता (water intoxication), दुर्वलता, ज्वर, मानसिक परिवर्तन आदि उत्पन्न हो जाते है। अन्तत आक्षेप (convulsions) और (coma) हो सकता है। यदि सोडियम व क्लोराइड का स्तर प्रसामान्य बना रहे तो जलाधिक्य के कारण मूत्रलता (diuresis) के अतिरिक्त अन्य कोई लक्षण प्रकट नही होता, अत्याधिक्य की अवस्था मे शरीर के निम्न भागो (dependent parts) तथा वृषण-कोश का गर्तन शोफ (pitting oedema) हो सकता है।

चिकित्सा—शरीर को द्रवाधिक्य से वचना चाहिये। प्रयत्न होना चाहिये कि अतर्ग्रहण (intake) तथा निकास (output) मे परस्पर साम्य हो। यदि शरीर मे द्रव की अत्यधिक मात्रा प्रविष्ट हो जाए तो 200 ml अतितानी (hypertonic) सेलाइन विलयन (2 प्रतिशत) का मन्द अन्त शिरा विधि द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, इसके प्रयोग से मूत्र निकास सामान्य हो जाता है तथा इलेक्ट्रोलाइटो की अतिरिक्त मात्रा भी निकल जाती है।

प्लाज्मा प्रोटीन का प्रसामान्य स्तर 6 5-7 5 ग्राम प्रति 100 ml है;

इसमे 3 8-4 4 ग्राम प्रति 100 ml एल्बुमिन तथा 2 2-3 4 ग्राम प्रति 100 ml. ग्लोबुलिन होता है। प्रोटीन की लघुतम दैनिक आवश्यकता शरीर भार के अनुसार 0 6 g प्रति kg होती है। उच्च प्रोटीन आहार के लिए रोगी को प्रतिदिन मुख अथवा आन्त्रेतर मार्ग द्वारा 150 ग्राम प्रोटीन प्रदान करना चाहिए।

सीरम एल्बूमिन (25 प्रतिशत) का प्रयोग भी किया जा सकता है किन्तु यह बहुत महगा पडता है। जिनका यकृतकार्य उत्तम हो उन रोगियो मे प्रोटीन के साधारण अभाव को दूर करने के लिए कुछ अन्य पदार्थो का भी अन्त शिरा द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, यथा एमिजेन (amigen), केसीन और अग्न्याशय का एँजाइमी हाइड्रोलाइसेट, (enzymic hydrolysate) व पैरेनेमीन (parenamine, केसीन का एसिड हाइड्रोलिसेट)। प्रोटीन अभाव का सशोधन करने की एक शीघ्र तथा प्रभावपूर्ण विधि रक्त या प्लाज्मा का आधान है।



4

आनन, ओष्ठ और दोनों हनु

(FACE, LIPS AND JAWS)

सी० राघवाचारी

परिवर्धन (Development)

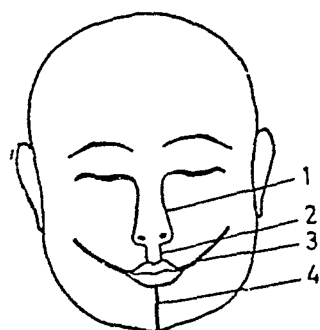
गर्भ के अभ्युदर और शीर्ष प्रान्त के पास, आद्य मुखपथ (prim'tive stomodeum) एक अवनमन के रूप मे उपस्थित होता है। पाँचवे सप्ताह के गर्भ मे पाँच प्रवर्ध इसकी ओर अग्रसर होते हुए दिखाई देते है। ये, शीर्ष प्रात से मध्य प्रक्षेप के रूप मे निकलने वाला ललाट-नासा प्रवर्ध (frontonasal process), दोनो पार्श्वों से निकलते हुए दो ऊर्ध्व हनु प्रवर्ध (maxillary process) और उनके नीचे दो अधोहनु प्रवर्ध (mandibular process) होते है। ललाट-नासा प्रवर्ध एक मध्यस्थ अभिमध्य नासा प्रवर्ध और दो पार्श्व नासा प्रवर्धो मे विभक्त हो जाता है। नासा गर्त (nasal pits) वे अवनमन है जो अभिमध्य स्थित मध्यस्थ नासा प्रवर्ध को दोनो ओर के पार्श्व नासा प्रवर्धो से पृथक् करते है। इसके अतिरिक्त अभिमध्य नासा प्रवर्ध मे दो उभार बन जाते है जो गोलाकार प्रवर्ध (globular processes) कहे जाते है।

ये सब प्रवर्ध आद्य मुखपथ के चारो ओर एक प्रतिरूप (pattern) के अनुसार सयुक्त (fused) हो जाते है। दोनो अधोहनु प्रवर्ध मुखपथ के नीचे शीघ्र एक दूसरे से मिलकर अधरोष्ठ और अधोहनु बनाते है। अभिमध्य नासा प्रवर्ध पार्श्व नासा प्रवर्ध से पहिले ही नीचे को बढता है और दोनो ओर से बढते हुए ऊर्ध्वहनु प्रवर्धो से मिलकर मुखपथ के ऊपर की ओर ऊर्ध्व-ओष्ठ

बनाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि पार्श्व नासा प्रवर्ध ऊर्ध्व-ओष्ठ की रचना मे भाग नही लेता। अभिमध्य नासा प्रवर्ध के प्रान्त के दो गोलाकार प्रवर्ध आपस मे इस प्रकार मिलते है कि उनसे ओष्ठ खात (philtrum or cupids' bow) का मध्य भाग बनता है। अभिमध्य नासा प्रवर्ध के गभीर पृष्ठ



चित्र 3 1 अभिमध्य नासा प्रवर्ध ⎫ ललाट-
1 a गोलाकार प्रवर्ध ⎬ नासा
2 पार्श्व नासा प्रवर्ध ⎭ प्रवर्ध
3 ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध
4 अधोहनु प्रवध
5 आद्यमुख



चित्र 4 1 पार्श्व नासा प्रवर्ध और ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध की सयुक्ति
2 अभिमध्य नासा प्रवर्ध और ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध की सयुक्ति
3 ऊर्ध्वहनु और अधोहनु प्रवर्धो की सयुक्ति
4 अधोहनु प्रवर्धो की सपुक्ति

से पुरोर्ध्वहनु (premaxilla) बनता है जो उलूखल (alveolu) के मध्यवर्ती भाग को बनाता है। अधोहनु और ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध पार्श्व मे मिल जाते है जिनसे मुखपथ सकीर्ण होकर वयस्क मुख का रूप ले लेता है। प्रत्येक ओर का पार्श्व नासा प्रवर्ध उस ओर के ऊर्ध्व हनु प्रवर्ध से मिलकर कपोल बना देता है। जिस समय ये वाह्य परिवर्तन और सयुक्ति (fusion) होते रहते है, तभी ऊर्ध्व हनु प्रवर्ध से दो क्षैतिज प्रवर्ध निकलकर गभीर पृष्ठ पर चले जाते हैं। ये एक-दूसरे से बीच मे जुड जाते हैं जिससे तालु बनता है जो अभिमध्य नासा प्रवर्ध के पुरोऊर्ध्वहनु (premaxilla)' से मिलने मे पूर्ण होता है।

ये प्रवर्ध वयस्क आनन, मे ओष्ठ और हनु के जिन भागो को बनाते हैं वे इस प्रकार है

अभिमध्य नासा प्रवर्ध—नासापट, नासाग्र और स्तम्भिका (columella), ओष्ठखात, पुरोऊर्ध्वहनु (premaxilla), उलूखल का मध्यवर्ती भाग।

पार्श्व नासा प्रवर्ध—नासा का पार्श्व, नासापक्ष (ala of nose) और कपोल का भाग।

ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध—कपोल, ऊर्ध्वहन्वस्थि और तालु।

अधोहनु प्रवर्ध—अधोहन्वस्थि और उसके आच्छादन।

जन्मजात या परिवर्धन सम्बन्धी असगतियाँ
(Congenital or Developmental anomalies)

बृहत मुखद्वार (macrostoma)—इसका कारण अधोहनु और ऊर्ध्व हनु प्रवर्धो की अपूर्ण सयुक्ति होती है।

लघु मुखद्वार (microstoma)—यह अधोहनु और ऊर्ध्वहनु प्रवर्धो की अतिसयुक्ति (overfusion) का परिणाम होती है।

खडोष्ठ (Harelip)—(अ) **ऊर्ध्व ओष्ठ** (1) मध्यस्थ (median)—इसका कारण अभिमध्य नासा प्रवर्ध के दो गोलाकार प्रवर्धो की अपूर्ण सयुक्ति होती है यह प्रकार कम मिलता है, (2) एकपार्श्वी (unilateral)—यह दशा एक ओर अभिमध्य नासा प्रवर्ध और ऊर्ध्वहनु प्रवर्धो के सगलित न होने से उत्पन्न होती है, **द्विपार्श्वी (bilateral)**—अभिमध्य नासा प्रवर्ध और ऊर्ध्व हनु प्रवर्धो के दोनो ओर न मिलने का यह परिणाम होता है, (क) **अधरोष्ठ मे विदर (defect lower lip)**. इसका कारण दोनो ओर के अधोहनु प्रवर्धो की अपूर्ण सयुक्ति है यह दशा बहुत विरल है।

आनन विदर (Facial Cleft)—यह पार्श्व नासा प्रवर्ध और ऊर्ध्व हनु प्रवर्धो के न मिलने से होता है। विदर मे नासाश्रुवाहिनी (nasolacrimal-duct) गहराई पर अनावृत रहती है।

खण्ड तालु (Cleft Palate) ऊर्ध्व हनु प्रवर्धो से निकलने वाले क्षैतिज प्रवर्धो की असयुक्ति या अपूर्ण सयुक्ति का परिणाम होता है।

विविक्तिभवन डरमाइड (Sequestration dermoid)—उपर्युक्त के अतिरिक्त विविक्तिभवन डरमाइड परिवर्धन प्रवर्धो के मिलने की रेखा मे उत्पन्न हो सकते हैं।

आनन (Face)

अभिघात (Injury)

आनन पर अभिघात तीनो मे से किसी अवयव मे हो सकते है आच्छादित ऊतक, धारक ऊतक या आस्तरित कला (lining membrane) मे हो, अथवा एक से अधिक ऊतक मे हो, सब अवयवो को गहरी क्षति पहुँच सकती है। आनन के ऐसे गुरु अभिघातो के सुधार (repair) मे बडी सावधानी की

आवश्यकता है। ऐसी दशाओ मे सर्जन को प्लास्टिक और दन्त सर्जनो की सहायता अभीष्ट है। उनके परामर्श से ऐसे आघातो के सधान का आयोजन और सम्पादन उचित है, अन्यथा विरूपता जन्म-भर के लिये स्थायी हो जाती है जिससे आघातित व्यक्ति को सारे जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है।

त्वचा और उपरिस्थ प्रावरणी मे रक्त सचार अधिक होता है, अतएव उनके क्षतो से रक्त प्रवाह अधिक हो सकता है। किन्तु उनके शीघ्र विरोहण (heal) होने की प्रवृत्ति होती है।

लघु क्षतो का उच्छेद (excision) आवश्यक नही होता। अनेक बार प्राथमिक सन्धान सम्भव होता है। अन्य रोगियो मे द्वितीयक सीवन (secondary suture) आवश्यक हो सकती है, कुछ मे, जिनमे ऊतक की हानि हो चुकी है, वूल्फे आरोप (wolfe's graft) अथवा ललाट त्वचा मे वृन्तयुक्त प्रालम्ब (pedurculated flap) बनाने पड़ते है। एक उपरिस्थ आघात से स्टेन्सन वाहिनी (stensons' duct) के क्षत हो जाने से पैरोटिड नालव्रण (parotid fistula) बन सकता है। धारक ऊतक के आघातो का हनु (jaws) के प्रकरण मे विचार किया गया है। आस्तरित कला के क्षतो को, यदि वे लघु हो तो, प्राथमिक सीवन से सिया जा सकता है। ऊतक की हानि होने पर श्लेष्मिक कला को अभिघात के समय, त्वचा से सी दिया जाता है और कुछ समय पश्चात् प्लास्टिक सुधार किया जाता है।

सक्रमण (Infections)

तीव्र (Acute)

आनन प्रदेश के लघु सक्रमण भी बड़े महत्त्व के होते हैं। उनमे गह्वर शिरा-नाल की घनास्रता (cavernous sinus thrombosis) की सम्भावना रहती है।

कर्णपालि (loubule ear) को सृक्कणी (angle of mouth) से सयोजित करने वाली रेखा से ऊपर का क्षेत्र आनन का भयप्रद प्रदेश कहा जाता है। सृक्कणी शिराये उपरिस्थ ऊतक से रक्त का नेत्र शिराओ (ophthalmic veins) द्वारा गह्वर शिरानाल मे सवहन करती हैं। सृक्कणी शिरा मे कपाटि-कायें नही होती और पेशियो की गतियो से सक्रमण सृक्कणी शिरा द्वारा गह्वर शिरानाल मे पहुच जाता है।

अन्य तीव्र अविशिष्ठ सक्रमण (non-specific infections) सयोजक ऊति-शोथ (cellulitis) तथा एरीसिपिलास (erysipelas) हैं। ऐन्थ्रेक्स (anthrax) भी आनन पर बहुत होता है। यह सक्रमित बुरुश से हजामत बनाने से उत्पन्न

होता है और आनन पर एक दुर्दम पूय स्फोटिका के रूप मे प्रकट होता है।

लघु (Minor)

फोडे (boils), कारबंकिल (carbuncle) और विद्रधि (absceiess) अन्य स्थानो की भाँति आनन पर भी होते है। सक्रमित ऐकनेवल्गेरिस (acne vulgaris) और सिट्टकोमिस (psittacosis) साधारणतया होने वाले रोग है। इनमे से कोई भी सक्रमण गह्वर शिरानाल मे घनास्रता उत्पन्न कर सकता है। आनन के सब सक्रामक रोगो की सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये उपयुक्त प्रतिजीवी (antibiotics) का उपयोग और ऊष्म स्वेद या सेकना उनकी चिकित्सा है। प्रतिजीवियो के आविष्कार के पश्चात् गह्वर शिरानाल की घनास्रता प्राय लुप्त हो गई है। स्थानीकृत विद्रधि से पूय को निकालने के लिये सर्जरी आवश्यक होती है।

चिरकालीन विशिष्ट शोथ की दशायें

लूपस (lupus vulgaris), रक्तिम लूपस (lupus erythematosus), गमा (gumma) और एक्टिनोमाइकोसिस आनन पर होते है। लूपस के कारण क्षताक (scar) तथा विरूपतायें हो जाती है। यह दशा अल्ट्रावायोलेट किरणो द्वारा चिकित्सासाध्य है। क्षताक के स्थान का उच्छेद, जहाँ आगे चलकर शल्की (squamous) इपीथीलियोमा उत्पन्न हो सकता है, और उसके विरोहण के पश्चात् प्लास्टिक सर्जरी आवश्यक हो सकती है, उचित है।

किरण कवक (एक्टिनोमाइकोसिस बोविस) से प्राय आनन और हनु आक्रान्त होते है। इसका विशेप लक्षण मृदु ऊतक की सूजन होती है ऊतक कठिन और दृढ होते है और उनसे कई नाडी व्रणो से पूय का निस्राव होता है। चर्वणिका (masseter) पेशी के आक्रान्त हो जाने से अधोहनुस्तभ (tresmus or lock jaw) उत्पन्न हो सकता है।

अर्बुद (Tumours)

त्वग्वसा पुटियाँ (sebaceous cysts) प्राय आनन और शिरोवल्क (scalp) पर होती है। उनके सामान्य उपद्रव ग्रन्थ्यर्बुद (adenoma) उत्पत्ति, सक्रमण आदि आनन पर भी मिल सकते है।

सुदम (Benign)

केशिकाकृत और गह्वर रक्तवाहिकार्बुद (capillary and cavernous haemangiomas) दोनो आनन और ओष्ठो पर होते है। आनन पर आनन तन्त्रिका तथा त्रिधारा तन्त्रिका से सम्बन्धित जालिकारूपी तन्त्रिकातन्तु अर्बुद (plexiform neurofibromata) प्राय पाये जाते है। वह ओष्ठ पर भी हो सकता है। जालिकारूपी तन्त्रिकातन्तु अर्बुद की प्रतीति मोटी, ऊपर से लटकती हुई, उद्रिक्त (redundant) त्वचा से ढकी रज्जुओ और पर्वो के समान विशिष्ट होती है। उसकी चिकित्सा उच्छेद और त्वचारोपण (excision and skin-grafting) से की जाती है। लसीकावाहिकार्बुद (lymphangioma) भी आनन पर होता है।

दुर्दम (Malignant)

रोडेन्ट व्रण (आधारी कोशिका इपीथीलियो)
(Rodentulcer, Basalcell Epithelioma)

रोडेन्ट व्रण प्राय आनन पर कर्णपालि को सृक्कणी से जोडने वाली रेखा से ऊपर के क्षेत्र मे होता है। वह नेत्र के अन्तर कैन्थस (inner canthus) या कोण और नासामूल के पास अधिक पाया जाता है। कभी-कभी वह ओष्ठ पर भी मिलता है।

शल्की कोशिका इपीथीलियोमा (squamous cellepithelioma)—यह भी आनन पर होता है।

दुर्दम मिलेनोमा (malignant melanoma)—दुर्दम मिलेनोमा भी आनन पर हो सकता है।

ओष्ठ (Lips)

शल्य-सम्बन्धी शरीररचना (Surgical anatomy)

ओष्ठ मे एक त्वचा से आच्छादित भाग है जो प्रदेशानुसार आनन ही का अंग है, और दूसरा श्लेष्मिक कला से आस्तरित मुख का भाग है। ओष्ठ का लाल किनारा इन दोनो भागो के बीच मे स्थित है। ओष्ठ के परिवर्धन और परिवर्धन की त्रुटियो का विचार किया जा चुका है।

लसीका संवहन

अधरोष्ठ के मध्य से लसीका या शैव लसीका पर्वों के अध चिवुक (submental) समूह मे संवहन होता है। अधरोष्ठ के शेष भाग और ऊर्ध्व ओष्ठ मे लसीका निम्न अधोहनु पर्व समूह (submandibular nodes) मे संवाहित होता है।

जन्मजात विरूपताये (Congenital deformities)

खण्डोष्ठ (Hare lip)

इसके निम्न प्रकार पाये जाते हैं—

मध्यस्थ (Median)—मध्यस्थ खडोष्ठ दोनो गोलाकार प्रवर्धो के कुयोग या अनुचित संयुक्ति का फल होता है। इस प्रकार का खडोष्ठ बहुत विरल होता है और V-Y प्रगम (advance) से सहज मे ठीक हो जाता है।

एकपार्श्वी (Unilateral)

एकपार्श्वी खण्डोष्ठ अपूर्ण होता है, जब विदर नासा तक विस्तृत नही होता, अथवा वह (2) पूर्ण हो सकता है, जिसमे विदर नासिका के भीतर तक चला जाता है तथा वह (3) उलूखली (alveolar) या (4) पुरोउलूखली (prealveolar) हो सकता है। तदनुसार पुरोऊर्ध्वहनु और ऊर्ध्वहनु के बीच मे अन्तर होना या न होना दोनो संभव हैं। एकपार्श्वी खडोष्ठ मे विदरित तालु न होना संभव है।

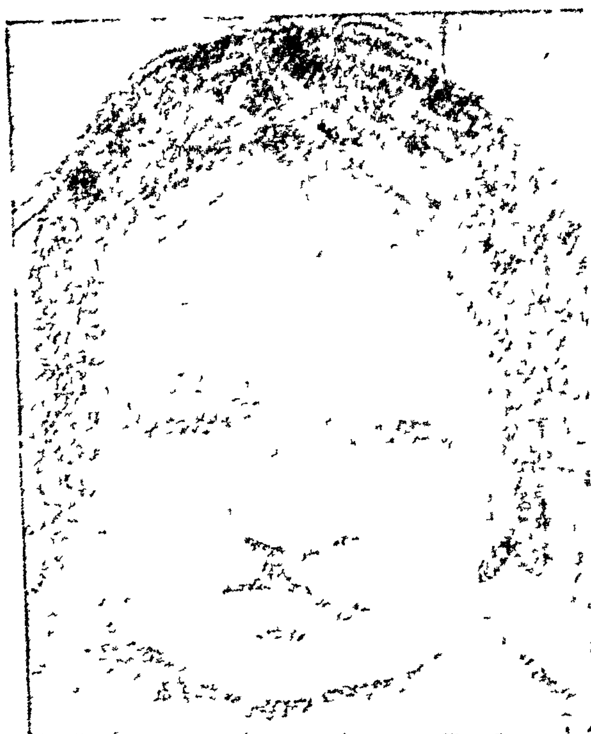
द्विपार्श्वी (Bilateral)

द्विपार्श्वी खडोष्ठ प्राय उलूखली होता है। पुरोऊर्ध्वहनु से बना हुआ उलूखल का मध्यवर्ती भाग जो पुरोओष्ठ (prelabium) से ढका हुआ, सामने को बढा रहता है, उसके दोनो ओर विदर के किनारे रहते है। इससे उत्पन्न हुई विरूपता वीभत्स दिखाई देती है।

खडोष्ठ के पूर्ण (complete) प्रकारो मे, एकपार्श्वी या द्विपार्श्वी दोनो मे, नासिका चपटी हो जाती है। (चित्र 5)

जैसा कहा गया है अधरोष्ठ का विदर बहुत कम होता है।

इस दशा का विशेष परिणाम विरूपता होती है। द्विपार्श्वी खडोष्ठ मे चूसने मे कुछ कठिनाई हो सकती है।



चित्र 5
खंडोष्ठ, जिसमे नाक भी चपटी हो गई है

चिकित्सा

शैशव काल के दूसरे मास मे, यदि शिशु स्वस्थ हो, अर्थात् उसका भार कम से कम 10 पौंड हो, तो चिकित्सा की जाती है।

शस्त्रकर्मपूर्व आयोजनो के लिये, शिशु को कुछ दिन अस्पताल मे भरती करके गले और टासिलो के सक्रमण को दूर करना उचित है।

शस्त्रकर्म का प्रयोजन प्रसामान्य ओष्ठ का पुनर्निमाण है जिसका प्रसामान्य लाल किनारा हो, और साथ ही नासिका के चपटेपन को दूर करना है।

शस्त्रकर्म द्वारा सुधार (operative repair) के मुख्य पद ये है :

(1) पर्यस्थि एलीवेटर द्वारा नीचे की अस्थि पर लगे हुए ओष्ठ और कपोल को वहाँ से अपहृत (strip off) करके उनको पूर्ण चलायमान (mobile) करना। मृदु ऊतको को नीचे की अस्थि पर एक ढापन (hood) के रूप मे लटका दिया जाता है।

(2) विदर के किनारो को काटकर एकसम करना।

(3) विदर के किनारो को अनुरूप (corresponding points) स्थानो पर, त्वचा को त्वचा से, पेशी को पेशी मे और श्लेष्मिक कला को श्लेष्मिक कला से, मिलाकर सीना ; सीवन का क्षताक सूक्ष्म होना चाहिये, दिखाई न दे।

(4) लाल किनारो का पुनर्निर्माण रूप के लिये बहुत आवश्यक है। इस कारण विदर के किनारो को काटते समय उनको प्रालम्ब (flaps) बनाकर उठाकर रखा जाय और इस प्रकार सिया जाय कि सन्तत लाल किनारा बन जाय।

(5) पहले ही से चपटी नासिका को, या यदि सीवन-कर्म मे वह चपटी हो जाय तो कीलक उच्छेदन (wedge resection) करके उसको उठा दिया जाय।

शस्त्रकर्म के पश्चात् सीवन से उत्पन्न हुए तनाव को U-आकार की धातु की बनी हुई कमानी को, जो लोगन चाप (Logan's bow) कहलाती है, प्रयोग करना चाहिये। उसको सीवन के दोनो ओर नासिका की त्वचा पर लगा दिया जाता है।

दोहरे खडोष्ठ की चिकित्सा मे ओष्ठ के विदर का सन्धान करना तथा आगे को निकले हुए पुरोऊर्ध्वहनु को शेष उलूखल की रेखा मे लाना आवश्यक होता है। सन्धान एकपार्श्वी विदर ही की भाँति किया जाता है। पुरोऊर्ध्वहनु को उपयुक्त स्थिति मे लाकर एक पिन द्वारा पट (septum) मे स्थिर किया जाय।

स्थूलोष्ठता (*Macrochelia*)

स्थूलोष्ठता दूसरी सहज विरूपता है जो ओष्ठ के लसीकावाहिकार्बुद (lymphangioma) के कारण उत्पन्न होती है। ओष्ठ की स्थूलता शोथ के पुन: पुन आक्रमण से और भी बढ सकती है। कीलक उच्छेदन (wedge resection) और सन्धान द्वारा उसका आकार घटाया जा सकता है। रक्त-वाहिकार्बुद अथवा तन्त्रिका तन्तु अर्बुद से भी स्थूलोष्ठता उत्पन्न हो सकती है।

अभिघात और सक्रमण (Injuries and Infections)

जो कुछ आनन के अभिघात और सक्रमण के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है वह ओष्ठो के सम्बन्ध मे भी सत्य है। ऊर्ध्वोष्ठ के लघु सक्रमण गह्वर शिरा-नाल की घनास्रता का कारण हो सकते है। होठो का फटना और उनमे विदार (cracks or fissnres) बनना शीत शुष्क जलवायु मे बहुत होता है और उनमे चिरकालीन हो जाने की प्रवृत्ति होती है। बालको मे जन्मजात सिफिलिस (congenital syphilis) मे सृक्कणी प्रदेश मे बहुत से विदार उत्पन्न हो जाते हैं। चिरकालीन विदार पुरोकार्सिनोमा दशा के द्योतक होते है और वहाँ कार्सी-नोमा उत्पन्न हो सकता है।

हर्पीज (herpes) जन्य व्रण भी प्राय होठो पर होते है।

विशिष्ट सक्रमण (Specific Infections)

प्राथमिक सिफिलिस (Primary syphilis)

ऊर्ध्व ओष्ठ पर प्राय प्राथमिक शैकर होता है उनमे जनेन्द्रिय के शैकर के से लक्षण नही होते। उस प्रदेश की ग्रन्थियो की मन्दवर्धी (instent) वृद्धि हो जाती है जो प्राथमिक कारण के अनुपात मे कही अधिक होती है।

द्वितीयक सिफिलिस (Secondary syphilis)

श्लेष्मिक चकत्ते (mucous patches) और कई विदर, जो मुखकोणो पर अरीय (radiating ulcers) प्रकार से स्थित व्रण होते है, पाये जाते हैं।

तृतीयक सिफिलिस (Tertiary syphilis)

कभी-कभी गमा भी पाये जाते हैं।

अर्बुद (Tumour)

सुदम

अकुरार्बुद, रक्तवाहिकार्बुद और तत्रिकातन्तु अर्बुद ओष्ठो मे होते है। श्लेष्मिक पुटी (mucous cyst) और मिश्रित अर्बुद भी इस स्थिति मे पाये जाते हैं।

दुर्दम

ओष्ठ पर कार्सिनोमा बहुत होता है। यह पुरुषो मे विशेषकर अधिक (95 प्रतिशत) पाया जाता है और 50 से 60 वर्षो के बीच की आयु मे होता है। अधरोष्ठ मे इसकी उत्पत्ति अधिक होती है (90 प्रतिशत)। चिरकालीन उत्तेजना, जैसा क्ले पाइप से तम्बाकू पीने वालो मे या बिगुल अथवा शहनाई जैसे यन्त्रो को बजाने वालो मे होता है, इसका कारण कहा जाता है। चिरकालीन विदर या व्रण कार्सिनोमापूर्व दशा होती है, ओष्ठ का अकुरार्बुद (papilloma) दुर्दम बन सकता है।

ओष्ठ मे मुख के लक्षणो वाले कैंसर ही के समान कार्सिनोमा पाये जाते हैं, अर्थात् प्रफली (proliferaling) पिंड, दुर्दम व्रण अथवा एक कठोर पर्व। ऊतक रचनानुसार वह शल्की (squamous) इपीथीलियोमा होता है जो कोशिका नीडों (cell-nests) सहित या इनके बिना कुछ न कुछ विभेदित (differen-

tiated) होता है। ओष्ठ का कार्सिनोमा पास के कपोल, मसूडो और उलूखल मे फैल सकता है। लसीका सवहन द्वारा वह देर से फैलता है और अधोचिबुक और निम्न अधोहनु पर्वो से आगे नही फैलता। इस कारण ओष्ठ का कार्सीनोमा अतीव्र प्रकार का समझा जाता है। फैलने की विचित्र विधि—प्रत्यक्ष निरोपण (direct implantation) द्वारा—कैसर कोशिकाये अधरोष्ठ मे पहुँचकर वहाँ 'चुम्बन कैसर' (kissing cancer) उत्पन्न करती है। समीप के प्रदेश से दुर्दमता के प्रसार मे ओष्ठ भी आक्रान्त हो सकता है, जैसे कपोल से, मसूडे से या हन्वस्थि से। ऐसी दशा मे प्राग्ज्ञान (prognosis) उत्तम है क्योकि प्रसार दूर तक नही होता, न शीघ्र हा होता है।

चिकित्सा

प्राथमिक वृद्धि (primary growth) की चिकित्सा के लिये किरणन (irradiation) और सर्जरी—इन दो विधियो मे से किरणन को उत्तम समझा जाता है, क्योकि उससे अग का वैकल्य नही होता। रेडियम सूचिकाओ (radium needles) के अन्तराली अनुप्रयोग (interstitial application) की विधि प्रचलित है।

सर्जरी तभी की जाती है जब कई बार किरणन के अनुप्रयोग पर भी अर्बुद की पुनरावृत्ति होती है और अस्थि आक्रान्त हो जाती है। शस्त्र कर्म मे किये गये ऊतक उच्छेदन मे जो त्रुटि उत्पन्न होती है उसकी कपोल से दोलन प्रालब (swinging faps) बना कर पूर्ति की जाती।

द्वितीयक वृद्धिया (secondary growths)

द्वितीयक कार्सीनोमा मे लसीका पर्वो मे, प्रसार विलम्ब से होने के कारण, यदि कोई परिस्पर्शनीय (palpable) पर्व उपस्थित न हो, तो एक मत के अनुसार, कुछ भी करने की आवश्यकता नही है, किन्तु समय समय पर ग्रीवा की परीक्षा आवश्यक है। दूसरे मतानुयायी प्रतीक्षा करने के पक्ष मे नही है और कर्सीनोमा की एक स्थिति के अनुसार अपने रोगियो मे एक या दोनो ओर समूह व्यवच्छेदन (mass dissection) करते है। यदि पर्व परिस्पर्शनीय (palpable) है किन्तु वे स्थिरीकृत (fixed) या आसजित (adherent) नही हुए है तो पर्वो के समूह का पूर्ण व्यवच्छेदन किया जाता है। पर्वो के परिस्पर्श्य किन्तु आसजित होने पर उनका किरिणन उचित है। समूह व्यवछेदन ग्रीवा के अग्रत्रिभुज (anterior triangle) के ऊर्ध्व भाग तक ही परिमित है।

हनु (Jaws)

आघात (Injuries)

आनन और ऊर्ध्वहनु के अभिघातो का पहिले वर्णन किया जा चुका है। केवल हनुओ के आघातो का ऊर्ध्वहनु और अधोहनु के अस्थिभगो के साथ विचार किया जाएगा।

ऊर्ध्वहनु के अस्थिभग (Fractures of Maxilla)

ऊर्ध्वहनु के अस्थिभग प्रत्यक्ष अभिघात का फल होते है। वाह्य-अभिघात न होने पर भी वे विवृत्त (compound) होते है, क्योकि भगरेखा नासिका, मुख या सहायक वायुविवरो मे जा सकती है। केवल उलूखली उपान्त (alveolar margin) का अस्थिभग विरल है, बहुधा समस्त अस्थि का भग होता है। यद्यपि पूतित उपद्रव (septic complications) होते है, तो भी अस्थिभग प्राय. सहज मे जुड जाते है। चिकित्सा मुख्यतया सरक्षी (conservative) पद्धति के अनुसार की जाती है और प्रतिजीवियो द्वारा पूति (sepsis) के नियन्त्रण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जब उलूखल स्थूल रूप से ग्रस्त होता है और दन्तरेखा विकृत होती है तो अधोहन्वस्थि के भग के समान दत स्प्लिंट और स्थिरीकरण (dental splints and fixation) का चिकित्सा मे उपयोग किया जाता है।

गडचाप का अस्थिभग (Fractures of Zygoma)

गडचाप का भग प्रत्यक्ष अभिघात से होता है जिसमे आनन विरूप हो जाता है। गडचाप के ऊपर एक छेदन (incision) द्वारा कुण्ठाग्र शस्त्र प्रविष्ट करके उससे भग्न अगो का उन्नमन करके उनको उपयुक्त स्थिति मे लाया जाता है।

अधोहन्वस्थि के भग (Fractures of Mandible)

निम्न स्थितियो मे अधोहन्वस्थि के भग्न हो सकते है —

काय (Body)—प्राय भग रदनक खात (canine fossa) की स्थिति मे केवल एक ओर होता है, कभी कभी दोनो ओर हो जाता है जिससे मध्यवर्ती भाग नीचे को खिच जाता है। यह भग प्रत्यक्ष आघात से होता है किन्तु भंग-रेखा का आघात लगने के स्थान पर न होना सम्भव है। त्वचा पर वाह्य क्षत

न होने पर भी भग विवृत (compound) होता है अस्थि पर छाई हुई श्लैष्मिक कला सदा फट जाती है। साधारणतया अस्थिभग का निदान सहज है। पीडा, सूजन, विरूपता और मुह को खोलने और बन्द करने की असमर्थता, ये लक्षण उपस्थित होते है। मुह से रक्त निकलता है। दत रेखा अव्यवस्थित हो जाती है, करकर ध्वान या क्रेपिटस सुनाई पडता है।

अधोहनु के कोण (Angle) का भग प्रत्यक्ष आघात का परिणाम होता है, सवृत (simple) होता है और भग्नाशो का विस्थापन (displacement) नही होता।

चचुक प्रवर्ध (cornonoid process)—इस का भग प्रत्यक्ष अभिघात के कारण हो सकता है या वह अपदारण (avulsion) प्रकार का भग हो। वह सवृत (simlis) भग होता है और भग्नाशो का विस्थापन नही होता।

स्थूलक (Condyle)—इसका भग अप्रत्यक्ष आघात से होता है। बाह्य पक्षाभिका पेशी (Pterygoideus) द्वारा स्थूलक आगे को खिच जाता है। स्वय अधोहन्वस्थि आघात की ओर खिच जाती है। इस अस्थिभग की चिकित्सा मे विस्थापित स्थूलक को हस्तकौशल्य से अपने स्थान पर बिठाने का प्रयत्न किया जाता है। यदि यह सफल नही होता तो शस्त्रकर्म द्वारा पुन स्थापन करना आवश्यक होता है।

चिकित्सा

विस्थापन के विषम होने पर जिह्वा के पीछे की ओर गिरने (जिससे वायुमार्ग रुक जाएगा) को रोकने के लिये रोगी को आनन नीचे को करके (पेट के बल) लिटाना चाहिए। इतनी गभीर दशा न होने पर भी प्रथम सहाय (first-aid) के रूप मे जिह्वा को पीछे को गिरने से रोकने का उपाय आवश्यक है। चतु पुच्छ (fourtailed) पट्टी या बैरल (barrel) पट्टी बाध कर अधोहनु को निश्चल कर देना उचित है।

अस्थिभग की चिकित्सा मे यदि किसी डैन्टिस्ट की सहायता मिल सके तो उसका अवश्य लाभ उठाया जाय। जो दांत ढीले हो गये है उनको निकाल देना उचित है।

स्थूल विरूपता अथवा विस्थापन को सधान द्वारा दूर करके भग्न अधोहनु को निश्चल करने (immobilization) के लिये ऊर्ध्वहनु का स्प्लिन्ट की भाँति उपयोग किया जाता है। दातो को बन्द करने पर उनका समुचित प्रकार से मिलना भग्नाशो के उपयुक्त स्थिति मे सधान का प्रमाण है। [illegible]

उपलब्धि के लिये निम्न विधियाँ प्रयुक्त की जाती है (1) अन्तरादन तार लगाना (interdental wiring), (2) दन्तत्राण (dental caps)—धातु निर्मित या एक्रिलिक (acrylic) दात की टोपी को एक साँचे मे बनाकर एक ब्रैकिट की सहायता से दोनो भग्नाशो को स्थिर करने के लिये प्रयोग किया जाता है। (3) अन्तरस्थि तार लगाना (interosseous wiring), अर्थात्, भग्नाशो को तार से जोडना, (4) बाह्य स्थिरीकरण (external fixation) पिनो द्वारा, जो एक लम्बे धातु के टुकडे मे लगी रहती है और प्रत्येक भग्नाश मे प्रविष्ट की जाती है। मुख को विसक्रामक प्रक्षालनो द्वारा शुद्ध रखकर पूतिता का नियन्त्रण चिकित्सा का विशेष अग है। दोनो हनुओ के बीच के अन्तर द्वारा रबड की नली प्रविष्ट करके उसके द्वारा आहार पहुचाया जाता है। अतएव केवल द्रव या अर्धद्रव आहार दिया जा सकता है। अधोहनु के अभिघात, जिनमे ऊतक की हानि हो जाती है, उनकी चिकित्सा प्रथम सरक्षी (conservative) विधि से होती है और फिर कुछ समय पश्चात् प्लास्टिक शस्त्रकर्म द्वारा त्रुटि-पूर्ति की जाती है।

शोथयुक्त दशाय (Inflamatory conditions)

तीव्र अस्थिमज्जा शोथ (acute osteomyelitis) की उत्पत्ति प्राय रक्त-जन्य सक्रमण (haematogenous infection) मे होती है जिसका केन्द्र शरीर मे कही अन्यत्र होता है। कभी-कभी शोथ स्थानिक कारणो से उत्पन्न होता है जैसे, दन्त-पूति (dental sepsis), हनु का वितृन अस्थिभग। प्राय अधोहनु आक्रान्त होता है। शिशुओ मे ऊर्ध्वहनु मे रोग होता है। अधोहनु मे रोग अधिक विस्तृत होता है। जिसमे एक बडी विविक्ति (sequestrum) बनती है जिसमे सारा उलूखल प्रवर्ध दातो सहित विविक्त हो जाता है। रोग का क्रम बहुत तीव्र होता है जिसमे दैहिक लक्षण (ज्वर आदि) उग्र होते हैं। स्थानिक स्पर्शासहता (local tenderness) और सूजन उपस्थित होती है। चिकित्सा प्रतिजीवियो द्वारा सरक्षी पद्धति से की जाती है, सेक और कोमल क्षेत्रो मे छेदनो (incisions) का उपयोग किया जाता है। स्थानिक कारणो से उत्पन्न हुए रोग का क्रम बहुधा अनुतीव्र (subacute) होता है, और हनु के परिगलन (necrosis) पर सीमित हो जाता है। हनु का परिगलन अन्य कारणो से भी हो सकता है। यह बहुत पाया जाता है।

परिगलन (Necrosis)

हनु के परिगलन के ये कारण होते हैं

(1) असाधारणतः रक्यजन्य सक्रमण, जिसमे हनु का परिमित क्षेत्र आक्रान्त होता है, (2) दत सक्रमण (dental infection)—मसूडे या उलूखल की विद्रधि (gumboil or alveolar abscess), मूल की विद्रधि (root abscess) सक्रमित दाँत को निकालना, (3) हनु के विवृत अस्थिभग, (5) कुछ औपधियो के विषैले प्रभाव से—फास्फोरस, पारद, सीस, सखिया, (6) मुख कोथ (cancrum oris) का प्रसार (7) विशिष्ट चिरकारी शोथ, यक्ष्मा, सिफिलिस और एक्टिनोमाइकोसिस (8) मुख के कार्सीनोमा की चिकित्सा मे किरणन (irradiation) के प्रभाव से, (9) समीप के मुख के भागो से कार्सीनोमा का प्रसार।

इस दशा मे एक नाडीव्रण (sinus) अस्थि से आसजित पाया जाता है और अस्थि मोटी हो जाती है। बहुधा तीव्र पीडा होती है।

चिकित्सा

विपो और सक्रामक कारणो से उत्पन्न परिगलन मे विविक्ति के मुक्त (free) होने पर विविक्ति-उच्छेदन (sequestrotomy) करना आवश्यक है। मुख के कार्सीनोमा मे, जिसकी हनु को आक्रान्त करने की मभावना हो, उसकी शस्त्रकर्म द्वारा चिकित्सा से हनु परिगलन से बच जाता है। दुर्दमता के हनु मे प्रसार पर विस्तृत उच्छेदन शस्त्रकर्म, यदि सभव हुआ, करना आवश्यक होगा।

सिहवत करोटि (Leontiasis ossea)

यह रोग करोटि और आनन की अस्थियो का शनै शनै बढने वाला पर्यस्थिशोथ (periostitis) है जिसमे अस्थिया मोटी हो जाती है और रोगी की आकृति सिह के समान दीखती है। इस दशा की कोई चिकित्सा नही है।

अर्बुद (Tumours)

हनुओ मे ये अर्बुद होते है (1) अस्थि-अर्बुद, जो अन्य अस्थियो मे होते है, (2) मसूडो के अर्बुद और (3) वे अर्बुद जो अस्थि मे निहित (embedded) दत जर्म से उत्पन्न होते है (दन्तार्बुद)।

ऊर्ध्वहनु के सुदम अर्बुद

आस्टिओक्लेस्टोमा या महाकोशिकाअर्बुद (osteoclastoma or giant cell (tumour) बहुत विरल नही है। उसका रूप दीर्घ अस्थियो के अर्बुद ही के समान होता हे अर्थात् दोनों सिरो पर अस्थि का प्रसार और अडे के छिल्के के टूटने-सी कडकडाहट (egg shell-crackling)। एक्सरे मे साबुन के बुलबुलो के समान दृश्य (soap bubble appearance) दिखाई देता है।

लक्षणो द्वारा दन्तार्बुद (odontoma) से निदान कठिन है, किन्तु एक्सरे चित्र से सहायता मिल सकती है। चिकित्सा दीर्घ अस्थियो के अर्बुद ही के समान होती है।

तान्तवऊतक और अस्थिनिर्मित तन्तुकर अस्थ्यर्बुद (fibrosing osteoma) कभी-कभी ऊर्ध्वहनु मे हो जाता हे। वह बाल्यकाल मे होता हे और अस्थि के वृद्धिकाल के समाप्त होने पर बढना बन्द कर देता है। उससे अस्थि के बाह्य पृष्ठ पर वेदनारहित सूजन हो जाती है। एक्सरे परीक्षा मे सघन अपार्यता (dense opacity) दीखती है। उस दशा का अस्थिजनक कार्सिनोमा से निदान करना कठिन है और जैवोति परीक्षा (biopsy) आवश्यक हो सकती है। छैनी (chisel) से स्थानिक शस्त्रकर्म द्वारा उसको निकाला जा सकता है।

ऊर्ध्वहनु के दुर्दम अर्बुद

कार्सीनोमा की अपेक्षा सारकोमा असाधारण है। अग्र ओर से निकलने पर वह कपोल के नीचे दिखाई देता है अथवा पश्च ओर से निकलकर प्रत्यक् ऊर्ध्व-हनु अवकाश (retromaxillary space) मे बढकर नेत्रगोलक को सामने को प्रक्षिप्त कर सकता है, अथवा वह उर्ध्व-हनु कोटर (maxillary antrum) से निकल कर नासा मे बढ सकता है या तालु का नीचे को अवनमन कर देता है।

ऊर्ध्वहनु का सबसे सामान्य अर्बुद कार्सीनोमा है जो प्राय: कुहर के आस्तर (lining) से निकलता हे। वह स्तभाकार प्रकार का हो सकता है अथवा आस्तर कला की कोशिकाओ के इतरविकसन (metaplasia) से शल्कोकोशिका-कृत इपीथीलियोमा (squamous cell epithelioma) बन जाता है। तालु और नासा की श्लेष्मिक कला का कार्सीनोमा ऊर्ध्वहनु को आक्रान्त कर सकता है। समीप के प्रादेशिक पर्वो मे उसका स्थलातरण देर से होता है। दुर्दम अर्बुद का नैदानिक रूप, चाहे वह प्राथमिक हो या द्वितीयक, समान होता है। ऊर्ध्व-

हनु तन्त्रिका के आक्रान्त होने से रोगी को पीडा होती है। नासास्राव (nasal discharge), अश्रुस्राव (epiphora) और नासिका मे उभार (bulge) उपस्थित हो सकते है। कपोल उभरा हुआ दीखता है, उस ओर के तालु का अवनमन अथवा नेत्रोत्सेच हो सकता है।

सापेक्षिक निदान ऊर्ध्वहनु के कुहर के संक्रमण, दन्तार्बुद, तन्तुकर अस्थ्यर्बुद आदि सुदम अर्बुदो से करना आवश्यक है।

चिकित्सा

ऊर्ध्वहनु का उच्छेदन अब नही किया जाता, शस्त्रकर्म तथा किरणन दोनो से चिकित्सा की जाती है। अग्रभित्ति मे एक खिडकी बनाकर (Moure's method) या तालु का छेदन करके अर्बुद को स्पष्ट कर लिया जाता है और डायथर्मी छुरिका से जितना भी अर्बुद निकाला जा सके, निकाल कर गुहिका (cavity) मे गॉज़ भर उसको कन्द बन्द कर दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् गुहिका को, रेडियम को साँचे (mould) पर लगाकर, उससे किरणन किया जाता है। स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात् जो अवकाश रह जाता है, उस पर एक डाट या दतावलि (denture) का ममाला लगा दिया जाता है।

अधोहनु का अर्बुद

सुदम अर्बुद जैसे सुषिर अस्थ्यर्बुद (cancellous osteoma), उपास्थ्यर्बुद (chondroma) और तन्तुकर अस्थ्यर्बुद विरल है, किन्तु हो सकते है। आस्टि-ओक्लेस्टोमा इतना विरल नही है। अन्य स्थानो के अर्बुदो ही के समान उसके लक्षण होते है। ऐडेमेन्टोमा (दन्त-वल्क अर्बुद) से निदान अत्यन्त कठिन होता है, क्योंकि दोनो के लक्षण तथा एक्सरे चित्र मे रचना समान होती है। दोनो मे एक अन्तर जो बताया जा चुका है यह होता है कि अस्टियोक्लैस्टोमा अस्थि को दोनो ओर समान रूप से प्रसारित करता है जहाँ कि ऐडेमेन्टोमा बाह्य ओर को अस्थि का अधिक प्रसार करता है। जैवोति परीक्षा से अतिम निदान होता है। चिकित्सा अन्य स्थानो के ओस्टिवोक्लैस्टोमा की ही भाँति की जाती है। जब अर्बुद बढकर अस्थि का विस्तृत नाश कर चुकता है तो उसका उच्छेदन अथवा अर्धहनु उच्छेदन करने के पश्चात् अस्थिनिरोपण (bone-grafting) करना आवश्यक हो सकता है। अधोहनु मे अस्थिजनक सारकोमा (*osteogenic sarcoma*) विरल है। वृद्धि विशेषतया पर्यस्थि के नीचे-नीचे फैलती है। अर्बुद अत्यन्त दुर्दम होता है। उच्छेदन या किरणन चिकित्सा की पद्धति प्रचलित है।

हनुओ की अस्थियो को आक्रान्त करने वाले अन्य अर्बुद

उपर्युक्त ऊर्ध्व और अधोहनु के प्राथमिक दुर्दम अर्बुदो के अतिरिक्त, मुख-कपोल या मुखतल (floor) से हनुओ मे प्रसार से वहु मज्जार्बुद (myeloma) और द्वितीयक स्थलातरणी (metastatic) कार्सीनोमा भी हो सकते है। दुर्दम एप्यूलिस हनुओ की दुर्दम वृद्धियो की सूची मे सम्मिलित होना चाहिये।

वहु तन्तुकर अस्थिविकृति (multiple osteitis fibrosa) हनुओ को सामान्य रोग के रूप मे आक्रान्त करती है। हैन्ड श्यूलर-क्रिस्चियन सलक्षण (Hand-Schuller-Christian syndrome) मे, जो एक लिपाइड ग्रैनूलो-मेटोसिस होता है, हनु भी आक्रान्त होते है।

हनुओ की अतिवृद्धि (hypertrophy) एक्रोमिगेली और पाजेट रोग विरूपकर अस्थि-विकृति, (osteitis deformans) मे पाई जाती है।

एप्यूलिस (Epulis)

एप्यूलिस मसूडो का एक उद्वर्ध (outgrowth) होता है। दो वास्तविक प्रकारो का वर्णन किया गया है, तान्तव एप्यूलिस और महाकोशिका एप्यूलिस (fibrous and giant-cell epulis), दोनो प्रकार के उद्वर्ध प्राय पाये जाते है। दुर्दम एप्यूलिस और कणिकार्बुदी (granulomatous) एप्यूलिस वास्तविक एप्यूलिस नही माने जाते।

तान्तव एप्यूलिस (Fibrous Epulis)

तान्तव एप्यूलिस उलूखल की पर्यस्थि से निकलता है। इस सूजन का रग हल्का होता है, वह कठिन होती है और उसका पृष्ठ चिकना एकसमान होता है। आगे चलकर उसमे वृन्त वन सकता है। वह रक्तवाहिकामय (vascular) हो सकती है जिसका कारण उससे सयुक्त वाहिकार्बुद अग (angiomatous element) होता है। वह रचनानुसार तन्तु अर्बुद (fibroma) होता है। पूर्ण उच्छेदन (जो वास्तव मे पूर्ण नही होता) के पश्चात् उसकी पुनरावृत्ति हो सकती है। इस कारण उसको अल्प दुर्दमता वाला तान्तव सारकोमा (fibrosarcoma) माना जाता है। चिकित्सा उच्छेदन द्वारा की जाती है।

महाकोशिका एप्यूलिस (giant cell Epulis)

यह सव से अधिक होने वाला एप्यूलिस है। यह उलूखली किनारे की श्लेष्मिक कला और पर्यस्थि (mucoperiosteum) से उत्पन्न होता है। इसकी लाल चैरी के समान एकसम, स्निग्ध और अवृन्त (sessile) वृद्धि होती है।

स्पर्श पर उससे तत्काल रक्त निकल सकता है। सूक्ष्मदर्शी परीक्षानुसार वह अस्थि के महाकोशिका अर्बुदो (giant cell tumour) के समान महाकोशिकाओ का बना होता है। उसकी चिकित्सा उलूखल के कुछ भाग सहित उसका उच्छेदन है।

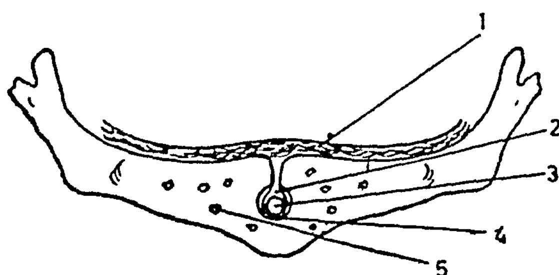
दुर्दम एप्यूलिस (malignant epulis) वास्तव मे शल्की इपीथीलियोमा होता है जो मसूडो से निकलता हे या मुखतल अथवा तालु से उनमे प्रसारित होता हे। चिकित्सा मुख के कार्सीनोमा के समान होती है।

कणिकार्बुदमय एप्यूलिस (Granulomatous Epulis)

यह स्थानिक दन्त पूतिता (dental sepsis) मे या अतिवर्धित कणिका ऊतक के बहिःसरण (protrusion) के कारण होता है और एप्यूलिस के समान दीखता है। वह वास्तव मे कणिकायुक्त पृष्ठ की लाल रग की वृद्धि होती है जिससे तत्काल रक्त निकलने लगता है और उसमे पूतिता के लक्षण उपस्थित होते है। चिकित्सा उच्छेदन तथा स्थानिक पूतिता का नियन्त्रण है।

दन्तार्बुद (Odontomes)

परिवर्धन करते हुए दातो के बीज या जर्म (germs) से हनुओ मे उत्पन्न होने वाले अर्बुद और पुटी (cysts) दन्तार्बुद कहे जाते है।



चित्र 6 दात का विकास 1. दन्त शैल्फ (shelf) 2 उपकलीय अधोवृद्धि का चपक रूपी सिरा 3 मेजेन्काइम (डैन्टीन और मज्जा) 4 दन्त कोश 5 मालासेज़ का उपकलीय मलवा 2. 3 4 दन्त कूप

दांत का परिवर्धन (Development of Tooth)

दात के परिवर्धन मे बहुत-सा उपकला ऊतक एकत्र होकर मसूडो के ऊपर एक कटक (ridge) बना देता है जो दन्त शैल्फ (shelf) या दन्त कटक (ridge) कहा जाता है। इस शैल्फ से नीचे को प्रसर निकलकर हनुओ मे पहुँच जाते है। इन अधोगामी प्रसरो के अन्त प्यालो के समान होते है और उनके खोखले भाग मे हनु का सयोजी ऊतक या सघनित मीजेन्काइम (condensed mesen-

chyme) स्थित हो जाता है। अधोगामी प्रमरों के अन्त और मीजेंन्काइम, जो प्यालो के बीच मे स्थित होते हैं चारो ओर के ऊतक से बने हुए एक कोश मे आवेष्ठित हो जाते है जो दन्त कोश (dental sac) कहलाता है। अधोगामी प्रमरो की कोशिकायें एक विशेष प्रकार की सयोजी ऊतक (connective tissue) कोशिकायें बन जाती है जो **दन्त प्रसू (odontoblast)** कोशिकाये कही जाती है, वे डेन्टीन (dentine) बनाती हे। सयोजी ऊतक से दन्तमज्जा (pulp of tooth) भी बनती है जिसमे दात की तन्त्रिकाये और वाहिकाये रहती है। दन्तकोश मे रहने वाली सरचना दन्तकूप (tooth follide) कही जाती है। मेजेन्काइम स्तर से सीमेट (cement) भी बनता है। परिवर्धन क्रम मे दन्त कटक या उसके अधोगामी प्रमरो मे हनुओ मे वे कोशिका समूह जहाँ-तहाँ वितीर्ण हो जाते है जिनको 'मालासेज का मलवा' (debris of Malasses) कहा गया है। इनेमल अग (enamel organ) के उपकला तत्वो से भी अर्बुद और सिस्ट बन सकते है उपकला मलवा, मेजेन्काइमी तत्वो, दन्तकूप अथवा सब ही अशो मे उनकी उत्पत्ति सम्भव है।

दन्तार्बुदो का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है

(1) उपकला दन्तार्बुद—(क) दन्त पुटी (dental cyst), (ख) दन्तधर पुटी (dentigerous cyst) या कूप दन्तार्बुद (follicular odontome), (ग) दन्तवल्क अर्बुद (adamantinoma)

(2) सयोजी ऊतक दन्तार्बुद—(क) तान्तव दन्तार्बुद (fibrous-odontome), (ख) सीमेन्टार्बुद (cementoma)।

(3) यौगिक कूपीय और मिश्रित दन्तार्बुद (compound follicular and composite odontome)।

इनमे मे मनुष्यो मे उपकला दन्तार्बुद साधारणतया पाये जाते है।

उपकला दन्तार्बुद (Epithelial odontomes)

दन्तपुटी (dental cyst)—यह प्राय ऊर्ध्वहनु मे रोगस्त कृन्तक (incisors) या रदनक (canine) दातो के सम्बन्ध मे मिलती हैं। प्राय पुटी एककोष्ठकी (unilocular) और लघु आकार की होती है। कभी-कभी वह बडी भी होती है और कुहर (antrum) को आक्रान्त करती है। पुटी शल्की उपकला से आस्तरित, लघु आकार की होती है और उसमे श्लेष्माभ द्रव और कालेस्टरोल क्रिस्टल भरे रहते है। उसका कारण पास के किसी दात की पूतिता (sepis) से उत्तेजित होकर उपकला मलवे (epithelial debris) का प्रफलन (proli-

feration) होता है । उसके पश्चात् इससे उत्पन्न हुए कोशिकापिंड मे व्यपजनन (degeneration) होता है । लक्षणानुसार वह हनु का प्रसार करने वाली क्षति है जो ग्रस्त दात के सम्बन्ध मे उत्पन्न होती हे । एक्सरे परीक्षा से पुटी मालूम होती है ।

अस्थिकृत आवेष्ठन (bony shell) को छैनी से काटकर पुटी की भित्ति (cyst wall) का उच्छेदन और रोगग्रस्त दात को निकालना रोग की चिकित्सा है ।

दन्तधर पुटिका या कूपीय दन्तार्बुद (dentigerous cyst or follicular odentome)—यह अनुद्भिद (unerupted) दात के सम्बन्ध मे बनती है और अधोहनु मे अनुद्भिद्र कर्तनक (Incisor), रदनक (canine) या अग्रचर्वणक (premolar) के साथ अधिक होती है, इन दातो का परिवर्धन अपूर्ण होता है । पुटी शल्की उपकला से आस्तरित होती है, उसमे श्वेत चिपचिपा पदार्थ और कालेस्टराल के क्रिस्टल भरे रहते है और उनकी गुहा मे अनुद्भिद दात स्थित होता है । पुटी की उत्पत्ति इनेमल अग से कही जाती है । दूसरा मत उसको दन्तकोश से उत्पन्न हुआ मानता है । पुटी से अस्थि का प्रसार (expansion) होता है जिसमे कोष्ठिकाये दीखती है; उनको दबाने से कड-कडाहट का शब्द (eggshell crackling) होता है। परीक्षा करने पर एक दात अनुपस्थित मिलता है । एक्सरे परीक्षा पर हनु मे गुहिका और उसमे दात पडा दीखता है । पुटी को स्पष्ट करके उसका सम्पूर्ण उच्छेदन करना उसकी चिकित्सा है ।

दन्तवल्कार्बुद, एडेमेन्टीनोमा (Admantinoma)—इसको हनुओ का तन्तुपुटी रोग (fibrocystic disease) कहा जाता था । यह अधोहनु मे कोण (angle of jaw) के पास नवयुवको मे अधिक होता है । इसके दो रूप पाये जाते है एक धन रूप, जो ठोस होता और दूसरा पुटी रूप, यही अधिक होता है । कई पुटी होती है जिनमे श्लेष्माभ द्रव भरा रहता है । भित्तिया एकसम चिकनी होती है अथवा उनमे अकुरसम प्रसर होते है । सूक्ष्मदर्शी परीक्षानुसार वे स्तम्भाकार कोशिकाओ के धन स्तम्भ होते है जिनमे एक मध्यवर्ती गुहा होती है जिससे एडिनोकार्सिनोमा का आभास होता है कभी-कभी वह आधारी कोशिका कार्सिनोमा (basal cell carcinoma) का चित्र होता है अथवा शल्की कोशिका प्रकार के समान कोशिकाए तथा कोशिका नीड (cell nests) भी देखे जाते है । यह भी मालासेज के उपकला मलवे से उत्पन्न हुआ माना जाता है । यह मध्य से प्रसार करने वाली क्षति है जिसमे अस्थि का बहुधा

बहुत प्रसार हो जाता है। दावने से कडकडाहट का शब्द मिलता है। अस्थि की बाह्य भित्ति अन्तर भित्ति की अपेक्षा अधिक प्रसरित होती है। ऐक्सरे परीक्षा से हनुओ मे पुटी उपस्थित पाई जाती हे जिनमे अनेक पटो की रचना या ट्रेवीकुलेशन (trabeculation) दिखाई देता है। आस्टिओक्लैस्टोमा से निदान कठिन होता है, किन्तु वह एडेमेन्टीनोमा की अपेक्षा हनुओ मे कम होता है। हनुओ की अन्य पुटियो से भी उसका निदान आवश्यक है। चिकित्सा स्थानिक उच्छेदन से की जाती है। जव रोग से अस्थि का विस्तृत नाश हो चुकता है तो हनु का उच्छेदन और अस्थि निरोपण आवश्यक होता है।

सयोजी ऊतक दन्तार्बुद (Connective tissue odontomes)

तान्तव दतार्बुद (Fibrous odontome)—अनुद्भिद्र दात के चारो ओर तान्तव तन्तु एकत्र हो जाता है। यह अत्यन्त विरल है। वह दतकोश से उत्पन्न होता है।

सीमेन्टोमा (Cementoma)—वह तान्तव दतार्वुद मे अस्थिविकास से उत्पन्न होता है। वह घोडो मे वहुत होता वताया जाता है।

मिश्रित और यौगिक कूपीय दन्तार्बुद (Composite and compound follicular odontomes)—विरल होते है और नवयुवको के अधोहनु मे होते हे। अर्बुद पिंड कठिन और अनियमित होता है। मिश्रित अर्बुद दन्तवीज (germ) के एक से अधिक अवयवो से उत्पन्न होते है। उनमे डेन्टीन, इनेमल, मज्जा तथा सीमेट सव मिले रहते हैं। यौगिक कूपीय दन्तार्बुद दन्तकोश से उत्पन्न होते है। उनमे सम्पुट (capsule) अस्थि-कृत (ossified) हो जाता है जिसमे कितने ही अपूर्णतया परिवर्धित दन्ताणु विखरे रहते है। अर्बुद की वृद्धि से दात अनियमित हो जाते हे। स्थानिक उच्छेदन उसकी चिकित्सा है।

ऊर्ध्वहनु कोटर (Maxillary antrum) के रोगो का वर्णन कर्ण, नासिका, और गले के रोगो के परिच्छेद मे किया गया है।

शख-अधोहनु सधि (Temporomardsbulor joint)

शल्यसम्बन्धी शरीर-रचना (Surgical anatomy)

अधोहनु का स्थूलक शखास्थि की ग्लिनाइड गुहा और सधि उत्सेध (articular emminence) के पर्याणाकार पृष्ठ से सधि करता है। दोनो के वीच मे एक सधायक चक्रिका (articular disc) रहती हे जो सधिपृष्ठ और गतियो का सामजस्य करती हे।

अधोहनु की सधिच्युति (Dislocation of Mandible)

अधोहनु की मधिच्युति जभाई लेने या हँसने के समय मुँह को चौडा खोलने से होती है । अवोहनु पर, अभिघात से भी सधिच्युति हो सकती है । सधिच्युति पुनरावर्तक (recurring) प्रकार की हो सकती है । स्थूलक सधायक उत्सेध पर से फिसल कर उससे आगे आकर अटक जाता है । चर्वक पेशियो का आकर्ष स्थूलक को फिर लौटकर अपने स्थान पर नही जाने देता । इसकी चिकित्सा सुरक्षित अगूठो से अधोहनु को नीचे की ओर खीचकर रखना है जिससे पेशी श्रमित हो जाय । तव स्थूलक सरक कर अपने स्थान मे चला जाएगा । अपुन.स्थापित (unreduced) सधिच्युति मे शस्त्रकर्म करके पुन - स्थापन करना चाहिये, यदि उसमे सफलता न हो तो स्थूलक का उच्छेद किया जा सकता है । सधि का ढीला हो जाना या उसका अवसधिभ्रंश (subluxation) सधि के भीतर की सधायक चक्रिका के विस्थापन से होता है । इससे अधोहनु की गति के समय एक विशेष प्रकार का शब्द होता है । इसकी चिकित्सा हस्तकौशल से पुन स्थापन है जो स्थूलक के पीछे की ओर दृढता से दवाने से और हनुओ को वन्द करने से की जाती है ।

शख-अधोहनु सधि का सधिशोथ (Arthritis of temporamandibular joint)—तीव्र रूमेटिज्म मे अन्य सधियो के साथ शख अधोहनु सधि भी आक्रान्त हो सकती है । चिकित्सा लक्षणानुसार की जाती है ।

तीव्र सपूय सधिशोथ रक्तजन्य (haematogenous) हो सकता है अथवा पूयरक्तता (pyaemia) या, सपूय पैरोटिड ग्रन्थि शोथ (supperative parotitis) अथवा मध्यकर्ण सक्रमण के प्रसार से उत्पन्न हो सकता है । सधिशोथ के सामान्य तथा स्थानिक लक्षण उपस्थित होते है । तीव्र अवस्था मे एकत्रित पूय के निकास की आवश्यकता हो सकती है । इस रोग का परिणाम सधिग्रह (ankylosis) होना सभव है । गोनोमेहजन्य सधिशोथ असपूय (nonsuppurative) प्रकार का होता है, उसकी सरक्षी (conservative) चिकित्सा आवश्यक है ।

यक्ष्माजन्य अस्थिशोथ और अस्थिसधिशोथ (osteourthritis) भी कभी-कभी इस सधि मे हो जाते है । ऐसे सधिशोथो के लक्षण प्रारूपिक (typical) होते है । चिकित्सा सरक्षी पद्धति अनुसार की जाती है । अस्थिसधि शोथ के दुसाध्य (intractable) रूप मे स्थूलक का उच्छेद आवश्यक हो सकता है ।

हनुस्तभ (Trismus)

हनुस्तभ (मुँह खोलने की असमर्थता) के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

1. पेशी आकर्ष (spasm of muscle) जैसे टिटेनस, हिस्टीरिया, अन्य वेदनायुक्त दशाओ मे, जैसे शख-अधोहनु सधि का सधिशोथ, तीव्र पैरोटिड ग्रथिशोथ तथा कनफेड (parotitis, mumps), उलूखल विद्रधि, अन्तर्घट्टित अक्लडाढ (impacted wisdom tooth), 2 अपुन स्थापित सधिच्युति (unreduced dislocation), 3 दाह के कारण अगाकुचन (Contracture) जो लूपस, मुख कोथ (cancrumoris), शस्त्रकर्म क्षताक (scar) तथा रेडियम के प्रयोग से भी हो सकता है, 4 कपोल अथवा टोसिल का कार्सीनोमा और ऊर्ध्वहनु तथा पैरोटिड ग्रन्थि के अर्बुद, 5 सधि के सधि-शोथ से वास्तविक सन्धिग्रह (true-anskylosis)।

चिकित्सा कारण के अनुसार की जाती है। वास्तविक (true) तथा अवास्तविक (false) सधिग्रह से उत्पन्न हुए सधिजाड्य मे स्थूलक का उच्छेद किया जाता है। वाह्य क्षताक आदि से उत्पन्न हुए अवास्तविक सधिग्रह मे अचलता (fixity) के लिए शस्त्रकर्म आवश्यक है । वास्तविक सधिग्रह मे स्थूलक का उच्छेद आवश्यक है। वाह्य क्षताक आदि से उत्पन्न हुए अवास्तविक सधिग्रह के लिए एस्मार्क का शस्त्रकर्म (Esmarch's operation) करना चाहिये । इस शस्त्रकर्म मे एक कीलक के आकार का अस्थि का टुकडा काट कर निकाला जाता है, जिसका पतला सिरा नीचे हनु कोण के प्रदेश मे उलूखल की ओर रहता है जिससे उस स्थान पर एक अवास्तविक सधि वन जाती है।



5

मुख, जिह्वा, तालु और लसीका ग्रन्थियां

(Mouth, Tongue, Palate, Salivary glands)

सी राघवचारी

मुख

गर्भ के अभ्युदर और शीर्ष प्रान्त के पास वाह्यजनस्तर (epiblast or ectoderm) मे स्थित अवनमन से (depression) आद्य मुखपथ उत्पन्न होता है । इस मुखपथ से उत्पन्न होने के कारण मुख शल्की उपकला (squamous epithelium) से आस्तरित होता है । वही उपकला ओष्ठो, कपोलो और मुख तल के अन्तरपृष्ठ तथा तालु के मौखिक पृष्ठ और जिह्वा को आच्छादित करती है । सामने की ओर यह उपकला श्लेष्मिक कला-त्वचासगम पर ओष्ठो के लाल किनारो पर प्रारम्भ होती हे और पीछे जाकर ग्रसनी की श्लेष्मिक कला मे मिल जाती है । लाला ग्रन्थियो की वाहनिया—स्टेन्सन वाहिनी, व्हार्टन वहिनी (Wharton's duct) और रिविनस (Rivinus) की वाहिनी मुख मे खुलती है । आद्यमुखपथ (stomodueum) के चारो ओर भिन्न-भिन्न प्रवर्धों की सयुक्ति से मुख के निर्माण का गत परिच्छेद मे विचार किया गया है ।

आघात (Injuries)

आनन और हनुओ के स्थूल अभिघातो का गत परिच्छेद मे उल्लेख किया जा चुका है । आस्तरित उपकला मे परिमित अभिघात लघु होते है और सहज मे साध्य है ।

शोथ

तीव्र मुखपाक (acute stomatitis)

हेतुकी (aetiology)

मुखपाक के निम्नलिखित कारण होते है—

अभिघात, दात के बुरुशो और बनावटी दातो से ।

क्षोभक (irritants) जिनमे तम्बाखू पीना, स्पिरिट और पारद, सीस और सखिया आदि औषधिया गिनी जाती हे ।

स्थानिक सक्रमण, जैसे दत सक्रमण, विशिप्ट सक्रमण और वे जो सक्रामक ज्वरो और जठरान्त्र (gastrointestinal) विकारो मे मुखशुद्धि की उपेक्षा से उत्पन्न होते है ।

विटामिन न्यूनता (defeciency) और प्लूमर-विन्सन सलक्षण (Plummer-Vinson syndrome) ।

उदर के शस्त्रकर्मों के पश्चात् साधारण शारीरिक दशा तीव्र मुखपाक की प्रवर्तक होती है ।

नैदानिक प्रकार

तीव्र मुख पाक निम्न रूपो मे प्रकट हो सकता है

(1) अभिष्यन्द मुखपाक (catarral stomatitis)

(2) सव्रण या एप्थसी मुखपाक, बहुव्रणो सहित (uncerative)

(3) **विन्सेन्ट मुखपाक** (vincent stomatitis) विन्सेन्ट जीवाणु से उत्पन्न होता है उसमे कूटकलायुक्त (pseudomenbranous) सव्रण मुखपाक होता है ।

(4) थ्रश (thrush) जो **केन्डिडा एल्बीकेन्स** से होता है यह एक कवक होता है जो दुर्बल कृश बालको मे श्लेष्मिक कला पर श्वेत रग की अतिवृद्धि (overgrowth) कर देता है ।

मुखपाक के उपर्युक्त रूपो की चिकित्सा यह है (क) कारण की चिकित्सा, (ख) मुख प्रक्षालन के लिए हलके विसक्रामक घोल, (3) और (4) दशा मे जैन्शियन वायालेट का अनुप्रयोग (application) ।

(5) **कोथयुक्त मुखपाक** (gangrenous stomatitis) या **मुखकोथ** (cancrum oris)—यह सूखा रोग (marasmus) या अतिसार (dysentery) आदि से ग्रस्त कृश बालको मे होता है। वह वास्तव मे प्रसार करने वाला सक्रामक कोथ (infective gangrene) है । रोग एक लघ धूसर रग के चकत्ते

के रूप मे प्रारम्भ होता है जो शीघ्र ही फैल कर बढ जाता है। ऊतक काले प्रस्वेद्य (diffluent or diliquescent) हो जाते है, रोग गहरे ऊतको मे और अस्थि तक फैल जाता है और वे नष्ट हो जाते है, चिकित्सा प्रतिजीवियो और गलित ऊतक के तत्काल उच्छेद से की जाती है। विस्तृत ऊतको के उच्छेद से जो त्रुटि उत्पन्न होती है उसकी प्लास्टिक सर्जरी से पूर्ति की जाती है।

(6) लुडविग शोथ (Ludwig's angina)—मुख तल के शोथ से ग्रीवा के गभीर ऊतको तक का शोथ (cellulis) उत्पन्न हो सकता है जिसको लुडविग एंजाइना कहा जाता हैं। रोग का शीघ्र ही निदान करके तत्परता के साथ चिकित्सा करनी चाहिये, अन्यथा कठ द्वार का शोफ (oedema of glottis) हो जाने की सम्भावना होती है। मुखभूमि मे व्रण लाला अश्मरियो (salvary calculus) के द्वारा उत्पन्न हो सकते है जो श्लेष्मिक कला को वेध कर व्रण बना देती हैं।

चिरकारी शोथ (chronic inflammation)

तीव्र मुखपाक की भाँति चिरकारी मुखपाक मे भी कोई प्रवर्तक दशा उपस्थित होती है जैसे विटामिन त्रुटि, प्लूमर-विन्सन सलक्षण या चिरकारी क्षोभ। साधारणतया क्षोभक (irritants) ये होते है —पूतिता (sepsis), सिगरेट पीना, सिफिलिस, मद्य, पैने दात और मसाले। भारतवर्ष मे, विशेषकर दक्षिण मे, तम्बाकू खाना बहुत प्रचलित है, वहा सुरती सबसे साधारण क्षोभक है। रोग का साधारण लक्षण लूकोप्लेकिया का एक चकत्ता है जो पृष्ठ मे उठा हुआ एक श्वेत क्षेत्र होता है—यह कैंसरपूर्व दशा है।

विशिष्ट सक्रमण—क्षयजन्य व्रण जिह्वा पर हो सकते है। सिफिलिस के प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक लक्षण मुख के अन्य स्थानो की अपेक्षा ओष्ठ और जिह्वा पर अधिक होते है।

सृक्कणी मुखपाक (angular stomatitis)—यह एक विटामिन (राइबोफ्लेविन) त्रुटि का लक्षण है। श्वेत चकत्ते सृक्कणी या मुखकोण पर बन जाते है और फिर विदार उत्पन्न होते है। विटामिन त्रुटि की पूर्ति रोग की एक चिकित्सा है।

अर्बुद और पुटी (Tumours and cysts)

सुदम अर्बुद—अकुरार्बुद (papilloma) रक्तवाहिकार्बुद (haenangiomas), तन्त्रिकातातत्र अर्बुद (neurofibromata जिह्वा के) और लसीकावाहिकार्बुद (lymphangioma) (ओष्ठ और जिह्वा के) मुख मे होते है,

किन्तु विरल है। मिश्रित अर्बुद ओष्ठ-जिह्वा और तालु मे होते है। चूषक कवलिका (suctorial pad) का वसार्बुद (lipoma) कपोल मे पाया जाता है।

पुटी—श्लेष्मल पुटी मुख मे कही भी हो सकती है। मुख तल मे पुटी साधारण है।

रेनुला (Ranula)—रेनुला ब्लेडिन और नूहन (Blandin, Nuhn) की लघु लाला ग्रान्थियो की अवधारण पुटी (retention cyst) होती है जो जिह्वा के निम्नपृष्ठ से मुख तल की ओर निकली रहती है। कुछ यह भी मानते हैं कि वह मुख तल की एक श्लेष्मल ग्रन्थि का व्यपजनन (degeneration) है। उसमे स्वच्छ चिपचिपा द्रव भरा होता है। उस वृद्धि को पार करते हुए व्हार्टन वाहिनी पहिचानी जा सकती है।

नैदानिक लक्षण—वृद्धि मध्य रेखा के एक ओर, रग मे नीली, मृदु और पुटीसम प्रतीति होती है। कभी-कभी उसका आकार बढ कर वह ग्रीवा मे गहरी चली जाती है और वहा एक उत्सेध बना देती है। वह चमकदार और पारभासी (translucent) होती है। मुखभूमि मे एकपार्श्वी स्थिति और चमकदार पारभासिता उसके नैदानिक लक्षण है।

चिकित्सा—पुटीभित्ति सहित उच्छेद उसकी चिकित्सा है। भित्ति के अत्यन्त बारीक होने से प्राय फट जाने के कारण उन्मूलन कठिन होता है। पुटी भित्ति, यदि कुछ रह जाती है तो जिंक क्लोराइड अनुप्रयोग (application) से उसको वही नष्ट किया जाता है। दूसरा उपाय पुटी का मार्सूपियलीकरण (marsupialization) है। शस्त्रकर्म मे सावधानी से व्हार्टन वाहिनी को बचाना चाहिये।

अधोजिह्व डरमाइड (sublingual dermoid)—यह गोलाकार, मध्यरेखा मे स्थित, पीताभश्वेत रग की पुटी होती है। वह पारभासी नही होती।

अवटुजिह्व पुटी (thyroglossal cyst)

अधिकण्ठिका (suprahyoid) स्थिति की पुटी मुख मे उपस्थित हो सकती है।

दुर्दम अर्बुद

मुख का कार्सिनोमा ओष्ठ, कपोल, मुख तल, जिह्वा और तालु मे सामान्यतया पाया जाता है, उसका मसूडे मे प्रारम्भ विरल है। पुरुषो मे वह अधिक (80-90 प्रतिशत) होता है। लूकोप्लेकिया, चिरकारी उपरिस्थ जिह्वाशोथ (chronic superficial glossitis) और चिरकारी विदार

(chronic fissure) कैंसरपूर्व दशायें है। दक्षिण भारत मे तम्बाकू चबाना बहुत प्रचलित है और कपोल के मौखिक पृष्ठ पर लूकोप्लेकिया होना अत्यन्त साधारण है जिसका कारण सुरती, पान की पत्ती और चूने से उत्पन्न क्षोभ होता है। इनको बहुत समय तक मुँह मे कपोल से दाब कर रखा जाता है।

विकृति

स्थूल रूप (macrosopic form)—प्रफली वृद्धि (proliferating growth) दुर्दम व्रण (malignant ulcer) और पर्वकी (noduler) ये तीन प्रकार की विक्षतिया पाई जाती है।

सूक्ष्मरूप (Histology)—जिह्वा के पश्च तृतीयाश के अतिरिक्त शेष मे होने वाले कार्सीनोमा शल्की इपीथीलियोमा होते है जिनमे कम या अधिक कोशिका नीड (cell nests) होती है।

प्रसार—कार्सीनोमा प्रत्यक्ष अन्त सरण (infiltration) द्वारा चारो ओर के ऊतको मे फैलता है। ओष्ठ का कार्सीनोमा कपोल और मसूडो मे फैल सकता है तल का कार्सीनोमा उलूखल उपान्त और जिह्वा मे प्रसार कर सकता है। कपोल का कार्सीनोमा प्रसार करके ओष्ठ, उलूखल उपान्तो, हनु और कपोल के बाह्य पृष्ठ पर पहुँच सकता है। जिह्वा के कार्सीनोमा का मुखतल और गलतोरणिका के स्तभो (pillars of fauces) मे प्रसार सभव है और तालु का कार्सीनोमा हनु, मसूडो और जिह्वा मे पहुच सकता है। लसीकावाहिकाओ द्वारा उस प्रदेश के लसीका पर्वों मे अन्त शल्यता (embolism) से प्रसार हो सकता है। दूरवर्ती स्थानो तक प्रसार विरल है।

नैदानिक लक्षण

कार्सीनोमा के रूप के अनुसार, प्रफली (prolif erating) वृद्धि, दुर्दम व्रण, पर्वक अथवा चिरकारी विदार, उसके लक्षणो मे अन्तर होता है। उस प्रदेश की ग्रन्थिया आगे चलकर बडी और कडी हो जाएँगी। सन्देह होने पर उसकी जीवोति परीक्षा आवश्यक है। वर्धित ग्रन्थियो की उपस्थिति से निदान सरल हो जाता है। किन्तु उनकी अनुपस्थिति अदुर्दमता (nonmalignancy) का प्रमाण नही है, वास्तव मे दुर्दमता का निदान ग्रन्थियो की वृद्धि से पूर्व होना चाहिये।

चिकित्सा—क्षोभ के कारणो को दूर करना तथा कैसरपूर्व दशाओ की तत्परता से चिकित्सा कार्सीनोमा का रोगनिरोध (prophylaxis) है।

प्राथमिक विक्षतियो (lesions) की चिकित्सा के लिए किरणन उत्तम

होता है, यद्यपि उसके परिणाम उच्छेदन की अपेक्षा वहुत उत्तम नही है। किन्तु उससे अगभगता (mutilation) नही होती और शस्त्रकर्म से जो उपद्रव हो सकते है उनका भय नही रहता।

किरणन विधि वृद्धि की स्थिति पर निर्भर करती है। तालु कपोल और मुखभूमि के लिए रेडियम का पृष्ठ पर अनुप्रयोग (surface application) उत्तम है। ओष्ठ और जिह्वा के लिये रेडियम सूचिकाओ का अन्तराली (interstitial) उपयोग किया जाता है। जिह्वा के पश्चभाग के लिए टेट्राडियम (tetradium) का प्रयोग करना चाहिये।

किरणन के पश्चात् पुनरावृत्ति पर अथवा अस्थि तक दुर्दमता के प्रसार पर सर्जरी की आवश्यकता होती है।

द्वितीयको की चिकित्सा—जब पर्व परिस्पर्श्य नही होते, अधिकतर विद्वान तभी पर्वो के समूह विच्छेदन के पक्ष मे है। किन्तु अन्य प्रतीक्षा करना उत्तम समझते है और पर्वो के परिस्पर्श्य होने पर उनका समूह व्यवच्छेदन करते है।

परिस्पर्श्य होने पर उनके आसजित (fixed or adherent) होने से पूर्व ही पर्वो को व्यवच्छेदन करके निकाल देना उचित है।

एकपार्श्वी समूह व्यच्छेदन मे एक ओर के दुर्दम पर्वो के साथ ग्रीवा की मध्यरेखा से समलम्बिका (trapezius) की अग्रधारा तक ग्रैव गभीर प्रावरणी वसा, लसीका पर्व, आभ्यन्तर ग्रीवा शिरा (internal jugular vein) कैरोटिड पिधान (carotid sheath) उर कर्णमूलिका (sternocleidomastoid) पेशी, निम्न अधोहनु लाला ग्रथिया (submandibular salivary glands) और कर्ण पूर्व ग्रन्थि का ग्रैव भाग निकाल दिये जाते है।

पर्वो के आसजित हो जाने पर किरणन क्रिया है।

समूह व्यवच्छेदन की सीमा वृद्धि की स्थिति और उसके प्रसार की सीमा पर निर्भर करती हे। ऊर्ध्वओष्ठ के कैंसर मे जहा प्रसार अधिक दूर तक नही हुआ है, समूह व्यवच्छेदन ग्रीवा के अग्रत्रिभुज के ऊर्ध्व भाग तक सीमित रखा जाता है।

जिह्वा

शल्य सम्बन्धी शरीर-रचना (surgical anatomy)

जिह्वा एक पेशीकृत अग है जिसका कुछ भाग मुख मे और कुछ ग्रसनी मे स्थित है। परिवर्धनानुसार उसके दो भाग है। उसका अग्र द्वितृतीयाश प्रथम गिलचाप (bivanchial arch) से और पश्यतृतीयाश तीसरी चाप की एकल गुलिका (tubereulum impar) से वनता है। दोनो भागो के सगम पर एक

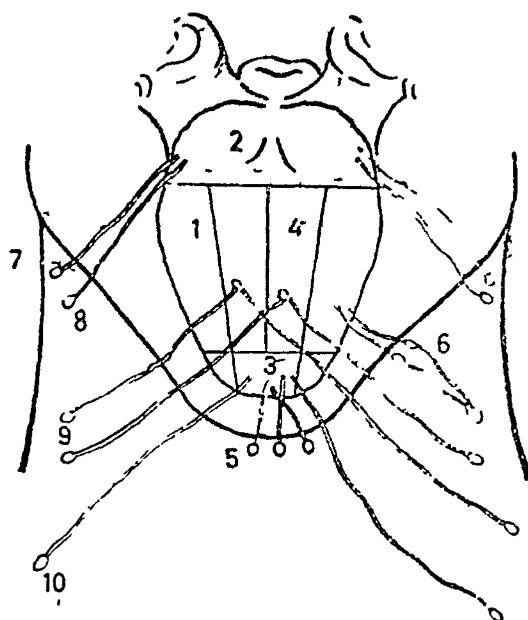
अध्ररन्ध्र (formen coecum) नामक अवनमन है। अध्ररध्र से उपकला का एक अधोगामी प्रसर प्रारम्भ होता है जो अवटु-जिह्व (thyroglassal duet) वाहिनी कहा जाता है, यही अवटुका ग्रन्थि के बनाने के लिए उत्तरदायी है। अवटुका ग्रन्थि ऊतक इस पथ के जिह्वप्रान्त पर उत्पन्न हो सकता है जिससे जिह्वा अवटु (lingual thyroid) की उत्पत्ति होती है।

जिह्वा मे शर प्रवर्ध और अधोहनु से निकलने वाली वहिस्थ (extrinsic) और अन्तस्थ(intrinsic) पेशिया होती है। ये पेशिया आपस मे अन्तर्मिश्रित रहती है। जिह्वा श्लेष्मिक कला से आच्छादित है। जिह्वा का अभ्युदर पृष्ठ चिकना है, उस पर की श्लेष्मिक कला मुख तल की कला मे मिल जाती है। इस पृष्ठ की मध्यरेखा मे एक श्लेष्मिक कला का पुटक उठा हुआ है जो जिह्वा को मुख तल से जोडे हुए है, यह जिह्वा वधनी (fremum linguae) या जिह्वा वलि (plica lingualis) कही जाती है। ब्लेंडिन और नूहन (Blanding Nuhn) की ग्रन्थिया नामक एक श्लेष्मिक ग्रन्थि समूह इस स्थिति मे पाया जाता हे। जिह्वा के अग्रद्वितृतीयाश की श्लेष्मिक कला असम (rough) है जिसका कारण उस पर निकले हुए सूत्राकार और कवकाकार (filiform, fungiform sapillae) अकुरक है। जिह्वा के इस भाग की पश्च सीमा पर उलटे हुए V के आकार मे एक पक्ति मे स्थित वडे आकार के चपटे शिखर वाले विशेप अकुरक भी है जो स्वाद अगो (taste organs) के अश हे और परिवृत अकुरक (circumvallate papillae) कहलाते है। जिह्वा के पश्चग्रसनी भाग पर लसीकाभ ऊतक (lymphoid tissue) का एक पुज स्थित है' जिसको जिह्वा टोन्सिल (lingual tonsil) कहा जाता है।

रक्त और तंत्रिका सम्भरण

जिह्वा मे रक्त वाह्य कैरोटिड की जिह्वा धमनी (lingual artery) नामक शाखा से आता है। उसके अग्रद्वितृतीयाश मे जिह्वा तन्त्रिका (lingual nerve) के तन्तु फैले हुए है, जो साधारण सवेदना (common sensation) की तन्त्रिका है, वह त्रिधारा (trigeminal) तन्त्रिका के अधोहनु विभाग (mandibular division) की एक शाखा है। मध्यकर्णपटह तन्त्रिका (chorda tympant), जो आनन तन्त्रिका की एक शाखा है और जिह्वा तन्त्रिक के साथ जाती है, जिह्वा के अग्रद्वितृतीयाश मे स्वादतन्तु ले जाती ह। पश्चतृतीयाश मे जिह्वाग्रसनी (glossopharyngeal) तन्त्रिका स्वाद और सवेदन दोनो प्रकार के तन्तु पहुचाती है। अधोजिह्वा (hypoglossal) तन्त्रिका जिह्वा

की पेशियो की प्रेरक तन्त्रिका है। यदि एक ओर की अधोजिह्वा तन्त्रिका क्षत हो जाय तो उस ओर की बहिस्थ पेशियो का अगघात (paralysis) हो जायगा और दूसरे ओर की बहिस्थ पेशिया जिह्वा को उस ओर को खीच लेगी।



चित्र 7 जिह्वा का लसीका निकास

1 उपान्तीय
2 पश्च
3 शिखरीय
4 मध्यवर्ती
5 अधोचिवुक ग्रन्थिया
6 अवअधोहनु ग्रन्थिया
7 गभीर ऊर्ध्वाधर शृखला
8 ग्रीवा-द्विपिडका शृखला
9 ग्रीवा ग्रन्थिया
10 ग्रीवा-असकठिका ग्रन्थिया

लसीका निकास (Lymphatic drainage)

जिह्वा मे लसीका वाहिकाये बहुत होती है। किन्तु लसीका ले जाने वाली वाहिकाओ का मार्ग भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे भिन्न है।

जिह्वाग्र की लसीका वाहिकाये अधश्चिबुक पर्वों (sulemental nodes) मे लसीका ले जाती है जिनका सबध गभीर ग्रैव पर्वो शृखला (deep cervical chain) से होता है। इसके अतिरिक्त कुछ लसीका वाहिकाये लसीका को बिना रिले के सीधी ग्रीवा-असकठिका पर्वो (juguloomohyoid node) मे पहुचाती है जो ग्रैव गभीर शृखला का पर्व है और जहा असकठिका पेशी कैरोटिड पिधान को पार करती है, वहा स्थित है। जिह्वा के कार्सीनोमा मे

केवल यही पर्व बढा हुआ मिल सकता है। परीक्षक को इस सबध मे ज्ञान न होने से उसका ध्यान उसकी ओर आकर्षित न होगा।

जिह्वा के अग्र द्वितृतीयाश के परिसर से लसीका निम्न-अधोहनु (submandıcular) पर्वसमूह तथा गभीर पर्वश्रृखला मे सवाहित होता है।

जिह्वा के अग्रद्वितृतीयाश के मध्यवर्ती भाग से लसीका गभीर ग्रैव पर्वो मे जाता है। मध्यरेखा मे लसीका वाहिकाओ का पूर्ण सबध होने के कारण, जिह्वा के इस भाग के रोग का दोनो ओर प्रसार होता है।

जिह्वा के पश्च तृतीयाश से लसीका का गभीर ग्रैव समूह (ऊर्ध्व पश्च ग्रीवा श्रृखला) मे, ऊर्ध्व सकीर्णिका (supεrıor constrıctor) मे परिभ्रमण के पश्चात्, सवहन होता है। सारी लसीका वाहिकाये अन्त मे, सीधी या अधश्चिचुक (submental) अथवा निम्न अधोहनु रिलै (relays) द्वारा, गभीर ग्रैव श्रृखला मे लसीका ले जाती है। इसी ग्रैव श्रृखला मे वह पर्व है जिसको 'जिह्वा का मुख्य पर्व' कहा जाता है जो सामान्य कैरोटिड धमनी के द्विशाखन (bıfurcatıon) पर स्थित है। यह मान कर कि जिह्वा के रोगो मे यह पर्व अन्य पर्वो से पूर्व आक्रान्त होता है, इसको यह नाम दिया गया है, अन्य पर्वो के साथ वह अवश्य ही ग्रस्त होता है।

जन्मजात असगतियां

(congenıtal anomalıes)

बृहद जिह्वता (macroglossıa) साधारण सहज असगति है। वह मुख्यतया द्राक्षगुच्छाम (racemose) प्रकार के लसीका वाहिकार्बुद (lymphangıoma) के कारण होती है। शोथ के आवर्ती आक्रमणो से उसका आकार और भी बढ सकता है। जिह्वा के पश्चतृतीयाश मे यह रोग नही होता। इस कारण श्वास लेने मे कोई अडचन नही होती। कीलकाकार उच्छेद (wedgeshaped resectıon) द्वारा उसकी चिकित्सा की जाती है। उपार्जित बृहद-जिह्वा (acquıred maeroqlossıa) भी तन्त्रिका ततु अर्बुद या लसीका वाहिकार्बुद से हो सकती है। जड वामनो और मूढो (cretıms, embecıles) मे पेशियो की वृद्धि से उत्पन्न बृहद जिह्वता पाई जाती है।

लघु बधनी (short fraenum) और अतिगतिशील (hypermobıle) जिह्वा भी अन्य सहज असगतिया है।

अभिघात (Trauma)

जिह्वा के अभिघात से कष्टदायक रक्त प्रवाह हो सकता है। रक्त रोकने की आपत्तिकालिक विधि यह है कि जिह्वा को सामने को खीचकर अधोहनु पर नीचे को मोड दिया जाय। इससे जिह्वा धमनी दब जाएगी। जिह्वा धमनी का प्रथम या दूसरे भाग मे बधन (ligation) प्राय आवश्यक नही होता, क्षत की गभीर सीवन (deep suturing) ही से बहुधा रक्त रुक जाता है।

शोथ

तीव्र जिह्वा शोथ (acute glossitis)

उपरिस्थ (superficial)

उपरिथ जिह्वाशोथ के कारण वही होते है जो तीव्र मुखपाक उत्पन्न करते है, जिनका गत पृष्ठो मे वर्णन किया जा चुका है, और चिकित्सा भी तद्नुसार ही होती है।

गभीर (deep)

इसको तीव्र सारऊतकी जिह्वा शोथ (acute parenchymatous glossitis) भी कहते है, इसका कारण बर्रे का काटना और पूतित सक्रमण बताया जाता है। पूयता (suppuration) असाधारण है। कठद्वार के शोफ (oedema of glottis) की सभावना के कारण दशा को भयानक समझा जाता है।

चिरकारी जिह्वाशोथ (chronic glossitis)

उपरिस्थ चिरकारी जिह्वाशोथ

उपरिथ प्रकार साधारण है और निश्चित कैंसरपूर्व दशा है। यह दशा उनही क्षोभको से उत्पन्न होती है जो मुख के शोथ का कारण होते है। जिह्वा मे होने वाले परिवर्तनो की कई अवस्थाये मानी गई हैं।

प्रथम अवस्था मे अकुरक बडे हो जाते है और उनमे सूजन हो जाती है तथा जिह्वा पर लाल अतिरक्तवाहिकामय चकत्ते (hatches) बन जाते हे।

दूसरी अवस्था मे उकला मलबे (debris) के बने हुए श्वेत चकत्ते अतिवर्धित (hypertophied) अकुरो पर जमा हो जाते हैं। जिह्वा पर लगाये हुए पेन्ट के

समान इस दशा को बताया जाता है । कभी कभी-सारी जिह्वा श्वेत चकत्तो से ढक जाती है, वह दशा 'इक्थियोसिस' (icthyosis) कही जाती है ।

तीसरी अवस्था मे जिह्वा लाल और चमकदार (glazed) दीखती है । यह उपकला के अपहृत होने और अकुरो के विवृत हो जाने का परिणाम होता है । जिसको 'जिह्वा की सोराइसिस' (psorcasis linguae) कहा जाता है । वह श्वेत चकत्तो और उपकला के गिर जाने से होती है ।

चौथी अवस्था मे जिह्वा पर दरारे पड जाती है और विदर बन जाते है । इस अवस्था पर वहुधा शल्की इपीथीलियोमा चिरकारी उपरिस्थ जिह्वाशोथ पर अधिस्थापित (supervene) हो जाता है । सूक्ष्मदर्शी द्वारा उपत्वचा और अन्तस्त्वचा (dermis) मे परिवर्तन दिखाई देते है । उपत्वचा अभिलक्षक जलशोफयुक्त कोशिकाओ (characteristic hydrolic cells) से मोटी हो जाती है । पेजेट की कोशिकाये मज्य स्तर मे दीखती है । अन्तस्त्वचा मे गोलकोशिकाओ का अन्त सचरण (infiltration) हो जाता है । उपकला की अवरोही वृद्धियाँ जो इस दशा मे उपस्थित होती है, भूल से दुर्दमता का चिह्न समझी जा सकती है ।

चिकित्सा

चिकित्सा विशेपतया कार्सीनोमा को रोकने की दृष्टि से करनी चाहिए । इस दशा की चिकित्सा मुख के चिरकारी शोथ के समान की जाती है । यदि एक परिमित क्षेत्र पर लूकोप्लेकिया का एक चकत्ता हो तो उसका उच्छेद करना उचित है । यदि परिवर्तन विस्तृत हो तो उसमे किसी प्रकार के रूपान्तरण को ध्यानपूर्वक देखते रहना चाहिए । सदिग्ध स्थान का उच्छेदन आवश्यक है ।

चिरकालीन सारऊतकी जिह्वा शोथ (chronic parenchymatous glossitis) सिफिलिका एक लक्षण है । अविशिष्ट दत सक्रमण (nonspecific dental infection) के कारण उसका होना अत्यन्त विरल है । जिह्वा का विसरित विवर्धन (diffuse enlargement) हो जाता है ।

विशिष्ट सक्रमण (specific infections)

यक्ष्मा (Tuberculosis)

प्राथमिक दशा (लूपस) के रूप मे यक्ष्मा वहुत कम पाया जाता है । वहुधा फुप्फुस के यक्ष्मा के द्वितीयक लक्षण के रूप मे व्रण (ulcer) उत्पन्न होता है ।

वह जि ह्वाग्र पर स्थित, वेदनायुक्त, उत्खनित उपान्त वाला (undermined-margins), तथा पतले हल्के रग के कणिका ऊतक (granulation tissue) युक्त व्रण होता है, जो क्षयजन्य व्रण के मुख्य लक्षण है।

सिफिलिस (syphilis)

प्राथमिक जननेन्द्रिवाह्य शैंकर (extragenital chancre) जिह्वाग्र पर हो सकता है। एक लघु व्रण वन जाता है जिसमे जननेन्द्रिय पर के शैंकर का दृढीभवन (induration) नही होता। उसके साथ ही उस प्रदेश के लसीका पर्वो की वेदनाहीन वृद्धि हो जाती है जो रोग के आकार के अनुपात मे वहुत अधिक होती है। व्रण के आखुरणो (scrapings) की धूमिलभूमि प्रदीप्ति (dark ground illumination) परीक्षा से स्पाइरौकीट दिखाई पडेगे। द्वितीयक लक्षण शवूकपथ (snail track) व्रण और श्लेष्मिक चकत्ते (mucous patches होते हैं।

एक साधारण तृतीयक लक्षण गमाजन्य (gummatous) व्रण होता है जा प्राय जिह्वा पृष्ठ पर मध्यरेखा के पास पाया जाता है। उसमे गमाजन्य व्रण के विशिष्ट लक्षण होते है। अर्थात् नियमित उपान्त वाला छिद्र (punched out) और धुले हुए चमडे (washleather) के समान तल। उसकी स्थिति तथा जिह्वा के आसजित (adherent or fixed) न होने से उसका दुर्दम व्रण से निदान किया जा सकता है। कभी-कभी जिह्व पर कई गमा होते है, (अथवा जिह्वा मे विसरित अन्त सरण) (diffuce infilteration) हो सकता है। एक प्रकार का सारऊतकी (parenchymatous) जिह्वा शोथ हो जाता है।

जिह्वा के व्रणो का सापेक्ष निदान
(differential diagnosis)

जिह्वा पर अन्य प्रकार के व्रण भी हो सकते है जिनका सापेक्ष निदान उनके निम्नलिखित विशेष लक्षणो से किया जाता है

व्रण का प्रकार	
साधारण अग्निमाद्य	कई, लघु और वेदनायुक्त, लाल तल या आधार पर।
दन्तजन्य	नुकीले दाँत के कारण उत्पन्न उसमे साधारण चिरकालीन व्रण के से लक्षण होते है। किनारे ढलवा अल्प अन्त सरण (induration) होता है, दोपी दाँत निकलने पर उसका विरोहण हो जाता है।
चिरकारी अविशिष्ट (जैसे विदर के पश्चात्)	साधारण चिरकालीन व्रण के लक्षण, अल्प अन्तःसरण होता है।
क्षयजन्य	उपर्युक्त के समान लक्षण
सिफिलिसजन्य (1) प्राथमिक (2) द्वितीयक (3) तृतीयक गमाजन्य	उपर्युक्त लक्षणो को देखो।
हर्पीज	अनेक वेदनायुक्त व्रण जो जलस्फोटिकावत प्रारम्भ होते है।
दुर्दम	जिह्वा का कार्सीनोमा। दुर्दम व्रण देखो।

अन्य विरल दशायें (other rare conditions)

जिह्वा पर लाल शोथ युक्त, असम, सिगरेट पीने से उत्पन्न हुए क्षेत्र पाये जाते हैं, इनको सिगरेट पीने वालो के चकत्ते (smokers patches)

भी कहा जाता है

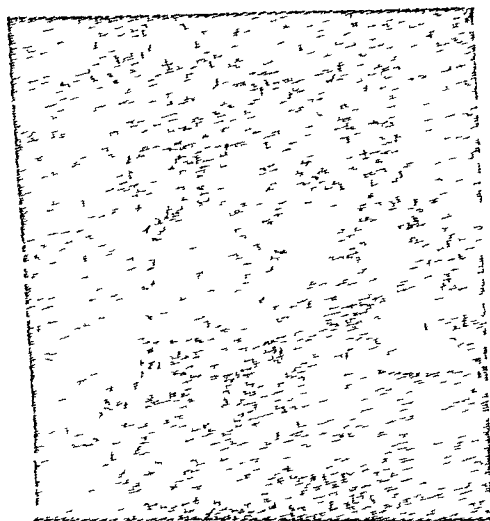
लोमी जिह्वा (hairy tongue)

अतिवर्धित अंकुरक, जिनमे काली अपपत्रित (exfoliative) उपकला मिली रहती है, जिह्वा पर उगे हुए बालो के समान दीखते है। यह दशा कृष्ण जिह्वा शोथ (glossitis nigrans) कही जाती है।

अर्बुद और पुटी (tumours and cysts)

सुदम अर्बुद जिह्वा पर असाधारण है। अंकुरार्बुद (papilloma), चारो ओर के ऊतक के अन्त सरण रहित चर्मकील (wart) के रूप मे होते है। जब चारो ओर के ऊतक का अन्त सरण होने लगे तो उनके अर्बुद मे परिवर्तन का सन्देह करना चाहिए। ऐसी दशा मे जैवोति परीक्षा (biopsy) आवश्यक है। अन्य जिह्वा मे होने वाले सुदम अर्बुद रक्तवाहिकार्बुद, लसीकावाहिकार्बुद, तन्त्रिका तन्तु अर्बुद और मिश्रित अर्बुद हैं। ब्लैडिन और नूहन की ग्रन्थियो के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई श्लेष्मिक पुटी रेनुलाओ (renulae) के रूप मे प्रकट होती है।

जिह्वा अवटुका (lingual thyroid) जिह्वा के पश्च तृतीयांश से होती है। वह एक लाल सूजन के समान होती है जिससे सहज ही मे रक्त निकलने लगता है और जन्म के समय ही से उपस्थित होती है। चिकित्सा उच्छेद द्वारा की जाती है। किन्तु ऐसा करने के पूर्व ग्रीवा मे सामान्य अवटुका की उपस्थिति का निश्चय कर लेना चाहिए, कभी-कभी केवल जिह्वा अवटुका ही होती है।



चित्र 8.
रेडियम चिकित्सा के पूर्व जिह्वा का कैंसर

कार्सीनोमा

जिह्वा का कार्सीनोमा बहुत होता है (चित्र 8)। 45 और 50 वर्ष की आयु के बीच में वह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में विशेषतया अधिक होता है (90 प्रतिशत)। चिरकालीन उपरिस्थ जिह्वा शोथ, विशेषकर लूकोप्लेकिया और विदर उत्पन्न होने की अवस्था में, कैंसरपूर्व दशा होती है। अतएव चिरकालीन उपरिस्थ जिह्वा शोथ के उपर्युक्त कारणों को कार्सिनोमा का सुदूर (remote) कारण समझना चाहिए। इनके अतिरिक्त, अंकुरार्बुद, साधारण व्रण और विदरों को कैंसरपूर्व दशा माना जाता है।

विकृति (pathology)

स्थिति—सबसे साधारण स्थिति जिह्वा के अग्र द्वितृतीयांश का किनारा है वह पश्चतृतीयांश, अर्थात् ग्रसनी भाग पर भी होता है जिह्वाग्र और मध्य भाग में असाधारण है। कार्सीनोमा के दो मुख्य प्रकार होते हैं, एक शल्की इपीथीलियोमा, जो अग्र द्वितृतीयांश में होता है और दूसरा, पश्चतृतीयांश में होने वाला अविभेदित (undifferentiated) प्रकार का कार्सीनोमा।

स्थूल लक्षणानुसार प्ररूप (macroscopic type)

चार होते हैं —(1) प्रफलनी (proliferating), (2) व्रणोत्पादी (ulcerating), (3) पर्विल (nodular) और (4) दुर्दम विदर (malignant fissure)। **सूक्ष्मदर्शी प्ररूप** (microscopic types)—अग्र द्वितृतीयांश में मुख्य रूप शल्की इपीथीलियोमा होता है जिसमें थोड़ा या अधिक कोशिका-नीड रचना हो चुकती है। जिह्वा के पश्च तृतीयांश में अर्बुद के दो प्ररूप होते हैं एक लसीका-इपीथीलियोमा, (lymphoepithelioma) जो लसीका कोशिकाओं से मिश्रित इपीथीलियोमा होता है, जिसकी ऊतकरचना (histologically) लसीका सारकोमा अथवा गोलकोशिकाकृत सारकोमा (round celledsarcoma) के समान होती है और दूसरा परिवर्ती कोशिका (transitional celled) कार्सीनोमा, जो शल्की इपीथीलियोमा और अविभेदित (undifferentiated) प्रकार के इपीथीलियोमा के बीच की अवस्था है। पश्चतृतीयांश का अर्बुद अविकसनित (anaplastic) और अत्यन्त विकिरण-सुग्राही (radiosensitive) होता है।

विसार (spread)—कुछ समय में अर्बुद मुख, गलतोरणिका (fauces)

और हनु मे फैल जाता है। प्रादेशिक पर्वो मे शीघ्र ही विसार हो जाता है। दूसरी ओर के पार्श्व मे भी विसार साधारण है। दूरस्थ अगो मे विसार अत्यल्प होता है।

नैदानिक लक्षण

प्रारम्भिक लक्षण एक वृद्धि या पिड अथवा जिह्वा पर व्रण हो सकता है जिसके साथ कुछ असुविधा हो, जो वास्तव मे पीडा नही होती, अथवा वेदना हो सकती है जो कान मे प्रतीत हो।

निश्चित रोग मे स्थानिक (local) अथवा दूरानुभूत (referred) वेदना विशेप लक्षण है।

स्थानिक विक्षति ये हो सकती है (1) व्रण, जिसके किनारे उठे हुए और वहिर्वर्तित (everted) होते है और तालु तथा चारो ओर का ऊतक दृढीभूत (indurated) होता है, (2) चर्मकीलमय फलनी वृद्धि और चारो ओर की जिह्वा का दृढीभवन (induration), (3) जिह्वा मे एक पर्वक, अथवा (4) स्पष्ट गाथा (tell-tale) वाला दृढीभूत परिसर सहित विदार। रोग के प्रारम्भ ही मे जिह्वा की गतिशीलता का ह्रास हो जाता है।

प्रादेशिक लसीका पर्व कठिन और वर्धित हो जाते है।

जिह्वा के पश्चतृतीयाश के कार्सीनोमा के प्रारम्भिक लक्षण अनिश्चित होते हे। गलदाह (sore throat) के पुन -पुन आक्रमण होते रहते है जिससे निगलने मे कुछ कष्ट भी होता है और उच्चारण भी कुछ वदल जाता है।

विलम्बित लक्षण

वेदना सतत और तीव्र हो जाती है। लालास्राव प्रचुर और सदा होता रहता है। मुख से दुर्गन्ध और रक्त निकलते रहते है। अधार या तल के अन्त सरित (infiltrated) हो जाने से जिह्वा स्थिर हो जाती है अर्थात् जिह्वाग्रह (ankyloglossia) हो जाता है। निगरण और उच्चारण वेदनामय होते है। रोगी क्षुधार्त्त रहता है और कृश हो जाता है। ग्रीवा मे पर्वो का आकार वढ जाता है और वे आसजित हो जाते है आगे चलकर वे फूटकर प्रफलन कर सकते है। रोगी की दशा निरन्तर गिरती जाती है और वह अरक्तित (anaemic) तथा क्षीण हो जाता है। उसकी मृत्यु किसी वडी रक्तवाहिका से रक्तस्राव या चूपण निमोनिया (aspiration pneumonia) के कारण हो सकती है।

निदान

प्रारम्भ ही मे निदान अत्यन्त आवश्यक है। चारो ओर के जिह्वा ऊतक का दृढीभवन ही ऐसा लक्षण है जो रोग को इगित करता है। प्रारम्भिक रोग स्पष्ट नही होता और उसके निदान की कठिनाई सर्वमान्य है। सन्देह होने पर जैवोति परीक्षा निदान के लिए आवश्यक है। लघु विक्षतियो की उच्छेद के पश्चात् जैवोति-परीक्षा की जा सकती है। कैन्सरपूर्व क्षतो मे उच्छेद की जैवोति-परीक्षा तत्काल करना उचित है। उपर्युक्तानुसार प्ररूपीवर्धित पर्वो की उपस्थिति निदान को सरल बना देती है कणिकामय अपवृद्धियो की (granular enlargements) अनुपस्थिति दुर्दमता के विरुद्ध प्रमाण नही है।

सापेक्ष निदान (differential diagnosis)

व्रण प्ररूप—जिह्वा के व्रणो का सापेक्ष निदान देखो। अकुरार्बुदजन्य **फलनी वृद्धि**—चारो ओर की जिह्वा मे दृढीभवन (induration) की उपस्थिति से जैवोति-परीक्षा से निदान की पुष्टि की जाती है। दुर्दम परिवर्तनो तथा कैसर-पूर्व दशाओ, जैसे लूकोप्लेकियायुक्त **विदार**, को साधारण विदार तथा लूकोप्ले-किया से दृढीभवन द्वारा पहचाना जाता है। तनिक भी सन्देह होने पर उच्छेद जैवोति-परीक्षा (excision biopsy) करना उचित है।

यह ध्यान रहे कि पर्वो का द्वितीयक विवर्धन (enlargment) पूतिता से भी हो सकता है। सदा दुर्दमता ही उसका कारण नही होती। किन्तु उसका कारण दुर्दमता ही को मानना उचित है, जब तक इससे विरुद्ध प्रमाणित न हो जाय।

चिकित्सा

रोगनिरोध (prophylaxis) भी चिकित्सा का अश है जो कैसरपूर्व दशाओ का रोगनिरोध करना है। कैसरपूर्व दशाओ के दुर्दमता मे परिवर्तित होने के चिह्नो का सावधानी से निरीक्षण करते रहना चाहिये तथा उनकी उप-युक्त चिकित्सा करनी चाहिये।

प्राथमिक क्षति की चिकित्सा—रेडियम द्वारा विकिरण तथा उच्छेदक सर्जरी दोनो विधियाँ उपलब्ध है। दोनो के परिणाम प्राय समान है। विकिरण चिकित्सा को सदा प्रथम स्थान देना चाहिये, उच्छेद सर्जरी मे अर्ध या सम्पूर्ण जिह्वा उच्छेदन (hemi or total glossectomy) किया जाता है जो विकलाग-कारी शस्त्रकर्म है।

जिह्वा के अग्र द्वितृतीयाग मे रेडियम आरोपण से अन्तराली विकिरण (interstitial irradiation) हो सकता है। पश्च तृतीयाश की वृद्धियो के लिए टेलीरेडियम (teleradium) विधि उपयुक्त है। अतिवर्धित वृद्धियो (advanced growths) की शामक गभीर एक्सरे चिकित्सा (X-ray therapby) की जाती है।

तालु (PALATE)

शल्य-सम्बन्धी शरीर रचना (surgical anatomy)

(परिवर्धन के लिए मुख, ओष्ठ और हनुओ का परिवर्धन देखो)

तालु मुखगुहा की छत बनाता है और उसको नासागुहा तथा ऊर्ध्वहनुकोटर (maxillary antrum) से पृथक् करता है। तालु मे दो भाग है—चलायमान कोमल तालु (soft palate) और स्थिर कठिन तालु (hard palate)। कठिन तालु मे एक मध्य अस्थिकृत तालु है जो अधो या मौखिक पृष्ठ पर मुख की श्लेष्मिक कला से और ऊर्ध्व पृष्ठ पर नासा की श्लेष्मिक कला तथा कोटर की आस्तर कला से आच्छादित है। कोमल तालु कठिन तालु से पीछे की ओर ग्रसनी मे, ग्रसनी के मुख-ग्रसनी और नासा-ग्रसनी (oropharyngeal, naso-pharyngeal) भागो के बीच मे निकला हुआ है। कोमल तालु तालुपेशीकृत है और उसके नासा तथा मौखिक पृष्ठ श्लेष्मिक कला से आच्छादित है। वह आगे कठिन तालु की पश्च धारा पर लगा हुआ है और पीछे की ओर सकुचित होकर ऊवूला (काकलक) मे अन्त हो जाता है। तालु की पेशियो मे तालुतानिका (tensor palati) का आलब (फल्क्रम) उस स्थान पर है जहाँ वह पक्षाभ अकुश (pterygoid hamulus) पर से मुडकर कोमल तालु मे प्रवेश करती है। खड तालु के शस्त्रकर्म मे इस पेशी के शिथिलन (relaxation) के लिए अकुश को तोडना पडता है। तालु की श्लेष्म-पर्यस्थि (muco-periosteum), मे रक्तवृहत् तालु धमनी (greater palatine artery) द्वारा आता है जो कठिन तालु के पश्च प्रान्त के एक रन्ध्र द्वारा निकलती है। शस्त्रकर्म के समय इस धमनी की रक्षा आवश्यक है। विदलित तालु के पुनर्निर्माण मे प्रालम्बो मे इसी धमनी से रक्त आता है। कोमल तालु, ग्रसनी की पश्च भित्ति मेके अनुप्रस्थ कटक (transverse ridge, ridge of Passavant) से मिलकर, मुख-ग्रसनी सवरणी (oropharyngeal sphincter) का मुख्य अवयव बनाता है जो नासा मे आहार के प्रत्यावहन को रोकता है।

जन्मजात असगतियाँ (congenital anomalies)

जैसा पहले कहा गया है, तालु ऊर्ध्वहनु प्रवर्ध के दो क्षैतिज प्रक्षेपो (projections) के आपस मे तथा पुरोर्ध्वहनु (premaxilla) की युक्ति (fusion) से परिवर्धित होता है। पुरोर्ध्वहनु स्वय मध्यस्थ नासा-प्रवर्ध के गभीर पृष्ठ से निकलने वाला एक प्रक्षेप है। प्रक्षेपो की सयुक्ति सामने से पीछे को होती है।

खण्ड तालु (cleft palate)

कई प्रकार के विदलित तालु माने जाते है (1) अपूर्ण—(क) अयुक्त या द्विशिख ऊवूला (bifid uvula), (ख) विदर, कोमल तालु मे सीमित, (ग) कोमल तालु का तथा कठिन तालु के अश का विदर, (2) कोमल तथा कठिन दोनो तालुओ का विदर (क) एकपार्श्वी (unipartite) हो सकता है, जब विदर पुरो-ऊर्ध्वहनु के केवल एक ओर से जाकर तालु के विदर मे मिल जाय, अथवा (क) द्विपार्श्वी हो, जब पुरोर्ध्वहनु के दोनो ओर विदर हो और वे तालु विदर से सयोजन करते हो।

यह विरूपता प्राय खण्डोष्ठ के साथ होती है, कभी-कभी पृथक् भी होती है। विदलित तालु से नासापट स्वतन्त्र हो अथवा वह तालु की त्रुटि के किसी एक किनारे मे जुडा हो। इस विरूपता के रोगियो को दो प्रकार का कष्ट होता है एक, आहार का नासिका मे प्रत्यावहन, और दूसरा, नासास्वर (nasal twang), जिससे उच्चारण मे नासा से शब्द निकलता मालूम होता है।

चिकित्सा

विरूपता को ठीक करने का अत्युपयुक्त समय बालक के बोलना प्रारम्भ करने से पूर्व, लगभग 18 मास की आयु है।

यदि खडित ओष्ठ भी हो तो तालु के अग्रउपान्त की त्रुटि की श्लेष्म-पर्यस्थि के एक प्रालम्ब को उलटकर, खडित ओष्ठ के सन्धान के समय ही उसकी पूर्ति कर देना उचित है।

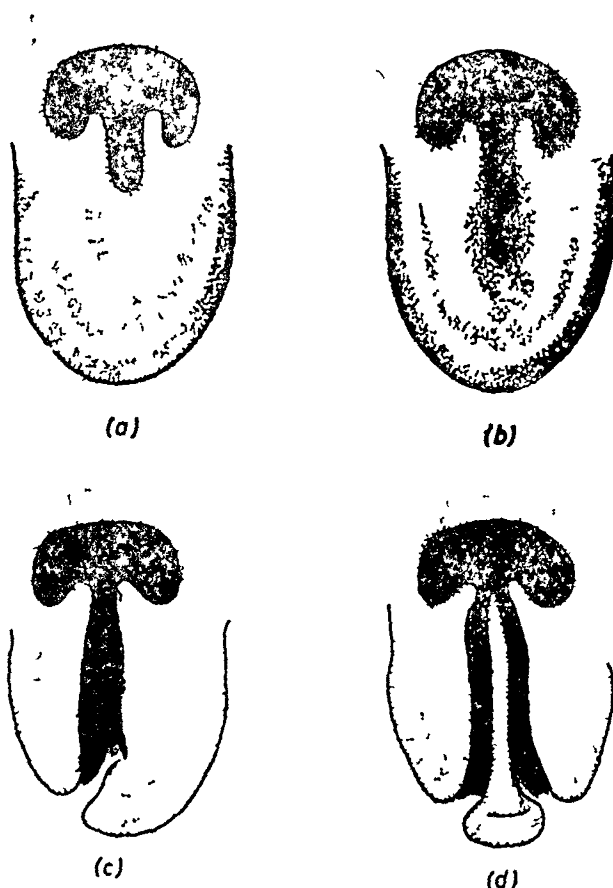
बालक को शस्त्रकर्म के कुछ दिन पूर्व अस्पताल मे प्रविष्ट करके उसको नासिका द्वारा आहार ग्रहण करने आदि आयोजनो का अभ्यस्त करना आवश्यक है, जिनका शस्त्रकर्म के पश्चात् उपयोग किया जाएगा।

शस्त्रकर्म का उद्देश्य

विदार के किनारो के बीच के अन्तर की पूर्ति, कोमल तालु की गतिशीलता

को अक्षुण्ण बनाये रखना और पश्च ग्रसनी भित्ति को आगे को बढाना, जिससे नासाग्रसनी (nasopharynx) को मुखग्रसनी (oropharynx) से पूर्णतया बन्द किया जा सके, शस्त्रकर्म का लक्ष्य है ।

शस्त्रकर्म (operation)—तालु की त्रुटि की पूर्ति तथा अन्य उद्देश्यो की उपलब्धि के लिए कई विधियो का वर्णन किया गया है जो प्रयोग की जाती है। इनमे से एक मे चार प्रालम्ब विधि (four-flap method) का उपयोग किया जाता है। तालु के दोनो पार्श्व के परिसरो पर एक-एक मोचक छेदन (release



चित्र 9 खण्डतालु के प्ररूप (a) अपूर्ण, कोमल तालु मे सीमित, (b) कोमल तालु और अगत कठिन तालु मे विदार (c) पूर्ण एकपार्श्वी विदर, (d) पूर्ण द्विपार्श्वी विदर ।

cut) किया जाता है और एक निर्यक छेदन कोमल और कठिन तालु के विदार मे सगम स्थान से मोचक छेदन तक किया जाता है। इस प्रकार बने हुए

चार श्लेष्म-पर्यस्थि के प्रालम्वो को अस्थि पर से पृथक् किया जाता है। उनको तनिक पीछे को हटाने (push back) से उनके किनारे मिल जाते है। उनके किनारो को काटकर मिलाया जाता है और नासा पट की श्लेष्म-पर्यस्थि से प्रालम्व उठाकर उनके साथ सी दिया जाता हे जिससे त्रुटि की पूर्ति हो जाती है।

शस्त्रकर्म का एक विशेप चरण कोमल तालु को स्वतन्त्र करना है। कठिन तालु की पश्च धारा से कोमल तालु को पृथक् करने के लिए अधोश्लेष्मिक मार्ग (submucons approach) द्वारा पहुँचा जाता है। स्पर्श से पक्षाभ अकुश को प्रतीत कर उसको तोडने से तालु तानिका (tensor paliati) निष्क्रिय हो जाती है। वृहत् तालु धमनी (greater platine art) को बचाना आवश्यक है, वह प्रालम्वो मे रक्त पहुँचाती है। मुख-ग्रसनी सँवरणी क्रिया-विधि (oropharyngeal sphincter mechanism) की उत्तम क्रिया के लिए, साथ ही, पश्च ग्रसनी भित्ति को आगे को वढाना आवश्यक है। इसके लिए पश्च ग्रसनी भित्ति मे एक ओर से दूसरी ओर को एक गहरा क्षैतिज छेदन किया जाता है ओर उसके किनारो को ऊर्ध्वाधर रेखा (vertical line) मे सिया जाता है जिससे पश्च भित्ति मे एक कटक (ridge) उठ जाता हे।

उपलव्ध न्यूनताएँ (Acquired Defects)

तालु की उपलव्ध न्यूनता उसके गमा द्वारा विनाश से उत्पन्न हो सकती है। वह सहज या उपार्जित सिफिलिस का लक्षण हो सकती है। रेडियम अनुप्रयोग का फल भी तालु न्यूनता हो सकती है। प्रतिसिफिलिसी चिकित्सा और रेडियम का प्रयोग करने से उसको रोका जा सकता है। उपस्थित त्रुटि को एक डाट से या कृत्रिम दन्तावलि (denture) से बन्द किया जाता है।

दन्तविद्रधि या एप्यूलिस तालु को आक्रान्त कर सकते है।

अर्बुद और पुटिकाएँ

सूक्ष्म अकुरार्वुद, रक्तवाहिकार्वुद और मिश्रित अर्बुद तालु मे होते है। वहाँ श्लेष्मिक पुटियाँ भी हो सकती हे।

तालु का कार्सीनोमा

तालु मे कार्सीनोमा साधारण है, विशेपकर भारत के उन भागो मे जहाँ लोग सिगार को, उनके जलते हुए सिरे को मुख के भीतर रखकर पीते है। यहाँ

भी वैसे ही स्थूल लक्षणो तथा सूक्ष्मदर्शी रचना वाले प्रस्प होते हैं जिनका मुख के कार्सीनोमा मे वर्णन किया गया है। विक्षति (lesion) दीर्घ काल तक श्लेष्मिक कला मे सीमित रहती है, अस्थि आक्रान्त नही होती। प्रादेशिक पर्वो मे उसका विसार देर से होता है। अन्त मे वृद्धि उलूखल, कपोल, नीचे की अस्थि, कोटर तथा नासागुहा मे फैल सकती है।

तालु के अर्वुद या वृद्धियो की कोटर मे तालु मे विस्तृत हुई वृद्धि मे निदान करने मे कठिनाई हो सकती है।

चिकित्सा

विक्षति के नीचे की अस्थि के समीप होने पर भी रेडियम द्वारा पृष्ठ किरणन (surface irradiation) अभीष्ट चिकित्सा है। अथवा, डायाथर्मी मे वृद्धि तथा चारो ओर के ऊतक का उच्छेदन किया जाता है। अस्थि के निकाल देने से उत्पन्न न्यूनता को कृत्रिम दन्तावलि से वन्द किया जाता है।

आदर्श प्रक्रिया उपर्युक्त के पश्चात् पर्वो का, आगे चलकर प्रकीर्णन के कारण, समूह व्यवच्छेदन है। जिन रोगियो मे पर्व वर्धित नही होते उनमे पर्वो के परिस्पर्श्य (palpable) होने तक इस क्रिया को विलम्बित किया जा सकता है।

लसीका ग्रन्थियाँ (Salivary Glands)

पैरोटिड (parotid), अव-अधोहनु (submandibular) और अधोजिह्वा, (sublingual), ये तीन मुख्य लाला ग्रन्थियाँ है : उनकी वाहिनियाँ—स्टेन्सन वाहिनी, व्हार्टन वाहिनी और रिविनस की वाहिनी मुख मे खुलती है। इनके अतिरिक्त लघु लाला ग्रन्थियाँ मुख तल, ओष्ठ, मसूडो, कठिन और कोमल तालु, टौंसिल प्रदेश और जिह्वा मे फैली हुई है। अवधारणपुटी (retention cysts) और मिश्रित अर्वुद भी मुख्य लाला ग्रन्थियो मे मिलते हैं। कभी-कभी वे सहायक लाला ग्रन्थियो मे भी पाये जाते हैं।

पैरोटिड (कर्णपूर्व) ग्रन्थि (Parotid Gland)

शल्य-सम्बन्धी शरीर रचना (surgical anatomy)

पैरोटिड ग्रन्थि सांचे मे ढाली हुई के समान दीखती है, जो कर्ण के नीचे कर्णमूल (mastoid) प्रवर्ध और अधोहनु की प्रशाखा (ramus) के वीच के अन्तर

को भरे रहती है। यह अन्तर बाहरी पृष्ठ पर विस्तृत है किन्तु भीतर जाकर सकुचित हो गया है। इस अन्तर मे गहराई पर शर-प्रवर्ध (styloid process) है जिस पर पेशी लगी हुई है। ग्रन्थि ग्रीवा के अग्र त्रिभुज के ऊर्ध्व भाग तक विस्तृत है (यह ग्रैव भाग समूह व्यच्छेदन मे निकाल दिया जाता है)। ग्रन्थि अपनी उपर्युक्त सीमा से, विशेषकर अग्र ओर को, बाहर निकल जाती है। उसके अग्र ओर के ऊर्ध्वांग से एक भाग निकला हुआ है जो अनेक बार पृथक् मिलता है। यह सहायक पैरोटिड (कर्णपूर्व) ग्रन्थि (accessory parotid) कही जाती है इसको पहले सोकिया पैरोटिडिस (socia parotidis) कहते थे।

ग्रन्थि गभीर ग्रैव प्रावरणी से आवेष्ठित है। प्रावरणीकृत आवरण सघन है, इस कारण ग्रन्थि के शोथ से तनाव बढने के कारण वेदना बहुत होती है। इसी कारण ग्रन्थि की विद्रधि मे स्पर्श तरँग (fluctuation) बहुत काल तक प्रतीत नही होती। किन्तु विद्रधि के शस्त्र-कर्म के लिए तरग की प्रतीक्षा मे विलम्ब न करना चाहिए। ग्रन्थि मे होकर निम्न सरचनाये जाती है (1) आनन तन्त्रिका (facial nerve) और उसकी शाखाये, (2) शिरा-जालिका जिसमे सामान्य आनन शिरा तथा ग्रीवा शिरा (jugular vein) से शाखाये आती हैं, और कुछ और गहराई पर बाह्य कैरोटिड धमनी (ext carotid artery) का अतिम भाग स्थित है जहाँ वह अन्तिम शाखाओ मे विभक्त होती है। इन तन्त्रिकाओ और शिराजाल तथा प्रावरणी से एक समतल (plane) बन जाता है जो प्रावरणी-शिरा (fascio-venous plane) तल कहा जाता है। ग्रन्थि का कुछ भाग इस समतल से ऊपर, उपरिस्थ प्रावरणी (superfcial falial), भाग, और कुछ भाग प्रावरणी के नीचे, अब प्रावरणी (subfascial) भाग, रहता है।

इस, सहज मे पहिचाने जाने वाले समतल का उपरिस्थ सरक्षी पैरोटिड ग्रन्थि उच्छेदन (superficial conservating parotidectomy) करने मे लाभ उठाया जाता है जिसमे आनन तन्त्रिका को हानि नही पहुचती। शल्यकर्म मे ग्रन्थि के अग्र ओर से निकलने वाली आनन तन्त्रिका की शाखाओ का अनुसरण करके अथवा शरकर्णमूल रन्ध्र (stylomastoid foramen) से निकलती हुई स्वय आनन तन्त्रिका के प्रकाड का उसके ग्रन्थि मे प्रविष्ट होने तक अनुसरण द्वारा उपर्युक्त समतल को खोज लिया जाता है। निकलने के स्थान पर तन्त्रिका को स्पष्ट करने के लिए कुछ सर्जन कर्णमूल प्रवध (mastoid process) को छैनी (chisel) से धीरे-धीरे काट देते है। बाह्य ग्रीवा शिरा (ext jugular vein) की ग्रन्थि से आने वाली शाखा तक उसका अनुसरण करके

भी समतल का निश्चय किया जा सकता है। सम्पूर्ण पैराटिड ग्रन्थि उच्छेदन के लिए वाह्य कैरोटिड धमनी का, ग्रन्थि मे प्रविष्ट होने के पूर्व, वधन करना होगा और आनन तन्त्रिका की भी वलि देनी होगी।

ग्रन्थि के स्राव का पैरोटिड वाहिनी (parotid duct) सवहन करती है जो ग्रन्थि की अग्र धारा के ऊर्ध्व भाग से निकलती है। दातो को वन्द कर लेने पर चर्वणिका पर से जाती हुई वाहिनी का परिस्पर्शन (palpatian) किया जा सकता है। मुँह के भीतर से उसको प्रतीत करना और भी सरल है। वाहिनी मुख के भीतर ऊर्ध्व द्वितीय चर्वणक दाँत (molar) के सामने खुलती है और आनन पर के अभिघातो मे क्षत हो सकती है। इस वाहिनी का अग-रेखाकन (surface marking) अन्तरातुगक भगिका (intertragic notch) से ऊर्ध्वोष्ठखात (philtrum) के मध्य तक खिची रेखा का मध्य तृतीयाश है। कर्णगडिका (otic ganglion) से निकलने वाले स्रावप्रेरक (secretomotor fibres) ततु पल्लविका-शखतन्त्रिका (anriculotemporal nerve) द्वारा ग्रन्थि मे पहुँचते हैं। दुश्चिकित्स्य पैरोटिड नाल व्रण (intractable parotid fistula) के लिए पल्लविका-शखतन्त्रिका का अपदीर्णन (avulsion) किया जाता है। लाला का सतत स्राव वाहिनी को स्वच्छ करता रहता है। स्राव के कम हो जाने पर आरोही सक्रामी पैरोटिड शोथ (ascending infective parotitis) हो सकता है। लाला-चित्रण (sialography) अन्वेषण की उत्तम विधि है। वाहिनी मे किसी रजक को प्रविष्ट करके उसके एक्सरे चित्र लिये जाते है।

जन्मजात (सहज) लाला स्रावरोध (Congenital Sialectasis)

सूक्ष्म वाहिनियो के विस्फार से ग्रन्थि मे सूजन हो जाती है जो आहार के समय वढ जाती है, लाला चित्रण द्वारा निदान किया जाता है। उपरिस्थ पैरोटिड ग्रन्थि उच्छेदन (superficial paratidectomy) इस की चिकित्सा है।

स क्र म ण
(Infection)

तीव्र कनफेड, मम्प्स (mumps)

तीव्र जनपदिक (acute epidemic parotitis) पैरोटिडशोथ मुख्यतया वालको का रोग है, किन्तु कभी-कभी वयस्को मे भी पाया जाता है। वह ससर्गज होता है। उसमे दोनो ओर की ग्रन्थियाँ सूज जाती है, ज्वर होता है

और निगलने मे कष्ट होता है, किन्तु पूयोत्पादन नही होता और रोग स्वय ही शान्त हो जाता है। कभी-कभी तीव्र अग्न्याशय शोथ (acute penereatitis) और वृषण शोथ (orehitis) उपद्रव हो जाते है।

तीव्र पैरोटिक (कर्णपूर्व) ग्रन्थि शोथ (acute parotitis)

तीव्र पैरोटिड ग्रन्थिशोथ मे वहुधा पूयभवन हो जाता है। ग्रन्थि मे सक्रमण सदा मुह से स्टेन्सनवाहिनी द्वारा पहुचता है। वह उदर के शस्त्रकर्मो के पश्चात् वहुधा उपद्रव के रूप मे होता है। उसकी उत्पत्ति के कारण मुख शुद्धि की उपेक्षा, दन्त पूयता (dental sepsis), मुखपाक, निर्जलीकरण (dehydration) के कारण ग्रन्थि के स्राव का ह्रास और शस्त्रकर्म पश्चात् एट्रोपीन का प्रयोग हैं। स्थलान्तरित (metastatic) रूप का भी वर्णन किया गया है, किन्तु वह अत्यन्त विरल है। कारक जीवाणु साधारणतया स्टेफिलोकोकस हीमोलिटिकस होता है और कभी-कभी न्यूमोकोकस। शोथयुक्त ग्रन्थि मे कई लघु विद्रधियाँ वन सकती है।

तनाव के कारण रोगी को स्थानिक तीव्र वेदना होती है। उस स्थान पर ऊष्मा और स्पर्शासहता (tenderness) प्रतीत होती है। स्टेन्सनवाहिनी का मुख लाल और शोथयुक्त हो सकता है। उससे पूय की बूंदे निकलती दीख सकती हे। स्पर्शतरग (fluctuation) विलम्बित चिह्न है। जी मिचलाना, शिरो-वेदना, शीतकम्प (rigor) और ज्वर आदि सामान्य लक्षण उपस्थित हो सकते है।

वहुरूपीकेन्द्रकी श्वेतकोशिकावहुलता (polymorphonuclear leucoeytotis) उपस्थित होती है। ग्रीवा घनास्रोशिराशोथ (jugular thromhophlebitis), शख-अधोहनु सँधिशोथ (temporomandibular arthritis), वाह्य कर्णशोथ (otitis externa), परिसारी ग्रैव सयोजी ऊतकशोथ (spreading cervical cellulitis) और मध्यस्थानिकाशोथ (mediastinitis) आदि भयकर उपद्रव उत्पन्न हो सकते है। कैरोटिड रक्तस्राव (carotid haemor hage), कठ-द्वार शोफ (oedema of glottis) और निमोनिया (preumonia) घातक उपद्रव होते है।

चिकित्सा

रोगनिरोध के लिए मुखशुद्धि, दन्तपूयता की चिकित्सा, घूंट-घूंट जल पिला कर मुख शुष्कता को रोकना और च्यूइग गम अथवा अन्य चूषिकाओ (troches)

द्वारा लालास्राव की वृद्धि उचित उपाय हैं।

सरक्षी चिकित्सा प्रतिजीवियो, साधारणतया पेन्सिलिन, द्वारा की जाती है।

शल्यानुसार, स्पर्श तरग प्रतीत होने से पूर्व छेदन आवश्यक है। एक ऊर्ध्वाधर पुरोपल्लव (preauricular) वलि (creasc) मे त्वचागत छेदन करने के पश्चात् त्वचा के किनारो को उठाकर आनन तत्रिका की शाखाओ की दिशा मे विद्रधि के उभार पर की प्रावरणी मे कई लघु क्षैतिज छेदन किये जाते है और नाडी व्रण सदश (sinus foreeps) को प्रविष्ट करके उसके फलो को खोलकर पूय को निकाल दिया जाता है (हिल्टन विधि)।

पैरोटिड ग्रन्थि की अश्मरी (parotid calculi)

इस ग्रन्थि के स्राव के पतले और जलीय होने के कारण अधोहनु ग्रन्थि की अपेक्षा इस ग्रन्थि मे अश्मरियाँ बहुत कम होती है।

भोजन करने के साथ ग्रन्थि का बढ जाना रोग का निश्चयात्मक है। साधारण एक्स-रे चित्रण तथा लाला एक्स-रे चित्रण से अश्मरी दीख जाएगी। जब अश्मरी मुह मे स्थित मालूम हो तो श्लेष्मिक कला मे छेदन करके उसे निकाला जा सकता है। यदि वह वाहिनी के चर्वणिका पर के भाग मे हो तो उसको मुह की ओर धकेलने का प्रयत्न किया जाय। यदि इसमे सफलता न मिले तो बाहिर से छेद द्वारा वाहिनी को स्पष्ट करके अश्मरी को निकाला जाय और तब वाहिनी को सावधानी से सी दिया जाय।

चिरकालीन और आवर्ती पैरोटिड ग्रन्थि शोथ (chronic and relapsing parotitis)

आहार करते समय रोगी को ग्रन्थि के प्रदेश मे वेदना प्रतीत होती है। लाला चित्रण से वाहिनी मे अवरोध या निकोच (stricture) दीख सकता है।

वाहिनी के विस्फार (dilatation) और ग्रन्थि की मालिश (messagc) से चिकित्सा की जाती है।

पैरोटिड नालव्रण (parotid fistula)

आभ्यन्तर नालव्रण (internal fistula)—अकष्टकर होने के कारण इनके लिये कुछ भी करने की आवश्यकता नही होती।

वाह्य नालव्रण (external fistula)

ग्रन्थि के नालव्रण ग्रीवा के समूह व्यवच्छेदन (mass dissection) पैरोटिड विद्रधि, दुर्घटनाजन्य आघात अथवा अश्मरी निकालने के लिए किये गये ग्रन्थि मे छेदन से उत्पन्न हो सकते है। केवल थोडा सा लाला निकल आता है और वहुत वार नालव्रण स्वत वन्द हो जाता है। यदि दशा दु साध्य हो जाय तो गभीर एक्सरे अनुप्रयोग (deep x-ray application) करना उचित है।

वाहिनी के नालव्रण—ये स्वत बन्द नही होते। वे कष्टकर होते हे क्योकि भोजन का विचार आते ही अथवा उसकी सुगन्ध या स्वाद का ध्यान आते ही लाला निकलने लगता है।

चिकित्सा की दृष्टि से नालव्रणो को पुरोचर्विणका (premesseteric) और चर्वणिका (masseteric) मे वर्गीकृत किया गया है।

पुरोचर्वणिका नालव्रणो मे भीतर की ओर (आभ्यन्तर) द्वार बनाना चिकित्सा का उद्देश्य होता है जिससे वाह्य नालव्रण वन्द हो जाय। एक विधि मे सुई मे सीवन पदार्थ (कैटगट) को पिरोकर दो वार नालव्रण मे होकर उसको मुख मे निकाला जाता है और गाठ को कस कर बाँध दिया जाता है जिससे वीच के ऊतक गल (necrosis) जाते हे।

चर्वणिका पर के नालव्रण की चिकित्सा कठिन होती है। कई विधियाँ प्रयुक्त की गई है। वाहिनी के दोनो भागो को व्यवच्छेदन द्वारा स्पष्ट करके प्रान्त का प्रान्त से सम्मिलन करना, जो आदर्श चिकित्सा है, सदा सभव नही होता। न्यूमेन और सीब्रुक (neuman, seebrook) के शस्त्रकर्म मे एक मुडा हुआ (twisted) टैन्टेलम तार वाहिनी के दोनो भागो मे प्रविष्ट किया जाता हे जिससे दोनो भागो के पास आ जाने से नालव्रण के स्थान पर उनके वीच का अन्तर मिट जाता है। तार का सिरा मुह मे निकला रहता है और उसको धीरे-धीरे खीचकर कई सप्ताहो मे निकाल लिया जाता है। चिकित्सा मे सफल न होने पर गभीर एक्सरे द्वारा या पल्लवशख (auriculo temporal) तन्त्रिका का अपदीर्णन करके लाला स्रवण को सुखा दिया जाता है।

मिकूलिक का रोग (mikulicz's disease)

यह एक सुदम दशा है जिसमे एक या अधिक लाला ग्रन्थियो का चिर-कालीन विवर्धन (chronic enlargement) हो जाता है। कर्णपूर्व और अश्रु (lacrimal) ग्रन्थियो का भी विवर्धन होता है।

पैरोटिड अर्बुद (parotid tumours)

मिश्रित अर्बुद (mixed tumours)

पैरोटिड ग्रन्थि मे यह अर्बुद सबसे अधिक होता है। ऐसे ही मिश्रित ग्रन्थि अर्बुद अन्यत्र, जैसे अव अधोहनु ग्रन्थि, अधोजिह्वा ग्रन्थि, ओष्ठ, जिह्वा, कपोल, तालु, मुखभूमि (तल) और नासिका आदि मे हो सकते है। बहिर्जन-स्तर (ectoderm) और मध्यजन स्तर (mesoderm) दोनो से उत्पन्न सरचनाओ की इस अर्बुद मे उपस्थिति मानने के कारण इसको मिश्रित अर्बुद कहा गया था। किन्तु अब इस नामपद्धति (nomenclature) को अयुक्त समझा जाता है और अर्बुद को केवल बहिर्जन स्तरजन्य मानते है। उसके जिस रूप से उसकी मिश्रित उत्पत्ति समझी गई थी वह शुद्ध उपकलाजन्य अर्बुद के सगत है। मध्यजनस्तरोद्भूत उपास्थि क्षेत्र, जिनकी मिश्रित उत्पत्ति समझी जाती थी, वे वास्तव मे कूट उपास्थिमय पाये गये है जो उपकला कोशिकाओ के व्यपजनन का फल होते है।

विकृति (pathology)—स्थूलत (macroscopically) अर्बुद के आकार मे भिन्नता पाई जाती है। अर्बुद शिकणी (gritty) अथवा विचूर्ण्य (crumbling) पदार्थ का बना होता है जो सपीडित प्रसामान्य ग्रन्थिकृत (compressed normal gland) कूट सम्पुट (pseudocapsule) मे भरा रहता है। इस सम्पुट के कारण अर्बुद दृढ दिखाई देता है और उसका उन्मूलन (enucleation) सहज होता है। [वह उन्मूलन के पश्चात् लालास्रावी नालव्रण भी नही होने देता। काटने पर उसका परिच्छेद आर्द्र तथा लिसलिसा (slimy) होता है। सूक्ष्म परीक्षा से कूट सम्पुट से चारो ओर की प्रसामान्य ग्रन्थियो मे निकलते हुए उद्वर्ध (exerescenses) दिखाई देते है। ये ही, अर्बुद के उन्मूलन के पश्चात् बहुकेन्द्रिक पुनरावृत्ति (multicentric recurrence) के कारण मालूम होते है।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा आकृति या रूप मे बहुत भेद पाया जाता है। सतत प्राप्त लक्षण उपकला तत्त्व की किसी-न-किसी रूप मे उपस्थिति है—स्तम्भाकार (columnar), आधारी (basal), शल्की (squamous), गोलाभ (spheroidal), अथवा तर्कुरूपी (spindle shaped), किसी-न-किसी रूप मे उपकला तत्व उपस्थित होते हैं। कोशिकाएँ कूटम्यूसिन (pseudomucin) का स्रवण करती हैं जो उनको घेर लेती है जिससे मिक्सोमेटस या उपस्थिसम आकृति दिखाई देती है।

इस आकृति ही के अनुसार अर्बुद को अकुरकी (papillary cystadenoma) पुटिग्रन्थ्यर्बुद, मिक्सो-उपास्थि-ग्रन्थ्यार्बुद (myxo-chondro adenoma) आदि नाम दिये गये है। अर्बुद बहुत धीरे-धीरे बढता है और बडे आकार का होने मे कई वर्ष ले लेता है। चारो ओर कोई अन्त सरण (infiltration) नही होता और न स्थलान्तरण (metastasis) ही होता है। मन्द वृद्धि के कारण त्वचा यद्यपि फैल जाती है किन्तु उसमे व्रण होना असाधारण है और यद्यपि आनन तन्त्रिका का मार्ग विकृत हो सकता है किन्तु अगघात (palsy) नही होता।

नैदानिक लक्षण (clinical features)—एक वेदनाहीन, मन्दवर्धी वृद्धि पैरोटिड प्रदेश मे उपस्थित होती है जो वर्षो से, न कि महीनो से, बढ रही है। वृद्धि दृढ, कही-कही नरम, निश्चित सीमा वाली, समपृष्ठ की, कदाचित् पर्विल, (nodular) होती है, किन्तु ऊँची-नीची (craggy) नही होती।

कभी-कभी अर्बुद उपरिस्थ दिखाई देता है और मध्यम आकार (medium sized) का होने पर कर्णपालि को ऊपर को उठा देता है। अर्बुद के ग्रन्थि से स्वतन्त्र प्रतीत होने पर भी कर्णपूर्व ग्रन्थि के अर्बुद का निदान करने मे सकोच न करना चाहिए। अर्बुद का पूर्ण चलायमान होना और आनन तन्त्रिका के आक्रान्त होने के लक्षणो की अनुपस्थिति अर्बुद की सुदमता की सूचक है।

सापेक्ष निदान (differential diagnosis)—निम्न दशाओ को पैरोटिड अर्बुदो से विभिन्न करना आवश्यक है —

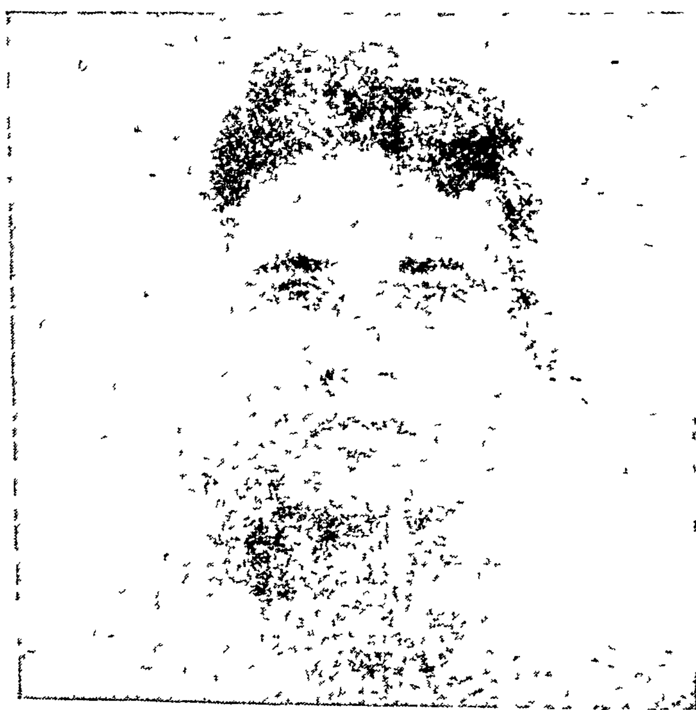
(1) पैरोटिड प्रावरणी के बाहर की उपरिस्थ वृद्धियाँ या सूजन, त्वग्वसापुटी, अवस्त्वक वसार्बुद, तन्त्रिका ततु अर्बुद, आदि, (2) पैरोटिड प्रावरणी के भीतर की लसीका पर्वो की वृद्धि और ऊर्ध्व गभीर ग्रैव लसीका ग्रन्थि विकृतियाँ (lymphadenopathies), (3) ग्रन्थि की अन्य दशाएँ—पुनरावर्ती पैरोटिड ग्रन्थि शोथ (recurrent parotitis), चिरकारी पैरोटिड ग्रन्थि शोथ, मिकूलिक सलक्षण (Mikulicz syndrome), (4) विरल दशाएँ—प्रसामान्य सहायक पैरोटिड, गिल पुटिकाएँ (bronchial cyst), पार्श्व ग्रसनी हर्नियाँ।

चिकित्सा

अर्बुद की सामान्य उन्मूलन द्वारा चिकित्सा से विद्वानो को सन्तोष नही है। वे उन्मूलन के साथ कूट सम्पुट के चारो ओर के प्रसामान्य ऊतक के भी उच्छेदन के पक्ष मे है। आजकल उपरिस्थ पैरोटिड ग्रन्थि उच्छेदन (superficial parotidectomy) का समर्थन किया जा रहा है, जहाँ अर्बुद उपरिस्थ भाग मे हो, अथवा सरक्षी (conservative) उच्छेदन किया जाता है जिसमे

आनन तन्त्रिका को बचाना आवश्यक है। यह माना जाता है कि शस्त्रकर्म के पश्चात् किरणन अर्बुद की पुनरावृत्ति के रोकने मे सहायक होता है।

पहले से उपस्थित मिश्रित अर्बुद के दुर्दम हो जाने पर विस्तृत वादविवाद है। शस्त्रकर्म के पश्चात् निस्सन्देह कुछ अर्बुदों की पुनरावृत्ति होती है। किन्तु इनमे से अधिक पुनरावृत्तियाँ दुर्दम नही होती। अत्यन्त विरोधी मत भी प्रचलित है। एक मतानुसार सभी मिश्रित अर्बुद, आगे चलकर दुर्दम हो जाते है, अल्पकाल मे हो या दीर्घकाल मे। दूसरे मतानुसार दुर्दम अर्बुद प्रारम्भ ही मे दुर्दम होते है उनको प्रारम्भिक अवस्था मे सुदम कहना भूल है। कदाचित् सत्य इन दोनो के बीच मे है। मिश्रित अर्बुद दुर्दम रूप ले सकते है, किन्तु ऐसा थोडे रोगियो मे होता है।



चित्र 10

चित्र मे पैरोटिड अर्बुद का समान स्निग्ध पृष्ट और उसकी सुस्पष्ट सीमा दीख रही है।

दुर्दम पैरोटिड अर्बुद (malignant parotid tumour)

मिश्रित पैरोटिड अर्बुद दुर्दम बन सकता है अथवा वह एडिनोकार्सीनोमा ही प्रारम्भ होता है। उपर्युक्त अनुसार, मिश्रित अर्बुद के दुर्दम रूप लेने मे

सन्देह प्रकट किया गया हे (मिश्रित अर्बुद, जो दुर्दम हो जाता है, प्रादेशिक लसीका पर्वो मे विस्तार नही करता)। अर्बुद के आकार या वेदना मे यदि अकस्मात् वृद्धि हो, वह स्थिर या आसजित हो जाय, आनन तन्त्रिका आक्रान्त हो अथवा द्वितीयक ग्रन्थियाँ (पर्व) वर्धित हो जायँ तो दुर्दमता का सन्देह करना चाहिए। दुर्दम अर्बुद आसजित हो जाते है। यदि आनन तन्त्रिका आक्रान्त हो जाय, और लसीका पर्व बढकर आसजित और कठोर हो जाँय तो मिश्रित अर्बुद के दुर्दम हो जाने का सन्देह करना चाहिए।

चिकित्सा

शस्त्रकर्म योग्य होने पर, सम्पूर्ण पैरोटिड उच्छेदन किया जाता हे।

उच्छेदन के लिए, ग्रन्थि मे प्रविष्ट होने के पूर्व बाह्य पैरोटिड धमनी का बन्धन (ligature) और आनन तन्त्रिका की बलि आवश्यक है। ग्रन्थि का पूर्ण स्पष्टीकरण और पर्याप्त छेदन भी अनिवार्य है। यद्यपि अर्बुद किरणन के प्रति सुग्राही नही हे तो भी शस्त्रकर्म के पश्चात् गभीर एक्सरे चिकित्सा की जाती है।

शस्त्रकर्म अयोग्य रोगियो मे शामक गभीर एक्सरे चिकित्सा उचित है।

निम्न अधोहनु ग्रन्थि
(Submandibular gland)

शल्य-सम्बन्धी शरीर रचना

नामानुसार अवअधोहनु ग्रन्थि अधोहनु की क्षेतिज काय के नीचे स्थित है। उसका एक भाग चर्वक कठिका के ऊपर और दूसरा उसके नीचे उससे ढका हुआ स्थित है। द्विहस्त परिस्पर्शन (bimanual palpation) द्वारा उसको अन्य सूजनो या वृद्धियो से पहिचाना जा सकता है।

ग्रन्थि गभीर ग्रैव प्रावरणी के एक स्तर के विभक्त होने से दो स्तरो द्वारा आवेष्ठित है।

लसीका पर्वों का अवअधोहनु पर्व समूह इस ग्रन्थि के सन्निकट सम्बन्ध मे रहता है। द्वितीयक दुर्दम विस्तार से ग्रीवा पर्वो के आक्रान्त होने का सन्देह होने पर समूह व्यवच्छेदन मे अवअधोहनु लाला ग्रन्थि का भी उच्छेदन किया जाता है। ग्रन्थि के गभीर भाग से व्हार्टन वाहिनी (wharton's duct) निकलकर मुखभूमि मे श्लेष्मिक कला के नीचे-नीचे जाती है और जिह्वा

वधनी के पार्श्व मे स्थित उत्सेध मे खुलती है। आनन धमनी (facial artery) ग्रन्थि की एक खातिका मे से जाती है और ग्रन्थि के पश्च ध्रुव के पास उससे घनिष्ठतया जुडी रहती है।

शस्त्रकर्म मे धमनी के ग्रन्थि मे प्रवेश करने के पूर्व और उसमे निकलने के पश्चात् वधन करने का परामर्श दिया गया है। ग्रन्थि का स्राव गाढा और पूयान (viscid) होता है, उसमे म्यूसिन अधिक होती है।

तीव्र लाला ग्रन्थि शोथ और नालव्रण
(Acute sialoadenitis and fistulae)

ये रोग विरल होते हैं।

अश्मरी (calculus)

अश्मरी पैरोटिड की अपेक्षा निम्न अधोहनु ग्रन्थि मे अधिक होती है और और प्राय वाहिनी में पाई जाती है। वह अडाकार होती है और कालसियम आकजेलेट और फास्फेट की बनी होती है। अश्मरी के कारण स्थानिक शोथ हो जाता है और भोजन करते समय अवअधोहनु प्रदेश मे वेदना और सूजन हो जाती है। कभी-कभी अश्मरी ग्रन्थि के भीतर भी होती है जिसने लाला ग्रन्थि शोथ (sialo-adenitis) के पुन -पुन आक्रमण होते रहते है।

निदान

एक्सरे चित्र मे मुखतल मे अश्मरी दिखाई देती है। सापेक्ष निदान लसीका सूजनो (lymph swellings) और लाला ग्रन्थि के अर्बुदो से करना होता है।

चिकित्सा—वाहिनी की अश्मरी मुह द्वारा छेदन से निकाली जा सकती है। कुछ मे ग्रन्थि का उच्छेदन करना आवश्यक हो सकता है।

मिश्रित अर्बुद—यद्यपि मिश्रित अर्बुद अवअधोहनु ग्रन्थि मे होता है, तो भी वह विरल है। उसके लक्षण वैसे ही है जैसे पैरोटिड ग्रन्थि मे। सापेक्ष निदान द्वितीयक दुर्दम ग्रन्थियो से और चिरकारी लाला ग्रन्थि शोथ से करना होगा।

चिकित्सा अवअधोहनु ग्रथि का पूर्ण उच्छेदन है।

अधोजिह्वा ग्रन्थि तथा अन्य लाला ग्रन्थियाँ
(Sublingual gland and other salivary glands)

अधोजिह्वा ग्रन्थि मे मिश्रित अर्बुद और श्लेष्मिक पुटी होती है।

अन्य लाला ग्रन्थियों मे भी ये पुटी और अर्बुद होते है। रेनुला इन ग्रथियो के श्लेष्मिक व्यपजनन (mucous degeneration) के सम्बन्ध मे मुखभूमि मे पाया जाता है।

मिकूलिज (mikulicz s disease) के रोग मे कई लाला ग्रन्थिया तथा अश्रु ग्रन्थि आक्रान्त होती है। रोग का वास्तविक रूप नही मालूम है। वह जालक-अन्त कला अर्बुदी दशा (reticulo-endothelial neoplastic condition) समझी जाती है। कुछ उसे सारकोइडोसिस (sarcoidosis) समझते है जहाँ लाला और अश्रुग्रन्थियो के विवर्धन के साथ लसीका पर्वों का विवर्धन तथा त्वचा और अस्थिक्षत (lesions) भी उपस्थित होते है। लाला ग्रन्थियो और अश्रु ग्रन्थि का विवर्धन दुर्दम लसीकार्बुद (lymphomas) मे भी मिल सकता है जैसे लिम्फोसारकोमा, होजकिन (hodgkin's) रोग आदि मे, और तब वह दशा मिकुलिज सलक्षण (mikulicz syndrome) कही जाती है।



6

कर्ण, नासिका और गले के रोग
(Diseases of the Ear, Nose and Throat)

ए सिन्हा (A Sinha)

विषय-प्रवेश

कान, नाक और गले के रोगो को सामूहित कर दिया गया है क्योकि ये प्रदेश शरीर रचनानुसार एक दूसरे मे मिले हुए है। इनके क्षेत्रो का उपकला (epithelial lining) आस्तर सतत (continous) है जिसमे एक ही साथ रोग परिवर्तन होते है।

इस प्रदेश की कुछ विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(1) ये विशेष ज्ञानेन्द्रियो के क्षेत्र हैं, अर्थात्, श्रवण, घ्राण और स्वाद के।

(2) कुछ अन्य कार्य भी यहाँ होते है, जैसे शरीर का संतुलन (balancing), पेशीतान का नियत्रण (regulation of muscle tone), निगरण, प्रश्वसित वायु का तापानुकूलन (conditioning of inspired air) आदि।

(3) इन प्रदेशो मे तन्त्रिका वितरण अत्यधिक है जिससे लघु विकारो का भी बोध हो जाता है और वे ध्यान आकर्षित करते है। अतर्मुखी (introspective) व्यक्तियो मे इससे मनोविक्षिप्ति (neurosis) उत्पन्न हो जाती है। उदाहरणस्वरूप, गले मे गोले (globus) की प्रतीति, कार्यात्मक स्वरहानि (functional aphonia), हिस्टीरियाजन्य बधिरता, विवरशोथ (sinusitis) के समान शिरोवेदना की प्रतीति, आदि।

(4) ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा ऊतक, अधिकतर शरीर पृष्ठ से कुछ दूरी पर स्थित है (मध्य कर्ण 3 6 सेमी०, मुखग्रसनी (orepharynx) 10 सेमी०, स्वरयन्त्र लगभग 15 सेमी०) वे नलिकाओ मे गहराई पर या गुहिकाओ मे स्थित है जहाँ प्रकाश नही है। उनकी परीक्षा के लिए

विशेष आयोजनो द्वारा, जैसे शिर पर लम्प (head lamp) लगाकर उन्हे, उनमे प्रकाश पहुचाना आवश्यक होता है। कर्णस्वरयन्त्रविद (otolaryngologist) के लिये शिर का लैम्प वैसा ही हे जैसा फिजीशियन के लिये स्टेथिस्कोप।

इन प्रदेशो की सफल परीक्षा के लिये विशेष उपस्कर (equipment) और विशेप परीक्षा विधियो की आवश्यकता होती है जिनका सामान्य ज्ञान विद्यार्थी तथा सामान्य चिकित्सक के लिए अभीष्ट है। कर्ण, नासिका और गले की प्रत्येक परीक्षा मे सर जौर्ज हम्फ्रे के शब्द स्मरण रखने योग्य है . प्रथम नेत्र अधिकतम, हाथ अल्पतम, और जिह्वा नही, अर्थात् नेत्रो का अधिकतम उपयोग करो, हाथो का भी थोडा उपयोग करो, जिह्वा का तनिक भी प्रयोग न करो।

आगे के पृष्ठो मे निम्न लक्ष्यो को सामने रखकर विषय का प्रतिपादन किया गया है।

(1) इन प्रदेशो के सामान्य रोगो के निदान और चिकित्सा के ज्ञान की प्राप्ति, विशेपकर नासिका और विवर रोगो के पश्चात् वधिरता और श्वसनीशोथ (bronchitis) तथा श्वसनिका विस्फार (bronchiectasis) आदि उपगमो (sequelae) के निरोध की दृष्टि से।

(2) गभीर लक्षणो और दशाओ को पहिचानना, जिससे विशेषज्ञो या अस्पताल की सहायता उपयुक्त समय से प्राप्त की जा सके।

(3) नासारक्तस्राव (epistaxis), नासा, कर्ण या गले मे आगन्तुक शल्य (foreign bodies), तीव्र श्वासावरोध (respirtory obstruction) आदि आपद्घटनाओ (emergency) की उपयुक्त चिकित्सा।

(4) स्वर यन्त्र, नासिका और वायु विवर आदि प्रदेशो मे दुर्दमता (malignancy) के प्रारम्भिक लक्षणो और चिह्नो को पहिचानना।

नासिका, परानासा विवर और नासाग्रसनी
(Nose, paranasal sinuses and nasopharynx)

शल्य सम्बन्धी शरीर रचना
(Surgical anatomy)

बाह्य नासिका

नासाग्र नासिका का शिखर है। उससे ऊपर नासामूल तक नासापृष्ठ विस्तृत है। स्तम्भिका (columella) नासाग्र से पीछे को और नीचे को ओष्ठ

तक जाती है। उसके दोनो ओर दक्षिण और वाम नासारन्ध्र है जो पार्श्व और नासा पक्ष (ala) से और नीचे भूमि (floor) से सीमित है।

वाह्य नासिका का पंजर दो नासास्थियो (nasal bones), ऊर्ध्वहन्वस्थियो के ललाट प्रवर्धो, दो-दो ऊर्ध्व और पार्श्व उपास्थियों और उपास्थिकृत नासाण्ट की अग्र धारा से निर्मित है। नासिका के प्रत्येक पार्श्व में ऊर्ध्व और अधोपार्श्व उपास्थियाँ है जिनके साथ एक या अधिक कण्टक-उपास्थियाँ (sesamoid cartilages) होती हैं। उपास्थियाँ आपस मे और अस्थियो से दृढ तान्तव ऊतक द्वारा जुडी रहती है।

आभ्यन्तर नासिका

नासापट (nasal septum) द्वारा नासिका दो गुहायो मे विभक्त है जो दक्षिण और वाम नासारन्ध्र (nostrils) है। पट अंशतः अस्थि और अंशत उपास्थि निर्मित है। अस्थियाँ ऊपर से नीचे की ओर ये हैं : ललाट कंटक, नासाशिखा, एथमाइड की लम्ब पट्टिका, सीरिका, ऊर्ध्वहनु शिखा, तालुका शिखा और जतूकास्थि की चंचु (rostrum of sphenoid)।

नासिका का अग्रनिम्न (anteroinferior) भाग उपास्थिकृत है और नासापट उपास्थि और निम्न नासा उपास्थियो के पट प्रवर्ध से बना है। पट सीधा कम ही होता है। वह प्राय किसी ओर को विचलित होता है।

नासा गुहिकाएँ

दोनो नासा गुहिकाएँ अग्रनासा रन्ध्र से पश्च रन्ध्र तक विस्तृत हैं। पश्च नासारन्ध्र या नासा द्वार (choamae) दो अण्डाकार, 2.5 से०मी० ऊँचाई और 1·25 से०मी० चौटाई के द्वार हैं। प्रत्येक गुहिका मे निम्नलिखित संरचनाएँ है —

(1) **छदि**—(छत) जिसका अग्र भाग एथमाइड की चालनीवत् पट्टिका (cribriform plate) का बना है, जिसके द्वारा घ्राण तन्त्रिका निकलती है और पश्च भाग जतूक वायुविवर की अग्र भित्ति से बनता है।

(2) **तल या भूमि** (floor) का अग्र भाग ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालु प्रवर्ध (platine process) और पश्च भाग तालुका अस्थि (palatine) के क्षैतिज (horizontal) प्रवर्ध से बना है।

(3) **अभिमध्य भित्ति** नासापट से बनती है।

(4) पार्श्व भित्ति मे तीन ताड़ (shelf) के समान संरचनाएँ है जो अध, मध्य और ऊर्ध्व शुक्तिकाएँ (turbinates) कहलाती है। अध शुक्तिका पृथक् अस्थि है जिसके नीचे अध कुहर (meatus) है। मध्य और ऊर्ध्व शुक्तिकाएँ एथमाइड का भाग है। मध्य कुहर (meatus) अध और मध्य शुक्तिकाओ के बीच मे स्थित है। यह नासिका का बहुत प्रमुख भाग है। इसमे अर्धचन्द्राकार छिद्र (semilunar hiatus) है जिसमे ललाट, ऊर्ध्वहनु तथा अग्र और मध्य एथमाइडी वायु विवरो के द्वार है। ऊर्ध्व कुहर मध्य और ऊर्ध्व शुक्तिकाओ के बीच मे है और इसमे पश्च एथमाइडी विवर खुलते है। जतूक एथमाइडी दरी (spheno ethmoidal recess) ऊर्ध्व शुक्तिका के ऊपर स्थित है और इसमे जतूक वायु विवरो का द्वार है। शुक्तिका पिंडो मे रक्त-संचार बहुत है और इनकी उत्थानी (erectile) ऊतक के समान रचना है। ये प्रश्वसित वायु को गरम, आर्द्र और स्वच्छ करने का काम करती है, जिसके पश्चात् वायु ग्रसनी की श्लैष्मिक कला तक पहुँचती है।

घ्राण संज्ञा से सम्बन्धित क्षेत्र के अतिरिक्त समस्त नासा गुहिका रोमक-उपकला (ciliated epithelium) से आच्छादित है। यह उपकला कृत आन्तर विवरो के रन्ध्रो द्वारा उनके कलाकृत आन्तर से मिला हुआ है। रोमिकाएँ (cilia) श्लेष्मा मे डूबी रहती है जो उनको कम्बल की भाँति ढँके रहता है। इनके द्वारा धूल तथा अन्य कणीय पदार्थ नासाग्रसनी मे चले जाते हैं जहाँ से वे आमाशय मे पहुँचते है।

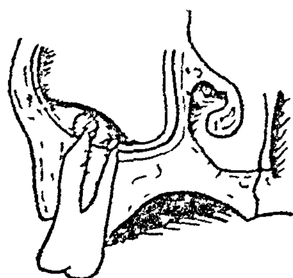
परानासा विवर (Paranasal sinuses)

परानासा विवर साधारण गुहिकाएँ है जो ललाट के निम्न भाग, कपोल और नासासेतु के पीछे स्थित अस्थियो मे वर्तमान है। प्रत्येक ओर चार-चार वायु विवर स्थित है जो छिद्रो द्वारा नासागुहा से संयोजन करते है। वे ललाट, ऊर्ध्वहनु (अथवा कोटर), एथमाइडी और जतूक विवर कहे जाते है। निदानानुसार ये अग्र और पश्च समूहो मे बाँटे गये है। अग्र समूह मे ललाट, ऊर्ध्वहनु और अग्र तथा मध्य एथमाइडी वायुविवर है। पश्च समूह मे पश्च एथमाइडी तथा जतूक विवर है।

ललाट विवर (frontal sinuses)

ललाट विवर जीवन के सातवे वर्ष मे बनते है। वे कदाचित् ही कभी

समान होते है और कभी-कभी तो अनुपस्थित होते है। विवर की अस्थिकृत भित्तियो मे भूमि (तल) सबसे पतली होती है और नेत्रगुहा की छदि या भाग बनाती है। ललाट-नासा वाहिनी (frontonasal duct) द्वारा वे मध्यकुहर मे खुलते है।



चित्र 11
कोटर (antrum) की श्लेष्मिक कला के नीचे स्थित शिखर विद्रधि (Reproduced from the diseased of Ear, Nose & Throat, by, W G. Scott Brown, London Butterworth)

ऊर्ध्वहनु विवर (maxillary sinuses)

ये विवर नेत्रगुहाओ के नीचे और नासागुहा के पार्श्व मे स्थित है। ये सबसे बडे विवर है। इनकी भूमि नासिका से नीची है और ऊर्ध्वहनु के अग्र चर्वणक और चर्वणक दाँतो की मूलो से विवरो का घना सम्बन्ध है। इन दाँतो की शिखर-विद्रधि (apical abscess) से इनमे सक्रमण पहुँच सकता है। जिस छिद्र द्वारा ये विवर नासिका से सयोजन करते है वह उसकी अभिमध्य भित्ति मे ऊँचा स्थित है जिससे विवर के भीतर एकत्र द्रव का भली-भाँति निकास नहीं हो पाता।

एथमाइडी विवर (ethmoidal sinuses)

एथमाइडी विवर, या लेबिरिन्थ अन्य विवरो से अधिक जटिल है। प्रत्येक विवर की पार्श्व भित्ति नेत्रगुहा की अभिमध्य भित्ति है। इसके ऊर्ध्व भाग घ्राण तन्त्रिका के निकट सम्बन्ध मे स्थित है। मध्य शुक्तिका के तल से ऊँचा स्थित यह भयकर क्षेत्र कहा जाता है, क्योकि यहाँ के आघातो या शस्त्रकर्मो से मस्तिष्कावरणो मे सक्रमण पहुँच सकता है।

जतूक विवर (sphenoidal sinuses)

ये नासागुहिका के ऊर्ध्व पश्च भाग मे स्थित है। दोनो ओर के विवर असममित (asymmetrical) हो सकते है। इनके रन्ध्र भी ऊर्ध्वहनु विवर की भाँति ऊँचे स्थित होते है।

नासाग्रसनी (nasopharynx)

नासाग्रसनी ग्रसनी का वह भाग है जो कोमल तालु के तल से ऊपर स्थित है। वह नासिका के पश्च द्वार के ठीक पीछे है। उसकी छदि पश्च कपालास्थि के आधार भाग और जतूकास्थि के मिलने से बनती है। छदि और पश्चभित्ति पर ग्रसनी टॉन्सिल रहते हैं जिनको साधारणतया एडीनाइड (adenoids) कहा जाता है। पार्श्व में यूस्टेकी नली (eustachian tubes) के द्वार हैं। पार्श्व दरियाँ, (recesses) जिनमे ये नलियाँ खुलती हैं रोजेनम्योलर (rosen-muller) के खात कहलाती है।

नासा-वायुमार्गों और नासाग्रसनी की परीक्षा (Examination of Nasal air Passages and Nasopharynx)

नासिका के रोग के रूप को समझने के लिए परीक्षा की प्रविधि (technique) को समझना आवश्यक है। प्रथम आवश्यकता उत्तम प्रकाश है, सो भी शिर-लम्प से। नासिका के अग्र और पश्च भागो की परीक्षा को अग्र तथा पश्च नासादर्शन (rhinoscopy) कहा जाता है।

अग्र नासादर्शन (anterior rhinoscopy)

अग्र नासादर्शन मे प्रकाश को भली-भाँति नाक पर डालकर प्रथम वाह्य आकृति और त्वचा देखी जाती है। फिर नासिका के भीतर प्रकाश डालकर जहाँ तक बिना स्पेकुलम के दीखता है देखा जाता है। नासापट के अग्र निम्न भाग को जहाँ लिटिल (little) का क्षेत्र स्थित है, नासाग्र को तनिक उठाकर देखा जा सकता है। फिर किसी उपयुक्त स्पेकुलम को प्रविष्ट करके नासारन्ध्रो को विस्फारित किया जाता है जिसमे अध और मध्य शुक्तिकाओ और उनके कुहरो के भाग तथा नासापट का अश दिखाई पडता है। यदि कोई वृद्धि हो तो ऐषिण द्वारा उसकी परीक्षा की जा सकती है। कोकेन और एड्रिनेलिन के एक दुर्बल विलयन (weak solution) को लगाकर गभीर भागो की भी परीक्षा सम्भव है।

पश्च नासादर्शन (posterior rhinoscopy)

एक लम्बे हैंडिल पर लगे हुए दर्पण को ऊवूला और कोमल तालु के पीछे रखकर उसमे पश्च नासा द्वारो और मुखग्रसनी को देखा जाता है जब कि जिह्वा

को एक स्पेकुलम से दाबकर रखा जाता है। इस परीक्षा मे ऊर्ध्व और मध्य शुक्तिकाएँ, यूस्टेकी नली और मुखग्रसनी की छदि और पश्च भित्ति दिखाई देती है। यह कठिन परीक्षा है, किन्तु अभ्यास से सरल हो जाती है। नासापट की पश्च धारा जो दर्पण मे दीखती है, उत्तम निर्देशक (guide) है।

अंगुलि द्वारा नासाग्रसनी का परिस्पर्शन (digital palpation of nasopharynx)

पश्च नासादर्शन के असम्भव या असफल होने पर बालकों मे यह विशेषतया उपयुक्त परीक्षा विधि है। दक्षिण तर्जनी को मुँह खोलकर कोमल तालु के पीछे तक प्रविष्ट करके उससे जितनी शीघ्रता से हो सके मुखग्रसनी की परीक्षा कर लेनी चाहिए। बडो आयु वालो मे यह परीक्षा मान्य नही है। उनको वह कष्टकर होती है।

पारप्रदीपन (transillumination)

ललाट और ऊर्ध्वहनु विवरों के रोग का पता लगाने के लिए पारप्रदीपन परीक्षा की एक विधि है। यह कर्णदर्शी (otoscope) की बैटरी के हैंडिलम मे एक पारप्रदीपक (transilluminatior) को लगाकर उससे सहज मे की जा सकती है। रोगी को अंधेरे कमरे मे बिठाकर यन्त्र के सिरे को (क) ललाट विवर की भूमि के नीचे और (ख) नेत्रगुहा के निम्न उपान्त (lower margin) के ठीक भीतर रखा जाता है और मुँह बन्द कराकर रोगी के आनन के प्रदीप्त क्षेत्रो का निरीक्षण किया जाता है। यह परीक्षा ऊर्ध्वहनु विवर शोथ मे ललाट विवर शोथ की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती है।

ऐक्सरे

परानासा विवरो की रचना और विकृत दशाओ के अध्ययन के लिए एक्सरे चित्रो के विशेष दृश्यो का उपयोग किया जाता है।

नैदानिक धावन (lavage)—ऊर्ध्वहनु विवर के निदान के लिये धावन किया जाता है। जतूक या ललाट विवरो के लिये यह आवश्यक नही होता।

नासिका के रोग
(Diseases of Nose)

आघात (injury)—नासास्थियो की अस्थिभग-सधिच्युति (fracture-

dislocation) सबसे साधारण आघात है। नासा उपस्थियो की संधिच्युति भी बहुत होती है। यदि नासास्थि के अस्थिभग के साथ कोई विस्थापन (displacement) या विरूपन (disfigurement) या नासा द्वारा वायु-मार्ग मे अवरोध न हो तो कोई चिकित्सा आवश्यक नही है

नासा तथा भग्नाशो का, सामान्य सवेदनाहरण (general anaesthesia) करके, आघात के पश्चात् जितना शीघ्र पुन स्थापन (reduction) किया जा सके, उत्तम है। दाँत के स्टेन्ट (stent) द्वारा स्प्लिन्ट लगाना आवश्यक हो सकता है।

उपद्रव जो उत्पन्न हो सकते हैं ये हैं :—पट का हीमेटोमा या प्रमस्तिष्क मेरुद्रव का चूना (leakage of cerebrospinal fluid)।

नासापट का विचलन (deviation of nasal septum)

इस दशा मे नासापट मध्य रेखा से एक ओर को मुडा होता है जिससे दोनो नासा सुरगे बराबर नहीं रहती। विचलन परिवर्धन-सम्बन्धी कारणो से हो सकता है जैसे, विकास केन्द्रो (ossification centres) की अनानुपातिक वृद्धि (disproportionate growth) से, अथवा अभिघात के कारण नासापट मुड सकता है। ऊँचे उठे हुए तालु वाले व्यक्तियो मे विचलित पट अधिक पाया जाता है, जैसे, एडीनाइड की वृद्धि या नासावरोध ग्रस्त व्यक्तियो मे।

विचलन दो प्रकार के होते है C आकार का विचलन, एक ओर नासावरोध सहित, और S आकार का विचलन, जिसमे दोनो ओर अवरोध होता है। किन्तु यह देखा जाता है कि दोनो ओर की नासा सासुरगो मे अधिक असमानता होने पर जिस ओर सुरग बडी या खुली होती है उस ओर की शुक्तिका की पूरक अतिवृद्धि (compensatory hypertrophy) हो जाती है। इससे C आकार के विचलन मे भी दोनो ओर अवरोध हो जाता है।

विचलन के अनुगम (sequelae) ये होते है —नासावरोध (nasal obstruction) जिसमे मुख द्वारा श्वसन होता है, चिरकारी नासा शोथ (chronic rhinitis), विवर शोथ (sinusitis) और विवरो से स्राव न निकल सकने और सवातन (ventilation) न होने के कारण दमा (asthma) होने की प्रवृत्ति। उधर की यूस्टेकी नलिका के असवातन से अथवा विवरशोथ के कारण सक्रमित हो जाने से, मध्यकर्ण शोथ (otitis media) तथा बधिरता (deafness) हो सकती है।

चिकित्सा

विचलन के कारण नासावरोध होने पर, अनुगम हो या न हो, सर्जरी ही उसकी चिकित्सा है। विचलन को सुधारने के लिये अधोश्लैष्मिक उच्छेदन (submucous resection, SMR) किया जाता है। साधारणतया यह 15 वर्ष की आयु से पूर्व नहीं किया जाता और नासिका या विवरों मे तीव्र संक्रमण होने पर भी करना उचित नही है। पट को सुधारने के अतिरिक्त पट प्रवर्ध (septal spur) के पीछे स्थित रक्तवाहिका से होने वाले दुःसाध्य रक्तस्राव को बन्द करने के लिए भी यह शस्त्रकर्म किया जाता है। कभी-कभी पीयूषिका के अर्बुद तक, पारपट (transseptal) मार्ग द्वारा, पहुंचने के लिए भी शस्त्र-कर्म को करते है।

प्राय स्थानिक संज्ञाहरण मे यह शस्त्रकर्म किया जा सकता है। अनुभवी सर्जनों के हाथ से संतोषजनक परिणाम होते है, तो भी ये उपद्रव हो सकते हैं जिनको रोकने का ध्यान रखना चाहिए। पट का वेध या छिद्र (perforation), हीमेटोमा और पट की विद्रधि, नासाश्रय (nasal support) की हानि जिससे पर्याण नासिका (saddle nose चपटी), या साञ्जीकिया (synaechia) उत्पन्न हो जाती है।

नासापट के वेध (perforation of nasal septum)

नासापट के उपास्थिकृत भाग मे अथवा अस्थि-भाग मे वेध हो सकता है। वह अभिघात से उत्पन्न हो सकता है। जैसे SMR शस्त्रकर्म मे अथवा विशिष्ट (specific desiase) रोगों मे उत्पन्न हुए सामान्य व्रण मे वेध (perforation) बन जाता है, जैसे लूपस और यक्ष्मा (tuberculosis) मे, जिनमे अग्र उपास्थि भाग मे वेध बनता है, अथवा सिफिलिस का गमा अस्थिकृत भाग को विद्ध कर सकता है।

पट के ऊँचे भाग के लघु वेध लक्षणहीन हो सकते है। कभी-कभी सीटी की सी ध्वनि नाक से उत्पन्न हो सकती है, या पुन पुन. नासारक्तस्राव हो सकता है।

चिकित्सा कारण की की जाती है। लक्षण उत्पन्न करने वाले लघु वेधो को शस्त्रकर्म द्वारा बन्द करने का प्रयत्न करना चाहिए।

नासाशल्य (foreign bodies in nose)

प्राय बच्चो या बालको मे नासिका मे आगन्तुक शल्य मिलते है। साधारण-

तथा वे मटर के दाने, अन्न के दाने, मोती, खडिया (chalk) पैंसिल भीतर के सीन के टुकडे, चाकोलेट, कागज आदि होते हे।

अधिकतर कोई इतिवृत्त (history) नही मिलता। शल्य के सन्देह का कारण एक नासारन्ध्र से दुर्गन्धित स्राव का निकलते रहना होता है जो कभी-कभी रक्तमिश्रित होता है। चिरकारी नासा डिप्थीरिया के भी ऐसे लक्षण होते है, किन्तु नासास्राव पिचु (swab) के अध्ययन से उसका निश्चय हो सकता है। एषिण द्वारा परीक्षा शल्य ~ ज्ञान मे सहायक होती है। सतोषजनक परीक्षा के लिए सामान्य सवेदनाहरण आवश्यक हो सकता है। अधिकतर बच्चो को स्थिर रखकर हुक (hook) द्वारा शल्य निकाला जा सकता है।

स्वच्छ न रहने वाले व्यक्तियो मे नासिका मे मेगट (maggots) पड जाते है। नासास्राव (ozena) से ग्रस्त रोगियो की सावकाशी (roomy) नासिका मे, जिसकी श्लेष्मिक कला शोषित (atrophic) और सज्ञाहीन (insensitive) हो जाती है, मक्खिया अडे रख देती है जिनसे कुछ समय मे उनके लार्वा बन जाते है जो मेगट (maggot) कहे जाते है। यह दशा भारतवर्ष मे विरल नही है। बहुत बार रोगी की नाक से मेगट गिरने तथा नाक और शिर मे वेदना का इतिवृत्त बताता है। साथ ही अनेक रोगियो मे आनन का ऊतक शोथ (cellulitis) पाया जाता है।

चिकित्सा ईथर मे गौज की धज्जियो को भिगोकर उनको नाक मे भरना है। उससे मैगट मूर्छित होकर बडी सख्या मे बाहर गिर जाते है। उसके पश्चात् दो-तीन दिन तक तारपीन मे भीगे गौज के टुकडो को नाक मे भरा जाता हैं। उससे सब मैगट निकल आते है। नासाधावन से नाक की शुद्धि करनी चाहिए। पैंसिलिन आदि प्रतिजीवियो का प्रयोग उपयोगी है जिससे द्वितीयक सक्रमण न हो। रोगी मच्छरदानी का प्रयोग करे जिससे मक्खियो का सम्पर्क न होने पाये।

पुनरावृत्ति को रोकने के लिये कारण और वातावरण की ओर ध्यान देना चाहिये।

नासाश्मरी (rhinolith)

नासाश्मरी नाक मे किसी पुराने अज्ञात शल्य पर कैल्शियम के एकत्र होने से बन सकती है। उसकी चिकित्सा उसको निकाल देना है जिसके लिए सामान्य सवेदनाहरण आवश्यक हो सकता है।

नासापनसिका रोग (nasal furunculosic)

यह नासिका के प्रघाण मे रोमत्वग्वमा (piloscbaceous) का स्थानिक स्टेफिलोकोकसी सक्रमण है। अनुपयुक्त चिकित्मा से प्रतिगामी शिराघनास्रता (retrograde veinous thrombosis) हो सकती है जिससे घातक गह्वर नाल घनास्रता (cavernous sinus thrombosis) हो जाने की मम्भावना होती है।

इसके लक्षण नासा प्रघाण की त्वचा म स्थानिक शोथ और सयोजी ऊति शोथ (cellulitis) है। एक विसरित दृटे सूजन (diffuse induratcd swelling) हो जाती हे जिसके साथ वेदना और सिरदर्द भी होता है।

चिकित्सा

रोगी को आदेश हो कि वह फुन्सी को न छेडे, अपनी अगुलि को नाक से दूर रखे। प्रतिजीवियो का उपयुक्त प्रयोग और स्थानिक ऊष्मस्वेद (hot fomentation) किया जाय। चार पाँच दिन मे स्वय पूय निकल जाएगी और दशा का शमन हो जाएगा।

प्रघाण शोथ (vestibulitis)

यह नासा प्रघाण की त्वचा का शोथ हे जो प्राय नासा-स्राव के कारण उत्पन्न होता है। वह प्रघाण के दृढीभवन (induration), निस्त्वचन (excoriation) और वेदनायुक्त विदरो के रूप मे प्रकट होता है। कभी-कभी वह ऊर्ध्वोष्ठ मे फैल जाता हे। कारण की चिकित्मा करनी चाहिए। वोरिक मलहम का स्थानिक अनुपयोग और 5 प्रतिशत सिल्वरनाइट्रेट को विदरो पर लगाना सहायक होता है।

साधारण जुकाम (common cold or acute rhinitis)

यह दशा अविशिष्ट अभिष्यन्दी तीव्रनासाशोथ (nonspecific catarhal rhinitis) नासाशोथ होता है, जो वाह्य सक्रमणो से माना जाता है, किन्तु उसमे जीवाणुओ का द्वितीयक सक्रमण हो जाता है। वह विन्दु सक्रमण (droplet infection) से फैलता है और उसके प्रति कोई प्रतिरोधक शक्ति नही उत्पन्न होती।

लक्षणो मे, प्रारम्भ मे नासिका की शुष्कता और उसके पश्चात् नासिका से श्लेष्माभ (mucoid) स्राव होता है, छीके आती है। आगे चलकर श्लेष्मा सपूय हो जाता है। रोग के शमन मे लगभग दम दिन लगते हैं। वह

स्वय सीमित रोग है, किन्तु उससे गभीर उपद्रव हो सकते है। उदाहरण स्वरूप पुनरावर्ती (recurring) विवर शोथ, एडीनाइडेस का सक्रमण जो यूस्टेकी नली मे फैलकर मध्यकर्ण शोथ (otitis media) और मुखग्रसनी शोथ उत्पन्न कर सकता है और वहाँ से स्वरयन्त्र और श्वसनियो मे फैल सकता है, कभी-कभी निमोनिया तक हो जाता है।

चिकित्सा उपद्रवो को रोकने के लिए होनी चाहिए। नासिका मे लवण विलयन मे इफेड्रिन (ephedrine) के एक प्रतिशत के घोल का स्थानिक अनुप्रयोग करके शोथ का शमन किया जाय; दर्द के लिए वेदनाहारी औषधियो का उपयोग उचित है। उपद्रवो के उत्पन्न होने पर प्रतिजीवियो को देना चाहिए।

सपूय नासाशोथ (purulent rhinitis)

इस दशा मे एक या दोनो नासा रध्रो से सपूय निस्राव निकलता है। यह बच्चो या बालको मे अधिक होता है। प्राय दोनो रध्रो से निस्राव होता है। उसका कारण बहुधा एडीनाइड का सक्रमण या जन्मजात (सहज) सिफिलिस होती है। एक रध्र से निस्राव शल्य को इगित करता है। अन्वेपण और निदान के पश्चात् कारण की चिकित्सा करनी चाहिए।

नासा डिप्थीरिया (nasal diphtheria)

यह रोग विरल है और प्राय चिरकालीन होता है। कई बार लक्षण इतने अल्प होते है कि रोगी की कोई चिकित्सा नही की जाती और वह वाहक (carrier) बन जाता है। एक रध्र से रक्तमिश्रित निस्राव और प्रघाण शोथ इसके लक्षण है। जीवाणुवीय (bacteriological) परीक्षा से निदान का समर्थन किया जाता है।

चिरकालीन अतिवृद्धिक नासाशोथ (chronic hypertrophic rhinitis)

इसका मुख्य लक्षण निस्राव सहित चिरकारी नासावरोध है। निस्राव गले मे पहुँचता है जिससे रोगी को बार-बार खाँसना पडता है (*hawking*)। विवर शोथ, चिरकारी टौसिल शोथ, एडीनाइड और एलर्जीग्रस्तता से रोग की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। तीव्र नासाशोथ के पश्चात् रोग यह रूप ले सकता है। नासा श्लेष्मिक कला मे चिर अतिरिक्तता (hyperaemia) और मृदु ऊतको की अतिवृद्धि हो जाती है। दशा के बढ जाने पर नासिका मे पौलिप (polyph)

बन सकते है।

चिकित्सा प्रवर्तक कारण की होनी चाहिए। नासिका मे लगाने की औषधियाँ निरर्थक है। दशा के अधिक बढ जाने पर अधोशुक्तिका पर की अतिवर्धित श्लेष्मिक कला के कौटरीकरण (cauterization) से लाभ हो सकता है। इससे सफलता न होने पर शुक्तिका का आंशिक उच्छेदन आवश्यक होता है।

चिरकारी शोषी नासाशोथ या ओजीना (chronic atrophic rhinitist, or ozena)

इस रोग मे नासिका की श्लेष्मिक कला का और कुछ सीमा तक शुक्तिकाओ का भी शोष हो जाता है जिससे नासिका के भीतर के स्थान का विस्तार बढ जाता है। इसके साथ हरित पीत रँग की पपडियाँ जमना, रक्त निकलना, नासा से दुर्गन्ध निकलना, लौर अघ्राणता (anasomia) भी हो जाते है।

ऊष्ण देशो मे यह रोग विरल नही है। इससे निर्धन और कुपोषित व्यक्तियो मे मैगटोत्पत्ति की प्रवृत्ति हो जाती है। ठीक कारण अज्ञात है। इसके दो प्ररूप है—प्राथमिक, जहाँ कारण नही मालूम है, द्वितीयक, जब वह सिफिलिस, लूपस या सर्जरी के कारण हो। प्रथम दशा मे युवावस्था पर रोग प्रकट होता है और कभी-कभी स्त्रियो मे रजोनिवृत्ति पर उत्पन्न होता है, जिनमे पुरुषो की अपेक्षा रोग की अधिक प्रवृत्ति होती है।

चिकित्सा असन्तोषजनक है। नाक मे की पपडियाँ लवण विलयन से सिंचन करके स्वच्छ कर देनी चाहिये। 30 मिलीलिटर सेलाइन मे 1 ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसीन घोलकर उसमे गौज भिगोकर नाक मे रखने से कुछ रोगियो मे उत्तम परिणाम हुए हैं। रोगी की शारीरिक शक्ति की वृद्धि लाभदायक है। नासागुहा को छोटी करने का सर्जरी द्वारा प्रयत्न किया जा सकता है।

नासिका का लूपस (lupus)

प्राय नासिका का लूपस अल्प उग्रता वाले यक्ष्मा दडाणुओ के कारण उत्पन्न होता है जिसमे नासाश्लेष्मलकला आक्रान्त होती है। बहुधा साथ ही आनन का लूपस भी होता है। नासाक्षत नासापट के अग्रभाग मे चिरकारी व्रण के रूप मे प्रकट होता है। अधोशुक्तिका भी आक्रान्त होती है। नासापट मे वेध हो सकता है।

चिकित्सा

कैल्सीफेरोल, 150,000 मात्रक प्रतिदिन, 3-5 मास तक दिया जाता है। इसके साथ स्ट्रिप्टोमाइसीन भी दी जाती है। लेखन (curetting or scraping) या कौटरी द्वारा क्षतका नाश स्थानिक चिकित्सा है।

नासिका की सिफिलिस (nasal syphilis)

नासिका की सहज सिफिलिस का लक्षण स्नूफिल्स (snuffles) हैं। उपलव्ध सिफिलिन तृतीयक अवस्था के गमा के रूप मे मिलती है। वह नासापट के अस्थि भाग को आक्रान्त करती है जो विद्ध हो जाता है और नाक के वैठ जाने से 'पर्याणपृष्ठ' (saddle back) विरूपता उत्पन्न हो जाती है।

निदान और चिकित्सा अन्यत्र सिफिलिस के समान हैं।

रहाइनोस्पोरिडिओसिस (rhinosporidiosis)

यह उस फगस का चिरकारी सक्रमण है जिसको 'रहाइनोस्पोरिडियम सीवेरी' कहते हैं। कदाचित धूल द्वारा सक्रमण होता है जो गौ-भैंस के गोबर या घोडो की लीद से धूल मे पहुचता है।

रोग के लक्षण नासानिस्राव, नासा रक्तस्राव तथा नासा का बढता हुआ अवरोध है। प्रघाण मे प्रारम्भ होकर नासा-पट को आक्रान्त करता है और पीछे की ओर नासाग्रसनिका मे फैल जाता है। नासाश्लेष्मला कला सूजी दीखती है। रक्तस्रावी पौलिप श्वेत विन्दुओ से ढके दीखते है जो स्पोरेजिया (sporanjia) होती है। दैहिक लक्षण नही होते और लसीकापर्व भी नहीं वढते।

जीवोतिपरीक्षा से निदान का निश्चय होता है। चिकित्सा पौलिप के समूल उच्छेदन और वहाँ डायथर्मी के अनुप्रयोग से की जाती है।

रहाइनोस्क्लीरोमा (rhinoscleroma)

स्क्लिरोमा श्वसनपथ का चिरकालीन कीणकार्बुदीय सक्रमण है। नासिका को आक्रान्त करने पर वह रहाइनोस्क्लीरोमा कहा जाता है। इसका कारण फ्रिश (Frisch) दडाणु माना जाता है। सक्रमण विधि मालूम नही है। यह रोग भारतवर्ष, पूर्वी यूरोप और दक्षिण अमरीका के निर्धन जनसमुदाय मे होता है।

प्रारम्भिक वयस्क आयु वालो मे यह रोग नासापट के अग्रभाग, नासाभूमि

और शुक्तिकाओं को आक्रान्त करता है। इसकी बाह्य नासिका, ओष्ठ और कभी-कभी मसूढ़ों और तालु में फैलने की प्रवृत्ति होती है जिसके क्षताकन (cicatrization) से नासिका की सकीर्णता (stenosis) उत्पन्न हो सकती है।

चिकित्सा स्ट्रेप्टोमाइसीन, ऑरोमाइसीन या टेट्रामाइसिन के दैहिक प्रयोग द्वारा की जाती है।

नासा पौलिप (nasal polyp)

नासा पौलिप साधारण श्लेष्मिक पौलिप होते हैं और नासा खातों (fossae) में चिरकारी शोथ या एलर्जी के कारण उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्मदर्शी परीक्षा पर वे मिक्सोमेटस ऊतक के समान पाये जाते हैं, किन्तु वे अर्बुद नहीं होते।

नासापौलिप सक्रामी, एलर्जीजन्य या मिश्रित होते हैं; कदाचित मिश्रित प्रकार सबसे अधिक होता है। वे सबसे अधिक एथमाइड के विवर में पूयता के सबध में पाये जाते हैं। इस वर्ग के पौलिप अनेक, लघु, और दोनों ओर होते है। वे आगे की ओर बढकर नासा गुहा को कम या अधिक भर देते है और दोनों ओर नासावरोध उत्पन्न करते हैं।

एक बडा पौलिप ऊर्ध्वहनु के कोटर से निकलता है और पीछे की ओर नासापश्चद्वार (choana) में बढता है। वह 'कोटरपश्चद्वार (antrochoanal polyp) पौलिप' कहा जाता है। उससे एक ओर का पूर्ण अवरोध हो सकता है। कभी-कभी पौलिप कोमल तालु के पीछे लटकता दीखता है।

निदान (diagnosis)

पौलिप का निदान करते समय उसका रूप, सख्या (एक या अधिक) और रक्तस्राव की प्रवृत्ति (जो पौलिपयुक्त श्लेष्मिक कला से आच्छादित अर्बुद में होती है) को जानने के लिए एप्पिण का उपयोग सदा करना चाहिये। अनुभवहीन सर्जन अतिवर्धित अधोशुक्तिका को पौलिप समझ सकता है। पश्च नासा दर्शन बहुत उपयोगी है। पारप्रदीपन और एक्सरे चित्रण निदान में सहायक होते हैं। पश्च नासा द्वार के अगुलि द्वारा परिस्पर्शन से भी सहायता मिल सकती है। सन्देह होने पर समस्त निकाले हुए पौलिप अथवा उसके एक भाग का ऊतक अध्ययन करके उसके रूप का निश्चय करना चाहिये।

चिकित्सा

कारण की चिकित्सा करनी चाहिए, जो चिरकारी एथमाइड शोथ, ऊर्ध्वहनु

कोटरशोथ या एलर्जी हो सकती है। साधारणतया पौलिप निकलने पर उनकी पुनरावृत्ति होती है। स्थानिक सवेदनाहरण से पौलिप निकाला जा सकता है। कुहर-पश्च-द्वार (antrochoanal) पौलिप उच्छेदन के लिए सामान्य सवेंदनाहरण आवश्यक है। पुनरावर्ती प्रकार मे पोलिपोच्छेदन के साथ उससे सबधित आक्रान्त विवर का नासान्तर या नासावाह्य उपयुक्त शस्त्रकर्म आवश्यक है। एलर्जीजन्य पौलिपो मे रोगी की एलर्जी निवारक चिकित्सा करनी चाहिये।

नासा रक्तस्राव (epistaxis)—नासिका से रक्तस्राव होने को नासारक्तस्राव कहा जाता है। यह वास्तव मे रोग नही है, किन्तु स्थानिक अथवा सार्वदैहिक विकारो का लक्षण मात्र है। नासा रोगो मे यह कदाचित सब से अधिक होने वाली आपाती सर्जरी (emergency surgery) है। कोई भी आयु या जाति इससे मुक्त नही है। वह अत्यल्प हो सकता है, अथवा अत्यन्त भयकर हो सकता है और भली प्रकार न रोकने से जीवन के लिए आपत्ति हो सकता है। सबसे अधिक रक्तस्राव लिटिल के क्षेत्र (Little's area) से होता है।

हेतुकी (achotogy) – कारण स्थानिक अथवा सार्वदैहिक हो सकते है।

स्थानिक कारण—जन्मजात वाहिका स्फीति (telangiectiasis), आघात या नासिका पर शस्त्र-कर्म, अग्रकपाल खात का अस्थिभग, तीव्र या चिरकारी शोथ की दशाये जैसे नासाशोथ, विवर शोथ, नासा-डिप्थीरिया, अर्बुद जैसे वाहिकार्बुद (angioma), नासाग्रसनी तान्तव अर्बुद और कार्सिनोमा तथा नासा के आगन्तुक शल्य। कभी-कभी भूमि (floor) के पास नासापट पर की कोई क्षत वाहिका पुनरावर्ती रक्तस्राव का स्रोत हो सकती है।

सार्वदैहिक या सामान्य कारण—इनमे मुख्य ये है—अतिरक्तदाब (hypertension), अन्त उरो या ग्रैव अर्बुदो के कारण शिरारक्त दाब वृद्धि, ऊँचे स्थान तथा शीत या ऊष्मा का अन्यत तीव्र होना, सक्रामक ज्वर जैसे टाइफाइड, इनफ्लुएंजा और स्फोटक ज्वर (exenthems), रक्तविकार जेसे हीमोफिलिया, परपूरा तथा लुकीमिया (श्वेतरक्तता) और कुनीन, सेलिसिलेट आदि औषधियो की प्रतिक्रिया।

चिकित्सा

रोगी को सान्त्वना दी जाय। यदि आवश्यक हो तो मार्फीन का एक इन्जैक्शन भी दिया जाय। उसको वैठाकर शिर को आगे को लटका देने से रक्त बाहर चला जाएगा। रोगी मुंह से श्वास ले। नाक से रक्त के थक्को को वेग से निश्वास द्वारा निकालने के उपरान्त 30 मिनट तक नासारन्ध्रो को अगुष्ठ

और तर्जनी के बीच दाव कर रखना उचित है। अनेक बार यह आयोजन नासिका अर्थात् लिटिल के क्षेत्र से रक्तप्रवाह को रोक देता है। शोषक रुई का एक पिचु एड्रिनेलिन मे भिगोकर या वैसलीन लपेटकर नासारन्ध्र मे अगुलिदाव हटाने के पूर्व भर दिया जाय। नासिका मे वर्फ मलना भी सहायक हो सकता है।

यदि इस प्रथम सहाय चिकित्सा के पश्चात् भी रक्तस्राव वन्द न हो तो रोगी को अस्पताल या नर्सिग होम मे रखकर दोनो रन्ध्रो की पूर्ण परीक्षा मे रक्त जहाँ से आ रहा है तथा जिस ओर से आ रहा है उसका पता लगाया जाय। नासिका के अग्र-भाग मे एड्रिनेलिन या द्रव पैरेफिन मे भीगे हुए गौज को भरने से रक्त रुक जाता है। कभी-कभी रक्तस्राव विन्दु का कोटरीकरण करना पडता है।

नासिका के पश्च भाग से रक्त आने पर पश्च भाग तथा अग्र भाग दोनो मे गौज भरना आवश्यक होता है। दु साध्य रोगियो मे जिनमे, सामान्य चिकित्सा पर भी, भरे हुए गौज को निकालने पर पुन पुन रक्तस्राव होता है, वाह्य कैरोटिड धमनी का वधन (ligation) आवश्यक हो सकता है। रक्ताधान (transfusion) की आवश्कता सभव है।

नासा एलर्जी (nasal allergy)

नासा एलर्जी तथा श्वसन पथ की एलर्जी अतिरक्तदाव का भाग होती है जिसको नासाश्वनी एलर्जी कहा जाता है। किन्तु रोगी को केवल एक ही एलर्जी हो सकती है।

साधारणतया एलर्जिन (allergens) उत्तरदायी होते हैं . अभिश्वसित धूल (inhaled dust), पराग कण (pollen grains)अथवा फगस, खाये हुए आहार पदार्थ या सक्रमित द्रव्य जैसे पूय या जीवाणु, कुछ भौतिक दशाये जैसे ठड लग जाना (नगे पाँव गीली भूमि पर खडे होने से), 50 प्रतिशत रोगियो मे पारिवारिक अतिसुग्राहिता (familial hypersensitiveness) का इतिवृत्त मिलता है।

नासा एलर्जी के लक्षण वर्षभर या किसी विशेप ऋतु मे उपस्थित हो सकते हैं। साधारणतया पाये जाने वाले लक्षण ये हैं : खुजली, नासिका से जलीय निस्राव तथा छीके आना और उसके पश्चात् नासावरोध हो जाना, सिर दर्द रहना।

सक्रमण का उपद्रव न होने पर नासाश्लेप्मला नील आभा युक्त हल्के रग की तथा फूली हुई दीखती है। निष्क्रिय शोफ की दशा का एण्णि द्वारा निश्चय

किया जा सकता है। पतला श्लेष्माभ (thin mucoid discharge) निस्राव प्रचुर मात्रा में बहुधा उपस्थित होता है। पारप्रदीपन (transillumination) में कोटर की अपार्यता (antral opacity) दिखाई देती है और एक्स-रे चित्रण से एक से अधिक विवरों की श्लेष्मिक कला के परिवर्तन मालूम हो जाते है। बढी हुई दशा के रोगियो मे कई हल्के रंग के पौलिप नाक और विवरो से भरे दिखाई देते हैं।

चिकित्सा

रोगी को विशिष्ट प्रतिजनो (antigens) से बचना चाहिये, कभी-कभी उनका विसुग्राहीकरण (desensitization)सभव होता है। फेनर्गान या कोर्टीसोन प्रतिहिस्टामिनी औषधियो का प्रयोग किया जाय। इफेड्रिन विलयन का बिन्दुओ या फुहार (spray) के रूप मे प्रयोग या जिंक आयनीकरण सहायक हो सकते हैं। विवरो मे उपस्थित सक्रमण केन्द्र, टौंसिल या दात, नासा पौलिप या विचलित नासापट आदि प्रवर्तक कारणो की चिकित्सा आवश्यक है।

विवरशोथ (Sinusitis)

नासा विवर नासागुहा की सहायक वायुगुहिकाएँ है और सतत उपकला से आस्तरित हैं। नासा शोथ के आक्रमण से एक या कई विवरो या दोनो ओर के सारे विवरो मे शोथ फैल सकता है। यह दशा प्राय इनफ्लुएंजा या स्फोटक ज्वरो मे होती है। नासाशोथ मे विवरो के आस्तर के शोथ की उग्रता मे भिन्नता पाई जाती है। अत साधारण रोगक्रम मे यदि विवर का निस्राव रुकने न पाये तो रोगशमन (resolution) होकर रोग मुक्ति हो जाएगी। निस्राव रुक जाने पर सक्रमण के विवर मे सीमित हो जाने से विवर शोथ के उग्र या चिरकारी लक्षण उत्पन्न होते है।

हेतुकी (aetiology)

विवर सक्रमण का कारण मुख्यतया स्ट्रैप्टोकोक्स या न्यूमोकोक्स होता है। एलर्जी एक प्रमुख प्रवर्तक कारण होती है जिसका परिणाम अनेक बार चिरकारी शोथ होता है। विचलित नासापट, अवरोधक आगन्तुक शल्य या अर्बुद पिंड, वर्धित सक्रमित एडीनायड, नासाधावन या 24-48 घटे से अधिक नासा मे गौज भरे रहना अन्य प्रवर्त्तक कारण हैं।

चिकित्सा के सिद्धान्त

सब सक्रमित विवरों मे चिकित्सा के सिद्धान्त समान है। मुख्य, शैया मे विश्राम है, वेदना के लिए वेदनाहर (analgesics), पैनिसिलिन या अन्य उपयुक्त प्रति-जीवियो का प्रयोग, जो प्राय सदा ही सफल होता है। सक्रमित विवर के निस्राव का हरण, जिसके लिये 0 5 या 1 प्रतिशत के एफेड्रीन विलयन का बिंदु या फुहार के रूप मे अनुप्रयोग उपयोगी है। स्थानिक तापना, भाप अभिश्वसन द्वारा और लघुतरग डायथर्मी भी लाभदायक है।

भिन्न-भिन्न विवरो के सक्रमण

तीव्र ऊर्ध्वहनुविवर शोथ (acute maxillary sinusitis)

सबसे अधिक यही विवर सक्रमित होता है। उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त इस विवर के छिद्र की अभिमध्य भित्ति मे ऊँची स्थिति एक प्रमुख प्रवर्तक कारण है जिससे उसके सहज निस्राव मे बाधा पडती है। सक्रमित दत कोष्ठिका से भी सक्रमण पहुच सकता है।

कोटर (antrum) के तीव्र शोथ से वेदना और कपोल पर स्पर्शासह्यता होती है। दतविवरशोथ (dental sinusitis) मे यह लक्षण प्रमुख होता है। कभी-कभी वेदना ललाट मे मालूम होती है। परीक्षा पर आक्रान्त और विशेष सकुलता (congestion) दीखती है। मध्य कुहर मे श्लेष्मपूय (mucopus) निकलती दीख सकती है। पारप्रदीपन पर प्रकाश का अभाव (darkness) निदान मे सहायक होता है, किन्तु ऐक्स-रे चित्रो से अधिक सहायता मिलती है।

चिकित्सा पूर्व कथनानुसार होनी चाहिये। तीव्र अवस्था के पश्चात अध -कुहर द्वारा वेधन (puncture) से उनमे एकत्र हुए स्राव को निकाल कर धावन आवश्यक होता है।

चिरकारी ऊर्ध्वहनुविवर शोथ (chronic maxillary sinusitis)

तीव्र विवरशोथ के निदान और उपयुक्त चिकित्सा मे त्रुटि का परिणाम चिरकारी ऊर्ध्वहनु विवर (कोटर) शोथ हो सकता है।

इसके नैदानिक लक्षणो मे भिन्नता पाई जा सकती है। कोई लक्षण न हो अथवा तीव्र शोथ के पुन पुन आक्रमण हो, केवल एक ओर से निस्राव निकलता हो। पारप्रदीपन और ऐक्स-रे चित्रण से निदान का निश्चय होता है। वेधन (puncture) आवश्यक हो सकता है।

चिकित्सा

कई बार वेधन करके कोटर का धावन किया जाता है। यदि छ बार धावन के पश्चात् भी रोग-शमन नही होता तो अन्तर्नासा कोटर छिद्रीकरण (intranasal antrostomy) आवश्यक होगा। उसमे कोटर की भूमि के पास छिद्र बनाया जाता है जो निस्राव के निकास के लिए पर्याप्त होता है। दंतविवर शोथ (dental sinusitis) और दीर्घकालीन रोगियो मे, विशेषकर जिनमे साथ ही नकामी पौलिपता (polyposis) भी होती है, उनमे अधिक उन्मूलक शस्त्रकर्म करना होता है, जिसको अधोष्ठ कोटर छिद्रीकरण (sublabial antrostomy) कहा जाता है (caldewel-luck operation)।

तीव्र ललाट विवरशोथ (acute frontal sinusitis)

ऊर्ध्वहनुविवर की अपेक्षा यह कम संक्रमित होता है जिसका कारण उसकी ऊर्ध्व स्थिति है जिससे नीचे को निस्राव सुगम होता है। किन्तु ललाट नासा वाहिनी (frontonasal duct) पतली और टेढी-मेढी है और संक्रमण से अवरुद्ध हो सकती है, विशेषकर जब अग्र एथमाइडी और ऊर्ध्व हनु विवर आक्रान्त हो।

तीव्र संक्रमण मे सावधिक (periodic) ललाट शिरोवेदना होती है जो प्रात सोकर उठने के पश्चात् प्रारम्भ होती है और दोपहर के पश्चात् शान्त हो जाती है। विवर की भूमि पर विशेष स्पर्शासहता होती है। ऊर्ध्व पक्ष्म पर शोफ होता है और साथ ही मध्य कुहर से स्राव निकलता है।

चिकित्सा उपर्युक्त कथनानुसार होनी चाहिये। तीव्र दशाओ मे जहा उपद्रवो की आशका हो वहा अधिनेत्रगुहा भगिका (supraorbital notch) के अभिमध्य और विवर की भूमि मे ट्रिफाइन (trephine) करके विवर मे का तनाव कम कर देना चाहिये। यदि ऊर्ध्वहनु विवर शोथ भी हो तो उसकी उपयुक्त चिकित्सा की जाय।

चिरकालीन ललाट विवर शोथ (chronic frontal sinusitis)

यह प्राय तीव्रशोथ का अनुगम होता है। लक्षण वैसे ही होते है, केवल वेदना और स्पर्शासहता नही होते। शिरोवेदना आवर्ती नही होती है। कभी-कभी किसी रोगी मे विवर की भूमि से नेत्र के ऊर्ध्व पक्ष्म मे खुलता हुआ नाड़ी-व्रण मिलता है। एक्स-रे परीक्षा निदान मे सहायक होती है।

चिकित्सा अन्तर्नासा क्रियाओ द्वारा जैसे कोटर धावन (antral lavage) या मध्य शुक्तिका का अस्थिभग करके की जाती है। इसमे प्राय असफलता होती है और वाहिर से शस्त्रकर्म करके निस्मारण का प्रवन्ध किया जाता है। विवर मे पहुचने का मार्ग विवर की पतली भूमि द्वारा वनाया जाता है। दु-साध्य दशाओ मे जव दोनो ओर रोग होता है तो शस्त्रकर्म द्वारा विवर का लोप करना आवश्यक हो सकता है।

तीव्र एथमाइडशोथ (acute ethmoiditis)

तीव्र एथमाइडशोथ वयस्को मे सर्वविवरशोथ (pan-sinusitis) का भाग होता है। किन्तु वालको मे केवल इसी विवर का शोथ हो सकता है।

रोग के लक्षण नेत्रो के वीच मे वेदना और शिरोवेदना तथा मध्य और ऊर्ध्व कुहर से सपूय नासा निस्राव होते हैं। दशा को भयकर मानना चाहिये, उसमे नेत्रगुहा मे प्रविष्ट होकर, विशेपतया वालको मे, उपद्रव उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती हे।

चिकित्सा उपर्युक्त सामान्य क्रम से की जाती है। साथ के ऊर्ध्वहनु विवर और ललाट के विवर के शोथ की उपयुक्त चिकित्सा होने पर यहा भी रोग का शमन हो जाता है

चिरकारी एथमाइडशोथ (chronic ethmoiditis)

यह रोग वहुत होता है। एथमाइड लेविरिन्थ की कोशिकाओ की सख्या और उनकी विभिन्नता को विचारने से तीव्र रोग का चिरकारी होना सहज मे समझा जा सकता है। कई नासा पौलिपो की उत्पत्ति इस दशा का प्रमुख लक्षण हे रोगी की नासिका से दुर्गंध (cacosmia) आती है, नासिका से निस्राव निकलता है और उसमे पपडी जम सकती (crusting) है। एक्स-रे निदान मे सहायक हे।

चिकित्सा का प्रथम चरण तीव्र सक्रमण के समान निस्राव को वढाना है। असफल होने पर एथमाइड लेविरिन्थ का सीमित अन्तर्नासा वहि निस्सारण intranasal exenteration) किया जाता हे। इससे भी परिणाम सन्तोष-जनक नही होते। अन्तर्नासा वहि निस्सरण और नेत्रगुहा की अभिमध्य भित्ति या ऊर्ध्वहनु विवर द्वारा वाह्य मार्ग से वहा पहुचना, दोनो विधियो को मिलाने से परिणाम उत्तम होते हैं।

तीव्र जतूक शोथ (acute sphenoiditis)

तीव्र जतूकविवरशोथ प्राय पश्च एथमाइड कोशिका सक्रमण का भाग होता है । शिरोवेदना ललाटीय (frontal), ऊर्ध्वाधर (vertical), शखीय (temporal) या पश्चकपालीय (occipital) हो सकती है । नासा पश्च निस्राव पश्च नासा-दर्शन से देखा जा सकता है ।

तीव्र एथमाइडशोथ के समान चिकित्सा की जाती है । तीव्र दशाओ मे छिद्र द्वारा केथिटर प्रवेश (catheterization) किया जाता है ।

चिरकारी जतूक शोथ (chronic sphenoiditis)

यह भी पश्च एथमाइड कोशिकाओ के चिरकारी शोथ का भाग है । अग्र भित्ति मे विवर के छिद्र की ऊँची स्थिति रोग का प्रवर्तक कारण है ।

चिरकारी एथमाइडशोथ के समान लक्षणो के अतिरिक्त इस रोग से उत्पन्न हुआ गोलकपश्च तन्त्रिकाशोथ (retro-bulbar neuritis) हो जाता है जिसका कारण जतूक विवरो और दृष्टि तन्त्रिका की समीपता है ।

चिकित्सा

विवर के निस्राव का उत्तम प्रबध करना चिकित्सा है, जो बाह्य एथमाइड वायुकोशिकाओ को नेत्रगुहा की अभिमध्य भित्ति या ऊर्ध्वहनु विवर द्वारा विस्तृत करके किया जाता है ।

सपूय विवरशोथ के उपद्रव (complications of suppurative sinusitis)

सक्रमण का विवरो से उनकी अस्थिकृत भित्तियो मे तथा उनके बाहर फैलना असाधारण है । यदि वह फैलता है तो उसको आपत्तिजनक और रोगी के जीवन के लिए हानिकर समझना चाहिए । अधिकतर ये उपद्रव चिरकारी सपूय विवरशोथ के रोग-प्रकोपन (exacerbation) या तीव्र रूप ले लेने पर देखे जाते है और बहुधा तीव्र अवस्था मे विवर के शस्त्रकर्म का अनुगमन करते है, उस समय शस्त्रकर्म नही करना चाहिए ।

उपद्रव कपालबाह्य (extracranial) हो सकते है—अस्थि मज्जाशोथ (osteomyelitis), नेत्रगुहागत उपद्रव, अथवा वे अन्त कपाल (intracranial) होते है—दृढतानिका बाह्य विद्रधि (extradural abscess) और गह्वर-शिरानाल की घनास्रता (thrombosis of cavernous sinus) ।

ललाट अस्थिमज्जाशोथ (frontal osteomyelitis)

विवरशोथ के उपद्रव के रूप मे ललाटास्थि का अस्थिमज्जा शोथ सबसे साधारण है, उससे कम ऊर्ध्वहनु मे होता है।

ललाट अस्थिमज्जा शोथ अल्पायु वाले वयस्को मे अभिघात या विवर की अग्रभित्ति के शस्त्र-कर्म के पश्चात् होता है। कभी-कभी वह गोता लगाने या जल के भीतर तैरने से होता है जब अतितीव्र सक्रमण ललाट विवर मे पहुँच जाता है।

रोग की अभिव्यक्ति ललाट पर एक शोफ युक्त क्षेत्र के रूप मे होती है जो रोग का अभिलक्षण है और जिससे नये प्रदेशो मे, जैसे पार्श्विका (parietal) पर, फैलने की प्रवृत्ति होती है। एक्स-रे से निदान का निश्चय हो जाता है।

चिकित्सा

प्रारभ मे प्रतिजीविषो की प्रचुर मात्राएँ दी जाती है और विवर धावन किया जाता है। यदि विविक्ति (sequestrum) बन जाती है या अन्त कपाल उपद्रवो का भय होता है तो निर्मूलक (radical operation) शस्त्रकर्म करना होगा।

ऊर्ध्वहनु का अस्थिमज्जाशोथ (osteomyelitis of maxilla)

यह रोग विरल है। तात्कालिक कारण बहुधा अभिघात, कोटर पर शस्त्र-कर्म या दात निकालना होते है।

प्रथम और स्थानिक लक्षण ऊर्ध्वहनु के ललाट प्रवर्ध पर स्पर्शासहता और सूजन होते है, साथ ही सार्वदैहिक लाक्षणिक विकार भी होते हैं। नियत्रण न करने पर वे नेत्रगुहा मे फैल सकते है।

नेत्रगुहा मे उपद्रव

सब विवर नेत्रगुहा की सीमा पर स्थित हैं और उनकी पतली भित्तिएँ अस्थिशोथ से अपरदित (eroded) हो जाती है या सक्रमण घनास्रयुक्त (thrombosed) शिरा द्वारा फैलता है।

नेत्रगुहा मे सक्रमण असाधारण है। वह अधिकतर, विशेषकर बालको मे, एथमाइड शोथ के पश्चात् होता है और अवपर्यस्थि विद्रधि (subperiosteal abs-

cess), गुहा ऊतक शोथ (orbital cellulitis) या विद्रधि या नेत्र शिराओ की घनास्रता के रूप मे प्रगट होता है जिसमे गह्वर शिरानाल मे घनास्रता हो सकती है। नेत्र श्लेष्मला शोफ, (chemosis of conjuctiva) नेत्रगोलक का उत्सेध (proptosis) और नेत्रगतियो का ह्रास प्रमुख लक्षण है।

चिकित्सा प्रतिजीवियो के प्रचुर प्रयोग और सविवेक सर्जरी द्वारा की जाती है। अनावश्यक शस्त्रकर्म हानिकारक है जिसका परिणाम दृष्टिहानि और रोगी का जीवन सकट तक हो सकते है।

अन्त कपाल उपद्रव (intracranial complications)

मस्तिष्कावरण शोथ (meningitis)—जतूक या एथमाइड विवरशोथ से प्राय विसरित प्रकार का मस्तिष्कावरणशोथ (difuse meningitis) उत्पन्न होता है। चालनीवत पट्टिका के सर्जरीजन्य अभिघात से रोग उत्पन्न हो सकता है।

अधिकतर अन्त कपाल उपद्रवो के साथ स्थानिक मस्तिष्कावरण शोथ होता है।

नैदानिक लक्षण तथा चिकित्सा अन्य कारणो से उत्पन्न मस्तिष्कावरण शोथ के समान होती है। शस्त्रकर्म का विचार रोगमुक्ति के पश्चात् करना उचित है।

दृढ़तानिका बाह्य विद्रधि

यह ललाट विवरशोथ तथा उसकी पश्चभित्ति के अस्थिशोथ के साथ होती है। वह लक्षणहीन होती है और केवल शस्त्रकर्म मे उसका पता लगता है।

मस्तिष्क विद्रधि (brain abscess)

ललाट खड की विद्रधि के पूर्व दृढतानिकाबाह्य विद्रधि होना आवश्यक नही है, वह हो या न हो। अन्त कपाल दाब के बढने के लक्षण उपस्थित होगे, किन्तु विद्रधि की स्थिति पहिचानना कठिन होगा। चिकित्सा सक्रमित विवर के निस्सरण का आयोजन और प्रतिजीवियो का प्रयोग है।

गह्वर शिरानाल घनास्रता (cavernous sinus thrombosis)—यह जतूक विवरशोथ के पश्चात् हो सकती है या नेत्रगुहा के उपद्रवो का अनुगमन कर सकती है।

नाक और विवरो की नई वृद्धियाँ
(New growths of nose and sinuses)

शरीर मे अन्यत्र होने वाली सब ही प्रकार की वृद्धिया नाक मे भी होती है। साधारणत' कुछ निम्न प्ररूप है।

वहिकार्बुद्ध (angioma)

नासापट का वाहिकार्वुद्ध (नासापट का रक्तस्रावी पौलिप भी कहा जाता है) लिटिल के क्षेत्र से निकलता है। पुन पुन रक्तस्राव इसका लक्षण है।

परिदर्शन से निदान स्पष्ट होता है।

चिकित्सा कौटरी (cautery) द्वारा उन्मूलन है।

अस्थिअर्बुद (osteoma)

लाला और एथमाइड विवरो के अर्वुद प्रथम लक्षणहीन होते हैं, किन्तु ज्यो-ज्यो वे वढते है वे नासावरोध और नेत्र के अभिमध्य कोण के प्रदेश मे उभार उत्पन्न कर देते है। निदान एक्स-रे द्वारा होता है। चिकित्सा उनका अपहरण है, किन्तु यह तभी करना चाहिए जब लक्षण उपस्थित हो।

पुटी (cysts)—दातो के सबध मे होने वाली पुटियें, विशेषकर दत पुटी और दन्तधर पुटो (dental, dentigerous cysts) ध्यान देने योग्य है। वे ऊर्ध्वहनु का विवर्धन कर सकती हैं।

निदान के लिए एक्स-रे परीक्षा आवश्यक है।

चिकित्सा

कुहर को विना खोले हुए रदनक खात (canine fossa) द्वारा, दात सहित 'पुटी का अपहरण किया जाता है।

सारकोमा (Sarcoma) ऊर्ध्वहनु मे असाधारण नही है।

कार्सीनोमा

नासाविवर का कार्सीनोमा सबसे अधिक एथमाइड विवर को, और उससे कम ऊर्ध्व हनुविवर को आक्रान्त करता है। यह स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होता है। नासा गुहा साधारणतया गौण रूप से ग्रस्त होती है जिससे नासावरोध बढता जाता है। इसके साथ यदि एक नासारन्ध्र से रक्तमिश्रित नि.-

स्राव आता हो तो रोग का सन्देह करना चाहिये । अश्रुस्राव, नेत्रगोलक का विस्थापन या कपोल अथवा तालु की सूजन अन्य लक्षण हो सकते है ।

निदान मे एक्स-रे से सहायता मिलती है और जैवोतिक परीक्षा से उसका निश्चय होता है । सूक्ष्म रचनानुसार वे शल्की कोशिकाकृत कार्सीनोमा और एडिनोकार्सीनोमा होते हैं । स्थलान्तरण (metasis) देर से होता है ।

सर्जरी और किरणन द्वारा मिश्रित चिकित्सा से सबसे अधिक लाभ होता है । कुछ रोगियो मे प्रथम किरणन किया जाता है, तब शस्त्रकर्म करते हैं ।

एथमाइड के कार्सीनोमा मे प्राग्ज्ञान (prognosis) अनुकूल नही होता, किन्तु ऊर्ध्वहनु के कार्सीनोमा मे उत्तम होता है ।

नासाग्रसनी के रोग(Diseases of nasopharynx)

एडीनाइड (adenoids)

नासाग्रसनी टौंसिल (nasopharyngeal tonsil) या लुश्का (luschka) के टौंसिल की लक्षण उत्पन्न करने योग्य अतिवृद्धि 'एडीनाइड' कही जाती है । प्रसामान्य रूप मे नासाग्रसनी टौंसिल शिशु और छोटे बालको मे उपस्थित होता है । 5 और 15 वर्ष की आयु के बीच मे उसकी पूर्ण वृद्धि हो जाती है और तब ह्रास प्रारम्भ होता है । वह नासाग्रसनी को नही भरता और न कोई लक्षण उत्पन्न करता है । किन्तु नासा प्रतिश्याय द्वारा वह पुन -पुनः सक्रमित होने से अथवा स्फोटक ज्वर (exanthem) से उसकी अतिवृद्धि के कारण लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

नैदानिक लक्षण

नैदानिक लक्षण ये है (1) नासावरोध जिसके कारण बालक मुह से श्वास लेता है और निगलने मे भी कुछ कष्ट होता है । (2) नासा निस्राव और यूस्टेकी नली द्वारा सक्रमण का मध्यकर्ण मे विस्तार । (3) क्षुधा ह्रास, कुपोषण (malnutrition), मूढता जिससे बालक अपनी क्लास मे पिछड जाता है । (4) यदाकदा नासा-रक्तस्राव और (5) लसीका पर्वों का विवर्धन, विशेषकर ग्रीवा के पश्च त्रिभुज मे ।

निदान

इतिवृत्ति, पश्च नासादर्शन (जहा सम्भव हो) और अगुलि द्वारा नासाग्रसनी के परिस्पर्शन से निदान किया जाता है । एडीनाइड के साथ प्रायः

गलतोरणिका (faucial) टॉसिल भी बढ जाते है ।

चिकित्सा

मृदु रूप मे या कभी-कभी लक्षण उत्पन्न होने पर मरक्षी चिकित्सा की जाती है जो नासा मे सकुलनहर (decongestive) बूंदो का प्रयोग, श्वसन व्यायाम (breathing exercises) और पोषक आहार देना है । यदि कर्ण मे सक्रमण पहुच जाय या बालक मन्द बुद्धि हो तो शस्त्रकर्म द्वारा एडीनाइडोच्छेदन (adenoidectomy) करना उचित है ।

नई वृद्धियां (new growths)

नासाग्रसनी मे ये नई वृद्धिया हो सकती हैं। (1) सुदम (benign)—नासाग्रसनी तान्तव अर्बुद, (2) दुर्दम (malignant)—(क) शल्की कोशिकाकृत कार्सिनोमा, (ख) लसीका इपीथीलियोमा, (ग) लसीका सारकोमा ।

सुदम अर्बुद

नासाग्रसनी तान्तव अर्बुद (nasopharyngeal fibroma)

नासाग्रसनी के असाधारण सुदम अर्बुदो मे यह अधिकतम होता है । यद्यपि सूक्ष्म रचनानुसार यह सुदम अर्बुद है, किन्तु लक्षणानुसार वह दुर्दम अर्बुद की भाति आचरण करता है । वह नासिका मे तथा एथमाइड प्रदेश मे विस्तार करके नेत्रो को बाहर को प्रक्षेपित कर सकता है । वह अतिवाहिकामय(vascular) होता है । उसकी पुनरावृत्ति होती है तथा उससे भयकर रक्तस्राव हो सकता हे जिससे मृत्यु तक हो सकती है ।

अर्बुद अवृन्ती (sessile) होता है और पश्च-कपाल तथा जतूकास्थि के आधार भागो (basi-occiput, basi-sphenoid) की पर्यस्थि से निकलता है। वह साधारणतया युवावस्था मे बढने लगता है । रोगी प्राय 12 और 20 के बीच की आयु के होते हैं; कन्याओ की अपेक्षा लडको मे अधिक होता है । 25 वर्ष की आयु के पश्चात् अर्बुद मे कुछ प्रतिगमन (recession) देखा गया है।

नैदानिक लक्षण

नासावरोध (एक ओर या दोनो ओर का), प्रचुर नासा-रक्तस्राव के पुनः पुन आक्रमण और मँडूकानन विरूपता (frogface deformity) रोग के लक्षण है । रक्त की हानि और निगलने मे कष्ट से क्षीणता (cachexia) हो

जाती है। पश्च नासादर्शन निदान मे सहायक होता है। अगुलि परिस्पर्शन या जीवोतिपरीक्षा आपत्तिजनक है; यदि रक्तस्राव प्रारभ हो जाय तो इनका उद्योग किया जा सकता है।

चिकित्सा सर्जरी द्वारा अर्बुद का अपहरण है। यह कठिन शस्त्रकर्म है। अर्बुद तक पहुंचना कठिन होता है और शस्त्रकर्म मे तीव्र रक्तस्राव होता है। शस्त्रकर्म पूर्व रक्ताधान तथा एक्सरे-चिकित्सा (जिससे अर्बुद की रक्तमयता कम हो जाय) करना योग्य है। शस्त्र कर्म मे जितनी रक्त-हानि हो उसकी तत्काल पूर्ति करना आवश्यक है।

दुर्दम अर्बुद

शल्के कोशिका कार्सिनोमा (squamous-cell carcinoma)—इस दशा मे प्राथमिक अर्बुद बहुधा छोटा होता है, किन्तु उससे ग्रीवा मे बड़े आकार की द्वितीयक ग्रन्थिया बन सकती है। रोगियो मे प्राय एक ओर ग्रीवा मे वृहत आकार की ग्रन्थिया मिलती है।

ग्रन्थि स्थलान्तरणो के अतिरिक्त नासावरोध, नासारक्तस्राव, यूस्टेकी नली के अन्त सरण (infiltration) से चालकीय बधिरता (conductive deafness) तथा नेत्रोत्सेध (exophthalmos) मुख्य लक्षण हैं। तन्त्रिका सबधी लक्षण, पाचवी कपाली तन्त्रिका के आक्रान्त होने से, शिर के एक ओर वेदना और ग्रीवा रन्ध्र सलक्षण (jugular foramen syndrome) होते है जिससे नवी, दसवी और ग्यारहवी कपाली तन्त्रिकाओ का आंशिक घात (paresis) हो जाता है।

निदान के लिए पश्चनासादर्शन और अगुलि परिस्पर्शन सदा किये जाते हे। एक्सरे चित्र मे करोटि तल मे विक्षति (lesion) दीख सकती है। जीवोतिपरीक्षा आवश्यक है। किन्तु उन सबो से कोई धनात्मक सूचना न मिलना सम्भव है।

अर्बुद के विशेषतया किरणन सुग्राही (radiosensitive) और दुर्विकसित (anaplastic) होने से किरणन (irradiation) ही उसकी एक चिकित्सा है। उसका शस्त्रकर्म द्वारा उच्छेदन असम्भव है।

लसीका इपीथीलियोमा और लसीका सारकोमा (Lymphoepithelioma and Lymphosarcoma)

ये अर्बुद भी अत्यन्त दुर्दम और किरणन सुग्राही होते है। उनके ग्रन्थि

स्थलान्तरण (glandular metastases) प्राय ग्रीवा मे दोनो ओर होते है। वाह्य किरणन जिसमे प्राथमिक और द्वितीयक दोनो वृद्धियाँ प्रभावित होती है, उपयुक्त चिकित्सा है। अर्बुद किरणन चिकित्सा से प्रभावित होते हैं, किन्तु उनकी पुनरावृत्ति हो जाती है। प्राज्ञान निकृष्ट है।

कर्ण (Ear)

शल्य सम्बन्धी शरीररचना (surgical anatomy)

कर्णपल्लव (auricle) पीत प्रत्यास्थ उपास्थि का बना हुआ है जिसमे वलिये (folds) बन गई हैं और जो घनिष्टतया आसजित पर्युपास्थि और त्वचा से ढका हुआ है। इन कारण पर्युपास्थिशोथ (perichondritis) मे सूजन कम होती है, किन्तु वेदना अधिक होती है। यहाँ रक्त सचार की न्यूनता मे तीव्र क्षत के कारण उसमे तलफ बनने की और उसके परिणामस्वरूप क्षताकन और विरूपता की सभावना होती है।

वाह्य श्रवण कुहर (external auditory meatus)

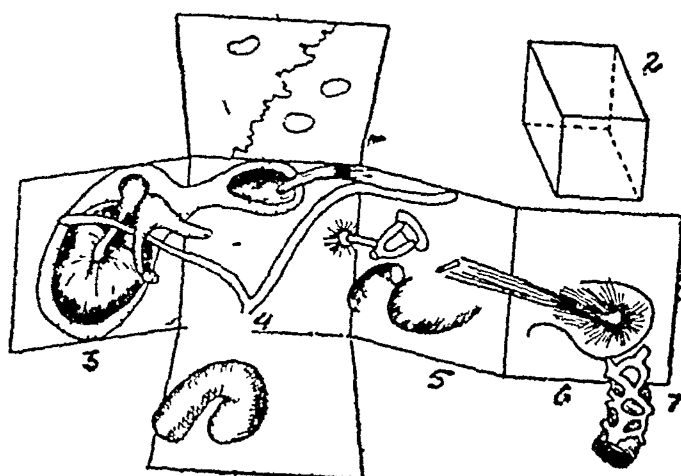
वाह्य श्रवण कुहर एक अडाकार नलिकावत् 36 मि०मी० लम्बी सरचना है जिसका वाह्य तृतीयाश उपास्थिकृत और अन्तर द्वितृतीयाश अस्थिकृत है। उपास्थिकृत भाग ऊपर, पीछे और अभिमध्य ओर को जाता है। उसमे त्वग्वसा ग्रन्थियाँ और रोम कूप होते है। अस्थिकृत कुहर का मार्ग नीचे को, सामने को और अभिमध्य ओर को चला जाता है। उसकी पतली त्वचा पर्यस्थि से युक्त हो गई है। अतएव चिरकारी शोथ से पर्यस्थिशोथ और अस्थि-सकीर्णता हो सकती है। वाह्य कर्ण मध्यकर्ण से कर्ण-पटह द्वारा पृथक् है जो तिर्यक दिशा मे कुहर भूमि से 55 अश के कोण पर स्थित है। कुहर की अग्र भित्ति और तल छदि (छत) और पश्च भित्ति की अपेक्षा लम्बे है।

अग्र और निम्न ओर अस्थि नलिका शख अधोहनु (temporo-mandibular) सन्धि और पैरोटिड ग्रन्थि से सम्बन्धित है। कुहर और मध्यकर्ण की तीव्र शोथ युक्त दशाओ मे विशेषकर बच्चो मे, चबाने के समय वेदना होती है क्योंकि उनमे मध्यकर्णपट्टिका (tympanic plate) पूर्णतया अस्थिकृत नही होती।

मध्यकर्ण विदर (middle ear cleft)

मध्यकर्ण विदर तीन भागो का बना है : यूस्टेकी नली, मध्यकर्ण गुहिका और कर्णमूल कोटर (mastoid antrum) तथा वायु कोशिकाये।

यूस्टेकी नली (eustachian tube)—मध्यकर्ण गुहिका की सवातन शेफ्ट (ventilation shaft) है। 24 मि०मी० लम्बी वह अपने कर्ण मे स्थित छिद्र मे नीचे, सामने और अभिमध्य और नासाग्रसनी मे स्थित छिद्र तक चली जाती है। उसका अस्थिकृत वाह्य तृतीयांश सदा खुला रहता है, किन्तु तन्तुउपास्थिकृत (fibrocartilaginous) अन्त द्वितृतीयांश प्रसामान्य दशा मे वन्द (दोनो भित्तिये सम्पर्क मे) रहती है। नली का ग्रसनी द्वार अधोशुक्तिका के 1 25 सेमी० पीछे और नासा खात की भूमि के 1 25 सेमी० ऊपर स्थित है और ऊपर और पीछे उपास्थि की गद्दी द्वारा सुरक्षित है जिसको यूस्टेकी वलिका (eustachian pad) कहते है। वच्चो मे नलिका अपेक्षत छोटी, चौडी और अधिक क्षेतिज होती है और उसका नासाग्रसनी द्वार कोमल तालु के समतल पर स्थित होता है।



चित्र 12 मध्यकर्ण गुहा, उसके सवधो सहित reproduced from Practical Otolaryngology by McAuliffe, by courtesy of Landsberger medical Books Inc) निम्न ओर

मध्यकर्ण गुहिका (tympanic cavity)

मध्यकर्ण गुहिका को छ पार्श्व वाला वक्स कहा गया है। कर्णपटह के तिर्यक स्थित होने से इसकी पार्श्व दिशा का नाप (चौडाई) केवल लगभग 2 मि०मी० है। इस षट्पार्श्वी (six-sided) वक्स की संरचनाएँ चित्र 12 मे देखी जा सकती है।

ऐटिक (attic) या अधिकर्णपटह दरी (epitympanic recess) मध्यकर्ण-गुहिका का वह भाग है जो कर्णपटह के तल से ऊपर स्थित है, पश्च और वह

कोटर की प्रवेशिका (aditus of antrum) से मिली रहती है है जो कर्णमूल कोटर (mastoid antrum) मे जाती है । प्रवेशिका की अभिमध्य भित्ति मे पार्श्व अर्धवृत्तलिका (semi-circular canal) की कलशिका (ampulla) स्थित है ।

कर्णमूल कोटर (mastoid antrum)

कर्णमूल कोटर का व्यास लगभग 10 मि मी है और एक युवा व्यक्ति मे पृष्ठ से 1 25 सेमी. गहरी वाह्य कोटर (external meatus) मे ऊपर और पीछे, मैकीवन (maccwen's triangle) त्रिभुज के भीतर की ओर स्थित है । कोटर की छवि (roof) मध्यकर्णछद (tegmen tympani) से बनती है एक पतली अस्थि पट्टिका है और कोटर को मध्य कपाल खात से पृथक करती है । कोटर की अन्तर भित्ति मोटी सहत (compact) अस्थि की वनी हुई है और शस्त्रकर्म मे जो सब से प्रमुख सरचना दिखाई देती है वह पार्श्व अर्धवृत्त नलिका का उभार है । यह कोटर प्रवेशिका के ठीक पीछे है ।

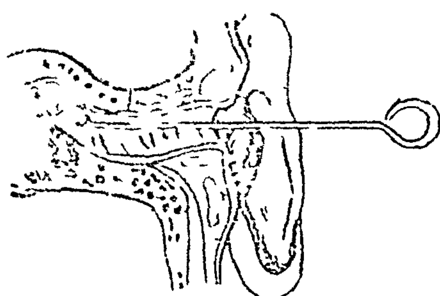
कर्णमूल प्रवर्ध जन्म के समय उपस्थित नही होता, वह 2 वर्ष की आयु पर बनने लगता है । परिवर्धन मे कोटर के चारो ओर की अस्थि खोखली होकर कर्णमूल वायु कोशिकाए (air cells) वना देती है । ये वायु कोशिकाये जो कोटर के चारो ओर अरीय (radiating) प्रकार से स्थित है और सतत उपकला आस्तर से ढकी हैं । कर्णमूल प्रवर्ध दो प्रकार के माने गये है, एक वायवी (pneumatic) प्रकार, जिसमे सारे प्रवर्ध मे वायुकोप भरे रहते है और दूसरा कठोर (sclerotic) प्रकार, जिसमे कोटर के अतिरिक्त और वायु कोशिकाये नही होती और सारा प्रवर्ध ठोस अस्थि का बना होता है ।

आनन तत्रिका अडाकार रन्ध्र (foramen ovlc) के ठीक ऊपर फैलोपी नलिका (fallopian tube) मे पीछे को जाती है और तब प्रवेशिका के पीछे और नीचे से निकल कर नीचे और कुछ पीछे को घूमती हुई अस्थिकृत वाह्य कोटर की पश्चभित्ति मे पहुचती है । यह तत्रिका का ऊर्ध्वाधर (vertical) भाग है ।

कर्ण परीक्षा (examination of ear)

कर्ण परीक्षा करते समय कर्णपल्लव और कर्णमूल के परिनिरीक्षण और परिस्पर्शन से कर्णपूर्व और कर्णपश्च प्रदेशो मे क्षताक तथा पर्वो (nodes) का भी बोध उचित है । इसके पश्चात बाह्य श्रवण-नलिका (anditory canal)

और कर्णपटह का प्रथम स्पेकुलम के बिना और फिर स्पेकुलम की सहायता से परिनिरीक्षण करना चाहिए। सम्बन्धित क्षेत्रो, जैसे यूस्टेकी नली, नासिका, परानासा विवर, ग्रसनी और नासागसनी, आदि की भी परीक्षा की जाय। अनेक वार ये शोथ का केन्द्र होते है जहां से शोथ कर्ण मे फैलता है। विशेष परीक्षणो के अतिरिक्त, जिनका आगे यथास्थान वर्णन किया जाएगा, जहा आवश्यक हो, श्रवणह्रास मे श्रवणमिति (audiometric) परीक्षण तथा प्रघाण अनुक्रिया (vesibulart response) के लिए केलोरीय परीक्षण (caloric testing) और अस्थि के लिए एक्सरे परीक्षायें भी विचारणीय है।



चित्र 13 अग्रनिम्न दरी मे रुई को शलाका की सहायता से लगाया जा रहा है।

कर्णपल्लव तथा वाह्य श्रवण कुहर की परीक्षा

कर्ण पल्लव की परीक्षा के लिये विशेष यन्त्रो की आवश्यकता नही होती। इन बातो को देखना चाहिये : दूसरे ओर के पल्लव की अपेक्षा कोई विस्थापन, पल्लवपश्च खातिका की दशा, जिसका लोप कर्णमूल शोथ (mastoiditis) तथा पनसिका रोग (furunculosis) का एक प्रारम्भिक लक्षण है, पल्लव को हिलाने पर स्पर्शासहता।

वाह्य श्रवणकुहर की भी परीक्षा, प्रथम बिना स्पेकुलम के और फिर स्पेकुलम द्वारा, करनी चाहिये। कर्ण पल्लव को ऊपर तथा पीछे को खीच लेने मे परिस्पर्शन और स्पेकुलम प्रवेश सहज हो जाते है। गभीर भागो और कर्णपटह की परीक्षा करते समय शिर को आवश्यकतानुसार घुमाना पडेगा। कर्णगूथ (way) निस्राव या जो मल वहाँ एकत्र हो, वह स्वच्छ कर दिया जाय। कोटर के गहरे भाग मे अग्रनिम्न दरी (recess) को देखकर पूर्णतया स्वच्छ किया जाय, नही तो वहा स्राव का सचय रह जाएगा। यदि कोई कोमल ऊनक या अस्थि मे उभार पौलिप या कणिका ऊतक (granulation) उपस्थित हो तो उनका एषिण

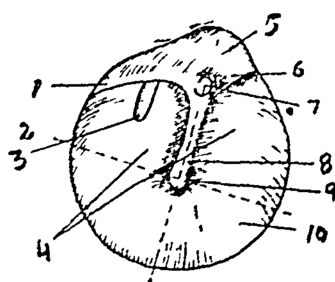
(probe) द्वारा परिस्पर्शन आवश्यक है।

कर्णपटह की परीक्षा

कर्णपटह परीक्षा को कर्ण के बुध्न (fundus) की परीक्षा या कर्णदर्शन (otoscopy) भी कहा जाता है। कर्णपटह की आकृति से (appearance) मध्यकर्ण विदर, यूस्टेशी नली, मध्यकर्ण गुहिका और कर्णमूल वायु कोशिकाओं मे रोग के कारण हुए परिवर्तनो का पता चल जाता है।

शिरदर्पण और कर्णस्पेकुलम के अतिरिक्त स्वप्रदीप्त कर्णदर्शी (self illuminating otoscope), सीगल (seigle's) के स्पेकुलम और परावर्तित प्रकाश से कर्णपटह का आवर्धन (magnification) करके उसका अध्ययन किया जा सकता है। इससे कर्णपटह की गतिशीलता के अध्ययन का भी लाभ होगा।

कर्णपटह के भाग चित्र 14 मे दिखाये गये है। उसमे शिथिल भाग (pars flaccida) और आतत भाग (pars tensa) भी दीख रहे हैं। अन्तिम भाग मैलियोलस के पुटको (malleolar folds) के नीचे का भाग है जिसमे मैलियोलस का हैंडिल (हस्तक) लगा हुआ है। बिन्दुकित रेखाये कर्णपटह के चतुर्थांशो (quadrants) की दर्शक हैं। अग्र-निम्न चतुर्थांश मे प्रकाश शंकु (cone of light) दिखाई देता है।



चित्र 14 दक्षिण ओर की मध्यकर्ण कला (कर्णपटह)

कर्ण की कार्यात्मक परीक्षा (functional examination of ear)

श्रवण के परीक्षण (tests)

श्रवण उपकरण के क्रियानुसार दो भाग है। एक चालक (conductive) भाग है जिसमे बाह्य श्रवण कुहर, कर्णपटह और अंडाकार छिद्र पर लगी हुई अस्थिकाओं (ossicles) की शृंखला है। और दूसरा अवगमी (perceptive) भाग है जिससे आभ्यन्तर कर्ण और कर्णावर्त (cochlea) अपने केन्द्रीय अनुमगो सहित है। अतएव श्रवण शक्ति का ह्रास या बधिरता चालक अथवा अवगमी हो सकती है।

गुणात्मक परीक्षण (qualitative tests)

ये वाक् परीक्षण है जिसमें वार्तालाप (conversation) उपजाप (whispering) के समान स्वरों या शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनको प्रसामान्य व्यक्ति 6 मीटर की दूरी से सुन सकता है। चालन अथवा अवगम त्रुटियों (conductive or perceptive defects) को जानने के लिए स्वरित्र द्विभुज (tuning fork) का प्रयोग होता है। रिने (Rinne's) के परीक्षण में वायु (बाह्य श्रवण कुहर) द्वारा सुने शब्द की अस्थि द्वारा (जब स्वरित्र द्विभुज के पट्ट को कर्णमूल पर लगाया जाता है) सुने शब्द से तुलना की जाती है। शब्द का चालन अस्थि की अपेक्षा वायु द्वारा अधिक होता है और तब रिने परीक्षण धन या धनात्मक कहा जाता है। अवगम बधिरता में रिने परीक्षण धनात्मक किन्तु ह्रस्व होता है। चालन बधिरता में अस्थिचालन वायुचालन की अपेक्षा अधिक होता है। यह ऋणात्मक या नकारात्मक रिने परीक्षण कहा जाता है। वेबर (Weber's) परीक्षण में कम्पन करते हुए स्वरित्र द्विभुज को ललाट के मध्य पर लगाते हैं। शुद्ध चालन बधिरता में शब्द आक्रान्त कर्ण में स्वस्थ कर्ण की अपेक्षा अधिक सुनाई पड़ेगा, किन्तु अवगमी बधिरता में स्वस्थ कर्ण में अधिक सुनाई देगा।

मात्रात्मक परीक्षण (quantitative test)

एक विशेष उपकरण, जो शुद्ध तान श्रवणमापक (pure tone audiometer) कहा जाता है, प्रयुक्त होता है। 128-800 साइकिल प्रति सेकण्ड के आवृत्तिक्रम (*frequency range*) का प्रत्येक कान के श्रवण ह्रास का पृथक्-पृथक् वक्र बनाया जाता है।

प्रघाण के कार्य के परीक्षण (test of vestibular function)—प्रघाण कार्य के विकृत होने का सन्देह होने पर यह परीक्षण किया जाता है। ऐसे रोगियों में अक्षिदोलन (nystagmus) को देखना चाहिये जो स्वत (spontaneous) हो सकता है या प्रेरित (induced) हो। घूर्णन (घूर्णन परीक्षण) से प्रेरित अक्षिदोलन अथवा ऊष्ण या ठण्डे जल से कान को सिरिंज से धोने से प्रेरित अक्षिदोलन का प्रघाण लेबिरिन्थ के कार्य के परीक्षण के लिए उपयोग किया जाता है।

अन्य परीक्षण

कुछ रोगियों में कपाली तन्त्रिकाओं तथा प्रमस्तिष्क और अनुमस्तिष्क के

कार्यों का भी परीक्षण करना होता है।

शखास्थियो की एक्सरे परीक्षा निदान की एक उपयोगी विधि है। उनमे दोनो ओर की कर्णमूल कोशिकाओ की तुलना की जा सकती है तथा कर्णमूल वायु कोशिकाओ की दशा भी मालूम हो जाती है। वहाँ की रचना का भी मर्जन को बोध हो जाता है तथा नीचे तक विस्तृत दृढ तानिका या पार्श्व शिरानाल की स्थिति का भी ज्ञान हो जाता है, ये दशायें रोगियो मे उपस्थित मिल सकती हैं।

वाह्य कर्ण रोग

कर्णपल्लव (auricle)

कभी-कभी सहज विरूपगतायें (malformations) मिलती हैं, उदाहरण-स्वरूप सहायक पल्लव, पल्लव की पूर्ण अनुपस्थिति। सुधार और पुन. निर्माण कान की प्लास्टिक सर्जरी मे अनुभवी सर्जनो द्वारा होना चाहिए। जो स्त्रियाँ कर्णपालि को वेधकर उनमे भारी आभूषण पहनती हैं उनमे वेध के वढ जाने पर उसको सुधारना पडता है।

पल्लव या पालि की उपास्थि के कभी-कभी विध जाने से कीलाइड (keloid) उत्पन्न हो जाता है। उसकी चिकित्सा उच्छेदन है।

वाह्य श्रवण कुहर (external auditary meatus)

पल्लव के दोषो के साथ अविवरता (atresia) और सकीर्णता (stenosis) प्राय होते है।

कर्णगथ (wax, cerumen) या कर्णमूल कर्णगूथ ग्रन्थियो (ceruminous glands) का सामान्य स्राव है। कुछ व्यक्तियो मे यह अधिक वनकर कुहर मे एकत्र होकर डाट-सी वना देता है, जिससे लक्षण उत्पन्न होते हैं। साधारण लक्षण वेदना और वेचैनी है। कभी-कभी, विशेषतया वच्चो मे, तीव्र वेदना होती है।

चिकित्सा

विशेप यन्त्र या सिरिंज करके गूथ को निकाला जाता है। यह अधिक निरापद विधि है। गूथ के शुष्क हो जाने पर ग्लिसरिन मे मिश्रित सोडा वाई कार्व (औंस मे 20 ग्रेन) को कान मे डालकर उसको नरम कर दिया जाय। वटन, माला के दाने, मटर आदि को सन्देश से न निकाला जाय। उससे वे और

भीतर को धँस जाते है । प्रथम उनको केवल सिरिंज करके निकालने का प्रयत्न करना चाहिये । यदि इससे वे न निकले तो सामान्य सवेदनाहरण मे विशेष यन्त्रो के द्वारा आगन्तुक शल्य का अपहरण करना उचित है । असहयोगी बालको मे यही विधि उत्तम है ।

पनसिका रोग (furunculosis)

वाह्य श्रवण कुहर का यह रोग स्थानिक तीव्र सक्रमण है । कर्ण मे वड फोडे हो सकते हैं तथा साथ ही शरीर मे अन्यत्र भी हो सकते है । वह रोमकूप या ग्रन्थि का स्टेफिलोकोकसी सक्रमण से होता है, विशेपतया मधुमेह मे ।

इस दशा मे तीव्र वेदना होती है, जो हनु को या कर्ण पालि को हिलाने पर वढ जाती है । कुहर के परिदर्शन मे स्थानिक सक्रमण एक स्पर्शतरगयुक्त (fluctuating) सूजन के रूप मे दीखता है । वधिरता कुहर के पूर्णतया रुद्ध हो जाने पर होती है । तीव्र कर्णमूल शोथ से इस दशा का निदान करना वहुधा अत्यन्त कठिन होता है । अविच्छिन्न कर्णपटह का रूप, यदि उसे देखा जा सके, तो पनसिका रोग के निदान का द्योतक होता है ।

चिकित्सा

तीव्र अवस्था मे मार्फीन से वेदना दूर की जाय, यदि आवश्यक हो, तथा ऊष्म स्वेद किया जाय । स्थानिक सूजन और वेदना का शमन करने के लिए 10 प्रतिशत ग्लिसरीन इक्थ्यील मे गोज के पतले टुकडो को भिगोकर कुहर मे भरा जाय और दिन मे कई वार वदला जाय । यदि सूजन मे स्पर्शतरग (fluctuation) उपस्थित हो तो सामान्य सज्ञाहरण मे सूजन का छेदन कर दिया जाय । प्रतिजीवियो और सल्फा का उपयुक्त प्रयोग करना उचित है ।

विसरित वाह्य कर्ण शोथ (diffuse external otitis)

यह प्राय चिरकारी रोग है जिसमे समय-समय पर तीव्र रोग प्रकोपन (exacerbation acute) होते रहते है । बहुधा इसका कारण चिरकालीन कर्ण निस्राव, शिरोवल्क की सेबोरिया या फगस सक्रमण होता है । कारण की चिकित्सा करनी चाहिये ।

वाह्य अध्यस्थि (exostosis)

वाह्य श्रवण कुहर की अध्यस्थि असाधारण है । वह कुहर की भित्ति से

निकले उभार के रूप मे दीखती है। वह एक, दो या कई हो, एक ओर हो या दोनो ओर हो। यदि वेदना या बधिरता आदि लक्षण न हो तो कुछ भी करने की आवश्यकता नही है। यदि उसका अपहरण आवश्यक हो तो विद्युत की अस्थि ड्रिल (bone drill) से किया जाय, गूज और छैनी (चिजेल) से करने से फैलाई नलिका खुल सकती है जिसमे आनन का अगघात (facial paralysis) हो जायगा।

कर्णपटह का विदरण (rupture)

कारण —प्रत्यक्ष अभिघात (direct violence) आगन्तु शल्य के प्रवेश से, जैसे बुनने की सुइयाँ या आगन्तुक शल्य के अपहरण के प्रयत्न से, अप्रत्यक्ष अभिघात (indirect violence) जैसे कान पर घूँसा या तीव्र थप्पड मारना और कभी-कभी (विरल) अकस्मात् तीव्र विस्फोट या धडाके (exploison) से जिससे आभ्यन्तर कर्ण क्षत हो जाता है। कपाल के मध्य खात के अस्थि भग से भी कर्णपटह विद्ध हो सकता है जिससे तीव्र वेदना होती है और रक्त निकलता है तथा श्रवण का कुछ ह्रास हो जाता है।

चिकित्सा जमे हुए रक्त को बोरिक स्पिरिट से स्वच्छ करना और शुद्ध की हुई रुई कान मे भरनी है। कान को सिरिंज से धोना वर्जित है, उससे करोटि आधार के भग होने पर मस्तिष्कावरण मे सक्रमण पहुँच सकता है। उसको छोड देने से वह स्वय ही प्रथम आरोहण से ठीक हो जायगा। यथोचित प्रति-जीवियो का निरोधात्मक (prophylactic) प्रयोग उपयोगी है। पूयता तथा आभ्यन्तर कर्ण के क्षत न होने पर श्रवण की पुन प्राप्ति हो जायगी।

हरपीज जोस्टर (herpes zoster)

त्रिधारा तत्रिका के सवेदी केन्द्रक या ऊर्ध्व ग्रेव तत्रिकाओ को आक्रान्त करने वाले हरपीज जोस्टर के साथ कर्णपल्लव या बाह्य कर्णकुहर की त्वचा का शोथ भी हो सकता है, कुछ रोगियो मे केवल वक्र गडिका (geniculate ganglion) के हरपीज से आक्रान्त होने पर कुहर के भीतर और कर्णपटह पर हरपीज के स्फोट (herpetic eruptions) बन सकते है। लक्षण तीव्र कर्ण वेदना, कर्णक्ष्वेड (tinitus) और कुछ रोगियो मे आनन अगघात है।

मध्यकर्ण विदर के तीव्रशोथ
(Acute inflammation of middle ear cleft)

यूस्टेशी नली, मध्यकर्ण गुहिका, कर्णमूल कोटर और वायुकोशिकाये एक

ही विदर के भाग है। इस कारण शोथ होने पर सारा क्षेत्र अधिक या न्यून आक्रान्त होता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि कर्ण सक्रमण, जो बहुत होते है, प्राथमिक रोग नही होता। ऐसी दशाओ मे, जैसे एडीनाइडशोथ, सक्रमित विवर, तीव्र नासा ग्रसनी प्रतिश्याय (nasopharyngeal catarrh) जो इन्फ्लुयेजा या स्फोटक ज्वरो (exmthems) के साथ या उनके पश्चात होता है, एडीनाइड के शस्त्रकर्म के पश्चात या नासिका मे गौज भरना इनसे प्राय सदा ही सक्रमण यूस्टेशी नली द्वारा कर्ण मे पहुँचता है। बालको मे नासा ग्रसनी ह्रस्व होती है और यूस्टेकी नली चौडी होती है। यह मध्यकर्ण शोथ की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाली प्रमुख दशा है। शिशुओ मे बोतल से दूध पीते समय मध्यकर्ण मे दूध के पहुँचने से सक्रमण होते देखा गया है।

तीव्र यूस्टे की नली शोथ (acute eustachian salpingtis)

इस दशा मे शोथ यूस्टे की नली मे परिमित रहता है। रोगी को तीव्र नासाशोथ के साथ कर्णभरा हुआ प्रतीत होता है, कुछ श्रवण ह्रास, कर्णक्ष्वेड (tinitus) और बेचैनी होती है, किन्तु वेदना नही होती। उसको अपना ही शब्द सिर मे गूँजता मालूम होता है जिसको ओटोफोनी (otophony) कहते है।

नासारोग की चिकित्सा करनी चाहिए। सकुलनहर नासा बिन्दुओ (de-congestive drops) तथा प्रतिजीवियो का प्रयोग आवश्यक हो सकता है। रोग-शमन की सभावना है। ऐसा न होने पर रोग बढकर तीव्र मध्यकर्ण शोथ उत्पन्न कर देता है।

तीव्र अभिष्यन्दी मध्यकर्णशोथ (Acute catarrhal Otitis media)

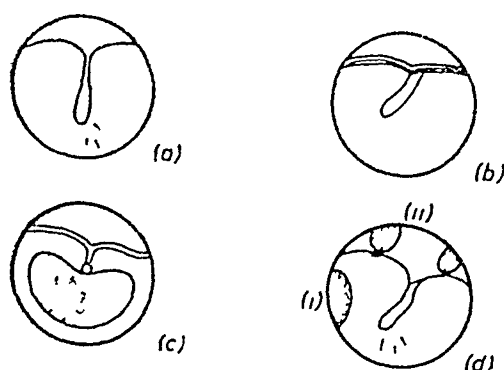
तीव्र अभिष्यन्दी मध्यकर्ण शोथ मे शोथ अधिक तीव्र होता है और कान मे वेदना भी अधिक तीव्र होती है, बधिरता और कर्णक्ष्वेड भी होते है। दैहिक लक्षण जैसे वयस्को मे जी मिचलाना, बालको मे उच्च ताप और शिशुओ मे आक्षेप (convulsion) या अतिसार (diarrhoea) होते है। कर्णदर्शन से कर्णपटह अतिसकुलित या रक्ताधिक्य युक्त (congested) दिखाई देगा, उससे सबन्धित सरचनाये भी अस्पष्ट होती है। उपयुक्त चिकित्सा से रोग-शमन हो सकता है अथवा पूयता होकर निस्राव (exudation) बन सकता है (तीव्र सपूय मध्यकर्ण शोथ) जो जीवाणुओं की प्रबलता और व्यक्ति की प्रति-

रोध शक्ति पर निर्भर करता है ।

चिकित्सा विश्राम, वेदनाहरण और स्थानिक ऊष्मा है तथा तीव्र यूस्टेशी-नली शोथ के समान अन्य आयोजन किए जाते है । प्रतिजीवियो का प्रयोग यदि अभी तक नही किया गया है तो अब प्रारम्भ किया जाय ।

तीव्र सपूय मध्यकर्ण शोथ (acute suppurative otitis media)

इस अवस्था पर मध्यकर्ण शोथ मे पूय एकत्र हो चुकी है । उसके दबाव के कारण कर्णपटह बाहर को उभरा दीखता है । अन्य लक्षण अभिष्यन्दी अवस्था के से होते हैं । चिकित्सा आयोजन न करने पर पटह का उभार बढता जाएगा और अन्त मे उसके कोई दुर्बल हुए भाग के फटने से वेध (perforation) द्वारा पूय-बाह्य कुहर मे आने लगेगी । वेदना बहुत कम हो जाती है, किन्तु बधिरता बनी रहती है । पटह का वेध अग्रनिम्न भाग मे किन्तु सदा आतत भाग मे होता है, उपान्त (margin) पर नही होता (अर्थात् केन्द्रीय प्रकार का होता है) । स्फोटक ज्वरो और प्रबल सक्रमण मे समस्त पटहकला गल कर स्लफ बन जाती है ।



चित्र 15 (a) प्रसामान्य मध्यकर्णकला, (b) निवर्तित मध्य-कर्ण कला, (c) एक बडा केन्द्रीय वेध, (d) (i) पश्च उपान्तीय (marginal) वेध (ii) ऐटिक वेध ।

चिकित्सा

वेध के पूर्व ४८ घटे तक, प्रति जीवी चिकित्सा करते हुए, सावधानी से रोगी को देखते रहना चाहिए । यदि वेदना कम नही होती और कर्णपटह का उभार बना रहता है तो शस्त्रकर्म द्वारा मध्यकर्ण की पूय का निर्हरण करना उचित है । यह कर्म कर्णपटह छेदन (myringotomy) कहा जाता है । और सामान्य सवेदनाहरण मे करना चाहिए । इससे कोई क्षतांक नही बनता और विरोहण (healing) शीघ्र होता हैं । कर्णपटह के स्वत फटने पर भी यह कर्म

आवश्यक हो सकता है जो वेध बनता है वह पूय के पूर्ण निर्हरण के लिए अपर्याप्त होता है या उसकी स्थिति उपयुक्त नही होती ।

निर्हरण के पश्चात् भी ऊपर्युक्त क्रमानुसार चिकित्सा जारी रखनी चाहिए, कर्ण को बारम्बार स्वच्छ करना आवश्यक है । पूय निकलते रहने पर कर्ण मे बिन्दु आदि डालना व्यर्थ है, वे निस्राव के साथ बह जाएँगे । निस्राव कम होने पर विसक्रामक लोशन आदि सक्रमण के स्थान तक पहुच सकते हैं । उपर्युक्त चिकित्सा और नासाग्रसनी की शुद्धि से रोग का एक-दो सप्ताह मे शमन हो जाएगा । श्रवण शक्ति का सामान्य हो जाना और कर्णपटह के सकुलन का शमन रोग मुक्ति का मापदड है । यदि यह नही होता तो रोग चिरकारी हो गया है या बढकर कर्णमूल शोथ बन गया है ।

तीव्रकर्णमूल शोथ (acute mastoiditis)

कर्णपटह छेदन या उसके वेध द्वारा मध्यकर्ण गुहिका के तनाव के कम न होने पर तीव्र कर्णमूल शोथ हो जाता है । शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति के दुर्बल होने और जीवाणुओ के प्रबल होने पर भी रोग हो सकता है । शोथजन्य निस्राव कोटक तथा कर्णमूल कोशिकाओ मे एकत्र हो जाता है ।

लक्षण तीव्र सपूय मध्यकर्ण शोथ ही के समान होते है । कोटर पर सतत वेदना और स्पर्शासहता होती है जिनके पश्चात सूजन और कर्णमूल पर विद्रधि कभी-कभी होती जाती है । तीव्र कर्णमूल शोथ की चिकित्सा प्रान्तस्थीय (cortical) या साधारण कर्णमूलोच्छेदन (mastoidectomy) से की जाती है । कर्णनिस्राव के तीन सप्ताह तक बने रहने या आनन अगघात (facial paralysis), लेविरिन्थ क्षोभ या शिरानाल घनास्रता आदि अन्त कपाल उपद्रवो के होने पर भी शस्त्रकर्म आवश्यक होता है ।

चिरकारी सपूय मध्यकर्णशोथ (chronic suppurative otitis media)

यह दो प्रकार का होता है ।

साधारण चिरकारी सक्रमण (simple chronic infection)

साधारणतया प्रारम्भिक बाल्यकाल या शैशवकाल मे हुए तीव्र सपूय सक्रमण के पश्चात उपयुक्त चिकित्सा न करने या नासाग्रसनी अथवा वेध द्वारा पुन पुन सक्रमण पहुचने से यह रोग होता है । वह प्राय दोनो ओर होता है ।

सपूयश्लेष्मल (mucopurulent) निस्राव और बधिरता उनके लक्षण है। निस्राव अधिक किन्तु गन्धहीन होता है। कर्णपटह का वेध केन्द्रीय होता है तथा आतत भाग (pars-tensa) को बहुत सा नष्ट कर देता है जिसके द्वारा प्रोत्तुंग (promontory) और उसके पास के मध्यकर्ण के भाग दीखते हैं। श्लेष्मिमकला की अतिवृद्धि हो जाती है और कणिका ऊतक या पौलिप बन जाते हैं। निस्राव के न रुकने के कारण अन्त कपाल उपद्रव नही होते।

चिकित्सा मे नासागमनी पूयता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्थानिक प्रक्षालन, टेरामाइसिन या बोरिक अम्ल चूर्ण द्वारा वहा का सक्रमण नाश, कणिकाओ (granulation) का कोटरीकरण तथा यदि पौलिप हो तो उनका अपहरण किया जाता है।

चिरकारी सपूय मध्यकर्णशोथ, कोलेस्टियेटोमा सहित (chronic suppurative otitis media with cholesteatoma)

यह दशा रोगी के जीवन के लिए भयकर समझी जाती है।

कोलेस्टियेटोमा विशल्कित (desquamated) उपकला के मलवे (debris) का मध्यकर्ण मे सग्रह होता है जो चिरकारी सक्रमण से उत्पन्न होता है। कोलेस्टियेटोमा समय पाकर बढते जाते हैं और चारो ओर की अस्थि का अपरदन (erosin) करते है जिससे फैलोपी नलिका के खुल जाने से आनन अगघात हो सकता है, पार्श्व अर्धवृत्ताकार नलिका के अपरदन मे लेबिरिन्थ के खुल जाने पर उसमे सक्रमण पहुँच सकता है, छदि (tegmen) के अपरदन पर दृढतानिक वाह्य विद्रधि (extradural abscess) या मस्तिष्क विद्रधि बन सकती है अथवा शिरानाल के पट्टिका (sinus plate) का अपरदन कर सकते है जिससे पार्श्व शिरानाल की घनास्रता (leteral sinus thrombosis) हो सकती है। इस प्रकार का रोग प्राय एक ओर होता है और कर्णमूल प्रवर्ध भी कठिन प्रकार (sclerotic) का होता है।

लक्षण अल्प होते है, किन्तु दुर्गन्धित निस्राव और बधिरता उपस्थित होती हैं, यद्यपि अल्प हो सकते है। कर्णपटह का वेध प्राय पश्च ऊर्ध्व चतुर्थाश या ऐटिक मे परिसरीय होता है जिसमे शिथिल भाग आक्रान्त होता है, साथ मे अस्थि अपरदन हो या न हो। (चित्र 15 (1), (2)। कुछ रोगियो मे वेध द्वारा कोलीस्टियेटोमा दिखाई पडता है। शिरोवेदना, कर्णशूल और भ्रमि (vertigo) भावी उपद्रवो की चेतावनी देने वाले लक्षण है। उपयुक्त चिकित्सा आवश्यक है। इस दशा मे कणिकायें या पौलिप बन सकते है।

चिकित्सा कर्णमूल के अन्वेषण से की जाती है। जिन रोगियो मे पौलिप उपस्थित होता है, किन्तु वेध (perforation) नही देखा जा सकता और रोग भी अस्पष्ट होता है उनमे मरक्षी चिकित्सा-पौलिप अपहरण और आयोडीन युक्त बोरिक चूर्ण को कान मे फूंकना (insufflation) की जा सकती है। आसन्न या उपस्थित उपद्रवो मे तत्काल शस्त्रकर्म आवश्यक है। कर्णमूलोच्छेदन के उद्देश्य कर्ण को सुरक्षित करना, कर्णनिस्राव का नियत्रण और श्रवण शक्ति को बचाना या सम्भव होने पर उन्नत करना है।

सपूय मध्यकर्णशोथ के उपद्रव (complications of suppurative otitis media)

सक्रमण के मध्यकर्ण विदर की अस्थिकृत सीमा के बाहर फैलने पर उपद्रव होते है। यह प्रसार तीव्र और चिरकारी मध्यकर्णशोथ दोनो मे हो सकता है। अधिकतर उपद्रव चिरकारी रोग के तीव्र प्रकोपन (acute exacerbation) के समय उन रोगियो मे होते है जिनमे कोलेस्टियामा भी होता है। कुछ तीव्र कर्णमूल शोथ के साथ होते हैं।

कपालबाह्य उपद्रव (extracranial complications)—सपूय मध्यकर्ण शोथ के ये बाह्य उपद्रव हैं—

(1) अधोपर्यस्थि कर्णमूल विद्रधि (subperiosteal mastoid abcess) — जो असाधारण नही है, (2) शखास्थि का अस्थिमज्जा-शोथ (osteomyelitis of temporal bone), (3) अवकेन्द्रक (infranuclear) एक प्रकार का आनन घात (facial paralysis) जो प्रायः चिरकारी रोग मे होता है, किन्तु तीव्र दशा मे भी हो सकता है, जिसका कारण सम्भवत अस्थि मे सहज विवृत्ति (dehiscence) हो सकती है, (4) लेबिरिन्थशोथ (labyrinthitis) जिससे घुमेड (dizziness), वमन और कर्णक्ष्वेड (tinitus) होते है।

(2) अन्त कपाल उपद्रव (intracranial complications)

(1) दृढतानिका बाह्य या अवदृढतानिका (extradural) विद्रधि जिनका निदान केवल शस्त्रकर्म के समय होता है। (2) मस्तिष्कवरण शोथ (meningitis) स्थानिका या विसरित हो सकता है, विसरित (diffuse) प्रकार मे सामान्य क्रम से चिकित्सा की जाती है। तीव्र आक्रमण के पूर्ण नियत्रण के पश्चात शस्त्र चिकित्सा का विचार किया जाता है। (3) वक्र शिरानाल का घनास्रशिरा शोथ (thrombophlebitis of sigmoid sinus) तीव्र कर्णमूल शोथ और चिरकारी मध्यकर्ण दोनो मे समान प्रकार से होता है। वह कभी-

कभी लक्षणहीन भी होता है अथवा शीतकम्प (rigors), प्रलेपक ताप (hectic temp) अक्षिबिम्ब शोफ (papilloedema), धनात्मक रक्त संवर्धन (positive blood culture) और अत्यधिक श्वेतकोशिका बहुलता (leucocytosis) उसके द्योतक हो सकते हैं। चिकित्सा के लिए पर्याप्त प्रतिजीवियों का उपयोग तथा शस्त्रकर्म द्वारा शिरानाल का स्पष्टीकरण और उसकी उचित चिकित्सा आवश्यक है। ग्रीवा में ग्रीवा शिरा (jugular vein) का बन्धन उचित है। (4) मस्तिष्क विद्रधि (brain abscess) कर्णसंक्रमण का सबसे प्रमुख उपद्रव है। विद्रधि प्रमस्तिष्क के शंख-जतुक खण्ड में या अनुमस्तिष्क में हो सकती है। नैदानिक सामान्य लक्षणों में जी मिचलाना, ज्वर और अरुचि (anorexia) हैं, वर्धित अन्त:कपाली दाब के लक्षण शिरोवेदना वमन, मन्दनाड़ी (हृद-मन्दता (bradycardia), प्रलाप (delerium) और अक्षिबिम्बशोफ (papilo-oedema) हैं; स्थाननिर्धारक चिन्ह ये हैं—(localising signs) ऊर्ध्व चतुर्थांशीय अर्धदृष्टिता (upper quadrantic pemianopia) और अंकुशदौरे (uneinate fits), शंख खण्ड की विद्रधि में, और गतियों का भद्दापन (clumsiness of movements), भ्रमि अक्षिदोलन (vertigonystagonus) अथवा डिसडायाडोकइनेजिया (disdiadochochinesia) अनुमस्तिष्क के खण्ड की विद्रधि में। पर्याप्त प्रतिजीवियों का उपयोग और कर्णमूल द्वारा अथवा किसी स्वच्छ मार्ग द्वारा, विद्रधि का निर्हरण रोग की चिकित्सा है [इन रोगियों में कटिवन्धन (lumbar puncture) बड़ी सावधानी से करना चाहिए, वह घातक हो सकता है]।

कर्णकाठिन्य (Otosclerosis)

कर्णकाठिन्य असंक्रामी रोग है जो दोनों कानों में बधिरता और अकर्णक्ष्वेड (tinitus) उत्पन्न करता है। बधिरता चालक प्ररूप की होती है यद्यपि बाह्य श्रवण कुहर और कर्णपटह प्रसामान्य दीखते हैं। इसका कारण स्टेपीज की पदपट्टिका (foot plate) का अंडाकार रन्ध्र (oval foramen or window) में पूर्ण या अपूर्ण आसजन (adhesion, fixation) या स्थिरीकरण होता है जिससे शब्द से उत्पन्न हुई अस्थिकाओं की गति से आभ्यन्तर कर्ण की संरचनायें उत्तेजित नहीं होती जिसका परिणाम बधिरता होती है।

रोग का कारण अज्ञात है। 20-30 के लगभग की आयु में यह रोग होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक ग्रस्त होती हैं। आधे रोगियों में रोग का परिवार में इतिहास पाया जाता है।

निदान की पुष्टि स्वरित्र द्विभुज (turnıng fork) और श्रवणमिति परीक्षणो (audıometrıc tests) द्वारा की जाती है। वधिरता के दोनो ओर होने से और युवको को अयोग्य वनाने वाली होने के कारण उसकी उपयुक्त चिकित्सा आवश्यक है।

चिकित्सा दो प्रकार की होती है—एक श्रवण सहायक यन्त्रो का उपयोग और दूसरी एक अत्यन्त विशेप प्रकार का शस्त्रकर्म जैसे स्टेपीज़ की सर्जरी या छिद्रीकरण (fenestratıon)।

मेनिएर का रोग (menıere's dısease)

मेनियर का रोग आभ्यन्तर कर्ण का एक असक्रामी विकार है जिसमे सिर चकराने और वमन के आक्रमण होते है और उनके पश्चात् कर्णक्ष्वेड (tınıtus) और वधिरता हो जाती हैं। वधिरता अवगमी (perceptıve) प्रकार की होती है, प्रारम्भ मे थोडी किन्तु और आक्रमणो से वढ जाती है।

रोग का कारण अज्ञात है, किन्तु अन्तर्लसीका दाव (endolymphatıc pressure) का अकस्मात वढना उसका कारण माना जाता है। युवक और युवतिया दोनो ग्रस्त होती है। परीक्षा पर वाह्य और मध्यकर्ण दोनो प्रसामान्य होते है। प्रघाण परीक्षणो (vestıbular tests) और श्रवणमिति द्वारा निदान की पुष्टि की जाती है।

इस दशा का लेविरिन्थ के अन्य क्षोभक कारणो से विभेदन करना आवश्यक हे, जैसे सक्रामी लेविरिन्थशोथ, श्रवण तन्त्रिका का अर्बुद, अनुमस्तिष्क रोग, प्रसृत काठिन्य (dısseminated sclerosıs) आदि। इन रोगो मे होने वाले लक्षणो को भी कभी-कभी मेनियर सलक्षण (syndrome) कहा जाता है।

चिकित्सा

आक्रमण के समय विश्राम और शामक औपधियो का प्रयोग किया जाता है। आक्रमण के पश्चात् रोग के कारण का अन्वेपण करना उचित है। स्टेमिटिल (stemıtıl), लवण का परित्याग तथा प्रचुर मात्रा मे निकोटिनिक अम्ल का उपयोग कभी-कभी लाभदायक होता है। एकपार्श्वी और पुनरावर्ती दशा मे शस्त्रकर्म द्वारा लेविरिन्थ को नष्ट करना आवश्यक हो सकता है।

जरावधिरता (presbycusıs)

प्रेसविकूसिस अथवा जरावधिरता एक प्रकार की तन्त्रिका वधि रता जोहै

50 वर्ष से ऊपर की आयु वालो मे मिलती है। कोलाहल के स्थानो मे यह रोगियो को विशेपकर कष्टदायक होती है। रोग धीरे-धीरे बढता है। चिकित्सा श्रवण सहायक उपकरणो का प्रयोग है।

श्रवण तत्रिका अर्वुद (acoustic nerve tumour)

यह एक तंत्रिकाततु अर्वुद (neurofibroma) होता है जो श्रवण तत्रिका के श्वान पिधान (sheath of schwann) से निकलता है। वह प्राय तत्रिका को आभ्यन्तर श्रवण कुहर के भीतर या वाहर आक्रान्त करता है, वह वयस्क अवस्था वाले स्त्री-पुरुप दोनो को होता है।

लक्षण अवगम वधिरता, कर्णक्ष्वेड, सिर चकराना, और शिरोवेदना हैं। सन्दिग्ध और कानिया प्रतिवर्त का लोप एक प्रारम्भिक और प्रमुख चिह्न है। अक्षिविम्वशोफ अनुमस्तिष्क विकार और आनन अगघात विलम्वित चिह्न हैं। चिकित्सा के विना रोग घातक होता है।

प्रघाण परीक्षणो और श्रवणमिति द्वारा निदान की पुष्टि की जाती है। एक्सरे परीक्षा सहायक हो सकती हे जिसमे श्रवणकुहर का प्रसार दिखाई देता हे।

चिकित्सा पश्च खात कपालछेदन (posterior fossa craniotomy) द्वारा अर्वुद का पूर्ण अपहरण हे।

वाह्य और मध्यकर्ण का कार्सिनोमा

कार्सिनोमा वाह्य कर्ण या मध्यकर्ण मे हो सकता है, किन्तु अधिकतर रोगियो मे उनको देखने तक वह इतना वढ चुकता हे कि वह कहा आरम्भ हुआ था यह कहना असम्भव हो जाता है। प्रौढ व्यक्ति, जिनको वहुत समय से चिरकालीन मध्य कर्णपूयता रही है, अधिकतर उनको रोग होता है। वह कर्ण-मूलोच्छेदन से उत्पन्न हुई गुहिका मे हो सकता है।

गहरी कुरेदने की सी पीडा, वेदनाहारी औपधियो से अप्रभावित, रक्त-मिश्रित निस्राव अथवा अस्वस्थ कणिकाओ (granulations) का वनना, जिनको एष्णि से छूने ही से रक्त निकलता है, और साथ ही उस ही ओर का आनन अगघात रोग के लक्षण है। स्थलातरण देर मे होता है। जीवोतिपरीक्षा (biopsy) मे निदान की पुष्टि की जाती है, अस्थिविनाश की सीमा ऐक्सरे चित्रो मे दीखती है।

चिकित्सा शस्त्रकर्म द्वारा सम्पूर्ण उच्छेदन और किरणन है।

गल तोरणिका और ग्रसनी (fauces and pharynx)

ग्रसनी की शल्य सबधी रचना (surgical anatomy of pharynx)

ग्रसनी एक पेशीकला कृत(musculomembranous) नली है जो करोटि के आधार से मुद्रिका उपास्थि (cricoid cartilage) की निम्न धारा तक जाती है, जहाँ छठे ग्रैव कशेरुका के तल पर वह ग्रास प्रणाल मे मिल जाती है। ग्रसनी के तीन भाग है नासाग्रसनी (nasopharynx) , मुख ग्रसनी (orophaynx) और स्वरयत्र ग्रसनी (laryngopharynx)। नासाग्रसनी के रोगो का वर्णन किया जा चुका है।

मुखग्रसनी (oropharynx)

मुखग्रसनी कोमल तालु से नीचे और मुख तथा जिह्वा के पीछे स्थित है। उसकी निम्न सीमा कठच्छद (einglottis) के सिरे पर मानी गई है। कोमल तालु से, जो प्रथम ग्रैव कशेरुका के तल पर स्थित है, दोनो ओर दो-दो श्लेष्मिक कला के पुटक मुडते हुए नीचे को जाकर जिह्वा के आधार के दोनो पार्श्वों पर लग जाते है, ये अग्र और पश्च स्तभ कहे जाते है। प्रत्येक पुटक मे एक पेशी है, अग्र मे तालुजिह्विका (palatoglossus) और पश्च मे तालुग्रसनिका (palatopharyngens)। दोनो पुटको के बीच मे तालु टौंसिल स्थित है।

तालु टौंसिल (palatine tonsil)

तालुटौंसिल (को केवल टौंसिल कहा जाता है) दो बादाम के आकार की लसीकाभ (lymphoid) सरचनाएँ है। प्रत्येक टौंसिल टौंसिल खात या शैया मे स्थितहै जो प्रावरणी और पेशी से चारो ओर, अभिमध्यपृष्ठ के अतिरिक्त, घिरी हुई है। मुक्त अभिमध्यपृष्ठ केवल प्रावरणी से आच्छादित है जिस पर टौंसिल की दरियो (crypts) के छिद्र दीखते है जिनकी सख्या 10 से 21 तक होती है। ये दरिया शल्की उपकला से आस्तरित है जो टौंसिल पर की उपकला मे मिल जाती है। टौंसिल का पार्श्वपृष्ठ तान्तव ऊतक के एक स्तर से ढका है जो टौंमिल का अपूर्ण या कूट सम्पुट बनाता है। सर्जन के लिए यह स्तर बडा उपयोगी है। शस्त्रकर्म मे इसके द्वारा व्यवच्छेदन से टौंसिल सहज मे ग्रसनी की भित्ति से पृथक हो जाता है जिससे उसका पूर्ण अपहरण सुगम होता है। निम्न धमनियो से टौंसिल मे रक्त आता है , आनन धमनी की टौंसिली

शाखा , जिह्वा धमनी, आरोही ग्रसनी धमनी, आनन धमनी की आरोही तालु शाखा (ascending palatine) ऊर्ध्वहनु धमनी की अवरोही तालु शाखा। लसीका संवहन ऊर्ध्व ग्रैव शृंखला के ग्रीवा-द्विपिटका (jugulo-digastric) पर्वसमूह मे होता है।

तालु टौंसिल उस अवोपकला लसीकाभ ऊतक (subepithelial lymphoid tissue) कृत वलय का एक भाग है जो वाल्डेयर वलय (waldeyer'sring) कहलाता है और नासाग्रसनी और मुखग्रसनी मे वायु और अन्न मार्गो को घेरे हुए है। वलय के अन्य सदस्य नासाग्रसनी टौंसलों (nasopharyngeal tonsil), नली टौंसिल (tubal tonsil) और जिह्वा के आधार पर स्थित जिह्व टौंसिल (lingual tonsil) है।

स्वरयंत्र ग्रसनी (laryngopharynx)

यह ग्रसनी का सबसे नीचे का भाग है। कन्दरिका या वेलीकूल (vallecułae) जिह्वा के आधार के पास स्थित है। तुम्बिका रूपी साइनस (sinus) स्वरयंत्र ग्रसनी की पार्श्व भित्ति और दर्वी-कंठच्छद पुटककृत (eryepiglottic folds) स्वरयंत्र अन्तर्गम के पार्श्व भाग के बीच मे स्थित है।

गले की परीक्षा (examination of throat)

गला एक विस्तृत शब्द है। इसमे वे भी क्षेत्र गिने जाते हैं जो रचना तथा क्रिया की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं, जैसे, ग्रसनी और स्वरयंत्र। किन्तु यह आवश्यक है कि गले की परीक्षा मे ओष्ठ, सृक्कणी (मुख कोण) और कपोल को अन्तरपृष्ठ, मसूडो, दात और कोमल तथा कठिन तालु, जिह्वा, मुखभूमि और वाहिनी सहित लाला ग्रन्थियो की भी परीक्षा की जाय। उन क्षेत्रो की परीक्षा से मुख श्वसन (mouth breathing) तथा व्रण, अगघात या टौंसिल संक्रमण के स्रोत का पता चल सकता है जैसे घुना दात, इससे रोगी की व्यथा का संबध हो सकता है। अन्त मे गलतोरणिका, टौंसिल और पश्च ग्रसनी भित्ति की परीक्षा की जाय। अग्रस्तभो पर लालिमा और उनके द्वारा टौंसिल को दाबने से उसकी दरियो से पूय का निकलना टौंसिल की पूतिता (sepsis) के प्रमाण है।

रोगी को बैठाकर उसके गले मे शिरदर्पण (head mirror) से परिवर्तित प्रकाश डालकर गले की उत्तम परीक्षा हो सकती है। रोगी को मुह चौडाकर जिह्वा को मुह के भीतर ही रखने का कहा जाय, उसको वह बाहर को न

निगलने। जिह्वा स्पेकुलम की सहायता से अधिक सम्यक परीक्षा सम्भव है। यदि व्रण या गोल हो तो उनका अगुलि से परिस्पर्शन किया जाय। स्थानिक संवेदनाहारी फुहारन (local anaesthetic spray) अथवा संवेदनाहारी लौजिन्जो को चूसना अतिसंवेदी गलो के लिए आवश्यक होता है। दोनो ओर के ग्रीवा के लसीका पर्वो के परिस्पर्शन के बिना कोई परीक्षा पूर्ण नही होती।

स्वरयन्त्र-ग्रसनी और जिह्वा मूल या आधार तथा स्वरयन्त्र की परीक्षा छोटे-छोटे विशेष दर्पणो द्वारा की जाती है जिनमे भिन्न-भिन्न भागो की छाया दिखाई देती है। अप्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन (indirect laryngoscopy) कहा जाता है जिसकी प्रविधि (technique) अभ्यास से सीखी जाती है।

सन्दिग्ध निस्राव या व्रणो मे गल पिचु (throat swab) या स्वाब बनाकर उनकी सूक्ष्मदर्शी परीक्षा तथा संवर्धन निदान मे सहायक होते है।

टॉन्सिल और गलतोरणिका के रोग
(Diseases of tonsils and fauces)

आगन्तुक शल्य (foreign bodies)

मछली की हड्डी, पिन या अनाज के छिलके कभी-कभी गलतोरणिका प्रदेश या टॉन्सिलो मे अटक जाते है। वे चुभते है और कभी-कभी वेदना उत्पन्न करते है। परिनिरीक्षण और परिस्पर्शन द्वारा उसकी ठीक स्थिति जानकर गले मे स्थानिक संवेदनाहारी का अनुप्रयोग करके उसका अपहरण उपयुक्त चिकित्सा है।

विन्सेन्ट एंजाइना (vincent's angina)

यह एक तीव्र व्रणकारी क्षति है जो प्राय एक टॉसिल को आक्रान्त करती है, साथ ही मसूडो और गलतोरणिका मे भी क्षत हो सकते है। उसमे गले मे वेदना, ताप और ग्रीवा मे ग्रन्थि शोथ होता है। व्रण प्राय गहरा और धूसर रग के स्लफ से ढका होता है जिसको हटाने मे रक्त निकलने लगता है। टॉसिल या चारो ओर के प्रदेश मे प्रतिक्रिया अधिक नही होती। अभिलेपन (smear) की परीक्षा से स्लाइड बैसिलस फ्यूज़ीफोर्मिस और विन्सेंट स्पायरोकीट से भरी मिलती है।

चिकित्सा

पैसिलिन का प्रयोग और गल धावन तथा विसंक्रामको का स्थानिक अनुप्रयोग।

ग्रसनी की डिप्थीरिया (pharyngeal diphtheria)

यह क्लैब्स-लोफलर बेसिलस (klebs-loffler bacillus) का तीव्र विशिष्ट संक्रमण है और अधिकतर ग्रसनी में होता है। नन्हे ही रोगियों में, विशेषकर दो से पांच वर्ष तक के बालकों में, गलदाह (sore throat) की दशा में गले में कला (membrane) दिखाई देने पर रोग का सन्देह करना चाहिए। कला का बनना रोग का सबसे प्रधान लक्षण है। ज्वर थोड़ा ही हो, किन्तु जी मिचलाना पीठ का दर्द, शीत, वमन और शक्तिपात (prostration) आदि गाढ होते हैं। जितनी विस्तृत कला होती है उतनी ही जीवविषरक्तता (toxaemia) अधिक होती है। जब टॉसिल (वर्धित) होते हैं तो कला प्राय: उन्ही पर प्रारम्भ होती है और वहा से पास की संरचनाओं पर फैल जाती है। प्रारम्भ मे कला श्वेत होती है, किन्तु आगे चलकर धूसर रंग की हो जाती है। वह नीचे के पृष्ठ पर आसजित होती है उसको हटाने से रक्त निकलने लगता है। निदान की अभिलेपन परीक्षा (smear examination) ओर संवर्धन (culture) से समर्थन किया जाता है। यदि अभिलेखन मे कोरिनबैक्टीरियम डिफ्थरी (corynbacterium diphtheriae) मिलते हैं तो तत्काल एन्टीटोक्सिन देना उचित है, जीवाणु संवर्धन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा मे समय नष्ट नही करना चाहिए। मूत्र मे अलबूमिन उपस्थित होता है।

चिकित्सा और उपद्रव

पृथक्करण, शैया मे पूर्ण विश्राम, एन्टीटॉक्सिन और पैंसिलिन के इंजेक्शन रोग की चिकित्सा है। ऐन्टीटॉक्सिन की प्रथम मात्रा अत्यन्त प्रभावी है और उसकी प्रचुर मात्रा, 50,000 मात्रक, अन्तर्पेशी मार्ग से देने चाहियें।

उपद्रवो, जैसे स्वर यन्त्र मे रोग प्रसार, को देखते रहना चाहिये, श्वास प्रणाल छिद्रीकरण (tracheostomy), जो ट्रेकियोस्टोमी कहा जाता है, करना आवश्यक हो सकता है। अन्य उपद्रव जो हो सकते है, हृत्पेशीशोथ (myocarditis) और तालु तथा स्वरयन्त्र का पेशीघात (muscular paralysis of palate and larynx) है।

ग्रसनी का यक्ष्मा (tuberculosis of pharynx)

ग्रसनी का यक्ष्मा सदा (फुफ्फुसी)राजयक्ष्मा का द्वितीयक (secondary) होता है और रोगी की दुर्बल प्रतिरोधक शक्ति का परिचायक है। लक्षण तीव्र

निगरण कष्ट, तरलो के लिये भी (dysphagia), लालास्रवण (salivation), कर्ण वेदना आर स्वरभग (hoarseness of voice) है, साथ ही राजयक्ष्मा के अन्य लक्षण भी होते है। गलतोरणिका, कोमल तालु और ग्रसनी भित्ति पर छोटे, उथले, अनिश्चित परिसर वाले व्रण दिखलाई देते है। ग्रसनी श्लेष्मला विवर्ण (वर्णहीन, pale) दीखती है, किन्तु उवूला मे रक्ताधिक्य हो सकता है।

चिकित्सा प्रतियक्ष्मा (anti-tubercular) क्रम से की जाती है। स्थानिक शमन के लिये बैंजोकेन (benzocaine) लौजिजो का प्रयोग अथवा ओर्थोफार्म चूर्ण को व्रणो पर फूंका (insufflation) जा सकता है।

ग्रसनी का लूपस

यह आनन, नासिका या स्वरयन्त्र के लूपस के साथ होता है। वह वेदनाहीन होता है, और व्रणोत्पादन (ulceration) और क्षताकन (scarring) दोनो साथ ही मिलते है जिससे ग्रसनी का विस्तृत सकोचन (contracture) हो जाता है। नासिका के लूपस के समान चिकित्सा होती है।

ग्रसनी की सिफिलिस

प्राथमिक शैंकर टौसिलो पर अन्यन्त विरल है और अभिलेपन द्वारा, जिसमे ट्रिपोनिमा पैलिडम मिलते है, उसका निदान किया जाता है।

द्वितीयक सिफिलिसमे टौसिलो गलतोरणिका, जिह्वा और कपोल श्लेश्मला पर श्लेष्मिक चकत्ते बनते है उनके साथ ग्रैव और अधिचक्रक ग्रन्थिशोथ (cervical, epitrochlear adenitis) होता है। साथ ही त्वचा पर विस्फोट (rash) वन जाते हे। क्षत के अभिलेप की परीक्षा से निदान का निश्चय किया जाता है।

तृतीयक सिफिलिस— पश्च ग्रसनी भित्ति, तालु या टौसिल पर गमा वन सकता है। व्रणोत्पत्ति और उसके पश्चात् वेध (perforation) हो सकता है, कठिन और कोमल तालु, विशेषकर, आक्रान्त होते है जिनमे विस्तृत क्षताक वन जाते हैं। सीरम की परीक्षा से निदान किया जाता है।

चिकित्सा

सामान्य प्रतिसिफिलिसी (antisyphilic) चिकित्सा के साथ हाइड्रोजन-पर-आक्साइड से कुल्ले करने चाहिये।

ग्रसनी का कुष्ठ (leprosy)

ग्रसनी मे कुष्ठ नासाकुष्ठ के पश्चात होता है , त्वचा मे भी क्षत होते हैं। प्रथम पर्व वनते है जिनमे व्रण वनने के पश्चात उसके विरोहण से तारकाकार क्षताक (stellate scars) वन जाते है । तालु विद्ध (perforated) हो सकता है।

टॉसिलशोथ (tonsillitis)

तीव्र टौसिलशोथ (Acute tonsillitis)

तीव्र टौसिलशोथ एक सक्रामी शोथ की दशा है जो विशेषतया वालको और नवयुवको मे पाई जाती है। इसके दो प्ररूप होते ह एक तीव्र सार ऊत-की (parenchymatous) जिसमे सारा टौंसिल शोथ युक्त और विवर्धित होता है , और तीव्र कूपी (follicular) टौंसिल शोथ जिसमे मुख्यतया दरियो के सक्रमित होने से परिगलन (neerosis) होकर उनके छिद्रो पर पूय एकत्र हो जाती है जिससे उसका विन्दुकित (spotted) रूप दीखता है। यह उसका अभिलक्षण है ।

नैदानिक लक्षण अकस्मात प्रारम्भ और निगलने मे वेदना तथा शीतकम्प, जी मिचलाना और कोष्ठवद्धता हैं , दोनो ओर के ग्रैव लसीका पर्व विवर्धित और वेदनायुक्त हो जाते हैं, विशेषकर ग्रीवा-द्विपिण्डिका (jugulodigastric) समूह के ग्रसनी डिफ्थीरिया से इस दशा का निदान आवश्यक है जो प्रारम्भ मे केवल एक ओर होती है , साथ मे कला का वनना और शक्तिपात भी विशेष लक्षण है। सन्देह होने पर गले के स्राव की परीक्षा आवश्यक है।

चिकित्सा—शैया पर विश्राम, एस्पिरिन द्वारा वेदना का शमन और प्रति-जीवियो का प्रयोग चिकित्सा है। परिटौंसिली विद्रधि, तीव्र वृक्क शोथ और तीव्र मध्यकर्णशोथ उपद्रवो की उत्पत्ति को देखते रहना चाहिए। पराग्रसनी (parapharyngeal) विद्रधि और स्वयरयत्र शोफ विरल उपद्रव है।

क्विन्सी (quinsy) या परिटौंसिल विद्रधि (peritonsillar)

क्विन्सी तीव्र टौसिल शोथ मे होने वाली पूयोत्पत्ति है जिसमे पूय टौसिल के सम्पुट और उसकी शैया के वीच मे एकत्र हो जाती है। साधारणतया पूय एक ओर टौंसिल के ऊपरी सिरे के पास एकत्र होती है।

लक्षण गले मे तीव्र वेदना और ज्वर, जीमिचलाना, और शिरोवेदना है।

जवडा वन्द हो जाने (trismus) के कारण गल परीक्षा कठिन होती है। गले की परीक्षा करने पर एक ओर के टौंसिल और तालु प्रदेश विशेपतया सूजे हुए और रक्ताधिक्य युक्त मिलेगे। ऊवूला शोथयुक्त और दूसरी ओर को विचलित होगा।

प्रतिजीवियो के प्रयोग, एस्पिरिन तथा शैया विश्राम से चिकित्सा प्रारम्भ की जाती है। 24-48 घण्टे मे जव पूय एक स्थान पर सीमित हो जाती है तव उसका निर्हरण किया जाता है। छेदन करते समय सवेदनाहारी का प्रयोग न किया जाय, क्योकि विद्रधि से निकलने वाली पूय वायु मार्ग मे जा सकती है।

स्वत विद्रधि के फटने (spontaneous rupture) और पूय आचूषण (aspiration) के उपद्रव का डर रहता है। उसको रोकने के लिए विद्रधि का छेदन शीघ्र ही कर देना चाहिए। रोग की पुनरावृत्ति वार-वार होने से तीव्र रोग के शमन के एक मास पश्चात् टौंसिल निकलवाने का रोगी को आदेश देना चाहिए।

चिरकारी टौंसिल शोथ

तीव्र प्रकार के रोग के पश्चात् यह रोग होता है। वालको मे अतिवृद्धि (hypertrophic) प्रकार का रोग अधिक होता है, किन्तु वयस्को मे चिरकारी कूपी (follicular) प्ररूप अधिक पाया जाता है।

पुन पुन गलदाह होना और साग्रही (peristant) ग्रन्थिशोथ तथा मुह मे दुस्वाद रोग के लक्षण है। अधिक वढ जाने पर टौंसिल भापण और निगरण मे वाधक हो सकते है। क्षोभक खाँसी (irritative cough) हो सकती है। परीक्षा पर वढे हुए टौंसिल और शोथयुक्त अग्र स्तम्भ (ant pillare) मिलेंगे। वाहर से दवाने मे टौंसिल से पूय निकल सकती है।

प्रारम्भ मे चिकित्सा सरक्षी (conservative) की जाती है, अर्थात्, लवण विलयन के कुल्ले (gargle) और मेडल गललेप। इस समय म दन्तपूति (dental sepsis) की उपयुक्त चिकित्सा की जाय जिससे रोग के पुनराक्रमण न हो। यदि फिर भी लक्षण वने रहे तो टौंसिलोच्छेदन करना चाहिए।

यदि एडीनाइड भी हो तो टौंसिलो के साथ उनको भी निकाल देना चाहिए, किन्तु इससे विपरीत यथार्थ नही है, अर्थात् टौंसिलोच्छेदन के साथ एडीनाइड निकालना आवश्यक नही है।

टौंसिलोच्छेदन कव किया जाय —

निम्न दशाये शस्त्रकर्म की द्योतक है।

स्वरयन्त्र और वायुमार्ग
(Larynx and Air Passages)

स्वरयन्त्र, श्वास प्रणाल और श्वसनियों की शल्य सम्बन्धी रचना।

स्वरयन्त्र एक तान्तव-उपास्थियुक्त यन्त्र है जो श्वसित वायु के मार्ग का काम करता है तथा नि श्वास में शब्दोच्चार का कार्य करता है।

अवटुका और मुद्रिका उपास्थियां उसके पंजर का अविच्छिन्न भाग बनाये हुए हैं। सारे श्वसन पथ में केवल मुद्रिका उपास्थि (cricoid cortilage) ही पूर्ण वलय है जो भली भांति स्वरयन्त्र का आधार बनाती है, जिस पर अन्य उपास्थियाँ मानो बैठी हुई है और श्वास प्रणाल और श्वसन तन्त्र का निम्न भाग उस पर इस प्रकार लगा हुआ है, जैसे उससे लटक रहा हो। इस मार्मिक सम्बन्ध का प्रत्येक सर्जन को आदर करना चाहिये और उसको काटना नहीं चाहिये।

अवटुका उपास्थि का उत्सेध (adamsapple) ग्रीवा की मध्य-रेखा में एक विशेष स्थलचिन्ह (landmark) है।

स्वर यन्त्र गुहिका के भाग प्रघाण (vestibule) और प्रघाण पुटक (vestibular folds), निलय, स्वरपुटक या कण्ठद्वार (glottis) और अवकण्ठद्वार (subglottic area) क्षेत्र है। स्वरपुटक शल्की उपकला से आच्छादित है जो नीचे की संरचनाओं से दृढतया जुड़ी रहती है। यह अधिकण्ठद्वार अवकाश (suprglottic space) के अतिश्लथ (lax) अधोश्लेष्मिक ऊतक के नितान्त विरुद्ध है जहाँ अधोश्लेष्मिक शोफ सहज में उत्पन्न हो सकता है। ऐसा शोफ स्वररज्जुओं की संरचना के कारण अवकण्ठद्वार क्षेत्र में नहीं फैलने पाता।

अधिकण्ठद्वार क्षेत्र का रक्त संचार और लसीका संवहन ऊपर को होता है अवकण्ठद्वार क्षेत्र का नीचे को जाता है। स्वयं स्वररज्जुओं की लसीका वाहिकाओं का बन्द तन्त्र है जिसका बाहर से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यही कारण है कि स्वररज्जु के कैंसर का बहुत समय तक स्थालान्तरण नहीं होता। और चिकित्सा के, अन्य की अपेक्षा, उत्तम परिणाम होते हैं। उसके विपरीत अधिकण्ठद्वार तथा अवकंठद्वार क्षेत्रों के केन्सर का स्थालान्तरण शीघ्र होता है और चिकित्सा के परिणाम भी सन्तोषजनक नहीं होते।

स्वरयन्त्र की पेशियों में, जो स्वरयन्त्र अवकाशिका (lumen) को श्वसन या स्वरोच्चार के समय घटाती-बढाती हैं या निगरण में बन्द रहती है, पश्च मुद्रिकावटुकी (posterior cricothyroideus) सबसे महत्व की है। जीवन

के लिए यह सबसे आवश्यक पेशी है। यही पेशी स्वररज्जुओ का अपावर्तन (abduction) करती है और उसकी सतत तान (tone) प्रश्वास और निश्वास के लिए अवकाशिका को खुला रखने के लिए आवश्यक है। दोनो ओर की इन पेशियो के अगघात से श्वासोवरोध हो जाएगा।

श्वास प्रणाल और श्वसनियाँ (*tranchied and bronchi*)

श्वास प्रणाल एक घोडे के नाल के आकार की तान्तव-उपास्थिकृत सरचनाओ की वनी हुई एक नलिका है जो स्वरयन्त्र के अवकठद्वार भाग को दो मुख्य दक्षिण और वाम श्वसनियो (bronchii) से जोडती है। श्वास प्रणाल की अवकाशिका तान्तव उपास्थि कृत वलयो के कारण खुली रहती है। इनमे से 6 ग्रैव भाग मे है जो श्वास प्रणाल की लम्बाई का लगभग अर्धभाग है। ग्रैव श्वास प्रणाल पूर्ण चलायमान है और ग्रीवा की गतियो का अनुसरण करता है। निम्नतम भाग के अतिरिक्त वह मध्यरेखा मे रहता है और यह श्वास प्रणाल छिद्रीकरण शस्त्रकर्म मे क्रियात्मक महत्व का है। छोटे बालको मे श्वास प्रणाल अधिक चलायमान होता है और ग्रीवा मे कुछ गहरा स्थित है, वह दक्षिण अधोजत्रुक और वाम अनामिका (प्रगडशीर्ष) शिराओ से सम्बन्धित है।

दक्षिण मुख्यश्वसनी वाम श्वसनी से छोटी है, किन्तु उसकी अवकाशिका अधिक चौडी है और उसका मार्ग भी अधिक सीधा है। आगन्तुक शल्य दक्षिण श्वसनी मे अधिक पहुँचते है, वह श्वास प्रणाल ही का भाग दीखती है।

स्वरयन्त्र और निम्न श्वसनपथ की परीक्षा
(Examination of larynx and lower respiratory tract)

स्वरयन्त्र की परीक्षा से पूर्व गले और ऊर्ध्व श्वसन-पथ की पूर्ण परीक्षा होनी चाहिये। स्वरयन्त्र की परीक्षा अप्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन (indirect laryngoscopy) से स्वरयन्त्र दर्पण द्वारा की जा सकती है, तथा प्रत्यक्ष दर्शन से स्वप्रदीपक नलिकीय अस्त्रो द्वारा भी हो सकती है। इन दोनो परीक्षाओ के लिए विशेष प्रक्रम (तकनीक) और अभ्यास की आवश्यकता है। श्वास प्रणाल और श्वसनी की भी इसी प्रकार अप्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन से परीक्षा की जा सकती है। असहयोगी बालको के अतिरिक्त, प्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन और श्वसनी दर्शन परीक्षाये भी स्थानिक सवेदनाहरण करके की जा सकती है। श्वसनी की भिन्न-भिन्न शाखाओ की परीक्षा के लिये भी विशेष दूरदर्शी उपकरण (telescopic apparatus) आजकल उपलब्ध है।

वायुमार्ग मे आगन्तुक शल्य (foreign bodies in passages)

स्वरयन्त्र मे आगन्तुक शल्य विरल है। मुख्यतया नासिका द्वारा आने वाले शल्य ग्रास प्रणाल के ग्रैव भाग मे रुक जाते हैं या कण्ठद्वार द्वारा श्वसनियो मे चले जाते हैं। आहारग्रास के समान बड़े आकार वाले शल्य स्वरयन्त्र मे अटक जाने पर तत्काल घातक होते है।

स्वरयन्त्र मे निकलने के पश्चात शल्य श्वास प्रणाल या श्वसनी वृक्ष (bronchial tree) के किसी भी भाग मे कही भी पहुँच कर अटक सकता है, प्राय वह दक्षिण मुख्य श्वसनी मे जाता है। अभिश्वसन (inhalation) का इतिवृत्त न मिलना सम्भव है। बालक असभीत होने से कारण नही बताते और वयस्को मे निद्रा मे, मद्य से मूछित होने या संवेदनाहरण मे शल्य श्वास द्वारा भीतर चले जाते है। मुँह मे शल्य के उपस्थित होने पर, पीछे से तमाचा मारने पर बालक अकस्मात वेग से श्वास लेता है और शल्य श्वास प्रणाल या श्वसनी मे चला जाता है। बालको मे शल्य अधिक मिलते है।

प्राथमिक लक्षण, खासी और सास घुटना, अज्ञात के समान हो जाना है। सन्देहजनक लक्षण विलम्ब से प्रकट हो सकते हैं। वानस्पतिक शल्यो मे जैसे मटर, शुष्क-फल, या अन्न के दानो मे विलम्ब कम होता है। ये शल्य के स्थान पर दोनो ओर तीव्र शोथयुक्त प्रतिक्रिया उत्पन्न करते है, कुछ रोगियो मे उच्च ताप हो जाता है, फुप्फुसपात (atelectasis) तथा वातस्फीति (emphysema) तक हो सकते है। चिकित्सा न होने से वे घातक होते है।

अवानस्पतिक पदार्थ पिन, बटन, कालर मे लगाने का बटन आदि अवरोध के कम या अधिक होने के अनुसार लक्षण उत्पन्न करते है। प्रारम्भ मे कोई लक्षण न हो, आगे चलकर खासी, बलगम, रक्त निकलना और दमे के समान सीत्कार करना हो जाते है। फुप्फुसपात (collapse of lung) और वातस्फीति भी कुछ अश तक हो सकते है।

एक्सरे परीक्षा, विशेषकर एक्सरे अपार्य (radioopaque) पदार्थों के लिए सहायक होती है। प्रत्यक्ष श्वसनी दर्शन करना चाहिये जिसके द्वारा निदान और शल्य का अपहरण दोनो हो सकते हैं। निम्न खण्ड श्वसनी मे लघु शल्य पहुच जाने पर वक्ष छेदन आवश्यक हो सकता है।

स्वरयत्र के रोग (diseases of larynx)

तीव्र साधारण स्वरयन्त्र शोथ (acute simple laryngitis)

यह स्वरभग (hoarseness) का सबसे साधारण कारण होता है। वह

तीव्र श्वसनपथ सक्रमण के पश्चात होता है। विवरो के शोथ, अतिभाषण और सिगरेटजन्य क्षोभ रोग की प्रवृत्ति उत्पन्न करते है। स्वरभग के साथ, रोगी गले मे वेदना या बेचैनी तथा निगरण कष्ट अनुभव करता है। इतिवृत्त और अप्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन से निदान किया जाता है।

चिकित्सा

वाणी का पूर्ण विश्राम सबसे आवश्यक है, रोगी भी विश्राम करे। भाप का अभिश्वसन (ınhalatıon) और चूपिकाएँ (lozenges) शामक होती हे। तीव्र दशा मे प्रतिजीवी देने चाहिये।

तीव्र स्वरयन्त्र-श्वासप्रणाल-श्वसनी शोथ (acute laryngo-tracheo-bronchitıs)

यह रोग, शिशुओ और छोटे बच्चो मे होता है। तीव्र लक्षण शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते है। वे उच्चताप, शुष्क कफ और स्वरभग, श्वासकष्ट और श्यावता (dyrpnoca, cyanosıs) तथा निस्राव के जाने से श्वसनिकाओ के अन्तर्रोध से उत्पन्न फुप्फुसपात और वातस्फीति हैं।

चिकित्सा

रोगी को गरम तथा आर्द्र (moıst) कमरे मे रखना और प्रतिजीवियो तथा आक्सीजन का प्रयोग कराना चिकित्सा के साधन हैं। स्रावो के निकलने के लिए श्वास प्रणाल छिद्रीकरण या श्वसनीदर्शन आवश्यक हो सकते है।

स्वरयन्त्र का डिप्थीरिया (laryngeal dıphtherıa)

यह वास्तव मे ग्रसनी डिप्थीरिया का प्रसार होता है। अन्य लक्षण स्वर-भग, कफ, घर्घर और विवर्धित जीवविपरक्तता है। स्वाब परीक्षा से रोग-निदान की पुष्टि होती है। प्रत्यक्ष स्वर यत्र दर्शन की सहायता से स्वाब बनाया जाता है, यदि ग्रसनी आक्रान्त नही होती।

चिकित्सा

ग्रसनी डिप्थीरिया के समान चिकित्सा की जाती है। वायुमार्ग को खुला रखने के लिए श्वास प्रणाल छिद्रीकरण (tracheostomy) या नलिका प्रवेशन (ıntubatıon) आवश्यक हो सकते है।

चिरकारी सामान्य स्वरयत्र शोथ (chronic simple laryngitis)

यह तीव्र शोथ के पश्चात् हो सकता है या वाणी के अनुचित उपयोग से धीरे-धीरे बिना लक्षण उत्पन्न किए हो जाता है, दातों, टौंसिलों या विवरों के सक्रमण, धूम्र (fumes) या धूलजन्य चिरकारी क्षोभ, या अल्कोहल अथवा तम्बाकू पीने की अधिकता से भी यह दशा उत्पन्न हो सकती है। मुख्य लक्षण स्वरभग और खाँसी हैं, जो कम या अधिक हो सकते हैं।

चिकित्सा

कारण की चिकित्सा की जाती है और वाणी को विश्राम दिया जाता है।

स्वररज्जुओ की श्वेतशल्कता या लूकोप्लेकिया (leukoplakia of vocal cords)

इस दशा मे स्वररज्जुओ पर धूसर-श्वेत रग के निक्षेप (deposits) बन जाते हैं। अन्यत्र के रोग के समान यह पूर्वकैंसरीय दशा समझी जाती है। यही इसकी विशेषता है। रोग का कारण अज्ञात है।

शोफ (oedema)

वयस्को मे स्वरयन्त्र का शोफ प्राय. अधिकण्ठद्वारी (supraglottic) होता है किन्तु बालको मे अधोकण्ठद्वारी (infraglottic) भी पाया जाता है। वह कितनी ही दशाओ के कारण होता है, स्वरयत्र शोफ ग्रसनीपश्च विद्रधि, भाप या वाष्पो का अभिश्वसन, एलर्जी, हृदय या वृक्क के रोगो मे सर्वाग शोफ का अश होना तथा अन्य भी ऐसी ही दशाये है। उससे उत्पन्न होने वाले लक्षण कष्ट श्वास (dyspnoea), घर्घर और स्वरभग है।

चिकित्सा—कारण की जाती है, दशा दारुण होने पर श्वासप्रणाल छिद्रीकरण आवश्यक हो सकता है।

यक्ष्मा (tuberculosis)

स्वरयत्र का यक्ष्मा सदा राजयक्ष्मा (फुप्फुस का) के पश्चात्, उसका द्वितीयक रूप होता है और ग्रसनी यक्ष्मा की अपेक्षा अधिक रोगियो मे पाया जाता है। लक्षण स्वरभग, जो बढकर स्वर हानि (aphonia) हो जाती है, निगरण मे वेदना तथा कान मे वेदना प्रतीति है। खासी तथा राजयक्ष्मा के अन्य लक्षण उपस्थित होगे। स्वररज्जु और अन्तरादर्वीकल्पा (interarytenoid)

प्रदेश विशेषकर आक्रान्त होते है ।

चिकित्सा

प्राथमिक रोग की चिकित्सा तथा पूर्ण वाणी विश्राम ।

लूपस—स्वरयन्त्र का लूपस विरल है और साधारणतया नासिका या नासाग्रसनी के रोग का द्वितीयक होता है ।

सिफिलिस—यदि किसी शिशु मे स्वरभग (hearseness) के साथ सहज सिफलिस के अन्य लक्षण भी हो तो स्वरयत्र की सिफिलिस का सदेह करना चाहिए । उपार्जित (acquired) सिफिलिस मे गमा बनकर वहाँ व्रणोत्पत्ति और उसका नाश करता हे । पर्युपास्थिशोथ (perichondritis) और स्वरयन्त्र सकीर्णता (stenosis) अनुसरण कर सकते हे ।

चिकित्सा

सामान्य प्रकार की चिकित्सा की जाती है । स्वरयन्त्र अवरोध के लिए श्वासप्रणाल छिद्रोकरण आवश्यक हो सकता है ।

कुष्ठ (leprosy)

स्वरयन्त्र के साथ त्वचा, नासिका और ग्रसनी का कुष्ठ भी होता है । वह कष्ट श्वास और स्वर भग के रूप मे प्रकट होता है । कठच्छद मे पर्वकीय अन्त. सरण (nodular infiltration) होकर वहाँ सकोच तथा सकीर्णता (stenosis) उत्पन्न हो जाते हे ।

चिकित्सा—सामान्य सिद्धान्तो के अनुसार की जाती हे । आवश्यक होने पर श्वास प्रणाल छिद्रोकरण किया जाता है ।

अगघात (paralysis)

स्वरयन्त्र के अगघात मे एक या दोनो स्वररज्जुओ की गति विकृत या अनुपस्थित हो सकती है । इस दशा का कारण स्वरयन्त्र मे नही होता, किन्तु उससे बाहिर देखना होता है, जैसे आघात या शस्त्रकर्म से ग्रीवा मे आवर्तक स्वरयत्र तत्रिका (recurrent larygeal nerue) का आक्रान्त हो जाना, वक्ष मे महाधमनी चाप का एन्यूरिज्म अथवा प्लूरा के आसजन (adhesions), कभी-कभी अगघात का कारण करोटि (skull) मे मिलता है ।

विशेष लक्षण स्वरभग है जो एकपार्श्वी अगघात मे प्रसामान्य रज्जु की पूरक गति (compensatory movement) के कारण अनुपस्थित हो सकता

है। विशेष अगघातित पेशियो को विशेषज्ञ अप्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन द्वारा पहिचान सकता है। रोग के कारण की ओर ध्यान देना चाहिए। लगभग तृतीयांश एकपार्श्वी रोगियो मे कोई कारण नही मिलता।

चिकित्सा और प्राग्ज्ञान (prognosis) कारण पर निर्भर करते है। श्वासावरोध (asphyxia) के रोगियो मे श्वास प्रणालछिद्रीकरण करना आवश्यक हो सकता है जो जीवनपर्यन्त बना रहेगा।

कार्यात्मक स्वरहानि (functional aphonia) या वाचाहानि

इस दशा मे रोगी किसी मानसिक अभिघात (psychic trauma) के पश्चात, विना किसी पेशी के अगघात के, वाक्-शक्ति खो देता है। अल्प-आयु की युवतियो मे यह बहुधा पाया जाता है। अनेक बार वाचा उतनी ही अकस्मात् लौटती है जितने अकस्मात् उसका ह्रास हुआ था।

चिकित्सा - प्रोत्साहन तथा मानसिक चिकित्सा आवश्यक है।

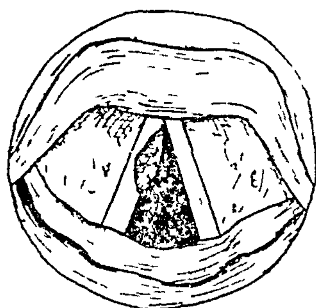
अकुरार्बुद (papilloma)

वयस्को मे स्वररज्जु पर प्राय एक अर्बुद होता है, बालको मे वे प्रायः कई होते है और सक्रामी चर्मकील (infective warts) की भाति आचरण करते है। श्वसन मे बाधा होने पर स्वरभग और कष्टश्वास उपस्थित होते है। निदान और अपहरण प्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन से किया जाता है। पुनरावृत्ति अनेक बार होती है। कष्टश्वास को दूर करने के लिये श्वास-प्रणाल छिद्रीकरण आवश्यक हो सकता है।

कार्सिनोमा

कार्सिनोमा सबसे अधिक होने वाला स्वरयन्त्र का दुर्दम अर्बुद है और प्रायः शल्की कोशिकाकृत प्रकार का होता है। कारण अज्ञात है, किन्तु बहुधा दत-पूतिता के साथ होता है। वह अन्तस्थ (intrinsis) कहा जाता है जब वह निलय, निलय बन्धो, (ventricles, ventricular bands) स्वररज्जुओ और अवकठद्वार अवकाश को आक्रान्त करता है। बहिस्थ (extrinsic) कार्सिनोमा दर्वीकल्प-कठच्छद पुटको (aryepiglottifcolds), तुम्बिकारूप खात (pyriform fossa), मुद्रिका उपास्थिपश्च प्रदेश और स्वरयन्त्र के क्षेत्र को आक्रान्त करता है।

स्वरयन्त्र के कैंसर के निदान की सदा प्रत्यक्ष स्वरयन्त्र दर्शन से पुष्टि करनी चाहिये।



चित्र 16 दक्षिण स्वरऋजु का कैंसर

अन्तस्थ कैंसर (intrinsic cancer)

अन्तस्थ समूह, मुख्यतया स्वररज्जु कैंसर शीघ्र ही दु साध्य स्वरभग उत्पन्न करता है (चित्र 16)। यह स्मरण रखना चाहिए कि 40 वर्ष से ऊपर की अवस्था वालो मे यदि स्वरमग (horseness) 3 सप्ताह की उपयुक्त चिकित्सा पर भी ठीक न हो तो वह कार्सिनोमा है, जब तक कि उसको विपरीत प्रमाणित न कर दिया जाय। इससे प्रारम्भ पर ही इस प्रदेश मे कैंसर के निदान मे सहायता मिलेगी और चिकित्सा के परिणाम भी सन्तोषजनक होगे। उपलब्ध चिकित्सा-विधि रैडियम चिकित्सा या आक्रान्त स्वररज्जु का शस्त्रकर्म द्वारा अपहरण है। यदि स्वररज्जु के अतिरिक्त अन्य प्रदेश भी आक्रान्त है तो निर्मूलक सर्जरी आवश्यक होगी। स्वररज्जु के कैंसर का प्राग्ज्ञान (prognosis) यदि निदान और चिकित्सा प्रारम्भिक दशा मे किये गये है, शरीर के अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक अनुकूल है।

बहिस्थ (extrinsic) कैंसर

बहिस्थ कैंसर के अनिश्चित प्रारम्भिक लक्षण होते है और रोगी के डाक्टर को दिखाने के लिए आने तक रोग विस्तृत हो चुकता है तथा स्थलान्तरण भी हो चुकते हैं। रोगी वेदना, निगरण कष्ट और शरीर-भार का ह्रास भी वतलाते है। इन रोगियो मे किरणन चिकित्सा अथवा सर्जरी के सफल परिणाम नही होते और प्राग्ज्ञान अवाछित होता है।

श्वास-प्रणाल छिद्रीकरण
(Tracheostomy)

श्वास प्रणाल छिद्रीकरण श्वास प्रणाल मे छिद्र करने का शस्त्रकर्म है जो

श्वसन मे तीव्र या भयप्रद अवरोध को दूर करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी जहाँ अवरोध होने का डर होता है तो इसको पूर्व कर्म की भाँति करते हैं।

कब करना आवश्यक है (indications)।

जिन दशाओ मे शस्त्रकर्म आवश्यक होता है, उनको निम्न प्रकार सामूहित कर सकते है —

(1) श्वास के साथ आगन्तुक शल्य के स्वरयन्त्र मे जाने पर तत्काल वेध द्वारा (stalbs) शस्त्रकर्म करना होता है।

(2) दाहक (corrosives) या द्रव-दहन (scald) जिससे स्वरयन्त्र प्रघाण का शोफ हो जाता है।

(3) अभिघातज क्षत, स्वरयन्त्र या श्वास-प्रणाल मे।

(4) शोथ (क) तीव्र—जैसे स्वरयन्त्र का डिप्थीरिया, स्वरयन्त्र-श्वास प्रणाल-श्वसनी-शोथ (laryngo-tracheo-bronchitis), गैसीय धूम्र का अभि श्वसन (inhalation of gaseous fumes), अथवा वाहिका-तँत्रिक शोफ (angioneurotic oedema), (ख) चिरकारी विशिष्ट दशाये—जैसे यक्ष्मा, लूपस, सिफिलिस या कुष्ठ।

(5) अर्वुद, जैसे बालको मे बहु-अकुरार्वुद (multiple papilloma) या स्वरयन्त्र का कार्सिनोमा।

(6) द्विपार्श्वी स्वरयन्त्र अगघात (bilateral laryngeal paralysis) जिसमे अपावर्तक पेशियाँ (abductors) आक्रान्त होती है।

(7) शस्त्रकर्मपूर्व (preoperative), जब कोई वृहदशस्त्रकर्म, जिह्वामूल ऐसी स्थिति मे करना हो।

(8) शस्त्रकर्म पश्चात (postoperative), यदि स्वरयन्त्र मे अवरोध उत्पन्न हो जाय।

(9) सिर के आघात, जब रोगी के गले के स्रावो को बाहर निकालने की असमर्थता के कारण उनके श्वास के साथ वायुमार्गो मे जाने का डर हो।

(10) केन्द्रीय प्ररूप (bulbartype) की पोलियो। 9 और 10 मे उद्देश श्वास-प्रणाल छिद्रीकरण के पश्चात चूषण (suction) प्रयोग करने का है जिससे निम्न वायु मार्ग मे स्राव एकत्र न हो।

(11) टिटेनस—जब आक्षेप से रोगी के साँस रुध जाने का भय हो।

प्रक्रम (technique)

सबसे मुख्य बात रोगी के सिर को पूर्णतया स्थिर रखना है। समस्त शस्त्र-

कर्म ग्रीवा की मध्यरेखा मे किया जाय और सारे समय रक्तस्राव को उत्तम प्रकार से रोक रखा जाय।

शस्त्रकर्म स्थानिक सवेदनाहरण मे करना चाहिए। कधो को तकिए पर उठा दिया जाय जिससे ग्रीवा प्रसारित रहे। छेदन पर्याप्त लम्बाई का, मध्य रेखा मे ऊर्ध्वाधर, ऊपर मुद्रिका उपास्थि की ऊर्ध्वधारा से नीचे उरोहस्तक (manubrium sterni) की ऊर्ध्वधारा तक करना चाहिए जिससे त्वचा और प्रावरणी विभक्त हो जॉय। उरोकठिका (sternohyoid) और उरो वटुका को मध्य रेखा से कर्तनी द्वारा व्यवच्छेदन (dissection) से पृथक करने के पश्चात उनको पार्श्वों की ओर निवर्तित कर दिया जाता है। पार्श्व निवर्तन दोनो ओर को समान होना चाहिये जिससे श्वास प्रणाल सदा क्षत के बीच मे रहे।

प्रावरणीकृत आवेष्टन के छेदन के पश्चात् अवटुका ग्रथि के इस्थमस को मध्यरेखा मे विभक्त करना उचित है। किन्तु उसको ऊपर या नीचे को निवर्तित भी किया जा सकता है। श्वास प्रणाल के दूसरे, तीसरे और चौथे वलयो को स्पष्ट किया जाता है और स्केल्पल की नोक को प्रविष्ट करके दो वलयो को, चौथे और तीसरे को, नीचे से ऊपर की ओर को विभक्त करने के पश्चात तुरन्त ही श्वास प्रणाल विस्फारक (tracheal dilator) को प्रविष्ट कर श्वास प्रणाल को खोल दिया जाता है। इस पर रोगी वेग से श्वास भीतर लेगा और कुछ क्षणो तक खॉसता रहेगा। खासी बन्द होने के पश्चात् श्वास प्रणाल के छेदन के किनारो को काटकर छिद्र को अडाकार बना देना उचित है। इसका ध्यान रहे कि कटे भाग श्वास प्रणाल मे न चले जाये। छिद्र को बढाने के पश्चात श्वास-प्रणाल छिद्रीकरण नलिका (tracheostomy tube) को, जिसमे पहिले ही फीता पिरो दिया गया है, उसमे प्रविष्ट कर दिया जाता है और फीतो को ग्रीवा पर पीछे की ओर बाध दिया जाता है। त्वचा के छेदन के किनारो को ढीला मिलाया जाता हे, उनको कस कर मिलाने से अभिघातज वातस्फीति (surgical emphysema) हो सकती है। व्रणोपचार केवल गौज से किया जाता है जिसको नलिका के चारो ओर भर देते है जिससे क्षत के किनारे तथा त्वचा सुरक्षित रहे। नलिका के मुख पर भी गौज लगा देना चाहिए जिससे बाह्य पदार्थ श्वास के साथ भीतर न जा सके।

पश्चात चिकित्सा (*after treatment*)

शस्त्रकर्मपश्चात आयोजन बडी सावधानी से करना चाहिए, शस्त्रकर्म के पश्चात रोगी बोल नही सकता। इस कारण यदि कोई आपत्ति उपस्थित हो

गई तो वह सहायता के लिए चिल्ला भी न सकेगा। उसको शैया मे पीठाश्रय (backrest) या तकिये लगाकर पीछे को झुकाकर रखा जाय; कमरे को केतली से उबलते जल से निकलने वाली भाप द्वारा आर्द्र रखना उचित है और स्रावो का तत्काल आचूषण (aspiration) किया जाय। भीतर की नलिका (बाहरी नलिका के भीतर की) को नर्स प्रति छ घटे पर या इससे भी कम समय के अन्तर से निकालकर स्वच्छ करती रहे। बाह्य नलिका भी 24 घटे मे एक बार बदल दी जाय। एक और श्वास-प्रणाल छिद्रीकरण नलिका और विस्फारक सदा रोगी के पास रखे रहे जो दुर्घटना पर तत्काल उपलब्ध हो सके।

7

उदर भित्ति और पर्युदर्या

(Abdominal wall and Peritoneum)

सी० पी० वी० मेनन (C. P V Menon)

उदर भित्ति

उदरभित्ति उदर के आशयो का एक आच्छादन है और अपनी पेशियो की तान (tone) द्वारा उनको यथास्थान रखती है। इस तान के ह्रास पर आशय नीचे को खिसकने लगते है जिससे उदर मे बेचैनी और तन्त्रिकावसाद (neuresthenia) के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

उदरभित्ति समोदरिका (rectus abdominis), आभ्यन्तर और बाह्य तिर्यक औदरिकाओ (internal and external obliques) तथा अनुप्रस्थ औदरिका (transversus abdominis) पेशियो की बनी हुई है। बरम्बार सगर्भता (prgnancy), स्थूलता (obesity) और व्यायाम न करने से ये दुर्बल हो जाती हैं जिससे मध्यायु के पश्चात् 'तोद' निकल आती है।

हर्निया

उपर्युक्त पेशियों के स्थानिक अगघात से, जो पोलियो अथवा उनकी पोषक तन्त्रिका के क्षत से हो सकता है, हर्निया उत्पन्न होती है। वक्षण प्रदेश, नाभि और उसके समीप का क्षेत्र तथा उदर मध्य रेखा (linca alba), जो सभाव्य दुर्बलता के स्थान है, उनमे भी हर्निया हो सकती है। जन्म के समय कभी-कभी नाभि पूर्णतया बन्द नही होती और उसमे इतनी बडी हर्निया हो

सकती है कि आंत्र का अधिकतर भाग उस ही में हो और सर्जरी द्वारा कुछ भी न किया जा सके। किन्तु उससे कम, लघु आकार होने पर पर्युदर्या के स्तर पर त्वचा का आच्छादन बनाने का प्रयत्न किया जाता है, उस दशा में आंत्र केवल पतली पर्युदर्या से ढका होता है।

उदरमध्य रेखा में बहुत बार लघु न्यूनतायें होती हैं जिनके द्वारा पर्युदर्या-बाह्य वसा और पर्युदर्या की एक थैली (pouch) निकल आती है। उनसे कोई लक्षण नहीं उत्पन्न होते और उनके लिए कुछ करना भी आवश्यक नहीं है। यदि वे वेदना का कारण हो जावें या वसा अथवा आँत्र का कुछ भाग उनमें फस जाय तो शल्य चिकित्सा की आवश्यकता हो सकती है जो कोश को व्यवच्छेदन करके निकालना और सिलक से न्यूनता को सीकर बन्द कर देना होती है।

अन्यत्र होने वाली हर्निया का 12 वे परिच्छेद में वर्णन किया गया है।

उदर भित्ति के छेदन (abdominal incisions)

सर्जन को उदर में उपस्थित दशा का समाधान करने के लिये उदरभित्ति में उपयुक्त छेदन करने पडते हैं और कभी-कभी इस स्थिति में हर्निया उत्पन्न हो जाती है, जिसको 'छेदन हर्निया' (incisional hernia) कहा जाता है। इस कारण उदर में पहुचने के मार्ग का ऐसा विधान करना चाहिये कि इस प्रकार की दुर्बलता की उत्पत्ति का न्यूनतम अवसर रहे। यह सत्य है कि किसी



चित्र 17 नवजात शिशु में नाभि बाह्य हर्निया, जिसमें क्षुद्रान्त्र के कुंडल दीख रहे है जिनपर कोई आच्छादन नही है। शिशु जिवित नही रहा।

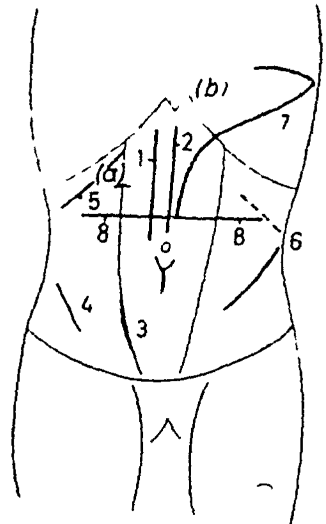
भी प्रकार के छेदन को उर्ध्वाधर (vertical), अनुप्रस्थ (transverse) या तिर्यक-सावधानी मे बन्द करने और सक्रमण न होने पर हर्निया नही उत्पन्न होती, तो भी कुछ प्रामाणिक विधियो का प्रयोग प्रचलित है।

परामध्यच्छेदन (paramedian incision)मध्यरेखा के एक ओर होता है, उसका मुख्य भाग नाभि से ऊपर हो या नीचे हो। छेदन मध्य रेखा से कुछ दूर पर किया जाता है और समोदरिका के अग्र पिधान (anterior sheath of rectus) को भी उसी रेखा मे छिन्न करके समोदरिका को पार्श्व और विस्थापित करने के पश्चात पिधान और पर्युदर्या को भी उसी रेखा मे खोला जाता है। उदर के शस्त्र-कर्मो मे इसी छेदन का अधिकतम प्रयोग किया जाता है।

मध्यरेखा छेदन (midline incision), मध्य उदर रेखा द्वारा, नाभि से ऊपर या नीचे। इसमे उदर मे तत्काल पहुच जाते है। किन्तु इससे शस्त्रकर्म पश्चात हर्निया होने की, विशेषकर अवनाभि (subumbilical) क्षेत्र मे, प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

परासमोदर छेदन (pararectal) (बैटिल, Battle) मे किया जाता है और समोदरिका को अभिमध्य और विस्थापित कर देते है। इसमे समोदरिका की सभरण तन्त्रिका के क्षत होने का डर रहता है और उसको बचाने पर स्पष्टीकरण सकुचित होता है।

मैकबर्नी मार्ग (Mc Burney approach) मे पेशियो या उनके सूत्रो को



चित्र 18—छेदनो के प्रकार

1 परामध्य
2 मध्यरेखा
3 बैटिल
4 मैकबर्नी
5 कोकर
6 तिर्यक्, वृहदान्त्र और वृक्क के लिये
7 उदर-वक्षीय
8 अनुप्रस्थ परामध्य छेदन के विस्तार
(a) मेयो-रौब्सन, (b) रुथरफोर्ड-मैरिसन

हटाया जाता है जिससे पेशी और तन्त्रिकाओं को आघात न पहुँचे। उण्डुक-पुच्छ के अपहरण के लिए, जहाँ कठिनाई की आशंका नहीं होती, इसका उपयोग किया जाता है। वाम वंक्षण बृहदान्त्र छिद्रीकरण (left inguinal colostomy) के लिए भी इसी प्रकार मार्ग बनाया जा सकता है। किन्तु यह मार्ग छोटा होता है, इस कारण मार्ग का अनावरण (exposure) सीमित होता है।

तिर्यक छेदन (oblique incisions), जैसे, पित्ताशय के लिए कोकर (kocher's) का अधोपर्शुक (subcestal) छेदन और बृहदान्त्र तथा पर्युदर्यापश्च संरचनाओं के शस्त्रकर्मों के लिए पार्श्व (flank) पर छेदन किए जाते हैं।

उदर-वक्ष (abdominothoracic) छेदन आमाशय के बुध्न, निम्न ग्रास प्रणाल, प्लीहा आदि पर शस्त्रकर्म के लिए आवश्यक हो सकता है।

अनुप्रस्थ (transvere) छेदन, समोदरिकाओं द्वारा उदरगुहा के सम्पूर्ण अन्वेषण के लिए कभी-कभी उपयोगी होता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अंगों के अधिक स्पष्टीकरण के लिए अनुप्रस्थ या तिर्यक छेदन ऊर्ध्वाधर छेदन के साथ मिला दिये जाते हैं। ऐसे छेदन सावधानी से स्तर प्रति स्तर बन्द करने चाहिए।

आघात—उदर के अभिघात संवृत्त (closed) या अनावृत्त (open) दोनों प्रकार के हो सकते हैं। संवृत्त अभिघात साधारण नील (contusion) हो सकते हैं अथवा वे गंभीर हो सकते हैं जैसे पहियों के नीचे आ जाने पर। ऐसी दशा में आभ्यन्तर रक्त-स्राव या रिक्त आशय के विदार का बोध करने के लिए सावधानी से परीक्षा करनी चाहिए। स्थानिक काठिन्य (localised rigidity) होने पर इसका सन्देह करना उचित है।

नाभि के रोग

नाभि के परिवर्धन के समय पूर्णतया बन्द न होने के अतिरिक्त कभी-कभी पीतक-आन्त्र वाहिनी (vitellointestinal duct) खुली हुई (patent), जो मेकिल अपवर्त (meckel's diverticulum) भी कही जाती है, तथा खुला हुआ यूरेकस (urachus) भी मिल जाते हैं, अथवा उसमें ग्रन्थार्बुदीय (adenomatous) पौलिप हो सकता है।

वयस्कों में अश्मरी या एकत्रित मल के संक्रमण के कारण नाभि से निस्राव होता रहता है अथवा कुछ विशेष प्रकार के पर्युदर्या शोथ (peritonitis), प्राय क्षयजन्य (tuberculous) या पैत्तिक (biliary), के कारण नालव्रण (fistula) बन जाता है।

अर्बुद (tumours)

उदर भित्ति मे, शरीर के अन्य स्थानो की भाति, सयोजी ऊतक अर्बुद उत्पन्न हो सकते है। चिरकालीन क्षोभ (irritation) से त्वचा का इपीथीलियोमा हो सकता है, जैसे काश्मीर मे कागडी केन्सर, या म्यूलस्पिनर (mule-spinners cancer) वालो का कैन्सर,। उदरान्तर कार्सिनोमा की विलबित (late) अवस्था मे उदरत्वचा मे कार्सिनोमेटी पर्व (carinomatous nodules) बन जाते है।

डेस्मायड (desmoid) अर्बुद उदर भित्ति का विशेष अर्बुद है। उसकी सरचना कठिन ततु अर्बुद के समान होती है। वह समोदरिका पेशी मे होता है और अपहरण के पश्चात पुनरुत्पत्ति की उसमे बहुत प्रवृत्ति होती है। विस्तृत उच्छेदन उसकी चिकित्सा है। इससे उत्पन्न हुई भित्ति की दुर्बलता को दूर करने के लिए किसी प्रकार का प्लास्टिक शस्त्रकर्म करना पडेगा।

पर्युदर्या (Peritoneum)

पर्युदर्या उदर गुहा की आस्तर कला (lining membrane) है। उससे कुछ तरल का भी स्राव होता है जिससे आशयो की गति मे सहायता मिलती है। इस कला के शोथ (तीव्र या चिरकालीन) से तरल का निस्राव बढ जाता है जिसके स्वभाव या स्वरूप सक्रमण की तीव्रता और कारण के अनुसार भिन्न होते हैं।

सर्वांग शोथ उत्पन्न होने की दशा मे और प्रति-हारी अतिरक्तदाव (portal hypertension) तथा हृद्पात (cardiac failure) मे उदर गुहा मे द्रव के वृहद सग्रह बन जाते हैं।

तीव्र पर्युदर्या शोथ (acute peritonitis)

तीव्र पर्युदर्या शोथ विसरित (diffuse) या स्थानीकृत (localised) हो सकता है।

तीव्र विसरित पर्युदर्या शोथ (acute diffuse peritonitis)

तीव्र विसरित पर्युदर्या शोथ बाहर से सक्रमण के पहुँचने से, जैसे वेधक क्षतो (penetrating wounds) द्वारा अथवा अभिघात (trauma) या रोग से किसी रिक्त (hollow) आशय के फट जाने से (उसके स्थानीकृत होने के

पूर्व) रोग की उत्पत्ति होती है। यह समझ लेना चाहिए कि विसरित पर्युदर्या शोथ सामान्य (general) या सर्वांग पर्युदर्या शोथ नहीं होता जिसमें पर्युदर्या का प्रत्येक भाग आक्रान्त हो जाय। उसके कुछ क्षेत्र असंक्रमित रह जाते हैं, चिकित्सा मे इन क्षेत्रो की सावधानी सहित सुरक्षित होने से रक्षा करनी चाहिए।

लक्षण—प्रारम्भ मे उदर मे तीव्र वेदना होती है। श्वास उथले, छोटे, (shallow) और त्वरित (hurried) होते हैं और उदर भित्ति श्वास के साथ गति नहीं करती। प्राथमिक स्तब्धता कुछअश तक हो सकती है। क्षत की स्थिति पर सबसे अधिक कठोरता या दृढता (rigidity)और स्पर्शासहता (tenderness) होती है। यह अवस्था पर्युदर्या के क्षोभ (irritation) की है और इसी अवस्था पर निदान और तत्काल तत्पर सर्जरीय चिकित्सा आवश्यक है।

रोग का भावी क्रम संक्रमण के विस्तार और कारक जीवाणुओं की प्रबलता पर निर्भर करता है। आमाशय तथा ऊर्ध्व जठरान्त्र पथ (upper gastro-intestinal tract) मे जीवाणुओं की प्रबलता कम होती है। किन्तु नीचे के आन्त्र मे जैसे उण्डुक पुच्छ और बृहदान्त्र मे जीवाणु अत्यन्त प्रबल होते हैं। वेदना और स्पर्शासहता और विस्तृत हो जाते हैं। प्रतिक्रिया रूप ज्वर हो जाता है और नाडी की गति बढ जाती है। घातज अन्त्रावरोध (paralytic ileus) के कारण उदर का आध्मान (meteorism) बढता जाता है और मल या वायु तक का त्याग नहीं होता। वमन होने लगते हैं जो प्रथम पैत्तिक (bilious) होते हैं, किन्तु आगे चलकर भूरे और दुर्गन्धि युक्त हो जाते हैं। वमन प्रत्यावाही (regurgitant) होते हैं, न कि प्रक्षेपी (projectile), जैसे आन्त्रावरोध मे होते हैं। परीक्षा पर कठोर, फूला हुआ, आध्मान युक्त उदर मिलता है जिसमे मुक्त तरल (free fluid) की उपस्थिति के चिह्न मिल सकते हैं। आत्र की पुरःसरण गतियो (perisaltic movement) का शब्द नही सुनाई पडेगा।

जीवविषरक्तता (toxaemia) तथा निर्जलीकरण (dehydration) के लक्षण, सूखा हुआ चेहरा, शुष्क मैली जिह्वा, ज्वर, तीव्र नाडी और भी स्पष्ट हो जाते हैं और अन्त को मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—निदान होते ही शस्त्रकर्म करके क्षत की उचित आवश्यक चिकित्सा का आयोजन किया जाय। विलम्बित रोगियो मे शस्त्रकर्म के पूर्व शरीर का जल और विद्युत-अपघट्यो (electrolytes) के सतुलन को सुधारने और आध्मान को जठर या आन्त्र चूषण (gastric or intestinal suction)

द्वारा दूर करने मे कुछ समय लगाना लाभकारक होगा।

शस्त्रकर्म मे क्षत तक पहुँचकर उसका शीघ्रता और कौशल सहित उपयुक्त विधान करना चाहिये। पर्युदर्या गुहा मे जो निस्राव एकत्र हो उसको आचूषण द्वारा निकाला जाय, गुहा के निरर्हण (drainage) का प्रबन्ध तभी करना उचित है जब गुहा मे निस्राव की अधिक मात्रा एकत्र हो। प्रतिजीवी विलयन का पर्युदर्या गुहा से बिन्दुपादन करना (instillation) लाभदायक होता है। शस्त्रकर्म के पश्चात उपयुक्त प्रतिजीवी का दैहिक प्रयोग, जठर चूषण और घातज अन्त्रावरोध की चिकित्सा करनी चाहिए। अन्तर्शिरीय मार्ग द्वारा तरलो का शरीर मे प्रवेश तब तक जारी रखा जाय जब तक आन्त्रपुरःसरण (peristalsis) फिर से न होने लगे और रोगी मुँह से आहार ग्रहण करने लगे।

शस्त्रकर्म के पश्चात होने वाले पर्युदर्या शोथ मे तीव्र वेदना और तख्ते के समान उदर भित्ति की कठोरता नही होती और निदान घातज आन्त्रवरोध के लक्षणो के बने रहने से किया जाता है।

तीव्र स्थानीकृत पर्युदर्या शोथ (acute localised peritonitis)

स्थानीकृत पर्युदर्याशोथ बहुधा कारक क्षत के चारो ओर उपस्थित होता है, जैसे उण्डुक पुच्छशोथ, डिम्बवहाशोथ (salpingitis), पित्ताशय शोथ (cholecystitis), स्थानीकरण वपा (omentum) और चारो ओर के आशयो के कारण होता है जो शोथकेन्द्र के चारो ओर आसजन (adhesions) बनाते है। आसजनो का बनना सक्रमित पदार्थ के पर्युदर्या गुहा मे पहुचने की शीघ्रता पर निर्भर करता है। रिक्त आशयो के विदरण (perforation) यदि लघु है, आशय, अपेक्षत रिक्त है और जीवाणुओ की सख्या थोडी है, जैसे आमाशय या ग्रहणी के लघु विदारो मे होता है, तो स्थानीकरण हो जायगा (आसजनो के बनने से)। यदि विदार बडा है और विदार के समय आमाशय भरा हुआ था, तो विदार के समय सक्रमित पदार्थ का बहुत सा भाग पर्युदर्या गुहा मे शीघ्र ही चला जायेगा और स्थानीकरण के लिये (आसजनो के बनने के लिये) बहुत थोडा समय मिलेगा।

उपर्युक्त चिकित्सा से सक्रमण का शमन हो सकता है अथवा एक विद्रधि बन सकती है।

चिन्ह और लक्षण कारक क्षत के लक्षणो मे मिल जाते है, अथवा उनसे ढक जाते है। स्थानिक चिन्ह वेदना और कठोरता (rigidity) होते है और

विद्रधि बनने पर, यदि परिस्पर्शन सम्भव हो, तो वहाँ एक तनावयुक्त सूजन मिलेगी। श्रोणि विद्रधि (pelvic abscess) मे स्पर्शतरग (fluctuation) प्रतीत होगी। ऊर्ध्वउदर की पूयता (suppuration) अवमध्यच्छद विद्रधि (subphrenic abscess) कही जाती है उसका यहा सक्षिप्त वर्णन उचित है।

अवमध्यच्छद विद्रधि (subphrenic abscess)

मध्यच्छदिका के नीचे का अवमध्यच्छद अवकाश पाच भागो मे विभक्त है जिनमे से तीन दक्षिण ओर और दो बाई ओर हैं। दक्षिण ओर के तीन अवकाशो मे से एक यकृत के अनावृत क्षेत्र (bare area) पर पर्युदर्याबाह्य (extraperitoneal) स्थित है, शेष दोनो अवकाश, अग्र और पश्च, यकृत और और लघुवपा के क्रमश आगे और पीछे स्थित है।

अवकाश मे सक्रमण उण्डुकपुच्छ, पित्ताशय, यकृत विद्रधि या पेप्टिक व्रण से पहुँच सकता है। वह सामान्य पर्युदर्या-शोथ के पश्चात शस्त्रकर्मपश्च उपद्रव के रूप मे हो सकता है। क्षतो के अधिकतर दक्षिण ओर होने से उधर ही विद्रधि लघु कोश की गुहा मे अथवा जठर-यकृत वपा (gastrohepatic omentum) के सामने बन सकती है और अधिकतर जठरव्रण (gastric ulcer) के विदार से बनती है।

अब यह रोग उपयुक्त और तत्काल चिकित्सा के कारण कम होता जा रहा है।

लक्षण—रोग शनै शनै प्रारभ होता है। सभव है कारक क्षत के शमन के एक-दो सप्ताह के पश्चात अथवा शस्त्रकर्म के पश्चात प्रारभ हो। रोगी धीरे-धीरे अधिक रोग-ग्रस्त होता जाता है, नाडी की गति और ताप बढ जाते हैं और सक्रामी प्रक्रम के प्रमाण स्पष्ट हो जाते हैं। श्वेत कोशिका गणना भी बढ जाती है। प्रथम सक्रमण की स्थिति को जानना कठिन होता है। क्षतसक्रमण (wound infection), फुप्फुस उपद्रव तथा श्रोणिउपद्रव का व्यतिरेक (exclusion) करने के पश्चात चिकित्सक अवमध्यच्छद विद्रधि का सदेह करता है। मध्यच्छदिका के नीचे अधिक पूय के एकत्र होने पर स्थानिक लक्षण प्रगट होना प्रारँभ करते है। यकृत का नीचे की ओर विस्थापन होता है, पर्शुक उपान्त (costal margin) के नीचे स्पर्शासहता प्रतीत होती है और परिताडन (percussion) पर अनुनाद (resonance) का क्षेत्र पाया जाता है (विद्रधि मे प्रायः गैस होती है) जो यकृत के अननुनादी क्षेत्र (dull areas) के ऊपर किन्तु फुप्फुस के सकुलित (congested) आधार के अननुनादी क्षेत्र के नीचे, अर्थात्

दोनो के बीच मे स्थित होता है ।

निदान—यह एक्स-रे द्वारा किया जाता है । सूचिका से अन्वेषण भयप्रद है, वह वर्जित है । एक्स-रे चित्र मे मध्यच्छदिका का गुम्बद (dome) उठा हुआ दीखता है और उसके तथा यकृत के बीच से गैस उपस्थित होती है (वाम और आमाशय मे उपस्थित वायु से इसका भ्रम न किया जाय) ।

चिकित्सा

निदान होते ही विद्रधि का निर्हरण करना चाहिए । सबसे अधिक होने वाली पश्च विद्रधि मे पहुँचने का मार्ग उच्छेदित बारहवी पर्शुका की शैया द्वारा है । प्लूरा को अक्षुण्ण रखने की सावधानी रखी जाय और विद्रधि गुहिका मे कुण्ठाग्र व्यवच्छेदन (blunt dissection) द्वारा पहुचकर उसका निर्हरण किया जाय । अग्र विद्रधि तक अधिजठर प्रदेश (epigastric region) मे अधोपर्शुक छेदन (subcostal incision) द्वारा पहुचा जाता है ।

बालको का तीव्र प्राथमिक पर्युदर्या शोथ

बालको मे प्राय. 3 और 9 वर्ष की आयु के बीच मे कभी-कभी एक प्रकार का पर्युदर्याशोथ पाया जाता है जो प्राथमिक होता है, उदर के किसी आशय के क्षत के कारण नही होता । कारण न्यूमोकोकस होता है जो जनेन्द्रियो और फैलोपी नलिका द्वारा पहुचता है, ऐसा माना जाता है । वयस्को मे यह रोग नही होता । उनमे योनिस्राव अम्लिक होते है जो न्यूमोकोकस की वृद्धि के लिए अनुकूल नही होते । चिह्न और लक्षण बहुत कुछ उण्डुक पुच्छ के विदरण पर्युदर्या शोथ के से होते है और रोग का निदान बहुधा उदर को खोलने पर होता है । यदि शस्त्रकर्म के पूर्व निश्चित निदान हो जाय तो उदरछेदन (laparotomy) करना आवश्यक नही है । श्रोणि मे विद्रधि बनने के पश्चात गुदा या योनि द्वारा विद्रधि का निर्हरण किया जा सकता है । निस्सन्देह यह निश्चय अत्यन्त कठिन है और विदरित उण्डुक पुच्छ को छोड देने का भय वास्तविक है ।

स्ट्रेप्टोकोकसजन्य पर्युदर्याशोथ (streptococcal peritonitis)

स्ट्रेप्टोकोकस हीमोलिटिकस दूसरा जीवाणु है जो प्राथमिक पर्युदर्या शोथ उत्पन्न करता है । यह रोग प्राय बालक को 4 वर्ष की आयु तक पहुँचने के पूर्व होता है । सक्रमण त्वचा या ऊर्ध्व श्वसन मार्ग मे उपस्थित केन्द्र से रक्त

प्रवाह द्वारा पहुँचता है। कभी-कभी वह प्रसवोत्तर पूतिता (puerperal sepsis) से पहुँच जाता है। इसका विशेष अभिलक्षण पर्युदर्या गुहा में प्रचुर गँधहीन सीरमी-रक्तमिश्रित निस्सरण (effusion) का एकत्र होना है। रक्त सवर्धन (blood culture) धनात्मक हो सकता है और ग्राम रंजन तथा पर्युदर्या गुहा से आचूषित तरल के सवर्धन द्वारा जीवाणु देखा जा सकता है— यह केवल निदान की सहायता के लिए है। लक्षण गभीर होने है और मृत्यु बहुत होती है। नैदानिक दृष्टि से अन्य कारणों से उत्पन्न हुए पर्युदर्याशोथ को इस दशा से विभिन्न करना अत्यन्त कठिन है, प्राय शस्त्रकर्म पर ही उसका पता चलता है।

चिरकालीन पर्युदर्याशोथ (Chronic peritonitis)

यक्ष्माजन्यपर्युदर्या शोथ (tuberculous peritonitis)

इस रोग के दो प्रकार मिलते है।

कँगु प्ररूप (miliary type), **तरल निस्रवण और जलोदर सहित (with exudation of fluid and ascites)**। यह शारीरिक कगु क्षय का भाग हो सकता है, अथवा सक्रमण यक्ष्माजन्य आन्त्रमयोजनी ग्रन्थि से या फलोपीनली (fallopian tube) से फैला हो। लक्षण जलोदर के होने है, साथ ही ताप सध्या को बढ जाता है, तथा क्षय के अन्य लक्षण भी उपस्थित होते हैं। चिकित्सा सामान्य प्रतियक्ष्मा पद्धति के अनुसार होनी चाहिए। आवश्यक होने पर जलोदर का द्रव वेधन (tap) द्वारा निकाला जाता है। उदरच्छेदन (laparotomy) से समुचित स्वास्थ्य वृद्धि हो सकती है, और यदि किया जाय, तो सक्रमित ग्रन्थि या नलिका का अपहरण कर देना उचित है।

प्लास्टिक प्ररूप (plastic type) मे जलोदर नही होता। इसमे वपा (omentum) और आन्त्र के कुडलो के बीच आसजन (adhesions) बनकर वे आपस मे जुड जाते है जिससे कुछ आन्त्रावरोध उत्पन्न हो जाता है। साथ ही आन्त्र मे यक्ष्माजन्य व्रणोत्पत्ति हो सकती है। उदर का थोडा आध्मान होता है और परिस्पर्शन पर गुदे हुए आटे के समान (doughy) प्रतीति होती है। विदरण (perforation) और विद्रधि बन सकते हे तथा उसके उदरभित्ति द्वारा फूटने से या शस्त्रकर्म करने पर पुरीष नालव्रण (foecal fistula) बन सकता है। चिकित्सा सरक्षी होनी चाहिए। उदरच्छेदन (laparotomy) वर्जित है, उससे पुरीष नाल व्रण (faecal fistula) बन जाएगा।

अतिसार (dysentery)

विरल अवसरों पर चिरकारी पर्युदर्याशोथ अतिसार का परिणाम होता है। सापेक्ष निदान के समय इसका स्मरण रखना चाहिए।

पर्युदर्या का कूटमिक्सोमा (pseudomyxoma peritonei)—इस विरल दशा में पर्युदर्या गुहा में डिंबग्रन्थि की कूटम्यूसिनी पुटी (pseudomucinous cyst) या उण्डुकपुच्छ के म्यूकोसील (mucocele) के फटने से म्यूकाइड पिंड बन जाते हैं। उदर का विवर्धन होता रहता है और कुछ अवरोध के लक्षण भी होते हैं। निदान केवल आचूषण या शस्त्रकर्म करने पर होता है। कारक क्षत को दूर करना चाहिए। दशा प्राय दुःसाध्य होती है।

पर्युदय-पश्च अर्बुद (retroperitoneal tumour)

पर्युदर्या के पीछे के वृक्क, अधिवृक्क आदि अगों के अतिरिक्त ऊतकों से मे भी अर्बुद उत्पन्न होते हैं। ये वसार्बुद (lipoma), तन्तु अर्बुद (fibroma) सारकोमा, लसीका सारकोमा, वसातंतु सारकोमा (lipofibrosarcoma) और कभी-कभी सरल-पेशी-सारकोमा (leiomyosarcoma) अथवा तन्त्रिकाप्रसूअर्बुद (neuroblastoma) होते हैं। कुछ पुटीय अर्बुद भी मिल सकते हैं जो कदाचित आद्यमध्यवृक्क (mesonephros) के अवशेषों से उत्पन्न होते हैं।

8

आमाशय और ग्रहणी
(Stomach and duodenum)

सी. पी वी मेनन (C P. V Menon)

शरीर-रचना और शरीर-क्रिया

आमाशय (stomach)

आमाशय आहार को ग्रहण करता है, उसको पाचन-क्रिया के लिए तैयार करता है और स्वयं प्रोटीन के पाचन को प्रारम्भ करता है। उसके स्राव, जठर रस, मे पेप्सिन और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल होता है। पेप्सिन श्लेष्मला की कोशिकाओ द्वारा स्रवित होता है और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बुघ्न और काय मे स्थित विशिष्ट कोशिकाओ द्वारा तैयार किया जाता है। उसका एक अन्त स्राव (internal secrtion) भी है जो रक्तोत्पत्ति को प्रभावित करता है और जठर-निर्गम (pylorus) मे एक स्राव की उत्पत्ति मानी जाती है जो अम्लोत्पादन बढाता है। उसमे वागस और अनुकम्पी (sympathetic) दोनो तन्त्रिकाये आती है जिनकी जालिकायें उसकी भित्तियो के भीतर बनती है। अनुकम्पी प्रेरक (motor) और स्रावी (secretory) तन्त्रिकाये हैं और वागस सदमी (inhibitory) है। जालिकाओ मे गण्डिका कोशिकाये (ganglion cells) है जिनके कारण तन्त्रिकाओ को काट देने पर भी उनकी क्रिया होती रहती है।

रक्त सचार (blood supply)

आमाशय मे रक्त सचार का बाहुल्य है। कुक्षि (coeliac) धमनी की

शाखाओ से उसमे रक्त आता है जो पूर्णतया सम्मिलन (anastomosis) करती है। कुक्षि धमनी की शाखा वाम जठर धमनी (left gastric) और यकृत धमनी की शाखा दक्षिण जठर धमनी आमाशय की लघु वक्रता (lesser curvature) को रक्त देती है। यकृत धमनी कीदक्षिण जठर-वपा (gastroe piploic) शाखा और प्लीहा (splenic) धमनी की शाखा वाम जठर-वपा धमनिया वृहद वक्रता (greater curvature) को रक्त पहुँचाती है। बुघ्न मे प्लीहा धमनी की लघु जठर धमनियो (short gastric) द्वारा रक्त जाता है। धमनियो के साथ का शिराये अन्त मे प्रतिहारी तत्र (portal system) मे पहुँचती है। यहाँ प्रतिहारी रक्त सचार मे अवरोध होने से अपस्फीत शिराये वन जाती है जिनसे कभी-कभी रक्त प्रवाह होता है।

लसीका सवहन—लसीका वाहिकाये उपर्युक्त वक्रताओ पर स्थित पर्वो मे लमीका ले जाती है जिनके दो समूह है एक, अवजठरनिर्गम (subpyloric) समूह दक्षिण जठर-वपा धमनी के पास-पास स्थित है, और दूसरा कारोनरी (coronary) समूह वाम जठर धमनी पर है। वाम जठर-वपा और यकृत धमनियो पर भी कुछ लसीका पर्व है। अग्न्याशय ग्रन्थि की ऊर्ध्व धारा पर कई लमीका पर्व है और कुछ लसीकावाहिकाये यकृत प्रतिहार (porta hepatis) के पर्वो से भी पहुचती है।

ग्रहणी (duodenum)

ग्रहणी C आकार की नलिका है जो पश्च उदरभित्ति पर स्थिर है, इस कारण उसका कुछ भाग पर्युदर्या के पीछे रहता है। यह क्षुदान्त्र का प्रथम भाग है जो ऊपर जठर निर्गम से और दूसरी ओर मध्यान्त्र से मिला रहता है। C की नतोदरता मे अग्न्याशय का सिर स्थित है। यकृत और अग्न्याशय की वाहिनियाँ गहणी मे वृहद ग्रहणी अकुर (major dudenal papilla) पर खुलती हे। तन्त्रिकाये कुक्षि (coeliac) ओर ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी (superior mesenteric plexuses) जालिकाओ मे से आती है।

रक्त सचार और लसीका सवहन

जठर-ग्रहणी धमनी (gastro-duodenal artery) की शाखा, ऊर्ध्व अग्न्याशय-ग्रहणी (superior pancreatico-duodenal art.) धमनी द्वारा ग्रहणी मे रक्त आता है और अग्न्याशय-ग्रहणी शिराओ द्वारा ऊर्ध्व आन्त्र योजनी (superior mesenteric) और *प्रतिहारिणी शिरा मे (portal vein)* मे

लौटकर जाता है।

लसीका वाहिकायें रक्त वाहिकाओं का अनुसरण करती है और समीप के लसीका पर्व समूह में लसीका ले जाती है।

आमाशय के आघात (Injuries to the stomach)

भेदक आघात (penetrating injuries)

बन्दूक या पिस्तौल की गोली से या नुकीले शस्त्रों, छुरे, चाकू आदि घुसने से उत्पन्न हुए भेदक क्षतों की तत्काल चिकित्सा आवश्यक है। उदर छेदन करके आमाशय क्षतों के साथ बृहदान्त्र, क्षुद्रान्त्र और अग्न्याशय के क्षतों को सावधानी से देखना चाहिए और आवश्यकतानुसार उपयुक्त आयोजनों द्वारा उनको सुधारना चाहिए।

संवृत्त आघात (closed injuries)

अधिजठर पर घूँसा मारने से आमाशय का विदरण (rupture) हो सकता है, विशेषकर यदि आमाशय उस समय भरा हो और उदर की पेशियाँ आघात को रोकने को तैयार न हो। यदि वेदना और कठोरता उपस्थित हो, प्रारम्भ में स्थानिक हो और फिर सारे उदर में फैल जाएँ, तो अभिघात का सन्देह करना चाहिये। आभ्यन्तर अभिघात होने पर उदरभित्ति में नील (bruising) नहीं पड़ता। ऐसी दशाओं में उदरछेदन शीघ्र करना चाहिए।

आगन्तुक शल्य (Foreign bodies)

सिक्के, दन्त पट्टिकायें (dental plates) सेफ्टीपिन और कितनी ही प्रकार की अन्य वस्तुएं आकस्मिक या कभी जानकर निगल ली जाती हैं। इनमें से कितनी ही सीधी बिना हानि पहुचाए आन्त्र में से होती हुई बाहर निकल जाती है। जो जठर निर्गम में से, बड़ी होने के कारण, नहीं निकल सकतीं उनको जठर छेदन (gastrotomy) द्वारा निकालना होता है। किन्तु तीव्र नोक की वस्तुएँ जैसे पिन, सुई, खुली सेफ्टी पिन आदि आमाशय या आन्त्र में अटक जाती है, उनको शस्त्रकर्म करके निकालना आवश्यक हो सकता है। उनकी स्थिति को प्रतिदिन एक्स-रे से देखते रहना चाहिये और शस्त्रकर्म तभी करना चाहिये जब वे एक स्थान पर बनी रहे, आगे न बढ़ें।

आगन्तुक शल्य आमाशय में संग्रह होकर एक पिंड बना सकते हैं जिसका

उदाहरण 'बालो का गोला' (hairball) है जो मानसिक दोषग्रस्त रोगियो या जिन बालिकाओ को बाल चबाने और निगलने की आदत पड जाती है उनके आमाशय मे मिलता है। ऐसे ही पिंड उन व्यक्तियो मे (विरल) पाये जाते है जो सदा अपच्य ततुओ वाले फल खाया करते है। कभी-कभी इन पिंडो का आकार बहुत बडा हो जाता है, वे सारे आमाशय को भर देते है और उसी के आकार के हो जाते है। उनमे कोई लक्षण नही होते। किन्तु पिंड प्रतीत होने पर रोगी डाक्टर के पास आता है। बेरियम आहार परीक्षण पर भरण न्यूनता (filling defect) दिखाई देगी।

आमाशयच्छेदन करके उसका अपहरण चिकित्सा है।

आमाशय का वोलवूलस (Volvulus of stomach)

यह विरल दशा है जिसमे आमाशय अपने लम्ब अक्ष पर घूम जाता है। जठर निर्गम और ग्रास प्रणाल स्थिर रहते है। कभी-कभी (अत्यन्त विरल) जब आमाशय अत्यन्त विस्फारित होता है तो वह ऊर्ध्वाधर अक्ष पर भी घूमा हुआ मिलता है। वृहद वक्रता ऊपर को चली जाती है और मध्यच्छदिका के नीचे रहती है तथा अनुप्रस्थ वृहदान्त्र भी उसके साथ चला जाता है। जठर-निर्गम की सकीर्णता (pyloric stenosis) बालू-घडी सकोच (hourglass contraction) और कभी-कभी अर्वुद इसका कारण होते है।

अधिजठर प्रदेश मे अकस्मात् वेदना होती है। जिसके पश्चात आमाशय का आध्मान हो जाता है। बडे वेग से जी मिचलाता है किन्तु ग्रास प्रणाल और जठरनिर्गम दोनो के अवरुद्ध होने के कारण वमन मे कुछ नही निकलता। जो कुछ लिया जाता है उसका तुरन्त प्रत्यावाहन (regurgitation) हो जाता है, आमाशय प्रक्षालन नली (stomach tube) भी नही जा सकती।

शस्त्रकर्म द्वारा पुन स्थापन करना चाहिए। आमाशय को रिक्त करना पडेगा, यदि आमाशय नलिका प्रविष्ट की जा सके तो उसको, नही तो वेधन और आचूषण द्वारा उसको रिक्त करने के पश्चात ही यह सभव हो सकेगा। यदि रोगी की साधारण दशा सतोषजनक हो तो कारण का भी उपयुक्त विधान कर देना उचित होगा।

आमाशय का तीव्र विस्फार (Acute dilatation of stomach)

घातज आन्त्रावरोध (paralytic ileus) मे या जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन (gastrojejunostomy) से अथवा अपूर्ण जठरोच्छेदन (partial gastrec-

tomy) आदि शस्त्रकर्मो से उत्पन्न आंशिक अगघात (paresis) के कारण आमाशय का तीव्र विस्फार हो सकता है जिसमे तरल की अत्यधिक मात्रा एकत्र हो जाती हे। किन्तु तीव्र विस्फार के शब्द को किसी भी शस्त्रकर्म के पश्चात् होने वाली इस दशा के लिए प्रयोग किया जाता है। उसका कारण सवेदना-हरण के समय वायु की प्रचुरमात्रा का निगरण समझा जाता है। शस्त्रकर्म के पश्चात भी दो-चार दिन तक यह दशा हो सकती है। शस्त्रकर्मो के पश्चात 48-72 घटे तक आन्त्र का पुर सरण (paristatsis) मन्द होना है जिससे वायु बाहर नही निकलती। आमाशय तरल और वायु से विस्फारित हो जाता है, श्वसनकष्ट होता है, वमन होते है और पात (collaps) हो जाता है।

चिकित्सा

आमाशय को आमाशय-नलिका द्वारा रिक्त करने के पश्चात भी राइल नली (ryle's tube) द्वारा सतत आचूपण (continuous aspiration) का आयोजन किया जाता हे। तथा अन्तर्शिरीय मार्ग द्वारा तरल और विद्युत अपघट्यो (electrolytes)) को शरीर मे पहुचाया जाता है।

सहज (शैशव) अतिवृद्धिज जठरनिर्गम सकीर्णता (congenital (infantile) hypertrophic pyloric stenosis)

यह दशा स्वस्थ दम्पति की प्रथम सतान में होती है। शिशु अधिकतर पुत्र होता है, यद्यपि कन्याओ मे भी यह दशा पाई गई है। रोग का हेतु अज्ञात है। तँत्रिका-पेशी असमन्वय (neuromuscular incoordination) प्राथमिक कारण प्रस्तुत किया गया है।

रोग की विशेपता जठरनिर्गम और आमाशय के कोटर भाग (antral portion) के वृत्ताकार पेशीततुओ की अतिवृद्धि होती है जिसका परिणाम चिरकारी अवरोध होता है। यह अतिवृद्धि पेशी मे प्राथमिक और जन्मजात होती है या अनुकम्पी तत्रिकाततु की सतत असतुलित क्रिया का फल होती है। इसका अभी तक ज्ञान नही है, न वह विशेप महत्व का मालूम होता है क्योकि चिकित्सा अतिवर्धित पेशी की की जाती है।

नैदानिक लक्षण

जन्म के पश्चात ही लक्षण प्रकट हो जाते है। नवजात मे दूध का लौट आना (गिराना), जो साधारणतया होता है, अधिक निर्वन्ध (persistent)

हो जाता है। दूसरे सप्ताह के लगभग वमन प्रारभ हो जाते है जो प्रत्येक बार दूध पिलाने के पश्चात तुरन्त होता है। शिशु का शरीर-भार घटने लगता है और वह शीघ्र ही कृश और दुर्बल हो जाता है, त्वचा पर झुरियें पड जाती हैं। निर्जलीकरण विशेष होता है और क्षाररक्तता (alkalaemia) हो जाती है जिसका कारण आमाशय मे अम्ल की हानि है। मूत्र क्षारीय होता है और उसमे एसीटोन पिड मिलते है।

शारीरिक चिह्न (physical signs)—उदर की परीक्षा पर आमाशय मे पुर सरण (peristalsis) क्रिया दिखाई देती है। परिस्पर्शन पर अतिवर्धित (hypertrophied) जठरनिर्गम परीक्षक के अगुलियो के नीचे श्वास के साथ गति करता हुआ और पुर सरण की प्रत्येक लहर के साथ अधिक कठोर होता हुआ, प्रतीत होता है। वमन प्रक्षेपी (projectile) प्रकार के, मात्रा मे प्रचुर और पित्तरहित होते है।

निदान

निदान मे विशिष्ट लक्षणो के कारण कोई कठिनाई नही होती। इस आयु मे शिशु के वमन के दो कारण हो सकते हे। ग्रहणी की जन्मजात अविवरता (atresia) या नवजात वोलवुलस (volvulus neonatorum) अविवरता जन्म से उपस्थित होती है और वमनो मे पित्त होता है जिससे उसको सहज मे जठरनिर्गम सकीर्णता से भिन्न किया जाता है। वोलवुलस जन्म के पश्चात किसी भी समय हो सकता है। यह तीव्र दशा है जिसमे आत्र कुघूर्णित- (malrotation) हो जाता है। इसमे भी वमन मे पित्त होता है और आध्मान अधिक होता है। बहुत कम, वमन का कारण नाभि से सक्रमण का विस्तार होकर शिशु मे पर्युदर्या शोथ हो सकता है। ऐसी दशा मे उदर भित्ति की कठोरता और प्रत्यावाही (regurgitant) प्रकार का वमन, जिसमे पित्त उपस्थित होता है, रोग निदान के विशेष सहायक हे।

चिकित्सा

रोग के प्रारम्भ मे तथा मृदु रोग मे आकर्षहर औषधियो से कुछ शान्ति मिल सकती है। किन्तु अधिकतर वे निष्फल होती है और अन्त को शस्त्रकर्म करना पडता है।

शस्त्रकर्मपूर्व आयोजन—शस्त्रकर्मपूर्व की तैयारिया सावधानी से करनी चाहिएँ। निर्जलीकरण और निर्खनिजीकरण (demineralization) को अध-

स्त्वक मार्ग द्वारा पुन पुन. लवण विलयन देकर दूर करना चाहिए। इसमें हायलेज (hylase) मिला देने से लवण विलयन का अवशोषण शीघ्र होता है। जिनमें निर्जलीकरण अधिक हो गया है उनमें विलयन शिरा द्वारा पहुँचाना आवश्यक होता है। उसके लिये छेदन द्वारा शिरा को स्पष्ट करके उसमें शेनूला को प्रविष्ट करना पड़ेगा।

शस्त्रकर्म की प्रविधि (technique)—यह राम्सटेड (ramstedt) का शस्त्रकर्म कहलाता है। इसमें मुख्यतया वृत्ताकार ततुओं को विभक्त किया जाता है। उदर को दक्षिण ऊर्ध्व परामध्यछेदन (right upper paramedian incision) द्वारा खोलकर अविवर्धित जठरनिर्गम को बाहिर निकाल लिया जाता है और लगभग एक इंच लम्बा छेदन आमाशय के दीर्घ अक्ष (long axis) में जठर निर्गम शिरा से ऊपर रक्तवाहिकाहीन क्षेत्र में किया जाता है। पर्युदर्या के छेदन के पश्चात पेशी ततुओं को, कुंठित व्यवच्छेदन (blunt dissection) से अत्यन्त सावधानी के साथ, एक-एक करके विभक्त करते हैं जब तक कि आमाशय की श्लेष्मला (mucosa) छेदन द्वारा नहीं निकलने लगती। रक्तशोधक सदश के सिरे को छेदन में प्रविष्ट करके फले को खोल देने से भी यह किया जा सकता है। छेदन को ग्रहणी तक न बढ़ाने की विशेष सावधानी रखनी चाहिए, इससे ग्रहणी की श्लेष्मल कला के क्षत हो जाने का भय रहता है। इन रोगियों में जठरनिर्गम उसी भांति ग्रहणी में उभरा रहता है जैसे योनि में गर्भाशय ग्रीवा। अतएव जठरनिर्गम के इस उभरे भाग के चारों ओर वहाँ फार्निक्स (fornix) बन जाता है जहाँ श्लेष्मिक कला के क्षत होने की बहुत सम्भावना होती है। यह निश्चय करने के लिए कि ऐसी दुर्घटना नहीं हुई है आमाशय को तनिक दबाकर देखा जाता है कि छेदन द्वारा आमाशय में उपस्थित पदार्थ बाहर तो नहीं निकलते। यदि ऐसा हुआ है तो श्लेष्मिक कला के छिद्र को सदन से ग्रहण करके सूक्ष्म कैटगट से सीकर उस पर वपा का निरोप (graft) लगा दिया जाय।

आमाशय को अब उदर में लौटा कर उदर को सी दिया जाता है। इसको बड़ी सावधानी से करना चाहिए, इन पोषण से वंचित बच्चों में 'उदर फूटने' (burst abdomen) की प्रवृत्ति होती है।

शस्त्रकर्मपश्च आयोजन—बहुत अल्प आहार से प्रारम्भ किया जाय। शनैः शनैः बढ़ाकर उनको उपयुक्त आहार देना चाहिए। एक बाल रोग चिकित्सक की सहायता शस्त्रकर्मपूर्व और पश्चात कालों में बड़े महत्त्व की है। इस शस्त्रकर्म के परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक होते हैं।

जठर शोथ (Gastritis)

आमाशय की श्लैष्मिक कला के शोथ के कितने ही कारण होते है। यह रोग चिकित्सक के ध्यान देने की दशा है। किन्तु तीव्र जठर शोथ की तीव्र औदरिक आपद (acute abdomen) के समान अवस्था हो जाने पर सर्जन को बहुधा उससे सभ्रान्त होना पडता है।

तीव्र जठरशोथ (acute gastritis)

तीव्र जठरशोथ प्राय कुछ अन्य तीव्र सक्रामक दशाओ के साथ होता है और सामान्य जठरान्त्रशोथ का एक अश होता है। आर्सनिक, दाहक अम्ल (corrosive acids) आदि क्षोभक वस्तुएँ या स्पिरिट तीव्र जठर शोथ उत्पन्न कर सकती है। अधिजठर मे वेदना तथा वमन उसके लक्षण है। जठर धावन और शामक (sedatives, demulcents) औषधियो के प्रयोग द्वारा चिकित्सा की जाती है।

सक्रमणजन्य तीव्र जठरशोथ आमाशय की अन्य दशाओ जैसे व्रण, कार्सीनोमा, शस्त्रकर्म क्षत आदि मे उपद्रव रूप उत्पन्न हो सकता है और अनेक बार अपना अत्यत उग्ररूप, तीव्र श्लेष्मल जठरशोथ (phlegmonous gastritis), ले लेता है। आजकल प्रतिजीवियो के नियमित रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह दशा नही दिखाई देती। उग्र जैवविषरक्तता, वमन और अधिजठर वेदना तथा स्पर्शासहता लक्षण वाली यह अत्यन्त तीव्र दशा है। इसमे आमाशय की अधोश्लेष्मला (submucosa) मे शोथजन्य निस्राव भरकर सब कचुको मे शोफ उत्पन्न कर देता है जिससे बढकर श्लेष्मला मे व्रणोत्पत्ति, पूयोत्पत्ति तथा परिगलन (necrosis) हो सकती है। कभी-कभी वह आमाशय के केवल एक भाग मे सीमित रहता है, किन्तु प्राय सारे आमाशय को आक्रान्त करता है। इसकी शल्य-चिकित्सा आशिक जठरोच्छेदन (partial gastrectomy) है। किन्तु प्रतिजीवियो के प्रयोग से शस्त्रकर्म आवश्यक नही होता।

चिरकारी जठरशोथ (chronic gastritis)

इस दशा के दो रूप है शोषी (atrophic) और अतिवृद्धिक (hypertrophic)।

शोषी जठरशोथ (atrophic gastritis)

इसके साथ कोई अत स्रावी न्यूनता (endocrine deficiency) होती है।

यह दशा घातक अरक्तता (pernicious anaemia) आदि में प्राय होती है। इसके अभिलक्षण जठर श्लेष्मला का पतला हो जाना, स्राव का ह्रास और श्लेष्मला में बलियों (rugae, folds) की अनुपस्थिति है, जो एक्स-रे चित्रों में दिखाई देते है। आमाशयदर्शी (gastroscope) द्वारा श्लेष्मला पतली और पारदर्शी दीखती है और उसके द्वारा अधोश्लेष्मला की रक्तवाहिकाये दीखती है।

अतिवृद्धिक जठरशोथ (hypertrophic gastritis)

यह आमाशय की कितनी ही दशाओं में पाया जाता है और बहुधा व्रणों या कार्सिनोमा का पूर्व रूप होता है। श्लेष्मला की अतिस्थूलता और अतिवृद्धि और श्लेष्मला का अतिस्राव इस दशा के विशेष लक्षण है। श्लेष्मिक कला की वलियें बन जाती है और एक्सरे चित्रों में सिलवटे दिखाई देती हैं। जठरस्राव में मुक्त अम्ल (free acid) की मात्रा कम होती है। मद्यपों तथा अधिक मसाला खाने वालों में भी इसी प्रकार का जठरशोथ मिलता है। क्षुधाह्रास हो जाता है और अधिजठर में बेचैनी प्रतीत होती है।

चिकित्सा रोगविज्ञानानुसार होती है, मरण को किसी शल्य दशा के लिए सर्जरी आवश्यक हो सकती है।

आमाशय और ग्रहणी के व्रण

तीव्र व्रण (acute ulcers)

जो पैप्सिनी व्रण कहलाते है उनके अतिरिक्त आमाशय और ग्रहणी में तीव्र व्रण भी कभी-कभी मिलते है। वे क्षोभक पदार्थों, कुछ तीव्र सक्रामक ज्वर, पर्युदर्याशोथ और पूतिजीवरक्तता (septicaemia) से भी उत्पन्न हो जाते है। रक्त-वमन (haemetemesis) हो सकता है, वमन का रग काफी के समान होता है। रुधिरज कालामल (melaena) या मल में प्रच्छन्न (occult) रक्त हो सकता है। साधारणतया व्रणों का स्वत विरोहण हो जाता है, किन्तु कभी-कभी वे विदरण (perforation) कर देते है या चिरकालीन बन जाते है।

चिरकारी व्रण (chronic ulcers)

ये पैप्टिक व्रण होते है जिनका आगे विचार किया गया है। सिफिलिसजन्य व्रण बहुत कम देखे जाते है। वे रोग की द्वितीयक अवस्था में श्लेष्मिक कला में उपरिस्थ अनियमित व्रणों के रूप में प्रकट होते है। उनका निदान असाधारण

है और शस्त्रकर्मो मे विरले ही अवसरो पर दिखाई देते है।

यक्ष्माजन्य व्रण भी आमाशय और ग्रहणी मे अत्यन्त विरल है। उनको केवल अपहरण के पश्चात् ऊतिपरीक्षा पर पहिचाना जाता है।

पेप्सिनी व्रण (Petic ulcers)

आमाशय और ग्रहणी के चिरकारी व्रणो को अधिक उपयुक्त नाम न मिलने के कारण पैप्सिनी व्रण कहा जाता है। वे अधिकतर आमाशय की लघु वक्रता पर, ग्रहणी के प्रथम भाग मे, ग्रास प्रणाल के अध प्रान्त पर और मेकिल विपुटी आदि स्थितियो मे पाये जाते है जहाँ कभी-कभी आमाशय के प्रकार की श्लेष्मला मिलती है। कई बातो मे अन्तर होने पर भी आमाशय और ग्रहणी के व्रण पैप्सिनी व्रण ही कहलाते है जिसका कारण दोनो मे कई लक्षणो की समानता है।

हेतुकी

यह रोग अत्यन्त विस्तृत है यद्यपि कुछ क्षेत्रो मे अन्य की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। भारतवर्ष मे मद्रास, केरल, आँध्र और काश्मीर मे अधिक होता है, पजाब, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश मे कम है। रोग के कारणो मे भी देशो या प्रदेशो मे अन्तर मालूम होता है। योरुप और अमरीका मे व्यवसायियो तथा उद्योगपतियो मे रोग अधिक होता है, जिनको बढे ही सघर्ष का जीवन व्यतीत करना पडता है और जो सदा मानसिक उद्वेग मे कालयापन करते है। किन्तु भारतवर्ष के दक्षिण प्रदेशो मे रोग निर्धन श्रेणी के व्यक्तियो या मजदूरो मे अधिक पाया जाता है।

पुरुषो को स्त्रियो की अपेक्षा रोग बीस गुना अधिक होता है और 20 से 40 की आयु के बीच मे सबसे अधिक पाया जाता है।'

रोग का वास्तविक कारण अभी तक नही मालूम हुआ है। व्रणोत्पत्ति तथा उनकी दुस्साध्यता के सम्बन्ध मे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है— तन्त्रिकाजन्य कारण, यान्त्रिक अभिघात, विशिष्ट और अविशिष्ट सक्रमण, रक्तज विकार और आहार न्यूनता, सब ही कारण बताये जाते है।

रोगोत्पत्ति

अभी तक इतना ही कहा जा सकता है कि जठर रस मे अम्ल की अधिकता के कारण अथवा श्लेष्मला की प्रतिरोध की शक्ति के ह्रास के कारण आम्लिक

जठर रस के श्लेष्मला को पचाने से व्रणोत्पत्ति होती है। साधारणतया समस्त आहार नलिका में उनकी कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न श्लेष्मा पाचक रस की क्रिया से श्लेष्मिक कला की रक्षा करता है। सम्भव है श्लेष्मला में कुछ ऐसे प्रतिपिंड हों जो उसको पाचक एँजाइमों की क्रिया से बचाते हों। इनकी न्यूनता होने से श्लेष्मला की प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होने तथा रक्त संचार के पर्याप्त न होने पर, अथवा अन्य ऐसी ही शक्ति-ह्रासक दशाओं की उपस्थिति पर श्लेष्मला का पाचन सम्भव है और इन्हीं दशाओं के बने रहने से व्रणों का विरोहण न होना या विरोहण के पश्चात भी उनकी पुनरावृत्ति की सम्भावना हो सकती है। असामान्य संगठन के पाचक रस द्वारा प्रसामान्य श्लेष्मला भी पच सकती है। इस प्रकार अत्यधिक अम्लयुक्त पाचक रस सामान्य श्लेष्मला को पचा सकता है और प्रतिरोधशक्तिहीन श्लेष्मला भी सामान्य पाचक रस द्वारा पच सकती है। दक्षिण में अधिकतर रोगी दूसरे प्रकार के होते हैं। साधारणतया अम्ल अधिक नहीं होता। अपच्य आहार, अनियमित भोजन, भोजनों के बीच अधिक अन्तर और विटामिनों की न्यूनता रोधक शक्ति के ह्रास का कारण मालूम होते हैं।

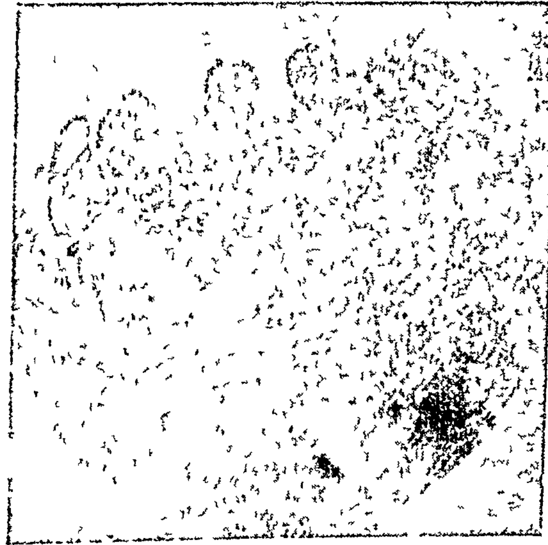
अम्लस्राव (acid secretion)—अम्ल का स्राव भित्तिक कोशिकाओं (parietal cells) द्वारा होता है जो आमाशय के बुध्न और काय में सीमित हैं। अम्ल स्राव की दो प्रावस्थायें (phases) होती हैं। एक, शीर्ष प्रावस्था (cephalic phase) को वागस, जो स्रावक (secretory) तन्त्रिका है, आरम्भ करती है और इसका रूप प्रतिवर्ती (reflex) है। प्रतिवर्त उत्पन्न करने वाले उद्दीपक (stimulus) दृष्टि, गंध, और आहार का विचार, होते हैं। दूसरी रासायनिक प्रावस्था जठरनिर्गम में उत्पन्न होने वाले हारमोन सेक्रिटिन (secretin) द्वारा उत्पन्न होती है। जठर-निर्गम को भी स्राव के संदमन (inhibition) का एक कारण माना जाता है जो जठरनिर्गम की श्लेष्मला के अम्ल के सम्पर्क में आने पर होता है। अम्ल के अत्यधिक स्राव से, जो (अ) उद्दीपक, मानसिक या हारमोनी, और (क) स्रावी कोशिका पुंज, जिनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ हो सकती हैं, अथवा (च) संदमन की क्रियाविधि की शिथिलता या अभाव, पर निर्भर करता है, व्रण उत्पन्न हो सकते हैं।

विकृति (pathology)

ये व्रण उपरिस्थ अपरदन (superficial erosion) की भांति प्रारम्भ होते हैं जो प्रारम्भ में कई हो सकते हैं। इनका विरोहण हो जाता है, किन्तु कुछ

बने रहते है या विरोहण के पश्चात फिर हो जाते है । अन्त मे एक या कभी-कभी अधिक व्रण रह जाते है, चिरकारी व्रण प्राय लघु वक्रता पर जठर-निर्गम के लगभग दो इंच के भीतर तथा ग्रहणी के प्रथम भाग मे स्थित होते है। वे पश्च भित्ति पर अधिक विस्तृत होते है । पश्च व्रण अग्र व्रणो की अपेक्षा





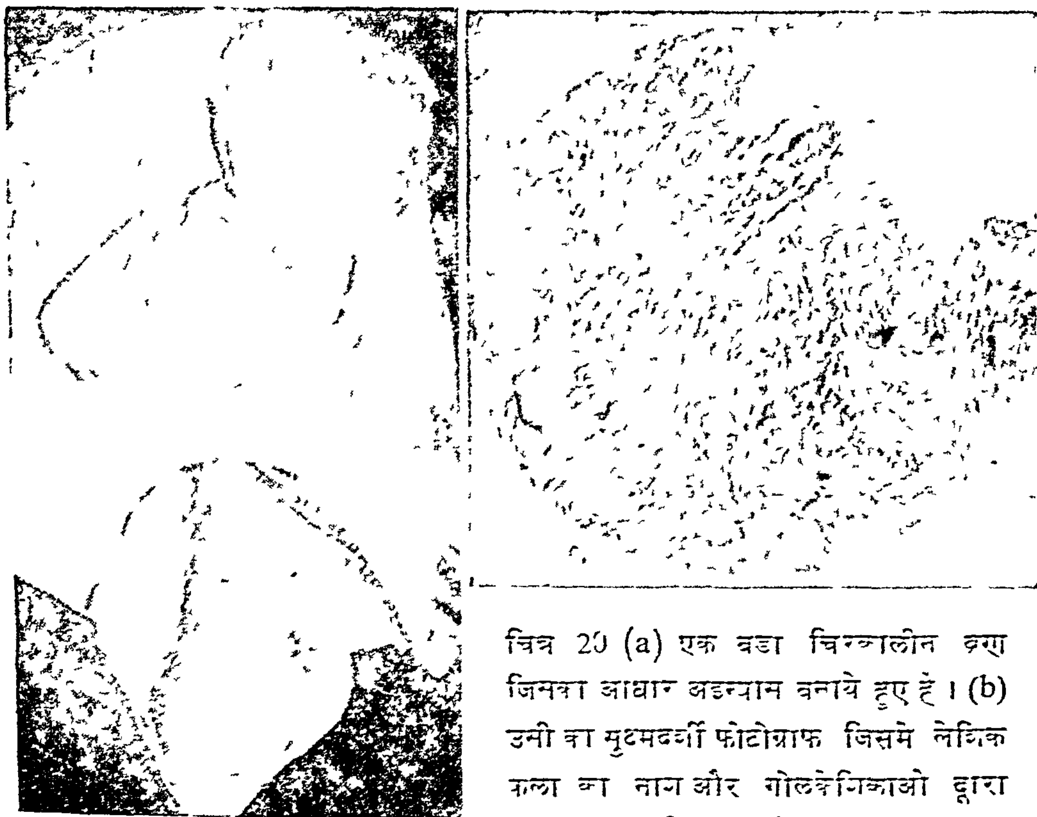
चित्र 19 (a) ग्रहणी के प्रथम भाग का चिरकालीन व्रण, (b) इस ही व्रण का सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ (microphotograpr)

अधिक पाए जाते है । कभी-कभी वे पर्याण (saddle) के आकार के होते है। लघुवक्रता पर स्थित होकर उनका अधिक भाग अग्रभित्ति की अपेक्षा, पश्च-भित्ति पर फैला रहता है । कई या चुम्बन (kessing) व्रण ग्रहणी मे मिल सकते है ।

प्रत्येक वार व्रणोत्पत्ति और विरोहण के पश्चात आमाशय की भित्ति मे क्षतॉक बन जाता है और इस प्रकार भित्ति का स्थान तान्तव ऊतक लेता जाता है । अन्त को भित्ति के सब कचुक नष्ट हो जाते है और व्रण का नल पर्युदर्या के नीचे स्थित अग बनाता है । (चित्र 20 (a) और (b)

आमाशय या ग्रहणी की अग्र भित्ति के व्रणो मे इस प्रकार के भित्तिनाश से वेध (perforation) या विदरण हो सकता है । पश्च भित्ति के व्रणो मे

पीछे का अंग, प्राय. अग्न्याशय, आमंजित हो जाता है और व्रण का तल बनाता है। व्रणोत्पत्ति प्रक्रम के अग्न्याशय में विस्तृत हो जाने से 'वेधक' (perforating) व्रण बन जाता है। इसके तल में एक बड़ी रक्तवाहिका के अपरदन (erosin) से तीव्र रक्तस्राव हो सकता है। इस अवस्था पर व्रण का विरोहण नहीं हो सकता, विरोहण में केवल उपकला का पतला स्तर बन सकता है



चित्र 20 (a) एक बड़ा चिरकालीन व्रण जिसका आधार अग्न्याशय बनाये हुए है। (b) उसी का सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ जिसमें लसिका कला का नाश और गोलकेशिकाओं द्वारा अन्त.सचरण दीख रहा है।

जो तनिक भी उत्तेजना या दाब से फट सकता है। इस समय व्रण के किनारे भीतर को मुड़े (rolled-in) रहते हैं, श्लेष्मिक पेशी (muscularis mucosae) और पेशी स्तर दोनो किनारों पर मिल जाते हैं। व्रण का तल तान्तव ऊतक का तथा कुछ कणिकाओं (granulations) का बना होता है जो श्वेतकोशिकाओं के एक स्तर और आहार अवशेष से ढका रहता है। इस क्षेत्र में रक्तवाहिकाओं में कम या अधिक अन्तर्धमनी शोथ (endarteritis) होता है।

कुछ रोगियों में (2 से 5 प्रतिशत) व्रणों में दुर्दम परिवर्तन हो सकते हैं। किन्तु ग्रहणी के व्रण में यह परिवर्तन कभी नहीं पाया गया है। बार-बार व्रण के विरोहण होने और फिर से फूट जाने से व्रण की स्थिति पर प्रचुर क्षताकन

हो जाता है । और इससे आमाशय मे 'वालुका-यत्र सकीर्णन (hour glass constriction) उत्पन्न होता है, जिसको यदि रहने दिया गया तो आमाशय दो थैलियो मे विभक्त हो जाएगा । ऊपर की थैली विस्फारित और अतिवर्धित होगी । इसमे ग्रहणी मे सकीर्णता (stenesis) और वहि प्रवाह मे चिरकारी अवरोध उत्पन्न हो जाएगा, जिसका परिणाम आमाशय का विस्फार और अतिवृद्धि होगी । अनेक वार आगे चलकर चिरकारी जठरशोथ भी हो जाता है ।

नैदानिक लक्षण

प्रारम्भ मे लक्षण मृदु होते है और आमाशय के रिक्त होने पर जलन के समान वेदना होती है । इसको 'क्षुधावेदना' (hunger pain) कहा गया है । वह कुछ खाने या पीने पर, जो अम्ल का निराकरण कर सके, मिट जाती है । कुछ दिन ऐसा ही होता रहता है जिसके पश्चात वेदना जाती रहती है और रोगी कुछ समय तक लक्षणहीन रहता है । यह वह समय है जब व्रण का विरोहण हो चुका है । किन्तु थोडे समय पश्चात लक्षण पुन प्रकट हो जाते है । रोग के बढने पर यह लक्षणहीनता का समय घटता जाता है । वेदना के शमन के लिए रोगी अधिक खाता है । किन्तु उस पर भी जब वेदना की पुनरावृत्ति होती है तो रोगी को आहार से भय होने लगता है, जिससे वह कृश हो जाता है । रोगी का क्षुधाह्रास नही होता । लक्षणो का चक्र यह होता है, वेदना, आहार, शमन, वेदना । प्रत्येक वार आहार के पश्चात इस चक्र की पुनरावृत्ति होती है ।

आहार के पश्चात अम्ल निराकरण के कारण वेदनाहीनता हो जाती है, आमाशय के रिक्त होने पर फिर से वेदना आरम्भ होती है । वेदना आशयिक प्रकार की होती है और उसका कारण अत्यधिक पुर सरण होता है जो व्रण मे अनावृत तन्त्रिकान्तो (exposed nerve endings) के अत्यम्लिक पाचक रस के सम्पर्क से उत्तेजित होने के कारण होता है । अतएव यह स्पष्ट है कि वेदना का व्रण की स्थिति से कोई सम्बन्ध न होकर आमाशय के रिक्त होने से है ।

आमाशय और ग्रहणी के व्रणो की वेदना के प्रारम्भ के समय मे अन्तर है । जठरव्रण मे आमाशय शीघ्र ही रिक्त हो जाता है, किन्तु ग्रहणी के व्रण मे जठर निर्गम के आकर्ष (spasm) के कारण आमाशय के रिक्त होने मे विलम्ब होता है ।

बालुका यन्त्र सकीर्णता और ग्रहणी सकीर्णता उपद्रवो के उत्पन्न होने पर

व्रणों के लक्षणों में परिवर्तन हो जाता है। ग्रहणी [illegible] का विस्फार और पेशीस्तर की अतिवृद्धि बढ़ती रहती है। [illegible] उसमें तनाव रहती है, और आहार रसों से अन्तर्वस्तु [illegible] और भी बढ़ता है जिससे सकोचों की प्रबलता भी बढ़ती है और [illegible] वेदना बढ़ जाती है। [illegible] आमाशय के रिक्त होने पर वेदना शान्त होती है। [illegible] कारण क्षुधाह्रास भी होता है।

आमाशय की [illegible] ही होता है। वेदना के साथ रोगी उदर में [illegible] गतियों (rolling movements) का अनुभव करता है। परीक्षा पर आमाशय में [illegible] ओर को पुरःसरण होते दीखता है जो भोजन करने के [illegible] बढ़ जाता है।

उपर्युक्त घटनाओं का क्रम दो प्रधान उपद्रवों—रक्तस्राव (haemorrhage) और वेध (perforation) से—में किसी से भी बाधित हो सकता है। इनका विचार आगे किया जायगा।

दैहिक चिह्न (physical signs) उदर में अल्पतम होते हैं। ग्रहणी के व्रण में प्राय दक्षिण अधोपर्शुक प्रदेश में कुछ स्पर्शासहता और दक्षिण गर्भादरिका के ऊर्ध्व भाग के ऊपर थोड़ी रक्षक कठोरता (guarding rigidity) उपस्थित होती है। लघु वक्रता के व्रण में उस पर स्पर्शासहता के स्थान को अगुलि के सिरे से दबा कर पहिचाना जा सकता है। अवरुद्ध आमाशय में दृष्टिगत पुरःसरण मूल्यवान चिह्न है।

निदान—अधिकतर रोगियों में केवल इतिवृत्ति से निदान किया जा सकता है। तो भी आमाशय की सामान्य क्रिया क्षमता, रोग की अवस्था तथा यदि कोई उपद्रव हो तो उनके जानने के लिए निम्न अन्वेषण आवश्यक होते है

भिन्नात्मक प्रयोगाहार (fractional testmeal)

निराहार (fasting) आमाशय से उसकी अन्तर्वस्तु का आचूषण करके उसका मापन और विश्लेपण किया जाता है। तब पतले दलिये का प्रयोगाहार दिया जाता है और अन्तर्वासी राइल नली (indwelling ryle's tube, आमाशय में रखी हुई) द्वारा प्रत्येक 15 मिनट पर प्रतिदर्श (sample) या नमूना लिया जाता है। इनकी मुक्त (free) और सम्पूर्ण (total) अम्ल तथा

स्टार्च, श्लेष्मा, पित्त और रक्त की उपस्थिति के लिए परीक्षा की जाती है। प्रथम प्रतिदर्श, जो विश्रान्त रस (resting juice) कहा जाता है अपनी अत्यधिक मात्रा से स्थिरता (stasis) बताता है और मुक्त अम्ल रसस्राव की तीव्र प्रावस्था के सम्बन्ध की सूचना देता है। पीछे के प्रतिदर्श रासायनिक प्रावस्था में अम्ल का स्तर (level), पाचन क्रिया की प्रगति, ग्रहणी प्रत्यावहन (duodenal regurgitation), जो सामान्य तया ढाई घंटे के पश्चात होता है और शेष स्राव का निराकरण करता है, ग्रहणी के व्रण में नहीं होता। सदमन क्रियाविधि की कुशलता (efficiency) और सामान्य घटकों की उपस्थिति दर्शाते हैं। यह परीक्षा भावी चिकित्सा की निर्देशक है।

बेरियम आहार परीक्षा (barium meal examination)

प्रथम थोड़ा बेरियम देकर प्रदीप्ति पट (fluoroscopic screen) द्वारा श्लेष्मा का प्रतिरूप (pattern) देखा जाता है और तब अधिक बेरियम से आमाशय को भरकर उसका रूप, सीमा और गतिशीलता (mobility) तथा उसके रिक्त होने का समय (emptying time), ये सब मालूम किये जाते हैं। कई चित्र लेकर ग्रहणी के प्रथम भाग की दशा का अध्ययन किया जाता है। शेष आहार नलिका में भी आहार की प्रगति देखी जाती है। प्रमुख वलियाँ (rugae) अतिवृद्धिक आमाशय शोथ की सूचक होती हैं, उनकी अनुपस्थिति क्षयी आमाशय शोथ की सूचक है। व्रण के केन्द्र में भी वलियें विकरित (radiate) होती हैं, यह प्रारम्भिक व्रण के निदान में सहायक होता है।

आमाशय की आकृति व्रणों और अर्बुदों में बदल जाती है। आमाशय व्रण की अभिलक्षक आकृति वह है जो 'निशे' (nitche) कही जाती है, जो बेरियम से भरने पर आमाशय की एकसारे छाया के किनारे से निकले हुए प्रक्षेप (projection) के रूप में दीखती है। यह प्राय लघु वक्रता पर दिखाई देती है। उसकी सम्मुख स्थिति में, वृहद् वक्रता ऊपर को खिची दीखती है जिसको भंगिका (notch) कहा जाता है। निशे और भंगिका दोनों की उपस्थिति चिरकारी आमाशय व्रण की निदानात्मक है। प्रसामान्य आमाशय साढे तीन-चार घंटे में रिक्त हो जाता है। उसके पश्चात बेरियम की प्रचुर मात्रा की आमाशय में उपस्थिति संकीर्णता की द्योतक है।

वालुका-यन्त्र से आमाशय में दो भिन्न थैलियों की छाया दीखती है जिनके बीच प्रमुख और सतत उपस्थित संकीर्णता रहती है। बेरियम आहार चित्र में सामान्य ग्रहणी जठरनिर्गम कोटर की बेरियम छाया पर चढी हुई एक शक्वा-

चित्र 21 बेरियम आहार खिलाने के पाच मिनट के पश्चात लिया हुवा ऐक्सरेचित्र जिसमे आमाशय की लघु वक्रता पर 'निशे' (niche) दीख रहा है। निशे के ऊपर की छाया ग्रहणी - मध्यन्त्र बक)duodeno Jejunal flexure) मे उपस्थित वेरियम की है।



चित्र 22—एक रोगी के ग्रहणी के व्रण का बेरियम आहार चित्रग्रहणी 'टोपी' (duadenalcap) की अनियमितता दीख रही है।

आकार छाया के रूप मे दीखेगी। यह 'ग्रहणी टोपी' (duodernal cap) कहलाती है। इस टोपी की निर्बन्ध अनियमितता (persistent irregularity) व्रण की प्रतीक है। बेरियम की बूंदे व्रण के मध्य या तल (corater) मे आमाशय से बेरियम निकल जाने के पश्चात भी मिलती है। यह चिकित्सा नियोजन मे सहायक होती है।

मल की परीक्षा प्रच्छन्न रक्त के लिए करनी चाहिये।

सामान्य अन्वेषण—मूत्र, रक्त, हृदयवाहिका तन्त्र आदि की परीक्षा रोगी की सामान्य दशा पर रोग के प्रभाव को जानने के लिये की जाती है।

आमाशय दर्शन (gastroscopy)—वूल्फ शिडलर (wolf-schindlor) नम्य जठरदर्शी या गेस्ट्रोस्कोप से आमाशय का समस्त आभ्यन्तर व्रण, कार्सिनोमा और अन्य दशाये देखी जा सकती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार से जठरशोथ के निदान, चिकित्सा-मध्य आमाशय व्रण के विरोहण की प्रगति जानने और चिरकारी व्रण मे प्रारम्भिक कार्सिनोमी परिवर्तन पहिचानने के लिये यह बहुमूल्य परीक्षा है। इसके द्वारा फोटो भी लिये जा सकते हैं।

किन्तु इस यन्त्र के प्रयोग और इसके द्वारा जो देखा जाय उसको समझने के लिये बड़े कौशल्य और अभ्यास की आवश्यकता है। आमाशय मे सदा गति होती रहती है जिससे किसी द्रष्टव्य विशेष स्थान की स्थिति मे क्षण-क्षण मे परिवर्तन होते रहते हैं। इससे कठिनाई और भी बढ जाती है। इस कारण केवल शिक्षा-प्राप्त और अभ्यस्त विशेषज्ञो के हाथ मे यह यन्त्र विश्वसनीय है।

चिकित्सा

कायचिकित्सा (medical) का प्रयोजन जठरस्राव का सदमन और जठर रस के अम्ल का निराकरण होता है। मसृण और अनुत्तेजक आहार, स्राव सदमनकारी औषधिया और क्षार (alkalies) चिकित्सक की देखरेख मे रोगी को दिये जाते हैं। चिकित्साक्रम कठिन होता है और बहुत से रोगी उसका अनुसरण नही कर पाते। किन्तु जो कर सके और उसके व्यय को भी सहन कर सके तो उससे बहुत समय तक रोग शान्त रहता है। किन्तु अधिकतर रोगियो मे रोग दुसाध्य रूप धारण कर लेता है और सकीर्णता उत्पन्न हो जाती है।

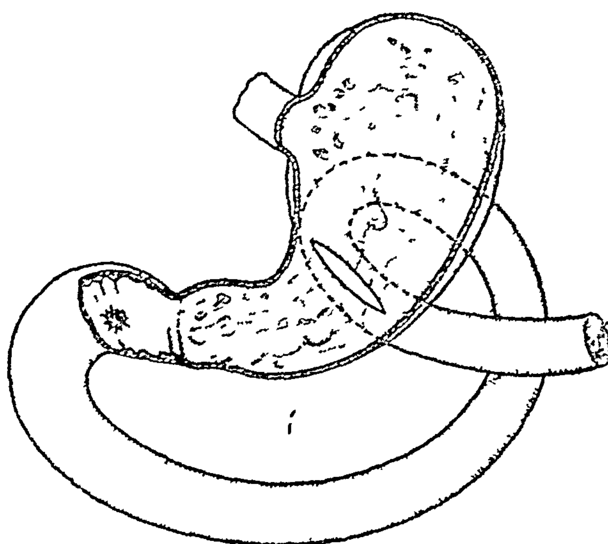
सर्जरी की द्योतक दशाएँ (indications)—ये निम्न है (1) उपयुक्त कायचिकित्सा की असफलता, (2) कार्सिनोमेटी परिवर्तन, (3) व्रण की अनुत्क्रमणीयता (irreversibility), (4) पुन पुन लघुरक्त स्राव, (5) जीवन

के लिए घातक रक्तस्राव, (6) तीव्र वेध (acute perforation), और (7) रोगी की आर्थिक दशा, जब वह कायचिकित्सा के लिये आवश्यक व्यय तथा समय लगाने मे असमर्थ हो।

सर्जरी की प्रविधि (surgical technique)

सर्वोत्तम प्रविधि के सम्बन्ध मे अब भी मतभेद है। जब तब नवीन प्रविधिया प्रस्तुत की जाती हैं जो इस बात का प्रमाण है कि अभी तक पूर्णतया सतोपजनक विधि अविष्कृत नही हुई है। किन्तु जिस विधि से भी शस्त्रकर्म किया जाय उसका मुख्य उद्देश्य अम्लस्राव को विशेषतया घटाना है।

प्रथम शस्त्रकर्म जो किया गया था वह जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन (gastro-Jejunostomy) था जिसका उद्देश्य व्रण के विना सम्पर्क मे आये हुए ही आहार को आन्त्र मे आगे प्रेरित करना तथा मध्यान्त्र की क्षारीय अन्तर्वस्तु (contents) को आमाशय मे पहुचाना था, जिससे अम्ल का निराकरण हो। बहुत रोगियो को इससे बडा लाभ हुआ, यहाँ तक कि रोगी की दशा का विना



चित्र 23—पाशरहित सम-पुर सरणी आमाश्य-मध्यान्त्र सम्मिलन (no-loop) (isoperistattic gaotrojejunostomy) का आरेखी (diagramatic) चित्र वृहदान्त्र योजनी मे किये गये एक छेदन द्वारा, पाश को अनुप्रस्थ वृहदान्त्र के पीछे लेजाया जाता है। जो चित्र मे नही दखाया गया हे।, तदनन्तर वृहदान्त्र योजनी के किनारो को आमाशाय पर सम्मिलन से उपर सी दिया जाता है।

[illegible] किए प्रत्येक सर्जन यह शस्त्रकर्म करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि गलत प्रविधि और रोगियो का उपयुक्त चुनाव न करने के कारण उपद्रव (complications) उत्पन्न होने लगे, उनमे मुख्य कष्टदायक उपद्रव शस्त्रकर्म स्थान पर नये व्रण की उत्पत्ति थी जिसको जठरमध्यान्त्र (gastro-jejunal) या सम्मिलन (anastomotic) व्रण कहा जाता है। अनुभवी सर्जनो के हाथों में भी यह व्रण का उपद्रव बहुत रोगियो मे हुआ। अब इस शस्त्रकर्म का प्राय त्याग कर दिया गया है, यह केवल उन रोगियो मे किया जाता है जिनमे व्रण प्राय समाप्त हो चुका है और केवल अवरोध को दूर करना है, अथवा जिनकी शारीरिक दशा इतनी कृश है कि अधिक समूल (radical) आयोजन नही किये जा सकते।

इस शस्त्रकर्म मे आमाशय की पश्चभित्ति के साथ ग्रहणी-मध्यान्त्र वक (deduno jejunal flexure) से दो इंच दूरी पर से मध्यान्त्र पाश (jejunal loop) को लेकर और अनुप्रस्थ बृहदान्त्र योजनी (transverse mesocolon) मे से निकालकर उसका सम्मिलन कर दिया जाता है आमाशय मे, उसकी काय और जठर निर्गम के संगम पर लघु वक्र से बृहद वक्र तक ऊर्ध्वाधर छिद्र किया जाता है।

आजकल निम्न शस्त्रकर्म किए जाते है।

(१) वागसछेदन (vagotomy)—आमाशय की स्रावी तन्त्रिकाओ को काट देने से अम्ल का स्राव बहुत कम हो जाता है। किन्तु वागस के आमाशय की प्रेरक तन्त्रिका होने के कारण आमाशय का अंगघात तथा कष्टकर शस्त्रकर्मपश्च स्थितिकता (stasis) भी हो जाती है। इसको दूर करने के लिए उसके साथ पश्च जठरमध्यान्त्र सम्मिलन किया जाता हे।

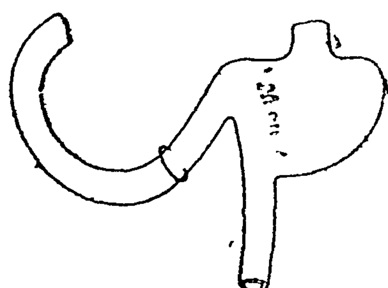
वागसछेदन के साथ अर्धजठरोच्छेदन (hemigastrectomy) भी किया जा सकता है जिससे स्राव के शीर्ष और रासायनिक दोनो प्रावस्थाओ का समाधान होता हे।

(२) आंशिक जठरोच्छेदन (partial gastrectomy)

आंशिक जठरोच्छेदन मे जठर का द्वितृतीयांश काटकर निकाला जाता है, जहाँ तक संभव हो ग्रहणी के व्रण को भी निकाला जाय। अधिकतर सर्जन इसी शस्त्रकर्म को करते हे और उसके परिणाम अन्य कर्मो से कम संतोषजनक नही होते। लेखक यही शस्त्रकर्म सक्रिय व्रण के सब रोगियो मे अथवा जिनमे अम्ल का स्तर उच्च होता है, करता है।

ग्रहणी के व्रण के अपहरण मे कठिनाई हो सकती है। सामान्य पित्तवाहनी (common bile duct) क्षत हो सकती है तथा कष्टदायक रक्तस्राव हो सकता है। शस्त्रकर्म-पश्च ग्रहणी लीक (postoperative duodenal leak) अपूर्ण सीवन से हो सकती है। ऐसी कठिन दशाओं मे व्रण से ऊपर ग्रहणी का विभाजन करके व्रण को छोड दिया जाता है। प्रत्येक रोगी मे आवश्यकतानुसार आयोजन किया जाता है।

ऐसे विस्तृत जठरोच्छेदन के पश्चात कभी-कभी तीव्र द्वितीयक अरक्तता (anaemia) हो जाती है या 'क्षेपण सलक्षण' (dumping syndrome) हो सकता है। यह सलक्षण अकस्मात आहार के आमाशय से मध्यान्त्र मे चले जाने



चित्र 24—आंत्रिक जठरोच्छेदन और पोलिया सम्मिलन (Polya arastomosis के पश्चात उनके परिणाम का आरेखन। पाश को अनुप्रस्थ बृहदान्त्र के पीछे से या उसके सामने से ऊपर को लेजाया जा सकता है, ऐसा करने पर चित्र मे दिखाये को अनरेक्षा सम्मिलन मे पूर्व (नकटस्थ) का आन्त्रपाश का अग अधिक लवा होना चाहिए (लगभग 6-8 इच)। फिन्स्टरा-होफमीस्टर (Finsterer-Hofmeister) रूपान्तर (modification) मे आमाशय का कटा हुआ प्रान्त उसके ऊर्ध्व अर्धाग मे वन्द कर दिया जाता है और निम्नार्ध मे सम्मिलन किया जाता है जिससे एक कपाटिका वन जाती है और उर्ध्वाग मे प्रत्यावहन (veguigitation) नही हो पाता।

के कारण माना जाता है। उससे कई प्रकार के लक्षण और आहारोत्तर (post prandal) वेचैनी हो सकती है। ये उपद्रव प्राय काय-चिकित्सा और आहार के पश्चात विश्राम से शान्त हो जाते है।

तीव्र उपद्रव (acute complications)

तीव्र वेघ विदरण (acute perforation) एक महान आपद है जो

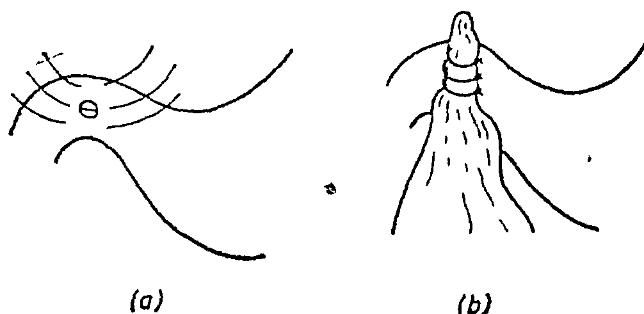
पेप्सिनी व्रण के रोगी मे अकस्मात हो जाती है और कभी-कभी लक्षणहीन रोगियो मे भी होती है। आमाशय और ग्रहणी की अग्रभित्ति के व्रणो में वेध बहुत साधारण है। उसका आकार एक पिन के शिर से लेकर नये पैसे या फार्दिग तक हो सकता है। आगे का क्रम वेध के आकार और आमाशय के रिक्त या भरे होने पर निर्भर करता है। एक लघु वेध वपा (omentum) या पास के किसी अग से आसजित हो जाने से बन्द हो सकता है और यदि आमाशय उस समय रिक्त हो तो स्वत रोगमुक्ति (spontaneous cure) हो जाती है। कभी-कभी स्थानीकृत पर्युदर्या शोथ उत्पन्न हो जाता हैं जो अध-मध्यच्छद विद्रधि (sub phremic abscess) का रूप ले लेता है। पर्युदर्या गुहा का विस्तृत शोथ अधिक साधारण है जो विशेषकर वेध के बड़ा होने पर अधिक उग्र होता है, क्योकि ऐसी दशा मे स्थानीकरण (localisation) नही होता।

प्रारम्भ मे आमाशय की अन्तर्वस्तु मे जीवाणुओ की अल्प सख्या होती है और इस कारण पर्युदर्या शोथ रासायनिक या क्षोभजन्य होता है। किन्तु शीघ्र ही रोगोत्पादक जीवाणुओ के प्रवेश से विसरित (diffuse) पर्युदर्या शोथ उत्पन्न हो जाता है। उसके पश्चात घातज आन्त्रघात (paralytic ileus) होकर जीवविषरक्तता से मृत्यु होती है।

लक्षण और चिह्न—रोगी अधिजठर मे अकस्मात तीव्र वेदना का अनुभव करता है, उसे प्रतीत होता है जैसे कुछ फट गया हो। कुछ प्राथमिक स्तब्धता हो सकती है। दक्षिण समोदरिका के ऊर्ध्व भाग मे तख्ते के समान कठोरता हो जाती है। परिताडन (percussion) से यकृत अननुनाद (liver dullness) का लोप मालूम होता है। खडी स्थिति मे लिया एक्सरे चित्र मध्यच्छदिका के नीचे गैस की उपस्थिति दिखा सकता है। प्रारम्भ मे ये लक्षण अनुपस्थित हो सकते हैं। किन्तु इसी अवस्था पर निदान आवश्यक और उपयोगी है। इतिवृत्त और पट्टसम कठोरता होने पर वेध के निदान करने और शस्त्रकर्म का निश्चय करने मे शका न करनी चाहिए। रोगी को देखने मे विलम्ब होने पर वह तीव्र विसरित पर्युदर्या शोथ की तस्वीर दीखता है, और इतिवृत्त और गैस तथा तरल की पर्युदर्या गुहा मे उपस्थिति से वेध का निदान हो सकता है।

चिकित्सा—निस्सन्देह कुछ रोगियो मे वेध बन्द होकर स्वत रोगमुक्ति हो जाती है जिसका प्रमाण अनेक बार आपरेशन टेबिल पर चिरकालीन रोगियो का शस्त्रकर्म करते समय मिलता है। इस कारण यह मत प्रतिपादित

किया गया है कि केवल काय-चिकित्सा विधियो द्वारा ऐसा ही फल प्राप्त करने का उद्योग किया जाय। चिकित्सा विधि जठर आचूषण (gastric aspiration), आन्त्रेतर पोषण और प्रतिजीवियो का उपयोग है। रोगी को इस चिकित्सा से लाभ न होने पर ही शस्त्रकर्म किया जाय।



चित्र 25—विद्ध (Perforated) ग्रहणी व्रण को बन्द करने की विधि (a) तीन टाँके, एक वेध से ऊपर, दूसरा उससे नीचे और तीसरा वेध मे होकर, निकाले जाते है और (b) वपा (omentum) के एक भाग को उस पर खीच कर उस पर टाके कस कर बाध दिये जाते है।

किन्तु वेध का स्वरूप तथा रोग का आगे क्या क्रम होगा यह जानना कठिन है। इस कारण निदान होते ही शस्त्रकर्म कर देना उचित है। शस्त्रकर्म मे उदर को खोलकर वेध को सी दिया जाता है तथा पर्युदर्या गुहा मे एकत्र निस्राव का आचूषण द्वारा अपहरण और आवश्यक होने पर उसके निर्हरण (drainage) का आयोजन भी करना उचित है। आपद सर्जरी मे यही पर्याप्त है।

इन रोगियो मे से बडी सख्या मे लक्षणो की पुनरावृत्ति होती है। यह आवश्यक न हो, इसलिए अधिक निर्मूलक (radical) शस्त्रकर्म, वागसछेदन विना या उसके सहित जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन या आशिक जठरोच्छेदन और सीवन—किये गये है। किन्तु यह कर्म अनुभवी सर्जनो द्वारा रोगी की अवस्था के सतोषजनक होने पर, किया जाना चाहिये। यदि जठर की अन्तर्वस्तु की अधिक मात्रा उसमे भर गई हो या उसमे अधिक सपूय निस्राव (purulent exudate) उपस्थित हो तो पर्युदर्या गुहा के निर्हरण (drainage) का तो तत्काल आयोजन करना चाहिये। यदि पर्युदर्या अपेक्षत स्वच्छ है तो निर्हरण आवश्यक नही है। नियम यह है कि 'जब सन्देह हो तो निर्हरण न करो।' पेसिलिन और सल्फोनेसाइड चूर्ण का स्थानिक बिन्दुपातन (instillation) तथा

अन्य प्रतिजीवियो का स्थानिक तथा आन्त्रेतर प्रयोग नियमित रूप से किया जाय। शस्त्रकर्म के 48-72 घंटे पश्चात तक राइल नली द्वारा जठर आचूषण और अन्तर्शिरामार्ग द्वारा तरल और विद्युत अपघट्यो का प्रयोग जारी रखा जाय। जिन रोगियो को देखने मे विलम्ब हुआ है शस्त्रकर्म से पूर्व उनमे जठर आचूषण द्वारा आध्मान कम करने और तरल और विद्युदपघट्यो के अन्तर्शिरीय प्रयोग से उनकी दशा सुधारने मे कुछ समय लगाना सदा लाभदायक होता है।

आमाशय व्रण के वेध मे इतना दृढीभवन (induration) उपस्थित होता है कि साधारण सीवन कठिन और अविश्वसनीय होगी। ऐसी दशा मे आंशिक जठरोच्छेदन उपयुक्त है।

रक्तस्राव—व्रण की सक्रिय अवस्था मे केशिकाओ से कुछ रक्त का क्षरण होता रहता है जैसा मल मे प्रच्छन्न रक्त की उपस्थिति से प्रमाणित होता है। इससे अधिक तीव्र रक्तस्राव से रक्तवमन (haemtemesis) होता है (वमन का रग काफी के समान होता है) अथवा रक्तज कालामल (malaena) हो सकता है जिसमे मल काले रग का होता है (कोलतार के समान)। ऐसे आक्रमण प्राय काय चिकित्सा से तत्काल शान्त हो जाते है और सर्जरी आवश्यक नही होती। किन्तु यदि ऐसे आक्रमण पुन पुन होते है तो रोगी के स्वास्थ्य ह्रास को रोकने के लिये शस्त्र चिकित्सा आवश्यक है। यह रक्तस्राव भी केशिकाओ से होने के कारण विश्राम, रक्तस्तम्भक औषधियो और सतत जठर विन्दुपातन से दूध देने से रुक जाता है।

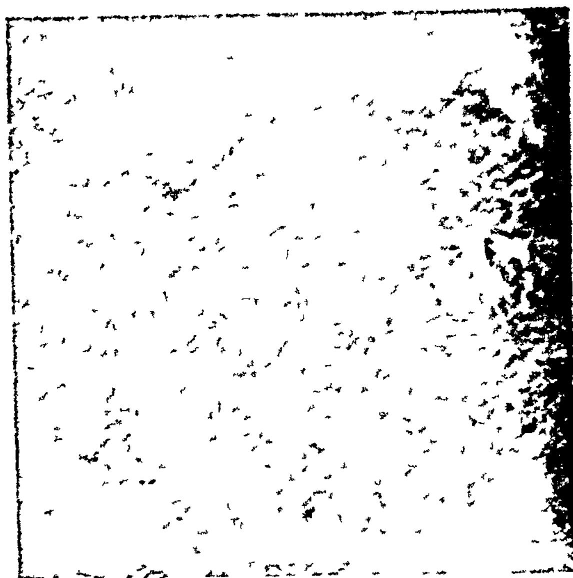
किन्तु कभी-कभी बडी रक्तवाहिकाओ, प्लीहा धमनी या जठर-ग्रहणी धमनी से रक्तस्राव होता है। ऐसी दशा मे रोगी के जीवन की रक्षा का उपाय केवल सर्जरी है। कठिनाई यह निश्चय करने मे होगी कि इस प्रकार का रक्तस्राव हो रहा है या नही। रोगी के वर्ण को कुछ समय तक देखते रहने से इसका अनुमान हो सकता है। यदि चेहरे की विवर्णता या पाण्डुता (pallor) शीघ्रता से बढ रही है तो रक्तस्राव तीव्र है। पर्याप्त रक्ताधान (transfusion) और उदर खोलकर क्षत धमनी के बधन से रोगी की जीवन रक्षा हो सकती है। जठर-ग्रहणी उच्छेद (gastroduodenal resection) ऐसी दशा की आदर्श चिकित्सा है।

चिरकारी उपद्रव (chronic complications), जैसे ग्रहणी सकीर्णता, वालुका यत्र सकीणन, परिजठर और परिग्रहणी आसजन (perigastric, periduodenal adhesions) हो जाते है जिनसे नैदानिक लक्षण बदल जाते है।

प्राथमिक दशा की उपर्युक्त क्रम से चिकित्सा के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।



(a)



(b)

चित्र 26—(a) सम्मिलन व्रण , (b) उस ही का सूक्ष्मदर्शी फोटो।

शस्त्रकर्मपश्च उपद्रव (postoperative complications)

अन्य औदरिक शस्त्रकर्मों के पश्चात होने वाले साधारण उपद्रवों के अतिरिक्त उपर्युक्त कर्मों के पश्चात होने वाले विशेष उपद्रव रक्तस्राव, आमाशय का तीव्र विस्फार, वातज आन्त्रघात और सम्मिलन से निकली हुई अन्तर्वस्तु से उत्पन्न पर्युदर्या शोथ है। उचित प्रविधि से किये हुए शस्त्रकर्म में कोई विशेष रक्तस्राव नहीं होना चाहिये। यदि हो तो जठर आचूषण, रक्त स्तम्भक ओषधियों आदि से वह रुक जाएगा। उदर को फिर से खोलने की आवश्यकता अत्यन्त असाधारण है, किन्तु तीव्र रक्तस्राव में जिससे जीवन संकट में हो, वह आवश्यक हो सकता है। आमाशय को खोलने पर यदि किसी एक स्थल से रक्त निकलता न दिखाई दे तो सम्मिलन रेखा पर एक सतत सीवन लगा दी जाय।

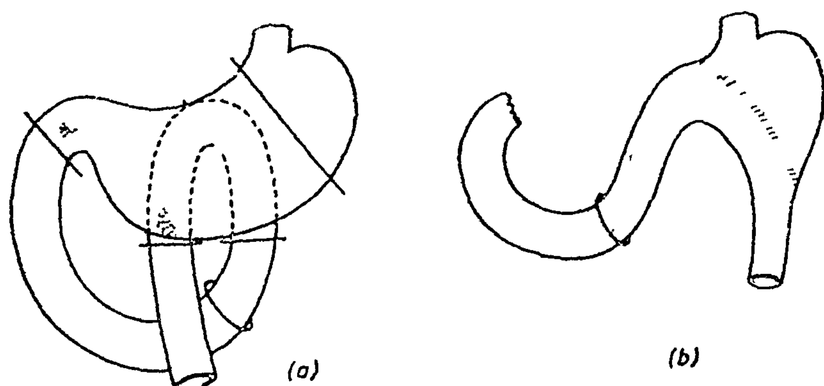
सम्मिलन व्रण (anastomotic ulcer)—चिरकारी व्रण के लिये जठर-

ग्रहणी सम्मिलन अथवा आंशिक जठरोच्छेदन करने के पश्चात सम्मिलन के स्थान पर उत्पन्न हुआ व्रण अत्यन्त कष्टदायक होता है। इस व्रण के भय ने पैप्मिनी व्रण की चिकित्सा के लिये जठरग्रहणी सम्मिलन को त्याज्य बना दिया है और व्रणोत्पत्ति का कारण सीवन मे अशोष्य पदार्थ का प्रयोग, अनुपयुक्त शस्त्रकर्म प्रविधि आदि कहा जाता है। किन्तु उसका मुख्य हेतु प्राथमिक व्रण की उत्पत्ति के कारणो का वैसा ही बना रहना है।

जठर मध्यान्त्र व्रण का निदान कठिन नही है। रोगी वैसे ही लक्षणो की पुनरावृत्ति का कष्ट बताता है जो उसको प्रथम बार हुए थे। किन्तु अब उसको उदर मे वेदना बाईं ओर होती है और अनेक बार वाम श्रोणिफलक खात (left iliac fossa) मे उसकी अनुभूति होती है। नाभि के बाईं ओर ठीक व्रण के ऊपर एक स्पर्शासहता का क्षेत्र होता है।

बेरियम आहार से प्रदीप्ति पट मे सम्मिलन के ऊपर स्पर्शासहता का स्थल दीखता है और आमाशय के रिक्त हो जाने पर व्रण के तल (erator) मे बेरियम का एक बिन्दु दिखाई पड़ता है। कभी-कभी आमाशयदर्शी से व्रण भी दिखाई देता है।

औषधियो द्वारा इसकी चिकित्सा संतोषजनक नही होती। जठरमध्यान्त्र सम्मिलन के पश्चात हुए व्रण मे सर्वोत्तम चिकित्सा सम्मिलन सहित आमाशय का उच्छेद (resection) करना है। इसके साथ वागसछेदन (*vagotomy*)



चित्र 27—जठर-ग्रहणी व्रण (gastro-duodenal ulcer) का शस्त्रकर्म, (a) आमाशय, ग्रहणी और मध्यान्त्र मे छेदन की रेखाये, (b) अन्तिम परिणाम। सम्मिलन बृहदान्त्र के सामने या पीछे किया जा सकता है, किन्तु पीछे की ओर करना अधिक सुगम होता है, क्योकि वहा बृहदान्त्र योजनी मे पहिले ही एक छिद्र उपस्थित है।

करना लाभदायक है। आंशिक जठरोच्छेदन के पश्चात रोग होने पर अधिक उच्च स्तर पर उच्छेद अथवा वागमछेदन अथवा दोनो किये जा सकते है।

जठरमध्यान्त्र व्रण वृहदान्त्र को आक्रान्त कर सकता है जिससे जठर-मध्यान्त्र-वृहदान्त्र नालव्रण (gastro jejuno-colic fistula) बन सकता है। रोगी के मल मे अपक्व आहार, चावल के दाने आदि के निकलने पर ऐसे उपद्रव का सन्देह करना चाहिये। बेरियम आहार परीक्षा पर बेरियम आमाशय से सीधा वृहदान्त्र मे जाता दीखता है जिससे निदान निश्चित हो जाता है। वृहदान्त्र की अन्तर्वस्तु का आमाशय मे प्रत्यावहन बहुत असाधारण है। ऐसा होने पर वास्तविक मलवमन (foecal vomitting) होने लगेगा। इस दशा की चिकित्सा शस्त्रकर्म है। कभी-कभी वृहदान्त्र का प्राथमिक उच्छेद और छोर सम्मिलन (end-to end anastomosis) करना सभव होता है।

आमाशय के अर्बुद

सुदम अर्बुद

आमाशय मे सुदम अर्बुद विरल हैं। तन्तु अर्बुद, वसार्वुद, ग्रन्थ्यर्वुद और सरल पेशी अर्बुद (leiomyoma) हो सकते है। उनमे प्राय कोई लक्षण नही होते। उनका अकस्मात पता चल जाता है। ग्रन्थ्यर्वुद से रक्तस्राव हो सकता है। पता लगने पर उनकी स्थानिक उच्छेद द्वारा चिकित्सा की जानी चाहिये।

दुर्दम अर्बुद

आमाशय का सारकोमा अत्यन्त असाधारण है। इसके विपरीत कार्सिनोमा बहुत होता है और मानव जीवन की बडी सख्या का प्रणान्त करता है। अन्य देशो के समान ही वह भारतवर्ष मे भी होता है। स्त्रियो की अपेक्षा वह पुरुषो को अधिक होता है। चिरकालीन व्रण पर कार्सिनोमा उत्पन्न हो सकता है। किन्तु अधिकतर वे नये ही होते हैं। वे 40 वर्ष मे अधिक आयु वालो को होते है, अगले दशको (decades) मे उसका आवर्तन (incidence) भी बढता जाता है। इससे कम आयु मे भी कार्सिनोमा पाये गये है, और तब उनका दुर्दम क्रम बडा द्रुत होता है।

वह सबसे अधिक जठरनिर्गम मे होता है। इसके पश्चात लघु वक्रता पर और तब अभिहृद (cardia) भाग मे होता है। लघु वक्रता से भी वह इस भाग मे विस्तृत हो सकता है, या यहा से ग्रास प्रणाल (oesophagus) के अध.

प्रान्त मे फैल जाता है। किन्तु ऐसा विस्तार ग्रहणी मे प्राय नही होता।

सूक्ष्म रचनानुसार निम्न प्रकार पाये जाते है।

ग्रन्थि कार्सिनोमा (adenocarcinoma)—यह सबसे अधिक होने वाला प्रकार है जो अन्त सरण (infiltrating) करने वाली व्रणयुक्त वृद्धि के रूप मे होता है। कोशिकाओ मे कुछ विभेदन (differentiation) होता है और वे कोष्ठिकाओ (alveoli) के रूप मे एकत्र रहती है।

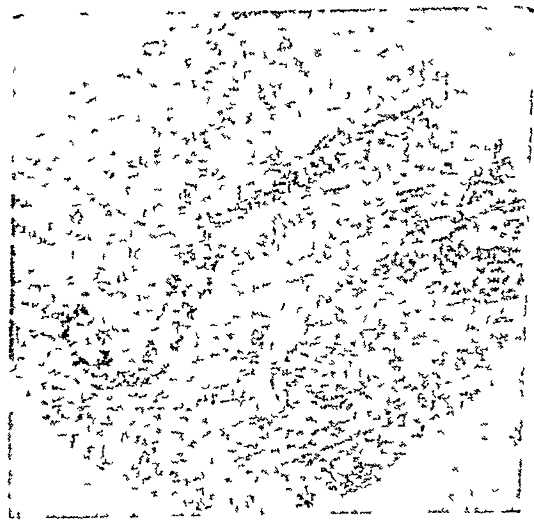
कठोर कार्सिनोमा (scirrhus carcinoma)—यह गोलाभ (spheroidal) कोशिकाओ का बना होता है जो तान्तव ऊतक के बधो (bands) के बीच मे स्तम्भो के रूप मे विन्यस्त होती है।

दोनो ग्रन्थि कार्सिनोमा और कठोरकार्सिनोमाओ मे जल्दी ही व्रण बन जाते है और भीतर से देखने पर उनके उठे हुए और, बाहर को उभरे हुए (everted margins) किनारे दिखाई देते है जो उनके अभिलक्षक है। ये अर्बुद आमाशय की भित्ति मे गहराई तक अन्त सरण कर जाते है।

प्रफली प्ररूप (proliferative type)—इनमे अकुर बन जाते है जो प्रफलन



(a)

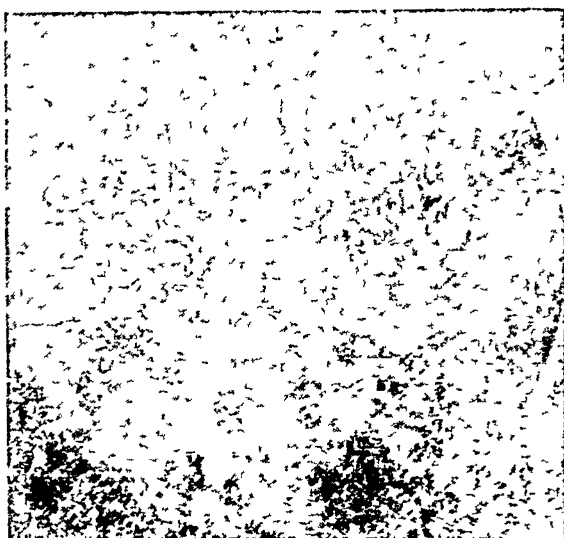


(b)

चित्र 28—(a) स्किरस (कोठर) कैन्सर, (b) उस ही का सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ



(a)

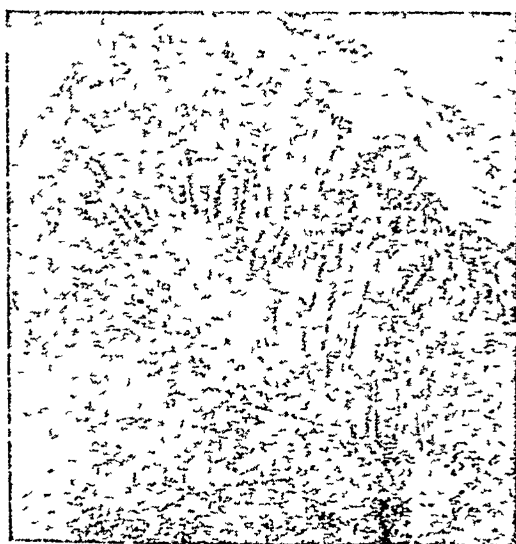


(b)

चित्र 29—(a) व्रण कार्सिनोमा, (b) उसही का सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ



(a)



(b)

चित्र 30—(a) प्रफलनी कार्सिनोमा, (b) इस ही का सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ

करके आमाशय के भीतर की ओर निकलते रहते हैं, उनमे व्रण बन जाते हैं। यह प्ररूप आमाशय मे कम होता है।

कोलाइड प्ररूप (colloid type), स्तम्भाकार कोशिकाकृत वृद्धि होती है जिसमे कोलाइड व्यपजनन हो जाता है।

विसरित प्ररूप (diffusse type)—यह 'चर्मिल आमाशय' (leather bottle stomach or linitis plastica) भी कहा जाता है। इसमे सारे आमाशय मे तान्तव ऊतक आवेष्ठित गोलाभ कैंसर कोशिकाओ का अन्त सरण (infiltration) होता है जिससे आमाशय एक अनम्य कठोर नलिका बन जाता है। कभी-कभी आमाशय के एक सीमित क्षेत्र ही मे यह परिवर्तन होता है।

आमाशय के कार्सिनोमा का प्रसार

अन्यत्र की भांति आमाशय मे भी कार्सिनोमा का स्थानिक अन्त सरण (local infiltration), लसीका पारगमन (lymphatic permeation), और अन्त शल्यता (embolism) द्वारा पसार होता है। कभी-कभी वह शिरा अन्त शल्यता, उदरपार आरोपण (transcoelomic implantation) और अन्तराव-कालिकी (intralumenal) आरोपण द्वारा भी प्रसार करता है।

लसीका वाहिकाओ द्वारा प्रसार प्रथम प्रादेशिक लसीका पर्वो के समूह मे होता है जो जठर निर्गम भाग के लिये अवजठरनिर्गम समूह है और लघुवक्रता तथा अभिहृद प्रदेश की वृद्धियो के लिये कोरोनरी समूह है। आगे चलकर अध्यग्न्याशय (suprapancreatic) और पुरोमहाधमनी (pre-aortic) पर्व भी आक्रान्त हो जाते है। यकृत प्रतिहार (portahepatis) के पर्व भी अतिविरल अवसरो पर आक्रान्त होते हैं। यकृत सीधा ही आक्रान्त हो सकता है जैसा यकृत के वाम खड के आमाशय के साथ आसजित होने पर उसमे सीधा अन्त सरण हो जाता है, अथवा उसमे शिरा अन्त शल्यता द्वारा (veinous embolism) प्रसार होता है। ऐसी दशा मे यकृत के दक्षिण खँड की वस्तु मे एक या अधिक पर्व उपस्थित मिलेंगे।

वृद्धि के पर्युदर्या कचुक को एक बार विद्ध करने के पश्चात पर्युदर्या गुहा मे उसका प्रकीर्णन (dissemination) हो सकता है, समस्त गुहा मे पर्व बन सकते है और वहाँ निस्सरण एकत्र हो सकता है। कई बार कोशिकाये पर्युदर्या गुहा मे से होकर श्रोणिगुहा मे पहुँचकर वहा किसी अग मे या श्रोणितल पर, शेष पर्युदर्यागुहा को आक्रान्त किये बिना, एकत्र हो जाती है। डिंबग्रन्थि का इस प्रकार का अर्बुद क्रूकेनबग (Krukenberg) का अर्बुद कहा जाता है।

अतिकाल (late) के रोगियो मे वाम अधिजत्रुक (supraclavicular) पर्व स्थलांतरण के द्योतक हो सकते है । कैंसर कोशिकायें इन पर्वो मे अग्र मध्यस्थानिका लसीका वाहिकाओं (anterior mediastinal lymphatics) द्वारा पहुचती है, न कि लसीका महावाहिनी (thoraciceduct) द्वारा ।

नैदानिक रूप—दुर्भाग्य से आमाशय के कार्सिनोमा के प्रारम्भ मे लक्षण नही के समान होते है और रोगी के चिकित्सक के पास आने तक रोग बढ चुकता है । क्षुधाह्रास, विशेषकर मास मे अरुचि, प्रारम्भिक लक्षण होता है । वेदना प्राय नही होती, वह पर्युदर्यापिच्छ सरचनाओ मे अवरोध या अन्त सरण होने पर उत्पन्न होती है । अभिहृद मुख (cardiac opening) की वृद्धियो मे निगरणकष्ट (dyspahgia) एक प्रारम्भिक लक्षण है, किन्तु उस समय रोगी की अभिहृद मुख द्वार की अछिद्रता (achalasia) की चिकित्सा की जाती है । अवरोध उत्पन्न होने पर आमाशय का विस्फार और अतिवृद्धि होती है, वेदना, दृश्य पुर सरण (visible peristatsis) और जठरनिर्गम के अन्य लक्षण और चिह्न प्रकट हो जाते है । शरीर भार का ह्रास, अरक्तता तथा क्षीणता (cachexia) भी अनुसरण करते है ।

प्रारम्भिक अवस्था मे शारीरिक परीक्षा पर कुछ भी न मिलेगा । जठर-निर्गम के अर्बुद मे अधिजठर मे श्वास के साथ गति करता हुआ एक पिंड प्रतीत होगा, जिसका अर्थ है कि पर्व आक्रान्त हो चुके है और रोग अछेद्य हो गया है । कालातीत रोगियो मे पर्युदर्या गुहा मे निस्सरण की उपस्थिति के चिह्न, गुहा द्वारा पर्वो की प्रतीति तथा नाभि के चारो ओर पर्वो का उपस्थित होना, ये रोग के विस्तृत प्रकीर्णन (dissemination) के चिह्न ह ।

निदान—प्रारम्भिक रोग का क्रमानुसार शारीरिक परीक्षा ही से पता लगाया जा सकता है । क्षुधाह्रास या अजीर्ण के प्रत्येक प्रौढ मध्यायु के रोगी का निम्न विधियो मे अर्बुदोत्पत्ति के लिए पूर्ण अन्वेषण करना चाहिए ।

भिन्नात्मक प्रयोगाहार (fractional test meal)—रोग के बढ जाने पर सम्पूर्ण तथा मुक्त अम्लो की विशेष न्यूनता या अनुपस्थिति होगी । प्रारम्भिक रोगियो मे अथवा चिरकारी व्रण पर कार्सिनोमा उत्पत्ति के रोगियो मे कुछ अम्लता पाई जा सकती ह । प्रयोगाहार मे रोग के बढ चुकने पर कारबनिक अम्ल तथा असामान्य जीवाणु मिल सकते ह । ये आहार के एकत्र रहने के लक्षण है ।

बेरियम आहार परीक्षा

यह सबसे महत्व की परीक्षा है और जिन चिह्नो से कार्सिनोमा मालूम

होगा वे आमाशय के एक खंड मे भरण-न्यूनता (filling defect) या कठोरता (rigidity) तथा पुरःसरण की अनुपस्थिति है। अभिहृद मुख तथा उस प्रदेश के अर्बुद मे ग्रास प्रणाल के अध प्रान्त का विस्फार होगा और वहाँ बेरियम एकत्र रहेगा। अछिद्रता (achalasia) मे विस्फार अत्यधिक होता है और रोग भी बहुत समय से होता है। आमाशय का वायु का बुलबुला (air bubble of stomach) यदि अनियमित आकार का दीखे तो अभिहृद भाग के अर्बुद



चित्र 31—आमाशय की बेरियम आहार परीक्षा जिसमे एक विस्तृत भरणन्यूनता (filling defect) दीख रही है जिसका कारण जठरनिर्गम का कार्सिनोमा है।

का सन्देह किया जा सकता है और रोगी को ट्रेंडिलिनवर्ग (Trendelenburg) स्थिति मे लिटाकर एक्सरे चित्र द्वारा उसकी पुष्टि की जा सकती है, जिसमे आमाशय के बुध्न मे भरण-न्यूनता दीखेगी।

आमाशय के कार्सिनोमा का केवल निदान करना ही पर्याप्त नही है। उसके विस्तार तथा रोगी पर जो उसका प्रभाव हो चुका है उनका भी अनुमान करना चाहिए। इसके लिए रोगी की सम्पूर्ण परीक्षा करके स्थलान्तरण मालूम करना उचित है और सामान्य शारीरिक परीक्षा तथा प्रयोगशाला मे

परीक्षणो द्वारा रोगी की शारीरिक दशा का पूर्ण ज्ञान करना भी आवश्यक है। फिर भी अन्तिम निर्णय शस्त्रकर्म ही पर होता है।

प्राग्ज्ञान

आमाशय के कार्सिनोमा का प्राग्ज्ञान (prognosis) बडा ही विषादयुक्त होता है। साधारण अनुभव यह है कि आमाशय के कार्सिनोमा का रोगी, बिना शस्त्रकर्म के या शस्त्रकर्म करने के पश्चात 2 वर्ष से अधिक नही जीवित रहता। रोग का प्रारम्भ ही मे निश्चय और अधिक उन्मूलक सर्जरी द्वारा कुछ रोगी पाँच वर्ष तक जीवित रह सकते हैं।

प्राग्ज्ञान को प्रभावित करने वाला एक कारण रोग का प्रारम्भ मे ही निदान करना है। इसके महत्व को पूर्ण रूप से बताया नही जा सकता। व्रण पर उत्पन्न हुए कार्सिनोमा मे प्राग्ज्ञान कुछ उत्तम है, क्योंकि शोथ के कारण लसीका वाहिनियो के प्रारम्भ ही मे अवरुद्ध हो जाने से वह शीघ्र नही फैल पाता।

चिकित्सा

आमाशय के कार्सिनोमा की चिकित्सा सर्जरी है, किरणन निष्फल होता है,। उपयुक्त प्रक्रम यह है कि अर्बुद को उसके किनारे से दो इंच तक स्वस्थ आमाशय के साथ जठरनिर्गम से लगभग आधे इंच दूर तक काटा जाय। इसमे बाम जठर धमनी को उसके प्रारम्भ पर काटना और रक्तवाहक पूलिका (vascular bundle) को लघु वक्रता से आमाशय के छेदन स्थान तक निकालना तथा आमाशय के साथ समस्त वपा का भी अपहरण करना आवश्यक होता है। जिन रोगियो मे आमाशय के स्वस्थ भाग को छोडकर आंशिक जठरोच्छेदन संभव नही होता, उनमे और 'चर्मिल आमाशय' के रोगियो मे सम्पूर्ण जठरोच्छेदन करना होगा। इसमे आमाशय के साथ प्लीहा को भी निकाल देना उचित है। आमाशय के अभिहृद मुख प्रान्त के कार्सीनोमा मे ग्रास प्रणाल के अध प्रान्त, आमाशय के बुघ्न तथा काय के कुछ भाग और प्लीहा का भी अपहरण करना चाहिए जिसके पश्चात ग्रास प्रणाल और आमाशय के शेष भाग का सम्मिलन कर दिया जाता है। इस शस्त्रकर्म के लिए उदर-वक्ष मार्ग अत्युत्तम है।

इन सब शस्त्रकर्मो मे प्रथम सारे उदर का अन्वेषण करके वृद्धि की सीमा और द्वितीयक वृद्धियो को जानना आवश्यक है। दूरवर्ती द्वितीयक वृद्धियो

के न होने, अर्बुद के पूर्ण चलायमान होने और स्थलांतरण के प्रादेशिक लसीका पर्वो तक सीमित होने पर रोगी को शस्त्रकर्म के योग्य समझना चाहिए। यदि अन्वेषण पर रोग अच्छेद्य है तो किसी प्रकार के शामक (palliative) आयोजन का विचार करना उचित है। इस प्रकार का शमन जठरनिर्गम के अवरोध उत्पन्न करने वाले अर्बुदो मे जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन (gastro-jejunostomy) से, अभिहृद मुख प्रान्त के अच्छेद्य अर्बुदो के लिए जठरछिद्रीकरण (gastrostomy) द्वारा और द्वितीयक वृद्धियो के अपहरण योग्य न होने पर भी उच्छेद्य वृद्धि के शामक उच्छेद (palliative resection) से किया जा सकता है। जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन तथा जठरछिद्रीकरण से रोगी का जीवन अधिक से अधिक 3-6 मास तक बढ सकता है। रोगियो के सक्रमित वृद्धियो जन्य लक्षण फिर भी बने रहते है। तो भी शामक उच्छेद से रोगियो के अधिकतर लक्षण शान्त हो जाते है और वे कुछ समय तक लगभग सामान्य भोजन खा सकते है, जब तक द्वितीयक वृद्धिया उनको जीवित रहने देती हैं। अतएव आमाशय के कार्सिनोमा के प्रत्येक रोगी को उदरान्वेषण के लाभ का उस समय तक अवसर देना चाहिए जब तक शारीरिक परीक्षा शमन के अवसर को असम्भव न प्रमाणित कर दे।

ग्रहणी के दुर्दम अर्बुद

ग्रहणी के प्राथमिक दुर्दम अर्बुद अत्यन्त विरल है और आमाशय का कार्सिनोमा ग्रहणी को आक्रान्त नही करता। किन्तु ग्रहणी मे पित्त वाहिनी से वेटर की कलशिका (ampulla of vater) पर निकलने वाला कार्सिनोमा फैल सकता है अथवा अग्न्याशय के शिर के कार्सिनोमा का उसमे प्रसार हो सकता है। लक्षण ग्रहणी के अवरोध के साथ पित्त के अवरोध भी होगे। शस्त्रकर्म योग्य होने पर ग्रहणी तथा अग्न्याशय के सिर का उच्छेदन करना होगा।

आमाशय और ग्रहणी की विपुटी या अपवर्त (Diverticulum)

आमाशय के अपवर्त अत्यन्त विरल होते है। अभिहृद प्रान्त मे अपवर्त होते है जो प्राय लक्षणहीन होते है। किन्तु उनसे रक्तस्राव हो सकता है। ऐसा होने पर उनका अपहरण आवश्यक होता है। कभी-कभी वहाँ तक पहुचने की कठिनाई से शस्त्रकर्म कठिन हो जाता है। व्रण से कूट अपवर्त बन सकते

है, उनकी चिकित्सा व्रण के समान होती है ।

ग्रहणी मे व्रण के तल या मुख के क्षतांकन से अपवर्तनम आकृतिया वन सकती है । उनकी व्रण के अतिरिक्त कोई चिकित्सा आवश्यक नही है । किन्तु ग्रहणी मे वास्तविक अपवर्त वहुत होते है । वे ग्रहणी के सव कचुको (coats) के वने होते हैं और वहुत बार उन पर अग्न्याशय ऊतक की एक टोपी भी चढी रहती है जो अग्न्याशय के आद्य ग्रहणी से अपवर्त के रूप मे परिवर्धन (development) का स्मरण दिलाती है । वे प्राय ग्रहणी के अभिमध्य ओर स्थित होते है और अग्न्याशय के सम्पर्क मे रहते है जिससे उनका अपहरण कठिन होता है । वे तभी लक्षण उत्पन्न करते है जव ग्रहणी की कुछ अन्तर्वस्तु उनमे रह जाती हैं जो असाधारण है । अपवर्त कार्सिनोमा का स्थान हो सकता है, किन्तु वह अत्यन्त असाधारण है । अपवर्त के अपहरण मे सावधानी की आवश्यकता है ।

ग्रहणी की सहज अविवरता (Atresia)

जन्म के पश्चात शीघ्र ही वमन इसका लक्षण है । वमन मे पित्त होता है जिससे उसका सहज शैशव जठरनिर्गम सकीर्णता (congenital infantile pyloric stenosis) से निदान किया जाता है । चिकित्सा जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन है, यदि रोग का निदान हो जाय ।

चिरकालीन ग्रहणी आन्त्रघात (Chronic duodenal ileus)

यह दशा ग्रहणी का चिरकालीन विस्फार है जिससे कुछ स्थितिकता (stasis) होती है और आमाशय विलम्ब से रिक्त होता है । कोई अग सम्वन्धी कारण नही मालूम होता । उर्ध्व आन्त्र-योजनी वाहिकाओ के ग्रहणी के तृतीय भाग को पार करते समय उनसे ग्रहणी का दवना इसका कारण माना जाता है । अधिकतर चिकित्सा आवश्यक नही होती । यदि विस्फार अधिक हो और आमाशय के रिक्त होने मे भी अति विलम्ब हो तो जठरमध्यान्त्र सम्मिलन किया जा सकता है ।

9

उण्डुकपुच्छ, क्षुदान्त्र तथा बृहदान्त्र, आन्त्रावरोध

(Appendix, small and large intestine, intestinal obstruction)

ए० ई० डे० सा० (A. E DE. SA)

उण्डुकपुच्छ (Appendix)

शरीर रचना

उण्डुकपुच्छ एक खोखली मूलांगी (rudimentary) सरचना है जो बृहदान्त्र के प्रारम्भ की प्रतीक है। वह 1 से 3 इच तक लम्बी पाई जाती है और उसका आधार अधान्त्र की तीन टीनियाओ (taenia) के सम्मिलन पर स्थित है। अग्र टीनिया का अत उसका विशिष्ट निर्देशक है। बन्दरो की कुछ जातियो मे उण्डुकपुच्छ अधान्त्र का भाग होता है। और दोनो की अवकशिकाये (lumen) मिली रहती हे जिससे उसमे अन्तर्वस्तु (contents) रुकने नही पाती। मनुष्य मे ऐसी उण्डुकपुच्छ नही मिलती।

उण्डुकपुच्छ की सरचना बृहदान्त्र के ही समान है, यद्यपि वह कुछ भिन्न होती है। पर्युदर्या कचुक, उण्डुक पुच्छयोजिनी (mesoappendix) के लगाव के अतिरिक्त, सम्पूर्ण है। वह शेपान्त्रयोजनी (ileal mesentery) के निम्न स्तर के अन्तर भाग से निकल कर उण्डुकपुच्छ के पश्चाभिमध्य (posteromedial) पृष्ठ पर लगी रहती है। वाह्य अनुदैर्ध्य पेशी कचुक निरंतर है, तीनो टीनिया मिलकर उण्डुकपुच्छ का सम्पूर्ण पेशी कचुक बनाती मालूम होती है। उसके नीचे का वृत्ताकार पेशी स्तर भी सतत है। उण्डुकपुच्छ मे रक्त लाने वाली

धमनिया इन दोनो स्तरो को वेधकर आती है। उनके पेशी मे से निकलने के मार्गों को पेशीछिद्र (hiatus musculares) कहा जाता है जिनके द्वारा अवकाशिका से सक्रमण सहज मे बाहर आ सकता है।

अधोश्लेष्मिक (submucous) स्तर मोटा है। उसमे लसीका कूपो (lymphatic follicles) का बाहुल्य, विशेषकर बाल्यकाल मे, होता है जिससे वहा सक्रमण सहज मे पहुँच जाता है। श्लेष्मिक कला बृहदान्त्र की कला ही के समान है, किन्तु उसमे वलिया बहुत है और श्लेष्मिक कोशिकाओ की प्रचुरता है जिससे श्लेष्म पुटिका (mucocele) बन सकती है।

तन्त्रिका—दसवे उरो खडाग से अनुकम्पी ततु आते है।

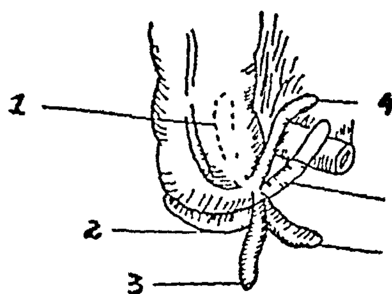
उण्डुकपुच्छ निम्न स्थितियो मे पाई जा सकती है। परावृहदान्त्र (paracolic), प्रत्यक् बृहदान्त्र (retrocolic), शेपान्त्र या प्लैहिक, जो पुरोशेपान्त्र (preileal) या शेपान्त्रपश्च (postileal) हो सकती है, श्रोणिगत (pelvic) और अवाधान्त्र (subcoecal)।

परावृहदान्त्र प्रकार मे पूर्ण पर्युदर्या आच्छादन हो सकता है अथवा वह प्रत्यक् पर्युदर्या (retroperitoneal) हो। श्रोणिगत प्रकार श्रोणि मे लटका रहता है। शेपान्त्र प्रकार सबसे भयानक है; वह पर्युदर्या गुहा मे मुक्त आन्त्र कुंडलो के बीच पडा रहता है। विद्रधि बनकर फट जाने से उससे सक्रमण फैलने से समस्त पर्युदर्यागुहा का शोथग्रस्त होना अनिवार्य है और शेप-बृहदान्त्र शिरा (ileocolic vein) के समीप होने से प्रतिहारी पूयरक्तता (portal pyaemia) हो सकती है।

उण्डुकपुच्छ के छिद्र पर श्लेष्मला का एक पुटक स्थित होता है जो गर्लेख (Gerlach) की कपाटिका कही जाती है। उण्डुकपुच्छ के एक पतली नली होने के कारण उसमे मलाश्मरी (faecolith) के बनने से या श्लेष्मला के शोफ (oedema) से उसका अवरोध हो जाता है।

रक्तसचरण

उण्डुकपुच्छ का रक्त सभरण बडे महत्त्व का है। उण्डुकपुच्छ शोथ मे धमनी के अवरोध से उसका कोथ (gangrene) हो सकता है और शिरा द्वारा सक्रमण के प्रसार से सपूय प्रतिहारी शिराशोथ (suppurative pylephlebitis) का अत्यन्त भयकर उपद्रव सभव है। उण्डुकपुच्छ (appendicular artery) धमनी शेप बृहदान्त्र (ileocolic) धमनी के निम्न विभाग की शाखा है, वह उण्डुकपुच्छ योजनी (mesoappendix) की मुक्तधारा पर



चित्र 32—उण्डुकपुच्छ की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ आरेख (diagram) मे दिखाई गई है।

होती हुई आती है, केवल उसका अन्तिम भाग उण्डुकपुच्छ की भित्ति के सम्पर्क मे रहता है और उससे शाखाये निकल कर भित्ति मे प्रविष्ट होकर उसकी अवश्लेष्मला (submucosa) मे फैल जाती है। सहायक उण्डुकपुच्छ धमनी (accessory appnedicular artery) जो शेष बृहदान्त्र (ileocolic) धमनी को पश्च अन्धान्त्र (posterior coecal) शाखा से निकलती है और उण्डुकपुच्छ की पेशी मे प्रविष्ट होकर उसके आधार मे रक्त भेजती है, भी सर्जरी मे एक विशेष धमनी है। बधन (ligation) के पूर्व जब उण्डुकपुच्छ को कुचला जाता है तो उसके ढीला रह जाने से यह धमनी बधन मे नही आती जिससे उसके कटने पर अधान्त्र की अवकोशिका मे तीव्र रक्तस्राव हो सकता है। इससे मृत्यु तक हो चुकी हैं।

उण्डुकपुच्छ और बृहदान्त्र (appendicular, colic) शिराओ द्वारा रक्त उर्ध्व आन्त्रयोजनी (superior mesenteric) और प्रतिहारणी (portal) शिराओ मे लौटता है। इस कारण उण्डुक शिरा की घनास्रना (thrombosis) से प्रतिहारी पूयरक्तता (portal pyaemia) या सपूय प्रतिहारणी शिरा शोथ (suppurative pylephlebitis) हो सकते है।

तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ
(Acute appendicitis)

उण्डुकपुच्छ मे अवरोध और शोथ उत्पन्न होने की विशेष प्रवृत्ति होती है। अवरोध का कारण लघु अवकाशिका तथा उसके छिद्र का लघु आकार और उसकी अवश्लेष्मला मे लसीकाभ ऊतक का बाहुल्य होता है। प्राय दोनो दशाएँ उपस्थित होती है तथा एक-दूसरे की समर्थक है।

हेतुकी (aetiology)

यह रोग शाकाहारियो की अपेक्षा आमिष-भोजियो मे अधिक पाया जाता

है और अधिक तीव्र भी होता है। यह वाल्यकाल तथा प्रौढावस्था मे अधिक होता है, किन्तु कोई भी आयु इससे मुक्त नही है।

इसके दो प्रकार माने जाते है, अवरोधक और अनावरोधक (obstructive, nonobstructive)। प्रथम प्रकार जीवन के लिए अधिक भयप्रद है, उससे विदरण (perforation) अधिक होता है। वह पहले कभी हुए शोथ से उत्पन्न अवकाशिका की सकीर्णता से या मलाश्मरी (stercolith) से उत्पन्न होता है। अवरोध हो जाने पर वहाँ उपस्थित जीवाणुओ का सक्रमण भी होता है। दूसरा अनावरोधक प्रकार रक्तजन्य सक्रमण के कारण होता है। उससे व्रण और शोफ उत्पन्न होने के कारण अवकाशिका की सकीर्णता हो जाती है जिससे अवरोधी उण्डुकपुच्छ शोथ का आक्रमण होता है।

रोगोत्पादक जीवाणुओ मे एस्केरिकिया कोलाई (Escherichia coli) सवसे अधिक होते है जो क्लोस्ट्रीडियम समूह के वातनिरपेक्षी (anaerobic) जीवाणु होते है और दूसरे रक्तस्रलायी (haemolytic) तथा अरक्तलायी (nonhaemolytic) दोनो प्रकार के स्ट्रिप्टोकोकस होते हैं। अन्य पूयोत्पादक जीवाणु भी होते है। बहुत वार अतिसार (dysentery) से रोग होता है। ऐन्टेमीवा हिस्टोलिटिकाजन्य व्रणोत्पत्ति उण्डुकपुच्छ मे विस्तृत होकर जीवाणुओ द्वारा सक्रमित होने के पश्चात तीव्र रोग उत्पन्न कर सकती है। इसके विपरीत अमीवाजन्य व्रण के विरोहण से क्षताक के वनने का कारण उण्डुकपुच्छ की अवकाशिका की सकीर्णता हो सकती है जिससे अवरोधी प्रकार का रोग उत्पन्न हो सकता है।

लक्षण और चिन्ह

तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ के लक्षण मर्फी (Murphy) के तृतय (triad) मे सारभूत है – वेदना, वमन और ज्वर, यद्यपि इनमे से प्रत्येक की उग्रता तथा महत्त्व मे स्थानिक विकृति की सीमा के अनुसार भिन्नता मिलती है।

वेदना—तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ मे नाभि पर या अधिजठर मे वेदना प्रारभ होती है और वहाँ कई घटो तक वने रहने के पश्चात दक्षिण श्रोणिफलक खात (right iliac fossa) मे सीमित हो जाती है। नाभि मे वेदना प्रतीत होने का कारण नाभि और उण्डुकपुच्छ दोनो मे मेरुरज्जु के दसवे खडाँश (segment) से निकले तन्त्रिका तन्तुओ का वितरण है। पीछे पर्युदर्या के शोथ द्वारा आक्रान्त होने पर वेदना दक्षिण श्रोणिफलक खात मे सीमित हो जाती है। कई बार पूर्ण अवरोधी प्रकार मे दक्षिण श्रोणिखात वेदना से मुक्त रहता है क्योकि वहाँ की

प्रादेशिक भित्ति-पर्युदर्या आक्रान्त नही होती। वेदना के स्वरूप मे भी अन्तर होता है। अवरोधी उण्डुकपुच्छ शोथ मे वह शूलवत् (colicky) होती है, अनावरोधी मे वह निरन्तर बनी रहती है। तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ मे मैकबर्नी बिन्दु (McBurny's point) पर सबसे अधिक स्पर्शासहता का अनुभव उसका मान्य लक्षण है। यह बिन्दु नाभि से अग्र उर्ध्वश्रोणिफलक कटक (ant sup iliac spine) तक खिची रेखा के पार्श्व तृतीयाँश और अभिमध्य द्वितृतीयाश के सगम पर स्थित है। आगे चलकर वेदना क्षेत्र उण्डुकपुच्छ की वास्तविक स्थिति पर निर्भर करता है। प्रत्यक्-वृहदान्त्र उण्डुकपुच्छ (retrocolic appendix) मे वेदना पीछे की ओर, वृक्क कोण (renal angle) तक प्रतीत हो सकती है और स्पर्शासहता भी वही प्रतीत होगी। श्रोणिगत उण्डुकपुच्छ मे उदर मे कोई स्थानीकृत वेदना न प्रतीत होगी, केवल योनि या गुदा द्वारा परीक्षा पर स्पर्शासहता का अनुभव होगा। बालको मे जहा अधान्त्र नही उतरा है वेदना क्षेत्र ऊँचा होता है, वह दक्षिण अधोपर्शुक प्रदेश मे प्रतीत हो सकती है।

वमन – रोग के प्रारम्भ मे वमन सबसे तीव्र होते है और उण्डुकपुच्छ के आध्मान का उत्तम द्योतक है। अतएव अवरोधी प्रकार मे वमन कम होता है। वमनो की आवृत्ति (frequency) और उनकी प्रबलता उण्डुकपुच्छ के भीतर के तनाव और उसके विदार की सभावना की सूचक है।

ज्वर—सामान्य ज्वर, 101 फे० तक, तीव्र अनावरोधी उण्डुकपुच्छ शोथ का अभिलक्षक है। अवरोधी प्रकार मे ज्वर पूर्णत अनुपस्थित हो सकता है। पूयभवन (suppuration) की अवस्था के अतिरिक्त उच्चताप नही होता। प्रलेपक (hectic) ज्वर विद्रधि का द्योतक है और शीतकँप (rigor) प्रतिहारी पूयरक्तता (portal pyaemia) को सूचित करता है। शोथयुक्त उण्डुकपुच्छ की विशेष स्थिति से विशेष लक्षण उत्पन्न हो सकते है। गवीनी से आसजित उण्डुकपुच्छ मूत्र सम्बधी लक्षण उत्पन्न कर सकता है, मूत्र मे सूक्ष्मदर्शीय रक्त उपस्थित हो सकता है जिससे गवीनी की अश्मरी का आभास होता है। श्रोणिगत उण्डुकपुच्छ मलाशय से आसजित होने पर पुन पुन मलत्याग और सपीडकुथन या निस्तानिका (tenesmus) का कारण हो सकता है।

चिन्ह—उण्डुकपुच्छ की सामान्य स्थिति पर स्पर्शासहता और दक्षिण श्रोणिफलक खात मे उदरभित्ति की कठोरता (rigidity) दो मुख्य चिन्ह है। अनेक बार खात मे त्वचा की अतिसवेदिता (hypereasthena) होती है।

उण्डुकपुच्छ के कटिलम्बनिका (psoas muscle) पेशी के स्पर्श में रहने पर पेशी का आकर्ष नितम्ब का आकुंचन उत्पन्न कर देता है जिससे इसे फैलाने में कष्ट होता है।

सापेक्ष निदान (differential diagnosis)

सामान्यतया तीव्र उण्डुकपुच्छशोथ का निदान सरल मालूम होता है। किन्तु कुछ दशाएँ इसके बहुत कुछ समान होती हैं। दक्षिण श्रोणिफलक खात मे वेदना उत्पन्न करने वाली दशाएँ, उदर के निम्न भाग में वेदना और वमन तथा ये सब लक्षण कुछ दशाओ मे प्रकट होते हैं। इनका विवेचन आवश्यक है।

बालको मे—वाह्य श्रोणिफलक ग्रन्थिशोथ (iliac adenitis), तीव्र आन्त्रयोजनी ग्रन्थिशोथ (mesenteric adenitis), तीव्र गोणिकाशोथ (pyelitis) और तीव्र विस्फोटक ज्वरो (exanthema), जैसे, चेचक और मसूरिका (small pox, measles) के उद्भवन काल (incubation period) मे होने वाली उदर वेदना आदि का व्यतिकरण (exclusion) आवश्यक है। तीव्र आन्त्रयोजनी ग्रन्थि शोथ मे ज्वर कम (99 से 100 फ) होता है तथा दैहिक लक्षण और स्थानिक स्पर्शासहता भी कम होते हैं, सन्देहात्मक तथा अन्य श्वसन क्रियाओं से इस दशा का समर्थन होता है। तीव्र स्फोटक ज्वरों के सन्देह पर कुछ समय तक प्रतीक्षा (जिसमे त्वचा पर स्फोट प्रकट हो जाएँगे) निदान मे सहायक होगी। इनमे बालक को उण्डुकपुच्छशोथ की अपेक्षा तीव्रविपरक्तता अधिक होगी। दक्षिण आधारी प्लूरा-फूफ्फुसशोथ (basal pleuropulmonary inflamation) उण्डुकपुच्छशोथ के सलक्षण उत्पन्न कर सकता है, किन्तु श्वसनो की त्वरता (hurried respiration) और फुफ्फुस मे चिह्न, निदान का निश्चय करेंगे। वक्ष का एक्सरे चित्र या प्रदीप्ति पट परीक्षण से निदान निश्चित हो जाएगा। तीव्र गोणिका शोथ मे ज्वर कही अधिक होता है, कटिपार्श्व मे स्पर्शासहता भी अधिक होती है और मूत्र मे पूय कोशिकाए तथा जीवाणु मिलते है। प्रौढो मे अन्तर्घट्टित गवीनी अश्मरी (impacted ureteric calculus) के ऐसे ही लक्षण होगे। किन्तु वेदना वृषण या भग मे जाती प्रतीत होगी। स्थानिक स्पर्शासहता दक्षिण श्रोणिफलक खात मे अधिक गभीर होती है तथा मूत्र परीक्षा पर लाल रुधिर कोशिकाएँ और क्रिस्टलो की अधिकता मिलेगी। ज्वर नही होगा

वयस्को मे—तीव्र ग्रहणी वेध (perforation) के लक्षण तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ के सामान होते है जिसका कारण ग्रहणी की अन्तर्वस्तु (contents) का

दक्षिण पराबृहदान्त्र नाली (gutter) मे होकर दक्षिण श्रोणिफलक खात मे पहुचना होता है ।

शेष बृहदान्त्र (ileocolic) यक्ष्मा का तीव्र प्रारभ कभी-कभी तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ के समान होता है किन्तु आक्रमण के प्रथम दिवस पर एक पिंड का वन जाना, उससे पहिले जठरान्त्र सवन्धी लक्षणो का इतिवृत्त और रोगी की सामान्य आकृति निदान की भूल नही होने देगे ।

और अधिक आयु वालो मे वाम बृहदान्त्र का वलय कार्सिनोमा (ring carcinoma) अनेक वार तीव्र पर्युदर्या शोथ के से लक्षण उत्पन्न करता हे । सावधानी से लिये हुए इतिवृत्त से दीर्घकालीन मन्दाग्नि या पाचन विकार तथा रोगी को कोष्टवद्धता और प्रवाहिका के आक्रमणो का इतिहास मिलेगा । इसके अतिरिक्त स्थानिक चिन्ह पर्युदर्या शोथ से भिन्न होते है । स्त्रियो मे दक्षिण और डिम्व ग्रन्थि और डिम्ववाहनी का शोथ (salpingo-oophoritis), विदीर्ण अस्थानी गर्भधारण (ectopic gestation) अथवा डिव ग्रन्थि की मरोड (twisted ovarian cyst) का विभेदन करना होगा ।

प्रयोगशाला मे अन्वेपणो से निदान मे विशेष सहायता नही मिलती । केवल सामान्य या अधिक श्वेत कोशिका वहुलता (leucocytosis) मिलेगी जो विद्रधि होने पर 20,000 प्रति घन मि०मि० से अधिक हो जाएगी । प्रति-जीवियो के पूर्व प्रयोग से श्वेत कोशिकाओ की सख्या मे वृद्धि रुक जाएगी । श्वेत कोशिका वहुलता अन्य भी कई ऐसी दशाओ मे होती है ।

एक्स-रे से कुछ दशाओ का व्यतिकरण (exculsion) किया जा सकता हे । मध्यच्छदिका के नीचे मुक्त गैस विदीर्ण उण्डुकपुच्छ को इगित कर सकती है । उससे दक्षिण गवीनी अश्मरी या तरलस्तर (fluid level) सहित आत्र को गैस की छाया से अन्त्रावरोध का आभास हो सकता है ।

उपद्रवरहित उण्डुकपुच्छशोथ की चिकित्सा

सर्जरी

यदि तीव्र शोथ के आक्रमण का शमन होता न मालूम होता हो तो प्रथम 48 घटे मे उण्डुकपुच्छोच्छेदन (appendiectomy) रोग की आदर्श चिकित्सा है । इस समय मे शस्त्रकर्म आपत्तिरहित है और विना शस्त्रकर्म के आगे चलकर जो उपद्रव हो सकते है उनसे रोगी वच जाता है । केवल विशेष दशाओ मे, जैसे एक पिंड के शीघ्रता से वच जाने या उपस्थित होने पर, या रोगी के शस्त्रकर्म के लिए उद्यत न होने पर सरक्षी चिकित्सा करनी

चाहिए। 48 घंटे के पश्चात शस्त्रकर्म कठिन हो जाता है। आक्रमण के पाँचवें या छठे दिन पर केवल अनुभवी निपुण सर्जन शस्त्रकर्म कर सकता है। क्षुद्रान्त्र और बृहदान्त्र के क्षत हो जाने का भय वास्तविक हो जाता है और आगे चलकर पुरीष नालव्रण (foccal fistula) बनने का बहुत अवसर रहता है।

साधारणतया मैकबर्नी का ग्रिड-आयरन (grid iron) छेदन तथा दक्षिण निम्न परामध्यम (paramedian) छेदन किए जाते हैं। मैकबर्नी का छेदन नाभि को अग्र ऊर्ध्वश्रोणिफलक कटक से जोड़ने वाली रेखा के मैकबर्नी बिन्दु को केन्द्र बनाकर उसके समकोण (at right angle) पर किया जाता है। उदर पेशियों के तन्तुओं को उनकी दिशा में पृथक करने से उण्डुकपुच्छ की सभाव्य स्थिति तक जाने का मार्ग बन जाता है, किन्तु वह सीमित होता हैं। परामध्यम छेदन द्वारा श्रोणिगत अगों तक पहुचने का मार्ग उत्तम (विस्तृत) होता है और अन्वेषण के लिए विशेषतया उपयुक्त होता है।

संरक्षी चिकित्सा (conservative treatment)

हमारे देश के रोगी, जो प्राय शाकाहारी होते हैं, उनको संरक्षी चिकित्सा से लाभ होता है जिसका कारण उनके आन्त्र के जीवाणुओ की दुर्बलता हो सकती है। किन्तु पहले से इसका निश्चय करना कि किसको लाभ होगा और किनमें भयकर उपद्रव उत्पन्न हो जाएँगे, असम्भव है। सरक्षी चिकित्सा के सिद्धान्त ये हैं (1) मुख द्वारा आहार का सम्पूर्ण निषेध। रोगी को जल की आवश्यकता की आन्त्रेतर मार्गों से तरलो को पहुँचाकर पूर्ति करना। (2) प्रतिजीवियों का प्रयोग। पेसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन मिलाकर दी जाय या पेसिलिन के साथ अन्य बहुप्रभावी या विस्तृत स्पेक्ट्रम वाले प्रतिजीवियो (broad spectrum antibiotics) का प्रयोग कराया जाय। (3) फाउलर स्थिति (Fowler's position)। (4) दक्षिण श्रोणिफलक खात (right iliac fossa) पर ऊष्मस्वेद (fomentation)। (5) प्रति दो घंटे का ताप, नाडी और श्वसन का चार्ट बनाया जाय। ताप और स्थानिक चिन्हों के शमन होने के दो-तीन दिन पश्चात तक प्रतिजीवी चिकित्सा जारी रखी जाय। प्रलंबित प्रतिजीवी चिकित्सा का एक दोष यह है कि शोथ के पूर्ण शात होने मे बड़ा विलम्ब होता है और दक्षिण श्रोणि खात मे एक कडा पिंड बहुत समय तक बना रह सकता है, जिससे शमन काल मे भी उण्डुकपुच्छोच्छेदन करना कठिन होता है।

कब सरक्षी चिकित्सा बन्द की जाय, कब शस्त्रकर्म आवश्यक है, इसका

निर्णय शारीरिक और स्थानिक लक्षणो से करना होता है। कुछ समय तक लक्षणो के विराम के पश्चात नाडी की गति का अकस्मात बढ जाना (प्रति मिनट 20 से अधिक, एक घटे मे), वमन का पुन. आरम्भ होना और सामान्य दशा का ह्रास ऐसे लक्षण है। चिन्हो मे कठोरता (rigidity) के विस्तार का बढना, स्पर्शासहता का अधिक होना और स्थानीकरण (localization) का अभाव विस्तृत पर्युदर्या शोथ (generalised peritonitis) की प्रवृत्ति इगित करते है।

सरक्षी चिकित्सा मे होने वाले उपद्रव और उनकी चिकित्सा

वे उपद्रव ये है विद्रधि—स्थानिक, श्रोणिगत, या अवमध्यच्छद (subphrenic). वेध—स्थानिक, विद्रधि सहित, या सामान्य पर्युदर्या गुहा मे जिससे विसरित पर्युदर्याशोथ उत्पन्न हो जाता है, तथा प्रतिहारी पूयरक्तता (portal pyaemia)।

चिकित्सा के बिना भी ये उपद्रव हो सकते है।

विद्रधि बनना—जिस रोगी का ताप प्रसामान्य हो गया है उसके ताप का शीतकप के साथ या शीतकप के बिना ही अकस्मात उच्च हो जाना, स्थानिक सूजन का सिमट कर एकस्थानी होना, और उसमे स्पर्शतरग का प्रतीत होना तथा रक्त मे श्वेतकोशिका बहुलता का प्रतिघन सेंटीमीटर 20,000 से ऊपर होना, जिसमे बहुरूपी केन्द्रकी कोशिकाओ की अधिकता हो, ये सब विद्रधि बनने के लक्षण है। तीव्र उण्डुकपुच्छशोथ मे प्रदर्शनीय मात्रा मे पूय के एकत्र होने पर उसको निकालना आवश्यक होता है। मैकबर्नी का छेदन (incision) किया जाता है, किन्तु पेशियो को भी छेदन ही की रेखा मे विभक्त करते है। विद्रधि मे पहुँचने पर उसके खोलने के पश्चात उसमे रबड का टुकडा निर्हरण के लिए रखा जाता है।

श्रोणि विद्रधि मे पूयभवन के सामान्य चिन्हो के साथ स्थानिक लक्षण मलाशय के क्षोभ के होते है और बारम्बार श्लेष्मायुक्त मलत्याग होता है। अगुलि द्वारा गुदापरीक्षा पर विद्रधि का स्पर्शतरगयुक्त उभार प्रतीत होता है। इन विद्रधियो का निर्हरण मलाशय द्वारा या स्त्रियो मे पश्च योनि फार्निक्स द्वारा करना उचित है।

अवमध्यच्छद विद्रधि (subphrenic abscess)

इसका विचार गत परिच्छेद मे किया जा चुका है।

विदरण या वेध (perforation)—उण्डुकपुच्छ के वेध से स्थानीकृत विद्रधि वनने पर दक्षिण श्रोणिफलक खात मे स्पर्शतरग युक्त पिड (fluctuating mass) मिलता है और उसका निर्हरण आवश्यक है। सामान्य पर्युदर्या गुहा मे वेव होने पर सामान्य पर्युदर्या शोथ हो जाता है, यदि रोगी को प्रारम्भ से नही देखा जा रहा है तो ऐसी दशा मे उण्डुकपुच्छ शोथ को विसरित (difuse) पर्युदर्या शोथ का कारण जानना कठिन होता है। प्रथम वार रोगी को इस दशा मे देखने पर उसको पैप्सिनी व्रण के अथवा कभी-कभी टायफाइड या यक्ष्माजन्य व्रण के वेध से उत्पन्न पर्युदर्याशोथ समझा जा सकता है। पैप्सिनी व्रण का दीर्घ इतिवृत्त या टायफाइड ज्वर के क्रम मे दूसरे या तीसरे सप्ताह मे इस दुर्घटना के होने के इतिवृत्त से निदान मे सहायता मिलती है, किन्तु सामान्य पर्युदर्याशोथ की चिकित्सा उदर को खोल कर कारण को दूर करने से इस दशा के कारण का निदान केवल साहित्यिक अन्वेषण रह जाता है।

चिकित्सा उण्डुकपुच्छोच्छेदन और पर्युदर्यागुहा मे वेध से निकले निस्राव की प्रचुर मात्रा उपस्थित होने पर उसका निर्हरण (drainage) है, सामान्य आयोजन, जैसे प्रतिजीवियो का प्रयोग तथा आवश्यक समय तक शिरा द्वारा पोषण, सदा वाछित है। अतिगभीर अवस्था वाले रोगियो की, जो सर्जरी के अभिघात को सहन करने योग्य न हो, प्रतिजीवियो और अन्तर्शिरीय पोषण द्वारा प्रत्याशी चिकित्सा की जाय और स्थानीकरण के पश्चात उण्डुकोच्छेदन की आशा रखी जाय। यह सामान्य पर्युदर्याशोथ की कालसिद्ध चिकित्सा है, किन्तु आजकल उसकी प्राय आवश्यकता नहीं होती।

घनास्रशिराशोथ (thrombophlebitis) और प्रतिहारी पूयरक्तता (portal pyaemia)

शेष वृहदान्त्र (ileocolic) शिराओ के घनास्रयुक्त शोथ और प्रतिहारी पूयरक्तता के उपद्रव आजकल लुप्त प्राय हो गए हैं। उण्डुकपुच्छ शोथ मे घनास्रशिराशोथ की उत्पत्ति का प्रथम लक्षण पुन. पुनः शीतकप (rigors) होना है। उसके साथ कामला की आभा का होना प्रतिहारी पूयरक्तता का सूचक है। रोगी की साधारण दशा का द्रुत ह्रास होता है और सर्जरी द्वारा दशा दूर न करने पर यकृत मे अनेक विद्रधिया वनकर रोगी की मृत्यु का कारण होती हैं। प्रारम्भ मे चिकित्सा से जीवन रक्षा हो सकती है। शेप-वृहदान्त्र शिरा का वधन (ligature) जिसके द्वारा पूतित घनास्र (septic embolus) यकृत को जाते है, तथा उण्डुकपुच्छोच्छेदन और वहुप्रभावी (विस्तृत

स्पैक्ट्रम, प्रतिजीवियो का प्रचुर प्रयोग रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा है । तो भी चिकित्सा के परिणाम अभोष्ठित नही होते ।

तत्काल उण्डुकपुच्छोच्छेदन के उपद्रव

आंत्राध्मान और घातज आत्रावरोध (distension of intestines and paralytic ileus)—आत्राध्मान जिससे बढकर घातज आत्रावरोध हो सकता है, आजकल अतिविरल उपद्रव है जिसका कारण प्रतिजीवियो द्वारा पर्युदर्या के सक्रमण का नियत्रण और शस्त्र कर्मपश्चकाल मे जठरान्त्र आचूषण हो सकते है । उपद्रव प्राय शस्त्रकर्म के 48 घँटे पश्चात आत्र के साधारण से आध्मान के रूप मे शनै शनै प्रारम्भ होता है और निरन्तर धीरे-धीरे वढता है जिसमे आन्त्र पुर सरण का शब्द तनिक भी नही सुनाई देता । मलाशय से मल या वायु का त्याग भी नही होता । चिकित्सा न होने पर रोगी की दशा का निरतर और शीघ्रता से ह्रास होने लगता है । उदर के सामान्य एक्स-रे चित्र मे कई गैस पूरित लघु आत्र कुडल दिखाई देगे जिनमे तरलस्तर (fluid level) उपस्थित होगा । एक गम्भीर दशा के रोगी मे, जिसकी जिह्वा शुष्क है और नाडी की गति बढती जा रही है, शान्त (silent) किन्तु आध्मान युक्त उदर होने से निदान मे कठिनाई नही होती । चिकित्सा सरक्षी क्रम से की जाती है । कोलीनधर्मी (cholenergic) औषधियो का प्रभाव अनिश्चित है ।

जठरान्त्र पथ का विसम्पीठन (decompression), अन्तर्वासी (indwelling) नासाजठर नली (nasogastric tube) अथवा मिलर-एवट (miller-abbott) नली द्वारा, चिकित्सा का आधार है । मुखद्वारा आहार या पेय बन्द कर दिए जाते है और विद्युदपघट्यो तथा पोषण को शिरा द्वारा पहुँचाया जाता है । बहुप्रभावी प्रतिजीवियो का सक्रमण के नियत्रण के लिए प्रयोग उचित है । उदर पर सेक (शुष्क) से रोगी को विश्राम मिलता है । दुर्भाग्य से मिलर-एवट नलिका को, जो चिकित्सा का आधार है, प्रविष्ट करना बहुधा कठिन और कभी-कभी असभव होता है । मार्फीनलघु मात्राओ मे, 10 से 15 मिलीग्राम प्रति छ घटे पर देने से लाभ वताया जाता है ।

पुरीष नालव्रण (foecal fistula)

48 घटे के पश्चात किये गए शस्त्रकर्म के पश्चात यह हो सकता है । अधान्त्र या शेपान्त्र जो पहले ही चूर्ण्य (friable) हुए रहते है, उनको अभिघात

(trauma) पहुचने से या अमृदु व्यवहार से नाल व्रण बन जाता है। जहा पहले से कुछ आंत्रघात है वहा नाल व्रण बनने से आध्मान तत्काल कम हो जाता है।

चिकित्सा सरक्षी है। व्रण के चारो ओर की त्वचा की आत्ररसो से रक्षा आवश्यक है। जब तक नाल व्रण से आगे का आन्त्र मे का मार्ग अनावरुद्ध है तबतक नाल व्रण का स्वय ही विरोहण हो जाएगा। किन्तु इसमे बहुत समय लगता है।

रक्तस्राव (haemorrhage)—उण्डुकपुच्छ योजनी (mesoappendix) के बधन (ligature) के सरक जाने से अन्त पर्युदर्या रक्तस्राव या उण्डुकपुच्छ के स्थाणुक (stump) मे आन्त्र के भीतर रक्तस्राव हो सकता है। वह सदा शस्त्रकर्म की विधि के दोष से होता है।

अमिबाजन्य अतिसार (amoebic dysentery) और उण्डुकपुच्छशोथ

अमीबाजन्य अतिसार से आक्रान्त उण्डुकपुच्छ के शोथ के लक्षण साधारण तीव्र उण्डुकशोथ ही के समान होते है, क्योकि दोनो मे समान जीवाणु सक्रमण होता है। अतएव चिकित्सा उण्डुकपुच्छ शोथ की की जाती है, न कि अतिसार की। यह सत्य है कि उण्डुकपुच्छ को भित्ति मे अमिबाजन्य व्रणो की उपस्थिति मे उण्डुकपुच्छछेदन आपत्तिजनक है, किन्तु शस्त्रकर्म के पूर्व कुछ दिन तक ईमेटिन देने से भय दूर हो जाता है। ईमेटिन से अमीबाजन्य व्रणो का विरोहण हो जाएगा, किन्तु उससे उण्डुकपुच्छ की अवरुद्ध अवकाशिका तथा जीवाणु-सक्रमण को कोई लाभ न होगा।

इस दशा को वास्तव मे निदानुसार अतिसार जन्य उण्डुकपुच्छ शोथ कहना चाहिए (dysenteric appendicitis), न कि उण्डुकपुच्छ अतिसार (appendicular dysentery)। अतएव अमीबामारक चिकित्सा उद्देश्य न होकर वह केवल साधन रूप शस्त्रकर्म पूर्व आयोजन होनी चाहिए।

यह कहा गया है कि उण्डुकपुच्छ अमीबा सक्रमण के भडार की भाँति काम करती है। इस कल्पना पर सक्रमण वाहको मे उण्डुकपुच्छोच्छेदन का आदेश दिया गया है। यद्यपि उण्डुकपुच्छ का नलिकासम आकार इस कल्पना का समर्थन करता हुआ मालूम होता है, किन्तु इसका अभी तक कोई सांख्यिकीय (statistical) प्रमाण नही मिला है, जो शस्त्रकर्म का समर्थन कर सके।

उण्डुकपुच्छ पिंड (appedicular mass)

तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ की सरक्षी चिकित्सा करने पर दक्षिण श्रोणिफलक खात मे आक्रमण के 5 दिन के पश्चात एक पिंड बन जाता है जिसमे शोथयुक्त

मोटी हुई उण्डुकपुच्छ और उसके चारो ओर की सरचनाएँ होती है जो सक्रमण को स्थानीकृत (localise) करने के लिए उसको घेर लेती है। इनमे वपा (omentum) विशेष होती है जो अपना सरक्षक कर्म पूरा करती है और वहुधा उण्डुकपुच्छ को आवेष्ठित कर लेती है। इस पिंड मे पास के आन्त्र कुडल, पर्युदर्या और फाइब्रिनवत निस्राव होता है जो पिंड को घेरे रहता है तथा उसमे भर जाता है।

इस पिंड की उपस्थिति पर शस्त्रकर्म वर्जित है, क्योकि चारो ओर के ऑत्र को क्षत किए विना उण्डुकपुच्छ को पाना और अपहरण करना अत्यत कठिन है। पिंड के मध्य मे प्रायः कुछ पूय होती है जिसका शनै शनै अव-शोषण हो जाता है। उसमे कितनी बडी विद्रधि है जिसका छेदन आवश्यक है या नही, यह निर्णय करना भी कठिन होता है। इस निदान के साधन सरक्षो चिकित्सा के साथ बताए जा चुके है।

उण्डुकपुच्छ पिंड की चिकित्सा सावधानी से प्रतीक्षा करना है। प्रारम्भ मे शैया पर विश्राम आवश्यक है। किन्तु ज्यो-ज्यो पिंड सिकुडता जाता है और उसका सपिडन (consolidation) होता है त्यो-त्यो रोगी को थोडा चलाया जाता है। पिंड के पूर्णतया लुप्त होने मे तीन-चार सप्ताह लग जाते है जिसमे ऊष्मा प्रयोग से लाभ होता।

आगे चलकर पिंड को क्षयजन्य अधान्त्र विक्षति (tuberculous coecal lesion) या अधान्त्र के अर्बुद से विभिन्न करना कठिन हो सकता है। किन्तु पिंड का दक्षिण श्रोणिफलक खात मे स्थिर होना, वेदना और ताप सहित पूर्व आक्रमण का इतिवृत्त तथा पिंड का सिकुडना और फिर लुप्त हो जाना निदान मे सहायक होते हैं।

बालको मे उण्डुकपुच्छ शोथ

चार सप्ताह के शिशुओ मे उण्डुकपुच्छ शोथ पाया गया है। किन्तु आयु के प्रथम कुछ वर्षो मे रोग असाधारण है। बालको मे रोग की प्रगति शीघ्र होती है और सब लक्षण विवर्धित (exaggerated) होते है। पिंड बनना (lump) साधारण नही है। इस भेद का कारण बालको मे उण्डुकपुच्छ मे लसीका ऊतक का आधिक्य, उण्डुकपुच्छ का बडा आकार, पर्युदर्या की रोग-क्षमता (immunity) शक्ति की अल्पता और वपा का अल्प परिवर्धन (under development) है। वपा की लबाई की न्यूनता से वह सरक्षक अवरोध (protective barrier) नही बना पाती। उण्डुकपुच्छ का वेध शीघ्र होता है

और पर्युदर्या के आसजनो (adhesion) के न बनने से विस्तृत पर्युदर्या शोथ हो जाता है। सबसे अधिक भय माता के बालक को विरेचक देने से उत्पन्न होता है जिसे वे पेट के दर्द के लिए बालक को प्राय. देती रहती हैं। उण्डुकपुच्छ का विद्ध होना या न होना इस पर निर्भर कर सकता है।

निदान—प्राय कठिन होता है। इतिवृत्त सहायक नही होता और बालक पूछने पर उदर के मध्य मे वेदना बताते है। ज्वर भी अधिक होता है। उदर भित्ति की कठोरता विशेष नही होती। अधिकतर बालक की साधारण दशा, तीव्र नाडी गति, शुष्क जिह्वा और जीव-विष रक्तता ही केवल नैदानिक लक्षण होते है।

चिकित्सा—यदि रोग शान्त होता न दीखे तो शीघ्र ही, आक्रमण के छठे या सातवे दिन, शस्त्रकर्म कर देना चाहिये। बालको मे 48 घंटे के पश्चात् आसजनो के न बनने से वयस्को के समान शस्त्रकर्म मे कठिनाई नही होती। विस्तृत पर्युदर्या शोथ हो जाने पर तत्काल शस्त्रकर्म करना आवश्यक है, यदि बालक शस्त्रकर्म के योग्य हो। बालको मे सरक्षी चिकित्सा उचित नही है, बालक को शस्त्रकर्म के योग्य बनाने के तत्काल आयोजन करने चाहिये। विशेषता यह है कि शाकाहारी बालको मे उण्डुकपुच्छ शोथ असाधारण है।

वृद्धो मे उण्डुकपुच्छ शोथ

वृद्धो मे रोग कम होने से चिकित्सक उसकी सभावना का विस्मरण कर सकता है। दक्षिण श्रोणिफलक खात मे उपस्थित पिंड को अधान्त्र का दुर्दम अर्बुद समझा जा सकता है, या ज्वर तथा वमन से जठरान्त्र विकारो (gastrointestinal disorders) का आभास हो सकता है। इसके विपरीत, वाम ओर के बृहदान्त्र के अवरोधक अर्बुद के कारण अधान्त्र के चिरकारी विस्फार या आध्मान से उण्डुकपुच्छ शोथ का सन्देह हो सकता है।

वृद्धो मे चिकित्सा वयस्को ही के समान होती है। उनमे सवेदनाहरण और शस्त्रकर्म पश्च आयोजन जटिल हो सकते है।

चिरकारी उण्डुकशोथ
(Chronic Appendicitis)

यह दशा दीर्घ काल से विवादास्पद रही है। किन्तु निस्सन्देह अनेक रोगियो मे दक्षिण श्रोणिखात मे चिरकालीन अनुभूत वेदना, मैकबर्नी बिन्दु की स्पर्शासहता और अनिश्चित अग्निमाद्य के लक्षण उण्डुकपुच्छोच्छेदन करने पर

जाते रहते है। अनेक बार केवल अधिजठर लक्षण होते है जिनका कारण जठर-निर्गम का आकर्ष और अत्यम्लता होती है। शस्त्रकर्म पर स्थूल, अतिरक्तमय उण्डुकपुच्छ मिलता है जिससे पूर्व रोगाक्रमण का पता चलता है, अथवा तन्तुकृत (fibrosed) हो चुकने से उण्डुकपुच्छ की अवकाशिका लुप्तप्राय हो चुकती है।

एक्स-रे चित्रो मे जो दीखे उसका परीक्षा से प्राप्त सूचना से मिलान करना चाहिये। वेरियम आहार से उण्डुकपुच्छ की भरण-न्यूनता (defective filling) या विलम्बित रिक्तीभवन (emptying), मोटन (kinking) या खडित (segmented filling) भरण तथा अन्त्य शेपान्त्र मे क्षोभ (irritability) या स्थितिकता (stasis) के लक्षण निदान के समर्थक है। इन अवाप्तियो (findings) या उपलब्धियो के मिलने पर भी रोग के लक्षण और चिह्नो की अनुपस्थिति मे शस्त्रकर्म करना उचित नही है। नैदानिक लक्षण और चिह्नों तथा एक्स-रे अवाप्तियो दोनो के द्वारा समर्थन पर विश्वस्त रूप से शस्त्रकर्म का आदेश दिया जा सकता है।

श्लेष्मपुटिका (mucocele) उण्डुकपुच्छ शोथ का एक विरल प्रकार है जिससे श्लेष्मा के पर्युदर्या गुहा मे लीक करने पर कूट मिक्सोमा वन सकता है।

उण्डुकपुच्छोच्छेदनोत्तर सलक्षण
(Post-Appendicectomy Syndrome)

उण्डुकपुच्छोच्छेदन का एक अनुगम दक्षिण श्रोणिफलक खात मे वेदना का अनुभव है जो शस्त्रकर्म के पश्चात्, तत्काल से लेकर कई मास पश्चात् तक आरम्भ हो सकता है और कुछ मास से कई वर्ष तक बना रह सकता है। इसकी विकृति का अभी तक पूर्ण ज्ञान नही है। अन्धान्त्र के आसजन, अन्धान्त्र के सिर पर उण्डुकपुच्छ के गडे हुए स्थूणक (buried stumt) मे व्रणोत्पत्ति और उदरभित्ति को स्तर प्रति स्तर वन्द करने मे त्रुटि जिससे पर्युदर्या भित्ति के साथ जुड जाती है, तथा अन्य भी ऐसे ही इसके कारण वताये जाते है। अतएव कारण को भली प्रकार न समझने के कारण रोगी को केवल यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि समय पाकर वेदना का लोप हो जाएगा।

उण्डुकपुच्छ का कार्सिनोमावत् अर्बुद
(Carcinoid Tumour of Appendix)

यह विरल अर्बुद श्लेष्मला के कुल्शित्स्की (kultshitzky) -केशिकाओ से

निकलता है । इसको क्रोमेफिनोमा या आर्जेंटेफीनोमा भी, उसकी कोशिकाओं द्वारा क्रोमिक अम्ल के या रजत के लवणो को ग्रहण करने के कारण, कहा जाता है । वे वृहदान्त्र के कार्सिनाइड अर्बुदो के समान होते है । उनका आकार वडे मटर के दाने से अधिक नही होता और उनमे कोलेस्टरोल की उपस्थिति के कारण वे पीत-श्वेत रग के होते है । उनके प्राय कोई लक्षण नही होते । किन्तु वे कभी-कभी, उण्डुकपुच्छ के आधार या काय मे स्थित होने पर, मृदु उण्डुकपुच्छ शोथ के से पुनरावर्ती आक्रमण उत्पन्न करते है । मैकवर्नी बिन्दु पर अल्प स्पर्शासहता के अतिरिक्त कोई चिह्न नही होते और न स्थलातरण होता है । इस कारण केवल उण्डुकपुच्छोच्छेदन पर्याप्त है । उण्डुकपुच्छ के आधार मे स्थित होने पर अर्ध वृहदान्त्रोच्छेदन (hemıcolectomy) करना होता है ।

क्षुद्रान्त्र (Small Intestıne)

शरीर रचना (anatomy)

क्षुद्रान्त्र की लम्वाई लगभग 22 फुट होती है । वह दूसरे कटिकशेरुका के दक्षिण ओर ग्रहणी-मध्यान्त्र बक (duodenojejunal flexure) पर प्रारम्भ होता है और दक्षिण श्रोणिफलक खात मे अन्धान्त्र मे प्रविष्ट होकर अन्त होता है । क्षुद्रान्त्र के, ऊपर के द्विपचमाश (two fifths) को, विना किसी कारण के, मध्यान्त्र (jejuuem) कहा जाता है, और नीचे के तृपचमाश (three fifths) को शेषान्त्र (ıleum) कहते है । साधारणतया मध्यान्त्र को उदर के वाम ऊर्ध्व भाग मे और शेषान्त्र को दक्षिण निम्न भाग मे स्थित कहा जा सकता है । शेषान्त्र मे रक्तवाहिकाकृत पाशो (vrascular loops) के अधिक विस्तृत होने तथा उसकी आन्त्रयोजनी (mesentery) के उदर मे दाहिनी ओर स्थित होने से दोनो भागो को पहिचाना जा सकता है । क्षुद्रान्त्र के इन भागो की श्लेष्मला मे भी भेद है । मध्यान्त्र के श्लेष्मला वलय (valvulae connıventes) शेषान्त्र के वलयो से अधिक पूर्ण है और सख्या मे भी अधिक है । शेषान्त्र के निम्न भाग मे वे पूर्णतया लुप्त हो गये है । वे आहार की प्रगति को रोकते है और अवशोषण पृष्ठ का क्षेत्र वढाते है ।

आन्त्र के विशेष खण्ड को पहिचानने का महत्त्व लघुपथकर शस्त्रकर्मो (short cırcuıtıng operatıons), जैसे जठर-मध्यान्त्र सम्मिलन (gastrojejunostomy) मे मालूम होता है, अनुपयुक्त आन्त्रखडाश सयोजित कर देने से बहुत से अवशोषक पृष्ठ की हानि हो सकती है । भित्ति पर आन्त्रयोजनी जहाँ लगी है वहाँ उसकी लम्वाई केवल 5-7 इच है । अतएव वह आन्त्र तक पहुँचने

के लिए पखे (या अर्धवृत्त) के आकार मे विस्तृत हो जाती है। क्षुद्रान्त्र मे रक्त ऊर्ध्व आन्त्र योजनी (superior mosenteric) धमनी से आता है और क्षुद्रान्त्र की शिराओ द्वारा ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी शिरा मे लौटता है, जो अग्न्याशय की ग्रीवा के पीछे प्लीहा शिरा से मिलकर प्रतिहारी शिरा बनाती है। क्षुद्रान्त्र की लसीका वाहिकाये (lymphatics) पुरोमहाधमनी लसीका पर्वो के ऊर्ध्व आन्त्र-योजनी समूह मे लसीका ले जाती है, किन्तु उनके बीच मे तीन रिले (relays) है, अन्त्यरिले, जिसकी वाहिकाये आन्त्र के पृष्ठ पर फैली है, मध्यरिले आन्त्र-योजनी के मध्य मे स्थित, और केन्द्रीय पर्व जो धमनी के मुख्य काण्ड के मार्ग पर स्थित है।

परिवर्धन (Development)

अन्तर्गर्भाशय जीवन के पाँचवे सप्ताह के प्रारम्भ तक आन्त्र भ्रूण बाह्य सीलोम (extra embryonic coelom) मे पीतक कोश (yolksac) मे अग्र-पश्च (sagittal) समतल मे रहता हे और उसके पश्चात् आन्त्र पर्युदर्या गुहा मे लौटता है। पाँचवे और दसवे सप्ताह के बीच मे यह एक विशेष क्रम से होता है। प्रारम्भ होने पर, आन्त्र भ्रूणबाह्य सीलोम मे ऊर्ध्वाधर अक्ष पर एक समकोण (90 डिग्री) दाहिने से बाये (anticlockwise) घूम जाता है। आन्त्र के लौटने का क्रम, जो दसवे और ग्यारहवे सप्ताह मे होता है, उदर के दक्षिण भाग मे स्थित यकृत की द्रुत वृद्धि के कारण होता है। अन्धान्त्र और अन्त्य क्षुद्रान्त्र उदर के वाम भाग मे लौटते है और तब अन्धान्त्र वाम अधोजठर से दक्षिण अध.पर्शुक प्रदेश और दक्षिण श्रोणिफलक खात मे बाम से दक्षिण को सरकने लगता है। जब आन्त्र अन्त मे वयस्क स्थिति मे पहुँच जाते हे तो आरोही और अवरोही बृहदान्त्र की योजनियो का अवशोषण हो जाता है और वे सीधे पश्च उदरभित्ति पर स्थिर हो जाते है। यह आन्त्र के विवर्तन (rotation) का प्रक्रम किसी भी अवस्था पर अव्यवस्थित हो सकता है जिसका परिणाम आन्त्रावरोध होता है।

जीवाणु समूह

आन्त्र मे उपस्थित मुख्य जीवाणु ऐस्कीरिया कोलाई (esch coli), वात-निरपेक्षी या अनाक्सी जीवाणु (anacrobes), स्ट्रेप्टोकोकस फीकेलिस तथा साल्मोनेला और डिसेन्टरी (dysentery) समूह के जीवाणु होते है। कभी-कभी रोगोत्पादक फगस भी मिलते है। आन्त्रवरोधजन्य दशाओ मे इनकी

प्रवलता वढ जाती है ।

अभिघात (Trauma)

उदर भित्ति के कुण्ठाग्र या तीव्र अभिघात से क्षुद्रान्त्र क्षत हो सकता है । मोटरकारो के लडने से या रेल की दुर्घटना से कुण्ठाग्र अभिघात होता है जिसमे क्षुद्रान्त्र स्थिर और चलायमान भागो के सगम पर, जैसे ग्रहणी-मध्यान्त्र वक्र (ducdenojejunal flexure) या शेपान्त्र का अन्त्य भाग, फट सकता है । ऐसी दुर्घटना से प्रथम स्तब्धता होती है और फिर शनै शनै पर्युदर्या शोथ होता है जिसका लक्षण उदर भित्ति की वढती हुई कठोरता होती है जिसका उदरभित्ति मे अभिघात से उत्पन्न हुई कठोरता से विभेदन करना पडता है । ऐसे क्षतो की चिकित्सा उदरछेदन करके आन्त्र के विदारोंको सीना है।

तीव्र अभिघात तीव्र नोक के अस्त्रो या वन्दूक या पिस्तौल की गोली से होते है । इनमे आन्त्र मे कितने ही पाशो मे क्षत वनते है । चिकित्सा पूर्वोक्त प्रकार से की जाती है ।

सक्रमण (Infections)

यक्ष्मा (tuberculosis)

क्षुद्रान्त्र का अतिसामान्य चिरकालीन सक्रमण यक्ष्मा है । आन्त्र मे प्राय· कई यक्ष्माजन्य व्रण होते है जो वृत्ताकार स्थित रहते है । उनके विरोहण पर आन्त्र सकीर्ण हो जाता है जिससे तीव्र या चिरकारी आन्त्रावरोध के लक्षण प्रकट होते हैं । कभी-कभी आन्त्रावरोध के साथ व्रणो मे वेध (perforation) भी हो जाता है, यद्यपि विना अवरोध के भी वेध हो सकता है । सक्रमण दूपित दूध से या जीवाणुयुक्त वलगम को निगल जाने से पहुँचता है , इस कारण वह अल्प आयु वालो मे अत्यधिक होता है ।

चिकित्सा

उपद्रव रहित आन्त्रयक्ष्मा की चिकित्सा सामान्य यक्ष्मा चिकित्सा क्रम के अनुमार की जाती है । आन्त्रावरोध या वेध पर उपयुक्त सर्जरी का आयोजन करना उचित है ।

टायफाइड व्रणोत्पत्ति (typhoid ulceration)

क्षुद्रान्त्र के टायफाइडी व्रणो मे सर्जरी की आवश्यकता केवल वेध या

रक्तस्राव से पड़ती है। टायफाइड मे स्वयं वेध एक गम्भीर दशा है। फिर इससे यह भी स्पष्ट होता है कि रोग भी भयकर रूप का है; इन दोनो कारणो के संयोग से प्रायः निराशाजनक हो जाता है। प्राय वेध तीसरे सप्ताह मे होता है। क्लोरेम्फेनिकोल के प्रयोग पर भी वेध हो सकता है। इस समय तक रोगी की दशा इतनी क्षीण हो चुकती है कि वेध प्राणान्त का कारण हो जाता है।

निदान—वेधजन्य पर्युदर्याशोथ का निदान सहज नही होता। स्थानिक लक्षण बहुधा जीवविषरक्तता से दब जाते है। अनेक बार रोगी वेदना की स्थिति नही बता सकता और कठोरता भी उपस्थित नही होती। रोगी की सतत गिरती हुई दशा, उदरभित्ति का सन्दिग्ध स्थानीकृत शोफ और मध्यच्छदिका के शिखर के नीचे गैस की उपस्थिति, जो लक्षणो या एक्स-रे चित्रो से पहिचानी जाय, इन ही लक्षणो से निदान करना होता है। कभी-कभी रोगी अपनी अगुली से ठीक व्रण की स्थिति बताता है।

चिकित्सा

रोगी की दशा इस योग्य होने पर, उदर छेदन कर वेध को वन्द करना उपयुक्त चिकित्सा है। वेध एक से अधिक हो सकते है। अतएव अन्य वेधो को भी देखना चाहिए। सामान्य बलवर्धक आयोजनो जैसे, रक्ताधान, प्लाज्मा देना और आन्त्रेतर मार्ग से क्लोरेम्फेनिकोल देने से इस उपद्रव से मृत्यु दर कम हो गई है। किन्तु जीवविषरक्तता भयकर दशा है जो रोगी की प्रणान्तक हो सकती है।

रोगी के सर्जरी सहन करने के अयोग्य होने पर मर्फी-ओशनर-शेरेन (murphy-ochsner-sherren) क्रम के अनुसार प्रत्यागी चिकित्सा की जाती है। किन्तु क्लोरेम्फेनिकोल के प्रयोग तथा अन्य आयोजनो पर भी परिणाम सतोषजनक नही होते। कभी-कभी वेध आसजनो द्वारा वन्द होने से रोगी बच जाता है, तो भी कई बार पर्युदर्यागुहा मे विद्रधि बन जाती है, जिसका निर्हरण आवश्यक होता है।

रक्त मे बढता हुआ प्रतिपिंड अनुमाप (antibody titre) चिन्ताजनक प्राग्ज्ञान सूचक है। ऐसे रोगियो की प्राय मृत्यु हो जाती है। टायफाइड व्रणो की अनुदैर्घ्य स्थिति होने के कारण उनसे सकीर्णता (stenosis) कभी नही होती।

प्रतिजीवी चिकित्सा सबंधित सक्रमण

बहुप्रभावी (विस्तृत स्पैक्ट्रम) प्रतिजीविषो को खिलाने से कितने ही रोगियो के जीवन की रक्षा हुई है, तो भी उनके प्रयोग से दो गभीर उपद्रव हो सकते हैं—परिगलनकारी स्टैफिलोकोकस जन्य आत्रशोथ (necrotising staphylococcal enteritis) और आत्र मे केन्डीडियेसिस या मोनीलियेसिस (मोनीलया केन्डिडा का सक्रमण)।

परिगलनकारी स्टेफिलोकोकसजन्य आत्रशोथ

यह आन्त्र का एक उग्र रोग है जो टेट्रासाइक्लीनो के दीर्घकालीन प्रयोग से उत्पन्न हो जाता है। आत्र के सामान्य (सदा रहने वाले) जीवाणु नष्ट या निर्बल हो जाते है और स्टेफिलोकोकस का एक प्रतिरोधी प्रकार (resistant strain) विकृतिकारी और आक्रमण की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है जो एक उग्र प्रकार का आत्रशोथ उत्पन्न करता है और वहुत वार घातक होता है। प्रवाहिका (diarrhoea), गाढ जीवविषरक्तता (toxaemia) और ज्वर, ये लक्षण होते है। चिकित्सा सामान्य और बलवर्धक होती है, प्रयुक्त प्रतिजीवी का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है। एराइथ्रोमाइसीन (erythromycin) ही केवल एक प्रतिजीवी है जो आत्र के सक्रमण के नियन्त्रण मे सफल होता है। इसको खिलाया जाता है।

आत्र केन्डीडियेसिस भी उपर्युक्त कारण से होता है। आत्र के जीवाणुओ के नष्ट होने पर केन्डिडा (monilia candida) का प्रफलन होकर वह रोगोत्पादक हो जाता हे जिससे एक प्रतिरोधक (resistant) प्रकार का आत्रशोथ उत्पन्न होता है और इस फगस से पूतिजीवरक्तता (septicaemia) होकर मृत्यु हो जाती है। अभी तक इसकी कोई औषधि नही थी। निस्टाटिन (nystatin) नामक नवीन आविष्कृत औषधि इसके नियन्त्रण मे कुछ सफल प्रमाणित हुई है।

क्रोन रोग (प्रादेशिक शेषान्त्रशोथ)
(Crohn's Disease, Regional Ilitis)

हेतुकी (aetiology)

इस रोग का कारण स्पष्ट नही है। यह रोग शेषान्त्र के अन्त्य भाग तथा अधान्त्र को आक्रान्त करता है। वह जठरान्त्र पथ के अन्य भागो मे भी हो सकता है। एक कणिकार्बुदी क्षत (granulomatous lesion) बन जाता है

जिससे अन्तर्पर्युदर्या (intraperitoneal) आन्त्रशोथ उत्पन्न होता है या अवरोधी क्षत बनता है जो बढकर आन्त्रावरोध के समान लक्षण उत्पन्न कर सकता है। कुछ इसको आन्त्र-यक्ष्मा का एक रूप मानते हैं। किन्तु ऊतक परिवर्तन (histological changes) यक्ष्मा मे बिल्कुल भिन्न होते है। कभी-कभी महा कोशिका-तन्त्र (giant cell system) मिलता है। रोग प्राय आयु के दूसरे या तीसरे शतक मे होता है, पुरुषो मे रोग स्त्रियो की अपेक्षा कुछ अधिक होता है।

उसकी ऊतक रचना अविशिष्ट कणिका गुल्म (nonspecific granuloma) के समान होती है जिसमे लघु गोल कोशिका होती है।

लक्षण

रोग के चार रूप पाये जाते है, यद्यपि वे मिश्रित भी हो सकते है

(1) शोथयुक्त प्ररूप (inflammatory type) जिसके लक्षण, तीव्र प्रारभ, दक्षिण श्रोणिफलक खात मे वेदना, वमन और ज्वर, तीव्र उण्डुकपुच्छ शोथ के समान होते है, रक्त मे श्वेतकोशिका बहुलता भी होती है। इस प्ररूप मे विद्रधि बन जाती है या दक्षिण श्रोणिफलक खात मे एक पिंड बनकर रह जाता है।

(2) क्षोभजनक समूह (irritative type), जिसमे श्लेष्मला मे व्रणोत्पत्ति और प्रवाहिका होती है।

(3) अवरोधक प्ररूप (obstructive type), जिसके लक्षण और चिह्न अन्त्रावरोध के समान तीव्र या चिरकारी होते है।

(4) नालव्रणोत्पादक प्ररूप (fistulous type), जो उदरछेदन या उण्डुक-पुच्छोच्छेदन के पश्चात् होता है। पूयभवन के फलस्वरूप कई नालव्रण बनकर छिद्रो द्वारा त्वचापृष्ठ पर पूय निकलने लगती है। यह दशा दक्षिण श्रोणिफलक खात की एक्टिनोमाइकोसिस के समान दीखती है। केवल फगस के कणो की अनुपस्थिति से निदान सभव होता है।

पहिला और तीसरा प्ररूप अधिक मिलते है।

निदान

केवल शस्त्रकर्म पर या यदि रोगी प्रारम्भ से चिकित्सा करवाता रहा हो तो निदान होता है। शेषान्त्र-अधान्त्र क्षय या एक्टिनोमाइकोसिस से चिरकारी रोगो को, जिनमे पिंड या नालव्रण बन जाते है, विभिन्न करना कठिन होता है। अन्वेषी उदरछेदन या जीवोति परीक्षा निदान के लिए आवश्यक हो सकती

है । बेरियम आहार चित्रो मे अन्त्य शेषान्त्र सकुचित अनम्य डोरी के समान दीखता है । अधान्त्र और बृहदान्त्र के आक्रान्त होने पर उनकी आकृति भी ऐसी ही दिखाई देती है । यह 'कान्टोर का चिह्न (strıng sıgn of Kantor) कहा जाता है । **चिकित्सा** मुख्यत औपधि प्रयोग द्वारा की जाती है । मसृण (bland), अल्प अवशेपी आहार (lowresıdue dıet) तथा विटामिनो और लोह का प्रचुर प्रयोग रोगी को पुष्ट रखने मे सहायक होते है । कोर्टिकोस्टराइडो को उपयोगी पाया गया है ।

काय चिकित्सा उपायो के विफल होने तथा आत्रावरोध, नालव्रण और पिंड बन जाने पर शस्त्रकर्म आवश्यक है । यदि क्षत को समीप की सरचनाओ को हानि पहुँचाये बिना निकाला जा सके तो उसका उच्छेद एक ही बार मे कर देना चाहिये । रोग के विस्तृत होने या रोगी की दशा हीन होने पर लघु-पथकर (shortcırcıtıng) शस्त्रकर्म करना उचित है । तीव्र रोग प्रकोपन (exacerbatıon) पर कभी-कभी तीव्र उदर समझकर (acute abdomen) शस्त्रकर्म कर दिया जाता है । ऐसे रोगियो की सरक्षी चिकित्सा करनी चाहिये ।

प्राग्ज्ञान (prognosıs)

रोग की पुनरावृत्ति बहुत होती है और दीर्घकालीन प्राग्ज्ञान आशाजनक नही होता ।

आन्त्र की वातपुटिकामयता
(Cystıc Pneumatosıs of Intestıne)

यह विरल दशा है जिसमे आत्र के पृष्ठ पर अधिकतर अधोश्लेष्मिक और अधोसीरमी स्तर मे गैस के बुलबुले (blebs) बन जाते है । गैस वायुमडल की वायु होती है । इसका कारण नही मालूम है । इसके कोई लक्षण भी नही होते और न उसकी चिकित्सा ही आवश्यक है । प्रायः किसी और कारण से उदर-छेदन पर इस दशा का पता चलता है । इसको बहुत वार पौलिपमयता (polyposıs) समझा जाता है । यह विशेषता है कि यह दशा अनेक वार जठर-निर्गम सकीर्णता (pyloric stenosıs) के साथ मिलती है ।

क्षुद्रान्त्र के अर्बुद

सुदम अर्बुद

क्षुद्रान्त्र के अधोश्लेष्मिक और श्लेष्मिक स्तरो मे सुदम अर्बुद पाये जाते है ।

अधोश्लेष्मिक वसार्वुद और ग्रन्थ्यर्वुद से तभी लक्षण प्रकट होते है जव उनसे अन्त्रान्त्रप्रवेश या इन्टस्ससेप्शन (intussusception) होता है अथवा रक्तस्राव प्रारम्भ होता है।

आन्त्र के वहुग्रन्थ्यर्वुद अनेक होने के कारण पुन -पुन. अन्त्रान्त्र प्रवेशन करते है। ग्रन्थ्यर्वुद के साथ मुख पर चारो ओर वर्णकता (pigmentation) हो जाती है, यह प्यूज-जेघेर सलक्षण (peutz jegher's syndrome) कहा जाता है।

दुर्दम अर्वुद

क्षुद्रान्त्र के दुर्दम अर्वुद प्राय लसीका सार्कोमा (lymphosorcoma) होते हैं, कार्सिनोमा वहुत कम होते है। ये आन्त्र के लसीका ऊतक से या आन्त्र-योजनी के लसीका पर्वो से निकलते है और उसके पश्चात् द्वितीयक रूप से आन्त्रभित्ति को आक्रान्त करते है। प्रधान लक्षण आन्त्रावरोध के होते है और उदर मे एक पिंड वन जाता है। कोई नैदानिक विशिष्ट लक्षण नही होते, किन्तु उदर मे उपस्थित पिंड के साथ वालक या अल्प आयु के युवक मे आन्त्रा-वरोध के लक्षण सन्देहजनक है। तीव्र आन्त्रावरोध की उपस्थिति पर इसकी आपाती (emergency) चिकित्सा की जाती है। निर्मूलक सर्जरी जो केवल चिरकालीन रोग मे या आपद से उवरने के पश्चात् की जाती है, सदा सम्भव नही है। किरणन का क्षेत्र भी सीमित है। नाइट्रोजनमस्टर्ड के परिणाम भी अनिश्चित हुए हैं।

कार्सिनाइड (कार्सिनोमावत) अर्वुद

क्षुद्रान्त्र के कार्सिनाइड अर्वुद, यद्यपि उण्डुकपुच्छ के कार्सिनाइडो से कम होते है तो भी वे महत्त्व के है। वे एक हारमोन का जिसको सिरोटिन (serotin) या एन्टरामिन (enteramine) कहते है स्रवण करते है। उसका सरचनात्मक सघटन (structural composition) 5-हाइड्रोक्सीट्रिप्टामीन है। जव यह वस्तु रक्त मे अधिक मात्रा मे सचरित होती है तो आर्जेन्टेफिनोमा सलक्षण उत्पन्न करती है जिसके लक्षण आनन पर लालिमा के चकत्ते वनना (flushing) अथवा श्यावता (cynosis), प्रवाहिका और उदरवेदना है। उसके साथ कभी-कभी हृत्कपाट विक्षति, जैसे फुप्फुसी और त्रिकपर्दी सकीर्णता (pulnonary, tricuspid stenosis) अथवा प्रत्यावहन (regurgitation) भी पाये जाते है। श्वसनी दमा और टागो पर शोफ के आक्रमण होते रहते

है। विशेषकर क्षुद्रान्त्र के कार्सिनाइड, जिनका आन्त्रयोजनी के पर्वों तथा यकृत मे स्थलान्तरण (metastasis) हो चुका है, इस सलक्षण को उत्पन्न करते हैं।

इसकी चिकित्सा जिस आन्त्रपाश मे अर्बुद हो उसका उच्छेदन करना है। अन्त्य शेषान्त्र के भी आक्रान्त होने पर अर्धबृहदान्त्रोच्छेदन (hemicolectomy) भी करना पडता है। द्वितीयक वृद्धियो का भी, जहाँ तक हो सके, अपहरण कर दिया जाय, स्रावी ऊतक के कम होने से लक्षणो की उग्रता भी कम हो सकती है। रोग के अधिक बढ जाने पर क्लोरप्रोमेजीन, ब्रोम-औथॉलाइसर्जिक एसिड डाइथाइलेमाइड (B O L) और रेडियोएक्टिव स्वर्ण औषधियो द्वारा चिकित्सा का परिणाम देखा जाय।

क्षुद्रान्त्र की रक्त सचार सबधी विक्षतियाँ
(Vascular lesiors of small Intestines)

आन्त्रयोजनी वाहिकाओ की अन्त शल्यता और घनास्रता उग्र दशाये हैं, जिनसे आत्र के सबधित, आत्र खडाश का कोथ (embolism, trombosis gangrone) होकर आत्रघात (ileus) के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

आत्रयोजनी की अन्त शल्यता (mesenteric embolism)

प्राय अनुतीव्र सक्रामी अन्तर्हृदशोथ (subacute bacterial endocarditis) या प्रगत द्विकपर्दी सकीर्णता (advanced mitral stenosis) आदि हृद-रोगो के अनुगम रूप ऊर्ध्व आत्रयोजनी धमनी के मुख्य काड मे अन्त शल्यता होती है जिससे क्षुद्रान्त्र के वहुत से भाग की मृत्यु हो जाती है और वहा सर्जरी द्वारा कुछ भी नही हो सकता। लक्षण, तीव्र अग्न्याशय शोथ (acute pancreatitis) के समान स्तब्धता और उदरवेदना, होते है। रक्तमिश्रित मलत्याग हो सकता है। शीघ्र ही उदरभित्ति की कठोरता हो जाती है। इस दशा का प्राय उदरछेदन पर रक्तमिश्रित पर्युदर्या निस्राव के मिलने और आत्र के वर्णपरिवर्तन से निदान होता है। केवल रोग के स्थानीकृत या परिमित होने पर सर्जरी द्वारा उच्छेदन सम्भव है। यदि रोग विस्तृत होने से उच्छेदन सम्भव नही हो, तो उदर को बन्द करके आतचनरोधी (anticougulants) औषधियो का प्रयोग किया जाय, जिससे अन्त शल्यता के स्थान से घनास्रता (thrombosis) फैलने न पाये।

आन्त्रयोजनी घनास्रता (mesenteric thrombosis)

ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी की घनास्रता का प्रारम्भ अलक्ष्य रूप से होता है। वह प्राय अशक्तकर रोगो के क्रम मे रोगग्रस्त वृद्धो मे होती है जैसे टायफाइड ज्वर मे, जहा आन्त्र मे शोथ के साथ विस्तृत एथीरोस्क्लिरोसिस (generalised atherosclerosis) और रक्त की वर्धित आतचनीयता (intravascular cougulability), दोनो रक्त के अन्तर्वाहिका आतचन के लिए उपयुक्त दशायें, पहले ही से उपस्थित होती है। कैंसरीय क्षीणता की अन्त्य अवस्था भी एक प्रवर्तक कारण है। यद्यपि प्रारम्भ अन्त शल्य की अपेक्षा धीरे-धीरे होता है, किन्तु लक्षण समान है। दूसरे रोग की उपस्थिति से घनास्रता का निदान कठिन हो सकता है, विशेषकर टायफाइड के रोगियो मे, तो भी उदर का आध्मान, मूक आन्त्र और रोगी की सामान्य दशा मे त्वरित ह्रास, अन्य लक्षण न होने पर भी, प्राय: सदा उपस्थित होते हैं। रक्तमिश्रित मलत्याग निदान का सहायक है।

चिकित्सा अन्त शल्यता के समान है। उच्छेद और सम्मिलन, ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी वृक्ष की परिमित घनास्रता मे, कभी-कभी सम्भव होता है। धमनी की घनास्रता मे अन्त शल्योच्छेदन (embolectomy) सफलतापूर्वक किया गया है। चिकित्सा मे आतचनरोधियो के दीर्घकाल तक प्रयोग का विशेष स्थान है। इन दोनो दशाओ मे मृत्यु बहुत अधिक होती है।

वृहद आन्त्र (Large Intestine)

वृहदान्त्र 5 फुट लम्बा है। वह अधान्त्र से प्रारम्भ होकर, उदर के परिसर पर होता हुआ मलाशय पर पहुचकर अन्त होता है। उसकी सरचना क्षुद्रान्त्र ही के समान है, किन्तु बाह्य-अनुदैर्घ्यपेशी स्तर तीन बधो मे सिमट गया है जिनको टीनिया (teniae) कहते है। ये लम्बाई मे आन्त्र की अपेक्षा छोटी है जिससे वृहदान्त्र मे सिकुडने बनकर कोष्ठिकाये बन गई है। यह वृहदान्त्र की विशेष आकृति है। वृहदान्त्र मे रक्त दक्षिण, मध्य और बाम वृहदान्त्र (colic) धमनियो से आता है। दक्षिण और मध्य वृहदान्त्र धमनिया ऊर्ध्व आन्त्र योजनी की शाखाये है और वाम वृहदान्त्र धमनी अधोआन्त्रयोजनी (inferior mesenteric) से निकलती है। केवल मध्य वृहदान्त्र धमनी आन्त्रयोजनी मे होकर जाती है। शेष दोनो धमनिया पर्युदर्या के पीछे (retroperitoneal) रहती है। वृहदान्त्र योजनी मे केवल दो या तीन धमनी चाप है। किन्तु क्षुद्रान्त्र की अपेक्षा

रक्तसचार कम होने पर भी, वास्तव मे यह विचित्र है कि, कितना अधिक रक्त-सचार काट देने पर भी, जैसा ग्रासप्रणाल के दोषो मे वृहदान्त्र को उसके स्थान पर लगाने मे किया जाता है, वृहदान्त्र जीवित रहता हे। शिराये धमनियो का निकट अनुसरण करती हुई प्रतिहारिणी शिरा मे रक्त ले जाती है। अधोआन्त्र-योजनी शिरा प्लीहाशिरा मे मिलती है।

वृहदान्त्र के लसीका पर्व तीन समूहो मे स्थित है, अन्त्य (terminal), मध्य (intermediate) और केन्द्रीय (central)। अन्त्य लसीका पर्व आन्त्रभित्ति पर फिर दो समूहो मे स्थित है, अधिवृहदान्त्र (epicolic) और परावृहदान्त्र (paracolic)। केन्द्रीय (central) पर्व महाधमनी पर बडी धमनियो के प्रारम्भ के पास एकत्रित है। मध्यपर्व दोनो के बीच मे स्थित है, किन्तु अनुप्रस्थ वृहदान्त्र योजनी मे उनकी न्यूनता है, जिससे अनुप्रस्थ वृहदान्त्र के अन्त्य लसीका पर्वो का ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी से निकलने वाली मध्य वृहदान्त्र धमनी के प्रारम्भ के चारो ओर स्थित पर्वो से सीधा सबध हो जाता है। इस कारण अनुप्रस्थ वृहदान्त्र के दुर्दम अर्बुद का सीधा केन्द्रीय पर्वो मे स्थलातरण (metastasis) सम्भव है।

शरीर क्रिया (Physiology)

वृहदान्त्र मे क्षुद्रान्त्र की अपेक्षा जीवाणु बहुत प्रकार के है और प्रवल (virulent) भी अधिक है। ऐस्कीरिया कोलाई (Esch coli) इस समूह का अत्यन्त विशिष्ट जीवाणु है। पूयोत्पादक कोकाई और वातनिरपेक्षी (anaerobes) बहुत होते है। बृहदान्त्र मे उनके द्वारा किण्वन (fermentation) की क्रिया से विटामिन-के और विटामिन बी-समग्र (vit B-complex) बनते है।

वृहदान्त्र की दो क्रियाये है—आन्त्र मे की अन्तर्वस्तु के तरल भाग का अवशोषण और विटामिन-के और विटामिन बी-समग्र को तैयार करना। यहाँ का पुर सरण, क्षुद्रान्त्र के विपरीत, समूह गति (mass movement) है जिससे अन्तर्द्रव्य मलाशय की ओर प्रगति करता हे।

अभिघात

उदरभित्ति पर कुठित अभिघातो से वृहदान्त्र का विदार हो सकता है, जैसे मोटर की दुर्घटनाओ मे, या वेधक क्षतो अथवा गोली लगने से भी हो जाता है। कभी-कभी वृहदान्त्रदर्शी (sigmoidoscope) के अनुचित प्रयोग से वृहदान्त्र मे वेध होते देखा गया है।

औद्योगिक सस्थाओ मे सपीडित वायु (compressed air) से बृहदांत्र विदार (rupture) होते देखा गया है । यह अत्यन्त असाधारण है ।

बृहदांत्र के विदारो मे बहुत मृत्यु होती है जिसका कारण वहाँ के प्रबल जीवाणु होते है । उनको, अन्वेषण करके, तुरन्त बन्द करना चाहिये । कभी-कभी शुष्कमल पिंड विदार मे भरकर उसको बन्द कर देता है और पर्युदर्या का अधिक सक्रमण नही होता ।

सक्रमण (Infections)

पाच सक्रमण विचारणीय है । दो विशिष्ट सक्रमण, अमीविकता (amoebiasis) और यक्ष्मा (tuberculosis) है जो ऊष्ण कटिबध के देशो मे अधिक होते है । एक्टिनोमाइकोसिस बहुत कुछ अधांत्र मे सीमित रहती है । क्रोन रोग आंत्र के किसी भी भाग मे हो सकता है । सव्रण बृहदांत्रशोथ (ulcerative colitis) विशिष्ट रोगो के समूह मे नही है । अत्यन्त विरल मलाशय का लसीका कणिकागुल्म (lympho-granuloma) है जो ऊपर से अवग्रह बृहदांत्र तक प्रसार कर सकता है ।

अमीविकता (amoebiasis)

अमीविकता दो प्रकार से सर्जन के क्षेत्र मे आ सकती है । एक, बडा पिंड बनकर, जो अवरोध उत्पन्न करे या न करे, और दूसरे वेध (perforation) से । यह कणिकागुल्म (grauuloma) अमीबोमा (amoeboma) या अमीबागुल्म कहा जाता है और अधांत्र से लेकर मलाशय तक कही भी हो सकता है, तो भी बृहदांत्र के प्रथम भाग मे अधिक होता है । क्षय या दुर्दमता से उसके विभेदक लक्षण पिंड की स्थिरता (fixity) तथा उसके साथ बार बार पतला मलत्याग होना है । मल मे प्राय ऐन्टेमीबा हिस्टोलिटिका पाया जाता है । तीव्र प्रकार के अतिसार (dysentery) का लम्बा इतिवृत्त निदान का उपयोगी सूचक है । प्रतिअमीबा चिकित्सा (antiamoebic) से लाभ निदान को निश्चित करता है । शस्त्रकर्म पर इस दशा को पहिचानना महत्त्व का है, उससे सर्जरी की अनावश्यक और भयकर प्रविधिया या प्रक्रम बच सकते है । पूर्ण विकसित अमीबीगुल्म बृहदांत्र के किसी भी खड पर सीमित स्थूल शोफयुक्त उभार के रूप मे दिखाई दे सकता है जो बहुत कुछ गीले ब्लौटिंग पेपर के समान होता है ।

यक्ष्मा

यद्यपि वह बृहदान्त्र मे कही भी हो सकता है, तो भी अधान्त्र मे अधिक

होना है। उसका अतिविकासी (hyperplastic) प्रकार का होना भी अधान्त्र की विशेषता है। अधोश्लेष्मिक और अधोसीरीय स्तरो मे प्रसार होने से विक्षति के पृष्ठ पर पर्व बन जाते है। समीपस्थ शेषान्त्र भी प्राय आक्रान्त होता है। 70 प्रतिशत रोगियो मे फुप्फुस या शरीर मे अन्यत्र कही भी यक्ष्मा का केन्द्र न होने पर भी आन्त्र मे अति-वृद्धिक या अतिविकासी (hypertrophic or hyperplastic) प्रकार का यक्ष्मा होता है। वह 85 प्रतिशत रोगियो मे शेषान्त्र-अधान्त्र प्रदेश मे पाया जाता है। सक्रमण आहार द्वारा या कुछ रोगियो मे अन्यत्र से रक्त द्वारा पहुँचता है। हमारे देश मे क्षतो से प्राप्त जीवाणु सदा मानव प्रकार (human strain) का पाया गया है। 20 से 40 वर्ष की आयु मे यह रोग स्त्रियो को पुरुषो की अपेक्षा अधिक होता है।

लक्षण

रोग के दो मुख्य लक्षण है। यक्ष्माजन्य जीवविषरक्तता के लक्षण तथा आन्त्रावरोध के लक्षण। ज्वर, शरीरभार का ह्रास, क्षुधा ह्रास और अरक्तता (anaemia) जीवविषाक्तता के द्योतक है। शेषान्त्र-अधान्त्र क्षयजन्य अवरोध का प्रथम लक्षण भोजन के पश्चात् दक्षिण श्रोणिफलक खात मे बेचैनी प्रतीत होना है। अवरोध के बढने पर खात मे शूलवत वेदना के आक्रमण होते हैं और धीरे-धीरे बढकर आन्त्रावरोध की दशा उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक परीक्षा पर दक्षिण श्रोणिखात मे पर्विल सूजन प्रतीत होती है जो कुछ चलायमान होती है, किन्तु श्वसन के साथ गति नही करती। अधान्त्र पिंड आन्त्र-योजनी मे तन्तुमयता के कारण दक्षिण कटि प्रदेश मे अथवा यकृत के नीचे तक, खिंच सकता है और वृक्कपिंड या अर्बुद के समान मालूम होगा। उण्डुकपुच्छ पिंड और अधान्त्र के कार्सिनोमा से उसका विभेदन निदान का एक प्रश्न है। उण्डुकपुच्छपिंड शेष-अधान्त्र यक्ष्मा के पिंड की अपेक्षा अधिक एकसम या स्निग्ध होता है। अधान्त्र का कार्सिनोमा पर्विल होता है, किन्तु वह वृद्धो मे होता है और यक्ष्माजन्य पिंड की अपेक्षा प्रारम्भिक अवस्था मे कही अधिक चलायमान होता है।

चिकित्सा और प्राग्ज्ञान

अधान्त्र के यक्ष्मा की चिकित्सा दैहिक तथा स्थानिक होती है। रोग के प्रारम्भ मे पिंड के प्रतीत होने के पूर्व केवल दैहिक यक्ष्मारोधी (anti-tuberculosis) चिकित्सा से लाभ होता है। स्थानिक शल्य चिकित्सा दो रूप ले

सकती है। या तो क्षयजन्य क्षति अर्धबृहदान्त्रोच्छेदन (hemicolectomy) करके निकालने के पश्चात् आन्त्र को सम्पूर्ण कर दिया जाता है अथवा उपशमन (palliation) के लिये लघुपथकरण (short circuiting) किया जाता है। यद्यपि किस प्रकार का शस्त्रकर्म किया जाय यह विवादास्पद रहा है, तो भी उचित यह है कि पूर्णतया अवरोधी क्षति (obstructive lesion) का, रोगी की योग्य दशा होने पर, उच्छेद कर दिया जाय, और रोगी की दशा क्षीण होने पर लघुपथकर शस्त्रकर्म किया जाय। क्षयजन्य जीवविषरक्तता होने पर उच्छेद करना उपयुक्त है, यद्यपि लघुपथकरण से भी इन रोगियो का स्वास्थ्य उन्नत हो जाता है जिससे आगे चलकर अर्धबृहदान्त्रोच्छेदन सम्भव होता है।

आधुनिक यक्ष्मारोधी औषधियो के प्रयोग तथा उच्छेदन या लघुपथकरण से प्राग्ज्ञान सतोषजनक होता है।

बृहदान्त्र के अन्य भागो का यक्ष्मा प्राय यक्ष्माजन्य सकीर्णता का रूप लेता है। लक्षण धीरे-धीरे बढते हुए आन्त्रावरोध के-से हो जाते है जो तीव्र अवरोध मे अन्त होते है। शस्त्रकर्म पर विक्षति पहचानना आक्रात आन्त्र खडाश के पर्युदर्यापृष्ठ पर यक्ष्मिकाओ (tubercles) के बनने से सहज होता है।

एक्टिनोमाइकोसिस (actinomycosis)

यह किरण कवक (rayfungus) या स्ट्रिप्टोमायसिज स्ट्रिप्टोथ्रिक्स (streptomyces streptothrix) के कारण होता है। बृहदान्त्र मे अधान्त्र इसका सर्वप्रिय स्थान है। यद्यपि रोग प्रथम अधान्त्र मे होता है, किन्तु वह अधान्त्र की भित्तियो को पार करके दक्षिण श्रोणिफलक खात के सब ऊतको को आक्रात करता है और उनका एक सयुक्त पिंड बना देता है। लक्षणानुसार दक्षिण श्रोणिफलक खात मे एक कठिन स्थिर पिंड बन जाता है जो आगे चलकर नरम हो जाता है और उसमे कई नालव्रण बनकर त्वचा पर छिद्रो द्वारा फूट निकलते है। इन नालव्रणो से हल्के पीले रग का दानेदार (*gritty*) पदार्थ निकलता है जिसके दानो को कूट 'गधककण' (sulphur granules) कहते है। परीक्षा पर उसमे किरणकवक की माइमिलियम मिलती है। ग्रामरजन से इनको प्रदर्शित किया जा सकता है। कभी-कभी अधान्त्र की एक्टिनोमाइकोसिस के साथ फुप्फुस मे भी एक्टिनोमाइकोसिस होती है। रोग की विलम्बित दशाओ मे यकृत और लसीकावाहिकाओ मे स्थलान्तरण हो सकता है।

निस्राव की सूक्ष्मदर्शी परीक्षा और दक्षिण श्रोणिफलक खात मे एक कठोर स्थिर पिंड से निकलते हुए कई नाल व्रण, इन लक्षणो से रोग के निदान का

निश्चय किया जाता है।

चिकित्सा

एक्टिनोमाकोसिस की कोई विशिष्ट चिकित्सा नही है। तो भी पेंसिलिन की दीर्घ मात्राओ—प्रतिदिन 10 लाख—को कम से कम तीन सप्ताह या अधिक समय तक देने से पिंड घट जाता है। पोटासियम आयोडाइड की प्रचुर मात्राओ से इसमे सहायता मिलती है। स्ट्रिप्टोमाइसिन तथा सल्फोनोमाइड पेंसिलिन के साथ या स्वत दिये जा सकते हैं। उपद्रव, यदि हो तो, सामान्य सिद्धान्तो के अनुसार उनकी चिकित्सा की जाय।

क्रोन रोग (Crohn's Disease)

बृहदात्र मे भी क्रोन रोग अन्त्य शेषात्र ही के समान होता है और विकृति तथा लक्षण भी वैसे ही होते है। एक्स-रे द्वारा बृहदात्र के आक्रात खड की सकीर्णता को अर्बुद या यक्ष्माजन्य स्थानिक दशा से पहिचानना कठिन हो सकता है। दशा प्राय शस्त्रकर्म पर मालूम होती है। ऐसी दशा मे उच्छेदन उपयुक्त है।

सव्रण बृहदात्र शोथ (Ulcerative Colitis)

यह दशा भारतवर्ष मे असाधारण है, वह 20-40 के बीच की आयु मे होती है। अमीबाजन्य बृहदात्र शोथ, जो बहुत होता है, और सव्रण बृहदात्र शोथ मे क्या सबध है, यह नही मालूम है। इसकी उत्पत्ति मे सक्रमण अत्यल्प भाग लेता है। उसको एक प्रकार का मनोकायिक (psycho-somatic) विकार माना जाता है। कुछ रोगियो मे श्लेष्मसलायी किण्व (mucolytic ferment) बढ जाता है।

प्रवाहिका (diarrhoea), रुधिरज कालामल (melaena), ज्वर और जीवविषरक्तता के समय-समय पर आक्रमण रोग के लक्षण है। बृहदात्र का बेध तथा कूट पौलिपता कभी-कभी हो जाती है। यद्यपि साधारणतया रोग बृहदात्र मे होता है, वह मलाशय को भी आक्रान्त कर सकता है जिससे मलाशय के बाहर उसके पास पूयभवन (perirectal suppuration) होने लगता है। तीव्र आक्रमण मे प्राय लगभग तृतीयाश रोगियो की मृत्यु हो जाती है।

रोग के उपद्रवो मे पौलिपता, वेध और उससे पर्युदर्याशोथ, नाल व्रणो की उत्पत्ति, अवरोध, त्वचापूयता (pyoderma) सन्धि शोथ और आइरिस शोथ

(iritis) है। कुछ रोगियो मे बृहदात्र का कार्सिनोमा हो जाता है। कभी-कभी सगर्भता का रोगक्रम पर उत्तम प्रभाव होता है।

चिकित्सा

तीव्र आक्रमण के समय रुधिराधान (blood transfusions) और अन्त -शिरीय तरल, रोगी की आवश्यकतानुसार, प्रतिजीवियो के द्वितीयक सक्रमण को रोकने के लिये प्रयोग, और मृदु पूतिरोधियो (antiseptics) के विलयनो से आन्त्र धावन (bowel washes) चिकित्सा के आयोजन हैं। कार्टिकोस्टिराइडो का प्रयोग सहायक हो सकता है, किन्तु वह भयास्पद भी है। उनके प्रयोग के समय प्रचुर रक्तस्राव और वेध हो सकता है।

उपर्युक्तानुसार कुछ दिन तक चिकित्सा के पश्चात्, रोगी मे शेषान्त्र छिद्रीकरण (ileostomy) करना चाहिये, जिससे रोगग्रस्त वृहदात्र का बहिष्कार हो जाय। इस शस्त्रकर्म के पश्चात् बलवर्धक चिकित्सा (अत शिरीय आधान आदि, और भी तत्परता से की जाय। जल और लवणो की हानि की पूर्ति अत्यावश्यक है। आगे चलकर बृहदात्र का उच्छेद एक बार मे या कई बार मे किया जाय। हमारे देश मे रोगी इतने कृश और क्षीण होते है कि वे इतने उग्र शस्त्रकर्म को एक ही बार मे करने को सहन नही कर पाते। मलाशय तभी निकाला जाय जब वह रोगग्रस्त हो। यदि वह रोगमुक्त है और रोगी युवावस्था का है तो शेषान्त्र को मलाशय मे आरोपित कर दिया जाता है।

विपुटिता अपवर्तता (Diverticulosis)

इस दशा मे श्लेष्मिक कला की छोटी-छोटी थैलिया, बृहदात्र की भित्ति के पेशी स्तर मे होकर, बाहर निकल आती है। रक्तवाहिकाओ के भित्ति मे प्रवेश के छिद्र भित्ति के दुर्बल स्थान है। अतएव आन्त्र के भीतर तनाव बढने से श्लेष्मिक कला की इन दुर्बल स्थानो मे होकर पेशीभित्ति से बाहर निकलने की प्रवृत्ति होती है जिससे विपुटी या अपवर्त बन जाते है।

लक्षण

इसकी तीन अवस्थाये मानी जाती है। पुरोविपुटी (prediverticular), विपुटी और विपुटीशोथ (diverticulitis) जिसके साथ उपद्रव होते है। शाकाहारियो मे इस रोग के उग्र रूप विरल है। ईसाई, मुसलमान और पार्सी आमिषभोजियो मे रोग होता है। रोग स्थूलकाय पुरुषो मे पाचवे और छठे दशको मे

होता है। प्रायः इसमें पूर्व [illegible]
विपुटी [illegible]
लक्षण प्रकट होते हैं। [illegible]
वेदना [illegible]
प्राय लक्षण [illegible]
और [illegible]

[illegible] (diverticula) [illegible]

निदान

विपुटिता का निदान [illegible] लिये हुए [illegible] होता है। [illegible] अवस्था में [illegible] वक्र वृहदान्त्र, [illegible] विपुटिता पर [illegible] वे प्रदीप्तिपट परीक्षा पर [illegible] संकुचित दीखना है। मलत्याग के पश्चात् [illegible] अवशिष्ट (residual) बेरियम रह जाता है। यदि [illegible] साथ निकल जाने पर वृहदान्त्र में वायु भर दी जाय तो यह [illegible] और भी स्पष्ट हो जायगी। सिग्माइडोस्कोपी (sigmoidoscopy) अधिक उपयोगी नहीं होती, सिग्माइडोस्कोप से [illegible] वृहदान्त्र के निम्न 5 या 6 इंच का निम्न भाग दीखता है। इस निम्न भाग की श्लेष्मला अतिरक्तमय (hyperaemic) होती है और कभी-कभी विपुटियों के छिद्र भी दीख जाते हैं।

उपद्रव

विपुटिता के उपद्रव रुधिरस्रावी वेध (bleeding perforation), [illegible], नालव्रणोत्पत्ति तथा दुर्दमता है। वेध होने पर बाईं ओर उण्डुकपुच्छशोथ के समान लक्षण होते हैं और अन्तर्वस्तु की संक्रामकता के अधिक प्रबल होने से

प्राग्ज्ञान और भी निराशाजनक हो जाता है। विपुटियो के सक्रमण से वाम श्रोणिफलक खात मे विद्रधि बन सकती है। वाम श्रोणिफलक खात मे एक शोथयुक्त पिंड की उपस्थिति इस दशा की प्रतीक है, वह नम्य हो जाय या कठिन ही रहे। विरल अवसर पर, पिंड आत्रावरोध के लक्षण उत्पन्न कर सकता है और तब तत्काल सर्जरी आवश्यक होती है। पिंड के आकार की द्रुत वृद्धि दुर्दमता को इगित करती है ; यह उपद्रव कम होता है। मूत्राशय मे नालव्रण बनना अतिविरल उपद्रव है जो अवग्रह बृहदात्र मे परिविपुटी (peridiverticular) विद्रधि बनकर उनके मूत्राशय मे फटने से उत्पन्न होता है। गैस और मलवस्तु का मूत्र के साथ निकलना इस उपद्रव का निश्चित लक्षण व चिह्न है और कोलन और मूत्रपथ के बीच मे मार्ग बन जाने का सूचक है। मूत्राशय-शोथ के लक्षण देर मे प्रकट होते है और प्रकट होने पर भी रोगी उनको भली-भाति सहन करते रहते हैं, यद्यपि उनको आरोही वृक्क सक्रमण तथा गोणिका वृक्कशोथ (pyelonephritis) का सदा भय रहता है। एक साधारण एक्स-रे चित्र मे मूत्राशय मे गैस उपस्थित दीख सकती है। मूत्राशय मे नालव्रणोत्पत्ति भी विपुटीशोथ पर कार्सिनोमा बन जाने का प्रथम लक्षण है।

चिकित्सा

विपुटियो मे शोथ उत्पन्न होने से पूर्व उनकी चिकित्सा मुख्यतया सरक्षी होती है। अनावशेपी आहार (nonresidual diet) तथा बृहदात्र को रिक्त करने के लिये मृदु विरेचक के अतिरिक्त और कुछ भी आवश्यक नही है। तीव्र विपुटीशोथ होने पर भी सरक्षी चिकित्सा ही की जाती है। किन्तु उपद्रवो के प्रारभ होने पर शल्य-चिकित्सा अनिवार्य है।

चिरकालीन विपुटीशोथ की शल्य चिकित्सा मे रोगग्रस्त खडाश का उच्छेद और बृहदात्र का प्राथमिक समिलन (primary anastomosis) किया जाता है। पूर्वकर्म मे बृहदात्र की पर्याप्त स्वच्छता और अशोष्य सल्फोनमाइडो अथवा बहुप्रभावी प्रतिजीवियो द्वारा उनके निर्जीवाणुकरण (sterilization) के पश्चात् शस्त्रकर्म अपेक्षत आपद्रहित होता है। केवल यह सावधानी आवश्यक है कि समिलन के लिये प्रयुक्त आत्रक्षेत्र विपुटियो से मुक्त हो। एक्स-रे चित्रो से बृहदात्र के उच्छेद और समिलन करने के लिये उपयुक्त स्थान मालूम हो जाएगा।

विपुटी का वेध शल्य की एक आपद्-अवस्था है जिसको तत्काल बन्द करना और पर्युदर्या गुहा की शुद्धि आवश्यक है। गुहा के निर्हरण का तभी आयोजन

करना होता है जब उसमे बहुत-सा आत्र का अन्तर्द्रव्य पहुच गया हो। अत - पर्युदर्या विपुटी विद्रधि का निर्हरण और बृहदात्र छिद्रीकरण (colostomy) एक बार मे किया जाता है और दूसरी बार आत्र के आक्रात खड का उच्छेद करके बृहदात्र की निरन्तरता को पुन स्थापित करना होता है। बृहदात्र-मूत्राशय नालव्रण की चिकित्सा नालव्रणपथ सहित आक्रात खडोच्छेदन, आत्र की निरन्तरता का पुन स्थापन तथा मूत्राशय के छिद्र को बन्द करना है, यह सब एक ही बार मे किया जाता है। यदि रोगी की साधारण दशा इस विस्तृत शस्त्रकर्म को सहन करने योग्य न हो तो अनुप्रस्थ बृहदात्र छिद्रीकरण द्वारा रोगी मूत्रपूतिता के सकट काल को पार करने मे समर्थ हो सकता है जिसके पश्चात् उन्मूलक सर्जरी की जा सकती है।

यदि विपुटी शोथ पर कार्सिनोमा बन जाय तो कार्सिनोमा की चिकित्सा करना उचित है, किन्तु विपुटियो की उपस्थिति का बृहदात्रोच्छेदन मे विचार करना होगा।

पुरीष नालव्रण (faecal fistula)

इस कष्टदायक दशा मे आत्र की अवकाशिका और बाह्य अथवा किसी अन्य आशय के बीच मार्ग बन जाता है। ये नालव्रण जन्मजात हो सकते है या पीछे से बन सकते है (उपार्जित)। जन्मजात नालव्रण नाभि मे खुलता है और विटेलो-आत्र-वाहिनी (vitello-intestinal duct) के बन्द न होने से उत्पन्न होता है।

उपार्जित नालव्रणो के ये कारण होते है (1) उण्डुकपुच्छ विद्रधि का निर्हरण (सबसे अधिक), (2) शोथयुक्त उण्डुकपुच्छोच्छेदन के पश्चात्, (3) उपेक्षित (neglected) विपाशित अप्रत्यक्ष वक्षण हर्निया (strangulated indirect inguinal hernia), (4) यक्ष्माजन्य पर्युदर्याशोथ—स्वत अथवा शस्त्रकर्म के पश्चात्, (5) शेष-अधात्र (ileocoecal), एक्टिनोमाइकोसिस, विशेषकर उण्डुकपुच्छोच्छेदन के पश्चात् (6) क्रोन रोग, (7) आत्रसमिलन (anastomosis) के पश्चात् उससे लीक (leak), (8) बृहदात्र रोग, जैसे विपुटी-शोथ या कार्सिनोमा, (9) अभिघात, (10) निर्हरण नलिका (drainage tube) द्वारा आत्रभित्ति का अपरदन (erosion) (11) नालव्रण के तल मे बाह्य वस्तु (शल्य) की उपस्थिति।

बाह्य पुरीष नालव्रण तीन प्रकार के होते है। (1) जो केवल कणिका ऊतक (granulation tissue) से आस्तरित होते है—वे प्राय छोटे और

प्रत्यक्ष (direct) होते है, (2) श्लेष्मिक कला से आस्तरित—ये प्राय बडे होते है और नालव्रण के छिद्रो से श्लेष्मिक कला का भ्रंश (prolapse) होता है, (3) जिनमे तातवपथ वडा होता है और कुछ उपकला से ढका होता है—ये प्राय: सकीर्ण और कुटिल होते है और आन्त्रावरोध के सुरक्षावाल्व (safety valve) की भाँति काम करते हैं ।

निदान

पुरीष नालव्रण का निदान सहज होता है । कभी-कभी उसको उदरभित्ति के ऐस्कीरिया कोलाई-जन्य विद्रधि मे विभिन्न करना कठिन होता है । निस्राव मे गैस की उपस्थिति निश्चयात्मक है । अथवा रोगी को चारकोल खिलाने के कुछ घटे के पश्चात् निस्राव मे चारकोल के कण निकलने से पुरीष नालव्रण का निश्चय हो जाता है ।

नालव्रण के भीतर के छिद्र की स्थिति जानना आवश्यक है । मध्यान्त्र के नालव्रण मे निस्राव प्रचुर और पित्तमिश्रित होता है, उसमे ऐंजाइम अधिक होती हैं जिनमे निस्त्वचन (excoriation) होता है । शेषान्त्र या अधान्त्र के नालव्रण मे तरल मल निकलता है और वृहदान्त्र के दूरस्थ भाग मे स्थित नालव्रण से अर्धठोस मल निकलता है । नालव्रण के आन्त्र के ऊर्ध्व भाग मे होने पर जल, प्रोटीन और लवणो की शरीर से अत्यन्त हानि होती है जिससे जल और विद्युद्अपघट्यो का सतुलन विगड जाता है । पुरीष नालव्रण का निदान वेरियम की सहायता से भी निश्चित किया जा सकता है ।

चिकित्सा

पुरीष नालव्रण की सरक्षी अथवा सर्जरी द्वारा चिकित्सा हो सकती है ।

सरक्षी चिकित्सा—प्रत्येक रोगी मे प्रारम्भ मे ऐसी ही चिकित्सा की जाती है और अनेक वार उसके परिणाम सतोषजनक होते है । सद्य नालव्रणो तथा आन्त्र के लघुनाल व्रणो मे यह विशेषतया सफल होती है । विद्युद्अपघट्यो, जल और प्रोटीन के सतुलन की रक्षा, निस्राव की मात्रा को कम करना, और त्वचा को निस्त्वचन (excoriation) से वचाना चिकित्सा के आधार है । विद्युद्अपघट्य और जल के सतुलन के लिए अन्त शिरीय मार्ग का उपयोग किया जाता है, मुह द्वारा तरलो को देने से निस्राव की मात्रा वढ जाती है । इस कारण भोजन मे ठोस तथा अर्धठोस पदार्थ दिये जाते है । प्रोटीन तथा विद्युदपघट्यो की पूर्ति के लिये समय-समय पर रक्ताधान किया जाता है । चाक और केओलिन

(chalk, kaolin), 1/4 औस दोनो, दिन मे चार बार, निस्राव को गाढा और निर्गन्ध बनाने के लिये दिये जाते है। उच्च नालव्रण, जैसे ग्रहणी के, उनके लिये जठरात्र चूषण आवश्यक होता है। एलूमिनियम-जिक पेट द्वारा त्वचा की रक्षा की जाती है। मुह द्वारा आर्सनिक देने से त्वचा का निस्त्वचन तथा पाचन से रक्षा मे सहायता मिलती है, ऐसा विश्वास है।

शल्य चिकित्सा—निम्नलिखित दशाओ मे की जाती है, सरक्षी चिकित्सा के असफल होने पर, जब रोगी प्रोटीन, विद्युद्अपघट्यो की अत्यधिक हानि से कृश होता जा रहा हो, विशिष्ट सक्रमणो, जैसे क्षय अथवा एक्टिनोमाइकोसिस, मे, और उपर्युक्त 2 और 3 प्रकार के पुरीष नालव्रणो मे। विशेष कारण न मिलने पर और सरक्षी चिकित्सा के असफल होने पर नालव्रणो का कौटरीकरण किया जाय। शल्य चिकित्सा मे नालव्रणपथ का व्यवच्छेदन (dissection), उसका बधन (ligation) तथा उच्छेदन करके आत्र के छिद्र को सी दिया जाता है। कारण का पता लगने पर साथ ही उसका भी अपहरण किया जाय। चिरकालीन विपुटीशोथ और कार्सिनोमा मे ऊपर के भाग मे बृहदात्र-छिद्रीकरण उपयोगी होता है।

सुदम अर्बुद

बृहदात्र मे सुदम अर्बुद विरल होते है। यद्यपि वसार्बुद, तन्तु-अर्बुद, रक्त-वाहिकार्बुद और ग्रन्थिपेशी अर्बुद भी होते है, किन्तु ग्रथ्यर्बुद अधिक होता है। बहुधा वे कई होते है और कभी-कभी सारा बृहदात्र ग्रथ्यर्बुदीय पौलिपो से भरा मिलता है जो परिवारो मे अल्पायु वालो मे अधिक होते है। इस प्रकार की पौलिपता मे दुर्दम हो जाने की प्रवृत्ति होती है। हिन्दुस्तान मे यह रोग पश्चिमी देशो की अपेक्षा कम होता है।

मलाशय से रक्त निकलना या रक्तमिश्रित मलत्याग इस रोग का लक्षण है। बेरियम एनीमा और सिगमाइडोस्कोपी से ये पौलिप दिखाई देते हे। मल-त्याग द्वारा बेरियम निकल जाने पर एक्स-रे चित्र मे इन गोल पौलिपो की रूपरेखा दीखती है।

इन ग्रथ्यर्बुदो को उनसे रक्त निकलने तथा दुर्दम हो जाने की सम्भावना के कारण निकालना आवश्यक है। अकेले पौलिप को बृहदात्र मे छेदन लगाकर निकाला जा सकता है या आत्र के उस खड का उच्छेदन कर दिया जाता है। बहुपौलिपता की चिकित्सा कठिन होती है। इनमे कार्सिनोमा की शीघ्र ही उत्पत्ति की प्रवृत्ति के कारण उन्मूलक चिकित्सा का प्रारम्भ ही मे आयोजन

करना चाहिये। वृहदान्त्र के विस्तृत अश का या समस्त वृहदान्त्र का उच्छेदन आवश्यक हो सकता है, ऐसी दशा मे उदर मे शेषान्त्र छिद्रीकरण भी किया जाता है। यदि मलाशय मे कुछ ही पौलिप हो तो उनका कौटरीकरण या स्थानिक अपहरण किया जा सकता है और सम्पूर्ण वृहदान्त्रोच्छेदन के पश्चात् शेषान्त्र-मलाशय संमिलन (ileo-rectal anastomosis) किया जाता है।

दुर्दम अर्बुद

वृहदान्त्र के दुर्दम अर्वुद साधारणतया कार्सिनोमा होते है। लसीका सारकोमा, तान्तव सारकोमा, मिलेनोमा और कार्सिनाइड यहाँ विरल है। वृहदान्त्र का कैन्सर इस देश मे वहुत नही होता, उसकी सख्या समस्त दुर्दम रोगो मे 0 4 प्रतिशत पाई गई है।

स्थिति के अनुसार कैन्सर का क्रम इस प्रकार है। अवग्रह वृहदान्त्र मे 45 प्रतिशत, अधान्त्र और आरोही वृहदान्त्र मे 25 प्रतिशत, अनुप्रस्थ और अवरोही वृहदान्त्र मे से प्रत्येक मे 10 प्रतिशत, यकृत और प्लीहा वको (flexures) मे प्रत्येक मे 5 प्रतिशत।

विकृति

तीन प्रकार के अर्वुद पाये जाते है। प्रफली प्ररूप (proliferating type), व्रणोत्पादक (ulcerating) और स्किर्हस सकीर्णक प्ररूप (scirrhus constricting type)। प्राय प्रफली अर्वुद दक्षिण वृहदान्त्र मे और सकीर्णक प्ररूप वाम वृहदान्त्र मे होता है।

लक्षण और चिह्न

वृहदान्त्र के खडाश की चौडाई या केलिवर (calibre), उसके भीतर की वस्तु का रूप और कैन्सर के प्रकार के अनुसार रोग के प्रारम्भिक लक्षण होते हैं।

दूरस्थ वृहदान्त्र की चौडाई कम होती है, मल ठोस होता है और कैन्सर स्किर्हस काठिन्यकर (selerosing) प्ररूप का होता है। उससे अवरोध के लक्षण होते है जो आध्मान, आन्त्रशूल, बढती हुई कोष्ठवद्धता और कभी-कभी वारी-वारी से प्रवाहिका और कोष्ठवद्धता के आक्रमण होते रहते है।

वृहदान्त्र के निकटस्थ (प्रथम) भाग की चौडाई या केलिवर के अधिक होने, मल के अधिक तरल तथा अर्वुद के प्रफली होने के कारण बहुत समय तक

अवरोध नही उत्पन्न होता। यहा रक्तस्राव, तीव्र अरक्तता, ज्वर और सामान्य दुर्बलता प्रारम्भिक लक्षण होते है। दक्षिण बृहदात्र के कैन्सर मे केवल उपस्थित लक्षण अरक्तता (anaemia), इतनी अधिक मिलती है कि 40 वर्ष से अधिक आयु के रोगियो मे अरक्तता होने पर चिकित्सक को सदा कैन्सर का विचार करना चाहिये।

निदान

बेरियम एनीमा के चित्रो मे अर्बुद या अवकाशिका की सकीर्णता के कारण 'भरण-अपूर्णता' (filling defect) दिखाई देती है। बेरियम आहार से बहुत बार प्रारम्भिक अर्बुद नही दिखाई देता, इसलिये बेरियम एनीमा प्रयोग करना चाहिये। जिन कारणो से भूल हो सकती है, उनका उल्लेख आवश्यक है। ऐन्टेमीवा हिस्टोलिटिका के मल मे उपस्थित मिलने से कैन्सर की उपस्थिति अप्रमाणित नही होती और यदि चिकित्सा के पश्चात् अतिसार फिर से होता है तो बेरियम एनीमा द्वारा रोगान्वेषण आवश्यक है। बृहदात्र की भरण अपूर्णताये मलाश्मरी या अमीवा कणिकागुल्म (amoebic granuloma) से भी हो सकती हैं, जिनका व्यतिरेक शस्त्रकर्म का परामर्श देने के पूर्व करना चाहिये। जिन रोगियो मे अमीवा मल मे मिले उनको शस्त्रकर्म से पूर्व अमीवानाशी चिकित्सा का एक क्रम अवश्य दिया जाय। वह अमीवा गुल्म के निदान के अतिरिक्त एक आवश्यक पूर्वकर्म आयोजन है। पिंड सहित विपुटीशोथ या अवरोध को कैसर से विभिन्न करना कठिन हो सकता है। ऐसी सन्देह की अवस्था मे उच्छेद का परामर्श देना चाहिये।

चिकित्सा

बृहदात्र के कैन्सर की एकमात्र चिकित्सा जो अभी तक विज्ञान आविष्कार कर सका है वह सर्जरी द्वारा उच्छेदन (excision) है। सफलता के लिये उन सिद्धान्तो का व्यवहार करना चाहिये, जिनको सर्जनो ने अनुभव से प्राप्त किया है।

रोगी को तैयार करना—पूर्वकर्म (perparation of patient)

रोगी की स्वास्थ्य वृद्धि, उसकी अरक्तता, पोषणहीनता तथा अन्य न्यूनताओ को दूर करना बहुत आवश्यक है। सभी बृहद शस्त्रकर्मो के पूर्व ऐसा किया जाता है।

आंत्र को तैयार करना—सब ही बृहद शस्त्रकर्मो मे कुछ भय होते है। किन्तु इन सामान्य भयो के अतिरिक्त बृहदान्त्र के शस्त्रकर्मो मे विशेष भय उसके प्रबल जीवाणुओ द्वारा पर्युदर्या के सक्रमित होने का होता है। आन्त्रावरोध, शोथ अथवा वृद्धि के स्थिरीकृत हो जाने के उपद्रवो से यह भय बहुत बढ जाता है।

उपद्रवमुक्त (uncomplicated cases) रोगियो मे मृदु विरेचको और एनीमा द्वारा आन्त्र की स्वच्छता के अतिरिक्त और किसी तैयारी की आवश्यकता नही है। कुछ वर्षो से बहुप्रभावी प्रतिजीवियो (स्ट्रिप्टोमाइसिन, नियोमाइसिन, सल्फागुआनिडिन या थैलिल सल्फाथियाजोल) को शस्त्रकर्म के कुछ दिन पूर्व से खिलाकर आन्त्र का निर्जीवीकरण (sterilization) करने की सर्जनो की आदत-सी हो गई है। सर्जनो की एक श्रेणी विश्वास करने लगी है कि इन औषधियो की सहायता के विना बृहदान्त्र पर शस्त्रकर्म किया ही नही जा सकता। पर्युदर्या की सक्रमण से युद्ध करने की अमित शक्ति भुला दी गई है। वे यह भी भूल गये है कि प्रतिजीवी-पूर्व काल (pre-antibiotic era) मे बिद्ध उण्डुकपुच्छ शोथ के रोगियो की सदा या अधिकतर भी मृत्यु नही होती थी। सत्य यह है कि शस्त्रकर्म के समय के सक्रमण को पर्युदर्या भलीभाति निवारण कर सकती है। किन्तु वह शस्त्रकर्म के पश्चात् के काल मे आन्त्र के अपूर्णतया बन्द होने से उसके छिद्र से सतत आने वाले सक्रमण का निवारण करने मे असमर्थ होती है। कुछ सर्जन शस्त्रकर्म के पूर्व प्रतिजीवियो द्वारा आन्त्रो का निर्जीवाणुकरण आवश्यक समझते है, किन्तु कुछ सर्जन उसको निरर्थक, अनावश्यक तथा हानिकारक मानते है। आन्त्र-निवासी सामान्य जीवाणु समूह उनसे नष्ट हो जाते है जिससे अकस्मात् आगन्तुक नये जीवाणुओ की बिना रोक-टोक अपरिमित वृद्धि सम्भव होती है। ऐसे ही एक प्रचड स्टेफिलोकोकस द्वारा आन्त्रशोथ के कई घातक आक्रमणो की गत कुछ वर्षो मे रिपोर्ट मिली है। अतएव उपद्रवमुक्त रोगियो मे केवल मृदुविरेचको और एनीमाओ द्वारा आन्त्र-स्वच्छता के पश्चात् एक बार मे बृहदान्त्रोच्छेदन किया जा सकता है।

आजकल दो बार मे शस्त्रकर्म करने की प्रवृत्ति निम्न कारणो से कम हो गई है (1) रोगी को उदर खोलने की दो बार जोखिम उठानी पडती है। (2) प्रथम शस्त्रकर्म के पश्चात् उपद्रवो के होने से कैन्सर के अपहरण मे विलब होता है। (3) प्रथम शस्त्रकर्म से बने आसजनो के कारण दूसरा शस्त्रकर्म कठिन हो जाता है। (4) पूर्व मे बृहदान्त्र छिद्रीकरण करने से उपद्रवमुक्त रोगियो मे उच्छेदन का भय कम नही होता।

उपद्रवयुक्त रोगियो मे, जिनमे कैसर से आन्त्रावरोध हो उनमे, उच्छेदन

के पूर्व इस दशा को यथासम्भव दूर करना आवश्यक है। अनुतीव्र और चिरकालीन रोगियो मे मृदु विरेचक और एनीमा पर्याप्त होते है। किन्तु तीव्र आन्त्रावरोध अथवा जिनमे चिरकालीन अवरोध दूर नही हुआ है उनका दो बार मे (two stages) शस्त्रकर्म करना योग्य है। यदि रोगी की दशा हीन हो तो अधात्र-छिद्रीकरण (coecostomy) किया जाता है। किन्तु यदि उसकी दशा शस्त्रकर्म को सहन करने योग्य हो तो अनुप्रस्थ बृहदात्र छिद्रीकरण (transverse colostomy) करना उत्तम होगा। उससे आत्र का निर्हरण अधिक सतोपजनक होता है। यदि दक्षिण बृहदात्र मे अवरोध हो, जो विरल होता है, तो शेषात्र-अनुप्रस्थ बृहदात्र समिलन (ileotransverse anastomosis) करना उचित है। अथवा यदि क्षुद्रात्र शेप-अधात्र कपाटिका (ileocoecal valve) की उत्तम क्रिया करने से प्रतीप दाव से विकृत नही हुआ है तो उच्छेद एक ही बार मे किया जाता है।

शोथ, यदि बृहदात्र के अर्बुद के चारो ओर उपस्थित हो तो उसकी प्रथम प्रतिजीवियो द्वारा चिकित्सा की जाय अथवा आवश्यक होने पर प्रारम्भिक बृहदात्र छिद्रीकरण किया जाय। यदि विद्रधि हो तो उसको न खोलना चाहिये, उसमे कैन्सर कोशिकाये आरोपित हो जाएगी। सरक्षी चिकित्सा से विद्रधि आक्रान्त आत्र मे फट जाएगी और तब उसका उच्छेद किया जा सकता है।

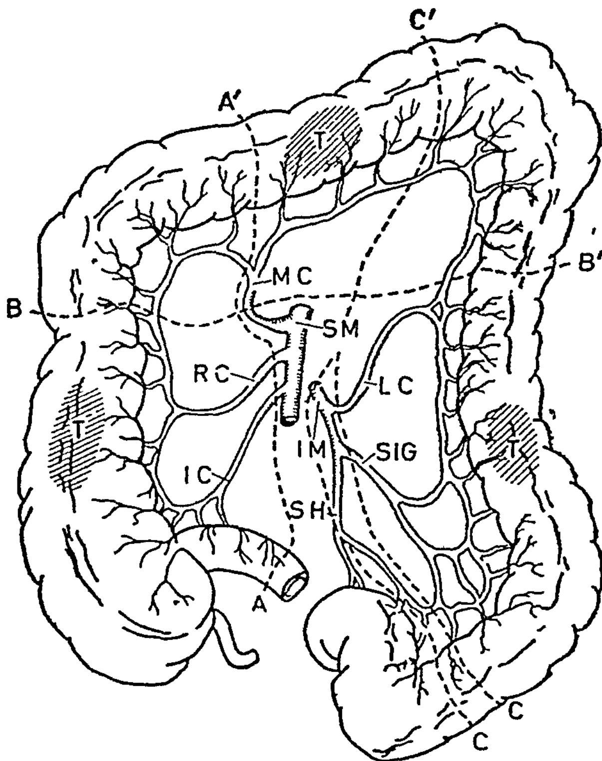
स्थिरता (fixity) का कारण कैन्सर द्वारा अन्तर्निवेश (infiltration) अथवा शोथ द्वारा आसजन हो सकते है। इस दूसरी दशा मे प्रारभिक बृहदात्र छिद्रीकरण से बहुधा अर्बुद चलायमान हो जाता है और पुरीप सक्रमण के निकल जाने से उच्छेद हो जाता है।

पर्याप्त अनावरण (exposure) के लिये छेदन

यद्यपि साधारण परामध्य छेदन द्वारा बृहदात्र अर्बुद का उच्छेद किया जा सकता है, अर्बुद के आसजित होने पर सीधा अर्बुद पर ही उदर भित्ति मे छेदन लगाने से शस्त्रकर्म सरल हो जाता है। आरोही और अवरोही बृहदात्र तथा दोनो वको के अर्बुदो मे अनुप्रस्थ और तिर्यक् छेदन (transverse and oblique incisions) बडे उपयोगी होते है।

कैन्सर का पर्याप्त उच्छेदन—कैन्सर के पर्याप्त उच्छेदन से आक्रान्त अग का, उसके समस्त लसीका क्षेत्र सहित जिसमे कैन्सर के प्रकीर्णन की सभावना हो, उच्छेदन का अर्थ है जिसमे उच्छेदन की रेखा कैन्सर मुक्त ऊतक मे से निकलती है। आत्र को कैन्सर की परिस्पर्श्य सीमा से दो इच ऊपर और दो

इच नीचे तक उच्छेद करना पर्याप्त है । इससे अधिक दूर तक आत्र मे कैन्सर नही फैलता। अन्य कारणो से बृहदात्र के अधिक भाग का अपहरण किया जाता है । लसीका क्षेत्र को स्वच्छ करने के लिये मुख्य रक्तवाहिकाओ के प्रारभ पर स्थित लसीका पर्वो को व्यवच्छेदन करके निकालना होता है जिसके लिये उन वाहिकाओ का बधन आवश्यक हो सकता है । उदाहरण के लिये, अधात्र या आरोही बृहदात्र के कैन्सर के उच्छेदन मे 6 इच अन्त्य शेपात्र और समस्त दक्षिण बृहदात्र, यकृत बंक सहित, निकाला जाता है, क्योकि शेष-बृहदात्र (ileocolic) और दक्षिण बृहदात्र (right colic) धमनियों को उनके प्रारभ ही पर काटना पडता है। वाम ओर के अर्बुदो की पर्याप्त सर्जरी के लिये अधो-आत्रयोजनी धमनी को उसके प्रारभ पर बाधना आवश्यक होगा, और प्लैहिक वक के दक्षिण ओर से लेकर ऊर्ध्व मलाशय तक बृहदात्र का उच्छेदन करना होगा । किन्तु ऐसे रोगियो मे, विशेपकर यदि रोग पुराना नहीं है, तो अधो-आत्रयोजनी धमनी को बचा लिया जाता है और अधिक परिमित उच्छेदन किया जाता है । चित्र 34 मे बृहदात्र की भिन्न-भिन्न स्थितियो मे उपस्थित अर्बुद के



चित्र 34 चित्र मे बृहदान्त्र के भिन्न-भिन्न भागो के कैन्सर मे उसके उच्छेदन-क्षेत्र की सीमाये विन्दुकित रेखाओ द्वारा दिखाई गई है।

लिये जितने खडाश का अपहरण किया जाता है उसकी सीमा विन्दुकित रेखाओ द्वारा दिखाई गई है।

बृहदात्र के कैन्सर का प्रकीर्णन (dissemination) विलम्ब से होने के कारण, समीप के अग या ऊतको के आक्रान्त होने पर भी आक्रान्त ऊतक सहित अर्बुद के उच्छेदन से रोग-मुक्ति हो जाती है। इस कारण कभी-कभी उदरभित्ति या आमाशय अथवा अन्य आक्रान्त आशय के कुछ भाग का भी उच्छेदन करना होता है, यदि अन्य प्रकार से अर्बुद को उच्छेद्य समझा जाता है।

शस्त्रकर्म मे (कैन्सर का) प्रकीर्णन रोकना—शस्त्रकर्म के समय जहा तक हो सके प्रकीर्णन (dissemination) को रोकना चाहिये। अर्बुद के सीरमी कचुक (serious coat) तक प्रविष्ट हो चुकने पर उसकी कोशिकाओ का उदर-भित्ति मे आरोपण (implantation) हो सकता है। इसको रोकने के लिये क्षत (wound) के किनारो को तौलिये से ढक देना चाहिये। आक्रान्त आत्र को भी गौज के पैड मे लपेट दिया जाय। संमिलन (anastomosis) की सीवन रेखा (sutureline) द्वारा कैन्सर कोशिकाओ के आरोपण की सभावना रोकने के हेतु, जिसके अब तक प्रमाण मिल चुके है, आक्रान्त आत्र कुडल को, आत्र पर अर्बुद के ऊपर और नीचे दोनो ओर बधन लगाकर, पृथक् कर देना चाहिये। अर्बुद को हिलाने-डुलाने के पूर्व रक्तवाहिका वृन्तो (vescular pedicles) को भी पहले ही वाध दिया जाय जिससे शिरीय अन्त.शल्यता न होने पाये।

लीक-अभेद्य समिलन (leakproof anastomis)

पूर्ण सफल सयोजन के लिये निम्नलिखित बातो का ध्यान रखा जाय —

(1) अपूतित (aseptic methods) कहलाने वाली विधियो की अपेक्षा अनावृत समिलन (open anastomosis) उत्तम है; उससे अधिक उत्तम या ठीक-ठीक समिलन हो सकता है। कौटन (cotton) या लिनिन का प्रयोग वाछित है, उनसे प्रतिकारी शोफ (reactive oedema) कम होता है और विछिन्न (interrupted) टाके लगाये जाते है।

(2) आत्र के दोनो सिरो का रक्तसचरण उत्तम होना चाहिये। सीवन मे छिद्र वन उससे रिसने (leak) का मुख्य कारण रक्तसचार की अपर्याप्तता होती है जिससे सीवन मे रोधगलन (necrosis) का एक क्षेत्र बन जाता है। इस कारण दलन सधरो (crushing clamps) का उपयोग न करना चाहिये। आत्र का वर्ण देखा जाय, आत्र के सिरो पर नाडीस्पन्दन का भली-भाँति निरीक्षण किया जाय, और जहाँ रक्तवाहिकाये दिखाई न दे वहाँ कटे हुए सिरो से रक्त

के स्राव की परीक्षा की जाय। अनावृत समिलन मे यह सब भली प्रकार किया जा सकता है।

(3) आन्त्र के सिरे स्वस्थ होने चाहिये। शोफयुक्त या सव्रण आन्त्र-खडाश का समिलन के लिये प्रयोग न किया जाय।

(4) सीवन रेखा पर टाको का तनाव न होना चाहिये, उससे टाके आन्त्र-भित्ति को काट देते है अथवा आन्त्र के फूल जाने से सूक्ष्म रक्तवाहिकाये उनके कारण अवरुद्ध हो जाती है जिससे रक्तसचार ठीक नही होता। आन्त्र को उदर-भित्ति तथा अन्य लगावो से पृथक् कर देने से तनाव नही होता। शस्त्रकर्म के पश्चात् 48 घटे तक मुह से आहार या पेय न देने से तथा आन्त्र वायुनली (flatus tube) के बारम्बार प्रयोग से शस्त्रकर्म पश्चात् आध्मान नही होता। यदि समिलन के दृढ और पूर्ण होने के सबध मे कुछ सन्देह हो तो साथ मे पूरक (complimentary) अधान्त्र छिद्रीकरण या वृहदान्त्र छिद्रीकरण कर दना उचित है जो सुरक्षावाल्व की भाँति काम करेगा।

लीक-(leak) जन्य भय को न्यूनतम करने के आयोजन

उपर्युक्त पूरक बृहदान्त्र छिद्रीकरण (colostomy) जीवनरक्षक सिद्ध हो सकता है। सदिग्ध संमिलन को पर्युदर्याबाह्य रखना भी ऐसा ही आयोजन है। *यदि यह सम्भव न हो तो समिलन के पास एक निर्हरण नलिका रख दी जाय।*

प्राग्ज्ञान और चिकित्सा के परिणाम

प्राग्ज्ञान ऊतकानुसार कोटिनिर्धारण (histological grading) कोशिकाओ के कोलाइड परिवर्तन, अर्बुद विस्तार की सीमा और शिराओ मे विस्तार पर निर्भर करता है। 3 और 4 कोटि (grade) के रोगियो मे, कोलाइड प्रकार के कैंसर तथा जिन रोगियो मे शिराअन्त शल्यता हो चुकी है उनमे प्राग्ज्ञान अशुभ होता है।

अनेक सस्थाओ से 5-वर्ष रोगमुक्ति की जो रिपोर्ट मिलती है वे इस प्रकार है समूह-ए जिनमे रोग आन्त्रभित्ति तक सीमित रहता है—6 प्रतिशत, समूह-बी, जिनमे रोग आन्त्रभित्ति को पार कर चुका है किन्तु लसीका-पर्वो मे नही फैला है—50 प्रतिशत , समूह-सी, जिनमे लसीका पर्वो मे रोग प्रसार कर चुका है—20-40 प्रतिशत।

तिस पर भी बृहदान्त्र और मलाशय के कैन्सर मे जठरान्त्र पथ के किसी अन्य भाग के कैन्सर की अपेक्षा प्राग्ज्ञान उत्तम है।

आन्त्रावरोध (Intestinal distruction)

आन्त्रावरोध, लक्षणो की उग्रता के अनुसार, तीन प्रकार का माना गया है, तीव्र (acute), अनुतीव्र (subacute) और चिरकारी (chronic)। एक चौथे प्रकार का भी वर्णन किया गया है जिसमे चिरकारी दशा मे तीव्र दशा उत्पन्न हो जाती है इसको 'चिरकारी पर तीव्र' (acute on chronic) कहा गया है। यह बृहदान्त्र के वलय (ring) कार्सिनोमा का अभिलक्षण है। आन्त्रावरोध सम्पूर्ण या आंशिक (complete or partial) हो सकता है।

तीव्र आन्त्रावरोध

क्षुद्रान्त्र और बृहदान्त्र की अंतर्वस्तु को संचालित करने की शक्ति कई प्रकार के कारणो से बाधित हो सकती है। ये कारण साधारण, विपाशी (strangulating) 'बद्ध पाश' (closed loop) अथवा अंग-घातज (paralytic) हो सकते है। आन्त्रयोजनी की रक्तवाहिकाओ के अन्तर्रोध (occlusion) से भी अंगघातज प्रकार का आन्त्रावरोध हो जाता है जिनका पहले (अन्त शल्यता, घनास्रता आदि) वर्णन किया जा चुका है।

साधारण आन्त्रावरोध मे आन्त्र मे यान्त्रिक अवरोध उत्पन्न होता है जिससे वहाँ का रक्तसंचार अवरुद्ध नही होता। विपाशी प्रकार के अवरोध मे रक्त-संचार, पूर्णतया या अंशतः रुक जाता है, 'बद्ध पाश' प्रकार के अवरोध मे एक आन्त्र पाश दोनो सिरो पर अवरुद्ध हो जाता है। आन्त्रपाश के वर्धी विस्फार या आध्मान के कारण वह विशेषत भयानक होता है। तीव्र उण्डुकपुच्छ अवरोध या रुद्ध आन्त्र हर्निया (एन्टरोसील) इसी प्रकार के होते है। अंगघातज आन्त्रावरोध आन्त्रभित्ति की अन्त स्थ (intrinsic) तन्त्रिका-जालिकाओ (plexus) के अंगघात (paralysis) से उत्पन्न होता है जैसा सामान्य पर्युदर्या शोथ मे होता है और कभी-कभी बिना किसी कारण के उदर शस्त्रकर्मो के पश्चात् हो जाता है। तीव्र दैहिक अभिघात, जैसे ऊर्ध्वास्थि अथवा मेरुदंड के उरो या कटि-प्रदेशो के अस्थि भंग, से भी आन्त्रघात (ileus) हो जाता है।

आन्त्रावरोध का प्रभाव

तीव्र आन्त्रावरोध से अवरोध से ऊपर के आन्त्र का विस्फार (distension) और उससे नीचे के आन्त्र का पात (collapse) हो जाता है। अवरोध के दूर न होने पर आन्त्र की अन्तर्वस्तु का आमाशय मे प्रत्यावहन (regurgitation)

होता है और वमन होने लगते है ।

अवरोध से ऊपर के आन्त्र के भीतर की तरल अन्तर्वस्तु का सघटन, आयोगो द्वारा, प्लाज्मा ही के समान पाया गया है ।

आन्त्र की अन्तर्वस्तु के वमनो द्वारा निकलते रहने से शरीर की तीन प्रकार की तीव्र हानिया होती है—निर्जलीकरण (dehydration), क्लोराइड और सोडियम का ह्रास और अल्प प्रोटीनरक्तता (hypoproteinemia), यह हानि अनाहार और आन्त्ररसो की हानि का परिणाम होती है, यद्यपि रक्तसान्द्रण (haemoconcentration) उसे छिपा देता है। क्लोराइड की हानि से क्षारमयता (alkalosis) हो जाती है ।

वमन की कुल मात्रा प्रति दिन 8 पाइन्ट तक हो सकती है । इसके साथ आन्त्र की अवशोषण शक्ति की अकर्मण्यता का अवश्यभावी परिणाम निर्जलीकरण होता है । अवरोध क्षुद्रान्त्र मे जितना ऊपर होता है उतना ही निर्जलीकरण अधिक होता है जिसका कारण न केवल निरन्तर वमन होते है, किन्तु आन्त्र के अधिकतर भाग द्वारा अवशोषण की अनुपस्थिति भी एक बडा कारण होती है। निर्जलीकरण के लक्षण सूखी जिह्वा, शुष्क अप्रत्यास्थ त्वचा, मूत्राल्पता, रक्त सान्द्रता और बढता हुआ वृक्कपात (renal failure) होते है। रक्तयूरिया (blood urea) भी बढ जाती है जो रक्तसान्द्रण, अनाहार के कारण प्रोटीनो के भजन और आगे की अवस्था मे वृक्कपात का परिणाम होती है । वमनो मे क्लोराइड की हानि के साथ सोडियम और पोटासियम की भी हानि होती है । इस ही से शरीर का जल और विद्युदपघट्यो का सतुलन अव्यवस्थित हो जाता है । आन्त्र मे गैसे वायु के निगरण से पहुँचती है तथा वहा उपस्थित अन्तर्वस्तु के विघटन से उत्पन्न होती है और कुछ रक्त से आती है ।

अवरोध से ऊपर के आन्त्र का आध्मान, प्रथम वायु से और फिर नाइट्रोजन और हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसो से, उत्पन्न होता है । पश्चात्, आन्त्र अवकाशिका मे तरल जैसे उडेल दिये जाते है । आन्त्र का आध्मान और उससे आन्त्रभित्ति तथा आन्त्रयोजनी मे उपस्थित स्वायत्त (autonomic) तन्त्रिका जालिकाओ का उत्तेजन उस स्तब्धता (shock) के लिये उत्तरदायी है जो रोग की अन्तिम अवस्थाओ मे एक प्रमुख लक्षण होता है ।

आन्त्र का आध्मान एक दूषित चक्र-सा उत्पन्न करता है, क्योकि उससे आन्त्रभित्ति की शिराओ द्वारा रक्त के लौटने मे बाधा होती है और आन्त्र की अवकाशिका मे तरल का निस्रवण बढता है ।

साधारण अवरोध के कारण

साधारण अवरोध तीन प्रकार से उत्पन्न होते है —

(1) आत्रभित्ति से बाहर के कारण, जैसे (क) हर्निया के छिद्रो पर अवरोध, तथा (ख) पर्युदान्तर बधो या पिडो द्वारा अवरोध, जैसे यक्ष्माजन्य ग्रथिशोथ और लिफोसारकोमा।

(2) आत्र अवकाशिका के भीतर के कारण, जैसे (क) गोलकृमियो का बना हुआ पिड, (ख) अन्त्रात्र प्रवेश (intussusception) का अत्रा विष्टाश (intussceptum), (ग) पित्ताश्मरी (gallstones) तथा (घ) मल का अन्तर्घट्टन (impaction of faeces)।

(3) आत्रभित्ति मे उपस्थित कारण, जैसे (क) यक्ष्माजन्य सकीर्णन (stricture) और (ख) क्रोन रोग।

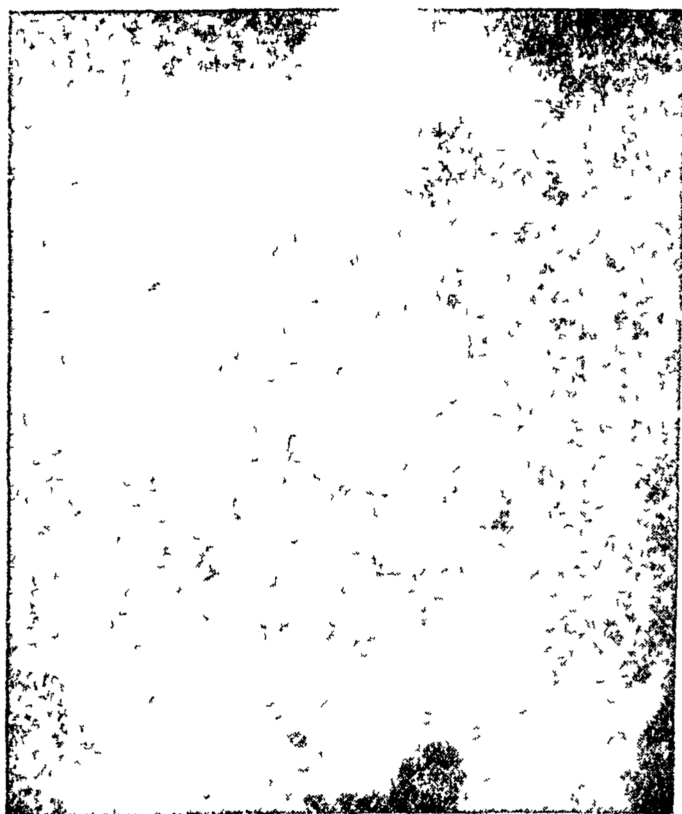
लक्षण

सविराम तीव्र उदरशूल, वमन, आध्मान और वायु या मलत्याग का पूर्ण प्रतिबध तीव्र आत्रावरोध के लक्षण है। जितना अवरोध ऊचा होता है उतना ही वमन अधिक होता है और उतने ही निर्जलीकरण और विद्युदपघट्य असतुलन के चिह्न अधिक प्रमुख होते है। उच्च आत्रावरोध मे नीचे के अवरोध की अपेक्षा आध्मान कम होता है। जीवविपरक्तता, जो आत्रावरोध का एक लक्षण माना जाता है, उपर्युक्त विद्युदपघट्य असतुलन का परिणाम हो सकती है। इस का भी बहुत कुछ प्रमाण मिलता है कि रोगी की सामान्य दशा के शीघ्रता से बिगडने का कारण प्रोटीन भजन से उत्पन्न पदार्थो का तथा अवरुद्ध आत्रपाश मे वातनिरपेक्षी (अनाक्सीय anaerobic) जीवाणुओ की वृद्धि से उत्पन्न वस्तुओ का अवशोषण भी होता है। यह अनेक बार देखा गया है कि अवरोध के दूर होने पर रोगी की दशा का अकस्मात् ह्रास होता है। इसका कारण प्रोटीन चयापचय से उत्पन्न हुए विषैले पदार्थो का आगे के स्वस्थ आत्र द्वारा अवशोषण बताया जाता है, जो प्रतिहारी रक्तसचार द्वारा यकृत मे पहुचकर यकृत सार-ऊतक (parenchyma) की क्रिया का अवनमन करते है। किन्तु आत्र के अकस्मात् विसपीडन (decompression) को भी नही भुलाया जा सकता।

निदान

तीव्र आभ्यन्तर आत्रावरोध का सन्देह होने पर दो एनीमा परीक्षण

निदानात्मक होना है। एक उच्च एनीमा (high enema) देकर उसका परिणाम देखा जाता है। एक घंटे के पश्चात् दूसरा एनीमा दिया जाता है। तीव्र आन्त्रावरोध में प्रथम एनीमा में वायु या मल निकल सकते हैं जो अवरोध के नीचे उपस्थित थे। दूसरे एनीमा से मल या वायु कुछ भी न निकलेंगे। किन्तु अपूर्ण अवरोध में ऐसा नहीं होता और दूसरे एनीमा से भी मल और वायु निकल सकते हैं। कभी-कभी एनीमा का तरल भीतर ही रह जाता है।



चित्र 35 एक्स-रे चित्र जिसमें तीव्र आन्त्रावरोध में आन्त्र में एकत्र हुए तरल के तल (level) दीखते हैं।

खड़ी स्थिति में लिया उदर का एक्स रे चित्र भी निदान में सहायक होता है। गैसपूरित लघुआन्त्रपाशों में तरल-स्तर (fluid level) की उपस्थिति तीव्र आन्त्रावरोध की निश्चयात्मक है। किन्तु एनीमा के भीतर रह जाने से बृहदान्त्र में तरल स्तर बन सकते हैं जिनको अनुभवहीन सर्जन क्षुद्रान्त्र तरल-स्तर समझ सकता है। क्षीण दशा के कारण रोगी के खड़ा होने में असमर्थ होने पर रोगी

को करवट से लिटाकर और एक्स-रे ट्यूब को सामने तथा प्लेट को पीछे रख कर लिये एक्स रे मे उदर के ऊर्ध्व भाग मे तरल स्तर दिखाई देंगे ।

विपाशन (strangulation)—अधिकतर रोगियो मे आन्त्रावरोध का निदान सरल होता है । किन्तु यह निश्चय करना आवश्यक है कि आन्त्रावरोध के साथ विपाशन तो नही है । यह भेद करना मार्मिक है जिस पर रोगी का जीवन निर्भर करता है । जबकि अविपाशित रोगियो मे से अधिकतर केवल तरक्षी चिकित्सा से रोगमुक्त हो जाते है, विपाशित रोगी के जीवन की रक्षा के लिये तत्काल सर्जरी आवश्यक है । विपाशित और अविपाशित रोगियो का भेद करने के लिये जो नैदानिक मापदड निर्धारित किये गये है वे अवरोध की स्थिति पर प्रतिक्षेपी स्पर्शासहता (rebounding tenderness), ज्वर, कठोरता (rigidity), स्तब्धता (अधिक या न्यून) और रक्तश्वेतकोशिकावहुलता है । कोथ होने पर या उसका प्रारभ समीप होने पर स्थानिक औदरीय कठोरता बढ जाती है । किन्तु ये चिह्न असदिग्ध नही है और सदिग्ध रोगियो का शस्त्रकर्म करना सदा क्षेमकर है ।

चिकित्सा

तीव्र साधारण आन्त्रावरोध की चिकित्सा मुख्यतया सतत जठरान्त्र आचूषण (gastrointestinal aspiration) और आन्त्रेतर मार्ग द्वारा तरल, ग्लूकोज और विद्युदपघट्यो को शरीर मे पहुचाना है जिससे तरल और विद्युदपघट्यो की जो हानि हुई है उसकी पूर्त्ति हो तथा उनकी प्रतिदिन की आवश्यक मात्रा रोगी के शरीर मे पहुचती रहे। आन्त्रेतर मार्ग द्वारा पहुची हुई ग्लूकोज रोगी की केलोरी की आवश्यकता को अशत पूरी करती है ।

अधिकतर आन्त्रावरोध, विशेपतया क्षुद्रान्त्र के ऊर्ध्व के भाग के, अस्थायी प्रकार के होते है और उपर्युक्त चिकित्साक्रम से लाभ प्राप्त करते है । किन्तु निम्न भाग के आन्त्रावरोध प्राय विपाशी प्रकार के होते है और उनमे अधिकतर सर्जरी आवश्यक होती है ।

आगे भिन्न-भिन्न प्रकार के आन्त्रावरोधो का, उस आयु के अनुसार जिसमे वे अधिक होते है, विचार किया जाएगा ।

नवजात काल मे आन्त्रावरोध
(Intestinal Obstruction in Neonatal-period)

इस आयु मे तीन प्रकार के अवरोध होते है: (1) नवजात आन्त्र अविवरता

(congenital atresia) और सकीर्णता (stenosis) , (2) जन्मजात अपघूर्णन (congenital malrotation) और (3) मिकोनियम आन्त्रावरोध ।

जन्मजात आन्त्र अविवरता और सकीर्णता

इस गम्भीर दशा मे आन्त्र की नलिका या अवकाशिका अन्तर्गर्भ जीवन के प्रथम सप्ताहो मे नही वनती । आन्त्र के परिवर्धन क्रम मे तीन अवस्थाये होती है पहली रिक्त (hollow) अवस्था, दूसरी ठोस (solid) अवस्था और फिर रिक्त अवस्था । आन्त्रयोजनी मे रक्तसचार का दोप इस दशा का कारण माना जाता है जिसमे आन्त्र के भीतर की नलिका नही वनती । प्राय शेपान्त्र के निम्न भाग के एक खड मे यह दशा पायी जाती हे, यद्यपि यह विकृति क्षुद्रान्त्र के वहुत से भाग तथा वृहदान्त्र मे उपस्थित हो सकती है । अवरोध कई स्थानो पर हो सकता है । शस्त्रकर्म मे उदर खोलने पर आन्त्र ऊपर से सौसेजो (sausages) की एक शृखला के समान दीखता हे । अवरोध के आशिक होने पर आन्त्र की सकीर्णता की दशा उत्पन्न हो जाती हे । क्षुद्रान्त्र की अतर्वस्तु के न पहुचने से, वृहदान्त्र नही फैलता । कभी-कभी साथ के ग्रास प्रणाल की अविवरता तथा अद्वार गुद (imperforate anus) भी मिलते है ।

लक्षण

मुख्य लक्षण आन्त्र का आध्मान, वमन और मिकोनियम का त्याग न होना है, यद्यपि आन्त्र के अवरोध के नीचे के अलुप्त भाग से कुछ श्वेत रग का कुछ पदार्थ निकल सकता हे । आध्मान जन्म के तीसरे या चौथे दिन दिखाई देता है । मल की अनुपस्थिति के कारण वृहदान्त्र मे विटामिन-के नही वनता जिससे रक्तस्राव की प्रवृत्ति प्रकट हो सकती है । गुद-परीक्षा पर असामान्य गुदनलिका मिलती है । उदर के साधारण एक्स-रे चित्र मे कई विस्फारित आन्त्रपाशो मे तरल स्तर दिखाई देता है । आन्त्रावरोध का वेध होने पर तरल स्तर वहुत चौडा क्षैतिज दिखाई देगा जिसका कारण आन्त्र के लीक से पर्युदर्या गुहा मे गैस और तरल का पहुचना होता है । वेरियम प्रयोगाहार से कोई लाभ नही है । वेरियम एनीमा से एक सकुचित किन्तु अवकाशिकायुक्त वृहदान्त्र दीखेगा । वेरियम प्रयोगाहार से अवरोध की दशा और भी वढ सकती है । वमन के समय उससे श्वसनियो मे वेरियम का आचूपण हो सकता है ।

फार्वर (Farber's) परीक्षण, जिसमे मिकोनियम के मलत्याग (stool) के केन्द्र मे किरेटिनीकृत कोशिकाओ (keratinised cells) को खोजा जाता है,

निदान का उत्तम साधन है।

चिकित्सा

लुप्त (obliterated) आन्त्रखड के दोनो ओर के आन्त्र पाशो के बीच लघु-पथ (short circuit) बना दिया जाता है। उससे एक नासा-जठरनलिका द्वारा आन्त्र का विसम्पीडन और तरल तथा विद्युदपघट्यो के सतुलन का पुन स्थापन आवश्यक है। कुछ सर्जन अविवरित (atretic) खड का उच्छेद कर देते है। अन्त्य शेपान्त्र के आक्रान्त होने पर लघुपथकर शस्त्रकर्म के परिणाम बहुत असतोपजनक होते है और इस कारण द्विबैरल शेपान्त्र छिद्रीकरण (double barelled ileostomy) का परामर्श दिया गया है। शस्त्रकर्म पूर्व और पश्चात् विटामिन-के और बी-समग्र सदा दिये जाए।

जन्मजात अपघूर्णन (अपविवर्तन) (congenital malrotation)

आन्त्रघूर्णन का परिवर्धन (development) बताया जा चुका है। दो प्रकार के अपघूर्णन नवजातो मे पाये जाते है। वौलवूलस और अन्धान्त्र का अपूर्ण घूर्णन।

नवजात का वौलवूलस

इसमे समस्त क्षुद्रान्त्र या उसका अधिकाश ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी के अक्ष के चारो ओर घडी की सुई की दिशा मे घूमता है। प्राय आन्त्रयोजनी भी अपूर्णतया विकसित होती है। शस्त्रकर्म द्वारा आन्त्रयोजनी के घूर्णन को ठीक करना है इसकी चिकित्सा है।

अधान्त्र का अपूर्णघूर्णन—इस दशा मे पर्युदर्या के एक फैलाव (sheet) के कारण अवरोध उत्पन्न होता है। यह भाग जठरनिर्गम पर स्थित अधान्त्र से दक्षिण पार्श्व उदरभित्ति तक, ग्रहणी के दूसरे भाग पर होता हुआ चला जाता है। इस अश से ग्रहणी के दब जाने के कारण अवरोध के लक्षण होते है। सर्जरी द्वारा इस अश को काटने और अधान्त्र को वाम उदर मे विस्थापित करने से लक्षण शान्त होते है। क्षुद्रान्त्र का वौलवूलस, यदि उपस्थित हो, तो वह भी ठीक किया जा सकता है।

मिकोनियम आन्त्रावरोध

इस नवजात दशा मे मिकोनियम इतना गाढा हो जाता है कि वह चम्मच

पर लिपट सकता है। उसका कारण आंत्र और श्वसनियो की स्रावक उपकला (secreting epithelium) की जन्मजात अपसामान्यता (abnormality) और साथ ही उपस्थित अग्न्याशय के तन्तुपुटी (fibrocystic) रोग के कारण उसके स्राव की ऐंजाइमअल्पता होती है। श्वसनीश्लेष्मा की अपसामान्यता से श्लेष्म पृष्ठ शुष्क रहता है जिससे श्वसन सबधी सक्रमण की प्रवृत्ति बढ जाती है। यही इन बच्चो मे मृत्यु का विशेष कारण होता है। मिकोनियम की शुष्कता आंत्रावरोध उत्पन्न करती है। लक्षण जन्म से उपस्थित आंत्रावरोध के होते है।

उदर के साधारण एक्स-रे चित्रो मे पर्युदर्यागुहा मे कैलसीभवन के क्षेत्र दिखाई देते है जो मिकोनियम मे कैल्शियम एकत्र होने से उत्पन्न होते है। ये निदान के निर्णायक है। आंत्र की अवकाशिका और पर्युदर्यापृष्ठ दोनो स्थानो मे ऐसे क्षेत्र दीखते है।

मिकोनियमजन्य आंत्रावरोध गभीर दशा होती है जिसमे अब तक 100 प्रतिशत मृत्यु होती थी। मृदु दशा मे मुह द्वारा अग्न्याशय किण्वो को खिलाना पर्याप्त होता है। अधिक गभीर दशा मे आक्रान्त खड का बाह्यकरण (exteriorization) और उच्छेदन तथा द्वि-बैरल रूप (double barrelled) शेषांत्र छिद्रीकरण से सबसे उत्तम परिणाम हुए हैं।

प्रारंभिक बाल्यकाल मे आंत्रावरोध

इस आयु मे दो मुख्यतया होने वाली दशाये है, आंत्रांत्रप्रवेश या इन्टससेप्शन (intussusception), तथा गोल कृमियो द्वारा आंत्रावरोध।

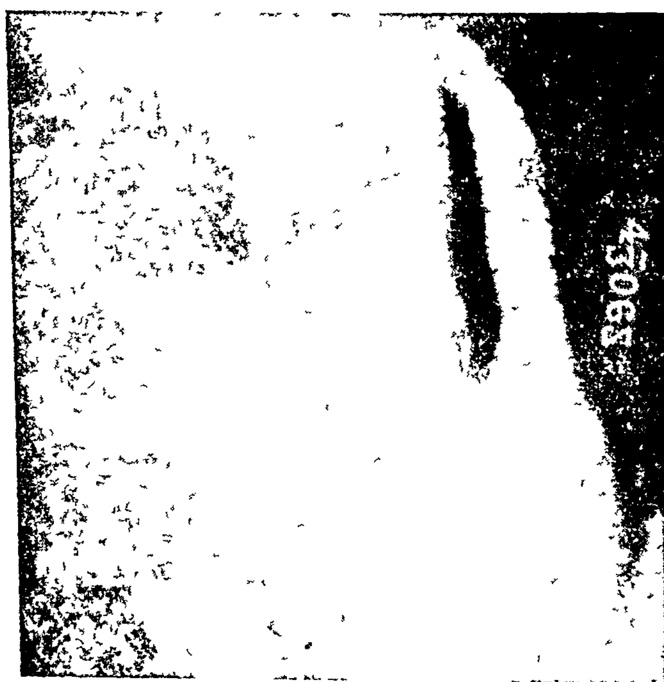
तीव्र आंत्रांत्रप्रवेश (Acute Intussusception)

आंत्र पुरःसरण (intestinal peristalsis) सामान्यतया आंत्र मे क्रमश सकोच (contraction) और शिथिलन (relaxation) होने की घटना है जिससे आंत्र के भीतर की अन्तर्वस्तु की प्रगति होती है। इस क्रिया-विधि (mechanism) के विकृत होने पर ऊपर का आंत्र नीचे के आंत्र मे प्रविष्ट हो जाता है। यह दशा आंत्रांत्रप्रवेश कही जाती है। अनियमित या अक्रमिक पुरःसरण मे आंत्र का नीचे का भाग ऊपर के भाग मे प्रविष्ट हो जाता है जैसा मृत्यु के पूर्व होता है। इसको प्रतिगामी (retrograde) अंत्रांत्र प्रवेश कहते है। प्रतिगामी मध्यांत्र जठर प्रवेश (retrograde jejunogastric intussusception) जठर-मध्यान्त्र समिलन का विदित उपद्रव है। भीतर प्रविष्ट आंत्र खडाश,

आंत्राविष्टाश (intussusceptum) कहा जाता है और आत्र के भीतर जाने वाले और बाहर को लौटने वाले दो स्तरो का बना होता है। इन दोनो पर आत्र को जो स्तर चढा रहता है (सबसे बाहर) वह आंत्रान्त्रवेष्टक (intussu-scipiens) कहलाता है। आत्रात्र भाग और वेष्टक का सगम आत्रात्रप्रवेश की ग्रीवा कही जाती है। ज्यो-ज्यो आत्र आत्राविष्टाश को बाहर निकालने का प्रयत्न करता है त्यो-त्यो आत्रात्रप्रवेश बढता जाता है और वेष्टक स्तर पतला होता जाता है। सभव है कुछ प्रारभिक आत्रात्रप्रवेश स्वत ठीक हो जाते है। जन्तुओ मे प्रयोग द्वारा आत्रात्रप्रवेश उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन होता है जिसका कारण आत्र की स्वय ठीक होने की (प्रविष्ट आत्र को बाहर निकालने की) दृढ प्रवृत्ति होती है।

हेतुकी

6 से 12 मास के बीच की आयु मे कई कारणो से आत्रात्रप्रवेश हो सकता है। बच्चे को माता का दूध छुडाने से आत्रातर जीवाणुसमूह मे परिवर्तन होता है जिससे प्रवाहिका (diarrhoea) हो सकती है और उससे आत्र पुर -



चित्र 36 आत्रात्रप्रवेश का एक्स-रे चित्र जिसमे अभिलक्षक विरूपता दीख रही है।

सरण के द्रुत और अधिक होने से उसकी गतिया अनियमित होकर इस दशा को उत्पन्न कर सकती है। अन्य शेषात्र मे स्थित शोथयुक्त फूले हुए पेयरस्थल (Payer's patches), शेप अधात्र कपाटिका (ıleocoecal valve) पर स्वाभाविक उभार, आरोही बृहदात्र योजनी का ढीला होना, अन्य कारण हैं। मध्यात्र या शेपात्र मे श्लेष्मिक कला या अधोश्लेष्मा के अर्बुद रोग के स्पष्ट प्रवर्तक कारण है। 5 प्रतिशत तीव्र आत्रात्रप्रवेश आत्र के अर्बुदो के कारण होते है। ये वयस्को मे अधिक होते है। प्यूज-जेथर (peutz-jegher) सलक्षण नामक रोग मे आत्र मे कई ग्रथ्यर्वुद पाये जाते है जिनके साथ मुख के चारो ओर वर्णक कण (cırcumoral pıgmentatıon) एकत्र हो जाते है। पुन -पुन· आत्रात्रप्रवेश इसका लक्षण होता है।

प्रकार—रोग के पाँच प्रकार माने जाते है। शेप-अधात्र (ıleocoecal), शेष-बृहदात्र (ıleocolıc), शेप-अत्रात्र (ıleoıleal), बृहदात्रात्र (colocolıc), और प्रतिगामी (retrograde)। इसी क्रम से इनकी आवृत्ति (frequency) होती है। आत्र के आगे के भाग मे प्रविष्ट होने के कारण भीतर जाने वाले खडाश की योजनी ग्रीवा पर दव जाती है जिससे प्रविष्टाश का शिरावरोध हो सकता है जो वढकर धमनी अवरोध के कोथ (gangrene) का रूप ले लेता है।

लक्षण—एक स्वस्थ पुष्ट 6 से 12 मास के वच्चे को, विशेपकर मा का दूध छोडने के समय मे, तीव्र उदर शूल के सविरामी आक्रमण तथा वमन होने लगते है। वच्चा चीत्कार कर उठता है और टागो को उदर पर सकोड लेता है, साथ ही उदर मे आत्र के प्रवल आकर्प (spasm) भी होते है। यह तीव्र शूल, आत्र का आकर्ष और वच्चे की चीत्कार, सव, ऐसे निश्चित प्रकार से होते है कि वहुधा माता रोग के प्रारभ का ठीक-ठीक समय वता सकती हे। यह प्राय. स्वस्थ प्रथम सन्तान को होता है। एक वमन से रोग प्रारम्भ हो सकता है। आत्रात्रप्रवेश के वढने पर आत्रावरोध के लक्षण प्रकट हो जाते हे और वमन तथा उदर-आध्मान वढ जाते हैं। लाल जैली के समान मल, जो आत्रात्रप्रवेश का अभिलक्षक है, रोग का विलम्वित लक्षण है। यह श्लेष्मा आत्राविष्ट भाग से स्रवित रक्त मे मिलकर आता है। आत्रात्रप्रवेश अधिकतर गर्मियो मे होता है जव प्राय वच्चो को पाचन विकार होते है। 20 प्रतिशत मे प्रवाहिका का इतिवृत्त मिलता है और उनमे रोग के प्रारभ का निश्चित समय जानना कठिन होता है।

निदान

यकृत को बाये हाथ से ऊपर को दबाकर बच्चे के उदर की दक्षिण ओर से परीक्षा करनी चाहिए। इसमे सौसेज आकार का पिंड प्रतीत होगा। वह आत्र आकर्ष के समय आत्राविष्टाश के कडा हो जाने मे भली-भाँति प्रतीत हो सकता है। बच्चे को दूध की बोतल देने या स्तन्यपान कराने से पिंड का परिस्पर्शन सरल होगा। अतिविवर्धित (enlarged) यकृत के नीचे पिंड छिपा हो सकता है। आत्रात्रप्रवेश ज्यो-ज्यो बढता है त्यो-त्यो उसका पिंड उदर के परिसर या वाम अधोपर्शुक प्रदेश तथा वाम श्रोणिफलक खात की ओर सरकता जाता है। अधिकतर रोगियो मे दक्षिण श्रोणिफलक खात रिक्त होता है (डान्स-dance का चिह्न)। रोग के अत्यधिक बढ जाने पर आत्रात्रप्रवेश गुदद्वार से बाहर निकला हुआ शक्वाकार रक्तवाहिकामय पिंड-सा दीखता है।

मलाशय की अगुलि द्वारा परीक्षा कभी न भूलना चाहिये, आत्रात्रप्रवेश-पिंड के बहुधा वहा मिलने के अतिरिक्त लाल जैलीवत् मल मिल सकता है जो रोग का विशिष्ट लक्षण है। जब आत्रात्रप्रवेश प्रवाहिका के उपद्रवस्वरूप होता है तो कितनी ही बार उसकी ओर ध्यान नही जाता। इस रोग के निस्राव मे पित्त की पूर्ण अनुपस्थिति उसको प्रवाहिका के मल से विभिन्न करती है। रोग के बढने पर इतना अधिक आध्मान हो सकता है कि उसके कारण पिंड प्रतीत न हो सके, ऐसी दशा मे रक्तमिश्रित मलाशय निस्राव ही रोग को इगित करने वाला एकमात्र चिह्न हो सकता है। एक सर्जन को कुशल सहकारी का निदान माननीय होना चाहिये, यद्यपि स्वय वह पिंड को प्रतीत न कर सके। आत्रात्रप्रवेश का पिंड भ्रमात्मक हो सकता है, वह कभी प्रतीत होता है, कभी नही। उसकी कठोरता या मृदुता मे भी भिन्नता मिल सकती है।

सन्देह होने पर निदान के लिये बेरियम एनीमा उपयोगी हो सकता है। अधिकतर रोगियो मे आत्रात्रप्रवेश बृहदात्र मे प्रवर्धित रहता है। उसकी आकृति की समता कुडलित कमानी (घडी की कमानी के समान कमानी) से की गई है। अधात्र-प्रवेश मे बृहदात्र के अगले भाग मे, एक वक्र भरण अपूर्णता (curved filling defect) रह जाती है, जिसके हौस्ट्रेशन उसको सकेन्द्री (concentric) प्रकार से घेरे रहते है। शेष-आधात्र अत्रात्रप्रवेश मे यह निदान विधि उपयोगी नही होती।

सापेक्ष निदान

शिशुओ मे आत्रशूल के अन्य कारणो से इस दशा को विभिन्न करना

आवश्यक है। आन्त्रान्त्रप्रवेश मे वमन और पिंड की उपस्थिति निदान मे सहायक होते है। ग्रीष्म प्रवाहिका (summer diarrhoea) का आक्रमण अव्यक्त प्रकार से आन्त्रान्त्रप्रवेश का रूप ले सकता है। मल मे तनिक भी रक्त रेखा (streak of blood) की उपस्थिति और स्थानिक लक्षणो, विशेषकर आध्मान की वृद्धि, से आन्त्रान्त्रप्रवेश का सदेह होना चाहिये। एक परिस्पर्श्यपिड और अभिलक्षक वेरियम एनीमा की चित्र आकृतियाँ निदान की निश्चयात्मक है।

चिकित्सा

द्रवस्थैतिक (हाइड्रोस्टेटिक) विधियो से आस्ट्रेलिया और स्वीडन मे आन्त्रान्त्रप्रवेश के पुन स्थापन (reduction) की सफलता की रिपोर्ट की गई हे। यह विधि अति प्रारभिक रोग मे उपयोगी हो सकती है, किन्तु भारत मे जिस प्रकार के रोगी चिकित्सा के लिये आते है उनमे लाभदायक नही है। बेरियम एनीमा द्वारा पुन स्थापन की प्रगति प्रदीप्ति पट पर देखी जा सकती है। पूर्ण पुन स्थापन का चिह्न वेरियम का शेषान्त्र मे जाना ओर सामान्य मलत्याग है। किन्तु वह शेष-अधान्त्रप्रवेश मे प्रयुक्त नही हो सकता और अधोश्लेष्मिक पौलिप के समान कारण का भी उससे पता नही चलता। तो भी वेरियम एनीमा से प्राय आन्त्रान्त्रप्रवेश का आशिक पुन स्थापन हो जाता है जिससे शस्त्रकर्म मे सुभीता होता है।

बहुत अधिक रोगियो मे शस्त्रकर्म आवश्यक होता है। आन्त्रान्त्रप्रवेश के स्लफ होकर मलाशय द्वारा निकल जाने पर स्वत रोगमुक्ति (spontaneous cure) सर्जरी की एक अप्राप्य विचित्रता है। आन्त्रान्त्र प्रवेश का उसको दबाकर पुन स्थापन किया जाता है न कि प्रविष्ट होने वाले स्तरो को खीचकर। पुन - स्थापन मे कठिनाई होने पर आन्त्रान्त्रप्रवेश की ग्रीवा को आवेष्टक और आवेष्टित स्तरो के वीच धमनी सदश को प्रविष्ट करके चौडा दिया जाता है। पुन - स्थापन की सब विधियो के असफल होने पर या जब अन्तराविष्ट पिंड मे कोथ प्रारभ हो जाय तो उच्छेद और प्राथमिक सयोजन (primary anastomosis) अथवा बच्चे की दशा गभीर होने पर दुहरा आन्त्रछिद्रीकरण मान्य विधियाँ है। इन दोनो विधियो मे मृत्यु बहुत होती है। आन्त्रान्त्रप्रवेश के पुन स्थापन के पश्चात् अध श्लेष्मिक ग्रन्थ्यर्बुद या वसार्बुद आदि कारण को आन्त्र मे देखना चाहिये, और मिल जाने पर उसका उच्छेदन करना चाहिये।

आन्त्रान्त्रप्रवेश की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये सर्जरी के आयोजन अनावश्यक और अवाछित है। पुनरावृत्ति की दर प्राय दो प्रतिशत है, किंतु भारत

मे 5 प्रतिशत रोगियो मे पुनरावृत्ति होती है जिसका कारण आत्र सक्रमण की वहुलता है। इस कारण शस्त्रकर्म द्वारा पुन स्थापन के पश्चात् यदि वहा कुछ ऐसी रचनात्मक अपसामान्यताये पाई जाये जो पुनरावृत्ति के अनुकूल हो तो शेप-अधात्र स्थिरीकरण (ileocoecal fixation) भी कर दिया जाय।

गोलकृमि-अवरोध—कभी-कभी गोल कृमियो के एकत्र हो जाने से ऐसा पुज वन जाता है जो आत्र मे अवरोध उत्पन्न कर देता है। 800 कृमि एकत्र होकर गोलाकार या कुछ दीर्घ आकृति का पुज वनाते पाये गये है। उनके पुजित होने का कारण अज्ञात है। कभी-कभी कृमिघ्न औपधियो से रोग का आक्रमण हो गया है। प्रथम वर्ष को छोडकर रोग सवसे अधिक जीवन के प्रथम दशक मे होता है। वयस्को मे भी होता है। लक्षण तीव्र आत्रावरोध के समान होते है और उदर मे एक पिंड प्रतीत होता है जिसकी स्थिति प्रति दिन वदलती रहती है। पिंड दो या तीन पिंडो मे विभक्त भी हो सकता है। हल्का ज्वर और अल्प जीवविपरक्तता (toxaemia), जो टायफाइड के जीवविपरक्तता के समान होती है, भी उपस्थित होते है।

सरक्षी चिकित्सा, जठरात्र चूपण, एनीमा, एट्रोपीन और उपयुक्त कृमिघ्न औषधि के प्रयोग से अधिकतर रोगियो को लाभ होता है। कृमियो का वडा और कठोर पुज वन जाने पर सरक्षी चिकित्सा से यदि लाभ न हो तो शस्त्रकर्म पुज को निकालना आवश्यक है। स्वस्थ आत्र मे छेदन करना उचित है, दुर्वल हुई आत्रभित्ति मे टाको के कट जाने और यदि कुछ कृमि रह गये हो तो उनके द्वारा निकल आने का डर रहता है।

वयस्को मे आत्रावरोध

वयस्को मे तीव्र आत्रावरोध के मुख्य कारण अवरुद्ध हर्निया, पर्युदातर वध और आसजन, यक्ष्माजन्य आत्र सकीर्णन, और क्षुद्रात्र का वौलवुलस होते है। अधिक आयु वालो मे और वृद्धो मे श्रोणिगत वृहदात्र (pelvic colon) का वौलवुलस, पित्ताश्मरी अवरोध और अर्वुदो के कारण चिरकारी अवरोध का तीव्र आत्रावरोध का रूप ले लेना, सामान्य कारण होते है। हर्निया के अतिरिक्त अन्य का यहा विचार किया जाएगा।

पर्युदान्तर वध (intra peritoneal bands), मोटन (kinking) और आसंजनो (adhesions) द्वारा अवरोध

वध कई प्रकार से क्षुद्रात्र को अवरुद्ध कर सकते है। एक मुक्त वध क्षुद्रात्र

के कुडल पर लिपट सकता है, अथवा यदि उसके दोनो सिरे जुडे हुए है तो आन्त्र का कुछ अश उस पर मे लटककर या उसके नीचे आकर अवरुद्ध हो सकता है। विरल अवसर पर वह वौलवुलस भी उत्पन्न कर सकता है। ये अवरोध साधारण या विपाशित (strangulated) हो सकते है। भारत मे बधो के बनने का अधिकतम कारण उदर यक्ष्मा होता है। वपा और क्षयग्रस्त पर्युदान्तर पर्व के बीच बने वध अथवा क्षुद्रान्त्र का पर्युदातर यक्ष्माजन्य पिंड से आसजन, अथवा क्षुद्रान्त्र कुडलो का क्षयग्रस्त होकर जुड जाना, ये बहुत पाये जाते है।

इसके पश्चात् आवृतिक्रम मे पूर्व के शस्त्रकर्म से बने हुए वध आन्त्रावरोध उत्पन्न करने वाले होते हैं। विरल वार अलुप्त (unobliterated) मैकल विपुटी से सबधित वध आन्त्रावरोध का कारण हो सकते है। बधो का केवल सन्देह किया जा सकता है। उदर शस्त्रकर्म के क्षताक अथवा उदरबाह्य यक्ष्मा के केन्द्र से वध का अनुमान हो सकता है। साधारण एक्स-रे चित्र मे बहु तरल स्तरो की उपस्थिति आन्त्रावरोध के निदान की समर्थक है।

चिकित्सा

इस दशा की चिकित्सा मुख्यतया सरक्षी है। जठरान्त्र आचूषण, अन्त शिरीय तरल और सतर्क प्रेक्षण (observation) है। मोटन या आमजन के रोगियो मे बहुधा इमसे लाभ होता है। बध द्वारा रोग प्राय विपाशित होता है। अत वध को काटने या मोटन का मोचन कर देने से रोगशमन होता है।

वौलवुलस (volvulus)

किसी आन्त्र कुडल के अपने आन्त्रयोजनी अक्ष पर घूम जाने को वौलवुलस कहते है। इससे कुडल के दोनो सिरो पर अवरोध हो जाता है। वहा का रक्तसचार भी सपीडित हो जाता है। यह तीन स्थितियो मे होता है—श्रोणिबृहदान्त्र, क्षुद्रान्त्र और अधान्त्र।

श्रोणिबृहदान्त्र का वौलवुलस यह भारत और पूर्वी योरुपीय देशो मे बहुत होता है। सारा श्रोणि बृहदान्त्र इसमे आक्रात होता है। बृहदान्त्र घडीविपरीत (anticlockwise) दिशा मे अर्धचक्र (180°) या पूर्ण चक्र घूम जाता है। चिरकारी कोष्ठबद्धता लम्बी आन्त्रयोजनी और बृहदान्त्र कुडल का सकुचित आधार, ये सब प्रवर्तक कारण होते है। आशिक वौलवुलस कभी-कभी स्वय ठीक हो जाता है। इस प्रकार के पुन पुन आक्रमण तथा लघुकालीन शूल का इतिवृत्त प्राय मिलता है। वौलवुलस अधिकतर मध्य आयु के अथवा वृद्ध व्यक्तियो को

होता है और अधिकतर अनुतीव्र (subacute) प्रकार का होता है । नवयुवकों मे तीव्र प्रारम्भ साधारण है ।

लक्षण—आत्र कितना घूमा है इस पर और प्रारम्भ की तीव्रता पर लक्षण निर्भर करते है । रोगी को उदर मे बाईं ओर शूल प्रतीत होता है और इसके पश्चात् स्थानिक और आगे चलकर सारे उदर का आध्मान हो जाता है । कोष्ठबद्धता सम्पूर्ण होती है, एनीमा का कोई फल नही होता । एनीमा का जल, बहुधा, भली-भांति भीतर नही जाता और तुरन्त ही निकल आता है । यह नैदानिक चिह्न है । गुद-परीक्षा (rectal examination) करने पर अंगुलि पर रक्त लग जाता है । वमन देर से प्रारम्भ होते है । ये पर्युदर्या शोथ की उत्पत्ति के चिह्न हो सकते है । आत्र का कोथ और वेध शीघ्र ही होते है जिसमे पुरीषजन्य पर्युदर्या शोथ हो जाता है । बृहदात्र (अन्तराभित्ति और भित्ति) मे तथा पर्युदर्या गुहा दोनो मे रक्तस्रावी निस्राव होने के कारण स्तब्धता शीघ्र ही उत्पन्न हो जाती है । एक्स-रे चित्र नैदानिक होता है । उसमे बृहत्, ओमेगा (omega) आकार का, अतिविस्तृत श्रोणि बृहदात्र पाश दीखता है ऊपर के बृहदात्र भाग का भी कुछ विस्तार होता है । क्षुद्रात्र अवरोध के अभिलक्षक बहुतरलस्तर (multiple fluid levels) नही दिखाई देते ।

तत्काल चिकित्सा आवश्यक है ; सिगमाइडोस्कोप द्वारा आत्र-वायुनलिका को प्रविष्ट करने और वौलवुलस का मोचन करने के प्रयत्न मे समय गवाना उचित नही है । अनिश्चित होने के अतिरिक्त उसमे बृहदात्र विदीर्ण होकर पर्युदर्याशोथ भयकर जीवाणुओ द्वारा सक्रमित हो सकती है । तुरन्त उदरछेदन अभीष्ट है । एक सहायक द्वारा गुदा से प्रविष्ट की हुई आत्र-वायुनलिका की सहायता से वौलवुलस से आक्रात आत्र कुडल को दूसरी दिशा मे घुमाकर वौलवुलस का मोचन करने के पश्चात् रबड नलिका को दो सप्ताह तक वही पडे रहने देना चाहिये जिससे वौलवुलस फिर से न हो जाय । अथवा, आत्र मे एक लघुछेदन द्वारा उसका आचूषण किया जाय । यदि कोथ प्रारम्भ हो गया है तो उच्छेद-समिलन (resection-anastomosis) अथवा कोथयुक्त आत्र का मिकूलिज (mikulicz) का बाह्यकरण (exteriorization) शस्त्रकर्म किया जाता है । श्रोणि-बृहदात्र के वौलवुलस मे 40 से 50 प्रतिशत मृत्यु होती हैं ।

क्षुद्रात्र का वौलवुलस

ग्रेटब्रिटेन और अमरीका मे यह असाधारण है । किन्तु भारत मे, विशेषकर बिहार मे, यह रोग बहुत होता है । वहा सब प्रकार के क्षुद्रात्रावरोधो मे

उसकी सख्या 59 4 प्रतिशत है । वह अवग्रह बृहदान्त्र या अधात्र के वौलवुलस से भी अधिक होता है । स्थानिक पर्युदर्या शोथ, यक्ष्माजन्य आन्त्रयोजनी लसीका ग्रन्थिशोथ तथा उदर शस्त्रकर्म उसके प्रवर्तक कारण है । इन सब कारणो से आसजनो के बनने के कारण आन्त्रयोजनी का आधार (base of mesentery) सकुचित और विरूप हो जाता है। जन्मजातबध (congenital bands) मैकिल विपुटी और अपघूर्णन से भी क्षुद्रान्त्र का वौलवुलस हो जाता है । प्राय निम्न शेपान्त्र का वौलवुलस होता है, किन्तु उसमे समस्त आन्त्र आ सकता है । कितनी ही बार कोई कारण नही मिलता ; ऐसे रोगियो मे वह अकस्मात् अनुचित दिशा मे शरीर को मोडने या गति का परिणाम हो सकता है ।

वौलवुलस से 'बद्धपाश (closed loop) प्रकार का अवरोध हो सकता है । सामान्य लक्षणो (सविराम शूल, वमन, कोष्ठबद्धता और उदर आध्मान) के अतिरिक्त स्तब्धता शीघ्र हो जाती है। स्तब्धता का वेग और त्वरता आक्रात आन्त्र कुडल की लम्बाई पर निर्भर करते है। उसका कारण आन्त्र की अवकाशिका तथा भित्ति मे और साथ ही पर्युदर्यागुहा मे रक्त का निस्राव होता है । इस रक्तनिस्राव (exudation of blood) का कारण आन्त्रयोजनी रक्तवाहिकाओ का सम्पीडन होता है। क्षुद्रान्त्र का वौलवुलस वास्तव मे एक आभ्यन्तर विपाशन (internal strangulation) है और उसके तत्काल शमन न होने से आन्त्र का कोथ और विदर हो जाता है जिससे घातक पर्युदर्या-शोथ होता है ।

चिकित्सा तत्काल उदरछेदन (laparotomy) है । समस्त आन्त्र को उदर के बाहर निकाल कर उसकी ऐठन (twist) को खोला जाता है और कोथ होने पर आन्त्र का उच्छेद-समिलन (resection anastomosis) किया जाता है । फिर कारण ढूढा जाता है और मिलने पर उसको दूर किया जाता है। शस्त्रकर्म के अन्त पर प्राय गाढ स्तब्धता होती है ,अत शस्त्रकर्म के पूर्व और उसके पश्चात् स्तब्धतारोधी आयोजन अत्यावश्यक है ।

प्राग्ज्ञान रोगी की आयु, लक्षण कितने समय से है (duration), और आक्रान्त क्षुद्रान्त्र की लम्बाई, पर निभर करता है । शिशुओ और वृद्धो मे प्राग्ज्ञान निकृष्टतर है । लगभग 20 प्रतिशत मृत्यु होती है ।

अधात्र का वौलवुलस—तीनो प्रकारो मे यह सबसे कम होता है । यद्यपि इसको अधात्र का वौलवुलस कहा जाता है, किन्तु उसमे अन्त्य शेपान्त्र और आरोही बृहदान्त्र भी ग्रस्त होते है। आरोही बृहदान्त्र योजनी और अतिगतिशील अधात्र दोनो दशाये इस रोग की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है और अकस्मात् बल लगाने से रोग का प्रारम्भ हो जाता है । रोग अधिकतर बालको और प्रौढ

व्यक्तियो मे होता है। यहा मरोड (twist) घडीवत् (clockwise) होती है।

लक्षण तीव्र, निम्न क्षुद्रान्त्र अवरोध के समान होते है। अधान्त्र प्रसरित, तना हुआ और बाईं ओर को विस्थापित होकर नाभि के पास पहुँच जाता है। नाभि प्रदेश मे सूजन होती है और दक्षिण श्रोणिफलक खात रिक्त प्रतीत होता है। वेध होने पर पर्युदर्या-शोथ शीघ्र प्रारभ हो जाता है। एक सामान्य एक्स-रे चित्र मे उदर के मध्य मे वडी गोल गैस की छाया दीखती है जो अधान्त्र की दर्शक है, कई तरल स्तर भी दीखते हैं। दूरस्थ बृहदात्र सिकुडा हुआ दीखता है।

चिकित्सा तत्काल उदरछेदन है। आत्र के जीवनक्षम (viable) मालूम होने पर वौलवुलस को खोला जाता है। पुनरावृत्ति के अधिक होने के कारण अर्धवृहदात्रोच्छेदन का परामर्श दिया गया है। आत्र के कोथयुक्त होने या रोगी के अतिक्षीण होने पर मिकुलिज शस्त्रकर्म या बाह्यकरण करना आवश्यक हो सकता है।

प्रत्यावर्ती वौलवुलस (recurrent volvulus)

वौलवुलस की पुनरावृत्ति बहुत होती है, वह सबसे अधिक अधान्त्र प्रकार मे और सबसे कम क्षुद्रात्र वौलवुलस मे होती है। शस्त्रकर्म के पश्चात् तुरन्त से लेकर कई वर्ष पश्चात् तक पुनरावृत्ति हो सकती है। इसके लिये कई प्रकार के शस्त्रकर्मो का विधान किया गया है, किन्तु उनमे से कोई भी पूर्ण सफल नही हुआ है। आक्रान्त खड का उच्छेदन, यदि सम्भव हो, सर्वोत्तम चिकित्सा है।

पित्ताश्मरी आत्रावरोध (gallstone ileus)

भारत मे पित्ताश्मरी आत्रावरोध का विरल कारण पाई गई है। उसका निदान विलम्बित या कभी-कभी न होने के कारण तथा रोगियो की दशा प्राय क्षीण होने से उसका प्राग्ज्ञान गभीर होता है।

उसका कारण अन्त्य शेषात्र मे पित्ताश्मरी की उपस्थिति होती है। व्रणोत्पत्ति से प्रथम पित्ताशय ग्रहणी से जुड जाता है और फिर व्रण अधिक गहरा होकर दोनो के बीच मार्ग वना देता है जिसमे होकर पित्ताश्मरी पित्ताशय से ग्रहणी मे आ जाती है और वहा से यात्रा करती हुई, और अपने आकार को वढाती हुई, शेषात्र के अन्त पर पहुच कर वहा अटक जाती है। शेषात्र मे यह व्रणोत्पत्ति की क्रिया इतनी धीमी होती है कि उससे कोई लक्षण नही उत्पन्न होते।

रोगियो के प्राय स्थूल होने के कारण आध्मान प्रतीत करना कठिन होता है। एक उदर के साधारण एक्स-रे चित्र मे बहुतरलस्तर तथा अश्मरी, यदि वह कैल्सियममयुक्त है तो, दिखाई देगी।

चिकित्सा

प्रारभ मे लेवीन (levine) या मिलरएवट नली द्वारा आत्र विसम्पीडन और अत शिरीय तरल तथा विद्युदपघट्यो की पूर्ति की जाती है। शस्त्रकर्म, द्वारा पित्ताश्मरीहरण जितना शीघ्र हो सके, करना उचित है। इस रोग मे मृत्यु बहुत होती है जिसके मुख्य कारण रोगी की क्षीण दशा, निदान मे विलम्ब और इन रोगियो मे हृदय-फुप्फुस सम्बन्धी उपद्रवो की प्रवृत्ति है। यदि पित्ताशय मे बडी अश्मरिया हो तो कुछ समय पश्चात् पित्ताशयोच्छेदन करना उचित है।

अनुतीव्र और चिरकारी आन्त्रावरोध
(Sub-acute and Chronic Intestinal Obstruction)

क्षुद्रान्त्र के अनुतीव्र और चिरकारी अवरोधो का कारण साधारणतया यक्ष्माजन्य और पर्युदातर आसजन होते है। अवरोध की स्थिति प्राय अत्य शेपान्त्र मे होती है। अतिविरल अवसरो पर प्रादेशिक शेपान्त्रशोथ (regional ileitis) भी कारण होता है। बृहदान्त्र मे चिरकारी आन्त्रावरोध का कारण वलय (ring) प्रकार का कार्सिनोमा होता है।

अनुतीव्र या चिरकारी आन्त्रावरोध तीव्र रूप ले सकता है और तब उसको 'चिरकारी-पर-तीव्र' (acute on chronic) प्ररूप कहा जाता है। यह परिवर्तन रोग के बढने, शुष्कमल (सुद्दे) के अन्तर्घट्टन, अथवा आन्त्रसकीर्णता पर शल्य के अटक जाने से होता है, वह आन्त्रान्त्रप्रवेश से भी सकीर्णन के स्थान पर प्रारभ हो सकता है। चिरकारी आन्त्रावरोध मे कोष्ठबद्धता, वमन, और उदर-आध्मान के समय-समय पर आक्रमण होते रहते है। बृहदान्त्र विक्षति मे बारी-बारी मे कोष्ठबद्धता और कूट (spurious) प्रवाहिका के दौरे होते है जो सकीर्णन से ऊपर मलजन्य व्रणोत्पत्ति का परिणाम होते है।

जब चिरकारी अवरोध तीव्र आन्त्रावरोध हो जाता है तो लक्षण तीव्र हो जाते है और आन्त्रवेध (perforation) हो सकता है जिसका फल पर्युदर्याशोथ होता है।

एक सामान्य उदर के एक्स-रे चित्र मे बहुतरलस्तर दीखते है। बेरियम

प्रयोगाहार द्वारा अवरोध की स्थिति का ज्ञान करने का प्रयत्न भयप्रद है। वह तीव्र अवरोध उत्पन्न कर सकता है।

बृहदान्त्र मे अवरोध की स्थिति का निश्चय आवश्यक है। वह बृहदान्त्र छिद्रीकरण के आयोजन मे सहायक होता है। सिगमोइडोस्कोपी तथा पतले बेरियम विलयन को न्यून दाब मे प्रविष्ट करने से अवरोध की स्थिति का पता चल सकता है।

चिकित्सा – प्रथम जठरान्त्र आचूषण तथा तरल, ग्लूकोज और विद्युदपघट्यो का अंत शिरीय मार्ग द्वारा आधान किया जाता है। तब सामान्य सर्जरी के सिद्धान्तो के अनुसार चिकित्सा का आयोजन करना उचित है। एक एकल (single) क्षयजन्य सकोर्णन का उच्छेदन करके आन्त्र की निरन्तरता को फिर से स्थापित करना चाहिये। आन्त्र के विस्तृत भाग मे सकीर्णनो के फैले होने से, शरीरक्रिया की सभाव्य हानि के कारण यदि उच्छेदन को अनुपयुक्त समझा जाय, तो पार्श्व-पथ कर कर्म करना उचित है। निम्न शेषान्त्र या दक्षिण बृहदान्त्र के क्षतो मे दक्षिण अर्धबृहदान्त्रोच्छेदन आदर्श चिकित्सा है।

क्षुद्रान्त्र मे चिरकारी-पर-तीव्र अवरोध हो जाने पर उपर्युक्त आयोजनो द्वारा रोगी को तीव्र अवस्था मे पार कराने का उद्योग करना चाहिये। उनके सफल होने पर कुछ समय पश्चात् कारण की उन्मूलक चिकित्सा की जाय। यदि उनसे सफलता न हो तो आपत्काल सर्जरी करना आवश्यक है।

बृहदान्त्र मे चिरकारी-पर तीव्र अवरोध होने पर बारम्बार एनीमाओ से शुष्कमल या सुद्दे के हटने से अथवा आन्त्रान्त्रप्रवेश के पुन पुस्थापन (reduction) से अवरोध दूर हो सकता है। यदि ऐसा हो, तो आन्त्र और रोगी को भली प्रकार तैयार करने के पश्चात् एक बार मे क्षत का उच्छेद किया जा सकता है। एनीमा के सफल न होने पर, तीव्र लक्षणो के शमन के लिये, प्रारभिक निकटस्थ (proximal) बृहदान्त्रछिद्रीकरण किया जाता है और उसी समय अर्बुद की शस्त्रकर्मयोग्यता का अनुमान भी कर लिया जाता है। शस्त्रकर्मयोग्य होने पर दो-तीन सप्ताह पश्चात् बृहदान्त्रछेदन (colotomy) किया जा सकता है।

केवल अत्यन्त दारुण अवस्था पर 'अंध' अधान्त्रछिद्रीकरण (blind coecostomy) करना चाहिये।

●

१०

मलाशय और गुद नलिका
(Rectum and Anal Canal)

ए० ई० डे० सा (A E DE SA)

शरीर-रचना (Anatomy)

मलाशय

मलाशय त्रिकास्थि के तीसरे खड पर प्रारभ होता है। ऊपर वह श्रोणि-वृहदात्र से मिला हुआ है और नीचे गुदनलिका मे खुलता है। वह श्रोणि के वक्र (curve) का अनुसरण करता है और अपने मार्ग मे प्रथम कुछ दक्षिण को और फिर वाम की ओर विचलित हो जाता है और फिर मध्य मे आ जाता है। इस सर्पिल वक्र के कारण समस्त आत्रभित्ति का अन्तर्वलन (invagination) हो जाता है और वे शैल्फ (shelf) से बन जाते है जो हौस्टन कपाटिकाये (Houston's Valve) कहलाती हैं। वे गुददर्शन (proctoscopy) पर अर्धचन्द्राकार पुटक के समान भली प्रकार दीखती है, एक दक्षिण ओर सामने, पर्युदर्या के परावर्तन (reflection) के स्तर पर है और दो वाम ओर, एक इससे ऊपर और दूसरी उससे नीचे स्थित है।

श्रोणिवृहदात्र के अतिम दो-तीन इच भाग को मलाशय-अवग्रह (recto-sigmoid) भी कहा जाता हे, क्योकि उसका रक्तसचार, लसीका-सवहन आदि मलाशय ही के समान है।

सर्जरी की दृष्टि से मलाशय श्रोणि-डायाफ्राम तक विस्तृत है जहाँ से गुद-नलिका प्रारम्भ होती है। किन्तु आकृत्यनुसार (morphologically) वह आभ्यन्तर सवरणी (internal sphincter) की अधोधारा तक चला जाता है।

मलाशय के अग्र और पार्श्व पृष्ठो का ऊर्ध्व तृतीयांश पर्युदर्या से ढका रहता है, उसके पश्च ओर एक लघु अनावृत क्षेत्र छूट जाता है। यह अनावृत क्षेत्र नीचे को चौड़ता जाता है, यहाँ तक कि मध्य भाग मे पर्युदर्या केवल अग्र ओर रह जाती है, निम्न तृतीयांश पूर्णतया पर्युदर्याहीन होता है।

पुरुषो मे पर्युदर्या अग्र ओर मलाशय से मूत्राशय के आधार पर चली जाती है जिससे मलाशय-मूत्राशय कोष्ठ (rectovesical pouch) बनता है और स्त्रियो मे वह योनि की पश्चभित्ति पर जाकर डगलस कोष्ठिका (pouch of Douglas) बनाती है। यह पर्युदर्या परावर्तन मूलाधार से पुरुष मे तीन इंच और स्त्रियो मे सवा दो इंच ऊपर होता है। इधर, कुछ काल से गुदनलिका की अंतरापेशी ग्रन्थियो की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है, जिनका गुदा और मलाशय मे पूयस्रवन का स्रोत होना संभावना से बाहर नही है।

गुदनलिका (anal canal) श्रोणि-उदरावकाश पर मलाशय के अन्त से प्रारम्भ होने वाली डेढ़ इंच की नलिका है और नीचे तथा पीछे जाकर गुदद्वार पर अंत होती है। रिक्त होने पर वह केवल एक अग्रपश्च झिरी होती है जिसको संवरणियां (sphincters) घेरे रहती है। गुदनलिका के ऊर्ध्वार्ध मे ऊर्ध्वाधर श्लेष्मिक पुटक (vertical folds) बने हुए है जिनके निम्न प्रान्त अनुप्रस्थ पुटको द्वारा आपस मे जुड़े रहते है। ये गुद-कपाटिकायें (anal valves) कहे जाते है और यह क्षेत्र कंकतिका-क्षेत्र (pectinate area) कहलाता है। गुद-कपाटिकाओ से ऊपर का क्षेत्र स्तम्भाकार उपकला से आस्तरित है। ऊर्ध्वाधर श्लेष्मल पुटको (मौर्गेगनी के स्तंभ) मे ऊर्ध्व मलाशयवाहिकाओ की शाखायें रहती है।

कपाटिकाओ से नीचे श्लेष्मला परिवर्तनी उपकला से आस्तरित है और अन्तरापेशी पट के नीचे त्वचा या उसके अनुबन्ध उसका आस्तर बनाते है।

मलाशय और गुदनलिका का पेशीसमूह

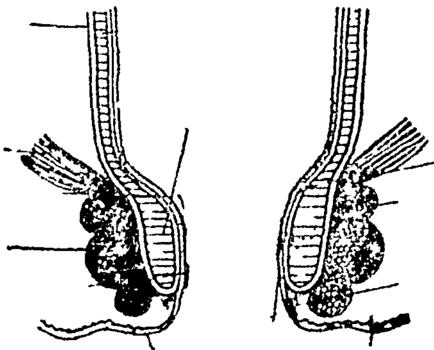
मलाशय मे संपूर्ण बाह्य अनुदैर्घ्य पेशीस्तर है जो घनीभूत होकर अग्र और पश्च बन्ध बन गया है। वह, आभ्यंतर संवरणी के बाहर, गुदनलिका पर, सतत चला जाता है और दो भागो मे विभक्त हो जाता है, बाह्य भाग आसन-मलाशय-खात मे होकर जाता है जिसको वह मुख्य आसन-मलाशय-खात (ischiorectal fossa) और परिगुदा-अवकाश (perianal space) मे विभक्त करता है। उसका अन्तर भाग 'गुद अन्तरापेशी पट' (anal intermuscular septum) कहा जाता है और आभ्यन्तर संवरणी को उपरिस्थ बाह्य संवरणी

(superficial external sphincter) से पृथक् करता है। भीतर वह श्लेष्मला-त्वचा (mucocutaneous) से सगम-जुडा हुआ है और वहाँ से अरीय प्रकार (radiating) त्वचा के नीचे त्वचा-भगिका (corrugator cutis) के रूप मे फैल जाता है। उससे गुदद्वार की अभिलक्षक आकृति बनती है।

मलाशय की वृत्ताकार पेशी मलाशय तथा गुदनलिका के ऊर्ध्वार्ध को पूर्णतया आवृत किये है और हौस्टन कपाटिकाओ की रचना मे भाग लेती है। डायाफ्राम के नीचे यह पेशी मोटी होकर आभ्यन्तर सवरणी (internal sphincter) बन जाती है। यह अनैच्छिक पेशी है।

अभी तक बाह्य सवरणी को तीन पृथक् पेशिया माना जाता था, किन्तु अब वे एक ही पेशी के तीन भाग माने जाते है।

(1) **अधस्त्वक् बाह्य सवरणी (subcutaneous external sphincter)** एक अधस्त्वक् पेशी वलय है, किसी अस्थि पर नही लगती है (2) **उपरिस्थ बाह्य सवरणी (superficial external sphincter)** जो पीछे अनुत्रिकास्थि पर गुदानुत्रिक राफे (anococcygeal raphe) द्वारा लगी हुई है और सामने मूलाधार पिड (perineal body) मे अन्त होती है। (3) **गभीर बाह्य अथवा गुद सवरणी (deep external or anal sphincter)** उपरिस्थ सवरणी से ऊपर स्थित है। पीछे की ओर दोनो ओर के तन्तु मिले रहते हैं, आगे की ओर कुछ ततु दूसरी ओर के ततुओ से मिलकर आसनास्थि पर लगते है।

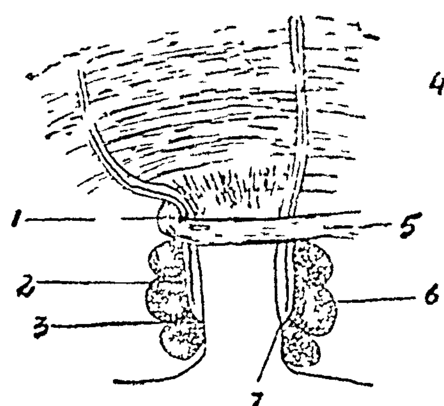


चित्र 37 गुदनलिका के अनुप्रस्थ परिच्छेद का आरेख (diagam)

गुदउन्नमनिका (lavator ani)

इस पेशी के तीन भाग है। **श्रोणिफलकानुत्रिका (iliococceygeus)** आसन कटक के श्रोण्यभिमुख पृष्ठ और 'श्वेत रेखा' (white line) से उदय होती है और पीछे और नीचे को जाकर गुदानुत्रिक राफे और अनुत्रिकास्थि पर लगती है। **जघनानुत्रिका (pubococceygeus)** जघनास्थि और श्वेत रेखा के अग्र भाग

से उदय होकर श्रोणिफलकानुत्रिका को अग्रतः बाहिनी के पीछे जाकर दूसरी
ओर की पेशी से मिलकर त्रिकास्थि के अन्तिम भाग और अनुत्रिकास्थि पर
निवेश करती है। इसके कुछ सूत्र मलाशय के पीछे गोफण बनाते हैं जो बाह्य
संवरणी के गभीर भाग से ऊपर स्थित हैं। यह भाग जघनमलाशयिका
(puborectalis) कहा जाता है। यह पेशी आभ्यन्तर संवरणी के निम्नतर
भाग, गभीर बाह्य संवरणी तथा मलाशय के अनुदैर्घ्य पेशियों से मिलकर
मिलिगन और मार्गन (Millingan, Margan) का गुदमलाशय-वलय
(anorectalring) बनाती है।



चित्र 38 गुदनलिका के पेशीसमूह का आलेख जिसमे जघनमलाशयिका (puborectalis) की आलम्बन क्रिया (sling action) दिखाई गई है।

धमनिया

मलाशय मे मुख्यतया ऊर्ध्व मलाशय-धमनी (superior rectalartery) रक्त लाती है। वह अधोआन्त्रयोजनी धमनी ही का प्रलम्बन है जो तीसरे त्रिक खड पर दक्षिण और वाम शाखाओ मे विभक्त हो जाती है। दक्षिण शाखा के फिर अग्र तथा पश्च, दो विभाग होते है जो मलाशय-भित्ति मे प्रविष्ट होकर प्रत्येक मार्गेग्नी के स्तम्भ मे एक अन्त्य शाखा (terminal branch) भेजते है।

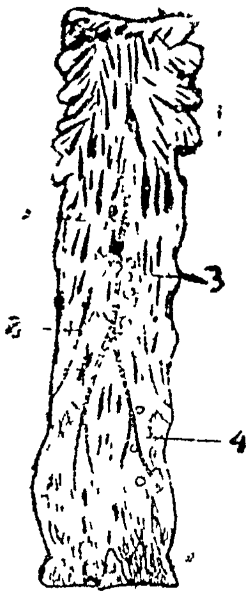
एक वडी वाम पार्श्व शाखा और एक दक्षिण-पश्च तथा एक दक्षिण-अग्र शाखाये आभ्यन्तर अर्श की 3,7 और 11 वजे की स्थिति के लिये उत्तरदायी है। मध्य मलाशय-धमनिया आभ्यन्तर श्रोणिफलक-धमनी के अग्र विभाग से निकलती है और पार्श्व-स्नायुओ मे होकर अभिमध्य ओर जाती हैं जहाँ वे मलाशय के पेशीस्तर मे रक्त पहुचाती है। वे आपस मे एक-दूसरे से तथा ऊर्ध्व और अधोमलाशय-धमनियो से समिलन करती है। अधोमलाशय-धमनिया आभ्यन्तर गुह्य (internal pudendal)-धमनियो की शाखाये है। वे गुह्य-

नलिका की अन्तर-भित्ति को वेधती है, आसन-मलाशय खात को पार करती हैं और बाह्य तथा आभ्यन्तर संवरणियों, गुदनलिका और गुद-उपान्त (margin) मे रक्तसंचार करती हैं।

शिरायें—मार्गेग्नी के स्तम्भो मे जो शिराये प्रारम्भ होती हे वे मिलकर ऊर्ध्व मलाशय शिरा बनती हैं जो ऊपर जाकर अधोआन्त्रयोजनी शिरा बन जाती है। इन शिराओ मे कपाटिकाय नही होनी और मलाशय की भित्ति के सम्पीडन से उनमे रक्त-संकुलन (congestion) हो जाता हे। मध्य मलाशय-शिरा छोटी है और धमनी के साथ जाकर आभ्यन्तर श्रोणिफलक-शिरा मे खुलती है।

लसीका-संवहन

गुद-कपाटिकाओ से ऊपर मलाशय के श्लेश्मिक और अधोश्लेष्मिक स्तरो मे लसीका-जालिकाये (lymph plexuses) स्थित ह, उनकी लसीका-वाहिकाये परामलाशय (pararectal)-लसीका-पर्वों मे लसीका ले जाती है। जहाँ शाखाये ऊर्ध्व मलाशय-शिरा मे मिलती है वहाँ पर्वो का दूसरा समूह स्थित है। जहाँ ऊर्ध्व मलाशय-शिरा अधो-आन्त्रयोजनी शिरा का रूप ले लेती है वहाँ पर्वों का तीसरा समूह है। गुदनलिका की लसीका वाहिकाये, जो गुद-कपाटिकाओ से नीचे स्थित हैं, वे लसीका-पर्वों के क्षैतिज वंक्षण-पर्वशृंखला (horizontal inguinal nodes) मे लसीका ले जाती है।



चित्र 39 मलाशय से लसीका जिन पर्वो मे जाती हे वे आरेख मे दिखाये गये है।

मलाशय और गुदनलिका का परिवर्धन [illegible]

इनके सबंध मे निम्नलिखित दो मत ,

प्रथम मतानुसार [illegible] (hind-gut) [illegible] सामान्य अवस्कर (common cloaca) [illegible] end) की ओर [illegible] किरीटी पट (coronal septum) [illegible] (ventral, dorsal) प्रदेशों म [illegible] भाग से मिलकर मलाशय बनाता है। [illegible] (urogenital sinus) [illegible] है।

एक अवनमन—गुदगर्तिका (analpit) [illegible] सामने बनता है जो गुद (आद्यगुद) [illegible] है। [illegible] होकर आद्यगुद [illegible] से सम्पर्क [illegible] है। [illegible] जाती है।

दूसरा मत, [illegible] और [illegible] है, [illegible] कि मलाशय के बनने मे अवस्कर कोई भाग नहीं लेता, [illegible] पृष्ठ ओर के पश्चांत्र के पुच्छक-अभिगमन (caudal migration) से बनता है। पुच्छक-अभिगमन मूत्राशय या पुरःस्थ (bladder or prostate) मूत्र-मार्ग के समतल पर [illegible] है जिससे मलाशय [illegible] हो जाता है। पश्चांत्र का पुच्छक-अभिगमन न होने से मलाशय न बनेगा। अभि-गमन के कुछ दूर समाप्त हो जाने पर अद्वार गुद (imperforate anus) बनता है। नीचे की ओर अभिगमन न होने से अवस्कर और पश्चांत्र के बीच नालव्रण (fistulae) बन जाते है।

विरूपागता के प्ररूप (types of malformation)

सहज विरूपागता दो प्रकार की होती है। अन्तर्रोधी (obliterative) और सनालव्रणी (fistulous)।

(1) अन्तर्रोधी अथवा आंशिक अन्तर्रोधी विरूपागतायें (obliterative or partial obliterative deformities) ये होती है (क) गुदसंकीर्णता (anal stenosis), (ख) अद्वारगुद (imperforate anus) कलाकृत डायाफ्राम (membranous diaphragm) सहित, और (ग) उच्च मलाशय और गुदद्वार की अनुपस्थिति (घ) गुदगर्तिका (analpit) और उच्चमलाशय किन्तु दोनो के

वीन्त्र के मार्ग की अनुपस्थिति ।

(2) **सनालव्रणी विरूपागतायें (fistulous malformations)** ये है पुरुषो मे (क) मूत्राशय के निमुज मे, खुलने वाला, (ख) पुरस्थ या कलामध्यमूत्रमार्ग (membranous urethra) मे खुलने वाला (ग) मूलाधार (perenium) मे खुलने वाला , स्त्रियो मे, (क) योनि के पश्च फार्निक्स या पश्च भित्ति मे खुलने वाला (ख) फौर्शेट (fourechette) मे खुलने वाला तथा (ग) मूलाधार पर खुलने वाला ।

लक्षण और निदान

अवरोधक विरूपताओ के लक्षण जन्म के पश्चात् मिकोनियम त्याग न करना, उदर का आध्मान और वमन है । पूर्ण अवरोध होने पर आध्मान और वमन के कारण शीघ्र निदान हो जाता है । नालव्रण होने पर आध्मान न होने के कारण निदान का शीघ्र न होना या कुछ समय तक इस दशा की ओर ध्यान ही न जाना सम्भव है ।

निरीक्षण मे निम्न मे से कोई एक दशा मालूम हो सकती है, (क) गुद-अवनमन की अनुपस्थिति (ख) गुद-अवनमन के साथ मलाशय का मूलाधार पर उभार , (ग) नालव्रण की दशा मे मूलाधार पर एक छिद्र अथवा कन्या मे योनि के फार्निक्स मे एक छिद्र जिससे दावने पर मिकोनियम निकलता हो ; और (घ) पुरस्थ या कलामध्यमूत्रमार्ग मे छिद्र होने पर मिकोनियम-रजित मूत्र का निकलना ।

एक्स-रे परीक्षा द्वारा गुद-अवनमन से मलाशय की दूरी मालूम हो सकती है । सीस (lead) मे मूलाधार पर गुद-अवनमन की स्थिति पर एक चिह्न बना दिया जाता है और शिशु का खडी स्थिति मे किन्तु सिर नीचे और टागे ऊपर करके एक्स-रे लिया जाता है । मलाशय की गैस की छाया से सीस से बनाये चिह्न की दूरी मलाशय और मूलाधार के बीच की दूरी है ।

इस परीक्षण मे भी दो आपत्तिया है गैस जन्म के 16-20 घटे पश्चात् मलाशय के अन्त तक पहुचती है । दूसरे मिकोनियम के बीच मे एकत्र होने से गैस अन्त तक नही पहुचेगी ।

चिकित्सा

साधारण गुद सकीर्णता मे बार-बार विस्फारण (dilatation) किया जाता है ।

अद्वार गुद में मूलाधार में उभार के स्थान पर एक स्वस्तिकाकार छेदन करके मलाशय को खोल देने के पश्चात् उसकी श्लेष्मिक कला को त्वचा के साथ सिया जाता है।

मलाशय के उच्च होने पर दो उपाय किये जा सकते हैं, (अ) तत्काल वृहदान-छिद्रीकरण अथवा (ब) उदरच्छेदन द्वारा मलाशयद्वार को मूलाधार पर आरोपित करना। इस वृहत् कर्म को करने से पूर्व मूलाधार का अन्वेषण कर लेना उचित है।

यदि शिशु छ पौंड से कम भार का हो तो वृहदान्त्र-छिद्रीकरण ही उत्तम है। यदि इससे अधिक और स्वस्थ हो तो दूसरा शल्यकर्म करना उचित है।

यदि उच्च मलाशय-थैली (rectal pouch) और असामान्य गुदनलिका हो तो उदर-मूलाधार-छेदन करके मलाशय को मूलाधार पर आरोपित किया जाता है। मलाशय से गुदनलिका को जोड़ने के प्रयत्न असफल होते हैं।

नालव्रण (fistulae) की चिकित्सा यह है। यदि मलाशय खंडांश मूलाधार से 1.5 सेमी० तक दूर है तो नालव्रण पथ का उच्छेदन करके उसको नीचे लाकर मूलाधार पर आरोपित किया जाय। यदि वह उससे ऊंचा है, तो उदर-छेदन द्वारा, नालव्रणपथ के छेदन के पश्चात्, मलाशयखंडांश को मूलाधार पर लाकर वहाँ आरोपित किया जाता है। जितनी सुगमता से शल्यकर्म किया जाएगा उतनी ही सफलता अधिक होगी। टांकों पर तनिक से तनाव से शल्य-कर्म निरर्थक हो सकता है।

नैदानिक परीक्षा और तत्सवधी अन्वेषण

मलाशय के रोगों के पांच प्रमुख लक्षण है (1) गुद द्वारा रक्त निकलना, (2) भ्रंश (prolapse), (3) वेदना (4) कण्डू (pruritis) और (5) श्लेष्मा-निस्राव।

परिनिरीक्षण और अंगुलि द्वारा परीक्षा

परिनिरीक्षण से कितनी ही गुदमलाशय-दशायें स्पष्ट हो जाती है। निरीक्षण के लिये वामपार्श्व (left lateral)-स्थिति उत्तम है। विदर (fissures), नालव्रणो के छिद्र, त्वक् रोग, अर्शभ्रंश, गुदनलिका की दुर्दमता और विद्रधियो का केवल निरीक्षण ही से निदान हो जाता है।

वेदनायुक्त दशाओ और आकर्ष के अतिरिक्त सब गुदमलाशयी (anorectal)

दशाओं में अंगुलिपरीक्षा करनी चाहिये। वामपार्श्वस्थिति में रोगी को रखकर, रबड के दस्ताने या अंगुलित्राण (finger stall) को चढाकर तर्जनी को गुदद्वार पर रखकर और धीरे-धीरे दबाकर उसको प्रविष्ट किया जाय। इससे रोगी अंगुलि-प्रवेश का प्रतिरोध नहीं करेगा। गुद-आकर्ष (spasm) अथवा उसका ढीलापन प्रतीत हो जाएगा तथा सकिरण (stricture), घनास्रित अर्श (thrombosed piles), विद्रधियां, व्रण, अथवा भगदर का आभ्यतर मुख आदि दशायें अंगुलि-परीक्षा से मालूम हो जाएगी। पुरस्थ, मूत्राशय, योनि और गर्भाशय ग्रीवा के शोथ आदि का भी पता लग जाएगा।

अंगुलि बाहर निकालते समय दूसरे हाथ की तर्जनी और अंगुष्ठ से परिगुद-क्षेत्र (perianal area) को चौडा कर उसका भी भली-भाँति निरीक्षण करके सक्रमण, दुर्दमता अथवा नालव्रणपथ के चिह्नों को खोजना चाहिये।

कभी-कभी दक्षिण-पार्श्व स्थिति मे परीक्षा करना भी लाभदायक होता है। श्रोणिमलाशय (pelvirectal)-सगम पर या श्रोणिवृहदान्त्र की दुर्दम क्षति इस स्थिति मे अंगुलि को भली-भाँति प्रतीत होती है।

प्रोक्टोस्कोपी (मलाशय दर्शन) और **सिगमाइडोस्कोपी** (अवग्रह वृहदात्र दर्शन)।

प्रोक्टोस्कोपी करने के यत्र को प्रोक्टोस्कोप कहते है। उससे मलाशय का निरीक्षण किया जाता है। उसके पूर्व अंगुलि द्वारा मलाशय परीक्षा अवश्य कर लेनी चाहिये। रोगी को पूरी तरह बाई ओर की करवट से लिटाकर उपयुक्त आकार के यन्त्र को, उस पर स्नेहक (lubricant) को लगाकर धीरे-धीरे, बिना रोगी को वेदना पहुचाये, गुदद्वार द्वारा प्रविष्ट किया जाता है। पहले यन्त्र को नाभि की ओर घुमाते है, तत्पचात् त्रिकास्थि की ओर। यदि मलाशय मे मल एकत्र न हो, तो एनीमा नहीं देना चाहिये, यदि रक्त या निस्राव उससे ऊपर से आ रहे है तो वे धुल जाएगे और ऊपर के क्षत की ओर ध्यान आकर्षित न होगा।

प्रसामान्य मलाशय-श्लेष्मिककला गुलाबी रग की होती है और उसमे अधोश्लेष्मिक रक्तवाहिकाओ का विशेष विन्यास दीखता है। प्रोक्टोस्कोपी से आभ्यतर अर्श, मलाशय के पौलिप, दुर्दम अर्बुद, व्रण और गुदनालव्रण (anal fistulae) के आभ्यतर मुख दीख सकते हे। प्रोक्टोस्कोप को निकालते समय आभ्यतर अर्शों का, उसकी अवकाशिका मे आकर, भ्रंश हो सकता है।

प्रोक्टोस्कोपी के पश्चात् रोगी की उदरपरीक्षा तथा सामान्य परीक्षा करनी चाहिये। उदर के परिस्पर्शन द्वारा यकृत का सिरोसिस (cirrhosis), सगर्भता

तथा श्रोणि-अर्बुदो को मालूम करना आवश्यक है, जो आभ्यतर अर्श का कारण हो सकते है । सबधी लसीका-पर्वो की भी सक्रमण या नवप्रसारण के निदर्शन के लिये परीक्षा करनी चाहिये ।

उच्च, मलाशयक्षतो के लिये सिगमाइडोस्कोपी सदा करनी उचित है । वह अस्पताल के बहिरग विभाग मे बिना सवेदनाहरण के की जा सकती है । इस परीक्षा को सदा करने से उच्च दुर्दम अर्बुदो का शीघ्र ही निदान हो जाता है ।

अर्श (Haemorrhoids or Piles)

अर्श गुदनलिका के भीतर और उसके चारो ओर की शिरा-स्फीति (varicosity) की दशा है । ऊर्ध्व मलाशय शिरा (superior rectal vein) की शाखाओ की यह दशा आभ्यतर अर्श और बाह्य मलाशय जालिका की शिराओ की दशा बाह्य अर्श कही जाती है ।

बाह्य अर्श (external haemarrhoids or piles)

बाह्य अर्श गुदद्वार पर या उससे बाहर होते है और त्वचा से आवृत रहते है । आभ्यतर अर्शो को श्लेष्मिक कला ढके रहती है । परिगुदाक्षेत्र मे सवेदी तन्त्रिकाओ की बहुलता के कारण तीव्र प्रकार के बाह्य अर्श वेदनाकर होते है । वे तीव्र और चिरकारी दो प्रकार के होते है ।

तीव्र बाह्य अर्श (acute external haemarrhoids)

वास्तव मे यह दशा तीव्र गुदरक्तसग्रह (हीमेटोमा) की है जो प्राय कठोरमल के त्याग के समय विस्फारित गुदशिरा के विदीर्ण होने से उत्पन्न होती है। अकस्मात् वेदना तथा गुदा के पार्श्व पृष्ठ पर पिंड बनने का इतिवृत्त सदा मिलता है । परीक्षा पर गुदा के परिसर पर एक गहरे नीले रग का तना हुआ उत्सेध पाया जाता है जो कोई उपद्रव न होने पर धीरे-धीरे सिकुडकर एक तान्तव फीते या टैग के समान रह जाता है ।

मुख्य उपद्रव दो है पृष्ठ पर व्रणोत्पत्ति जिससे रक्तातच (clot) स्वत निकल जाता है और सक्रमण, जिससे परिगुदा (perianal) विद्रधि तथा नाल-व्रण बन सकते है । इस दशा को भ्रश हुए आभ्यतर अर्श (prolapsed Internal pile) से पहिचानना आवश्यक है । उस पर श्लेष्मिक कला छाई रहती है, जब कि वाह्य अर्श त्वचा से ढका होता है ।

तीव्र बाह्य अर्श की चिकित्सा

यदि हीमेटोमा का शमन नही हो रहा हे तो उसका उच्छेदन सर्वोत्तम चिकित्सा है। उससे वेदना का तत्काल शमन हो जाता है और सक्रमण द्वारा उपद्रव भी नही होते। स्थानिक सवेदनाहरण मे यह क्रिया की जा सकती है। हीमेटोमा को दो मे विभक्त करके भीतर से आतचित रक्त को निकाल दिया जाता है। क्षत के किनारो को इस प्रकार काट दिया जाता है कि एक त्रिभुजाकार खुला हुआ क्षेत्र रह जाता है जिसका आधार गुदद्वार के किनारो से दूर होता है। इस क्षेत्र का कणिका-ऊतक से विरोहण होता है। क्षत के किनारो को मिलने नही दिया जाता, नही तो विदर (fissure) वन जाता है।

कई छोटे हीमेटोमा के मिलने से बना एक वडे हीमेटोमा या मध्यरेखा मे स्थित हीमेटोमा की शीत उपचार द्वारा शामक चिकित्सा की जाती है। पश्च मध्यरेखा के हीमेटोमा मे सर्जरी के पश्चात् चिरकारी विदर वनने की प्रवृत्ति होती है।

चिरकारी वाह्य अर्श (chronic external haemorrhoids)

ये तीव्र हीमेटोमा के सगठित होने से उत्पन्न त्वचा के टैग होते हे, अथवा गुदा का कण्डु (pruritis)-जन्य चिरकारी शोथ उसका कारण होता है।

चिकित्सा

इनकी चिकित्सा स्थानिक सवेदनाहरण मे उनका उच्छेदन करना है। शोथयुक्त हो जाने पर स्थान को स्वच्छ रखना और डस्टिग पाउडर से उनको शुष्क रखना लाभदायक होता है।

आभ्यतर अर्श (internal piles)—प्रत्येक मार्गेग्नी स्तभ मे शिराजालिका के अतिरिक्त ऊर्ध्व मलाशय-धमनी की एक अन्त्य शाखा रहती है। इस प्रकार प्रत्येक अर्श मे एक मध्यवर्ती धमनी और उसके चारो ओर एक शिरापुज होता है।

हेतुकी और विकृतिजनन
(Aetiology, Pathogenesis)

ये प्राथमिक या द्वितीयक हो सकते है। द्वितीयक प्रकार के अर्श का कारण मलाशय-कैन्सर, सगर्भ गर्भाशय, श्रोणि-अर्वुद, यकृत की सिरोसिस आदि हो

सकते है जिनके वे लक्षण मात्र होते है । वे मलाशय की शिराओ के रक्त के लौटने मे अवरोध के द्योतक होते है । प्राथमिक अर्शो का कारण अज्ञात है । आनुवशिकता से सबध हो सकता हे । ऊर्ध्व मलाशय-शिराओ मे कपाट नही होते जिससे मलाशय की पेशियो के सकोच द्वारा उनके दवने से उनमे रक्त एकत्र रह जाता हे । अधिकतर खडे रहने और चलने फिरने की कमी से रोग उत्पन्न हो सकता हे । कोष्ठवद्धता और मलत्याग मे वल करने से रोग की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ।

लक्षण

आभ्यतर अर्श का विशेप लक्षण मलाशय से रक्त निकलना है । मृदु रोग मे केवल मल पर रक्त लगा हो सकता है । रोग की उग्रतानुसार रक्त की वूदे निकल सकती है अथवा रक्तप्रवाह हो सकता है । वीच-वीच मे कुछ समय तक रक्त बन्द रहता है । कुछ रोगियो मे श्लेष्मायुक्त निस्राव हो सकता है । अथवा वल करने पर भ्र श हो जाता है । रक्त मलत्याग के पूर्व या पश्चात् निकल सकता है ।

निदान

विदर, नालव्रण, भ्र श, पौलिप आदि से पहिचानने के लिये निरीक्षण आवश्यक है । उपद्रवरहित अर्श अगुलि-परीक्षा द्वारा प्रतीत नही होते, किन्तु यह परीक्षा सदा करनी चाहिए। आतरिक अर्शो का प्रोक्टोस्कोपी द्वारा निदान हो सकता है, वे उसकी अवकाशिका मे उभर आते हे । प्राय वे 3,7 और 11 बजे की स्थिति मे मिलते है (वृषणकोश की वधनी या राफे 12 वजे पर स्थित मानी जाती है ।) उदर, हृद्वाहिकातन्त्र तथा सारे शरीर की सामान्य परीक्षा भी आवश्यक है ।

उपद्रव

तीव्र अरक्तता प्राय पाई जाती है जो वहुकाल से होने वाली रक्तहानि का परिणाम होती है हीमोग्लोविन स्तर 4 ग्राम प्रति 100 मिलीलिटर रक्त या इससे भी कम होता है ।

वहुकालिक रोगियो मे, विशेपकर वृद्धो मे, जिनमे सवरणी ह्रास (sphincteric atony) होता है, भ्र श (prolapse) भी पाया जाता है । वह स्वय पुन स्थापित हो सकता है अथवा हस्तकोशल की सहायता आवश्यक होती है।

घनास्रता तथा स्लफ होना (thrombosis, sloughing) भ्रंश (prolapse) के अनुगम (sequelae) हो सकते है। भ्रंश हुए अर्शो का पुन स्थापन न होने पर शोफयुक्त हो जाने से उनका पुन स्थापन (reduction) और भी कठिन हो जाता है। इसके सवरणी का आकर्ष हो सकता है जिससे रक्तसचार अवरुद्ध होकर अर्श स्लफ हो (गल) जाएगा और सक्रमण प्रवेश करेगा। केवल घनास्रता हो सकती है जिससे अर्श तान्तव-पौलिप बन सकता है। अर्श के सक्रमित होने से परिगुदा अथवा अधोश्लेष्मिक विद्रधि बन सकती है।

प्रतिहारणी पूयरक्तता (portal pyaemia) विरल उपद्रव है।

चिकित्सा की दृष्टि से अर्श तीन डिग्रियो के माने जाते है। प्रथम डिग्री के अर्श से केवल रक्त निकलता है, अर्श का भ्रंश नही होता। दूसरी डिग्री के अर्शो का भ्रंश होता है, किन्तु वे स्वत गुदनलिका मे लौट आते है। तीसरी डिग्री के अर्शो को भ्रंश के पश्चात् हस्तव्यापार से लौटाना पडता है। अतएव चिकित्सा अर्श की डिग्री पर निर्भर करती है।

प्रथम डिग्री के अर्श मे कोष्ठबद्धता को द्रवपैराफिन (liquid paraffin) द्वारा दूर करके नित्य मलत्याग की आदत डालनी चाहिए। यदि इससे अभीष्ट सफलता न मिले तो बादाम के तेल मे 5 प्रतिशत फिनोल के घोल के 5-10 मिलीलिटर का अर्शपिड से ऊपर की ओर उसकी ग्रीवा मे, अधोश्लेष्मिक क्षेत्र मे इजैक्शन दिया जाता है। सात दिन के अन्तर से तीन बार ग्रीवा के भिन्न क्षेत्रो मे इजैक्शन देने चाहिये। इस चिकित्सा के फल अनिश्चित है। प्रक्रिया के अनुपयुक्त होने से उससे उपद्रव भी हो सकते है। इजैक्शन से श्लेष्मा यद्यपि तन जाती है, वह रक्तहीन श्वेत न दीखनी चाहिए, नही तो स्लफ बनकर व्रणोत्पत्ति हो सकती है।

द्वितीयक अर्शो मे, विशेषकर सगर्भता के प्रारम्भिक काल मे तथा शस्त्रकर्म के अयोग्य रोगियो मे इजैक्शन-चिकित्सा की जाती है।

तीव्र दूसरी तथा तीसरी डिग्री के रोगियो मे शस्त्रकर्म करना आवश्यक है।

आभ्यतर अर्श की शस्त्रकर्म द्वारा चिकित्सा

प्रारभिक मलाशयशुद्धि के पश्चात् रोगी मे निम्न मेरुदड-सवेदनाहरण (low spinal anaesthesia) करके उसको लिथोटोमी स्थिति मे लिटाया जाता है। तीन प्राथमिक अर्शो मे से प्रत्येक को (3,7 और 11 बजे की स्थिति मे) धमनी सदश से पकडकर, 3 की स्थिति के अर्श से प्रारम्भ करते है। सर्जन

गुदा मे एक अगुलि रखकर उस पर अर्श को आश्रित करके दूसरे हाथ से उस अर्श पर की परिगुदा त्वचा मे तीव्र नोक वाली कैंची से V आकार का छेदन करता है। गहरा व्यवच्छेदन करके अनुदैर्घ्य पेशीतर के कटे अन्त्य वितान (terminal expansion) और आभ्यतर सवरणी के निम्न अन्त को स्पष्ट किया जाता है। तब लिनिन सूत्र या कोमिक कैटगट के पारवेधक टाके (transfixation suture) को एक गोल सूचिका द्वारा पेशी और अर्शवृन्त मे से निकालकर वाध दिया जाता है। सुरक्षा के लिए एक और टाका लगा दिया जाय। शेष अर्शो को भी इसी प्रकार वाधा जाता है। उनके वीच मे पर्याप्त त्वचा को छोड देना चाहिये। तब प्रत्येक अर्श पर वधन को लगभग आधे इच आगे काट दिया जाता है और स्थूणको (stumps) को दवा दिया जाता है। यदि त्वचा के कोई लटकते हुए टैग हो तो उनको भी काट देना उचित है। एक रवड की आत्र वायुनलिका को मलाशय मे प्रविष्ट करके उसके वाहर वेसलीन से भीगा गॉज भर देना चाहिए। व्रणोपचार (ड्रेसिग) को T-पट्टी अपने स्थान मे रखती है।

शस्त्रकर्मपश्च देखभाल—वेदनाशमन के लिए मार्फीन कई वार दी जा सकती है। 48 घटे पश्चात् नलिका और ड्रेसिग को निकालकर जैतून (ओलिव) तेल का एनीमा दिया जाता है। नितम्व-स्नान (hipbath) देने के पश्चात् नित्य एक बार ड्रेसिग किया जाय। सात दिन पश्चात् अगुलि द्वारा गुदा का विस्फार प्रारभ करके उसको नित्य एक वार करते रहना चाहिए। लगभग 12वे दिन टाके स्वय ही निकल आते है।

शस्त्रकर्मपश्चात् उपद्रव

मूत्रावधारण (retention of urine)—यह सबसे अधिक होने वाला उपद्रव है और मूत्रमार्गसवरणी के आकर्ष से उत्पन्न होता है। उदर पर गरम पानी की थैली रखने या कार्वाकोल (carbachol) के इजैक्शन से दूर हो जाता है।

प्रतिकारक रक्तस्राव (reactionary haemorrhage)

प्राय परिगुदा क्षत से रक्त आता है। कभी-कभी अर्श के वृन्त पर से टाके के फिसल जाने से इतना रक्त निकल सकता है कि रक्ताधान आवश्यक हो जाय। सवेदनाहरण करके वृन्त को फिर से वाधना आवश्यक है।

द्वितीयक रक्तस्राव (secondary haemorrhage)

यह आजकल असाधारण है। यह सातवे से दसवे दिन पर संक्रमण और स्लफ के पृथक् होने के कारण होता है। गरम लवण विलयन प्रक्षालन द्वारा रक्त के थक्के से पृथक् होने के पश्चात् वैसलीनयुक्त गॉज से लिपटी रबड-नलिका को रखकर ड्रेसिंग मे बहुत सी रुई के प्रयोग के पश्चात् T-पट्टी बाध दी जाती है। 48 घटे पश्चात् रबड-नली निकाली जाती है।

निकुचन (stricture)—यह संक्रमण का परिणाम होता है या अर्श वृन्त को बहुत ऊपर निकालने और बाधने से होता है। शस्त्रकर्म पश्चात् अगुलि द्वारा विस्फारण करने पर यह उपद्रव असाधारण होने पर उपयुक्त आकार के मलाशय-विस्फारको द्वारा उसकी चिकित्सा अपेक्षित है।

मलाशय का भ्रंश (Prolapse of Rectum)

मलाशय के भ्रंश मे मलाशय की श्लैष्मिक कला अथवा समस्त भित्ति गुद-द्वार मे होकर बाहर निकल आती है। यह बच्चो मे तथा वृद्धो मे अधिक होता है। भ्रंश आंशिक अथवा पूर्ण हो सकता है। आंशिक भ्रंश मे केवल श्लैष्मिक कला निकलती है। भ्रंश हुए आभ्यन्तर अर्श बहुत कुछ उसके समान दीखते है। दो अगुलियो से परिस्पर्शन पर आंशिक भ्रंश पतला प्रतीत होता है और श्लैष्मिक पुटक गुदद्वार से अरीय प्रकार से निकले (radiating) रहते है। पूर्ण भ्रंश मोटा, प्राय तीन-चार इच लबा होता है। श्लैष्मिक पुटक वृत्ताकार स्थित होते है। पूर्ण भ्रंश प्राय प्रौढ व्यक्तियो तथा अल्पायु के युवको मे होता है। उसमे मलाशय के सब स्तर होते है।

छोटे बच्चो के भ्रंश

बच्चो मे भ्रंश अधिकतर आंशिक होता है, पूर्ण भी हो सकता है। वह प्राय किसी क्षीणकर रोग के पश्चात् होता है जिससे आसन-मलाशय खात की वसा का क्षय हो जाता है। वह मलत्याग के समय बल करने, अनियमित शौच-त्याग के अभ्यास और विरेचको का प्रयोग करने वाले बालको मे होता है तथा कृमिग्रस्त बालको को भी हो जाता है। रोमान्तिका (measles) अथवा काली खासी के पश्चात् भ्रंश होना असाधारण नही है। गुदद्वार से बाहर निकलना मुख्य लक्षण है, किन्तु प्रवाहिका, श्लेष्मानिस्राव तथा रक्तस्राव भी अनेक बार साथ होते है। निरीक्षण द्वारा निदान किया जाता है। बच्चे के बल

करने पर भ्रंश बाहर निकल आता है। उसको आत्रान्त्रप्रवेश मे भिन्न करना आवश्यक है, जिसमे गुदा और प्रवर्धित भाग के बीच परावर्तन (reflection) के सर्वोच्च स्थान तक नही पहुँचा जा सकता। अंगुलिपरीक्षा द्वारा पौलिप का निश्चय करना चाहिये और गुदसवरणी की तान या टोन भी देखनी चाहिए, जो प्राय शिथिल होती है।

चिकित्सा

बच्चे और बालको मे—पूर्ण भ्रंश को शुष्क गॉज से दबाकर उसका पुन स्थापन करने के पश्चात् दोनो नितबो को मिलाकर रखने से दवाव बनाए रखना चाहिए। श्लेपक फीते (adhesive tape) द्वारा यह किया जा सकता है। उसको करवट से लिटाकर मलत्याग कराया जाय, आवश्यक हो तो निम्न एनीमा की सहायता ली जा सकती है। अस्पताल मे रखकर रोगी की क्षीण दशा को उन्नत करना और यदि साथ मे प्रवाहिका हो तो उसकी भी चिकित्सा करना आवश्यक है। साथ ही दुर्बल सवरणी को फेरेडी विद्युत्धारा से उत्तेजित किया जाय तथा परिगुदाक्षेत्र मे वेदनाकर उत्तेजन से सवरणी से बार-बार सकोच कराया जाय। अधिकतर यह पर्याप्त होता है। यदि भ्रंश तब भी बना रहे तो श्लेष्मिक कला को पेशीस्तर पर स्थिर करने के लिए रेखाकार कौटरीकरण तीन चतुर्थांशो (quadrants) मे करना चाहिए। अग्र चतुर्थांशो मे कौटरीकरण (cauterization) उचित नही है। उससे पर्युदर्या को क्षति पहुच सकती है। काठिन्यकण (sclerosina) पदार्थों, जैसे बादाम के तेल मे फिनोल के 5 प्रतिशत विलयन के अधोश्लेष्मिक इजैक्शनो या परिशुद्ध एलकोहल (absolute alcohol) से परिमलाशय (perirectal) इजैक्शनो का सीमित उपयोग है।

वयस्को मे—आशिक भ्रंश की चिकित्सा तीसरी डिग्री के आभ्यतर अर्श के समान शस्त्रकर्म से की जाती है, यदि सवरणी की तान (tone) या बल उत्तम हो। तान या बल का ह्रास होने पर बालको के भ्रंश के समान चिकित्सा योग्य है। यदि वह सफल न हो तो थीर्श का (Thiersch's) शस्त्रकर्म करना चाहिए। इस कर्म मे वलय के समान धातुकृत सीवन या टाका बाह्य गुद सवरणी मे डाल दिया जाता है। टाके को एक पार्श्व बिन्दु पर सवरणी मे प्रविष्ट करके वलय के समान उसमे होते हुए दूसरे सिरे को प्रथम सिरे के प्रवेश स्थान से निकाल कर दोनो सिरो को बाँध दिया जाता है।

वयस्को का पूर्ण भ्रंश, वास्तव मे, सर्पी हर्निया (sliding hernia) है। एक

विद्वान् (Moscheowitz) के अनुसार श्रोणिडायाफ्राम मे प्रथम ही से दुर्बलता होती है। मलाशय-मूत्राशय कोष्ठ (rectovesical pouch) (पर्युदर्याकृत) लम्बा होकर दुर्बलता द्वारा दूसरी ओर को उभर जाता है और अग्र मलाशय-भित्ति का वहिर्वलन (evagination) करता है। भ्र श अग्रभित्ति द्वारा होने के कारण वह नीचे और पीछे को बढता है और पुन स्थापन (reduction) के पश्चात् अग्रमलाशय भित्ति पर दबाव से भ्र श की पुनरावृत्ति नही होती। सब रोगियो मे ऐसा नही होता और वास्तविकअ न्तर्वलन (invagination) हो सकता है जिनमे दोनो भित्तियो की लम्बाई समान होती है और भ्र श सीधा नीचे को जाता है।

प्रथम प्रकार के भ्र श के लिये ग्राहम (Graham's) शस्त्रकर्म, जिसमे उदर द्वारा श्रोणि-भूमि (pelvic floor) की दुर्बलता को गुदोन्नमनिका (levator ani) पेशियो के सीवन से सुधारा जाता है, अत्यन्त उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के लिए, माइल्स (Miles) द्वारा वर्णित, मलाशय-अवग्रह बृहदान्त्रोच्छेदन (rectosigmoidectomy) किया जा सकता है। इस शस्त्रकर्म मे गुदा द्वारा ऊर्ध्व मलाशय और अवग्रह-बृहदान्त्र के अतिरिक्त भाग का उच्छेदन किया जाता है, साथ मे श्रोणि-भूमि को जघनानुत्रिका (pubococcygeus) के सीवन द्वारा सुधारा जाता है, अथवा कभी नही भी सुधारा जाता। किन्तु इसके दीर्घकालीन परिणामो के सन्तोपजनक न होने से इस शस्त्रकर्म का स्थान म्योर (Muir) शस्त्रकर्म ले रहा है जिसमे अग्र-मलाशय-अवग्रह-बृहदान्त्रोच्छेदन किया जाता है। यह अनुपयोगी मलाशय-वक्रबृहदान्त्र-खडाश का पारपर्युदर्या (trans-peritoneal) उच्छेदन है जिसके परिणाम अभी तक सतोषजनक हुए है।

गुद-विदर (Anal fissure)

यह एक साधारण और प्रमुख रोग है।

विकृति

श्लेष्मिक कला फट जाती है जिससे विदर बन जाता है। प्राय वह एकल होता है और मलत्याग के समय कठोर मल से एक कपाटिका के फटने से बनता है। उसके कारण गुदा मे जो आकर्ष (spasm) हो जाता है वह उसको नही भरने देता। गुदविदर पश्च और मध्य रेखा मे सबसे अधिक होता है। अग्र विदर पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे आठ गुना अधिक होता है। किन्तु उनमे भी पश्च विदर ही अधिक पाया जाता है।

विदरोत्पत्ति के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं, किन्तु कोई भी सतोषजनक नही है। सभावना यही है कि शुष्क मल मे गुद कपाटिका खिचकर फट जाती हे और फटी हुई कपाटिका शोथयुक्त होकर और नीचे को खिचती चली जाती है और एक टैग के समान लटकने लगती है। इसी को 'सन्तरी अर्श' (sentinel pile) कहा जाता है।

लक्षण

मुख्य लक्षण मलत्याग के समय और उसके पश्चात् जलयुक्त वेदना होना है। यह इतनी तीव्र हो सकती है कि रोगी मलत्याग के पश्चात् दो-तीन घटे तक कुछ भी काम न कर पाये। विदर से रक्त निकलता दीख सकता है। सक्रमण हो जाने पर उससे सपूय नि स्राव निकलता है।

नितबो को बाहर को हटाने पर उसके बीच की खाई मे विदर दिखाई देता है, शोथयुक्त टैग उसके साथ हो या न हो। सवरणी का प्रबल आकर्ष होता है। अगुलि-परीक्षा कष्टदायक होती है। प्रौक्टोस्कोपी से बहुत वेदना होती है। अत्यन्त आवश्यक होने पर यदि इन परीक्षाओ को करना ही पडे तो कोई स्थानिक सवेदनाहारी लगाकर परीक्षा की जाय जिसमे वेदना और गुद-आकर्ष न हो।

तीव्र विदर चिरकारी होकर बाह्य सवरणी की तन्तुमयता (fibrosis) उत्पन्न कर सकता है, उसके साथ विद्रधि भी हो सकती है, जिससे अधस्त्वक्, अभिपृष्ठ नालव्रण उत्पन्न हो सकता है। तन्तुमयता से नालव्रण की पुरावृत्ति हो सकती है।

चिकित्सा

विरोहण का सबसे बडा रोधक गुद-आकर्ष होता है। सक्रमण तथा आकर्ष के कारण किनारो से विरोहण विलबित होता है। आकर्ष की तत्काल चिकित्सा से विदर भी विरोहित हो जाएगा।

कोष्ठबद्धता द्रव पैरेफिन द्वारा दूर की जाय और एक सवेदनाहारी मलहम अगुली से (नोजिल से नही) भली-भाँति गुद-नलिका मे ऊपर तक रात्रि को सोने से पहले और प्रत्येक बार मलत्याग के पीछे लगाया जाय। इससे तीन लाभ होते है। गुदआकर्ष दूर होता है, गुदवलय का विस्फार होता हे और गुदनलिका स्निग्ध या स्नेहित (lubricated) रहती है। वेदना भी जाती है। दो-तीन दिन तक यह क्रिया करते समय वेदना हो सकती है। किन्तु उसके

पश्चात् प्रोक्टोस्कोपी से भी वेदना नही होगी। यदि इससे भी गुद-आकर्ष नही जाता तो 10 मिलीलिटर प्रोक्टोकेन सवरणी मे प्रविष्ट करके उसको कर्महीन या घातित (paralysed) कर दिया जाय, अथवा सामान्य सज्ञाहारी के प्रभाव मे सवरणी का विस्फार किया जाय।

चिरकालीन गुदविदर, आवर्त्ती (recurrent) भगदर तथा विद्रधि आदि उपद्रवयुक्त नालव्रण की दशाओ मे गुदत्वचा के त्रिभुजाकार क्षेत्र के उच्छेदन और अधस्त्वक् बाह्य सवरणी के विभाजन से उत्तम परिणाम होते है, अधस्त्वक् बाह्य सवरणी का विभाजन, शस्त्रकर्म का विशेष चरण है। गुदा के चारो ओर के अन्य क्षतो की भाति यहा भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विरोहण गुदा से वाहर की ओर को हो। नही तो विदर की पुनरावृत्ति का भय रहेगा। इस शस्त्रकर्म का लाभ यह है कि रोगी को केवल दो-तीन दिन अस्पताल मे रहना पडता है।

परिगुदा-पूयभवन तथा नालव्रण
(Perianal suppuration and fistulae)

इस दशा के उत्पादक बैसिलस कोलाई प्रोटियस वल्गेरिस, स्ट्रैप्टोकॉकस, स्टैफिलोकॉकस, माइकोबैक्टीरियम टयूबरकुलोसिस और कभी-कभी गैस-उत्पादक जीवाणु होते है।

स्थिति के अनुसार उनको (1) परिगुदा-पूयभवन, (2) आसन मलाशय-पूयभवन, (3) अधोश्लेष्मिक विद्रधि, और (4) श्रोणिमलाशय विद्रधि मे वर्गीकृत किया गया हे।

परिगुदा-पूयभवन (Perianal suppuration)

गुदनलिका के निम्न भाग के चारो ओर का अवकाश परिगुदा-अवकाश कहा जाता है। भीतर की ओर वह गुदनलिका की त्वचा से सीमित है। ऊपर की ओर मलाशय के अनुदैर्ध्य पेशीकचुक से आने वाले दो अन्त पेशी पट इसको सीमित करते है। पार्श्व की ओर वह नितवो के अधस्त्वक् समतलो (planes) मे मिल जाता है। इस अवकाश मे अधस्त्वक् वाह्य सवरणी और वाह्य शिरा-जालिका स्थित है।

हेतुकी—परिगुदा-विद्रधि के अतिसाधारण कारण ये है :

परिगुदा हीमेटोमा का सक्रमण, पनस (furuncle), सक्रमित गुदविदर, भ्रश हुए घनास्रयुक्त अर्श से सक्रमण, गुददरी (crypt) का सक्रमण और

अधोश्लेष्मिक विद्रधि अथवा अभिघात मे प्रसार ।

निदान—परिगुदाक्षेत्र मे वेदनायुक्त स्पर्शासहवृद्धि की उपस्थिति से निदान स्पष्ट होता है। गुदनलिका मे उभार नही होता, दैहिक लक्षण अत्यल्प होते हैं।

चिकित्सा—परिगुदाविद्रधि का छेदन शीघ्र ही होना चाहिये। स्पर्शतरग (fluctuation) की प्रतीक्षा न करनी चाहिये । छेदन विद्रधि पर गुदद्वार से वाहर अरीय दिशा (radial) मे किया जाता है। छेदन के दोनो किनारो को इस प्रकार काटकर निकाला जाता है कि त्रिभुजाकार क्षेत्र वनता है जिसका शिखर गुदद्वार की ओर होता है और आधार वाहर की ओर। अधस्त्वक् वाह्य सवरणी को भी काटा जाता है जिससे निर्हरण भली-भाति हो । न काटने से सवरणी का आकर्ष हो जाता हे और वह तन्तुमय हो जाती है जिससे विदर या नालव्रण वन सकता है।

क्षत का शस्त्रकर्म पश्चात् उपचार विशेप महत्व का है। प्रत्येक वार मल त्याग के पश्चात् उसका प्रक्षालन और ड्रेसिग आवश्यक है। ऊष्ण नितव स्नान रोगीको रुचिकर होता है। इन क्षतो का विरोहण कणिका-निर्माण से होता है, इस कारण सदा विरोहण गुद-नलिका से वाहर की ओर को होना चाहिये। नही तो विदर या नालव्रण वनने का भय रहता है। क्षत के विरोहण मे तीन-चार सप्ताह लगते है।

आसन-मलाशय-पूयभवन (Ischiorectal suppuration)

आसन-मलाशय-अवकाश (space) पिरामिडाकार है और मलाशय तथा गुदनलिका के दोनो पार्श्वों मे स्थित है। वे आगे की ओर आपस मे मिले रहते है। अभिमध्यभित्ति तिर्यक् है और गुदोन्नमनिका तथा गुदसवरणियो से वनी हुई है। पार्श्वभित्ति आभ्यतर गवाक्षिका से आवृत आसनास्थि वनाती है। अग्र ओर अवकाश को त्रिभुजाकार स्नायु और अनुप्रस्थ मूलाधारिका-(transverse perenei) पेशी सीमित करते है। पश्च ओर वह त्रिकगुलिका-स्नायुओ (sacrotuberous lig) और महानितविकापेशी से सीमित है। छदि (छत) अभिमध्य और पार्श्व भित्ति के मिलने से वनी है। तल (भूमि) त्वचा वनाती है।

परिगुदापूयभवन के प्रसार अथवा गुददरियो मे सक्रमण पहुँचने से विद्रधि उत्पन्न होती है। सक्रमण आभ्यतर अर्श के इजेक्शन, गुदविदर तथा श्रोणि-मलाशयविद्रधि से पहुँच सकता है। कभी-कभी वह रक्तवाहित होता है।

परीक्षा पर आसन-मलाशय खात मे मन्दवर्धी, लाल, स्पर्शासह, वृद्धि प्रतीत होती है। अगुलि द्वारा गुदपरीक्षा पर नलिका मे ऊपर एक उभार प्रतीत होता है। उच्च ताप, द्रुत नाडी और जीवविपरक्तता इस दशा के लक्षण है।

चिकित्सा

सामान्य सवेदनाहरण करके त्वचा का स्वस्तिकाकार (+) छेदन किया जाता है। विद्रधिगुहा के ऊपर की त्वचा के चारो आलम्बो (flaps) का उच्छेदन कर दिया जाता है तथा भीतर के पटो (septa) को भी काटा जाता है। क्षत मे गॉज को हल्का भरना उचित है। अवकाश मे होकर जाने वाली अधोतलाशय धमनी का विस्मरण न करना चाहिये। उसकी शाखाओ मे रक्त-स्राव हो सकता है।

अधोश्लेष्मिक विद्रधि (submucous abscess)

अधोश्लेष्मिक विद्रधि श्लेष्मिक कला के शुष्कमल द्वारा खुरच या फट जाने से, या ऐनीमा के नॉजिल से आघात के कारण अथवा आभ्यतर अर्श के इजैक्शन से उत्पन्न होती है। वह धीरे-धीरे बढती है। रोगी मलाशय तथा गुदनलिका मे वेदना अनुभव करता हे और निस्तानिका (tenesmus) भी होती है। अगुलि-परीक्षा से एक मसृण, गोल, स्पर्शासह, शोथयुक्त और नाम्य या नरम केन्द्र वाली वृद्धि प्रतीत होती है।

चिकित्सा—विद्रधि का शिखर काट दिया जाना है। या विद्रधि पर की श्लेष्मिक कला को दो धमनी-सदशो से पकड कर और कुचल कर काटा जाता है। यदि वह पहले ही फट गई हो तो उसके छिद्र को बढा दिया जाता है।

श्रोणिमलाशय विद्रधि (pelvirectal abscess)

श्रोणि-मलाशय-अवकाश गुदोन्नमनिका और श्रोणिपर्युदर्या के बीच का अवकाश है। यहा कई प्रकार के मलाशय के व्रणो से, श्रोणिगत उण्डुकपुच्छ-शोथ, डिम्बग्रन्थि तथा वाहिनी के शोथ और कभी-कभी पृथु स्नायु से सक्रमण पहुँच जाता है। श्रोणि-मलाशय-अवकाश द्वारा विद्रधि का निर्हरण किया जाता है और गुदोन्नमनिका के छिद्र को, जिस मे होकर पूय आसन-मलाशय खात मे पहुँचती है, उसको भी चौडा किया जाता है। विरोहण मे बहुत समय लगता है और अनेक वार कुछ सक्रमण अवशेप रह जाता है। जिससे नालव्रण बन

जाता है। प्राथमिक दशा की चिकित्सा करनी चाहिये।

भगदर (Fistula-in-ano)

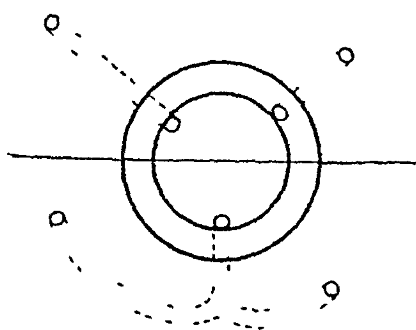
भगन्दर एक कणिकामय (granulating) पथ होता हे जिसका वाह्यमुख परिगुदा त्वचा पर और दूसरा आभ्यनर मुख गुदानलिका मे खुलता है। कभी कभी केवल आभ्यतर मुख होता है, जैसे अधोश्लेष्मिक भगदर मे। अध-भगदर मे केवल वाह्य मुख होता है। वाह्य मुख कई हो सकते हैं। भगदरो का वर्गीकरण और आवृत्ति इस प्रकार है, (1) अधस्त्वक् और अधोश्लेष्मिक (subcutaneous, submucous) 5 प्रतिशत, (2) निम्न भगदर (low anal fistulae) 75 प्रतिशत (3) उच्च भगदर (high anal fistulae) 15 प्रतिशत (4) गुद-मलाशय भगदर (anorectal fistulae) 5 प्रतिशत।

अधस्त्वक् और अधोश्लेष्मिक भगन्दर, नामानुसार त्वचा के नीचे तथा श्लेष्मिक कला के नीचे होते है। निम्न गुद-भगदर, जो सबसे अधिक होते है, अधस्त्वक् वाह्य सवरणी और आभ्यतर सवरणी के बीच से जाते है। उच्च भगदर का पथ गुदमलाशयवलय (anorectal ring) के नीचे, वलय और गभीर आभ्यतर सवरणी के बीच मे अथवा उपस्थि और गभीर भागो के बीच से हो कर गुदनलिका मे प्रवेश करता है। गुदमलाशय भगदर मे उसका अन्त मुख गुदमलाशयवलय से ऊपर होता है, यह प्राय भीतर की ओर अध होता है।

निदान

प्राय पूर्व मे परिगुदा क्षेत्र मे एक विद्रधि या फुन्सी बनने का इतिवृत्त मिलता है, जो फूट गई थी या जिसको चीरा गया था, जिससे अब भी समय-समय पर निस्राव निकलता है। परीक्षा पर गुदद्वार के पास के क्षेत्र मे छिद्र दिखाई देता है जहाँ से एक दृढ पथ गुदनलिका मे जाता है। यदि अगुलि-परीक्षण से गुदा के भीतर छिद्र प्रतीत हो तो भगदर का प्रकार जानना चाहिये।

गुदनलिका के मध्य द्वारा खिची हुई (कल्पित) अनुप्रस्थ रेखा के पीछे स्थित वाह्य छिद्रो के पथ वक्र होते है जो नलिका मे मध्य रेखा (6 बजे) मे खुलते हैं। रेखा से आगे स्थित बाह्य छिद्रो से जाने वाले भगदर-पथो के भीतर के मुख गुदनलिका मे उनके सामने उसी चतुर्थाश मे खुलते है। यह गुडसाल-(Goodsall's law) नियम कहा जाता है।



चित्र 40 गुडसाल (Goodsall)-नियम का दर्शक चित्र

प्रोक्टोस्कोपी परीक्षा द्वारा अन्य गुदमलाशय क्षतो का व्यतिरेक किया जाता है। गुदनलिका मे आगे के भगदरमुखो का परिमूत्रमार्ग-नालव्रणो (periurethrel fistulae) से निदान करना आवश्यक है।

यक्ष्माजन्य भगदर (Tuberculous fistulae)

10 प्रतिशत भगदर यक्ष्माजन्य पाये जाते है। यक्ष्माजन्य भगदर के ये लक्षण हैं। बाह्य छिद्र यक्ष्मीय व्रण या नाडीव्रण के समान दीखता है। गुदानलिका मे जाने वाले पथ मे तन्तुमयता नही होती। निस्राव पतला जल के समान होता है। शरीर मे किसी और स्थान पर, विशेषकर फुप्फुस या आत्र मे यक्ष्मा का कद्र हो सकता है। सर्जरी के साथ यक्ष्मा चिकित्सा भी होनी आवश्यक है।

चिकित्सा

सामान्य सिद्धान्त—मुख्य भगदरपथ तथा उसकी शाखाओ को खोल दिया जाता है और उनमे बने तान्तव ऊतक का उच्छेदन किया जाता है। अध स्त्वक्-सवरणी को सदा काटना चाहिये। किन्तु गुदमलाशय-वलय को बचाना आवश्यक् है, नही तो मल-असयति (incontinuous) हो जाएगी। क्षत त्रिभुजाकार होना चाहिये, जिसका शिखर गुदनलिका की ओर हो, जिससे पूर्ण निर्हरण हो सके।

अधस्त्वक् भगदर—(subcutaneous fistulae)—ऐषिण को बाह्य मुख से आभ्यतर मुख तक प्रविष्ट करके पथ का उच्छेदन करना चाहिये। अधस्त्वक् बाह्य सवरणी भी काटनी आवश्यक है।

अध श्लेष्मिक (submucous)—भगदर की चिकित्सा अध श्लेष्मिक विद्रधि के समान की जाती है।

निम्न भगंदर (low anal fistulae)—भगदर पथ मे वाह्य मुख से मिथिलिन ब्लू प्रविष्ट करने से उसकी सब शाखायें नीली रग जाती है। पथो को खोलकर इनका उच्छेद किया जा सकता है। अधस्त्वक् तथा उपरिस्थ सवरणियो तथा गभीर प्रावरणी का भी कुछ भाग, बिना असयति के डर के, काट देना चाहिये। वाह्य मुख से बाहर तक की कुछ त्वचा का उच्छेदन किया जाय, जिससे जो त्रिभुजाकार क्षत बना है वह कट जाय। यह 'सालमन पृष्ठछेदन' (Salmon's 'back cut') कहा जाता है।

उच्च भगदर (high anal fistulae)—इस की चिकित्सा निम्न भगदर ही की भाति की जाती है, किंतु गभीर सवरणी से ऊपर के पथ के भाग का उच्छेदन नही किया जाता।

एक टाका बाहर से पथ के इस भाग के साथ प्रविष्ट करके बाध देना चाहिये। दो सप्ताह के पश्चात् स्थानिक सवेदनाहरण मे उसका छेदन करना उचित है। इससे प्रेरित तन्तुमयता के कारण गभीर सवरणी के कटे हुए सिरे सिकुडने नही पायेगे।

गुदमलाशय भगदर (anorectal fistulae)—इनकी चिकित्सा बहुत कठिन है। निम्नस्थित पथ का उच्छेदन करना चाहिये और गुदमलाशय-वलय से ऊपर के भाग का केवल आखुरण (scrapping) किया जाय। पुनरावृत्ति की बहुत सभावना होती है, विशेषतया यदि भगदर क्षयजन्य है।

मलाशय के कणिकागुल्म
(Rectal Granulomas)

दो विशिष्ट कणिकागुल्म मलाशय मे उत्पन्न होते है। अतिसारजन्य कणिकागुल्म (dysenteric granulomas) और रतिज लसीकाकणिकागुल्म (lympho granulomas venerum)।

अतिसारजन्य कणिकागुल्म

यह बृहदात्र और मलाशय के एमीबी अतिसार के सक्रमण से उत्पन्न होता है और सव्रण दृढता (ulcerated induration) के रूप मे दिखाई देता है जिससे मलाशय की अवकाशिका सकुचित हो जाती है। इस दशा को कार्सिनोमा से पहिचानना अत्यन्त कठिन है। एमीबी ग्रेनूलोमा कार्सिनोमा की अपेक्षा नरम होता है और उतना विचूर्ण्य (friable) नही होता। यदि उसकी सभावना का ध्यान रहे तो उसको पहिचानना असभव नही है।

प्रोक्टोस्कोपी और सिगमोइडोस्कोपी द्वारा गुल्म दिखाई देंगे, जिन पर गोल या अण्डाकार व्रण दीखेंगे, जिनका तल धूसर रंग का होगा और किनारे स्पष्ट और पृथक्-पृथक् होंगे तथा उनके चारों ओर अतिरक्तता का प्रदेश होगा। कभी-कभी उनके सूचिकाग्र के समान गर्तयुक्त शिखर भी श्रोणिबृहदान्त्र और मलाशय के संगम पर दीखते हैं। मलपरीक्षा तथा मलाशयभित्ति के आखुरणों (scraphngs) में ऐन्टेमीबा हिस्टोलिटिका के कायिक (vegetative) या सिस्ट रूप मिलेंगे।

चिकित्सा

इमेटिन हाइड्रोक्लोराइड के नित्यप्रति 10 दिन तक इंजेक्शन से रोग के उग्र लक्षणों का शमन हो जाता है। कार्सिनोमा से भेद करने के लिये इस प्रयोग का व्यवहार किया जा सकता है। इसके पश्चात् बिस्मथ-इमेटिन-आयोडाइड का मुंह द्वारा और याट्रेन (yatren) के अवधारण एनीमा (retention enema) का निश्चित काल तक प्रयोग कराया जाय। 20 दिन तक डायोडोक्विन (diodopuin) खिलाने से चिकित्सा-क्रम समाप्त हो जाता है।

गुद-कडु (Puritis ani)

यह एक लक्षण है, रोग नहीं है, जिसके कारण ये हैं स्थानिक स्वच्छता की कमी, विशेषकर जिनमे बाल अधिक होते हैं, गुदद्वार के चारों ओर की त्वचा की अति-आर्द्रता, जिसका कारण अतिस्वेदलता, बृहदान्त्रशोथ के कारण श्लेष्मास्राव, मलाशय अथवा अर्श के भ्रंश, या ढीली संवरणी के कारण श्लेष्मा निकलते रहना, योनिस्राव का पीछे को वह आना, हो सकते हैं, संक्रमण (क) परजीवीजन्य, जैसे सूत्र-कृमि (thread worm), स्केबीज (खुजली), जूका आदि, (ख) कवकी, जैसे एपीडर्मोफाइटोसिस, ट्राइकोफाईटोसिस कैन्डीड्यिसिस, एलर्जी, आहार या औषधियों की, (ग) अज्ञात हेतुक (idiopathic)—मनोकायिक विकार, का एक लक्षण हो सकता है।

चिकित्सा—प्रारंभ ही में चिकित्सा आवश्यक है। खुजाते रहने से दशा और भी बढ़ जाती है जिससे अनिद्रा, चिंता और अस्वस्थता हो जाते हैं। बहुधा कारण के अज्ञात होने से लाक्षणिक चिकित्सा करनी पड़ती है जिसके परिणाम संतोषजनक नहीं होते। स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिये। अल्पअवशेषी (low residue diet) और अक्षोभी (non-irritant) आहार, विटामिन, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, का प्रयोग लाभदायक होते हैं। कडुहारी मलहम का स्थानिक लेप तथा रात्रि को निद्राकर औषधियां दी जाएँ। प्रति-

हिस्टोमिनिक योगो का प्रयोग भी वाछित है। तैल मे नूपर्केन के विलयन के स्थानिक इजैक्शन दिये जा सकते है। वाल (Ball's) का शस्त्रकर्म अथवा अन्य शस्त्रकर्म, प्राय प्रभावी न होने के कारण, नही किये जाते।

मलाशय के अर्बुद

मलाशय के अर्बुद सुदम और दुर्दम दोनो प्रकार के हो सकते है। सुदम मे ग्रथ्यर्बुद (adenoma) और अकुरार्बुद (papilloma) अधिक होते है। दुर्दम मे कार्सिनोमा सबसे अधिक होता है। भिन्न प्रकार के सारकोमा भी होते है — तान्तव सारकोमा, मिक्सोसारकोमा, लिम्फोसारकोमा कभी-कभी दुर्दम मिलेनोमा भी पाया जाता है।

मलाशय का ग्रथ्यर्बुद या पौलिप

दो वर्ष की आयु के पश्चात् यह वहुत पाया जाता है। वाल्यकाल का एकल पौलिप कभी दुर्दम नही होता।

लक्षण

सबसे मुख्य लक्षण सविराम रक्त निकलना है जो कभी अधिक नही होता। रक्त चमकता लाल होता है और वहुधा मल पर धारी सी वनी होती है। दूसरा लक्षण पौलिप का भ्रश है जो स्वय ही भीतर चला जाता है।

निदान

अगुलिपरीक्षा द्वारा रोग निश्चित हो जाता है। अगुलि को पौलिप और उसका लम्बा वृन्त प्रतीत होते हैं जो कभी-कभी वृन्तहीन भी होता है। परीक्षा से पूर्व मलाशय को रिक्त कर देना चाहिये। निम्न मलाशय का पौलिप प्रौक्टो-स्कोपी से देखा जा सकता है, ऊर्ध्व भाग के लिये सिगमाइडोस्कोपी आवश्यक है, अथवा बेरियम एनीमा-परीक्षा की जा सकती हे। कभी-कभी दोनो परीक्षाओ से, ऊर्ध्व भाग के अतिरिक्त, पौलिपो का पता लग जाता है।

चिकित्सा

साधारण पौलिप का उच्छेदन किया जाता है। सामान्य सवेदनाहरण करके, सवरणी के विस्फार के पश्चात् पौलिप को बाहर निकाल लिया जाता है और वृन्त पर एक पारवेधन (transfixation) टाका लगा कर टाके से आगे वृन्त

को काट दिया जाता है। जब पौलिप के ऊंचा होने के कारण उसको गुदद्वार से बाहर नही निकाला जा सकता तो सिगमाइडोस्कोपी की सहायता से डायथर्मी स्नेअर (snare) द्वारा पौलिप का अपहरण किया जाता है। पौलिप बिना रक्त-स्राव के निकल आता है और एकल लक्षणहीन व्रण पीछे रह जाता है।

अंकुरार्बुद (papilloma)—इन विरल अर्बुदो मे समय-समय पर रक्त-स्राव होता है जिसमे श्लेष्मा भी मिला रहता है। कभी-कभी प्रवाहिका और सपीडन कुन्थन (tenesmus) भी होता है।

इन अर्बुदो का उच्छेदन करना आवश्यक है। लघु अर्बुदो का गुदा द्वारा स्थानिक-उच्छेदन किया जा सकता है। बडे विस्तृत अर्बुदो के होने पर मला-शयोच्छेदन और बृहदान्त्रछिद्रीकरण करने पडते है।

मलाशय और गुदा का कैन्सर—हिन्दुस्तान मे समस्त कैन्सरो मे 2 प्रतिशत मलाशय का कैन्सर होता है। बृहदान्त्र के कैन्सरो मे 75 प्रतिशत मलाशय मे होते है। पश्चिमी देशो मे 6 प्रतिशत कैन्सर गुदनलिका मे होते है, किन्तु हिन्दुस्तान मे 25 प्रतिशत गुदा मे शल्की (squamous) प्रकार के कैन्सर पाये जाते हैं।

मलाशय-कैन्सर का प्रसार (spread)—बृहदान्त्र के कैन्सर के समान आन्त्रभित्ति मे सातत्य (continuity) से और समीप के आशयो, मूत्राशय, योनि तथा अन्य ऊतको के सन्निधान (contiguity) से तथा लसीकावाहिकाओ और रक्तप्रवाह द्वारा होता है।

लसीकावाहनियो द्वारा मलाशय कैन्सर का प्रसार बहुत विवादास्पद रहा है और उसका अध्ययन भी बहुत किया गया है। माइल्स (Miles) के मान्य वर्णन के अनुसार वह ऊपर को परामलाशय-लसीकापर्वो (pararectal lymph nodes) द्वारा ऊर्ध्व मलाशयी रक्तवाहिकाओ के साथ-साथ परामहाधमनीपर्वो मे फैलता है और नीचे तथा पार्श्व की ओर गुदोन्नमनिकापेशी (levator-ani) के ऊर्ध्वपृष्ठ पर की लसीकावाहिकाओ मे होता हुआ श्रोणिभित्ति पर स्थित पर्वों मे पहुँचता है। इसके अतिरिक्त गुदानलिका से लसीका वक्षण लसीका-पर्वो मे जाता है। यद्यपि रचनानुसार ये पथ वर्त्तमान है, किंतु अनुभव से पाया गया है कि पर्युदर्या के परावर्तन से ऊपर के मलाशय के भाग से लसीका का सवहन केवल ऊपर की ओर होता है जब तक ऊपर को जाने वाली लसीका-वाहिकाये अवरुद्ध नही होती, जैसा रोग के बढ जाने पर होता है।

ड्यूक्स (Dukes) ने मलाशय के कैन्सर को रोग के विस्तार के अनुसार तीन प्रधान वर्गों मे बाटा है। यह वर्गीकरण रोग के प्राग्ज्ञान के लिये तथा

चिकित्साविधियो के परिणामो की तुलना के हेतु भी लाभदायक है। समूह-ए मे वे रोगी रखे गये है जिनमे रोग मलाशय की भित्ति मे सीमित है। बी-समूह मे रोग मलाशयभित्ति को पार करके समीप के ऊतक मे फैल चुका है, किन्तु लसीकापर्व आक्रान्त नही होते। सी-समूह मे लसीकापर्व भी ग्रस्त हो जाते है। सी-समूह फिर सी-1 जिसमे केवल परा-मलाशय (pararectal) पर्व ग्रस्त होते है, और सी-2, जिसमे रक्त-वाहिकाओ के प्रारम्भ पर स्थित पर्व भी आक्रान्त हो जाते हैं, बाटा जा सकता है।

लक्षण

मलाशय और गुदा के कैन्सर के लक्षण उसकी स्थिति के अनुसार होते है। सवेदी (sensitive) गुदनलिका मे मलत्याग के समय वेदना और रक्त निकलना प्रमुख लक्षण हैं, विस्तृत कलशिका (ampulla) मे वेदनारहित रक्त-स्राव केवल लक्षण है, और मलाशयी अवग्रहवृहदान्त्र (recto-sigmoid) के कैन्सर मे अधिकतर प्रथम बार अवरोधजन्य लक्षण प्रकट होते है। गुदा और गुदनलिका मे दृढीभूत (induarted) विदर अथवा फूलगोभी सम (cauli-flower-like) अर्बुद दीखता है। मलाशय-कलशिका मे प्राय उठे हुए और बाहर को मुडे हुए (everted) किनारो का व्रण, फूलगोभीसम वृद्धि या बटन के समान प्लेक या स्थल (plaque) होता है।

निदान

दु ख का विषय है कि अधिकतर रोगियो मे रोग के पहिचानने मे अत्यन्त विलम्ब होता है, 6-12, मास तक उनकी एमीबा-रोग की अथवा अर्श, विदर, या प्रनिसार की चिकित्सा होती रहती है, जबकि एक बार साधारण अगुलि-परीक्षा से अर्बुद मालूम हो सकता था, द्वितृतीयाश रोगियो मे अर्बुद निम्न भाग मे स्थित होता है। इसको प्रतीत करने मे कोई कठिनाई नही होती।

मलाशय मे कोई भी कठिन या दृढता का स्थल प्रतीत होने पर कैन्सर का सन्देह करना चाहिये और उसकी जीवोतिपरीक्षा करनी आवश्यक है। केवल इसी परीक्षा द्वारा उसको अमीबी या जीवाणुज मलाशय-शोथ, विद्रधि, दृढीभूत विदर, लिम्फोग्रेनुलोमा, और अर्श के इन्जैक्शन से उत्पन्न तातव पिंड से पृथक् किया जा सकता है।

चिकित्सा—प्रारभिक और अत्यन्त उपरिस्थ शल्की कैन्सरो के अतिरिक्त, जिनकी उपरिस्थ विकिरण (supericial radiation) द्वारा सफल चिकित्सा

सभव है, केवल उच्छेदन द्वारा मलाशय कैन्सर से रोगमुक्ति सम्भव है। इस कर्म के नियम बृहदात्र कैन्सर के शस्त्रकर्म के समान ही है।

उदर-मूलाधार उच्छेद (Abdominoperineal resection)-

इस प्रामाणिक शस्त्रकर्म का वर्णन माइल्स (Miles) ने सन् 190; मे किया था।

यह शस्त्रकर्म उदरछेदन द्वारा एक वार मे किया जाता है। छेदन, मध्यम (medium) परामध्य (paramediam) या तिर्यक् (oblique) हो सकता है। यकृत के परिस्पर्शन से उसमे स्थलान्तरण प्रतीत किया जाता है और अर्बुद की शस्त्रकर्मयोग्यता (operability) समझ ली जाती है। अधो-आत्रयोजनी धमनी को महाधमनी के पास ही वाधा जाता है। कभी-कभी वक्र बृहदात्र शाखा के नीचे उसका वधन किया जाता है जिससे अन्त्य बृहदात्र-छिद्रीकरण मे रक्त पहुँचता रहे। तव मलाशय को त्रिक और पार्श्व ओर के लगावो से मुक्त किया जाता है और मूत्राशय और शुक्राशय को भी आल से पृथक् कर दिया जाता है। गवीनियो का सरक्षण आवश्यक है। श्रोणि-बृहदात्र को तव ऐसे स्थान पर काटा जाता है जिससे आत्र का डेढ इच भाग बृहदात्र-छिद्रीकरण के रूप मे उदर भित्ति मे वाहर निकला रहे। दूरस्थ प्रात को रवड के पतले परत मे लपेटकर मूत्राशय पर से तथा श्रोणि की पार्श्वभित्तियो पर से पयुदर्या को खीचकर, उसके द्वारा पुनर्निमित श्रोणि-भूमि (pelvic floor) मे गाड दिया जाता है। तव उदरछेदन को बृहदात्र के छिद्रीकरण अश के चारो ओर सिया जाता है अथवा इस अश के मुख को एक दूसरे ही छेदन द्वारा वाहर निकाला जाता है। इसके पश्चात् रोगी को वाम-पार्श्व पर अथवा लियोटोमी स्थिति मे लिटाकर मूलाधार मे गुदा के चारो ओर छेदन करके मलाशय के अन्त्य-भाग को पूरस्थ से पृथक् किया जाता है और श्रोणितल (भूमि) को छेदित करके उसके द्वारा नीचे से पृथक् किये हुए आत्र भाग को निकाल लिया जाता है। दो सर्जन साथ ही इस शस्त्रकर्म को कर सकते है, एक उदर से, दूसरा मूलाधार से।

यद्यपि मलाशय के कैन्सर के लिये माइल्स का शस्त्रकर्म प्रामाणिक माना जाता है तो भी दो दिशाओ मे उसमे प्रगति करने का उद्योग किया गया है (1) इतने विस्तृत आत्र का अपहरण न करना और औदरीय बृहदात्रछिद्रीकरण न करके प्रसामान्य आत्रक्रिया की सरक्षा करना तथा (2) अधिक उन्मूलक अपहरण, जिसमे अधो-आत्र-योजनी धमनी का प्रारम्भ मे ही वधन

कर दिया जाता है और समस्त वाम बृहदान्त्र तथा पुरोमहाधमनीप्रदेश के पर्वो (preaortic lymph nodes) का अपहरण किया जाता है।

परिमित शस्त्रकर्म कई कारणो से प्रस्तावित किया गया है। रोगी सहज मे औदरिक छिद्रीकरण के लिये सहमत नही होते और इस प्रकार कितने ही रोगी जीवन के केवल साधन से वचित रह जाते है। विकृति के अध्ययन से विदित हो गया है कि रोग बढने पर लसीका-वाहिकाओ के अवरुद्ध हो जाने के अतिरिक्त, मलाशय का लसीकाप्रवहन मुख्यतया ऊपर को होता है, न कि नीचे या पार्श्व को, जैसा माइल्स ने कहा है। 500 रोगियो मे उन्मूलक शस्त्र-कर्म के पश्चात् केवल 8 रोगियो मे अर्बुद विस्तार के 2 इच से अधिक नीचे के लसीकापर्व ग्रस्त पाये गये। परिमित शस्त्रकर्म मे लसीकावाहिकाओ और रक्तवाहिकाओ का व्यवच्छेदन कम करना पडता है, यह युक्ति भी मान्य नही है। अधो-आन्त्रयोजनी धमनी के प्रारभ पर बन्धन करने पर भी मलाशय-धमनियो द्वारा श्रोणिवृहदात्र मे पर्याप्त रक्तसचार बना रहता है।

फिर साख्यिकीय आकडो का प्रमाण भी प्रस्तुत है। परिमित छेदन से भी 5 वर्ष रोगमुक्ति काल, माइल्स-शस्त्रकर्म की अपेक्षा किसी प्रकार कम नही है, वरन् कुछ रोगियो मे अधिक पाया गया है। मेयोक्लिनिक के डिक्सन ने जिसने अग्रविच्छेदन शास्त्र कर्म को सर्वमान्य बनाया हैं, 68 प्रतिशत रोगियो मे 5 वर्ष रोगमुक्तिकाल की रिपोर्ट की है। अग्रस्त पर्व वाले रोगियो को भी इसमे गिन लेने से सख्या 74 प्रतिशत हो जाती है।

परिमित शस्त्रकर्म (conservative operations) निम्नलिखित दो प्रकार के है —

(1) **सवरणी रक्षी शस्त्रकर्म**—मे- जिसको बैबकोन और बैकन ने बहुत किया है, बाह्य सवरणी को बचा लिया जाता है और अत्य बृहदात्र को गुद-द्वार से निकालकर वहाँ गुदबृहदात्रछिद्रीकरण की भाँति स्थिर कर दिया जाता है। किंतु अधिकतर कर्मो के पश्चात् बाह्य सवरणी उपयुक्त क्रिया नही करती और रोगी मल-असयति से कष्ट पाता रहता है। इसके अतिरिक्त निम्न मलाशय के निकल जाने से भी, जिसने आत्र वायु और मल मे भेद करना सीख लिया है, रोगी को कष्ट होता है। इस कारण प्राय दूसरा (निम्न) शस्त्रकर्म किया जाता है।

अग्र (anterior) अथवा पुन स्थापक (restorative)—शस्त्रकर्म मे, जिसको डिक्सन ने बहुमान्य बताया है, मलाशय तथा अवग्रह-बृहदात्र का आशिक उच्छेदन तथा माइल्स के मानक शस्त्रकर्म के समान रक्तवाहिकाओ तथा लसीका-वाहिकाओ के उच्छेदन करने के पश्चात आत्रसिरो का छोर (end to end)

समिलन किया जाता है। इस शस्त्रकर्म से सवरणी की क्रिया अक्षुण्ण रहती है। मूलाधार-भूमि (perineal floor) के नीचे समिलन को रखकर उसको लीक-अभेद्य (leak-proof) वनाया जाता हे और मूलाधार के एक क्षत के द्वारा एक पुरोत्रिक रवड निर्हरण रख दिया जाता है।

यह वताना उचित है कि ये परिमित शस्त्रकर्म उन रोगियो के लिये उपयुक्त हे जिनमे रोग का अधिक विस्तार नही हुआ है, लर्सीकापर्व भी ग्रस्त नही हुए हैं और कैन्सर मलाशय पर पर्युदर्या-परावर्तन (peritoneal reflection) से ऊपर स्थित है। इससे नीचे के कैन्सर मे श्रोणिभूमि का उच्छेदन करना आवश्यक होता है। यकृत मे स्थालान्तण होने और मलाशय के ऊर्ध्व भाग मे उच्छेद्यक्षति के उपस्थित होने पर एक शामक अग्र-उच्छेद (anterior resection) का शस्त्रकर्म उपयुक्त है।

उन्मूलक सर्जरी—विस्तृत शस्त्रकर्मों की प्रवृत्ति भी गभीर सिद्धान्तो पर आधारित है जिसमे समस्त वाम वृहदात्र का अपहरण किया जाता है। किन्तु अभी तक इसका प्रमाण नही मिला है कि इस विधि से अधिक संतोषजनक परिणाम होते हैं।

प्राग्ज्ञान और चिकित्सा के परिणाम

वृहदान्त्र के समान मलाशय के कैन्सर का प्रग्ज्ञान भी, उसकी ऊतक रचना, अर्बुद के विस्तार और शिरीय घनास्रता पर, निर्भर करता है। फिर भी परिणामो को सतोषजनक कहा जा सकता है। 5 वर्ष-रोगमुक्ति काल भिन्न-भिन्न ससूहो मे इस प्रकार पाया जाता। समूह-ए—जिनमे अर्बुद मलाशय की भित्ति तक परिमित रहता है, 90 प्रतिशत; समूह-बी, जिनमे अर्बुद आत्रभित्ति को वेध चुकता है, किन्तु लसीकापर्वों को आक्रान्त नही करता है, 60 प्रतिशत, समूह सी—जिनमे लसीकापर्व आक्रान्त हो चुकते है—20 प्रतिशत।

बढ़े हुए रोग की उपशामक (palliative) चिकित्सा

अनेक वार रोगी उस समय आते हैं जव रोग असाध्य हो जाता है, शस्त्र-कर्म योग्य नही रहता है। उस समय वाम श्रोणिखात मे वृहदात्र-छिद्रीकरण कर देना चाहिये। किन्तु इस शस्त्रकर्म को अवरोध के कुछ लक्षण प्रकट होने पर करना चाहिये, नही तो रोगी को गुदा द्वारा रक्त और श्लेष्मा और छिद्री-करण द्वारा (जिसको वह अनावश्यक शस्त्रकर्म समसता है) मल निकलता रहेगा

जो रोगी को कष्टदायक प्रतीत होता है।

ऐसे विरल रोगियो मे, जिनमे यकृत से स्थलान्तरण हो चुकने पर भी अर्बुद शस्त्रकर्म योग्य होता है, अग्र-उच्छेदन (anterior resection) उपयुक्त उपशामक चिकित्सा है।

मलाशय के कैन्सर मे एक्स-रे-चिकित्सा उपयोगी नही होती, रक्तस्राव और वेदना को रोकने के लिये उसका शस्त्रकर्म अयोग्य रोगियो मे भी किया जा सकता है।



11

यकृत, पित्तवाहक पथ, अग्न्याशय और प्लीहा

(Liver, Biliary Tract, Pancreas and Spleen)

आर० निगम

यकृत

शरीररचना (Anatomy)

यकृत शरीर का सबसे बडा आभ्यन्तराग है और मध्यच्छदिका के गुम्बद (dome of diaphraqm) के नीचे स्थिर रहता है। सामान्यतया उसका भार 1450-1750 ग्राम होता है, वह शरीर-भार का लगभग 40वा अश होता है। उसमे ऊर्ध्व, अग्र, दक्षिण पार्श्व, पश्च और अधोपृष्ठ है और वह प्रत्येक ओर की निम्न पर्शुकाओ और पर्शुक उपास्थियों से सम्बन्धित है। अग्र, ऊर्ध्व और दक्षिण के पार्श्व-पृष्ठ मध्यच्छदिका के अधोपृष्ठ के सम्पर्क मे रहते है। अग्र और ऊर्ध्व पृष्ठ दात्राकार स्नायु (falciform lig) के लगने से दक्षिण और वाम खण्डो मे विभक्त हो गये है। अधो अथवा आशयिक (visceral) पृष्ठ नीचे तथा पीछे को रहता है और उस पर दक्षिण, वाम और चतुरस्र खड की अङ्कनरेखाये (marking) दीखती हैं। पित्ताशय दक्षिण खड के पित्ताशय-खात मे रहता है। प्रतिहारी विदर द्वारा यकृत-रक्तवाहिकाये, लसीकावाहिकाये और तन्त्रिकाओं की अनुकपी जालिका यकृत मे प्रवेश करती है और यकृत-वाहिनिया (hepatic duct) उससे निकल कर अपने संयोग से सामान्य यकृत-वाहिनी (common hepatic duct) बनाती है। यकृत का आशयिक पृष्ठ आमाशय, बृहदान्त्र के यकृतवक (hepatic flexure), दक्षिण वृक्क और ग्रहणी

के द्वितीय भाग के सम्पर्क मे रहता है। पश्च पृष्ठ पर की अवतलता (concavity) मे दसवे और ग्यारहवे कशेरुकाओकृत उत्तलता (convexity) रहती है। वाम खड पर ग्रास प्रणाल और अधोमहाशिरा के चिह्न है। इन चिह्नो के बीच का भाग स्पिगेली खड (spigelian lobe) कहा जाता है और लघुकोश (lesser sac) से सम्पर्क करता है। अधोमहाशिरा के दक्षिण ओर दक्षिण अधिवृक्क (suprarenal) ग्रन्थि का चिह्न है।

यकृत ग्लिस्सन-सम्पुट (Glisson's capsule) से आवेष्टित है। इसी मे अन्तर्यकृत-सयोजी ऊतक निकलता है जो यकृत ऊतक को यकृत-खडिकाओ (liver lobules) मे विभक्त कर देता है। यह यकृत-खडिका ऊतकरचना की एकाक (unit) है। किन्तु कदाचित क्रियात्मक एकाक यकृत कोशिकाओ की दो रज्जु है जिनके एक ओर एक आवृत (enclosed sinusoid) विवरिकाभ है और दूसरी ओर पित्त-केशिका (bile capillary) है।

रक्तसचार

यकृत मे रक्त दो ओर से आता है, प्रतिहारणी शिरा (portal vein) से तथा यकृत-धमनी (hepatic artery) से और यकृत-शिराओ द्वारा लौटता है जो यकृत-खडिकाओ (lobule) की सूक्ष्म अपवाही शिराओ मे आरभ होती है। खडिका मे पाच प्रतिहारणी-शिरा मूलको (radicles) से रक्त आता है, किन्तु केवल एक शिरा द्वारा लौटता है। ऐसे विन्यास से रक्त यकृद्ध कोशिकाओ के घनिष्ठ सपर्क मे आता है। प्रतिहारणी शिरा द्वारा वह रक्त आता है जो आमाशय, अग्न्याशय, प्लीहा और क्षुद्रान्त्र से लौटता है। पाचन के समय तथा शरीर मे चयापचय क्रियाओ के बढ जाने पर प्रतिहारणी तन्त्र मे रक्तप्रवाह बहुत बढ जाता है। यकृत-धमनी की शाखाये प्रतिहारणी शिरा की शाखाओ के साथ यकृत मे जाती है और वहा सयोजी ऊतक प्रतिहारणी शिरिकाओ (venules) की भित्तियो, पित्त-कोशिकाओ और स्वय यकृत-कोशिकाओ को रक्त देती है। यकृत-धमनी द्वारा प्राप्त रक्त प्रतिहारणी शिरा द्वारा प्राप्त रक्त का केवल चतुर्थांश होता है। किन्तु जहा प्रतिहारणी तन्त्र मे केवल 25 प्रतिशत आक्सीजन होती है, यकृत के धमनी रक्त मे वह 85 प्रतिशत होती है। अतएव यकृत की कोशिकाओ की आक्सीजन सप्राप्ति के लिये यकृत-धमनी मुख्यतया उत्तरदायी है। यकृत के शिरीय विवरकाभो मे धमनी और प्रतिहारणी शिरा से आये हुए रक्त भली भाति मिल जाते है और यकृत के पित्तजनक सार ऊतक (parenchyma) को मिश्रित धमनी और शिरीय रक्त मिलता है। दोनो तन्त्रो

के रक्तदाब का अन्तर केशिका-शैय्या (capillary bed) मे मिट जाता है। यकृत विवरकाभ जालक-अन्तर्कलातन्त्र (reticulo-endothelial system) के कुप्फर-कोशिकाओ (Kupffer cells) से आस्तरित है।

प्रसामान्य शरीर-क्रिया—यकृत कार्य-परीक्षण (normal physiology—liver function tests)

यकृत शरीर की उन चयापचयिक क्रियाओ मे भाग लेता है जिनको उत्सर्गी, चयापचयिक, रक्तजनक और निर्विषीकरण (detoxicating)-क्रियाओ मे वर्गीकृत किया जा सकता है। इन क्रियाओ के परीक्षणो द्वारा यकृत की क्षमता मालूम की जाती है। किन्तु किसी एक परीक्षण से यकृत की समस्त कार्य-क्षमता का अनुमान नही किया जा सकता।

उत्सर्जन-कार्य (excretory function)

यकृत चौबीस घटे मे 500-1500 मिलीलिटर पित्त बनाता है। पित्त के मुख्य घटक पित्त-लवण और पित्तरजक, पित्त अम्लो के लवण, कारबनिक (organic) लवण, कोलेस्टरोल और म्यूकोप्रोटीन है। बिलिरूबिन का उत्सर्जन और यूरोबिलिनोजन का बिलिरूबिन मे आशिक परिवर्तन यकृत-कोशिकाओ का कार्य है। कोलीन व्युत्पन्नो (derivatives) के ग्लायसीन (glycine) तथा टौरीन (taurine) के साथ सयुग्मन से उत्पन्न पित्तलवण यकृत का विशिष्ट स्राव है। सीरम बिलिरूबिन के आकलन, वान-डेन-बर्घ अभिक्रिया (van den Bergh reaction) मूत्र और मल की बिलिरूबिन और यूरोबिलिनोजन के द्वारा यकृत के उत्सर्गी कार्य का परीक्षण किया जाता है। ब्रोमोसल्फथेलीन तथा समान वर्णको को शिरा द्वारा प्रविष्ट करने पर उनके 70 प्रतिशत के एक घटे क भीतर उत्सर्जित हो जाने से यकृत की क्षमता प्रसामान्य समझी जाती है। 50 प्रतिशत से अधिक वर्णक के भीतर ही रह जाने से यकृत के कार्य को अपूर्ण समझना चाहिये।

चयापचयी कार्य (metabolic function)

यकृत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, बसा और विटामिनो के चयापचय मे भाग लेता है। कुल सीरम-प्रोटीन, एलबूमिन-ग्लोबूलिन-अनुपात और सीरम-एल-केलाइन फास्फेटेज के आकलन यकृत के इसी कार्य पर आधारित है। लेवूलोज-सह्यता परीक्षण का भी यकृत का चयापचयी कार्य को कूतने के लिये उपयोग किया गया है।

रक्तजनन-कार्य (haemopoetic function)

प्रोथ्रोम्बिन और फाइब्रिनोजन की उत्पत्ति यकृत का कार्य है जो रक्त के जमने का विशेष कारण होते है। वह लाल रक्तकोशिका नही उत्पन्न करता। प्रोथ्रोम्बिन-काल मे अव्यस्तता और विटामिन के देने पर इस काल का न घटना यकृत के इस कार्य की न्यूनता का द्योतक है।

निर्विषीकरण-कार्य (detoxicating function)

अन्तजनित चयापचय (endogenous metabolism) से उत्पन्न हुए कितने ही पदार्थों तथा औपधियो का निर्विषीकरण यकृत मे होता है। बैंजोइक अम्ल का हिप्प्यूरिक अम्ल मे परिवर्तन इस यकृत कार्य-परीक्षण का आधार है।

आघात

बन्द और खुले दोनो प्रकार के आघातो मे यकृत क्षत हो सकता है। वक्ष के निचले भाग पर कुचल देने वाले आघातो के लगने से यकृत का कुटजनील (contusion) हो सकता है। यह विवर्धित (enlarged) यकृत मे अधिक होता है। यकृत के आशिक विदरण होने पर अधोसम्पुट (subcapsular) हीमेटोमा (रक्तगुल्म) वन जाता है, किन्तु पर्युदर्यागुहा मे मुक्त रक्त (free blood) नही पहुचता। इस हीमेटोमा की चिकित्सा न होने पर उसका आगे चलकर विदरण हो सकता है। वह सक्रमित भी हो सकता है।

खुले हुए घाव या क्षत मे यकृत को हानि हो सकती है। इस प्रकार के आघातो से समीप के फुप्फुस और प्लूरा भी क्षत हो सकते है।

लक्षण

खुला घाव न होने पर निदान मे कठिनाई हो सकती है। उदर मे दक्षिण-अधोपर्शुक प्रदेश मे वेदना अभिलक्षक है। विदरण बडा होने पर रक्तस्रावजन्य प्राथमिक स्तब्धता के लक्षण होगे, पर्युदर्यागुहा मे मुक्त रक्त की उपस्थिति के कारण विचलनीय अननुनाद (shifting dullness) मिलेगा। एक्स-रे द्वारा वक्ष तथा उदर के अन्य आशयो की क्षति का व्यतिरेक आवश्यक है।

चिकित्सा

घाव के बन्द (closed) होने पर प्रत्याशी (expectant) चिकित्सा की

जाती है। रोगी की नाडी की गति और स्तब्धता के लक्षणो का ध्यान से निरीक्षण करना चाहिये। दशा गभीर होने पर यकृत के विदरण का लक्षणो द्वारा निश्चित होते ही उदरच्छेदन करके विदरण की यथावश्यक चिकित्सा करना उचित है। ऐसी दशा मे रक्ताधान सदा वाछित है, क्योकि रोगी पहले ही रक्त खो चुका है और शस्त्रकर्म मे भी रक्त की हानि हो सकती है। स्वच्छ रेखाकार घाव को रेशम के विच्छिन्न (interrupted) टाको से सी देना उचित है जिनको मैट्रेस (mattress) सीवन कहा जाता है।

सक्रमण

यकृत के तीव्र सक्रमण असाधारण है। वे यकृत मे तीन मार्गों—यकृत धमनी, प्रतिहारणी शिरा और पित्तवाहनी द्वारा पहुच सकते है। पूतित अन्त शल्य (septic emboli) यकृत-धमनी से पहुचने पर पूयरक्तज विद्रधि (pyaemic abscesses) उत्पन्न करते है, प्रतिहारणी शिरा द्वारा पहुचने से प्रतिहारी शिराशोथ (pylephlebitis) और पित्तवाहिनियो द्वारा पहुचने पर पित्तवाहनी-विद्रधि (cholangitic abscesses) उत्पन्न होती है।

तीव्र सपूय प्रतिहारी शिराशोथ (acute suppurative pylephlebitis)

प्रतिहारी शैय्या (portal bed) मे स्थित किसी आशय के शोथ, जैसे उण्डुकपुच्छ-शोथ या शोथयुक्त अर्श, से यह रोग होता है। बच्चो मे शोथयुक्त नाभि कारण हो सकती है।

विकृति—एस्केरीकिया कोलाई या स्टेफिलोकोकस रोगोत्पादक जीवाणु होते हैं। बहुविद्रधियो से यकृत विवर्धित और रक्तसंकुलित (congested) हो जाता है। अधिकतर दक्षिण खड ग्रस्त होता है। उपरिस्थ विद्रधि सामान्य पर्युदर्यागुहा मे फटकर पर्युदर्याशोथ उत्पन्न कर सकती है।

लक्षण—रोगी प्राय किसी तीव्र आन्त्रिक दशा से रोगमुक्त हो रहा है। उसी काल मे अकस्मात उसकी दशा का ह्रास होना प्रारम्भ होता है। उसको निशास्वेद (night sweats) होते हैं। यकृत विवर्धित, स्पर्शासह और वेदना-युक्त होता है। आन्त्रशूल तथा शीतकप (rigors) के आक्रमण होते है और कामला हो जाती है। आक्रान्त होने पर प्लीहा बढ जाती है। अन्तर्वक्षीय (intrathoracic) रोग के लक्षण, जैसे दक्षिण की ओर मध्यच्छदिका का उन्नत शिखर और प्लूरा मे एकत्रित नि सरण (effusion), उपस्थित होते है।

निदान

अधोमध्यच्छद विद्रधि, तीव्र पर्युदर्याशोथ और पित्ताशय शोथ से निदान करना आवश्यक है।

चिकित्सा

लक्षणानुसार तथा बहुप्रभावी प्रतिजीवियो का प्रयोग। अचिकित्सित रोगियो मे मृत्यु बहुत होती है। रोगनिरोध (prophylaxi) की दृष्टि से पर्युदर्याशोथ के कारणो का पहिले ही अपहरण आवश्यक है।

सपूय पित्तवाहिनी-शोथ (suppurative cholangitis)

हेतुकी—सक्रमण पित्तावाहिनियो अथवा परिवाहिनी लसीकावाहिकाओ (periductal lymphatics) द्वारा अन्तर्यकृत (intrahepatic) पित्तवाहिनियो मे पहुचता है।

लक्षण

विवर्धित स्पर्शासह यकृत तथा शीतकप के साथ ज्वर रोग के साधारण लक्षण है। रोगी को कामला है और वह कुछ समय से पित्ताशय की अवरोधक क्षति से ग्रस्त है।

चिकित्सा

सामान्य पित्तनलिका (common bile duct) का निर्हरण तथा प्रतिजीवी चिकित्सा इस रोग की चिकित्सा के उपाय हैं। इस रोग का प्राग्ज्ञान सदा गभीर है। अतएव पित्ताशयशोथ तथा पित्ताश्मरता (cholecystitis, cholelithiasis), विशेषतया यदि पित्तवाहिनियो मे अवरोध हो तो उनकी चिकित्सा ही के समय रोगनिरोधी उपाय करने चाहियें।

एमीबाजन्य विद्रधि (amoebic abscess)

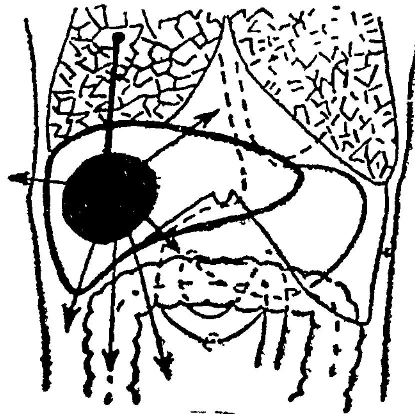
प्राय. एमीबाजन्य अतिसार का इतिवृत्त मिलता है। उसकी चिकित्सा हुई थी, किन्तु समय-समय पर उसके आक्रमण होते आये हैं और रोग चिरकालीन होकर यकृत मे विसरित शोथ (diffuse hepatitis) हो गया है अथवा विद्रधि बन गई है।

विकृति

रोग का कारण एन्टेमीबा हिस्टोलिटिका होता है जो आन्त्र के क्षत से

प्रतिहारी रक्त प्रवाह के साथ पहुचता है। प्रथम अवस्था मे यकृत शोथ होता है, किन्तु शीघ्र ही लाल-भूरे रग की पूय बन जाती है। प्राय एक विद्रधि दक्षिण खड के पश्चऊर्ध्व पृष्ठ पर बनती है। विद्रधि की भित्ति मे एमीबा उपस्थित मिलते हैं, वे गुहिकामध्य के गलित ऊतक मे नही होते।

विद्रधि, एमीबा के अन्तर्जीवविषो (endotoxins) के कारण यकृत ऊतक के गलने से उत्पन्न होती है। इस कारण भित्तियो की श्वेत कोशिका-प्रतिक्रिया (leucocytic reaction) बहुत कम होती है। विद्रधि ऊपर की ओर बढती है जिससे मध्यच्छदिका का शिखर ऊपर को उठ जाता है और यकृत के साथ आसजित हो जाता है। प्लूरा-गुहा मे नि सरण (effusion) हो सकता है। विद्रधि और बढकर प्लूरा-गुहा मे फट सकती है जिससे अन्त पूयता या एम्पाईमा हो जाता है, अथवा वह समीप की श्वसनी मे व्रण बनाकर फूट सकती है और उसकी पूय श्वसनी वृक्ष मे होकर कफ के साथ बलगम के रूप मे निकल सकती है। इस प्रकार चाकलेट रग की पूय बलगम के साथ कितनी ही बार निकलती देखी जाती है। विद्रधि बाहर की ओर अथवा उदर-गुहा मे फटकर पर्युदर्या-शोथ उत्पन्न कर सकती है अथवा वह समीप के किसी अग मे पित्ताशय-आमाशय, या आन्त्र मे, फट सकती है। कभी-कभी वह परिहृद-गुहा (pericardial cavity) मे फटती है या उसको आक्रान्त कर देती है। विद्रधि मे पास के आन्त्र से पूयोत्पादक जीवाणु पहुच जाते है जिससे उसकी फूटने की प्रवृत्ति बढ जाती है। कभी-कभी विद्रधि का, विशेषकर यदि इमेटिन से उसकी चिकित्सा की गई है तो शमन हो जाता है।



चित्र 41—जिन स्थितियो मे यकृतविद्रधि फट सकती है।

लक्षण

प्रारम्भ प्रच्छन्न अथवा शनै शनैः होता है जिसमे उदर के ऊर्ध्वभाग मे हल्की वेदना होती है। ज्वर और शरीर भार का ह्रास प्रतीत होते है। दीर्घ-काल तक ज्वर, शरीर-भार का ह्रास और पर्शुक-धारा पर अनिश्चित कष्ट का अनुभव, इन सब लक्षणो से राजयक्ष्मा का आभास होता है। ज्वर सदा मन्द होता है। किन्तु द्वितीयक सक्रमण के अध्यारूढ (supervene) हो जाने से वह प्रलेयक (hectic) रूप ले सकता है। मध्यच्छदतत्रिका (phrenic nerve) के तत्रिकान्तो द्वारा वेदना की स्कध और पृष्ठ मे अन्यत्रानुभूति (referred pain) हो सकती है। कभी-कभी वक्ष के निम्न भाग मे यकृत के प्रदेश मे सूजन या उभार प्रतीत होता है।

निदान

निम्न उपलब्धियो (findings) से निदान मे सहायता मिलती है —

1 श्वेतकोशिका-वहुलता के साथ ईओसिनोफिलिआ भी होती है।

2 यकृत विवर्धित और स्पर्शासह होता है, उसकी ऊर्ध्वधारा ऊची हो जाती है।

3. प्रदीप्ति-पट-परीक्षा से वक्ष मे आक्रान्त और मध्यच्छदिका की गतियो का ह्रास और प्लूरानि स्रवण दिखाई देते है।

4 मल परीक्षा तथा सिगमोइडोस्कोपी से चिरकालिक एमीबिकता (chronic amoebiasis) मालूम हो सकती है।

5 इमेटीन के प्रयोग से वेदना, यकृतवृद्धि तथा ज्वर सब कम हो जाते है।

6 सापेक्ष निदान राजयक्ष्मा, एमीवाजन्य यक्तशोथ, हाइडेटिडसिस्ट और अधोमध्यच्छद विद्रधि से करना होगा। किन्तु मन्द ज्वर का इतिवृत्त आत्र सबधी लक्षण और सिगमोइडोस्कोपी की उपलब्धिया निश्चयात्मक होती है।

चिकित्सा

जिन एमीवी अतिसार के रोगियो की भली-भाति चिकित्सा की जाती है उनमे एमीवी विद्रधि अत्यल्प, नही के समान, होती है। यकृत शोथ की प्रारभिक अवस्था मे 1/3 ग्रेन (20 मिलीग्राम) ईमेटिन अन्तर्पेशी मार्ग द्वारा प्रति दिन, 10 दिन तक देने से वहुत लाभ होता है। ईमेटिन के पेशियो का विष है, अत उसके प्रयोगकाल मे सावधान रहने की आवश्यकता है। विद्रधि के वडी होने पर आचूषण (aspiration) आवश्यक है, साथ ही औषधिप्रयोग

जारी रखा जाय। आचूषण के लिए आठवे या नवे पर्शुकान्तराल का पश्च रेखा मे बेधन उचित है। अग्र ओर को इगित करने वाली विद्रधियो के लिये पर्शुक-उपान्त के नीचे से सूची को प्रविष्ट करना चाहिए।

अधिकतर रोगियो मे आचूपण और ईमेटिन का प्रयोग पर्याप्त होते है। द्वितीयक सक्रमण से अधिक पूयसग्रह हो जाने पर विद्रधि का निर्हरण आवश्यक है। अग्र ओर इगित करने वाली विद्रधियो के लिये पर्शुक-परिसर पर एक तिर्यक् छेदन लगाकर समीप की पर्शुकशैय्या (bed of rib) द्वारा निर्हरण किया जा सकता है। पश्च ओर स्थित विद्रधियो के लिये समीप की पर्शुकशैया मे छेदन करके मध्यच्छदिका को विभक्त करना पडता है। इस क्रिया से सन्निकट प्लूरा या पर्युदर्यागुहाओ को सक्रमित करने का कोई भय नही है। इस समय तक वहाँ का सीरमी अवकाश (serous space) अन्तरुद्ध (obliterated) हो चुका होता है। पर्शुकोच्छेदन की स्थिति वक्ष की प्रदीप्ति-पट-परीक्षा से निर्धारित की जाती है।

एक्टिनोमाइकोसिस (actinomycosis)

यह यकृत का असाधारण सक्रमण है जो आन्त्र मे उपस्थित रोग-केन्द्र से उत्पन्न हो सकता है, फुप्फुस से नही।

विकृति

यकृत विवर्धित होता है और समीप की सरचनाओ से आसजित हो जाता हे। उसमे अनेक छोटी-छोटी विद्रधियो के बनने से वह मधुमक्षिका के छत्ते के समान दीखता है। रोग सलग्न उदरभित्ति मे विस्तृत होकर नालव्रण बना सकता है या किसी पास के आशय को आक्रात कर सकता है।

लक्षरण

विवर्धित यकृत और नाडीव्रणो (sinuses) की उपस्थिति, जिनसे पीले रग के कणो युक्त निस्सरण निकलता है, रोग की ओर ध्यान आकर्पित करते है।

चिकित्सा

पेनिसिलिन के प्रचुर प्रयोग, 10 लाख मात्रक प्रतिदिन, प्रारम्भिक अवस्था मे देने से रोग रुक जाता है। प्राग्ज्ञान अनुकूल नही है।

पुटी, सिस्ट (Cysts)

स्वधारण पुटी (retention cysts) या बहुपुटी रोग (polycystic disease) यकृत मे बहुत कम होता है। हाइडेटिड रोग मे उत्पन्न वहाँ केवल हाइडेटिड (परजीवी) पुटी होती है।

हाइडेटिड पुटी (hydatid cysts)

हेतुकी—शरीर मे हाइडेटिड रोग सबसे अधिक यकृत मे होता है। यह रोग भारत मे भी अधिक होता है और अन्य सब कृषि-प्रधान देशो मे पाया जाता है, विशेषकर आस्ट्रेलिया मे। इसका कारण टीनिया एकिनोकोकस (taenia echinococcus) नामक परजीवी होता है जो मासाहारी जन्तुओ, जैसे कुत्ते के आत्र मे रहता है। इनके अंडेयुक्त मल से आहार सक्रमित होकर जब मनुष्य के आत्र मे पहुँचता है तो वहा अंडे से भ्रूण (embryo) निकलता है जो आन्त्र-भित्ति को वेधकर प्रतिहारिणी सिरा मे होकर यकृत मे पहुँच जाता है। अधिकतर भ्रूण यकृत मे रह जाते है, किन्तु कुछ रक्तसचार द्वारा फुप्फुस या अन्य आशयो मे पहुँच सकते है।

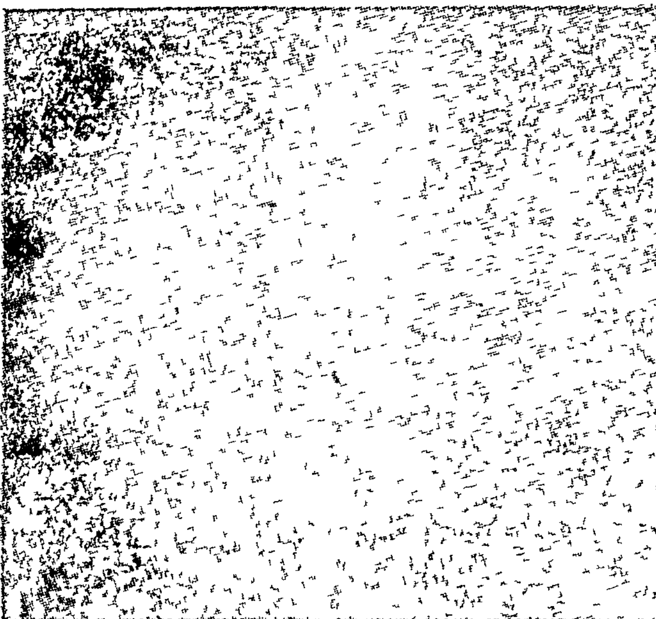
[illegible] हाइडेटिड पुटी (hydatid cysts) [illegible]

विकृति

परजीवी की लार्वा अवस्था यकृत मे प्राय दक्षिण खड के ऊर्ध्व भाग मे होती है। शनै शनै उसकी वृद्धि होकर कभी-कभी उसका बहुत बडा आकार हो जाता है। पूर्ण या वयस्क पुटी मे दो स्तर होते है। एक बाह्य, फलको की बनी (laminated) तान्तव पुटी और दूसरी भीतर की उत्पादक (germinal) या अन्त पुटी (endocyst)। उत्पादक पुटी से भीतर ही छोटी-छोटी पुटियें उत्पन्न होती है जो एक स्वच्छ तरल मे लटकी रहती है। ये अपत्य-पुटी (daughter cysts) कही जाती है। तरल मे अडसम्पुट (brood capsule) के सूक्ष्मकण दिखाई देते हे जो पूर्ण परजीवी के पूर्वगामी (precursors) होते है।

लक्षण

एक स्वस्थ दीखने वाले व्यक्ति मे वेदनाहीन यकृत विवर्धन हाइडेटिड पुटी का अभिलक्षक है। विवर्धन का परिस्पर्शन पुटीवत (cystic) होता है, किन्तु पुटी मे अत्यधिक तनाव से वह ठोस प्रतीत हो सकती है। पित्ती (urticaria) अथवा एलर्जी के अन्य लक्षण उपस्थित हो सकते है जिसका कारण हाइडेटिड



चित्र 43—एक यकृत की हायडेटिड पुटी मे कैल्सीभवन

तरल का पास के ऊतको मे लीक कर जाना होता है ।

सक्रमण के उपद्रव—पर्युदर्यागुहा मे अथवा किसी पास के आशय, फुप्फुस या आत्र मे पुटी का फट सकती है। तथा परजीवी की मृत्यु और पुटी की भित्ति के कैलसीभवन से स्वत रोगमुक्ति देखी गई है ।

निदान

निदान के समर्थन के लिये निम्नलिखित विशेष परीक्षाये की जाती है—

कैसोन (casons) परीक्षण—1-3 मिनिम हाइडेटिड तरल के इजैक्शन से प्रतिक्रिया ।

पूरक स्थिरीकरण परीक्षण (complement fixation test)

रोगी के सीरम तथा सरक्षित हाइडेटिड तरल से, जो एन्टीजन की भाति क्रिया करता है ।

ईओसिनोफिलिआ, परिसरी (peripheral) रक्त मे ।

ऐक्स-रे चित्रो मे कभी-कभी पुटी की रूपरेखा, केलसीभवन के कारण दिखाई दे जाती है ।

चिकित्सा

कृपको मे रोगनिरोध आवश्यक है । कुत्तो को पीने के जल मे मुह डालने या आहार-पदार्थो को जूठा करने से रोकना विशेष उपाय है । रोग हो जाने पर शस्त्रकर्म करना पडता हे । परामध्य-छेदन द्वारा पुटी को स्पष्ट करके एक चौडी सूचिका से तरल का आचूषण किया जाता है । पुटी के चारो ओर के ऊतको को 5-7 प्रतिशत फारमेलिन (formalin) मे भिगो कर रगीन स्वाबो से भली-भाति ढकने के पश्चात् वाह्यपुटी का छेदन करके उसके भीतर उपस्थित हाइडेटिड तरल और दुहिता-पुटियो को निकाला जाता है तथा वाह्य पुटी को भीतर से खुरचकर उसका आस्तर (lining) भी निकाल देते है । पुटी की गुहिका को फारमेलिन-घोल मे भीगे हुए स्वाबो से पोछा जाता है । हाइडेटिड तरल को ऊनको के सम्पर्क से बचाने का पूर्ण प्रयत्न आवश्यक है। उसमे उपस्थित सूक्ष्म धूल के कण अडसम्पुट होते है जो पूर्ण कृमि के अग्रगामी होते है । स्वाबो या स्पजो के रजित होने का यह लाभ है कि ये धूल के कण उनमे पहुचने से तुरत दिखाई दे जाएँगे । इसके पश्चात् पुटी की भित्तियो को भित्तिक पर्युदर्या से सी

दिया जाता है। इस क्रिया को मारसूपियलीकरण (marsupialization) कहते है। इसके पश्चात् एक निर्हरण-नलिका को क्षत मे रखकर उदर को बन्द कर देते हैं। अगले 10 दिन तक थोडी-थोडी नलिका प्रतिदिन काटते जाते है और तब उसको निकाल देते है जब कि भित्तियो के मिल जाने से गुहिका मिट जाती है। बाह्य पुटिका का उच्छेदन आवश्यक नही हे और न करना ही उचित है। उससे बहुत रक्तस्राव होता है। वाम खड की हाइडेटिड पुटी मे खडोच्छेदन कर दिया जाता है। यदि अन्यत्र हाइडेटिड पुटी उपस्थित हो तो उनकी उचित चिकित्सा की जाय।

अर्बुद

प्राथमिक अर्बुद

ये असाधारण है और सुदम या दुर्दम हो सकते है।

ग्रन्थ्यर्बुद और रक्त-वाहिकार्बुद (adenoma, haemangioma)

कभी-कभी ये अर्बुद यकृत मे हो जाते हैं और शस्त्रकर्म या मृत्योत्तर परीक्षा ही मे उनका पता चलता है। केवल उपरिस्थ होने पर उनका उच्छेदन किया जाता है।

प्राथमिक कार्सीनोमा

यकृतार्बुद (hepatoma) एक अत्यन्त कोशिकामय अर्बुद होता है जिससे यकृत का विवर्धन हो जाता है। वह यकृत सिरोसिस के रोगी मे पुनर्जनित पर्व मे उत्पन्न हो सकता है। इसकी द्रुत वृद्धि होती है जो सदा घातक होती है।

द्वितीयक अर्बुद

यकृत मे सबसे अधिक होने वाले द्वितीयक अर्बुद होते है। अर्बुद जठरान्त्र पथ अर्थात् आमाशय, पित्ताशय, आन्त्र तथा स्तन आदि के प्राथमिक कार्सिनोमा के स्थलान्तरण द्वितीयक निक्षेप के रूप मे उत्पन्न होते है। यकृत मे पर्वको की उपस्थिति, जो कठोर और शिखर पर अवनत होते है, रोग के बढ चुकने की सूचक हे, जब वह शस्त्रकर्म के अयोग्य हो चुका है। कभी-कभी प्राथमिक अर्बुद को निकालने के साथ अकेला द्वितीयक पर्वक होने पर उसका अपहरण यकृत-उच्छेदन (hepatectomy) से सभव है।

पित्ताशय और पित्तवाहनियाँ
(Gallbladder and bile ducts)

शरीररचना

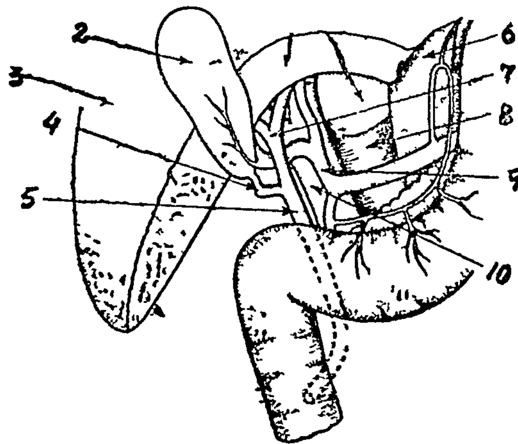
यकृत के दोनो खंडो मे आने वाली दक्षिण और वाम यकृत वाहिनिया यकृत के प्रतिहारी विदर मे मिलकर सामान्य यकृत वाहिनी (common hepatic duct) बनाती है जो लघुवपा (lesser omentum) की दक्षिण मुक्त धारा पर जाती है और प्रतिहारणी सिरा के सामने रहती है। यकृत धमनी उसके वाम ओर स्थित होती है।

पित्ताशय नाशपाती के आकार का कोश, यकृत के पित्ताशय खात मे रहता है। उसकी लम्बाई 10 सेमी० और धारिता (capacity) 30 मिलीलिटर है। वह यकृत से पर्युदर्यपरावर्तन (peritoneal reflection) द्वारा जुडा हुआ है। उसमे बुघ्न (fundus), काय और ग्रीवा होते हैं। बुघ्न यकृत के किनारे से नीचे को निकला रहता है और अग्र उदरभित्ति से नवी पर्शुकन्‍उपास्थि के अग्र प्रान्त पर सम्पर्क करता है। काय (body) ग्रहणी, जठर निर्गम प्रान्त (pyloric end) और अनुप्रस्थ वृहदात्र के निकट सम्बन्ध मे स्थित है। ग्रीवा प्रारभ पर कुछ चौडी है जिसको हार्टमैन की थैली' कहते हैं। वह S आकार मे जाकर पित्ताशयनलिका मे मिल जाती है। यह नलिका 1 सेमी० लम्बी, पीछे और अभिमध्य ओर जाकर सामान्य यकृत वाहिनी मे मिलती है जिसमे पित्तवाहिनी[1] (bile duct) प्रतिहारी द्वार (porta hepatis) के ठीक नीचे बनती है।

पित्तवाहिनी 8 से 10 से० मी० लम्बी है और उसमे 7 नम्बर का कैथिटर जा सकता है। वह लघु वपा की दक्षिण मुक्त धारा मे होती हुई जाती है और ग्रहणी के दूसरे भाग के वाम और वह अग्न्याशय वाहिनी के सम्पर्क मे आती है और उसके साथ कुछ दूर तक आत्र की भित्ति मे जाकर उससे मिलकर[2] यकृत अग्न्याशय-कलशिका (hepatopancreatic ampulla) बनाती है। इस वाहिनी का कुछ भाग ग्रहणी के प्रथम भाग के ऊपर रहता है, तब वह उसके पीछे जाती है और अग्न्याशय के शिर के पश्च पृष्ठ की खातिका मे से निकलकर कलशिका मे अन्त होती है।

---

1. यह पहले सामान्य पित्तवाहनी कही जाती थी।
2 इसको वादेर की कलशिका (ampulla of vator) कहा जाता था।



चित्र 44—यकृतबाह्य पित्तमार्ग और उनका यकृत-धमनी से सबध

रक्त सचार

यकृत धमनी कुक्षि (coeliac) धमनी की एक शाखा है जो लघु वपा की मुक्तधारा मे जाती है और पित्तवाहिनी के वाम ओर से जाकर प्रतिहारी विदर के नीचे दक्षिण और वाम यकृत-शाखाओ मे विभक्त होती है। पित्ताशय को रक्त पहुचाने वाली पित्ताशयधमनी यकृत-धमनी की दक्षिण शाखा से निकलती है। कभी-कभी सहायक पित्ताशय धमनी दक्षिण यकृत-धमनी से प्रारम्भ होती है। पित्तवाहिनियो और यकृत-धमनी तथा उसकी शाखाओ के सबधो मे बहुत अन्तर पाया जाता है जिसका शस्त्रकर्म के समय विशेष ध्यान रखना चाहिये।

लसीका सवहन और तन्त्रिका-संप्राप्ति

लसीका का सवहन पित्ताशय-लसीका-पर्वो मे होता है और वहा से वह कुक्षिपर्वों मे जाता है। कुछ लसीकावाहिकायें पित्ताशय से सीधी यकृत मे जाती है।

आशयिक (splanchnic) तन्त्रिकाओ तथा वागस तन्त्रिका से पित्ताशय मे तन्तु आते हैं।

शरीरक्रिया

यकृत में 24 घटे मे 1500 मिलीलिटर पित्त बनता है जो सीधा आन्त्र मे चला जाता है या पित्ताशय मे एकत्र होकर सांद्रित होता है। पित्ताशय पित्त का 10 गुणा साद्रण कर सकता है जिससे यकृत द्वारा स्रवित समस्त पित्त पित्ताशय मे समा सकता है।

पित्ताशय के कार्य ये है : (1) पित्त का मान्द्रण ; (2) पित्तपथ मे दाब का नियन्त्रण ; (3) कोलेस्टरोल और म्यूसिन का स्राव । आहार के ग्रहणी मे से जाने पर आत्र पित्ताशयोत्तेजक (cholecystokinin) नामक हारमोन उत्पन्न करता हे जिसके पित्ताशय मे पहुँचने पर पित्ताशय सकोच करके पित्त को बाहर निकालता है और औडी (oddi) की मवरणी शिथिल होती है ।

निदान की विधिया

एक्स-रे चित्रण

एक साधारण एक्स-रे चित्र मे मिश्रित अश्मरियो के होने पर बहुत मी पृष्ठकित (faceted) अश्मरिया दीख मकती है । कोलेस्टरोल अश्मरिया मुद्रिका (signet ring) के ममान दीखती हैं । वे नही भी दिखाई देती । अश्मरिया तथा पित्ताशय कैल्सीकृत होने पर दीखते है जो पार्श्व दृश्य मे वृक्काश्मरी की अपेक्षा अधिक अग ओर स्थित दिखाई देते है ।

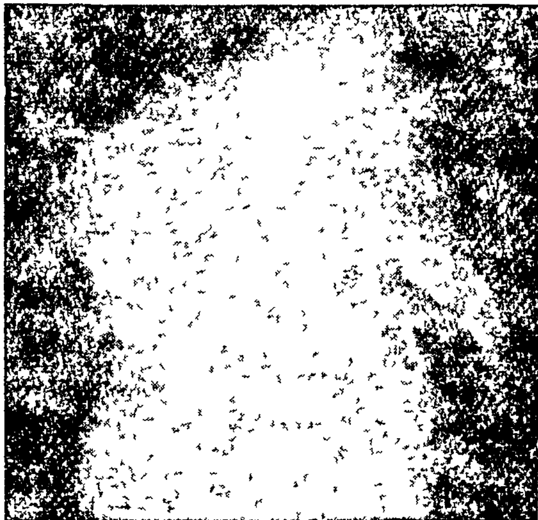
पित्ताशयी एक्स-रे चित्रण

पित्ताशय का एक्स-रे चित्रण एक एक्स-रे-अपार्य रजक का सान्द्रण करने की शक्ति पर निर्भर करता हे, जिसमे आयोडीन और फिनोल्थेलीन होते है । रजक को मुह से खिलाया जाता है या शिरा द्वारा दिया जाता है जो यकृत द्वारा पित्त मे उत्सर्जित हो जाता है। पिताशय के रोगग्रस्त होने पर वह अस्पष्ट दीखता है, या नही दीखता । ऋणात्मक छायाओ से भी एक्स-रे-अपार्य (non-radio-opaque) पित्ताश्मरी का वोध होता है । यह परीक्षण पित्ताशय की कार्यक्षमता के ज्ञान के लिये अनुपयुक्त है । यकृत की त्रुटि से या वाहिनी मे अवरोध के कारण पित्ताशय मे रजक के न पहुचने से पित्ताशय स्पष्ट नही होगा ।

पित्तवाहिनी चित्रण (cholangiography)

पित्तवाहिनी मे डायोडोन (diodone) आदि एक्स-रे-अपार्य पदार्थ के विलयन को प्रविष्ट करके एक्स-रे चित्र लेने से वाहिनी के अवरोध का पता चलता है। यह केवल शस्त्रकर्म के समय हो सकता है, अथवा शस्त्रकर्म-पश्चात उसको वाहिनी या आशय मे रखी हुई नली से पहुँचाया जा सकता है । T-नली को निकालने से पूर्व पित्तवाहिनियो की अवकाशिकाये खुली (patent) है या नही, इसका निश्चय कर लेना चाहिये ।

(a)

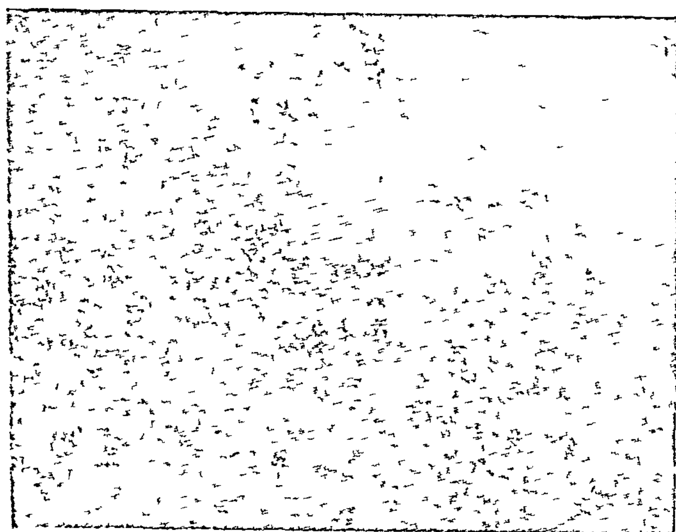


चित्र 45—(a) और (b) पित्ताश्मरिया अग्र-पश्च और पार्श्विक दृश्य। पार्श्विक दृश्य मे पृष्ठकित पित्ताश्मरियाँ (faceted gallstones) वृक्काश्मरियो (renal stones) की अपेक्षा अधिक आगे की ओर स्थित है।

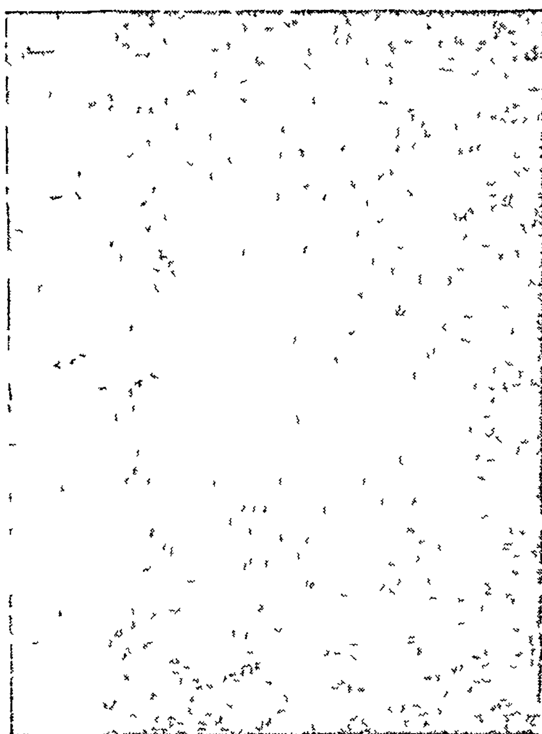
अतिआयोडिनयुक्त लवण, जैसे बिलिग्राफिन (bilₗigrafin) के घोल को पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर अन्त शिरीय मार्ग द्वारा प्रविष्ट करके चित्र लेने से पित्ताशय और पित्तवाहिनिया दृष्टिगोचर होती है। यह परीक्षण केवल उन रोगियो मे करना चाहिये, जिनको कामला न हो और यकृत का कार्य उत्तम हो।

ग्रह णी-नलिकाप्रवेशन (duodenal intubation)

इस क्रिया मे राइल (ryle's)-नली को ग्रहणी मे पहुँचाया जाता है जिसका निश्चय एक्स-रे परीक्षा से या ग्रहणी से आचूपित पदार्थों की क्षारीय प्रतिक्रिया से होता है। मैगनेशियम सल्फेट के 25 प्रतिशत घोल के 10-15 मिलि० राइल नली द्वारा प्रविष्ट करने से औडी की सवरणी शिथिल हो जाती हे और ग्रहणी की अतर्वस्तु का प्रति 15 मिनट पर आचूपण किया जाता है। इस प्रका आचूषित किये हुए प्रत्येक वार के नमूने की सूक्ष्मदर्शी परीक्षा से कोलेस्टरोल के क्रिस्टल, पूय कोशिकाओ और जीवाणुओ को देखा जाता है।



चित्र 46—कैल्सीभूत पित्ताशय (calcified gall-bladder)



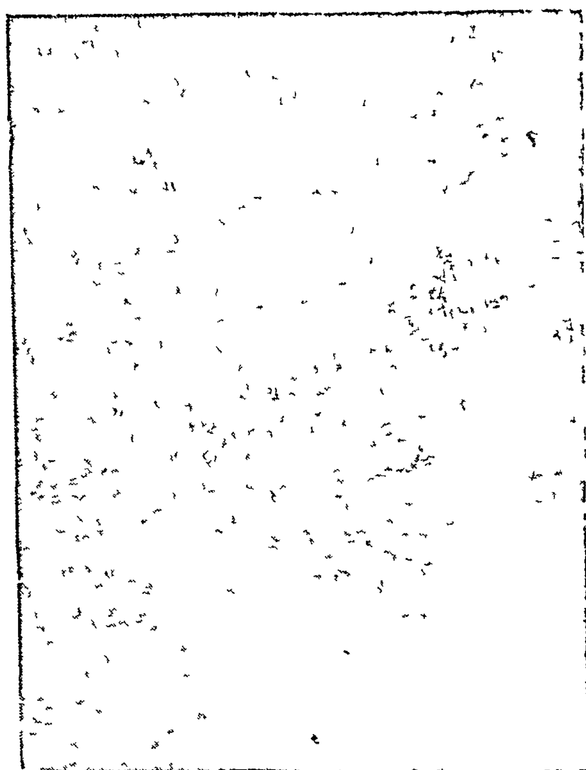
चित्र 47—पित्ताशयचित्र जिसमे पित्ताशय, सामान्य पित्तवाहिनी और सामान्य यकृतवाहिनयो मे अश्मरिया उपस्थित है।

आघात

वक्ष या उदर के समीप के भाग के कुचल जाने से और वेधक क्षतो से पित्ताशय तथा पित्तवाहिनियो के आघात होते है। लक्षण ग्रहणी वेध के समान होते है, वेदना और स्तब्धता तीव्र होते है। पर्युदर्यागुहा मे पित्त की उपस्थिति निदान की निश्चयात्मक है। चिकित्सा मुख्यतया शस्त्रकर्म द्वारा की जाती है, क्योकि पित्त पर्युदर्या का उग्र क्षोभक है जो शीघ्र ही सक्रमित हो जाती है। शस्त्रकर्म मे क्षत की स्थिति का बोध करके पित्ताशय का उच्छेदन (cholecystectomy) किया जाता है। पित्तवाहिनियो के क्षत मे पित्ताशय का आमाशय या मध्यात्र से सम्मिलन करना उचित है, वाहिनी के पुनर्निर्माण का उद्योग न करके उसका बधन ही करना चाहिये। यकृत वाहिनी के क्षत मे नली पर वाहिनी का पुनर्निर्माण करने की प्रथा प्रचलित है।

पित्ताशयाच्छेदन-कर्म मे पित्तवाहिनियो को आघात पहुँच सकता है जिससे शस्त्रकर्मपश्च कामला या पित्तनालव्रण उत्पन्न हो सकते हैं। इन

दुर्घटनाओ का निरोध (prevention) चिकित्सा से उत्तम है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि पित्तवाहिनियो तथा रक्तवाहिकाओ को बाधने या उन पर क्लैम्प लगाने से पूर्व उनको भली-भाति स्पष्ट करके उनके सबध का पूर्ण ज्ञान कर लेना आवश्यक है।



चित्र 48—पित्ताशयचित्र, ऋणात्मक छायाओ सहित, बहुपित्ताश्मरिया

पित्त मार्गो का शोथ

पित्तवाहिनियो और पित्ताशय के शोथ का जठरान्त्र-पथ के शोथ से निकटतम सबध है। सक्रमण प्राय ग्रहणी से पित्तवाहिनियो मे होता हुआ पित्ताशय मे पहुचता है और वहा से यकृत तक मे पहुच सकता है। वाहिनी तथा पित्ताशय के शोथ का प्रारम्भ प्राय वाहिनियो मे उपस्थित अश्मरी से होता है। अश्मरी की उत्पत्ति का कारण ऐसी साधारण दशाये हो सकती है जैसे बहुसगर्भताये (mutiple pregnancies) और स्थूलता (obesity)। अतिस्नेह और कोलेस्टरोल्युक्त आहार तथा परिवर्धनजन्य असगतियाँ (developmental anomalies) अश्मरी के निर्माण की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है। शोथ

केवल वाहिनियो मे परिमित रह सकता है अथवा वह पित्ताशय मे फैल सकता है। शोथ की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप मृत जीवाणु और फाइब्रिन के केन्द्र पर कोलेस्टरोल का अवक्षेपण (precipitation) होने से अश्मरी का निर्माण होता है। शोथ प्रारम्भ मे केवल अभिष्यन्दी (catarrhal) हो सकता है, किन्तु आगे चलकर अश्मरी की उपस्थिति मे सपूय (suppurative) हो जाता है।

अभिष्यन्दी पित्तवाहिनी-शोथ (catarrhal cholangitis)

विकृति

प्राय ग्रहणी से सक्रमण चलकर, श्लेष्मिक कला मे विसरित शोथ उत्पन्न करता हुआ, पित्तवाहिनियो मे पहुचता है। चिरकालीन शोथयुक्त पित्ताशय तथा पित्तवाहिकाओ मे तीव्र अभिप्यन्दी शोथ के वार-बार आक्रमण होते रहते है।

लक्षण अकस्मात् शीत कम्प, ज्वर तथा कामला होते है, जो गाढी होती चली जाती है। ऐसे आक्रमणो तथा अश्मरी की उपस्थिति का इतिवृत्त मिलता है।

चिकित्सा

मुख्यतया रोगरोधी चिकित्सा होती है, जो अश्मरी का अपहरण है। आक्रमण के समय बहुप्रभावी प्रतिजीवियो (broad spectrum antibiotics)-स्ट्रिप्टोमाइसिन, क्लोरमाइसिटिन आदि का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही मैगनेशियम सल्फेट या सोडियम सल्फेट को मुह से खिलाकर पित्त का निर्हरण भी वाछित है।

सपूय पित्तवाहिनी-शोथ (suppurative cholangitis)

विकृति—यह विशेषकर, पित्ताश्मरियो द्वारा अवरोधग्रस्त रोगियो मे होता है। अभिघात, शोथ अथवा दुर्दमताजन्य सकीर्णता (malignant strictures) से भी पित्तवाहिनीशोथ हो सकता है।

लक्षण

स्पर्शासह, विवर्धित यकृत के साथ शीतकम्प, ज्वर और विषाक्त-आकृति रोग के निश्चयात्मक लक्षण है। कामला गाढी होती है जिसका कारण प्रायः अश्मरी द्वारा अवरोध होता है।

चिकित्सा

चिकित्सा न करने पर मृत्यु अवश्यभावी है। रोगनिरोध के लिये पित्ताशय तथा पित्तवाहिनियो से अश्मरी का अपहरण बहुत आवश्यक है। प्रतिजीवियो का प्रयोग और पित्तनिर्हरण भी अनिवार्य हैं।

चिरकारी पित्तवाहिनी-शोथ (chronic cholangitis)

यह पित्तवाहिनियो का शनै शनै प्रच्छन्न प्रकार से प्रारम्भ होने वाला चिरकारी शोथ है जो तीव्र शोथ का चिरकारी रूप भी हो सकता है। बैठे रहने वाले स्थूलकाय वयस्को मे यह अधिक होता है। वाहिनियो मे बहुधा अश्मरी उपस्थित होती है।

लक्षण—पित्तशूल के पुन -पुन आक्रमण तथा शीतकम्पसहित अल्पकालिक ज्वर रोग के विशेष लक्षण है। अवरोधी प्रकार की कामला उपस्थित होती है। रोग के बार-बार आक्रमण से यकृत कोशिकाओ का पुन -पुन शोथ होता है जिसके कारण यकृत की कार्यक्षमता का ह्रास हो जाता है।

चिकित्सा

पित्ताशयोच्छेदन के समय, उपर्युक्त इतिवृत्त के रोगी मे पित्तवाहिनी तथा यकृत-वाहिनियो का अन्वेषण करके, यदि अश्मरी हो तो, निकाल देनी चाहिये। पित्तवाहिनी कनली द्वारा निर्हरण कुछ समय तक आवश्यक है।

तीव्र पित्ताशय-शोथ (Acute Cholecystitis)

हेतुकी

रक्तप्रवाह द्वारा या लसीकावाहिनियो द्वारा सक्रमण के पहुचने से तीव्र पित्ताशयशोथ उत्पन्न होता है। ग्रहणी से सक्रमण का आरोहण भी कारण बताया गया है। किन्तु शोथ सदा अधोश्लेष्मिक स्तर मे आरम्भ होता है, न कि श्लेष्मिक कला मे। अतएव सक्रमण रक्त या लसीकावाहित हाता है। यह रोग प्राय मध्य आयु की स्थूलकाय स्त्रियो मे होता है जिनके कई बच्चे हो चुके हैं। अधिक कोलेस्टरोल वाला तला हुआ आहार रोगप्रवृत्ति उत्पन्न करता है। छोटी आयु मे पित्ताशय के रोग बहुत कम होते हैं।

विकृति

रोज़नो (rosenow) के प्रयोगो से मालूम हुआ है कि सक्रमित पित्ताशय की

अधोश्लेष्मला से पृथक् किये हुए स्ट्रैप्टोकोकसो को जान्तव पित्ताशय मे प्रविष्ट करने पर उसका शोथ उत्पन्न हो जाता है।

सामान्यतया स्ट्रैप्टोकोकस रोग का कारण होता है, एन्टेमीबा कोलाई और साल्मोनेला टाइफोसस मे पित्तपथो मे वर्धन करने की विशेष प्रवृत्ति होती है। पित्ताशय के शोथ मे शोथ श्लेष्मिककला मे परिमित हो सकता है जिससे तीव्र अभिष्यन्दी पित्ताशयशोथ होता है। अथवा आशय के सब कचुको मे, सीरमी (serous) कचुक मे भी, तीव्र शोथ हो सकता है। शोथ के शमन होने पर आशय प्रसामान्य दशा मे लौट आता है। प्राय रोग के पुनराक्रमण होते रहते है जिससे पित्ताशय मोटा, तन्तुमय (fibrous) हो जाता है और चिरकालीन पित्ताशयशोथ की दशा हो जाती है। चिरकारी पित्ताशयशोथ स्वतः उसी रूप मे प्रारम्भ हो सकता हे, जिसके साथ प्राय अश्मरी उत्पत्ति भी होती है। कोलेस्टरोसिस (cholesterosis) एक दूसरी दशा है जिसमे पित्ताशय की लाल श्लेष्मिक कला पर कोलेस्टेरोल के पीत बिन्दु एकत्र हो जाते है ; इसका कारण चिरकारी पित्ताशयशोथ होता है।

कभी-कभी तीव्र अभिष्यन्दी पित्ताशयशोथ अधिक उग्र रूप ले लेता है और पित्ताशय के भीतर पूय बन जाती है, जिसको तीव्र सपूय पित्ताशय शोथ (acute suppurative cholecystitis) कहा जाता है। रोग की उग्रता के प्रबल होने से कोथयुक्त (gangrenous) पित्ताशयशोथ होकर आशय का वेध (perforation) हो जाता है। समीपस्थ आशय, आमाशय, ग्रहणी अथवा बृहदान्त्र का यकृत-वक्र भी—शोथयुक्त होकर आसजित हो जाते है। पित्ताशय की पूय इन आशयो मे निस्सरित हो सकती है जिससे आभ्यतर या बाह्य पैत्तिक नालव्रण बन जाता है। पित्ताशय का ऐम्पाईमा पित्तनलिका के अवरुद्ध होने से होता है। उससे म्यूकोसील भी बन सकती है जिसमे श्लेष्मा भरा रहता है।

लक्षण—मध्य आयु की स्त्री मे उदर के दक्षिण भाग मे तीव्र वेदना का आरभ और बेचैनी के साथ ज्वर रोग के अभिलक्षण है। पहले हलकी उदर वेदना तथा अपच के आक्रमण होते रहे है। वेदना दक्षिण अधोपर्शुक प्रदेश मे होती है और वहा से दक्षिण स्कध और असफलक प्रदेश मे उसकी अन्यत्रानुभूति (referred pain) होती है। उदरवेदना के मृदु आक्रमणो और मन्दाग्नि का इतिवृत्त भी मिलता है। जी मिचलाना और वमन भी होते है। दक्षिण नवी पर्शुका की नोक के समीप स्पर्शासहता प्रतीत होती है। (यह मर्फी चिह्न है)। साथ ही दक्षिण समोदरिका पेशी का आकर्ष होता है जिससे वहा कठोरता

(rigidity) हो जाती है। ज्वर 102-103 फै० होता है। हृदय की गति बढ जाती है (हृदक्षिप्रता) और श्वेतकोशिकाबहुलता होती है। नेत्र श्लेष्मला मे कुछ पीली आभा दीखती है।

तीव्र अभिष्यन्दी पित्ताशयशोथ के लक्षण दो-तीन दिन मे शान्त हो जाते है, किन्तु स्पर्शासहता और कठोरता के चिह्न अधिक समय तक बने रहते है। लक्षणो की पुनरावृत्ति प्राय होती है।

तीव्र सपूय और कोथयुक्त पित्ताशयशोथ के लक्षण अभिष्यन्दी शोथ ही के समान होते है, किन्तु उनका प्रारम्भ तीव्र और अधिक उग्र होता है। पूय बनने पर जीवविषरक्तता अधिक होती है, ज्वर भी अधिक होता है और सदा बना रहता है, कठोरता अधिक होती है और एक पिंड बना हुआ प्रतीत होता है। तीव्र कोथयुक्त पित्ताशयशोथ (acute gangrenous cholecystitis) मे प्राय पित्ताशय का वेध हो जाता है जिससे तीव्र कोचने के समान वेदना, स्तब्धता और वमन होते है। लक्षण तीव्र ग्रहणी-वेध (acute duodenal perforation) के समान होते हैं।

सापेक्ष निदान (differential diagnosis)

पैप्सिनी व्रण का वेध (perforated peptic ulcer)—आहार से वेदना का सबध और क्षार के प्रयोग से वेदना की शान्ति का इतिवृत्त सदा मिलता है। मुक्त तरल की उपस्थिति और यकृत अननुनाद का लोप व्रणवेध के मुख्य लक्षण है।

तीव्र अग्न्याशयशोथ (acute pancreatitis)—वेदना मध्यरेखा मे तथा वाम ओर अधिक होती है, वमन अत्यधिक होता है। सीरम का एमायलेज-स्तर बढ जाता है।

तीव्र उण्डुकपुच्छशोथ (acute appendicitis)—उच्च अधान्त्रपश्च (retroecal)-उण्डुकपुच्छ मे निदान कठिन होता है। साधारणतया वेदना दक्षिण श्रोणिफलक-खात मे होती है।

तीव्र एमीबाजन्य यकृतशोथ (acute amoebic hepatitis)—यकृत का विसरित स्पर्शासह विवर्धन (diffuse enlargement) होता है, जिसका ईमेटिन से शीघ्र शमन होता है।

कारोनरी घनास्रता (coronary thrombosis)—वेदना पुरोहृद (pre-cordial) प्रदेश मे होती है और पीठ मे वाम ओर तथा वाम बाहु मे फैलती है। रक्त दाब घट जाती है। इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम मे परिवर्तन विशिष्ट होते है।

चिकित्सा

प्रारभ मे, शामक चिकित्सा द्वारा लक्षणो का प्राय शमन हो जाता है। यद्यपि शस्त्रकर्म आवश्यक है, उसको रोगी की साधारण दशा के उन्नत हो जाने पर करना उचित है। इस रोग मे इतने समय तक प्रतीक्षा करना हानिकारक नही है।

काय-चिकित्सा मे पूर्ण शैया-विश्राम, तरल आहार और ऊष्मस्वेद लाभदायक है। मार्फीन, 15-20 मि० ग्रा० या पैथिडीन 50-100 मि० ग्रा० प्रति छ घटे पर देने से तीव्र वेदना शान्त हो जाती है। पेनिसिलिन या बहुप्रभावी प्रतिजीवी, जैसे एकोमायसिन का प्रयोग आवश्यक है।

शस्त्रकर्मचिकित्सा—जिन रोगियो के लक्षणो का कायचिकित्सा से शमन नही होता, अथवा पूयभवन या बेध होने के लक्षण दीखते हो, उनमे तत्काल शस्त्रकर्म आवश्यक है। उपयुक्त शस्त्रकर्म पित्ताशयोच्छेदन (cholocystectomy) है, किन्तु रोग की उग्रता को देखते हुए केवल पित्ताशयछेदन (choeeysto-tomy) किया जा सकता है। उच्छेदन कुछ समय पश्चात् किया जाय।

चिरकारी पित्ताशयशोथ
(chronic cholecystitis)

हेतुकी

चिरकारी पित्ताशय शोथ—प्राय मध्य आयु की बहुप्रसवा स्थूल स्त्रियो मे पित्ताशय का चिरकालीन शोथ होता है। जैसा कहा जा चुका है वह इसी रूप मे आरभ हो सकता है या वह तीव्र पित्ताशयशोथ का अनुसरण करता है।

विकृति

पित्ताशय की भित्तिया मोटी पड जाती है, वे सकुचित हो जाती हे और सीरमी स्तर के नीचे वसा एकत्र हो जाती है। पित्ताशय समीप की सरचनाओ से आसजित हो जाता है। बहुधा पित्ताश्मरिया उपस्थित होती है। श्लेष्मिक कला की कोमल मखमली आकृति जाती रहती है, उसकी सिलवटे भी जाती रहती है। कभी-कभी उसकी कोशिकाओ के रूप मे भी परिवर्तन हो जाता है, शल्की कोशिका प्ररूप मे इतरविकसनी (metaplastic) परिवर्तन हो जाते हे। श्लेष्मिक कला, अधोश्लेष्मिक स्तर, पेशी तथा सीरमी-कचुक सब मोटे हो जाते है। श्लेष्मिक पुटको के बीच की दरिया कभी-कभी पेशीस्तर मे चली

जाती हैं जिससे ग्रन्थियो का आभास होता है। कोलीम्टिरोमिस भी पित्ताशय-शोथ का एक प्रकार है।

लक्षण

अधेड आयु की स्त्री मे वातिल अग्निमाद्य (flatulent dyspepsia) विशेषकर स्नेहयुक्त तले हुए आहार, मक्खन या अडो के पश्चात्, इस रोग का अभिलक्षक है। किन्तु स्नेहयुक्त आहार और वेदना मे, पेप्सिन व्रण के समान, विशिष्ट सबध नही होता। आध्मान के साथ डकारें आती है। तीव्र वेदना और अल्पकालिक कामला के अस्थायी आक्रमण भी पाये जाते है। दक्षिण अधोपर्शुक प्रदेश मे स्पर्शासहता और दक्षिण समोदरिका की कठोरता भी निश्चयात्मक चिह्न है।

चिकित्सा—यह रोग अत्यन्त कष्टसाध्य है जिससे तीव्र शोथ के आक्रमण होते रहते हैं। पित्तश्मरियो का उससे निकट संबध है। पित्ताशयोच्छेदन उसकी उपयुक्त चिकित्सा है।

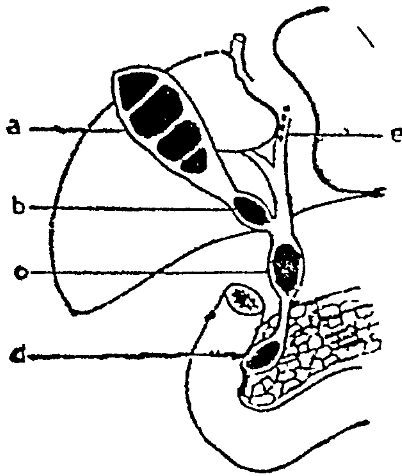
पित्ताश्मरी (gall stones)—पित्ताश्मरता (cholelithiasis)

हेतुकी

पित्ताश्मरिया तीन प्रकार की होती हैं, केवल वर्णक (pigment)-कृत, केवल कोलेस्टेरोलकृत और मिश्रित जिनमे कोलेस्टेरोल, वर्णक और केलशियम तीनो मिले होते हैं। पित्ताशय मे पित्त का एकत्र रहना (stasis), सक्रमण और अतिकोलेस्टेरोलरक्तता (hypercholesterolemia) अश्मरी-उत्पत्ति के कारण होते हैं। शोथ के कारण कोशिकाओ और फाइब्रिन का निस्सरण होता है, जो पित्तलवणो या वर्णको के एकत्र होने के लिए एक केन्द्रक का काम करता है। अतिस्नेहयुक्त आहार, मक्खन और अडो से रक्त मे कोलेस्टेरोल की अधिकता होती है। पुन -पुन सगर्भता से भी कोलेस्टेरोल की मात्रा वढती है। रक्तसलायी विकारो से भी वर्णककृत अश्मरी उत्पन्न होती है। कभी-कभी वालको मे भी अश्मरी वन जाती है, यद्यपि अधिकतर मध्य आयु मे होती है।

विकृति

एकल पित्ताश्मरी प्राय हार्टमैन कोष्ठिका (hartman's pouch) या पित्ताशय के वुघ्न मे उपस्थित होती है और वहा से पित्ताशयवाहिनी मे होकर,



चित्र 49—पित्तमार्गों मे पित्ताश्मरियो की स्थिति, (a) पित्ताशय मे पृष्ठकित पित्ताश्मरियाँ, (b) पित्ताशयिक वाहिनी मे एक अश्मरी, (c) पित्तवाहिनी मे अश्मरी, (d) वेटर की कलशिका मे अन्तर्घटित अश्मरी, (e) यकृत वाहिनी मे लघु अश्मरी।



चित्र 50— चिरकालीन पित्ताशयशोथ, पित्ताश्मरियो-सहित

पित्तनलिका मे होती हुई, ग्रहणी मे पहुच जाती है। किन्तु बहुधा अश्मरी इस मार्ग मे कही अन्तर्घट्टित (impacted) हो जाती है। कोलेस्टेरोलकृत अश्मरी प्राय एक ही होती है। मिश्रित अश्मरिया पृष्ठाकित (faceted) हो जाती हैं।

कोलेस्टरोलकृत अश्मरिया गहरे भूरे रग की और अत्यन्त चूर्ण्य (friable) होती है । अश्मरी के अधिक काल तक रहने मे पित्ताशय की श्लेष्मिक कला की कोशिकाओ मे परिवर्तन हो जाते है , वे जहा तहा गरकी आकार की हो जाती है । कभी-कभी दुर्दमता (malignancy) अध्यारोपित हो जाती है । अधिकतर पित्ताशय के कार्सिनोमा के साथ पित्ताश्मरी होती है । पित्तवाहिनी मे अन्तर्घट्टित अश्मरी से पित्ताशय सकुचित हो जाता है । यदि रुद्ध पथ कामला (oastructive jaundice) मे पित्ताशय विस्फारित और परिस्पर्श्य हो तो पित्तवाहिनी के अध प्रात पर दुर्दम अवरोध (malignant obstruction) है । यह कूर्वोजियर (aourvolsier's law)-नियम के अनुमार ही है ।

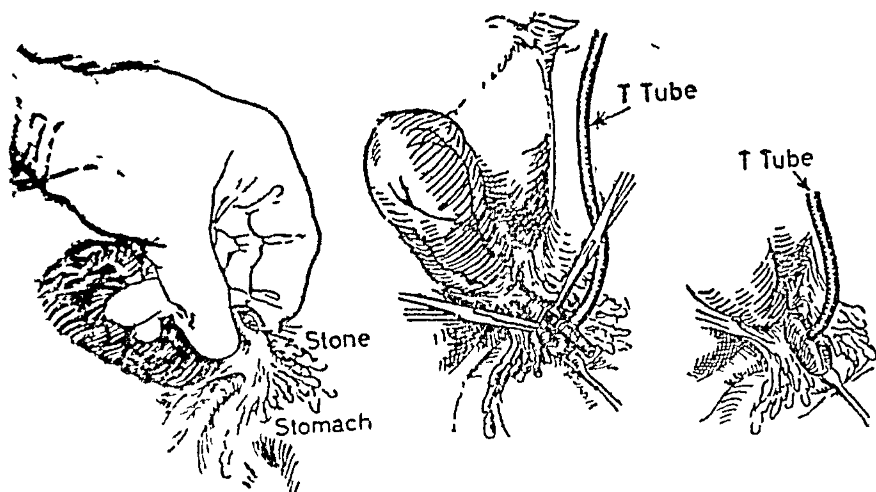
लक्षण

पित्ताश्मरी की उपस्थिति पित्ताशयशोथ के लक्षणो या एक कारण होती है । पित्तमार्गो की सरल पेशियो के आकर्ष से पित्तशूल हो सकता है । हार्टमैन-कोष्ठिका मे अश्मरी के होने मे कोई लक्षण नही उत्पन्न होते । इन रोगियो को वातिल अग्निमाद्य रहा है । पित्तशूल मे दक्षिण अध पर्शुक प्रदेश मे तीव्र वेदना होती है जो उसी ओर पीठ मे स्कध तक फैल जाती है । प्राय ज्वर होता है, किन्तु कामला का होना आवश्यक नही है । पित्ताश्मरी पित्ताशयवाहिनी मे (cystic duct) होकर पित्तवाहिनी मे पहुच सकती है । अश्मरी के पित्ताशय-वाहिनी मे अन्तर्घट्टित हो जाने से पित्ताशय मे श्लेष्मा एकत्र होकर वह विस्तृत हो जाता है और म्यूकोसील (mucocele) बन जाती है । कभी-कभी उसके सक्रमित होने से पित्ताशय का एम्पाईमा हो जाता है । अश्मरी पित्त नलिका के निम्न प्रान्त पर यकृतअग्न्याशय-कलशिका (hepatoduodenal ampulla) मे अन्तर्घट्टित हो सकती है । ऐसा होने पर पित्तनलिका मे सक्रमण फैल जाता है जिससे शीतकम्प, ज्वर, वमन, उदरशूल और कामला के आक्रमण होते हैं और पित्ताशयवाहिनी के भी आक्रान्त होने से यकृत के कार्यो का ह्रास होता है ।

उपद्रव

पित्ताश्मरी की उपस्थिति और उसके अन्तर्घट्टित होने या न होने पर उपद्रव निर्भर करते है । म्यूकोसील और पित्ताशय के एम्पाईमा का उल्लेख किया जा चुका है । तीव्र और चिरकारी पित्ताशयशोथ पित्ताशयवाहिनियो मे उपस्थित अश्मरियो से होता है, जिसके साथ रुद्धपथ कामला उत्पन्न होती

है। यकृत-अग्न्याशयकलशिका मे अश्मरी के अन्तर्घट्टन से अग्न्याशयशोथ होकर फूले हुए झागदार वडे-वडे दस्त आते है। शोथयुक्त पित्ताशय मे उपस्थित अश्मरी उसमे व्रण वनाकर समीपस्थ आशय मे जा सकती है और इस प्रकार आभ्यतर पैत्तिक नालव्रण (internal biliary fistula) वन जाता है। इसी प्रकार वह उदरभित्ति द्वारा बाह्य पैत्तिक नालव्रण वना सकती है। एक वडी अश्मरी इसी भाति पित्ताशय से ग्रहणी मे होती हुई आत्र मे पहुँच कर शेपात्र के अन्त्य सकुचित भाग मे अन्तर्घट्टित होकर तीव्र आत्रावरोध उत्पन्न कर सकती है। कभी-कभी अश्मरी के कारण श्लेष्मिक कला के चिरक्षोभ से दुर्दमता उत्पन्न हो जाती है।



चित्र 51--पित्तवाहिनीछेदन तथा सामान्य पित्तवाहिनी से निकास का आरेख (ड्राइग)

अश्मरी पर वाहिनी का छेदन | सामान्य पित्तवाहिनी मे T-नली का प्रवेश | T-नली पर सामान्य पित्तवाहिनी की सीवन

चिकित्सा

पित्ताशय अश्मरयता (cholelithiasis) के रोगियो मे, पित्तवाहिनीशोथ के पुन -पुन आक्रमण के कारण, यकृत को और अधिक क्षति से वचाने के लिए शस्त्रकर्म, जितना शीघ्र हो सके, करना आवश्यक है। किन्तु रोगी की सावारण दशा उपयुक्त होनी चाहिए। इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम द्वारा उसके हृदय की दश तथा वृक्क और फुप्फुसो के कार्यो की भी परीक्षा कर लेनी चाहिए।

शल्य चिकित्सा

शस्त्रकर्म के पूर्व यकृत की कार्यक्षमता की सावधानी से जाच करना उचित है। जिनको कामला हो चुकी है उनको शस्त्रकर्मपूर्व सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। उनमे यकृतकार्यअल्पता तथा शस्त्रकर्म-पश्चात रक्तस्राव की सभावना न भूलनी चाहिये। विटामिन-के और 5 प्रतिशत डैक्सट्रोज घोल उनको आन्त्रेतर (parenteral) मार्ग द्वारा कुछ दिन तक दिए जाय। निम्नलिखित शस्त्रकर्मों मे से कोई भी आवश्यक हो सकता है। पित्ताशयछेदन (cholecystotomy) अथवा पित्ताशयोच्छेदन (cholecystectomy), पित्तवाहिनीछेदन या छिद्रीकरण (choledochotomy, choledochostomy), पित्ताशय-जठर-समिलन (cholecysto-gastrostomy)।



चित्र 52—पित्तवाहिनी चित्र, जिसमे पित्तवाहिनी के निम्न प्रान्त पर एक अन्तर्रुद्धित अश्मरी दीख रही है।

सामान्य उपस्थित रोग पर पित्ताश्मरीजन्य अवरोध को हटाना मुख्य उद्देश होना चाहिए। पित्तनलिका को स्पष्ट करके उसके परिस्पर्शन से अश्मरी की स्थिति का निश्चय करने के पश्चात उसके अधिग्रहणी (supraduodenal)

मार्ग मे छेदन द्वारा वाहिनी की अवकाशिका (lumen) मे पहुचा जाता है और वाहिनी के भिन्न प्रान्त या ग्रहणी के पीछे के भाग मे उपस्थित अश्मरी को नीचे से ऊपर को दबा-दबाकर (गोस्तन को दुहने के समान) तथा छेदन मे पहुँचाकर उसको निकाल लिया जाता है। वाहिनी के अधोप्रान्त मे अश्मरी के अन्तर्घट्टित होने पर दो उपाय किए जा सकते हे।

एक प्रक्रिया यह है कि दक्षिणवृक्क पर की पर्युदर्या मे एक ऊर्ध्वाधर छेदन करके ग्रहणी को वाम ओर को हटा देते है जिससे उसके पीछे की पित्तवाहिनी अत तक स्पष्ट हो जाती है। उपर्युक्त स्थान पर एक छेदन करके उसके द्वारा अश्मरी को निकालने के पश्चात वाहिनी को फिर सी दिया जाता है और वाहिनीछेदन के स्थान तक एक रबडनली रखकर ग्रहणी को पुन उसके पुराने स्थान पर रख दिया जाता है।

दूसरो इसकी पर्याय प्रक्रिया यह है कि ग्रहणी के दूसरे भाग की अग्र-भित्ति का छेदन करने से पित्तवाहिनी का मुख सामने आ जाता है जिसको ऊर्ध्वाधर दिशा मे विभक्त कर दिया जाता है और अश्मरी को निकालने के पश्चात पित्तवाहिनी और ग्रहणी की भित्ति को क्रोमिक कैटगट मे सी दिया जाता है।

पित्तवाहिनी से अश्मरी का अपहरण करने के पश्चात एक नली द्वारा उसका निर्हरण करना (drainage) आवश्यक हे। शस्त्रकर्म के पश्चात प्रति-क्रियाजन्य शोफ से अवरोध न होने पाये तथा यकृत के कार्यो को उन्नत करने के हेतु 7-10 दिन तक पित्तवाहिनी मे नली रखना उचित है। पित्तवाहिनी के शोथ के रोगियो मे बहुप्रभावी प्रतिजीवियो का प्रयोग अनिवार्य है। नली द्वारा डायोडोन प्रविष्ट करके लिए हुए चित्र से वाहिनीतत्र के अवरुद्ध या खुले होने का पता चल जाएगा। शस्त्रकर्म के एक सप्ताह के पश्चात ऐसे चित्र से पित्त-नलिका मे अवरोध होने या न होने का भी पूर्ण ज्ञान हो सकता है। उसके पश्चात नली निकाली जा सकती हे। यदि कोई अश्मरी रह गई हो तो उसको शस्त्रकर्म द्वारा निकालना होगा, नही तो नली को निकालने पर पेप्टिक नाल-व्रण बन जाएगा। इसी कारण प्रथम शस्त्रकर्म के समय समस्त पित्तवाहिनी का अश्मरी के लिए अन्वेषण आवश्यक है।

प्राय इसके छ सप्ताह के पश्चात पित्ताशयोच्छेदन किया जाता है।

यकृत वाहिनियो मे भी पित्ताश्मरी उपस्थित हो सकती हे। इस कारण शस्त्रकर्म के समय एक नम्य शलाका या बूजी को प्रविष्ट करके इन वाहिनियो की भी परीक्षा कर लेनी चाहिए।

सुदम अर्वुद (Benign Tumours)

सुदम अर्वुद विरल हैं। अकुरार्वुद, ग्रन्थ्यर्वुद और तान्तव अर्वुद हो सकते हैं। ये लक्षणहीन होते है, शस्त्रकर्म के समय उनका पता चलता है।

दुर्दम अर्वुद

पित्तवाहिनियो के दुर्दम अर्वुद प्राय पाये जाते है, विशेषकर पित्ताश्मरिया के साथ, तथा चिरकारी पित्ताशयशोथ मे भी वे हो जाते है। ये प्राय ग्रन्थ्यर्वुद होते है, किन्तु पित्ताशय की श्लेष्मिक कला के किसी उतरविकासनी (metaplastic) भाग मे शल्की कोशिका कार्सिनोमा उत्पन्न हो सकता है।

पित्ताशय का कार्सिनोमा

पूर्वोक्तानुसार पित्ताशय के कार्सिनोमा के साथ प्राय पित्ताश्मरिया भी होती है। वह अधिकतर मध्य आयु की स्त्रियो मे होता है जिनमे पित्त शूल के पुन पुन आक्रमणो का लम्बा इतिवृत्त मिलता है।

विकृति

पित्ताशय का कार्सिनोमा मुख्यतया दो प्रकार का होता है, वह अधिकतर एडीनोकार्सिनोमा होता हे और कुछ मे शल्की कोशिका कार्सिनोमा होता है जो देखने मे अकुरयुक्त या श्लेष्माभ (papillary, mucoid) होता है। पित्ताशय की भित्तिया मोटी, दृढीभूत और चिरशोथयुक्त के समान दीखती है। अर्वुद शीघ्रता से बढता हे और यकृत मे अन्त सरण (infiltration) करता है अथवा रक्तप्रवाह द्वारा फुप्फुस, अस्थियो तथा अन्य आशयो मे उसका स्थलातरण होता है।

लक्षण

पित्ताशयशोथ के दीर्घ इतिवृत्त वाले रोगी के उदर के पित्ताशय प्रदेश मे एक दृढ पिंड वन जाता है। प्राय उसका निदान पित्ताशयशोथ होता है। शस्त्रकर्म पर अर्वुद का ज्ञान होता है। वेदना प्रमुख लक्षण होती है और आगे चलकर प्रतिहारीद्वार के अन्त सरण या यकृत मे स्थलातरण के कारण कामला हो जाती है।

सापेक्ष निदान

पित्ताशयशोथ और पित्ताशय के कार्सिनोमा मे भेद करना कठिन है। किन्तु द्रुतवर्धी पिंड की असाधारण दृढता नैदानिक लक्षण है। यकृत और आमाशय के अर्बुदो के कारण भी निदान मे कठिनाई हो सकती है। एक्स-रे-चित्रण सहायक नही होता।

चिकित्सा

रोग के प्रारम्भ मे पित्ताशयोच्छेदन चिकित्सा का केवल उपाय है। यकृत के अन्त सरण होने पर यकृत के समीपस्थ भाग का भी उच्छेदन किया जाता है। रोगनिरोध के लिये पित्ताश्मरियो और पित्ताशयशोथ की उपयुक्त चिकित्सा अत्यन्त आवश्यक है।

पित्तवाहिनी तथा यकृतवाहिनी का कार्सिनोमा—ऐसे अर्बुद विरल है। वे वाहिनी मे वलयसकिरण के समान दीखते है जिसका परिणाम अवरोध और कामला होते है।

विकृति

पित्ताशय से विरुद्ध, यकृत और पित्तवाहिनियो के कार्सिनोमा का अश्मरियो से सम्बन्ध असाधारण है।

लक्षण

रुद्धपथ कामला से रोग प्रारम्भ होता है। ऊर्ध्व उदर मे मन्द वेदना और यकृत का विवर्धन उपस्थित हो सकते है। लक्षण निरन्तर बढते रहते है जिससे पित्तशूल के सविराम आक्रमणो द्वारा उसका पित्ताश्मरी से सहज मे भेद किया जा सकता है।

सापेक्ष निदान

अग्न्याशय के शिर के कार्सिनोमा और चिरकारी अग्न्याशयशोथ के लक्षण पित्तवाहिनी के अध प्रान्त के कार्सिनोमा के समान होते है। अश्मरी के अवरोध से प्राय पित्ताशय का विस्फार नही होता जिससे उसका परिस्पर्शन भी नही किया जा सकता। दुर्दम अवरोध मे इससे विपरीत होता है।

चिकित्सा

खडाश मे उपस्थित वाहिनी का उच्छेद और सम्मिलन प्राय सभव नही

होते। पित्तवाहिनी की सीमित वृद्धियो की प्रारंभिक अवस्था मे वृद्धि का उच्छेदन और पित्ताशय का मध्यान्त्र से सम्मिलन किया जाता है। पित्तवाहिनी के अध प्रान्त मे अर्बुद होने पर अग्न्याशय-ग्रहणी-उच्छेदन (pancreatico-duodonectomy) का निर्मूलक शस्त्रकर्म करना पड़ता है। इस शस्त्रकर्म मे अग्न्याशय मे शिर और ग्रहणी का उच्छेदन और पित्तवाहिका, अग्न्याशयवाहिका तथा आन्त्र के सातत्य (continuity) का पुनर्निर्माण किया जाता है। यह अग्न्याशय के शिर के कार्सिनोमा के शस्त्रकर्म के समान है। रोग के बढ़ जाने पर शामक (palliative) पित्ताशय-जठरछिद्रीकरण (cholecystogastrostomy) से कुछ समय के लिये विश्राम मिल सकता है।

अग्न्याशय (Pancreas)

शरीररचना

अग्न्याशय एक पर्युदर्यापश्च गुच्छित (racemose) ग्रन्थि है जो उदर के उर्ध्व भाग मे अनुप्रस्थ दिशा मे स्थित है, उसका सिर दक्षिण ओर दूसरे कटि-कशेरुक के स्तर पर, ग्रहणी के वक्र मे स्थित है और काय, प्रथम कशेरुक के स्तर पर रहती है। शिर से प्रारम्भ होकर वह बायी ओर को चली जाती है जहा वह प्लीहा से सम्पर्क करती है। शिर के अतिरिक्त व्याख्या के लिये उसमे ग्रीवा, काय और पुच्छ भी माने गये है। पश्च ओर वह दक्षिण वृक्करक्त-वाहिकाओ, अधो महाशिरा, ऊर्ध्व आत्र योजनी धमनी, और प्रतिहारिणी शिरा के प्रारम्भ से सम्बन्धित है। ग्रन्थि मे अग्र, अग्र-अधो, तथा पश्च पृष्ठ है। अग पृष्ठ लघु वपाकोश (lesser omental sac) और आमाशय के पश्चपृष्ठ के सम्बन्ध मे रहता है। अग्र अधो पृष्ठ आत्र से सम्पर्क करता है। पश्चपृष्ठ महाधमनी, वाम वृक्क रक्तवाहिकाओ, प्लीहा शिरा और वाम वृक्क के द्वार (हाइलम) से सम्बन्धित है।

मुख्य अग्न्याशय वाहिनी पुच्छ से प्रारम्भ होकर समस्त ग्रन्थि की लम्बाई को पार करके शिर की ग्रहणी की ओर की धारा से निकलकर पित्तवाहिनी से निम्न प्रान्त पर मिलती है। कभी-कभी वह स्वत ग्रहणी मे खुलती है। सहायक-अग्न्याशय वाहिनी (सेन्टोरिनी वाहिनी) केवल शिर के एक भाग के स्राव को ले जाती है और ग्रहणी मे पित्त वाहिनी के 1-2 से मी. ऊपर खुलती है।

रक्त संचार

अग्न्याशय मे प्रचुर रक्त सचार होता है। उसमे प्लीहा धमनी तथा ऊर्ध्व

और अधो अग्न्याशय-ग्रहणी (pancreaticoduodenal)-धमनियाँ रक्त पहुचाती है। लसीका निर्हरण अग्न्याशय-ग्रहणी, अग्न्याशय और कुक्षि (cocliac) लसीकापर्व समूहो मे होता है।

तन्त्रिकायें—कुक्षि जालिका तथा वागस तन्त्रिका से आती है।

शरीरक्रिया

अग्न्याशय प्रतिदिन 1-2 लिटर क्षारीय, प्रबल प्रोटीन-लायी, रस का स्राव करता है जिसमे ट्रिप्सिन, लाइपेज, और एमायलेज नामक एजाइम होती है। जब तक रस वाहिनियो मे रहता है तब तक वह निष्क्रिय होता है, किन्तु ज्यो ही वह ग्रहणी मे आन्त्ररसो के सम्पर्क मे आता है वह प्रबल और सक्रिय हो जाता है। कभी-कभी अभिघात या सक्रमण से वह ग्रन्थि ही मे सक्रिय हो जाता है जिससे अग्न्याशय तथा समीप के ऊतको मे विस्तृत परिगलन (necrosis) हो जाती हे।

उपर्युक्त बाह्य स्राव के अतिरिक्त ग्रन्थि मे एक अन्त स्राव (internal secretion) भी बनता हे, जो इसूलिन (insulin) कहा जाता है। लैंगरहैन के द्वीपको की कोशिकाये इस स्राव को बनाती है जो वहा से सीधा रक्त मे चला जाता है। रक्त मे शर्करा के स्तर को स्थिर रखना इस स्राव का काम है।

परिवर्धन

अग्न्याशय का परिवर्धन आद्य मध्यान्त्र (midgut) के दो अन्तरर्जनस्तरकृत वहिर्वलनो (entodemal evaginations) से होता है। इसी से ग्रन्थि मे दो वाहिनियो की असामान्य स्थिति तथा वलयाकार (annular) अग्न्याशय, जो ग्रहणी के दूसरे भाग को घेरे रहता है, उल्लेखनीय है। इस दूसरी असगति से जठर-निर्गम अवरोध हो जाता है।

प्रयोगशाला-परीक्षण

रोग के निदान के लिये निम्नलिखित परीक्षणो द्वारा अग्न्याशय के बाह्य और अन्त स्राव का आकलन (estimation) किया जाता है।

सीरम लाइपेज और एमायलेज—लाइपेज का प्रसामान्य सीरम स्तर 85-205 और एमायलेज 80-200 मात्रक है। तीव्र अग्न्याशयशोथ मे वे बहुत बढ जाते है।

मूत्र मे लाइपेज और एमायलेज—ये सभी बढ जाते है। एमायलेज

(डायास्टेज), जिसका सामान्य स्तर 40 और 80 मात्रक के बीच मे रहता है, बहुत बढ सकता है।

अन्य परीक्षरण—अग्न्याशय अपर्याप्तता मे मल मात्रा मे अधिक और झागदार (frothy) होता है। मल मे अपचित पेशीतन्तुओ की उपस्थिति अग्न्याशय अपर्याप्तता की द्योतक है। रक्त शर्करा के आकलन और ग्लूकोज-सह्यता परीक्षण से इसुलिन-अन्त स्राव की न्यूनता या आधिक्य का पता चलता है। तीव्र अग्न्याशय शोथ मे अति शर्करारक्तता (hyperglycaemia) कुछ समय के लिये हो जाती है और उसके साथ ग्लूकोजमेह भी हो जाता है।

आघात

अग्न्याशय की स्थिति के कारण उसके आघात बहुत असाधारण है। आमाशय, प्लीहा, वृक्क आदि के शस्त्रकर्मो मे अग्न्याशय को आघात पहुच सकता है। ऊर्ध्व उदर के पिच जाने से अग्न्याशय का कुट्टज नील (contusion) हो सकता है। उससे अग्न्याशय की कूटपुटी तथा विद्रधि तक बन सकती है। विद्रधि के निर्हरण से अग्न्याशय नालव्रण उत्पन्न हो सकता है।

अग्न्याशयशोथ (Pancreatitis)

अग्न्याशयशोथ तीव्र या चिरकारी हो सकता है।

तीव्र अग्न्याशयशोथ (acute pancreatitis) सक्रमण से उत्पन्न हो सकता है, किन्तु अग्न्याशय ऊतक के परिगलन से भी हो जाता है जिसमे प्रारम्भ मे सक्रमरण नही होता। आघात और पित्तवाहिनियो तथा अग्न्याशय वाहिनियो मे अवरोध तीव्र अग्न्याशय शोथ की प्रवृत्ति उत्पन्न करते है। अग्न्याशय ऊतक मे उपस्थित निष्क्रिय प्रोटीनलायी एजाइम सक्रिय होकर ग्रन्थि का स्वपाचन (autodigestion) प्रारम्भ कर देती है। रोगी प्राय स्थूल, मध्य आयु का और मद्यप होता है और 70 प्रतिशत मे साथ मे पित्ताशय रोग होता है। सक्रमरण ग्रहणी से लसीका वाहिकाओ, रक्त प्रवाह या वाहिनियो द्वारा पहुँच सकता है। पैत्तिक तत्र का रोग, और पित्ताश्मरी रोग प्रवृत्ति उत्पन्न करते है। समीप के आशय से फैलकर, जैसे पैप्सिनी व्रण मे, रोग अग्न्याशय को ग्रस्त कर सकता है। अग्न्याशय वाहिनियो मे पित्त के प्रत्यावहन के कारण, सक्रमण न होने पर भी, अग्न्याशय एजाइमो के सक्रिय होने से भी तीव्र शोथ उत्पन्न हो सकता है। इस प्रत्यावहन का कारण यकृत-अग्न्याशय कलशिका मे अन्तर्घट्टित अश्मरी, औडी की सवरणी का आकर्ष या अग्न्याशय वाहिनी को अवरुद्ध करने वाला

अर्बुद हो सकता है ।

कनफेड (mumps) के समान तीव्र सक्रमण के पश्चात अभिघात से भी तीव्र अग्न्याशय शोथ हो सकता है, यद्यपि उसका कारण अज्ञात है ।

विकृति

अग्न्याशय रस के सक्रिय हो जाने से ग्रन्थि का स्वपचन होता हे जिसमे रक्त सचार अधिक होने से रक्तस्राव युक्त निस्सरण बनता हे । वह एक तीव्र शोथ प्रतिक्रिया होती हे जो सारी ग्रन्थि को ग्रस्त करती है या ग्रन्थि के शिर, काय, या पुच्छ मे परिमित रहती है । प्रतिक्रिया की सीमा मे भिन्नता पाई जाती है । वह परिगलन (necrosis) या कोथ (gangrene) तक हो सकती है, अथवा वह मृदु शोफ और कुछ रक्तस्राव होती हे । साथ ही सारे शरीर मे अधस्त्वक वसा का परिगलन होने लगता है, विशेषतया उदरभित्तियो मे और आत्रयोजनी तथा वपा की वसा का ।

लक्षण

प्रारम्भ अकस्मात तीव्र अधिजठर वेदना से होता है जो एक मध्य आयु वाले व्यक्ति मे बाई ओर फैल जाती है, व्यक्ति को पहले पित्ताशय शोथ के आक्रमण होते रहे है । वमन, रक्तदाब का ह्रास, क्षीण नाडी—ये पात के लक्षण प्रकट हो जाते हैं । वमन, स्तब्धता, तीव्र वेदना, कभी-कभी रक्तवमन और पात (collapse), आमाशय तथा अग्न्याशय के समीप कुक्षि तत्रिका जालिका (coeliac plexus) के क्षोभ (irritation) का परिणाम होते है । स्तब्धता का कारण अग्न्याशय की वस्तु मे रक्तस्राव होना तथा रक्त युक्त निस्सरण का पर्युदर्या गुहा मे, विशेषकर लघु कोप मे, एकत्र होना, होते है । हल्की श्यावता, निर्जलीकरण और नाभि के चारो ओर तथा उदर पार्श्व मे विरजन (discolouration) दिखाई पडते हैं । ऊर्ध्व उदर मे कठोरता (rigidity) हो जाती है, किन्तु यकृत अननुनाद सामान्य रहता है । गुद परीक्षा पर कुछ भी नही मिलता । हल्की कामला हो जाती है ।

निदान

तीव्र अग्न्याशय शोथ का उदर के ऊर्ध्व भाग मे वेदना के अन्य कारणो से भिन्न करना आवश्यक है । पैप्सिनी व्रण का वेध, कारोनरी धमनी का अन्तर्रोध (occlusion), तीव्र पित्ताशयशोथ और तीव्र आन्त्रावरोध ऐसी दशाये है ।

एक्स-रे चित्र से निर्णय हो सकता है। यकृत अननुनाद की अनुपस्थिति पच्छिन्न व्रण का व्यतिरेक कर देती है। कारोनरी धमनीरोध की वेदना पुरोहृद (precordial) क्षेत्र में प्रतीत होती है और ग्रीवा तथा बाई बाहु में फैलती है। विद्युद्-हृदलेख (E. C G) में भी परिवर्तन दीखते हैं। प्रयोगशाला परीक्षणों से सहायता मिलती है।

चिकित्सा

इस रोग में सर्जरी नहीं की जाती, यद्यपि व्रण वेध के निश्चय के लिए उदरछेदन आवश्यक हो सकता है। यदि पित्तनलिका में अश्मरी अन्तर्घट्टित मिले तो उसका अपहरण करके T नली द्वारा निर्हरण का प्रबंध किया जाय। लघु कोश का निर्हरण, जब तक वहा विद्रधि न बन जाय, आवश्यक नहीं है।

तीव्र अग्न्याशयशोथ की चिकित्सा में निम्न आयोजन किए जाते हैं

वेदना का शमन पैथिडीन (100 मि० ग्रा०) द्वारा किया जाता है, जब आवश्यक हो उसको दिया जा सकता है। प्रोकेन द्वारा T-4 से T-10 तक (उरो-कशेरुक) पराकशेरुकरोध (paravertebral block) लाभदायक है।

स्वपाचन रोकना जठर आचूषण द्वारा किया जाता है। जिससे आभ्यन्तर हारमोन का शोषण न हो सके और अग्न्याशयरस न बने। एट्रोपीन और बैन्थीन (banthine) के अन्त शिरीय इंजेक्शन का भी यही परिणाम होता है।

स्तब्धता की चिकित्सा—अन्त शिरीय तरल, प्लाज्मा अथवा रक्त, लक्षणानुसार, दिए जाते है। और कोर्टिसोन शिरा द्वारा देना लाभदायक है। प्रारंभ में उसके 10-20 मिलीग्राम, अन्त शिरीय लवण विलयन की एक बोतल में मिला दिए जाते है। इसको दोहराया जा सकता है और 200 मिलीग्राम कोर्टीसोन भी प्रतिदिन, प्रथम दो दिन देना उपयोगी है। तत्पश्चात कोर्टीसोन की मात्रा को घटाकर 100 और तब 50 मि० ग्रा० कर दी जाय, जिसको एक सप्ताह तक जारी रखा जाय।

प्रतिजीवियो (बहुप्रभावी) का प्रयोग सक्रमण रोकने के लिए आवश्यक है।

तरल और विद्युदपघट्य सतुलन—की ओर ध्यान देना चाहिये। मूत्रोत्सर्ग की कुल मात्रा तथा रक्त के सोडियम और क्लोराइड स्तर इसके द्योतक है।

इंसुलिन का प्रयोग—ग्लूकोजमेह को रोकने के लिए 20 मात्रक प्रतिदिन या इससे अधिक आवश्यक हो सकते है। उनका प्रयोग कुछ समय तक जारी रखना चाहिये जिससे शोथ-युक्त द्वीपक कोशिकाओ (islet cells) का भार कम हो सके।

रोग का अति तीव्र तड़ित्कल्प (fulminating) गम्भीर दशा होती है और इसका प्रज्ञान अनुकूल नहीं होता। रोगनिरोध के लिए पित्तवाहकपथ के अश्मरी रोग की उपयुक्त और पर्याप्त चिकित्सा आवश्यक है। तीव्र अग्न्याशय शोथ के शमन के पश्चात पित्ताशय रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। रोग के अनुगम (sequela) के रूप में चिरकारी अग्न्याशयशोथ हो जाता है या अग्न्याशयशोथ के आवर्ती आक्रमण हो सकते हैं। डायाबिटीज मेलिटस (dialectes mellitus) दूसरा उपद्रव है जो कभी-कभी हो जाता है।

चिरकारी अग्न्याशयशोथ (chronic pancreatitis)

यह असाधारण रोग है। यह स्वयं इसी रूप में हो सकता है अथवा तीव्र अग्न्याशयशोथ के पश्चात् यह रूप ले सकता है। पित्ताशयरोग, विशेषकर अश्मरी, का साथ-साथ होना पित्तवाहिनी द्वारा पित्त के प्रत्यावहन (regurgitation) को रोग का कारण प्रमाणित करता है।

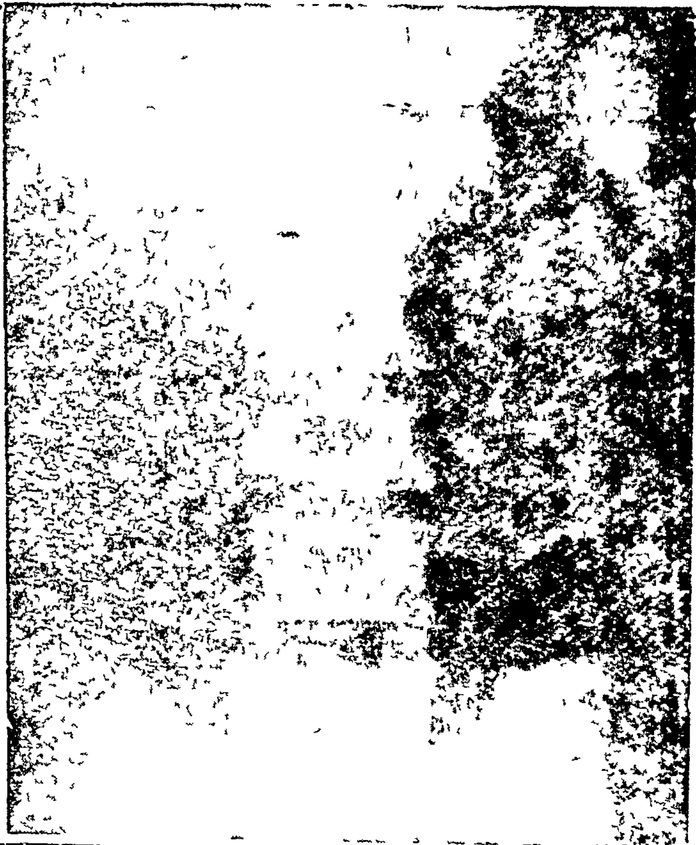
विकृति

चिरकारी शोथ में अग्न्याशय में तन्तुमयता और स्थूलता हो जाती है। वाहिकाओं में अश्मरी अथवा ग्रन्थि का कैल्सीभवन उपस्थित हो सकता है। तीव्र या चिरकारी संक्रमण के आक्रमण होने लगते है। ग्रन्थि के स्रावों की अल्पता से अग्न्याशय अपर्याप्तता हो जाती है जिससे शरीर-भारक्षय, फूला हुआ वसि मलत्याग और ग्लूकोजमेह उत्पन्न होते हैं। साधारण परीक्षा से चिर अग्न्याशयशोथ और अग्न्याशय के दुर्दम रोग को भिन्न करना कठिन होता है।

लक्षण

मध्य आयु के स्थूल व्यक्ति में अग्न्याशय अपर्याप्तता और पुन पुन अधिजठर प्रदेश में उग्र वेदना के आक्रमण रोग के सामान्य लक्षण है। शरीर भार का ह्रास, रक्तपथ कामला तथा मधुमेह कुछ समय पश्चात् होते है। पैप्सिनी व्रण के विरुद्ध वेदना तीव्र और आहार से असंबंधित होती है। एक्स-रे-चित्र में कुछ रोगियों में अग्न्याशय में अश्मरी या केलसीभवन दीख सकते है।

चिकित्सा—निदान के लिए प्राय शस्त्रकर्म करना होता है। चिकित्सा मुख्यतया वेदना के शमन के लिये की जाती है जिसके लिये चिरकारी पित्ताशय-शोथ और पित्तवाहिनी से अश्मरी को दूर करना है। पित्तनलिका में पित्त का प्रत्यावहन, T-नली रखने से रुक जाता है और वेदना के आक्रमण भी कम हो जाते



(a)



(b)

चित्र 53
अग्न्याशय की
अश्मरियाँ ,
(a) अग्र-पश्च
(b) पार्श्विक
दृश्य

है। अग्न्याशय अश्मरी अथवा केलसीभवन होने पर वेदनाहरण के लिये अश्मरी का अपहरण आवश्यक है।

अग्न्याशय के आक्रान्त भाग का उच्छेदन किया गया है, किन्तु यह भयकर शस्त्रकर्म है। उभयपार्श्वी आशय तन्त्रिकोच्छेदन (splanchni cectomy) अथवा अग्न्याशय का अधोमध्यच्छद तन्त्रिकाहरण (subdiaphragmatic denervation) किये गये है। पित्त प्रत्यावहन रोकने के लिये पित्त नलिका के निचले सिरे का अवरोध मिटाने के हेतु यकृत-अग्न्याशय कलशिका की सवरणी का उच्छेद किया जाता है। अग्न्याशयवाहिनी मे अश्मरी होने पर उसका अपहरण आवश्यक है। अग्न्याशय संकिरण होने पर अग्न्याशयपुच्छ मध्यान्त्र समिलन (caudal pancreatojejunostomy) द्वारा अग्न्याशयस्राव आन्त्र मे पहुचाये जा सकते है। इस शस्त्रकर्म मे मध्यान्त्र के एक पाश का अग्न्याशय की अग्रोच्छेदित (ampututed) पुच्छ के निकटस्थ स्थूणक के साथ समिलन कर दिया जाता है।

पुटी

अग्न्याशय मे वास्तविक अथवा कूट पुटी हो सकती है। वास्तविक पुटी अग्न्याशय से उत्पन्न होती है। कूट पुटियो मे तरल एकत्र होकर वे अग्न्याशय के पास स्थित होती है।

वास्तविक पुटी—चार प्रकार की होती है (1) परिवर्धन पुटी (developmental cysts) डरमाइड पुटी (dermoid cysts) या अन्तर्विष्ट पुटी inclusion cysts), (2) बहुपुटी रोग (polycystic disease), (3) परजीवी पुटी (parasitic cysts)—हाइडेटिड रोग, (4) पुटी ग्रन्थ्यर्बुद (cystadenoma)।

कूट पुटी (false cyst)—ये शोथ या अभिघात से उत्पन्न होती है।

वास्तविक पुटी (true cyst) विरल होती है और अग्न्याशय मे अवरोध से उत्पन्न होती है जो परिवर्धन क्रम मे या अन्य प्रकार से उत्पन्न होती है। कूट पुटिये (false cysts) अधिक होती है और अभिघात या शोथ से उत्पन्न हो सकती है। अभिघातज पुटियो मे सीरमी कला का आस्तर होता है और शोथजन्य पुटियाँ ग्रन्थ्युपकला (glandular epithelium) से आस्तरित होती है।

लक्षण

परिवर्धनी पुटिये अथवा बहुपुटी रोग अन्य आशयो मे भी उपस्थित होता

है। कूट अग्न्याशयपुटी सबसे अधिक होती है। अभिघात का अथवा तीव्र अग्न्याशयशोथ का इतिवृत्त मिलता है जिसके पश्चात् वेदना और अधिजठर मे वृद्धि या सूजन प्रकट होती है जो धीरे-धीरे आकार मे बढती जाती है। अधिजठर वेदना के आक्रमण पहले होते रहे है। पुटी की स्थिति पर्युदर्यापश्च और अधिजठर प्रदेश मे होती है। साधारणतया वह आमाशय को आगे को विचलित कर देती है या आमाशय और अनुप्रस्थ बृहदात्र के बीच से या अनुप्रस्थ बृहदात्र योजनी के स्तरो के बीच से प्रक्षेपित (protrude) होती है। आमाशय से ऊपर विवर्धन (enlargement) असाधारण है।



चित्र 54—अग्न्याशय की पुटी (सिस्ट) जिसने आमाशय को बहुत विस्थपित कर दिया है (बेरियम-आहार-परीक्षण)

निदान

अधिजठर मे उपस्थित पर्युदर्यापश्च-पुटी, जो श्वास के साथ गति नही करती, उसका निदान स्पष्ट है। बेरियम आहार परीक्षरण से आमाशय का विस्थापन दिखाई देता है।

चिकित्सा

मारसूपियलीकरण (marsupialization) द्वारा पुटी का निर्हरण साधारण प्रक्रिया है। परामध्य-छेदन द्वारा पुटी को स्पष्ट करके उसकी भित्ति को पर्युदर्या मे सी दिया जाता है और पुटी को खोलकर उसकी अन्तर्वस्तु को निकाल दिया जाता है। तब एक रबडनलिका को उसके भीतर रख देते है। पुटी मे रखी हुई रबटनलिका को प्रतिदिन काटकर छोटी करते जाते है जब तक पुटी की गुहा अन्तरुद्ध नही हो जाती। कभी-कभी अग्न्याशय नाल व्रण बन जाता है। पुटी का आमाशय, ग्रहणी या मध्यान्त्र मे अन्तर्निर्हरण उत्तम आयोजन है।

पुटी का उच्छेद एक आपदजनक शस्त्रकर्म है जिसमे भयकर रक्तस्राव हो सकता है। केवल पुटी के सुलभ स्थिति मे होने और सहज मे चलायमान होने पर उसका अपहरण सभव है।

अर्बुद (Tumours)

सुदम अर्बुद, जैसे ग्रन्थ्यर्बुद या पुटीग्रन्थ्यर्बुद (cystadenoma) विरल पाये जाते है। लगहेन्स की कोशिकाओ का ग्रन्थ्यर्बुद अल्पशर्करा रक्तता (hypoglycaemia) के लक्षण-पुँज उत्पन्न करता हे जो शर्करा देने से तत्काल दूर होता है। अग्न्याशय के अन्वेषण और पूर्ण परीक्षा से ग्रन्थ्यर्बुद का पता चलता है। उसके अपहरण से रोगमुक्ति हो जाती है।

हाल ही मे जोलिंगर और एलीशन ने अग्न्याशय के द्वीपक कोशिका अर्बुदो की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनके साथ दुसाध्य और बहुधा आवर्ती पैप्सिनी व्रण पाये जाते है। ये कोशिकाये बीटा-कोशिकाये नही होती और न वे इन्सुलिन उत्पन्न करती है। अन्त स्राव जो जठर मे अतिस्राव उत्पन्न करता है उसका अभी ज्ञान नही हो सका है।

एडीनोकार्सिनोमा (adenocarcinoma)

उपर्युक्त के अतिरिक्त अग्न्याशय मे होने वाला यही प्रमुख अर्बुद है। यह गोलाभ-कोशिका (spheroidal cell) प्रकार का हो सकता है जो ग्रन्थि मे

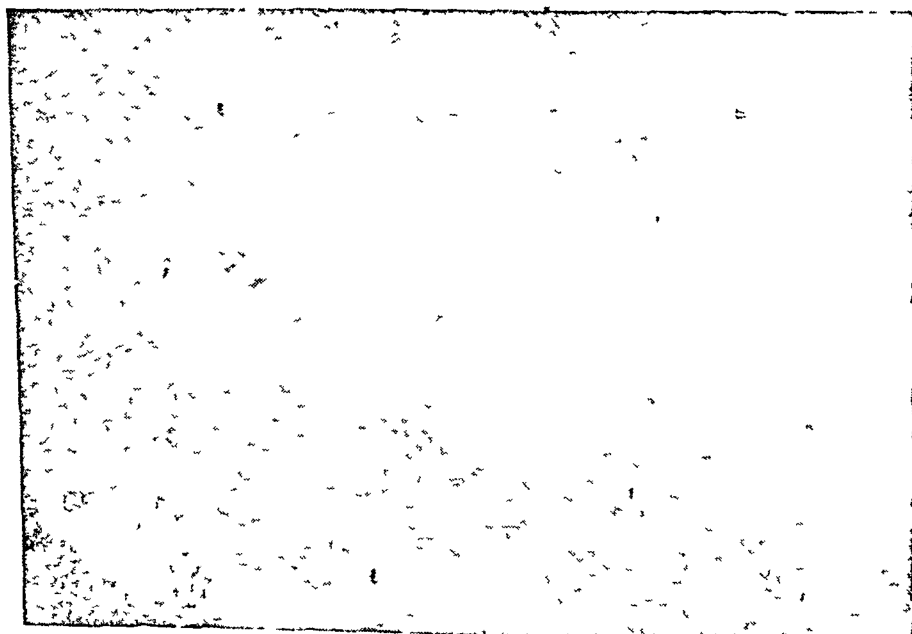
विसरित अन्तःसरण (diffuse infiltration) करता है, अथवा वह कठोर (scirrhus) प्रकार का होता है जिसका केवल स्थानिक (local) अन्तःसरण होता है, जिससे अग्न्याशय और पित्तवाहिनियो मे अवरोध हो जाता है। ये अर्बुद शिर, काय या पुच्छ मे हो सकते है। शिर के अर्बुद से शीघ्र ही कामला हो जाती है जो बढती रहती है और पित्ताशय का विवर्धन होता है। पित्त-वाहिनी मे अवरोध से, इसके विरुद्ध पित्ताशय का विवर्धन नही होता जिससे उसका परिस्पर्शन भी नही किया जा सकता।

लक्षण

अनिश्चित प्रकार की उदर मे बेचैनी और इसके साथ वर्धी रुद्धपथकामला तथा शरीर भारक्षय अग्न्याशय के शिर के अर्बुदो के लक्षण है। अधिजठर मे पिंड कभी-कभी प्रतीत हो सकता है।

निदान

बेरियम आहार-परीक्षा से ग्रहणी का वक्र चौडा (widening) दीखती है और वक्र-उत्क्रमित 3 चिह्न (curve-reversed 3 sign) दीखती है। कलशिका के अर्बुदो मे ग्रहणी मे भरण-अपूर्णता (filling defect) दीखती है।



चित्र 55 अग्न्याशय के शिर का कार्सिनोमा जिसमे ग्रहणी वक्र-उत्क्र-मित 3 चिन्ह (duodenal cureve-reversed 3 sign) दीख रहा है।

चिकित्सा

अग्न्याशय के शिर के अर्बुद मे प्राग्ज्ञान अत्यन्त विपरीत है। साथ की रुद्धपथ कामला और अर्बुद का विस्तृत अन्तस्सरण प्रतिकूल प्राग्ज्ञान के कारण है। अर्बुद और सन्निकट ग्रहणी तथा पित्तवाहिनी के साथ अग्न्याशय-ग्रहणी के उच्छेदन (puncreaticoduodenectomy) तथा आन्त्रपथ और पित्तपथ के पुर्ननिर्माण की कई विधियो का वर्णन किया गया है, किन्तु परिणाम अनुकूल नही होते। शस्त्रकर्म से बहुत मृत्यु होती है। अग्न्याशय के शिर के अर्बुद की अपेक्षा पित्त नलिका के अध प्रान्त के कार्सिनोमा मे उपर्युक्त शस्त्रकर्म से अधिक अनुकूल फल होते है। रोग बढ जाने पर पित्ताशय या पित्तवाहिनी का मध्यान्त्र से सम्मिलन करने से कामला का शमन होता है और कुछ समय के लिये रोगी का स्वास्थ्य उन्नत होता है।

प्लीहा (Spleen)

शरीररचना

प्लीहा उदर के उच्च भाग मे बाईं ओर मध्यच्छदिका के गुम्बद के नीचे स्थित है, उसका लंबा अक्ष दसवी पर्शुका की रेखा मे रहता है। प्रसामान्य प्लीहा नवीं, दसवी और ग्यारहवी पर्शुकाओ के पीछे स्थित है और पर्शुक-धारा से नीचे नही आती है। उसके मध्यच्छद और आशयिक पृष्ठ है। आशयिक पृष्ठ आमाशय, वृक्क, अग्न्याशय और बृहदान्त्र के वाम वक्र से सम्पर्क करता है, कुछ क्षुदान्त्र कुंडल भी उसके सम्पर्क मे रहते है। कुक्षि-धमनी की शाखा प्लीहा धमनी उसमे रक्त लाती है और प्लीहाशिरा रक्त को लौटा कर प्रतिहारणी शिरा मे ले जाती है। दो स्नायु, प्लीहा-वृक्क (lienorenal) और जठर-प्लैहिक (gastrosplenic), उसको अपनी स्थिति मे रखते है जिसमें मध्यच्छद-बृहदान्त्र (phrenicocolic) स्नायु भी सहायक होता है। प्लीहा एक सम्पुट से आवेष्टित है जिसमे कुछ ही सरलपेशी ततु होते है। ट्रैबेकुला (trabeculae) प्लीहा की अन्तर्वस्तु को विभागो मे विभक्त करती है।

शरीरक्रिया

गर्भावस्था मे प्लीहा रक्त जनन का कार्य करती है। कुछ विशेष अवस्थाओ मे, जैसे अरक्तता (anaemia) मे भी यह क्रिया होती है। किन्तु प्रसामान्य युवावस्था मे यह कार्य नही होता। उसके मुख्य कार्य ये है रक्त संग्रह, लाल

रुधिर कोशिकाओ का विनाश, लोह का सग्रह करना और बिलिरुबिन (bilirubin) बनाना, लसीका कोशिकाओ (lymphocytes) की व्युत्पत्ति (elaboration) और प्रतिहारी शिरा रक्तदाब (portal veinous prassure) का नियन्त्रण प्लीहा जीवन के लिए आवश्यक नही है। प्लीहोच्छेदन के पश्चात रक्त मे ये परिवर्तन होते है अल्पकालीन द्वितीयक अरक्तता, श्वेत-रक्त-कोशिका बहुलता (leucocytosis) विशेषकर लसीका कोशिका बहुलता, रक्त बिम्बाणुओ (platelets) की सख्या वृद्धि, अन्य जालक-अन्तर्कला (reticulo-endothelial)-कोशिकाओ के सग्रहो की अतिवृद्धि अर्थात् लसीकापर्वो की तथा उपप्लीहाओ (splenicuil) की।

असगतिया (Anomalies)

चल प्लीहा (mobile spleen)

आशय भ्रश (visceroptosis) के रोगियो मे कभी-कभी प्लीहा का वृन्तक (peaicle) लम्बा होता है, जिसमे प्लीहा चलायमान होती है। प्राय. उससे कोई लक्षण नही होते, किन्तु कितनी ही वार वृन्तक की मरोड के कारण उग्र औदरिक आपदाये उत्पन्न हो जाती है। प्लीहोच्छेदन उसकी चिकित्सा है।

उप-प्लीहायें (splenicuil)

ये प्लीहा-वृक्क और जठर-प्लीहा स्नायुओ मे अथवा वृहद या लघु वपा मे होती है। प्लीहोच्छेदन के समय उनको भी ढूढकर निकाल देना उचित है जिससे फिर प्लीहाजन्य अतिक्रियता न होने पाये।

आघात

प्लीहा का अभिघातज विदर वक्ष के निचले भाग पर तीव्र अभिघात से होता है। विवर्धित प्लीहा जैसे मलेरिया की प्लीहा का विदर अल्प अभिघात से भी हो सकता है। उसका स्वत विदर भी देखा गया है।

अभिघातज विदर मे तीव्र वेदना और रक्तस्रावजन्य स्तब्धता के लक्षण होते है। आभ्यन्तर रक्तस्राव के लक्षण और चिह्न—द्रुतगति की नाडी, बेचैनी, वायुक्षुधा और त्वचा की विवर्णता (pallor) शीघ्र प्रकट हो जाते है। वाम पार्श्व की कठोरता तथा स्पर्शासहता और वाम कटि मे वेदना की अन्यत्रानुभूति स्थानिक चिह्न है। दक्षिण कटिप्रदेश मे वर्तनी अननुनाद (shifting dullness) भी कभी-कभी मिलता है।

प्लीहा के विलम्बित विदर के लक्षणो से प्रारम्भिक अवस्था मे बहुत भ्रम हो सकता है। इस दशा मे सम्पुट के भीतर हीमेटोमा बनता है जो बढकर सम्पुट को फैलाता रहता है और जो अधिक खिचने के कारण फट सकता है। उस समय आभ्यन्तर रक्तस्राव के लक्षण उत्पन्न होते है। स्तब्धता गाढी होती है। ऐसे रोगियो मे तीव्र वेदना के आक्रमण के पश्चात स्पर्शासहता आदि लक्षण शान्त हो जाते है। रोगी को रोगमुक्त समझकर अस्पताल से मुक्त कर दिया जाता है और कुछ समय पश्चात वास्तविक कारण तब मालूम होता है जब अवसम्पुटी हीमेटोमा के विदर से रोगी का जीवन सकटमय हो जाता है।

चिकित्सा

उदरच्छेदन करके प्लीहोच्छेदन करना चाहिये वृन्त पर क्लैम्प लगाते ही रोगी की दशा सभल जाती है। रुधिराधान अनिवार्य हे। शस्त्रकर्म से पूर्व ही उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

सक्रमण

पूयजनक सक्रमण बहुत असाधारण है। पूतित अन्त शल्यता (septic embolus) से विद्रधि उत्पन्न हो सकती है। चिरकारी विद्रधि के लिए प्लीहोच्छेदन करना पडता है।

चिरकारी मलेरियाजन्य प्लीहातिवृद्धि (malarial splenomegaly)

मलेरिया उन्मूलन के प्रबल आयोजन से प्लीहातिवृद्धि बहुत कम हो गई है। जिसको 'बगाल प्लीहातिवृद्धि' कहा जाता है वह सदा मलेरिया के कारण नही होती, यद्यपि बहुत से रोगियो मे मलेरिया किसी न किसी अवस्था पर उसका कारण रहा है। प्लीहा-वेध (splenic puncture) पर मलेरिया परजीवियो (malaria-parasites) का मिलना और लोह-वर्णको (iron pigments) की वृहद मात्रा की उपस्थिति नैदानिक हैं। प्लीहातिवृद्धि के रोगियो मे हल्के आघात से भी प्लीहा-विदर होने की प्रवृत्ति हो जाती है। इस कारण सर्जरी आवश्यक होती है। प्लीहा मे परजीवी के प्रतिरोधक रूप (resistant forms) छिपे रह सकते हैं। इस कारण मलेरिया की चिकित्सा के लिए भी प्लीहोच्छेदन उपयोगी है। इन रोगियो को जो अरक्तता, अल्पप्रोटीनरक्तता (hypoproteinaemia) और बहुधा ऐंकिलोस्टोमा रोग से भी ग्रस्त होते है, शस्त्रकर्म के

पूर्व भली-भाति तैयार करना होता हे ।

शिस्टोसोमा रुग्णता (विलहार्जिया रुग्णता, मिस्र की प्लीहातिवृद्धि)

यह रोग भारत मे नही होता । प्लीहातिवृद्धि मे प्लीहोच्छेदन करना वहुधा आवश्यक होता है ।

कालाजार— इस रोग का भी वहुत कुछ मूलोच्छेदन किया जा चुका है । किन्तु बगाल और आसाम मे कुछ रोगी मिल जाते है । प्लीहा और यकृत दोनो की अतिवृद्धि इसके अभिलक्षक चिह्न है । उपयुक्त चिकित्सा के पश्चात् भी प्लीहा बढी रहती है । शस्त्रकर्म आवश्यक हो सकता है ।

अपित्तमेही कामला (Acholuric Jaundice)

यह रक्तसलायी अरक्तता (haemolytic anaemia) है जो प्राय जन्मजात और पारिवारिक होती है और उसके साथ रक्त मे गोलरुधिरकोशिकाबहुलता (spherocytosis) होती है । उससे कामला के पुन -पुन आक्रमण होते है । अरक्तसलायी वयस्क प्रकार की अरक्तता भी पाई जाती है जो आनुवंशिक नही होती । प्लीहा अरक्तता-उत्पादक असामान्य लाल कोशिकाओ का नाश करती है । यह विनाश प्राय क्रान्ति के समय (crisis) होता है जिससे विलिरुबिन की प्रचुर मात्रा रक्त मे पहुचती है और पित्त मे उत्सर्जित हो जाती है, किन्तु वृक्क से उसका निस्यन्दन नही हो सकता । मूत्र मे पित्त नही होता, किन्तु यूरोवाइलिनोजन बहुत कम होती है । मल मे स्टर्कोवाइलिन वर्णक की अधिकता होती है । रक्तमलयन के पुन -पुनः आक्रमण से पित्तवाहिकाओ मे वर्णकीकृत अश्मरिया (pigment stones) बन जाती है, विशेषतया पित्ताशय मे, और रुद्धपथकामला प्रकट हो सकती है ।

लक्षण

कामला और अरक्तता के पुन -पुन आक्रमण होते है । आक्रमण के साथ प्राय बेचैनी, उदर, पीठ तथा बाहु और टागो मे वेदना तथा कभी-कभी रक्तसचरण पात (circulatory collapse) हो जाता है । अल्पमूत्रता तथा अमूत्रता हो सकती है । सक्रमण, शीत लग जाना, मानसिक अभिघात और कभी-कभी सगर्भता आक्रमण का कारण हो सकते है । परिवार मे गोलसमकोशिका बहुलता की प्रवृत्ति हो सकती है । प्लीहा विवर्धित और दृढ होती है ।

निदान

कामला के साथ गोलकोशिकाबहुलता, मूत्र मे पित्त लवणो की अनुपस्थिति

तथा जालक-कोशिका-बहुलता (reticulocytosis) नैदानिक है।

चिकित्सा—प्लीहोच्छेदन से अरक्तता और कामला का लोप हो जाता है। क्रान्ति के समय शस्त्रकर्म न करना चाहिए।

बिम्बाणुअल्पतापरप्यूरा (Thrombocytopenic Purpura)

इस दिशा मे बिम्बाणुअल्पता तथा स्वत रक्तस्राव दोनो विकार होते है। रोग के आक्रमण तथा विराम होते रहते है।

लक्षण

त्वचा पर रक्तस्राव के बिन्दुओ की उपस्थिति से, श्लेमिक कला से, विशेषतय दात निकलने के पश्चात मसूढे से, रक्तस्राव, अथवा अत्यार्तवार्तव या रक्तमेह से इस दशा की ओर ध्यान आर्कषित होता है। श्लेषक तथा प्लूरा गुहा मे रक्तस्राव हो सकता है। चिकित्सा न करने पर रोग घातक होता है।

विकृति

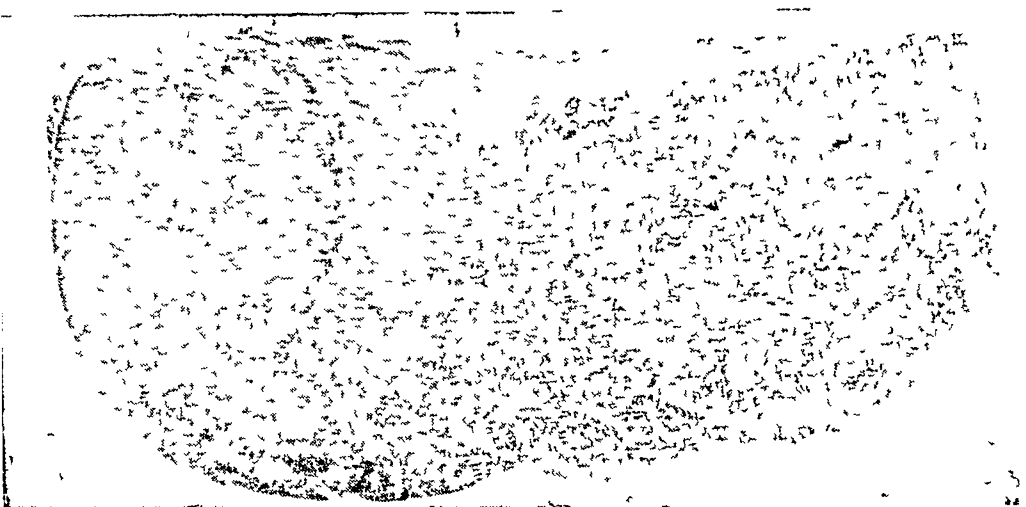
बिम्बाणुओ का प्लीहा की जालक-अन्तर्कलाकोशिकाओ द्वारा नाश होता है। प्लीहा सदा नही बढती। अस्थिमज्जा मे आकृत्यनुसार अपक्व (morphologically immature) महामूललोहितकोशिकाये (magakaryocytes) उपस्थित होती हैं जिनसे असाधारण बिम्बाणु उत्पन्न होते है, प्लीहा की जालक-अन्तर्कलाकोशिकाये इनका भक्षण कर लेती है।

निदान

पूतिरक्तता (septicaemia), स्कर्वी, जीवाणुजन्य अन्तर्हृदशोथ, स्कार्लेट ज्वर आदि त्वचा मे रक्तस्राव उत्पन्न करने वाली दशाओ तथा द्वितीयक परप्यूरा से निदान करना आवश्यक होता है। कुछ औषधियो, जैसे क्विनीडीन, आर्स-फिनेमीन, सल्फोनोमाइडो, से घनास्री बिम्बाणुअल्पता उत्पन्न हो जाती है। प्लीहा या यकृतवृद्धि के साथ लसीकाग्रन्थियो की अतिवृद्धि और अरक्तता होने पर ल्यूकीमिया (leukaemia) का भी विचार करना होगा। हौजकिन रोग, कार्सिनोमा, लिम्फोसारकोमा और गौकेर-रोग (gaucher's disease) मे अस्थिमज्जा के आक्रान्त होने से बिम्बाणुअल्पताजन्य परप्युरा उत्पन्न हो सकता है।

चिकित्सा—प्लीहोच्छेदन आवश्यक है। किन्तु रुधिराधान, ACTH और

कोर्टिसोन के प्रयोग से तीव्र रोगी आक्रमण से बच जाता है। शस्त्रकर्म के समय अतिरिक्त प्लीहाओ और उप-प्लीहाओ को भी निकालना अनिवार्य है। कितनी ही बार उनके रह जाने के कारण रोगमुक्ति नही होती।



चित्र 56 चिरकारी सकुलित प्लीहातिवृद्धि

चिरकारी सकुलज प्लीहावृतिद्धि, प्लीहा-अरक्तता (Chronic Cogestive Splenomegaly, Splenic Anaemia)

बेन्टी रोग नामक दशा, जिसमे प्लीहावृतिद्धि, अरक्तता और रक्तवमन होते है, प्रतिहारणी-रक्तसचार के अवरोध से उत्पन्न होती है, जो यकृत के भीतर या उसके बाहर हो सकता है। प्लीहा वस्तु की विनाशक क्रिया से अरक्तता हो जाती है। प्लीहोच्छेदन से यह क्रिया रुक जाएगी किन्तु प्रतिहारी अतिरक्त-दाव को लघुपथ (shortcircuit) द्वारा दूर करना आवश्यक है। इसका विचार प्रतिहारी अतिरक्तदाव मे किया गया है।

अर्बुद

दुर्दम रक्तविकारो के अतिरिक्त प्लीहा मे प्राथमिक या द्वितीयक अर्वुद वहुत असाधारण है जो यकृत के ठीक विपरीत है, जहा द्वितीयक निक्षेप (deposits) वहुत होते है।

प्लीहोच्छेदन (Splenectomy)

प्लीहा के चलायमान होने पर शस्त्रकर्म सरल होता है। किन्तु रक्त-वाहिकामय दृढ आसजनो के बन जाने पर वह भयप्रद कर्म हो सकता है।

कब आवश्यक हे ?

(1) **अभिघातज दशाओ मे,** (2) **असामान्य स्थिति** के कारण कभी-कभी वृन्त की मरोड (3) **रक्तजनक विकार** (क) अपित्तमेही कामला, जन्मजात प्रकार की और कभी-कभी उपार्जित प्रकार की, (ख) प्राथमिक बिम्बाणु-अल्पता-युक्त परप्यूरा, (ग) प्राथमिक प्लैहिक सर्वकोशिका-अल्पता (pancytopenia) (4) **परजीवी दशायें**—(अ) मैलेरिया की प्लीहावृद्धि (क) बिलहार्जिया रोग (शिस्टोसोमा रोग)। (5) अज्ञातहेतुक लिपाइड हिस्टोकोशिकाबहुलता (essential lihoid histiocytosis), गौकेर और नीमान-पिक रोग (Nieman-Pick's diseaase)। (6) प्लीहाधमनी का एन्यूरिज्म। (7) प्लीहा की पुटी, अर्बुद और विद्रधियाँ। (8) शस्त्रकर्म के एक चरण के रूप मे जैसे जठरोच्छेदन, ग्रासप्रणाल-जठरोच्छेदन, प्लीहावृक्कपार्श्वपथकरण (lienorenal shunting)।

प्रविधि (technique)—शस्त्रकर्म से पहले रोगी का हीमोग्लोबिनस्तर तथा हृदय, वृक्क और श्वसन की क्षमता की जाच की जाती है। रुधिराधान प्राय आवश्यक होता हे। आमाशय को रिक्त करने के लिये राइल नली को उसमे प्रविष्ट करके छोड देना चाहिये। साधारणतया परामध्य छेदन (paramedian incision) लगाया जाता है जो ऊपर पर्शुक उपात तक पहुच जाता है। अन्य छेदन भी किये जा सकते हे, जैसे वाम अधोपर्शुच्छेदन (left subcostal incision) क्षैतिज छेदन (horizontal incision) या मध्यरेखाछेदन (midline incision)। उरो-उदर-(thoraco-abdominal) छेदन को दसवी पर्शुका की शैया पर लगाकर और निकटस्थ मध्यच्छदिका को चीरकर (splitting) रक्तमय आसजनो वाली बडी प्लीहा को निकाला जा सकता है। दो क्लैम्पो के बीच जठर-प्लीहा (gsatrosplenic lig) स्नायु को काटकर प्लीहा को उसकी शैया से हटाया जाता हे। प्लीहा वृक्क स्नायु को पहिचानने के पश्चात् प्लीहा-धमनी को पृथक करके उस पर क्लैम्प लगाकर उसको बाँध दिया जाता है। धमनी को शिरा से पूर्व क्लैम्प करने से वह रुधिराधान का काम करता है, शिरा द्वारा प्लीहा का रक्त दैहिक रक्तसचार मे चला

जाता है। तब प्लीहा-वृक्क-स्नायु तथा उसमे उपस्थित प्लीहा-शिरा पर क्लैम्प लगा कर उसका बधन किया जाता है। किन्तु क्लैम्प लगाने के पूर्व अग्न्याशय के पुच्छ का व्यवच्छेदन करके उसको हाइलम से पृथक कर देते है।

उपद्रव

आमाशय और अग्न्याशय को सावधानी से क्षत होने से बचाया जाता है। प्लीहा के निकल जाने से मध्यच्छदिका के वाम भाग का आश्रय जाता रहना है जिससे श्वसनसम्बन्धी विकार उत्पन्न हो सकते है। श्वसन-व्यायामो और प्रति-जीवियो से उपद्रवो को रोकने मे बहुत सहायता मिलती है। प्लीहाशिरा मे रक्त जम जाने से बना थक्का (जो प्रतिहारणी शिरा तक पहुचकर घातक हो सकता है) अज्ञातहेतुक ज्वर का कारण होता है।

प्रतिहारी अतिरक्तदाब
(Portal Hypertension)

व्याख्या

प्रतिहारणी शिरा तथा उसकी शाखाओ मे स्थायी रूप से बने रहने वाले वढे हुए रक्तदाब को प्रतिहारी अतिरक्तदाब कहा जाता है। प्लीहा के प्रतिहारी-रक्तपरिसचार ही मे स्थित होने के कारण, उसकी जालक अन्तर्कलाकोशिकाओ की क्रिया भी वढ जाती है। उससे उत्पन्न लक्षणपुज को सकुलज प्लीहातिवृद्धि (congestive splenomegaly), वेन्टी (Banti)-रोग या प्लीहा-अरक्तता कहा जाता है। प्लीहावृद्धि और जठरान्त्र मे रक्तस्राव, ये लक्षण रोगी की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे होते है, यकृत की अल्पतम (minimal) सिरोसिस हो या न हो। साधारणतया सिरोसिस और जलोदर पीछे से प्रकट होते है। बेंटी-रोग की अपेक्षा उत्तम व्याख्यात्मक शब्द प्रतिहारी अतिरिक्त दाव है।

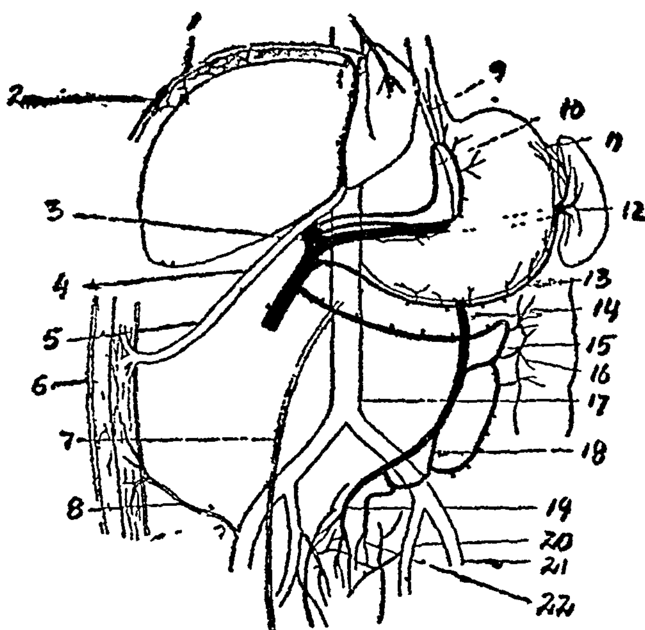
विकृति

आहार के पश्चात तथा पाचन के समय प्रतिहारी तत्र मे रक्तदाब बढ जाना स्वाभाविक है, जिससे प्रतिहारी शैया मे रक्तसचार वढता है। उसका दैहिक रक्तसचार पर भी प्रभाव होता है। किन्तु वह प्रतिहारणी-शिरा-अवरोध का परिणाम भी हो सकता है। अवरोध की स्थिति निम्न प्रकार से जानी जा सकती है

यकृतजन्य	यकृत की सिरोसिस से/80 प्रतिशत मे यही होता है
यकृत-बाह्य (extra hepatic) अधियकृत (suprahepatic)	यकृत-शिराओ के अतरोंध से या सकीर्णक परिहृद्शोथ (constrictive pericarditis) से
अधोयकृत (subhepatic) जन्मजात	जन्म के पश्चात नाभि-शिरा की सामान्य घनास्रता के प्रतिहारणी शिरा मे विस्तृत होने से। प्रतिहारणी शिरा मे केवर्नोमेटी (cavernomatous) परिवर्तन से।
अभिघातज और शोथ जन्य अर्बुद	प्रतिहारणी शिरा की घनास्रता होने से अग्न्याशय पुटी अथवा निकटस्थ सरचनाओ के अर्बुद से प्रतिहारणी शिरा के दबने के कारण।

प्रसामान्य प्रतिहारणी शिरा दाब, जो 100-140 मि० मी० लवण विलयन होती है, बढकर 500-600 मि० मी० लवण विलयन हो जाती है जिससे प्रतिहारणी शिरा तत्र मे रक्त रुक जाता (stasis) है। प्रतिहारणी और दैहिक रक्तपरिसचरण के बीच ग्रास-प्रणाल और आमाशय के सगम स्थान पर या अर्श (मलाशय) शिराजालिका के प्रदेश मे समपार्श्वी वाहिकाए (collateral channels) बन जाती है। वे उदरभित्ति मे, यकृत के अनावृत क्षेत्र के समान पर्युदर्या वाह्य क्षेत्रो मे अथवा वृक्क के पास पराबृहदात्र क्षेत्र (paracolic area) मे भी बन सकती हैं। ग्रास-प्रणाल की स्फीतशिराये (varicose veins) आमाशय के आम्लिक पैप्सिनी रस के सम्पर्क मे आने पर अपरदित (eroded) हो जाती है और उनमे व्रण बनने से भयकर रक्तस्राव हो सकता है, जो रक्त-

वमन और रुधिरज कालेमल के रूप मे प्रकट होता है। रोगी को रक्तवमन होते रहते है जो घातक सिद्ध हो सकते है। रक्तस्राव और प्रोटीन की क्षति, जो आत्र मे पहुच कर आत्र जीवाणुओ की क्रिया से सडने लगते है, यकृत की क्रिया के क्षीण होने से एमोनिया विपाक्तता (ammonia intoxication) की प्रवृत्ति उत्पन्न करते है। जो अमोनिया प्रतिहारणी क्षेत्र से यकृत मे पहुचता है उसका वह निर्विपीकरण (detoxication) नही कर पाता। अतएव सारा अमोनिया दैहिक रक्तसचार मे चला जाता है। इस दीर्घस्थायी सकुलन के कारण प्लीहा का विवर्धन हो जाता है और प्लीहा की अतिवृद्धि के कारण अरक्तता, बिम्बाणु-अल्पता (thrombocytopenia) और श्वेत-कोशिका-अल्पता उत्पन्न होती है।



चित्र 57—यकृत के सिरोसिस मे प्रतिहारी और दैहिक शिरातन्त्रो मे समपार्श्वी रक्तसचरण की स्थितिया

लक्षण

अधिकतर रोगियो मे सक्रामी, यकृत-शोथ का इतिवृत्त मिलता है या यकृत-सिरोसिस के अन्य कारण उपस्थित होते है। रक्तवमन या मल रुधिरज कालेमल के आक्रमण की चिकित्सा के लिये रोगी आता है। साधारणा विवर्धित प्लीहा

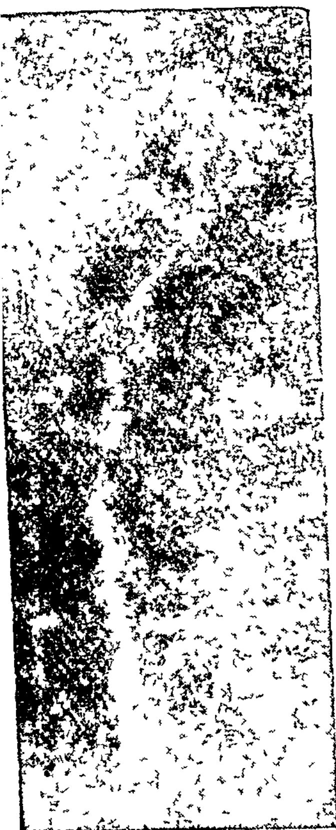
जिसके साथ जलोदर हो या न हो, तथा उदरभित्ति अभिहृद् जठर प्रदेश या मलाशय मे प्रमुख समपार्श्वी वाहिकाओ की उपस्थिति, रोग के अभिलक्षण है जिनसे प्रतिहारी अतिदाब को पैप्सिनी व्रण से पहिचाना जा सकता है। रोग के अन्त के समीप यकृत-घात (liver failure) और सन्यास (coma) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। जठरान्त्र-रक्तस्राव के आक्रमण के पश्चात् बहुधा मृत्यु होती है।

अन्वेषण

रक्तस्राव का स्थान तथा यकृत की कार्यक्षमता को मालूम करना आवश्यक है। रक्तस्राव की स्थिति बेरियम आहार चित्रो और ग्रास-प्रणाल दर्शन (oesophagoscopy) से की जाती है। 30-50 मिलि० डायोडोन को प्लीहा की वस्तु मे प्रविष्ट करने के पश्चात् लिये हुए प्रतिहारी शिरा के एक्स-रे चित्र (portovenogram) प्रतिहारी शिरा और उसकी समपार्श्वी (collaterals) वाहिकाये स्पष्ट हो जाती है। समपार्श्विकाओ का प्रतिगामी (retrograde) या बाहर से प्रतिहारी शिरा की ओर को भरना प्रतिहारी अतिदाब का अभिलक्षक है। मेनोमीटर द्वारा भी प्रतिहारी शिरादाब उसी समय नापी जा सकती है। शस्त्र-कर्म मे लिये प्रतिहारी चित्र और प्रतिहारी शिरादाव उपयोगी अन्वेषण है। कुल सीरम प्रोटीन, प्रोथ्रोम्बिन समय और विटामिन-k केप्रयोग के उस पर प्रभाव को मालूम करना भी आवश्यक है। 6-7 ग्राम प्रति 100 मि० लि० सीरम प्रोटीन प्रसामान्य है। किन्तु उसके 3 ग्राम प्रति 100 मि० लि० से कम होने पर शस्त्रकर्म वर्जित है। ब्रोमसल्फथेलीन-उत्सर्जन परीक्षण यकृत की कार्यक्षमता का एक उत्तम परीक्षण है। यकृत-जीवोति-परीक्षा सिरोसिस का प्रकार जानने मे सहायक होती है।

चिकित्सा—विशेषतया अपस्फीत शिराओ से रक्तस्राव को रोकने और यकृत-कार्यो को उन्नत करने के लिये की जाती है। अत वह मुख्यतया काय-चिकित्सा होती है। सर्जरी का उपयोग प्रतिहारी शिरादाव को घटाकर और अपस्फीत-शिराओ का लोप करके जठरान्त्री रक्तस्राव को रोकने के लिए किया जाता है।

कायचिकित्सा—शैया-विश्राम, लवण का अल्प प्रयोग और पर्याप्त मात्रा मे प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट और विटामिन युक्त आहार देना-यह पाटेक (patek's)का चिकित्सा क्रम कहा जाता है। पारदी मूत्रल औषधिया शोफ और जलोदर को कम करने मे सहायक होती है। जठरान्त्री रक्तस्राव होने पर रुधिराधान तथा



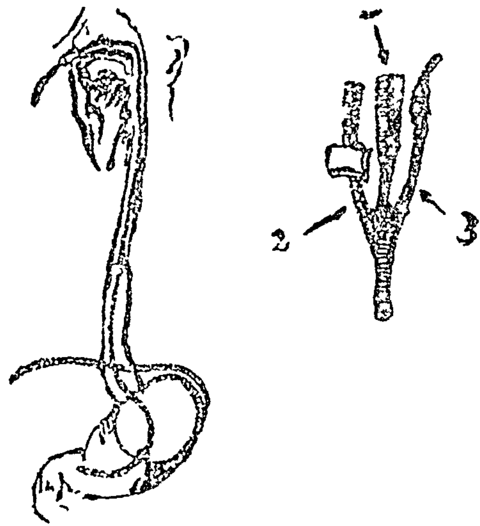
चित्र 58 —ग्रासप्रणाल की शिरा-अपस्फीति



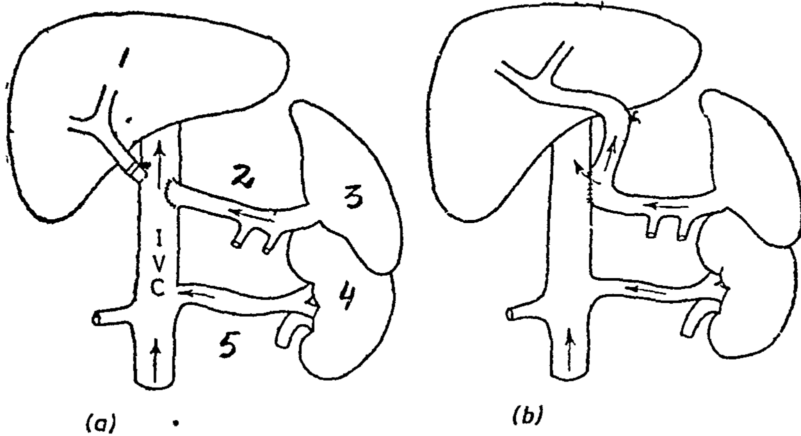
चित्र 59—प्रतिहारी शिरा-अतिरक्तदाव के एक रोगी का प्रतिहारी शिरा-चित्रण

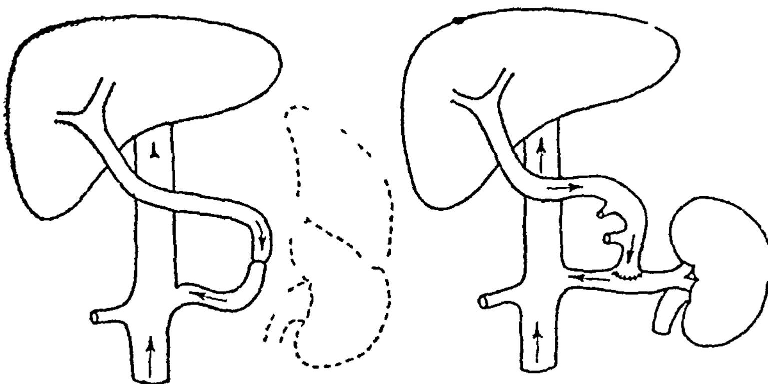
ब्लैकमोर-साग्सटाकेन (Blackmore-sangstaken) रबड नली कोग्रासप्रणाल-जठर-सगम पर पहुचाकर और उसको फुलाकर उसकी दाब से उसको बन्द किया जाता है। (चित्र स० 60)

शल्य चिकित्सा—प्रतिहारणी शिरा और अधोमहाशिरा के बीच 1-2 से मी० का रक्त-पार्श्वपथ (shunt) बना दिया जाता है जिससे प्रतिहारणी का रक्त अधोमहाशिरा मे चला जाता है। यह प्रतिहारी-महाशिरा-पार्श्वपथ (portocaval shunt) कहा जाता है जो छोर-से-छोर (end to end) अथवा छोर से पार्श्व (end to side) बनाया जा सकता है, अर्थात् प्रतिहारी शिरा को यकृत के पास से काटकर अधोमहाशिरा के पार्श्व मे जोड दिया जाता है। पार्श्व-से-पार्श्व समिलन इसकी अपेक्षा उत्तम होता है, उसमे कुछ रक्त यकृत मे जाता रहता है, किन्तु प्रतिहारी शैया का अधिकतर रक्त अधोमहाशिरा मे



चित्र 60—ब्लैकमोर-साग्सटकेन नली, ग्रासप्रणाल और आमाशय की अपस्फीतियो से रक्तस्राव को रोकने के लिये टैम्पोनेड के हेतु प्रयोग की गई है





चित्र 61—प्रतिहारी और दैहिक सचरणों के बीच लघुपथ (shunt) बनाने की भिन्न-भिन्न प्रविधिया

जाता है। प्रतिहारी शिरा के अन्तर्गत होने पर प्लीहा-वृक्क-पार्श्वपथ बनाया जाता है जिसमे प्लीहा के अपहरण के पश्चात् प्लीहाशिरा को वाम वृक्क शिरा से जोडा जाता है। प्रतिहारी शिरा की अन्य आगम शाखाओ, ऊर्ध्व या अधोआन्त्रयोजनियो, का भी पार्श्वपथ बनाने के लिए उपयोग किया गया है। किन्तु उनके परिणाम सतोषजनक नही होते, पार्श्वपथ का आकार छोटा होने से शिराओ मे घनास्रता हो जाती है।

गासप्रणाल की अपस्फीत शिराओ पर भी शस्त्रकर्म किये गये है, किन्तु उनके सतोषप्रद परिणाम नही हुए है।

जलोदर की चिकित्सा—यकृत सिरोसिस मे मुख्यतया काय चिकित्सा होती है। शस्त्रकर्म प्राय सफल नही होता। उसकी शस्त्रचिकित्सा अभी तक प्रयोगावस्था मे है, यद्यपि पार्श्व-से-पार्श्व महाशिरापार्श्वपथ से कुछ रोगियो मे लाभ हुआ है।



12

हर्निया

(Hernia)

ए० ई० डे० सा०

किसी बन्द गुहा के अवयवो या किसी एक अवयव अथवा उसके एक भाग का गुहा की भित्ति मे होकर बाहर निकल आने को हर्निया कहते है। उदर-गुहा मे पर्युदर्या के जो भाग बाहर को प्रलम्बित हो गये है उनके द्वारा भित्ति मे दुर्बल स्थान बन जाते है। अभिधान से भी दुर्बल स्थान बन जाते हैं। इन स्थानो द्वारा हर्निया उत्पन्न होती है। पहले प्रकार मे जन्म ही से पर्युदर्या का भाग प्रलम्बित होता है जैसे वक्षण नलिका और नाभि मे या गर्भावस्था ही से दो गुहाओ के बीच मार्ग बना होता है, जैसे बोखडालेक (Bochdalek) प्रकार की मध्यच्छद (diaphragmatic) की हर्निया मे, जिसमे प्लूरा-पर्युदर्या-नलिका (pleuroperitoneal canal) वयस्क अवस्था मे भी बनी रहती है। दूसरा प्रकार उन व्यक्तियो मे उदरांतर दाब के बढने का फल होता है जिनकी उदरपेशिया किन्ही कारणो से दुर्बल हो चुकी है। वृद्धावस्था मे जीर्ण कास के साथ उदर-भित्ति की अतानता (atony) और वसा-अन्तःसरण (fatty infiltration) अथवा पुरस्थ (prostate) की अतिवृद्धि से मूत्रत्याग मे कष्ट के कारण हर्निया हो जाती है। वक्षण हर्निया मनुष्य की खडे होने की क्षमता की प्राप्ति का फल है जिसमे गुरुत्व तथा दाब दोनो हर्निया का कारण होते है।

वक्षण हर्निया
(Inguinal Hernia)

शरीररचना

वक्षणनलिका कि कटिप्रदेश मे वृषण के पर्युदर्यापश्च स्थिति से उतरकर वृषणकोश (scrotum) मे आने के कारण बनती है। स्त्रियो मे वक्षणनलिका

आद्यागिक (rudımentary) रूप मे होती है, क्योंकि डिंव ग्रथि श्रोणि ही मे रह जाती है। यह डेढ इच लम्बी तिर्यक् नलिका, अनुप्रस्थिका प्रावरणी (fascıa transversalıs) के आभ्यन्तर औदरी वलय या द्वार (ınternal abdomınl rıng) मे तिर्यक् वाह्य औदरिका (oblıquns externus abdomınıs) के कडरावितान के पादो (crura) के वीच स्थित वाह्य औदरी द्वार (external abd ııng) तक विस्तृत है। नलिका की अग्र भित्ति की सम्पूर्ण लवाई वाह्य तिर्यक औदरिका के कडरावितान (aponeurosıs) मे वनी हुई है जिसके वाह्य तृतीयाश मे आभ्यतर तिर्यक् और अनुप्रस्थ औदरिका के उदय तन्तु उसको और भी दृढ वना देते है। पश्च सम्पूर्ण भित्ति अनुप्रस्थिका प्रावरणी से वनती है, किन्तु उसके अन्तरार्व (ınner half) के पीछे सयुक्त कडरा (conjoıned tendon) के रहने से वह दृढ हो जाती है। उसके भीतर के सिरे पर वक्षणी स्नायु के परावर्तित ततु उसको और भी दृढ वना देते है। नलिका मे, पुरुष मे शुक्रवहा (vas deferens), वृषणरज्जु (spermatıc cord) की रक्तवाहिकाये, तन्त्रिकाये और लसीकावाहिकायें तथा वृषण-उत्कर्पिका-पेशी तथा प्रावरणी (cremaster muscle and fascıa) रहती है, श्रोणिफलक-वक्षणी (ılıo-ınguınal) तन्त्रिका भी रहती है। स्त्रियो मे गर्भाशय की गोल स्नायु और श्रोणिफलक वक्षणी तन्त्रिका स्थित होती है।

कीथ (keıth) ने यह भली-भाति प्रमाणित किया है कि हर्निया की उत्पत्ति को रोकने मे सयुक्त कड्डरा विशेष भाग लेती है। उदरातर दाव के वढने पर तिर्यक् और अनुप्रस्थ पेशियो के सकोच से सयुक्त कडरा के चापवत ततु नीचे को खिचकर ऊपर को मुडी हुई वक्षणी-स्नायु (ınguınal lıgament) के खातिका युक्त (grooved) पृष्ठ से मिलकर नलिका का मार्ग वन्द कर देते हैं। साथ ही वृषणोत्कर्षिका वृपणरज्जु और वृषण को खीचकर रज्जु को नलिका के वाह्य द्वार पर एकत्र कर देती है।

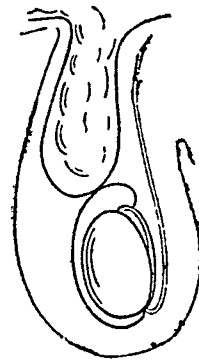
हर्निया के प्रकार

रचनानुसार, हर्निया अप्रत्यक्ष (ındırect) और प्रत्यक्ष (dırect) दो प्रकार की होती है। अप्रत्यक्ष हर्निया मे, जिसमे वृषणधर कचुक प्रवर्ध (processus vagınalıs) के जन्मोत्तर अन्तरुद्ध (oblıterated) न होने मे जन्मजात कोश (sac) वन जाता है। हर्निया का कोश समस्त नलिका मे होकर नीचे तक चला जाता हे और वृपण रज्जु के पतले आच्छादनो को भी खीच ले जाता है। कोश की सकुचित ग्रीवा गभीर अधिजठर धमनी (deep epıgastrıc art) के

वाह्य ओर रहती है। कभी-कभी कोश उपार्जित (acquired) भी होता है, ऐसी दशा मे कोश वृपण तक विस्तृत होता है। प्रत्यक्ष हर्निया, जो गभीर अधिजठर धमनी के अभिमध्य और नलिका की पश्चभित्ति के पीछे को दवने से उत्पन्न होती है, उसकी ग्रीवा चौडी होती है और लुप्त अधोजठर धमनी के वाह्य या आभ्यतर ओर प्रकट होती है। वृपणरज्जु के केवल कुछ आच्छादन उसके साथ खिच जाते है। हर्निया के कोश मे अग्न्याशय के अतिरिक्त कोई भी औदरिक सरचना हो सकती है।



चित्र 62—जन्मजात वक्षणी हर्निया ; कचुकी (vaginal) प्रकार



चित्र 63—उपलब्ध वक्षणी हर्निया जिसमे सीरमी कोश (serous sac) आत सहित, वृपणग्रन्थि के शीर्षतक आ गया है।

आयु, लिंग—वक्षणी हर्निया स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होती है। अप्रत्यक्ष प्रकार साधारणतया वालको और नवयुवको मे पाया जाता है। प्रत्यक्ष हर्निया प्राय' सदा 40 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियो मे होती है।

हेतुकी

हर्निया की उत्पत्ति साधारणतया दो कारणो के सयोग से होती है : (1) उदरभित्ति की सहज दुर्वलता से, जैसे वृपणपर कचुकी प्रवर्ध के लुप्त न होने से, अथवा उपार्जित दुर्वलता से, जैसे वृद्धावस्था मे पेशियो के दुर्वल हो जाने से, या वहुप्रसव, शस्त्रकर्मोत्तर क्षताक अथवा उदर पेशियो की तत्रिका के क्षत

हो जाने से, (2) उदरान्तर दाब (intra-abdominal pressure) के बढने से, जैसे जीर्णकास, दमा, क्षय आदि से, मल-त्याग मे अधिक बल करने से, मूत्र-मार्ग सकीर्ण नाया पुरस्थ की अतिवृद्धि के कारण मूत्रकष्ट से। कुछ व्यवसाय, जैसे काच के बर्तनो को बनाने वाले, भारी बोझ उठाने वाले, भी उदरान्तर दाब को बढाने वाले होते है।

लक्षण

उपद्रवरहित वक्षणा हर्निया का मुख्य लक्षण, रोगी के खडे होने या बल करने पर वक्षण प्रदेश मे एक पिंड या उभार का प्रकट होना है। हर्निया कोश मे केवल आत्र हो या वपा हो या आत्र और वपा दोनो हो सकते है; उसी के अनुसार उसको एटरोसील, ओमेटोसील अथवा एटरो-ओमेटोसील कहा जाता है। हर्निया कोश के अवयव साधारणतया पुन स्थाप्य (reducible) होते है (दावने से उदर मे समा जाते है), किन्तु ग्रीवा पर आसजन बन जाने से या अवयवो, विशेषत वपा, के कोश के बुध्न के साथ जुड जाने से वे पुन स्थाप्य नही (irreducible) रहते। पुन स्थापन करने के पश्चात आभ्यनर नलिका द्वार पर अगूठे से दबाने से रोगी के खामने या बल करने पर हर्निया का रूप मालूम हो जाएगा। अगूठे के दबाव से अप्रत्यक्ष या तिर्यक् हर्निया रुक जाएगी (उतरेगी नही), किन्तु प्रत्यक्ष हर्निया नही रुकेगी। किन्तु इस परीक्षा मे भ्राति भी हो सकती है। समय पाकर हर्निया का आकार बढ जाता है। अप्रत्यक्ष हर्निया वृषणग्रथि तक पहुच सकती है, प्रत्यक्ष हर्निया प्राय इतनी नही बढती।

परिस्पर्शन पर कोश मे आत्र होने से अनुनादी (resonant) शब्द होता है, केवल वपा होने से वह अननुनादी (dull) होगा, आत्र के होने से पुर.सरण (peristalsis) का शब्द सुनाई देगा और उसके पुन स्थापन पर गडगडाहट के शब्द के साथ आत्र उदर मे लौटेगा, आत्र होने पर उसके प्रथम भाग को लौटाना कठिन होता है, क्योकि आत्र के कुडल ग्रीवा पर एकत्र हो जाते है, वपा मे अतिम भाग को लौटाने मे कठिनाई होती है, क्योकि वह कोश के बुध्न (सबसे नीचे के भाग) से जुड जाता है। बहुत काल की बडी हर्निया प्राय. पुन स्थाप्य नही होती, वह रुद्ध भी हो जाती है। विपाशन (strangulation) हर्निया का प्रथम लक्षण हो सकता है। मूत्राशय की विपुटी के हर्नियाकोश मे आ जाने पर मूत्रत्याग बारबार होना या मूत्र कष्ट आदि, मूत्र सम्बन्धी लक्षण उत्पन्न हो जाते है। आभ्यतर द्वार मे, कनिष्ठा को, उस पर वृषणाकोश

की त्वचा के अन्तर्वलन (invagination) द्वारा प्रविष्ट करके शस्त्रकर्म की आवश्यकता का अनुमान किया जा सकता है। उसी समय कोश की ग्रीवा और गभीर अभिभठर धमनी का संबध भी जान लेना चाहिये।

यद्यपि निदानानुसार हर्निया के प्रकार और उसकी अन्तर्वस्तु या अवयवो को पहिचानने पर जोर दिया गया है, किन्तु वह अपेक्षत महत्व का नही है। शस्त्रकर्म करने पर हर्निया का वास्तविक रूप स्पष्ट हो जाता है। चिकित्सक को नलिका की दृढता या उसकी रक्षक क्रियाविधि का ज्ञान अधिक आवश्यक है, उस ही पर हर्निया के सुधार के लिये किस प्रकार का शस्त्रकर्म करना होगा यह निर्भर करता है। यह ज्ञान भी शस्त्रकर्म पर प्राप्त होता है।

चिकित्सा

अत्यत वूढो के अतिरिक्त, उपद्रवरहित हर्निया के सभी रोगियो को इस दोप को शस्त्रकर्म द्वारा सुधारने का परामर्श देना चाहिये। जीर्ण कास, हृद्पात और उग्र वृक्क रोग, शस्त्रकर्म की विपरीत दशाए है। इनमे ट्रस (truss) लगानी चाहिये।

हर्निया की रचना के अनुसार कितने ही प्रकार के शस्त्रकर्मो की योजना की गई है। निम्नलिखित चार प्रकार के कर्म रोगी की आवश्यकतानुसार किये जाते है। अनेक शस्त्रकर्मविधियो का ही यह अर्थ है कि प्रत्येक रोगी के लिये एक ही विधि उपयुक्त नही होती।

हर्निया छेदन—(हर्निया कोश का उच्छेदन) (herniotomy—excision of hernial sac)—यह शस्त्रकर्म जन्मजात अप्रत्यक्ष हर्निया वाले वालको के लिये उपयुक्त है। नलिका को सुधारने का प्रयत्न नही किया जाता।

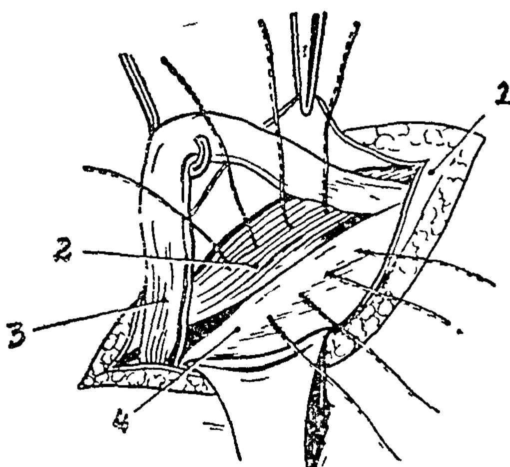
हर्निया छेदन तथा अनुप्रस्थिका प्रावरणी के दोष को सकुचित करना

अनुप्रस्थिका प्रावरणी मे प्राथमिक दोप मानकर यह शस्त्रकर्म किया जाता है। यह कर्म प्रौढ और नवयुवको के अप्रत्यक्ष हर्निया के लिये उपयोगी है।

हर्नियासीवन (herniorrhaphy)

इस शस्त्रकर्म मे वक्षण नलिका की पश्चभित्ति को अशोष्य पदार्थ से सीवन करके दृढ वनाया जाता है। ये वडी अप्रत्यक्ष हर्नियाओ के लिये विशेपकर उपयोगी हैं, इनमे वेसिनी (bassini) का शस्त्रकर्म अत्युत्तम है जिसमे सयुक्त कडरा के चापवत् तन्तुओ को विच्छिन्न टाको द्वारा ऊपर को मुडी हुई वक्षण

स्नायु (inguinal ligament) के तन्तुओ से जोडा जाता है। टाको के लिये कैटगट, सिल्क, (रुई का) तागा या नायलोन कोई भी प्रयोग किया जा सकता है। यद्यपि यह शस्त्रकर्म अकारण ही अप्रतिष्ठित हो गया है तो भी कितने ही सर्जरी के केन्द्रो मे यही प्रमाणित शस्त्रकर्म है।



64—वावम वक्षणी हर्निया के सुधार के लिये वैसिनी (Bassini's operation)का शस्त्रकर्म

मौलिक वेसिनी शस्त्रकर्म की प्रविधि मे अनेक परिवर्तन किये गये है। एक विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन यह है कि सब पेशीस्तरो को वृषण रज्जु के पीछे सिया जाता है जिससे वृषण रज्जु अधस्त्वक् हो जाती है (हाल्स्टेड का शस्त्रकर्म)।

हर्नियाप्लास्टी (hernioplasty)

प्रत्यक्ष हर्नियाओ के लिये यह विशेष उपयुक्त शस्त्रकर्म है। इसमे नलिका की पश्च भित्ति के दोष को ऊरु (लाटा) प्रावरणी या सिल्क अथवा नायलोन से अशोष्य पदार्थ से रफू (darning) किया जाता है। हर्नियासीवन और हर्नियाप्लास्टी मे मुख्य भेद यह है कि हर्नियासीवन मे पेशी कडरा भित्तियो को मिलाकर सी दिया जाता है, किन्तु प्लास्टी मे उनको एक दूसरे के पास लाकर उनके अन्तर को रफू (darn) से भरा जाता है। विशेषकर प्रत्यक्ष वडी हर्नियाओ मे कितने ही सर्जन टैन्टेलम से रफू करते हैं। किन्तु इसमे तनिक भी सक्रमण होने से आपत्ति खडी हो जाती है। उस समय रफू का आगन्तुक शल्य की भाति निष्कासन आवश्यक होता है। वृद्धावस्था मे बडे आकार की प्रत्यक्ष हर्नियाओ मे वृषणोच्छेदन (orchidectomy) भी साथ ही कर देने से हर्निया का दोपसुधार सरल होता है और उसकी पुनरावृत्ति की सभावना भी कम हो

जाती है। स्त्रियो मे वृपणरज्जु न होने से वक्षण नलिका को टाको से अन्तर्रुद्ध करना सहज होता है।

चिकित्सा के परिणाम

अप्रत्यक्ष हर्निया मे वालको मे पुनरावृत्ति नही होती। वह केवल तव होती है जव सर्जन असावधान होने पर कोश का पूर्ण अपहरण नही करता। प्रौढ अथवा युवावस्था मे प्रत्यक्ष और वडे आकार की हर्निया मे सव ही शस्त्रकर्मों मे समान पुनरावृत्ति होती है, यद्यपि सर्जन के अनुभव के साथ पुनरावृत्ति कम होती चली जाती है। अप्रत्यक्ष हर्निया मे पुनरावृत्ति 3-6 प्रतिशत और प्रत्यक्ष मे 5-11 प्रतिशत पाई जाती है। पुनरावृत्ति के कारण ये होते है (1) रोगियो की अयोग्यता—अतिवृद्ध और दुर्वल रोगी अथवा जीर्णकास, पुरस्थ की अतिवृद्धि आदि (उदरान्तर) दाव को वढाने वाले कारणो को दूर किये विना शस्त्रकर्म करना। (2) पूतिता (sepsis), जिससे सुधार नष्ट हो जाता है (3) शस्त्रकर्म की प्रविधि (technique) का दोप, जिसमे कोश को ढूढ लेने मे असफलता तथा उपयुक्त सुधारविधि के निश्चय की असमर्थता भी सम्मिलित है।

शस्त्रकर्म के उपद्रवो मे वालको मे शुक्रवाहिनी का क्षत हो जाना सभव है। उसकी ओर विशेप ध्यान देना उचित है। उसको जान लेने पर दोनो भागो को सी कर वाहिनी का सातत्य स्थापित करना चाहिये। हर्निया के अन्तर-प्रान्त मे मूत्राशय क्षत हो सकता है। वृपण कोश मे हीमेटोमा वनकर सक्रमित होना सम्भव है।

वक्षणी हर्निया के उपद्रव

विपाशन (strangulation)

यद्यपि अपुन स्थाप्यता (irreducibility) तथा अवरोध (obstruction) हर्निया के उपद्रव हो सकते है, तथापि विपाशन हर्निया का मुख्य उपद्रव है जिससे सवसे अधिक जीवन का सकट उपस्थित होता है। प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष हर्निया मे यह कही अधिक होता है। कोश की ग्रीवा अथवा वाह्य उदरीय वलय (वाह्य नलिका द्वार) विपाशन उत्पन्न कर सकते है। कोश के भीतर के किसी ततुबध (band of fibres) से विपाशन अधिक विरल होता है। कोश के अवयवो मे अकस्मात् वृद्धि से, जैसे अकस्मात् वल करने से, विपाशन की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। विपाशन का प्रथम प्रभाव, आन्त्र के आक्रात होने पर, आन्त्रयोजनी शिरा का अवरोध तथा कोश मे तरल का निस्राव होता है।

शिराओ के सपीडन से आत्र के रक्तापूरित होने पर धमनियो मे भी रक्तावरोध होकर कोथ (gangrne) आरम्भ हो सकता है । विपाशन के अनुग्ररोगियो मे विपाशन के स्थान पर आत्र की श्लेष्मिक कला के विनाश का एक वृत्ताकार क्षेत्र बन जाता है । कोश मे एकत्रित तरल प्रथम निर्जीवाणुक (sterıle) होता है, किन्तु विपाशन दूर न होने पर सक्रमित हो जाता है ।

निदान

तीव्र वेदना, जिस हर्निया का पहले पुन स्थापन होता था उसी हर्निया का पुन स्थापन न हो सकना, तथा तीव्र आत्रावरोध के चिह्नो का प्रकट होना विपाशन के नैदानिक लक्षण है । उभार तनकर स्पर्शासह हो जाता है और उसमे तरल की मात्रा बढने से परिताडन (percussıon) अननुनादी (dull) होता है । तीव्र आत्रावरोध के सब लक्षण उपस्थित होते है । सापेक्ष निदान मे कोई कठिनाई नही होती । तीव्र फाइलेरिया या स्ट्रिप्टोकोकसजन्य वृषणरज्जु-शोथ (funlıcultıs) मे बहुत कुछ समान लक्षण होते है । किन्तु तीव्र ज्वर और (फाइबेरिया मे) रक्त मे वुशेरेरिया बक्रोफटाई (Wuchererıa bancroftı) पाये जाते है ।

चिकित्सा

निदान करने के पश्चात् ही शस्त्रकर्म की तैयारी प्रारभ कर देनी चाहिये । इस समय मे रोगी को शैयारूढ करके उसके पायतो को 1 फुट ऊचा उठाकर रखा जाय और मार्फीन 15 मिलीग्राम (14 ग्रेन) और 0 6 मि०ग्रा० (1100 ग्रेन) एट्रोपीन का इजेक्शन दिया जाय तथा उभार पर बरफ की थैली रखी जाय । इन आयोजनो से कई हर्नियाओ को स्वत पुन स्थापित होते देखा गया है । हर्निया के अनुचालन (taxıs) का यहा केवल उसकी निन्दा करने के लिये उल्लेख किया जाता है । केवल, यदि रोगी शस्त्रकर्म के लिए नितान्त असम्मत हो तो अनुचालन करना चाहिये, और उसको अत्यन्त कोमलता से किया जाय ।

विपाशन के शस्त्रकर्म मे सकीर्णक बध (constrınctıng band) को काट-कर हर्निया का सुधार किया जाता हे । अधिकतर आत्र जीवनक्षम (vıable) मिलता है और कुछ अधिक नही करना होता । यदि आत्र का कोथ (gangrene) हो चुकता है या उसकी जीवनक्षमता संदिग्ध होती है तो आत्र के कोथ से आक्रात भाग का प्राथमिक उच्छेद (resectıon) और सम्मिलन (anasto-mosıs) किया जाता है । रोगी की दशा इतने विस्तृत शस्त्रकर्म को सहने के

लिये अयोग्य होने पर आक्रात खड का बाह्यकरण (exteriorization) या उच्छेद (resection) करके आन्त्र मे पील नली, कुछ समय के लिए, प्रविष्ट कर दी जाती है। कई बार, किन्तु बहुत कम, दूरवर्ती गावो या अन्य स्थानो मे कोथयुक्त खड के स्लफ हो जाने से पुरीष नालव्रण (foceal fistula) बन जाते हुए देखा गया है जिससे रोगी बच जाता है।

वक्षणी हर्निया के अन्य प्रकार

सर्पी हर्निया (sliding hernia)

इस प्रकार की हर्निया मे अधात्र या अवग्रह बृहदात्र (sigmoid colon) पश्च उदर भित्ति पर से सरक कर वक्षणी नलिका मे आ जाता है और पर्युदर्या की एक थैली (pouch) को अपने सामने खीच लाता है। अतएव आत्र की भित्ति ही स्वय नलिका की पश्च भित्ति बन जाती है। इस प्रकार की हर्निया अधिक आयु वालो मे होती हे और बहुधा प्रत्यक्ष होती है। दीर्घकालीन बहुत बडी हर्नियाओ मे भी यह दशा देखी जाती है। शस्त्रकर्म से पूर्व इसका निश्चित निदान सदा सभव नही होता। किन्तु अधिक आयु वाले प्रत्यक्ष हर्निया के रोगी को दु साध्य कोष्ठबद्धता होने पर उसका सन्देह हो सकता है। शस्त्रकर्म साधारण सिद्धातो के अनुसार किया जाता है, किन्तु यहा उच्छेदन के लिये कोई कोश नही होता, क्योकि बृहदात्र स्वय ही पश्चभिति होता है। शस्त्रकर्म मे कोश के अग्र पृष्ठ को खोला जाता है जिससे बृहदात्र को हानि न पहुचने पाये। कोश के अवयवो को उदर मे लौटाकर उसको बटुवासीवन (PURSE-STRING suture) से बन्द किया जाता है। सीवन अग्रपृष्ठ से प्रारभ करते हैं और पश्च भिति को पर्युदर्या के आन्त्र पर परावर्तित होने के स्थान तक सीवन मे ले लेते है तथा कोश को बन्द करके उदर मे लौटा देते है। उसके पश्चात् अनुप्रस्थिका प्रावरणी को वक्षणी स्नायु से सीकर हर्निया सुधार (repair) किया जाता है।

अंतरालीय हर्निया (interstitial hernia)

इस प्रकार की हर्निया प्राय वृपण के अपूर्ण अवरोहण के साथ होती है। हर्निया का कोश, जो प्राय गुप्तवृषणता (cryptorchidism) के साथ होता है, वक्षणी नलिका के अपूर्ण होने के कारण वृषण कोश मे नही पहुचता। और निम्न उदर की पेशियो के बीच या पेशीस्तर और पर्युदर्या के बीच घुसता चला जाता है। गुप्त-वृषणता न होने पर भी जब अतरालीय हर्निया होती है तो

कोश पेशीस्तरो के बीच प्रविष्ट हो जाता है, अथवा कोश की एक विपुटी वहा पहुच जाती है।

मेडल (Maydl's) की हर्निया

अति विरल बार आन्त्र के दो पाश हर्निया कोश मे S के समान स्थित मिल सकते है। मध्य पाश, जो उदर मे रहता है, कोश की ग्रीवा पर विपाशित हो सकता है और निदान मे कठिनाई उपस्थित कर सकता है।

नाभि-हर्निया (Umbilical Hernia)

नाभि एक दृढ क्षताक (cicatrix) है जो हर्निया की उत्पत्ति को रोकता है। जन्म के समय और उससे पूर्व उसके द्वारा रक्तवाहिकाओ के आने-जाने मे क्षताक मे एक दुर्बल स्थान बन जाता है, नाभि रज्जु (umbilical cord) के पृथक् होने के पश्चात् इस दुर्बल स्थान के बन्द होकर इतने दृढ होने की सभावना हो सकती है कि उसके द्वारा शैशव काल मे हर्निया न निकलने पाये। सामान्यतया परिवर्धन काल के पाचवे से दसवे सप्ताह तक इसके द्वारा आद्य मध्यात्र (hind gut) निकलकर भ्रूणबाह्य उदर गुहा अथवा सीलोम (coelom) मे जाता है : दसवे सप्ताह के पश्चात् आन्त्र सीलोम से पर्युदर्या गुहा मे लौटता है।

नाभि हर्निया के तीन प्रकार होते है : (1) नाभिबाह्य हर्निया (exomphalos) अथवा आशय निस्सरण (eventration), (2) शिशु और बालको की नाभिहर्निया, और (3) परानाभि (paraumbilical) हर्निया।

जन्मजात (सहज) नाभिबाह्य हर्निया (Congenital Exomphalos)

आशय निस्सरण (eventration) गर्भावस्था की ही दशा है जो जन्म के पश्चात् भी वैसी ही बनी रहती है। नाभि से निकले हुए हर्नियाकोश मे आन्त्र का भाग और ठोस उदरीय अग तक हो सकते है। इन सब पर पर्युदर्या का स्तर आवृत होता है और उल्व (amnion) का पतला आस्तर भी चढा रहता है, जिसमे आगे चलकर व्रणोत्पत्ति हो सकती है। सीलोम गुहा अल्पविकसित मालूम होती है जैसे उसमे इन आशयो के लिये पर्याप्त स्थान ही न बना हो। अन्य असगतिया असाधारण है और होने पर आपत्ति का कारण हो सकती है।

चिकित्सा—शस्त्रकर्म न करने पर कोश के फटने अथवा उदरभित्ति मे

[illegible] होता है। ये बच्चे के लिये घातक भी हो सकते हैं।

शस्त्रकर्म में आन्त्रों का पुनःस्थापन, कोष का उच्छेदन तथा उदरभित्ति को बन्द किया जाता है। बालक अधिक छोटा होने से यदि उसको पूर्णतया बन्द न किया जा सके तो [illegible] कर दिया जाय, जिससे कुछ समय पश्चात् फिर से बन्द किया जा सकता है।

[illegible] के परिणाम अधिक सन्तोषजनक नहीं होते हैं। [illegible] की आवश्यकता को वैसा ही छोड़ दिया जाता है, [illegible] सीने के [illegible] और [illegible] त्वचा [illegible] से कोष को ढक दिया जाता है। पेशियों और आवरणों को कुछ मास पश्चात् बन्द किया जा सकता है।

बड़ी हुई नाभि-आन्त्र हर्निया में परिणाम अनुकूल नहीं है, वह जितनी छोटी होती है उतना ही परिणाम अनुकूल होता है।

शैशव नाभि-हर्निया
(Infantile Umbilical Hernia)

शैशव नाभि-हर्निया में शिशु के रोने, खाँसने या बल करने पर नाभि में [illegible] बाहर को निकल आती है, क्योंकि यहाँ और नाभि क्षतांक दुर्बल होते हैं। नाभि-प्रावरणी जो अनुप्रस्थिका प्रावरणी का एक भाग है और नाभिप्रदेश में उदरपेशियों और पर्युदर्या के बीच नाभि के नीचे रहती है, यह भी दृढ़ नहीं है। नाभि-क्षत के घनीभवन (condenzation) से हर्निया स्वयं जाती रहती है। जिन शिशुओं की उदरपेशियां प्रायः दुर्बल होती हैं, उनको [illegible] भी हो जाता है।

चिकित्सा दृष्टि से नाभि के आधे इंच से कम चौड़ी होने पर वह स्वतः बन्द हो जाती है। आधे इंच से अधिक चौड़ी होने पर उसको प्रायः सर्जरी द्वारा बन्द करना होगा।

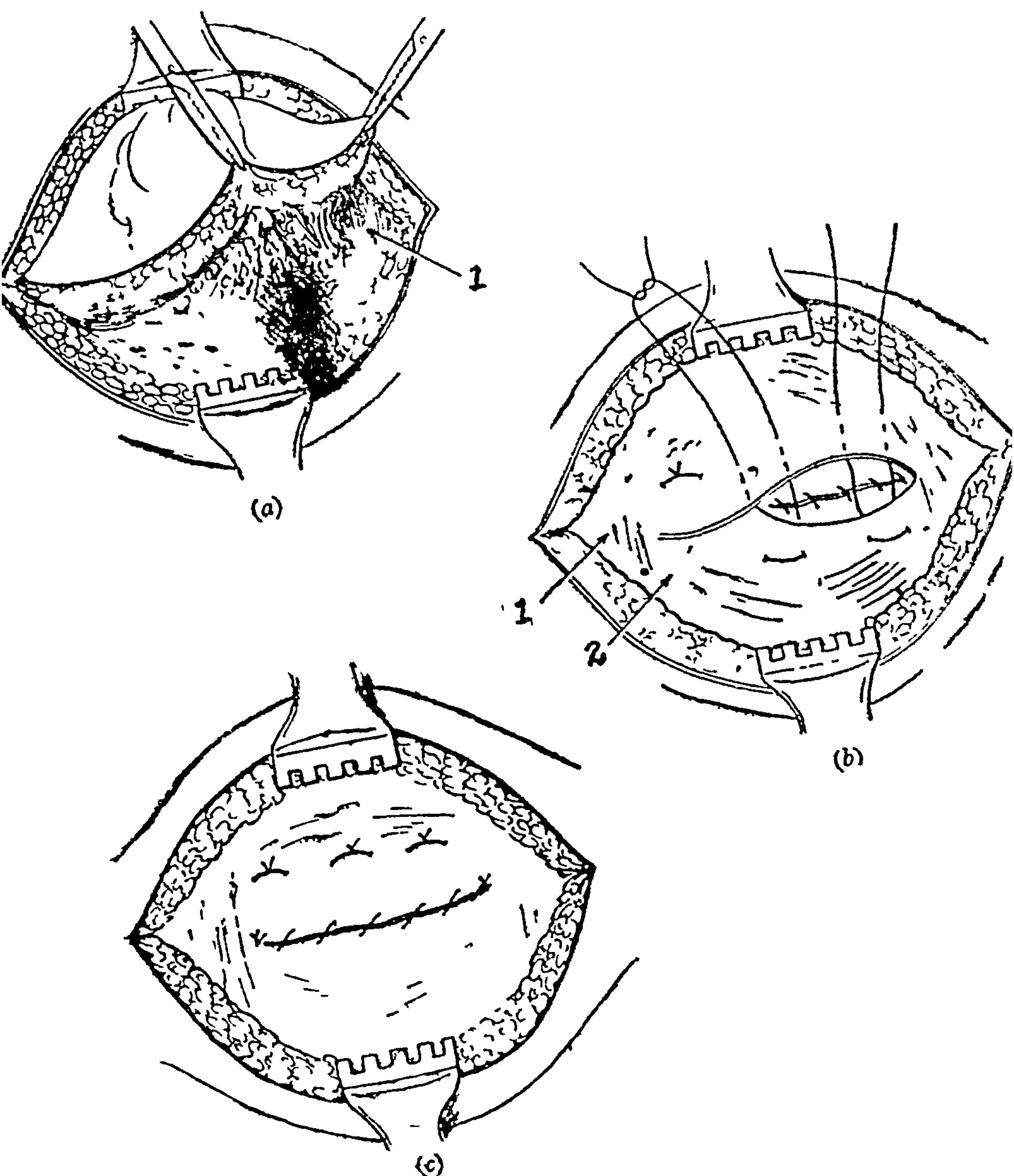
विपाटन के अतिरिक्त सर्जरी में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये।

चिकित्सा—सरक्षी चिकित्सा द्वारा शिशु का स्वास्थ्य उन्नत किया जाता है। 'उदर की पेटी' (strap binder) लगाने से लाभ नहीं होता। सरक्षी चिकित्सा से लाभ न होने पर सर्जरी आवश्यक है। इसमे नाभिप्रदेश की पेशी तथा प्रावरणी स्तरों का सन्निकटन (approximation) किया जाता है। नाभि से ऊपर एक मुड़ा हुआ छेदन लगाकर नाभि को उठाने के पश्चात कोश का उच्छेदन किया जाता है और प्रावरणी तथा पेशीस्तरो को थोड़ा

एक दूसरे पर चढाकर सी दिया जाता है। परिणाम अत्युत्तम होता है

वयस्को में परानाभि हर्निया
(Paraumbilical Hernia)

यह वास्तव मे नाभि हर्निया नही होती। वह अधिनाभि अभ्युदरहर्निया (supraumbilical ventral hernia) है जो प्राय स्थूल अधिक आयु वाली



चित्र 65—नाभि हर्निया के लिये मेयो (Mayo) का शस्त्रकर्म

स्त्रियो मे पाई जाती है । हर्निया प्रथम उदरमध्यरेखा (linea alba) द्वारा, नाभि के ऊपर एक लघु थैली के रूप मे प्रारम्भ होती हे जो धीरे-धीरे उदरान्तर दाव के वढने और पेशियो के दुर्वल होने के साथ आकार मे वढती जाती हे और नाभि पर लटकने लगती है ।

निदान—नाभि पर या उसके ऊपर की ओर एक उभार मिलता है, जिसमे स्थूलकायो मे आसजनो के कारण खासने पर सवेग या सरसराहट प्रतीत करना वहुधा कठिन होता है । हर्निया के अवरुद्ध होने पर सरसराहट प्रतीत नही होती और न हर्निया पुन स्थाप्य ही होती है । निदान मे कठिनाई केवल स्थूल-कायो मे होती है । इन हर्नियाओ मे प्राय विपाशन हो जाता है । इस कारण शीघ्र ही शस्त्रकर्म का परामर्श देना चाहिये । इस स्थिति मे उत्तम ट्रस नही लग सकती । उदर की पेटी (truss) सफल नही होती ।

चिकित्सा—ये व्यक्ति शस्त्रकर्म के वहुत योग्य नही होते । इस कारण शस्त्रकर्म पूर्व तथा पश्चात आयोजनो पर, विशेपकर सवेदनाहरण पर, विशेप ध्यान देना चाहिये ।

शस्त्रकर्म की तीन विधिया है । डेढ से दो इच के व्यास के हर्नियाओ के लिये एक ऊर्ध्वाधर छेदन लगाया जाता है जिससे सारा हर्निया स्पष्ट हो जाता है, और पेशी तथा प्रावरणी स्तरो को मिला दिया जाता है । हर्निया के छिद्र 2 इच से अधिक व्यास का होने पर मेयो (Mayo's) का शस्त्रकर्म किया जाता हैं ।

मेयो का शस्त्रकर्म (mayo's operation)

हर्निया के चारो ओर एक वृत्ताकार छेदन करके, नाभि के उच्छेदन के पश्चात व्यवच्छेदन द्वारा हर्निया की ग्रीवा के स्पष्ट होने पर कोश का उच्छेदन किया जाता है । तव दोनो ओर उदरमध्यरेखा मे एक-एक छेदन इतना गहरा किया जाता है कि समोदरिका (rectus abd) का किनारा दीखने लगता है । पर्युदर्या तथा पश्च समोदरिकापिधान (posterior rectus sheath) दोनो को वन्द करने के पश्चात उदरमध्यरेखा के ऊर्ध्व और अधोभागो को एक दूसरे पर चढाकर (डवलब्रैस्ट कोट या वेस्टकोट के समान) सी दिया जाता है । उसके पश्चात क्षत को वन्द कर देते हैं ।

वहुत वडी हर्निया होने पर कोई वाह्य पदार्थ जैसे टैन्टेलम या स्टेनलैस स्टील की जाली त्रुटि को वन्द करने के लिये प्रयोग की जाती है ।

प्राग्ज्ञान

इन रोगियो के शस्त्रकर्म अयोग्य होने के कारण शस्त्रकर्म के पश्चात 1-2 प्रतिशत मृत्यु होती है। पुनरावृत्ति दर 5-10 प्रतिशत है।

उपद्रव—कोश के भीतर जोड बन जाने से अपुनस्थाप्यता (irreducibility) सामान्य उपद्रव है। अधिक भयप्रद उपद्रव विपाशन है, जिसका प्राग्ज्ञान विलब के कारण, विपरीत है। स्थूलकाय मे, तने हुए हर्नियाकोश को प्रतीत न करने पर भी, अब तक वेदनारहित उभार मे, तीव्र वेदना और आन्त्रावरोध के अन्य चिह्नो का प्रकट होना उपद्रव के निश्चित सूचक है। चिकित्सा तत्काल शस्त्रकर्म द्वारा विपाशन को दूर करना है। साधारणतया हर्निया कोश की ग्रीवा पर उदर मध्यरेखा के प्रावरणीकृत किनारे विपाशन का कारण होते है। कोश के भीतर प्राय वृहदान्त्र और वपा रहते है, कभी-कभी क्षुद्रान्त्र भी होता है। विपाशन दूर करने के पश्चात हर्निया को सुधारा जाता है। जठर अन्तःवासी नलिका (Indwelling stomach tube) और अन्त शिरीय तरल आधान आध्मान को रोकने के उत्तम आयोजन है।

अभ्युदर और छेदनोत्तर हर्निया (Ventral and Post-incisional Hernia)

ये हर्निया उदरभित्ति के किसी दुर्बल क्षेत्र या दुर्बल क्षताक द्वारा उत्पन्न होती है। मुख्य कारण सक्रमण, शस्त्रकर्म की प्रविधि मे दोष, सचालक तन्त्रिकाओ का क्षत होना तथा शस्त्रकर्म पश्चात आध्मान होते है।

चिकित्सा क्षताक का तथा उसके नीचे स्थित हर्नियाकोश का उच्छेदन तथा पेशियो की स्तरानुसार सीवन है। सीवन की दृढता बढाने के लिए टैन्टेलम या स्टेनलैस स्टील की जाली का उपयोग किया जा सकता है।

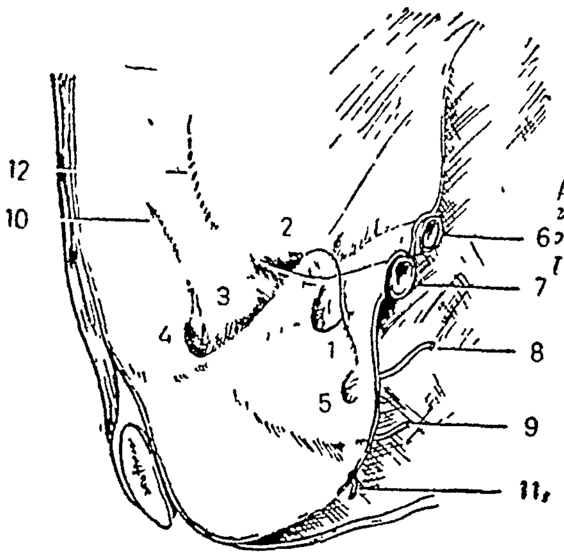
इन शस्त्रकर्मो मे पुनरावृत्ति की सभावना रहती है।

और्वी हर्निया (Femoral Hernia)

इसमे पर्युदर्याकृत कोश और उसके अवयव और्वी नलिका (femoral canal) द्वारा निकल आते है। और्वी नलिका वक्षणी स्नायु के पीछे, रिक्तिका स्नायु (lacunar lig) तीव्र मुडी हुई धारा के ठीक पार्श्व ओर स्थित और्वी द्वार से प्रारभ होकर और्वी शिरा के अभिमध्य और सीधी ऊरु मे नीचे को चली जाती है। नलिका का ऊर्ध्व द्वार पर्युदर्यावाह्य (extra peritoneal)

वसाकृत औवीं पट (septum femorale) द्वारा वन्द रहता है। प्रसामान्यतया नलिका मे कुछ लसीकापर्व और अवकाशी (areolar tissue) ऊतक रहते है।

नलिका का अन्त ऊरु प्रावरणी के अडाकार खात (fossa ovalis) के पीछे होता है। अडाकार खात पर के चालीनवत् आच्छादन (cribriform covering) द्वारा निकलकर हर्निया जिस दिशा मे वढती है वह वहुत कुछ अडाकार खात की दृढ वाह्य धारा और आवर्तक श्रोणिफलक धमनी (circumflex iliac artery) द्वारा प्रावरणी के वेधन से प्रभावित होती है। 10 प्रतिशत व्यक्तियो मे औवीं हर्निया के कोश की ग्रीवा के अभिमध्य और अप्रसामान्य गवाक्ष धमनी रहती है जो वाह्य उपरिस्थ गुह्य (superficial pudendal artery) धमनी की गवाक्ष शाखा (obturator branch) मे मिलती है। अन्य 10 प्रतिशत मे वह रिक्तिका-स्नायु के अभिमध्य किनारे पर रहती है जहा विपाशित औवीं हर्निया के शस्त्रकर्म मे वह क्षत हो सकती है।



चित्र 66—श्रोणि का दक्षिण ओर, भीतर से देखने पर

1. औवीं नलिका
2. गभीर वक्षणी द्वार (वलय)
3, और
4 साक्षात (direct)हर्निया कोश
5 गवाक्ष रन्ध्र
6 और
7. वाह्य श्रोणिफलक वाहिकाये
8. गवाक्ष धमनी
9. और
10 लुप्त अवजठर धमनी
11 शुक्रवाह (vas deferens)
12 निम्न अधिजठर धमनी

हेतुकी

पुरुष और स्त्रियो दोनो मे औरवीं हर्निया समान रूप से होती है ; किन्तु पुरुषो मे वह वक्षणी हर्निया की अपेक्षा बहुत कम होती है । स्त्रियो मे दोनो का अनुपात समान है । स्त्रियो मे और्वी नलिका के अधिक चौडी होने से और्वी हर्निया की उनमे अधिक प्रवृत्ति होती है ।

लक्षण

खासने या बल करने से और्वी नलिका पर उभार प्रकट होता है । और्वी और वक्षणी हर्नियाओ के बीच जघन गुलिका (pubic tubercle) द्वारा भेद किया जा सकता है । वक्षणी हर्निया की ग्रीवा जघन गुलिका के अभिमध्य ओर रहती है, किन्तु और्वी हर्निया की ग्रीवा पार्श्व ओर स्थित होती है ।

और्वी हर्निया के कोश मे प्राय आन्त्र या वपा होते है । यदि केवल आन्त्र की भित्ति का कुछ अश हर्निया मे रहता है तो वह रिचर की हर्निया (Richer's Hernia) कही जाती हे । विरल बार केवल अतर्गत अश का विपाशन होता है ।

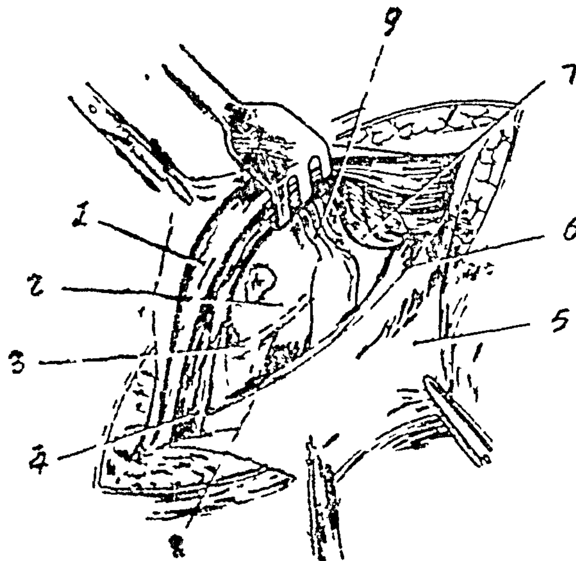
निदान

अनेक बार अडाकार खात पर की बसा के सहत हो जाने से और्वी नलिका पर एक पिड-सा बन जाता है जो कई बार विवर्धित लसीका-पर्वक के समान प्रतीत होता है किन्तु हर्निया मे ग्रीवा होती है तथा वह पुन स्थाप्य होती है । किन्तु एकत्र बसा का पुन स्थापन नही होता । कभी अध शाखा शिरा (saphenous vein) की अतिवर्धित स्फीति (varix) का और्वी हर्निया से भ्रम होता है । किन्तु भेद करना सहज है । और्वी प्रदेश मे फाइलेरिया का शोथ और्वी हर्निया के समान प्रतीत हो सकता है । किन्तु यह समानता अत्यन्त अपूर्ण होती है । इतिवृत्त तथा परीक्षा से रोग सहज मे पहिचाना जा सकता है ।

चिकित्सा

और्वी हर्निया की चिकित्सा केवल सर्जरी द्वारा हो सकती है । उस पर कोई ट्रस भी नही लगाई जा सकती । दो प्रकार के शस्त्रकर्म किये जाते है, एक लौकवुड (Lockwood) का पूर्णत और्वी शस्त्रकर्म, और दूसरा लोथीस्सेन (Lotheissen) का शस्त्रकर्म जो वक्षणी मार्ग से किया जाता है । प्रथम शस्त्र-कर्म मे और्वी छेदन द्वारा कोश को स्पष्ट करके उसके अवयवो को उदर मे

लौटाने के पश्चात् कोश का उच्छेदन किया जाता है और वक्षणी स्नायु से कूपर स्नायु को जोडकर नलिका को मिटा दिया जाता है।

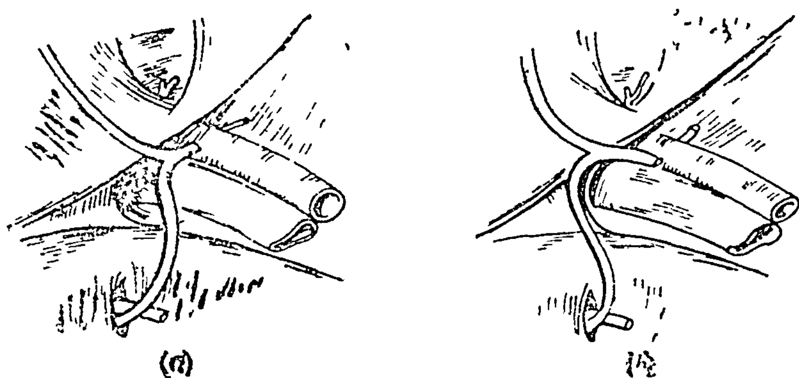


चित्र 67—और्वी हर्निया के लिये लौकवुड (Lockood) का शस्त्र कर्म

दूसरे लौथीसेन शस्त्रकर्म मे वक्षणी नलिका को स्पष्ट करके और्वी कोश ग्रीवा को उसमे खोला जाता है। कोश मे उपस्थित अवयवो को उदर मे खीच लिया जाता है। आवश्यक होने पर ऊरु की ओर से भी शस्त्रकर्म करके वक्षणी छेदन की सहायता की जा सकती है। कोश की ग्रीवा को बाधने के पश्चात सयुक्त कडरा को कूपर की स्नायु से जोड कर नलिका को बन्द कर दिया जाता है। इस प्रविधि का लाभ विशेषकर विपाशन मे देखा जाता है। प्राय विपाशन रिक्तिकास्नायु द्वारा होता है। लगभग एक प्रतिशत विपाशनो मे अप्रसामान्य नवाक्ष धमनी रिक्तिका स्नायु के ऊर्ध्व पृष्ठ और मुक्त धारा पर स्थित होती है। और्वी मार्ग द्वारा उसके कट जाने पर उससे होने वाले रक्तस्राव को रोकना असम्भव होता है। किन्तु वक्षण मार्ग के खुल जाने पर धमनी को देखकर रक्तस्राव को रोका जा सकता है। आत्र मे कोथ हो जाने पर उसकी वक्षणी हर्निया के कोथ के समान चिकित्सा की जाती है।

एक नवीन प्रविधि जिसका अधिक अनुसरण किया जा रहा है मैकएवेडी (Mc Evedy's) की विधि है जिसमे पर्युदर्यावाह्य मार्ग से पहुँचकर और्वी द्वार को समोदरिकापिधान के एक अश से वन्द किया जाता है।

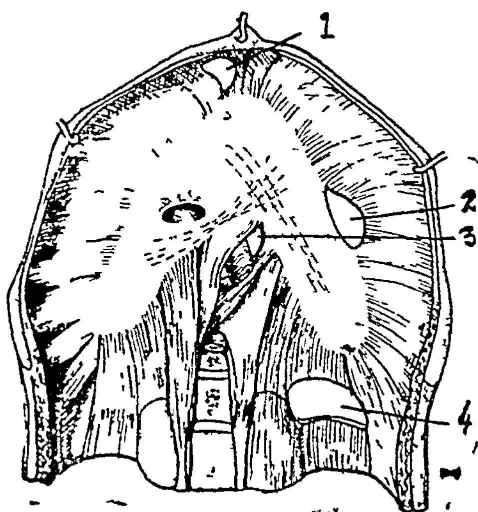
पुनरावृत्ति लगभग 4 प्रतिशत होती है।



चित्र 68—एक असामान्य गवाक्ष धमनी के मार्ग मे पाये जानी वाली भिन्नताएँ

मध्यच्छद हर्निया
(Diaphragmatic Hernia)

मध्यच्छदिका के किसी प्रसामान्य या अप्रसामान्य छिद्र मे होकर औदरिक आशयो के वक्ष गुहा मे निकल जाने को मध्यच्छद हर्निया कहते है। वह जन्मजात, उपार्जित या अभिघातज (congenital, acquired or traumatic) हो सकती है।



चित्र 69—जन्मजात मध्यच्छद हर्निया की साधारण स्थितिया

जन्मजात मध्यच्छद हर्निया (Congenital diaphiagmatic hernia)

प्रारम्भ मे भ्रूण मे एक वडी कायगुहा होती है जिसको सीलोम (coelom) कहते हैं। आगे चलकर इस गुहा के मध्यच्छद्रिका के वनने से दो भाग हो जाते हैं, अर्थात् उदर और वक्ष गुहाये। मध्यच्छदिका वहा से पेशीपिंड (muscle mass) से पाच भागो मे परिवर्धित होती है जिनमे से एक मध्यवर्ती (central), दो अभ्युदर (ventral) और दो अभिपृष्ठ (dorsal) होते है। ये सब भाग गर्भावस्था के तीसरे मास मे आपस मे जुडते है। यदि इनका जुडना कही पर पूर्ण नही होता तो उदर और प्लूरा गुहाओ के वीच छिद्र रह जाते है।



चित्र 70—एक मध्यच्छद हर्निया के रोगी के एक्सरेचित्र मे वाम वक्षगुहा मे वृहदान्त्र उपस्थित है।

मध्यच्छदिका मे ग्रास प्रणाल, महाधमनी तथा अधोमहाशिरा के प्रसामान्य द्वार भी होते है उनके द्वारा भी कभी-कभी हर्निया हो जाती है। साधारणतया

हर्निया इन स्थितियों मे होती है। पाराउरोस्थि हर्निया (parasternal) अथवा मोर्गग्नी (morgagni) की हर्निया; परा-ग्रासप्रणाल (paraoeso-phageal) गुम्बद या शिखर (dome) द्वारा, प्लूरापर्युदर्या रन्ध्र (pleuro-peritoneal foramen) द्वारा जिसको बोकडालेक का रन्ध्र भी कहते हैं।

कभी-कभी मध्यच्छदिका का अथवा उसके एक भाग का परिवर्धन पूर्ण नही होता, और उसका स्थान तान्तव ऊतक ले लेता है जिसके एक ओर प्लूरा और दूसरी ओर पर्युदर्या छाये रहते है। पेशी की दुर्बलता के कारण उसके द्वारा उदर के आशय वक्ष मे वहिःसरित हो जाते है। ऐसी हर्निया पर पर्युदर्या का कोश नही होता। इस दशा को आशय-निस्सरण (eventration) कहते है।

अधिकतर जन्मजात हर्निया शैशव काल मे उत्पन्न होती है। किन्तु कई बार उसको प्रौढावस्था तक नही पहिचाना जाता।

लक्षण

पराउरोस्थि या प्लूरापर्युदर्या रन्ध्र द्वारा लघु हर्नियाये लक्षणहीन होती है और अकस्मात पहिचानी जाती है। जन्म के पश्चात ही शिशु मे श्वासकष्ट होने से इस प्रकार की हर्निया की सम्भावना न भूलनी चाहिये। नवजात मे तत्काल निदान आवश्यक है। उपस्थित होने पर लक्षण श्वासकष्ट, श्यावता (cynosis) तथा दुष्पचन और वमन के हो सकते है। ऐक्सरे परीक्षा से निदान सरल होता है।

चिकित्सा

नवजात मे तत्काल सर्जरी द्वारा सुधार आवश्यक हो सकता है। प्रौढो मे लक्षण उपस्थित होने पर दोष को वन्द करना चाहिये।

उपार्जित हर्निया
(Acquired hernia)

उपार्जित हर्निया सबसे अधिक ग्रास प्रणाल छिद्र द्वारा होती है जिसका कारण छिद्र का वडा आकार होता है। पर्युदर्या की थैली आमाशय के बुध्न सहित, उदरान्त दाव की वृद्धि से ग्रासप्रणाल के द्वारा वक्ष गुहा मे चली जाती है। इसको हायेटस हर्निया (hiatus hernia) भी कहते है।

हायेटस हर्निया के प्रकार

निम्न प्रकारो की हायेटस हर्निया पाई जा सकती है **लोढनी हायेटस हर्निया** (rolling hiatus hernia) जिसमे ग्रास प्रणाल और आमाशय का सगम मध्यच्छदिका के नीचे अपनी प्रसामान्य स्थिति मे स्थिर रहता है और बुघ्न तथा काय के कुछ भाग की हर्निया होती है। (2) **सर्पी हर्निया** (sliding hernia) जिसमे ग्रासप्रणाल-अमाशय सगम भी छिद्र द्वारा वक्ष मे चला जाता है। यह प्रकार सबसे अधिक पाया जाता है, (3) कुछ मे ग्रासप्रणाल की सहज लघुता के कारण आमाशय पश्च मध्यस्थानिका (posterior mediastinum) मे चला जाता है।

लक्षण

हायेटस हर्निया मध्य आयु के व्यक्तियो मे, स्त्रियो मे अधिक, होती है।



चित्र 71—बृहद मध्यच्छद हर्निया के एक प्रकार का एक्सरेचित्र (लोढनी प्रकार)

लक्षण प्राय अनिश्चित होते है और जठरान्त्र पथ, हृदय और श्वसन सम्बन्धी होते हे जो हर्निया के आकार और स्थिति पर निर्भर करते हैं। जठरान्त्र लक्षण अग्निमाद्य अथवा निगरणकष्ट के या पित्ताशय रोग के समान हो सकते हैं। हृदय पर दवाव पडने से हृदयक्षिप्रता (tachycardia), उरोस्थि के पीछे भार या वेदना का अनुभव अथवा गला रुधने के समान प्रतीति होती है, श्वासकष्ट और श्यावता (cyanosis) तक हो सकती है।

कुछ रोगियो को अधिजठर या उरोस्थि के पीछे या पीठ मे वेदना का अनुभव होता है। झुकने या भार उठाने या कभी-कभी लेटने से वेदना बढ जाती है। मुह मे, विशेपकर झुकने पर, खट्टा तरल आता है। आमाशय की आम्लिक अन्तर्वस्तु से प्रत्यावहन (regurgitation) से ग्रास-प्रणाल मे शोथ और व्रण तक उत्पन्न हो जाते है। यह सर्पी प्रकार मे अधिक होता है। 10 प्रतिशत रोगियो मे तीव्र या चिरकारी पैप्सिनी व्रण से तीव्र रक्तवमन या रुधिरज कालामल (melaena) हो सकता है। लोढनी प्रकार मे यद्यपि लक्षण मृदु होते हे, रक्तस्राव, वेध, विपाशन आदि उपद्रव अधिक होते है।

नदान

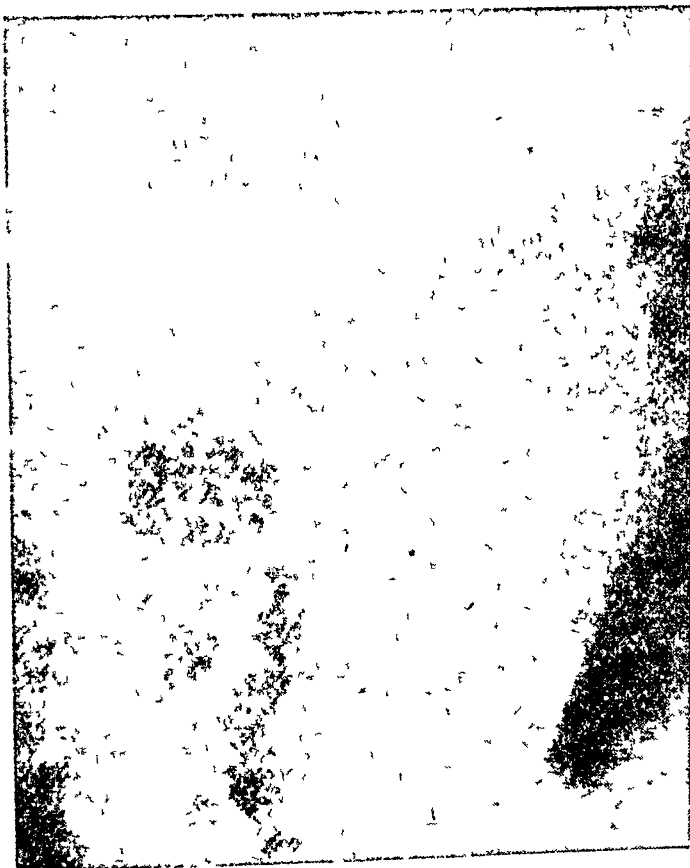
एक्स-रे परीक्षाओ से निदान किया जाता है। हायेटस हर्निया का पित्ताशय रोग, हृदरोग, श्वसन रोगो से निदान करना होता है।

चिकित्सा—लक्षणहीन हायेटस हर्निया की कोई चिकित्सा आवश्यक नही है। मृदुलक्षणो वाले रोगियो की चिकित्सा शरीर भार को घटाना, झुकने और कोष्ठवद्धता को न होने देना तथा भार उठाने का निषेध हे। सोते समय उनके कधे उठे रहे। आकर्षहर (antispasmodics) औपधियो तथा क्षार का प्रयोग लाभदायक है।

लक्षण वने रहने पर शस्त्रकर्म द्वारा ग्रासप्रणाल के छिद्र को छोटा करना आवश्यक होता है। यह कर्म उदर द्वारा या वक्ष द्वारा किया जा सकता है।

अभिघातज हर्निया (Traumatic Hernia)

अभिघातज हर्निया ऐसे अभिघातो से होती है जिनमे वक्ष कुचल जाता है, जिनको सम्पीडन आघात (compression injuries) कहते है, अथवा गोली लगने या भेदक (stab) क्षतो से उत्पन्न होती है। सपीडन अभिघातो मे गुम्बद या शिखर मे प्राय वाम ओर हर्निया होती है, वह दक्षिण ओर यकृत के कारण वहुत कम होती है। हर्निया तुरन्त हो सकती है अथवा वहुत काल तक विलबित



चित्र 72—एक्सरेचित्र जिसमे सर्पी (sliding) प्रकार की हर्निया दीख रही है।

हो जाती है। आमाशय, बृहदान्त्र, प्लीहा अथवा क्षुद्रान्त्र की हर्निया हो सकती है। हर्निया कोश नही होता और हर्निया हुआ अग और फुप्फुस सदा जुड जाते हे।

लक्षण

प्राय वक्ष का एक्स-रे करने पर इस दशा का अकस्मात् पता चलता है। जठरान्त्र अवरोध प्रथम लक्षण हो सकता है। मध्यच्छदिका का विदर होने पर कभी-कभी तीव्र कृच्छ्र श्वसन (dyspnoea) हो जाता है।

चिकित्सा

सर्जरी द्वारा दशा को सुधारा जाता है।

गवाक्षरन्ध्र हर्निया

ये विरल प्रकार की हर्नियाएँ हैं , इनका निदान बहुधा कठिन होता है।

गवाक्ष (obturator) हर्निया में गवाक्ष नाड़ीशूल (obturator neuralygia) गवाक्षतन्त्रिका के हर्निया में फँसने से होता है, जिसमें ऊरु का संकोच और अन्तर्विवर्तन किया जाता है, वह बढ़ता है। कटिस्थ (lumbar) हर्निया उपर्युक्त की अपेक्षा भी विरल है। सघन पेशी और प्रावरणी के स्तर में एक पिंड बन जाना इसका विशेष लक्षण है। किन्तु बहुधा पेशियों में होने के कारण वह केवल कठोरता-सा प्रतीत होता है।

इन दोनों प्रकार की हर्नियाओं का विपाशन बहुत होता है, बहुधा उसी से उनका पता चलता है।

आभ्यन्तर हर्नियाएँ
(Internal hernias)

वाह्य हर्नियाओं की अपेक्षा ये बहुत कम होती हैं, किन्तु निदान की कठिनाई के कारण, वे जीवन के लिए अधिक भयानक हैं। उनमें विपाशन भी अधिक होता है। आभ्यतर हर्निया में लक्षण आन्त्रावरोध के रूप में प्रकट होते हैं और शस्त्रकर्म में उदर खोलने पर उनका बोध होता है। ये हर्निया पर्युदर्या-दरियों (peritoneal recessess) में अथवा खातों में होती हैं; अथवा सहज या उपार्जित छिद्रों द्वारा होती हैं।

आभ्यतर छिद्रों द्वारा हर्निया कम होती हैं। वे निम्न स्थितियों में छिद्रों (apertures) द्वारा हो सकती हैं : क्षुद्रान्त्रयोजनी (mesentery), बृहदान्त्र योजनी (mesocolon), बृहद्वपा (greater omentum), पृथुस्नायु (broad ligament) आदि। पर्युदर्यादरियाँ, जिनमें हर्निया होती है, ये हैं पर्युदर्या का लघु कोश, ग्रहणी के खात, अधान्त्र के खात और अन्तरावग्रह (intersigmoid fossa) खात।

पर्युदर्या के लघुकोश की हर्निया

पर्युदर्या का लघुकोश सबसे बड़ी पर्युदर्या की प्राकृतिक दरी है। वह बृहत्कोश से विंसलो (Winseow) के रन्ध्र द्वारा संयोजन करता है जिसके द्वारा आन्त्र लघुकोश में प्रवेश कर सकता है और रन्ध्र द्वारा विपाशन हो सकता है। यह रन्ध्र अग्र ओर पर्युदर्या के एक पुटक से सीमित है जिसमें पित्तवाहिनी, यकृत

धमनी और प्रतिहारणी शिरा रहती है उसके पश्च ओर अधोमहाशिरा और दक्षिण अधिवृक्क है ; ऊर्ध्व ओर यकृत का पुच्छक खड और निम्न ओर ग्रहणी का प्रथम भाग तथा यकृत धमनी का अनुप्रस्थ भाग उसकी सीमा बनाते है। अतएव विपाशन होने पर रध्र को किसी ओर भी नही बढाया जा सकता और हर्निया का केवल हस्त-कौशल से पुन स्थापन करना पडता है। अथवा जठर-बृहदात्र (gastrocolic) वपा द्वारा लघुकोश को खोलकर उसमे उपस्थित आत्र का अवचूषण (aspiration) करके उनका पुन स्थापन किया जा सकता है। जठर-मध्यात्र सम्मिलन के पश्चात् अनुप्रस्थ बृहदात्रयोजनी (transverse mesocolon) के छिद्र द्वारा शस्त्रकर्मपश्च (postoperative) हर्निया हो सकती है।

ग्रहणी खातो मे हर्निया
(Hernias in duadenal fossae)

ग्रहणी खातो मे दो विशेप है एक पराग्रहणी खात (paraduodenal fossa)और दूसरा वाल्डेयर (Waldeyor) का आत्रयोजनी भित्तिक खात (mosenterico-parietal fossa)। प्रथम खात ग्रहणी के चौथे भाग के वाम ओर स्थित है और अधो-आत्रयोजनी (inf. mesenteric) शिरा उसके अग्र ओर पयुदर्या के एक फलक मे रहती है। हर्निया कोश के अधो-आत्र-योजनी-धमनी पर दवाव से अर्श (haemarrhoids) उत्पन्न हो सकते है। जब खात के आभ्यतर हर्निया के लिये शस्त्रकर्म किया जाता है तो छिद्र को नीचे की ओर बढाया जाता है जिससे हर्निया की अन्तर्वस्तु का पुन स्थापन सहज मे हो जाय अथवा अधो-आत्र-योजनी-शिरा का बधन करके उसको काट दिया जाता है। ऐसा करने पर मलाशय और अवग्रह बृहदात्र से रक्त उसकी समपार्श्वियो द्वारा लौटता है। वाल्डेयर का आत्रयोजनी-भित्तिक खात मध्यात्र-योजनी (mesojejunum) के प्रथम भाग मे, ग्रहणी के ठीक नीचे स्थित है और ऊर्ध्व आत्रयोजनी धमनी उसके अग्र मुक्त पुटक मे रहती है। इस खात का द्वार वाम ओर को रहता है और बडा होता है। इस कारण हर्निया का पुन स्थापन सहज मे हो जाता है। यदि द्वार को बढाना पडे तो वह नीचे की ओर बढाया जा सकता है।

अधात्र के खात मे हर्निया
(Hernias in Caecal Fossa)

तीन अधात्र खात प्रमुख है ऊर्ध्व शेष-अधात्र (superior ileocaecal) अधो-शेष-अधात्र (inferior ileocaecal), और अधात्रपश्च (retrocaecal)

अथवा बृहदात्रपश्च (ıetrocolıc), इनमे से किसी मे हर्निया हो सकती है। चिकित्सा सामान्य सिद्धातानुसार होती है।

अतरावग्रह बृहदात्र खात में हर्निया (Hernıas ın Intersigmoid Fossa)

यह खात श्रोणिबृहदात्रयोजनी के उलटे हुए V-आकार के भित्तिक लगाव के शिखर के पीछे स्थित है और वह नीचे की ओर खुलता है। इसके पश्च सबधो मे विशेष सामान्य श्रोणिफलक धमनी (common ılıac art) का विभाजन और वाम गवीनी है। अवग्रहरक्तवाहिकाए खात के ऊपर तथा दक्षिण ओर रहती है। इस दरी मे भी कभी कभी हर्निया हो जाती है। किंतु आयु के बढने के साथ खात के अतरुद्ध हो जाने की प्रवृत्ति होती है।

ट्रस, (आत की पेटी—Truss)

ट्रस हर्निया को रोकने का एक यात्रिक साधन है। कुछ दशाओ मे, जैसे अतिवृद्धो या असाध्य रोगो से ग्रस्त व्यक्तियो, जिनमे शस्त्रकर्म नही किया जा सकता, उनमे हर्निया को रोकने के लिये ऐसे साधन की आवश्यकता होती है। उसका प्रयोजन व्यक्ति की विपाशन से रक्षा और बहुत बडी हर्निया की असुविधा दूर करना होता है।

वक्षणी हर्निया पर ट्रस उत्तम प्रकार से लगाई जा सकती है। और्वी हर्निया पर नही लग सकती। बडी अभ्युदर हर्निया उदर पर लपेटने की चपटी पट्टी (flat abdomınal bınder) से रोकी जा सकती है। शैशव-काल की नाभि हर्निया को उस पर बिना कुछ लगाये ही छोड देना चाहिये। जिससे नाभि वलय स्वत ही बन्द हो जाय। प्रौढो की अधिनाभि हर्निया पर कोई ट्रस उपयोगी नही होती।

दो प्रकार की ट्रस वक्षणी हर्निया मे साधारणतया लगाई जाती है, एक कमानीदार और दूसरी लचकीली जाली की बनी। कमानीदार ट्रस हर्निया रोकने मे अधिक उपयोगी होती है। यह एक कमानी का गोल छल्ला होता है जो पीछे तीसरे त्रिक खड पर होता हुआ नितव मे शिखरक और श्रोणिफलक शिखा के बीच से निकलकर सामने आकर हर्निया पर एक चौडे भाग मे अत होता है, जो हर्निया के द्वार पर ठीक बैठ जाता है और उसको बन्द कर देता है। कमानी और उसके चौडे भाग पर नमदा और कपडा चढे रहते है। कमानी के दूसरे सिरे मे कपडे का मोटा फीता नितव पर होता है। पेड्रू पर से निकलकर हर्निया

द्वार को ढकने वाले चौडे भाग तक चला जाता है और उस पर के हुक पर अटका दिया जाता है। एक तीसरा फीता कमानी से कमर के पीछे से नीचे ऊरु के भीतर होता हुआ कमानी के चौडे सिरे तक आता है और दूसरे हुक पर लगा दिया जाता है।

ट्रस बनाने वालो को ट्रस की नाप की आवश्यकता होती है। किधर की हर्निया है, कितनी बडी है और हर्निया के तल पर श्रोणिमेखला की परिधि, ये सब उनको बताना पडता है। कमानी का बल औदरिक पेशियो की तान (tone) पर निर्भर करता है।

रोगी का लिटाकर हर्निया के पुन स्थापन के पश्चात ट्रस को लगाया जाता है। जहा तक सभव हो उसको प्रत्येक समय लगाये रहना चाहिये, केवल रात्रि को सोते समय, लेटने के पश्चात्, उसको उतारा जाता है। निद्रा मे खासने या तनिक बल लगाने से हर्निया का विपाशन होते देखा गया है।

ट्रस लगाने पर प्रारम्भ मे रोगी को कुछ असुविधा होती है, किन्तु वह शीघ्र ही उसका अभ्यस्त हो जाता है। विपाशन से रक्षा का साधन होने के कारण रोगी को यह अभ्यास वाछित होता है।

शस्त्रकर्म का निश्चय होने पर ट्रस का उपयोग न करना चाहिये। उससे शस्त्रकर्म के स्थान पर त्वचा की न केवल अस्वस्थ दशा हो जाती है, किन्तु उससे नीचे की पेशियो का भी शोप होता है जो क्षतविरोहण की दुर्बलता का कारण हो सकता है।

13

मूत्र-पथ
(Urinary Tract)

एस. एस. आनन्द

वृक्क और गवीनियां
(Kındney and Ureters)

शरीर-रचना

वृक्क

शरीर मे वृक्क नाभिस्तर (level of umbılıcus) से ऊपर और कटि-लम्बिनी पेशियो (psoas muscles) के किनारे-किनारे तिर्यक् स्थिति मे अवस्थित रहते है। दक्षिण वृक्क का स्तर, वाम वृक्क की अपेक्षा कुछ निम्नतर होता है। वृक्कगोणिका (pelvıs of the kıdney), अनुप्रस्थ-जठर-निर्गम-तल (transpyloric plane) मे, प्रथम तथा द्वितीय कटिकशेरुकाओ (lumber vertebrae) के बीच वाली चक्रिका (dısc) के स्तर पर होती है।

संबंध

वृक्क पर्शुकाओ से मध्यच्छदिका और प्लूरा द्वारा पृथक् रहता है। कभी-कभी मध्यच्छदिका के इस भाग मे त्रुटि होने के कारण वृक्क सीधा प्लूरा पर स्थित होता है। पश्च ओर प्रत्येक वृक्क मध्यच्छदिका, वृहत कटिलम्बनिका, कटि चतुरस्रिका और अनुप्रस्थ औदरिका, इन चार पेशियो से और अतिम उरोतन्त्रिका (last thoracıc n) तथा श्रोणिफलक-वक्षणी (ılıo-ınguınal)

और श्रोणिफलक-अधोजठर (iliohypogastric) तन्त्रिकाओ से सबधित है। अग्र और दक्षिण वृक्क नीचे की ओर यकृत बक (hepatic flexure) के सम्पर्क मे रहता है, अभिमध्य ओर ग्रहणी के दूसरे भाग और ऊपर की ओर यकृत तथा अधिवृक्क से सबध बनाता है। वाम वृक्क के मध्य भाग पर से अग्न्याशय की पुच्छ और प्लीहा रक्तवाहिकाये जाती है, नीचे की ओर प्लीहा बक (splenic flexure) और अवरोही बृहदात्र है, उसके ऊपर की ओर आमाशय, अधिवृक्क ग्रथि तथा प्लीहा और अभिमध्य ओर ग्रहणी-मध्यात्र बक रहते है।

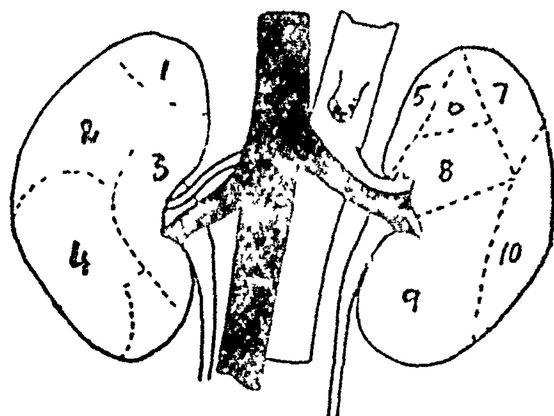
तन्त्रिका संप्राप्ति

तन्त्रिकाये दसवे, ग्यारहवे और बारहवे उरोखडाशो (thoracic segments) से लघु आशयिक (splanchnic) तन्त्रिकाओ द्वारा आती है। बृहदात्र मे भी ये ही तन्त्रिकाये जाती है। इस कारण वृक्क रोगो से बृहदात्र के पुर सरण मे बाधा उत्पन्न हो सकती है और उनके लक्षण तीव्र आन्त्रावरोध के समान हो सकते हैं।

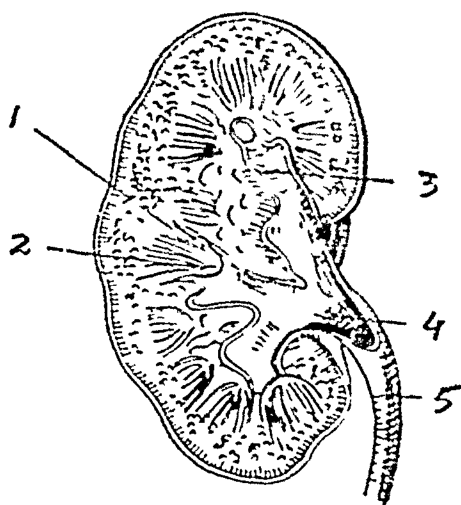
प्रावरणी सबंध

वृक्क परिवृक्क (perirenal) वसा पर आश्रित है जो परिवृक्क प्रावरणी से आवृत है। अतएव वृक्क के तीन सम्पुट है (1) मुख्य सम्पुट, जो स्वस्थ दशा मे वृक्क से पृथक किया जा सकता है, किंतु रोगो मे वृक्क से आसजित (adherent) हो जाता है, (2) वसा सम्पुट (fatty capsule) जो वृक्क को घेरे हुए परिवृक्क वसा से बनता है, (3) वृक्क प्रावरणी (renal fascia) जो परिवृक्क वसा के सहनन से बनती है और पर्युदर्या बाह्य तातव ऊतक (extra peritoneal connective tissue) मे मिल जाती है। यह प्रावरणी पार्श्व ओर अनुप्रस्थिका प्रावरणी से मिली रहती है और महाधमनी और अधोमहाशिरा के सामने से जाकर दूसरी ओर की परिवृक्क प्रावरणी मे मिल जाती है। ऊपर जाकर वह अधिवृक्क के लिये एक पृथक् वेष्टन बनाती है जिससे वृक्क के गति करने पर भी वह अपने स्थान मे रहता है। नीचे की ओर प्रावरणी के दोनो स्तर सयुक्त नही होते जिससे वृक्क नीचे की ओर गति कर सकता है।

वृक्क को वृक्क-वृन्त (renal pedicle), उदर की पेशियो की तान (tone), उदरीय आशयो का आयतन और परिवृक्क वसा अपने स्थान पर रखते है। सामान्यतया श्वसन-क्रिया मे या खडे होने पर वृक्क 4-5 सेमी० नीचे सरक आता है।



चित्र 73—जिसमे दोनों वृक्कों के खड और के सबध दिखाये गये है।



चित्र 74—वृक्क का अनुदैर्घ्य परिच्छेद जिसमे आभ्यन्तर रचना दिखाई गई है।

संरचना

अनुदैर्घ्य परिच्छेद मे वृक्क प्रातस्था, मध्यवर्ती अतस्था, आलवाल (calyx) और गोणिका (pelvis) से बना दिखाई पडता है। प्रातस्था समागी (homogeneous) है और उसमे वृक्क के स्रावी भाग है। उत्सर्गी भाग अतस्था मे है और पिरामिडो के रूप मे गोणिकाओ मे उभरा रहता है। ये पिरामिड वृक्क की संग्राहक सूक्ष्म नलिकाओ के अभिसरण से बनते है और लघु आलवालो (minor calyces) मे मूत्र ले जाते है। 4 से 12 तक लघु आलवाल हो सकते है जो मिलकर 2 से 3 वृहत् आलवाल (major calyces) बनाते है, जो गोणिका

से मिलते है। वृक्क गोणिका (pelvic) का कुछ भाग वृक्क के भीतर रहता है और कुछ वाहर। नीचे जाकर गोणिका पतली होकर गवीनी बनाती है।

गवीनी

युवावस्था मे गवीनी 30 सेमी० लम्वी होती है और कटिलम्बिनी पेशी (psoas) द्वारा कटि कशेरुकाओ के अनुप्रस्थ प्रवर्धो से पृथक् रहती है, वह श्रोणिफलक वाहिकाओ को पार करती है, त्रिक श्रोणिफलक सधि तथा आसन कटक (ischial spine) के अग्र ओर से जाती है और तव अभिमध्य ओर जाकर मूत्राशय के आधार मे प्रविष्ट होती है। समस्त मार्ग मे गवीनी पर्युदर्यापश्च रहती है और उदर की पश्च भित्ति की पर्युदर्या से दृढतया जुडी रहती है। उदर मे आभ्यतर वृपण रज्जुवाहिकाए अथवा डिंव ग्रथि वाहिकाये उसको पार करती है। श्रोणि मे अत होने के कुछ पूर्व पुरुप मे शुक्रवहा (vas deferens) और स्त्रियो मे गर्भाशय धमनी उस पर से निकलती है। तीन स्थानो पर गवीनी मे सकीर्णन (constriction) मिल सकता है, गोणिका-गवीनी सगम पर (pelvi-ureteric janction), जहा वह श्रोणि वाहिकाओ को पार करती है, तथा अधोप्रात पर जहा वह मूत्राशय मे होकर जाती है, इन तीनो मे से किसी स्थान पर अश्मरी नीचे आने मे रुक सकती है।

परिवर्धन (Development)

वृक्क श्रोणि मे वनते है और वहा से चढकर कटि प्रदेश मे पहुचते है। वे भ्रूण (embryo) के दो भागो से वनते है (1) स्रावक भाग (secretory part) अर्थात् केशिकास्तवक (glomerulus), वोमेन सम्पुट (Bowman's capsule), हैनले का सवलित पाश (convoluted loop of Henle) और दूरस्थ सवलित पाश (distal convoluted loop) मेटानेफ्रोस (metanephros) से उत्पन्न होते है। (2) उत्सर्गी भाग, (exeretory part) अर्थात् सग्राहक सूक्ष्म-नलिकाए (collecting tubulo), वृक्क गोणिका (venal pelvis) और गवीनी मेजोनेफ्रोस (mesonephros) से उत्पन्न होकर वूल्फियन वाहिनी के उद्वर्ध (outgrowth) के रूप मे प्रकट होते है। वूल्फियन वाहिनी से निकलने वाली गवीनी कलिका (ureteric bud) मेटानेफ्रोस से ढक जाती है। गवीनी कलिका की लम्वाई ज्यो-ज्यो बढती है त्यो-त्यो वृक्क श्रोणि से कटि प्रदेश की ओर उठता है।

सहज अप्रसामान्यताए (Congenital Abnormalitics)

एकल वृक्क (solitary kidney)

यह अत्यन्त विरल-अपसामान्यता है, 1000 मे से एक मे यह पाई जाती है। एकल वृक्क अन्यथा पूर्णत सामान्य स्वस्थ वृक्क होता है जिसका जीवन मे सदेह भी नही होता जब तक कि उत्सर्जन गोणिका चित्र (excretion pyelogram) न लिया जाय। किन्तु यदि एकल वृक्क-अस्थानिक (ecto-pic) या विस्थापित (misplaced) है तो उसके रोग-ग्रस्त होने से वह लक्षणो द्वारा प्रारभिक जीवन मे पहिचाना जा सकता है।

अस्थानी वृक्क (ectopic kidney)

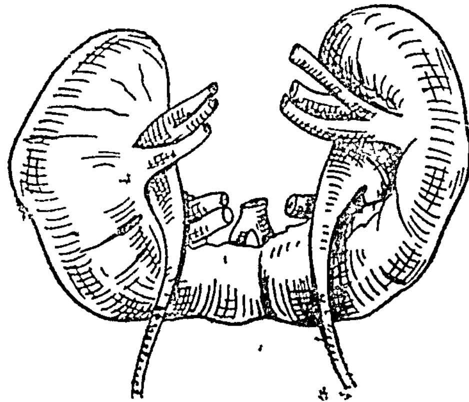
परिवर्धन क्रम मे वृक्क के श्रोणि से सामान्य आरोहण के सरोध से वृक्क अपसामान्य स्थानो मे मिलता है। यह अपसामान्य दशा भी 1000 रोगियो मे से 1 मे पाई जाती है। उसका निदान कठिन हो सकता है। कभी-कभी सहज एकल वृक्क श्रोणि मे मिलता है।

नाल के आकार का वृक्क (horseshoe kidney)

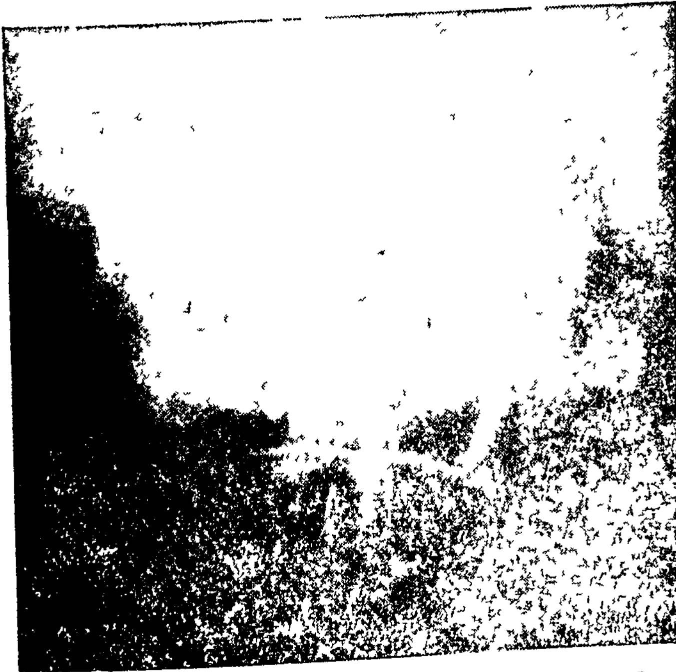
दोनो ओर के वृक्को के निम्न ध्रुवो के, और कभी-कभी ऊर्ध्व ध्रुवो के जुड जाने का यह परिणाम होता है। इस्थमस उदर की वृहद वाहिकाओ के सामने रहता है और वृक्क की गोणिका, जो सामान्यतया वृक्क वाहिकाओ के पीछे से निकलती है, इस दशा मे उनके सामने रहती है तथा गवीनी इस्थमस के सामने से नीचे जाती है। इससे गोणिका-गवीनी सगम पर अवरोध उत्पन्न होने से जलापवृक्कता (hydronephrosis) उत्पन्न हो सकती है। यह दशा उत्सर्जन गोणिकाचित्र द्वारा सहज मे पहिचानी जा सकती है जिसमे एक या अधिक आलवाल अभिमध्य (पार्श्व ओर न मुडकर) ओर मुडे दिखाई देते है।

एक-पार्श्वी सयुक्त वृक्क (unilateral fused kidney)

इस विरल दशा मे दोनो वृक्क एक ही ओर मिलकर एक हो जाते है और अवग्रह (sigmoid) आकार या केक (cake) के समान रूप धारण कर लेते है। एक गवीनी मध्यरेखा मे आकर मूत्राशय के सामान्य पार्श्व पर पहुचती है। ऐसा वृक्क प्राय कष्टकर होता है।



चित्र 75—घोड़े के नाल के आकार का वृक्क, गवीनी के अग्रसवधो सहित



चित्र 76—एक घोड़े के नाल का वृक्क उत्सर्जन-गोणिकाचित्र

द्विगुण, उभय वृक्क (double kidney)

नियमत एक वृक्क मे एक गवीनी और एक गोणिका होती है। कभी दो गोणिकाए और दो गवीनिया भी मिलती है। ऐसे व्यक्तियो मे गवीनी कलिका (ureteric bud) दो मे विभक्त हो गई है और एक ओर दो वृक्क बन गये है। उभय वृक्क के ऊर्ध्व भाग की गवीनी मूत्राशय मे दूसरी के अपेक्षा नीचे खुलती

है । वह कभी-कभी असामान्य स्थानो, योनि, स्त्री मूत्र-मार्ग, शुक्राशय या पुरस्थ मे खुलती है ।

जन्मजात पुटीयुक्त या बहुपुटी युक्त वृक्क (congenital cystic or polycystic kidney)

इसका कारण कुछ सूक्ष्म नलिकाओ मे वृक्क के स्रावी और उत्सर्गी भागो का सयुक्त न होना माना जाता है । वृक्क वस्तु मे बहुत-सी पुटा होती हैं जो केशिका स्तवक द्वारा स्रावित तरल के सग्राहक सूक्ष्मनलिकाओ मे न पहुच सकने के कारण उत्पन्न हो जाती है, क्योकि स्रावी नलिकाओ का उत्सर्गी नलिकाओ से योग नही हुआ है ।

अपसामान्य वृक्क रक्त वाहिकाये

श्रोणि मे स्थित रहने पर वृक्को मे श्रोणि-फलक रक्त वाहिकाओ से रक्त आता है । उनके आरोहण के पश्चात कटि प्रदेश मे पहुचने पर महाधनी से रक्त आने लगता है और ये शाखाये मुख्य वृक्क धमनिया बनाती है । किन्तु कभी-कभी महाधमनी की शाखाओ से अतिरिक्त अन्य रक्त लाने वाली शाखाये जीवन-भर वैसी ही बनी रहती है । ये विपथी (aberrant) वृक्क वाहिकाये गोणिका-गवीनी सगम को दबाकर जलापकवृक्कता (hydronephrosis) उत्पन्न कर सकती है ।

गवीनी की अपसामान्यता

दो गवीनियो तथा दो गोणिकाओ का बनना सबसे अधिक होने वाली अपसामान्यता है । यह गवीनी नलिका के द्विशाखन (bifurcation) का परिणाम होता है । गवीनी सम्पूर्णत दो हो, या अधोप्रान्त पर पहुचकर मूत्राशय मे प्रवेश के पूर्व जुडकर जाय, या गवीनी योनि, मूत्र मार्ग आदि अनुचित स्थानो मे खुले ।

मूत्र सबधी रोगो मे अन्वेषण की विधिया

प्रत्येक रोगी का पूर्ण इतिवृत्त प्राप्त करना और उसके पश्चात उसकी पूरी शारीरिक परीक्षा अत्यावश्यक है । और तब मूत्र की परीक्षा तथा अन्य विशेष परीक्षण किये जाते है ।

इतिवृत्त

इतिवृत्त मे मूल जननतत्र सबधी लक्षणो और चिह्नो पर विशेप ध्यान दिया जाय। रोगी से विशेपतया, दिन और रात्रि मे मूत्रावृत्ति के सवध मे पूछा जाय मूत्र-त्याग मे वेदना होती है, मूत्र के साथ रक्त या पूय तो कभी नही आते, मूत्र त्याग के पारभ पर कष्ट होता है या नही, बल तो नही करना पडता, मूत्र-त्याग तत्काल तो नही, करना पडता, मूत्र का प्रवाह पूर्ण होता है, धार पतली तो नही होती, मूल असयति (ıncontınence) तो नही है। मूत्र त्याग की इच्छा होने पर वह कुछ समय रोक सकता है या नही। इन सब बातो को जानना आवश्यक है।

वेदना

वेदना इन स्थानो मे कही भी उपस्थित हो सकती है पर्शुकाकशेरुक (costovertebral) या वृक्क-कोण (renal angle), अधिजधन प्रदेश (supra-pulıc), बाह्य मूत्रपथ-कुहर (ext urınary meatus) या पीठ के निचले भाग मे। वेदना की तीव्रता, स्थिति, रूप, फैलने की दिशा, और किन कारणो से वह घटती या बढती है, यह सब पूछना आवश्यक है। वृक्क रोगो मे वेदना निम्न प्रकार की हो सकती है—

स्थानिक वृक्कवेदना (local renal paın)

यह विशेपकर वृक्क कोश मे, अतिम पर्शुका और कटिकोत्कर्पिका (erector spınae) के बीच के अवकाश मे प्रतीत होती है ओर साथ ही स्थानिक स्पर्शासहता भी हो सकती है। यद्यपि साधारणतया कटि प्रदेश के पश्च ओर वृक्क-वेदना प्रतीत होती है, वह उदर के अग्र ओर अध पर्शुक प्रदेश मे भी कभी-कभी अनुभूत हो सकती है।

अन्यत्रानुभूत वेदना (referred paın)—यह 12वी उरोतन्त्रिका, श्रोणिफलकवक्षणी (ılıoıngunal) और श्रोणिफलक अधोजठर (ılıohypo-gastarıe) तत्रिकाओ द्वारा सभरित प्रदेशो, अर्थात् वक्षण प्रदेश, वृपण कोश या वृहद भगोष्ठ तथा स्कार्पा त्रिभुज मे प्रतीत होती है।

वृक्क शूल (renal colıc)—यह तीव्र शूल की वेदना गवीनी की रेखा मे फैलती हे। रोगी अत्यन्त वैचेन होता है, वेदना से छटपटाता है और लोटता है। वेदना के साथ विन्दु मूत्रकृच्छ्र (strangury) हो सकता है, अर्थात् बार-बार मूत्र-त्याग की इच्छा होती है। प्राय. इस प्रकार की वेदना अश्मरी, रक्त

के पथरी या अर्बुद [illegible] होती है।

दैहिक परीक्षा

साधारण दैहिक परीक्षा के अतिरिक्त, वृक्कपात (renal failure) तथा प्रारंभिक (incipient) यूरीमिया (uraemia) के लक्षणों की खोज भी आवश्यक है। मुख्य लक्षण ये हैं : विवर्णता (pallor) शुष्क, मैली जिह्वा, शुष्क त्वचा और रूक्ष केश, तीव्र उच्छलनशील नाड़ी (bounding pulse), शिरोवेदना, अरोचक, अतिपिपासा, जी मिचलाना और अनिद्रा।

उदरीय परीक्षा से वृक्क कोण में स्पर्शासह्यता या कटि प्रदेश में उभार वृक्क की सूजन के कारण प्रतीत हो सकते हैं। वृक्क का परिस्पर्शन दोनों हाथों से किया जाता है, एक हाथ पार्श्व में अन्तिम पर्शुका के नीचे और दूसरा हाथ सामने उदर पर पर्शुक धारा से नीचे रखा जाता है। श्वास के साथ विवर्धित वृक्क ऊपर और नीचे को गति करता हुआ प्रतीत किया जा सकता है। साधारणतया वृक्क का केवल दुबले व्यक्तियों में परिस्पर्शन किया जा सकता है। वृक्कार्बुद की कुछ विशेषतायें होती हैं वह वृक्काकार होता है, किंतु अर्बुद के कारण असम या पर्वकयुक्त (nodular) हो सकता है। श्वसन के समय उसमें गति होती है, दोनों हाथों से उसका परिस्पर्शन हो सकता है। कटि प्रदेश से उसका सामने को प्रतिलोटन (ballotment) हो सकता है; प्राय उसके सामने औदरिक अनुनाद का एक परिमित क्षेत्र होता है।

तब उदर के अधिजघन प्रदेश की परीक्षा द्वारा मूत्राशय के प्रसार का, यदि हो तो, पता लगाया जाता है। पुरुष में शिश्न की फाइमोसिस (phimosis) और मूत्रमार्ग द्वार के आकार के बोध के लिये परीक्षा की जाती है। शिश्न दड के परिस्पर्शन से कठोर तातव पर्वक या निकुचन (stricture) प्रतीत किये जाते है। वृपण कोश की परीक्षा से अधिवृपण (epididymis) और वृपण ग्रथि की अपसामान्यताए मालूम होती है। वृपण कोश मे वृपण ग्रथि के अनुपस्थित होने पर वक्षण नलिका की सावधानी से परीक्षा करके वहा वृपण ग्रथि को खोजा जाता है। उसके पश्चात् मूलाधार की सूजन या नवीन वृद्धि (growth) के लिये परीक्षा होनी चाहिये, अत मे गुद-नलिका की अगुलि-परीक्षा द्वारा पुरस्थ का आकार उसका कडापन, गुदनलिका की श्लेष्मिक कला की दशा और शुक्राशय का बोध करना भी आवश्यक है।

मूत्र-परीक्षा

मूत्र को एकत्र करने की विधि बडे महत्त्व की है। स्त्रियो मे कैथिटर द्वारा निकाला हुआ मूत्र लिया जाय। पुरुषो मे मूत्र-त्याग के बीच के भाग का मूत्र एकत्र करना चाहिये। पूर्णमूत्रविश्लेपण मे उसका विशिष्ट गुरुत्व तथा उसके अपसामान्य घटको, एलबूमिन, शर्करा आदि मालूम करने चाहिये। अपकेन्द्रीकृत (centrifugalised) मूत्रतलछट मे श्वेत रुधिरकोशिकाओ अथवा अपसामान्य



चित्र 77—उत्सर्जन गोणिकाचित्र मे प्रसामन्य गोणिका-आलवाल तत्र (pelvicalyceal system) गवीनियाँ और मूत्राशय दीख रहे हे।

क्रिस्टलो को देखना चाहिये।

बहुमूत्रता (polyria) का अर्थ है अत्यधिक मूत्र होना। सामान्यतया 24 घटे मे 1500 मि० लि० मूत्र-त्याग होता है। शल्यरोगो मे बहुमूत्रता का अर्थ है वृक्ककार्य का ह्रास।

अल्पमूत्रता (oliguria) का अर्थ है 24 घटे मे मूत्र-त्याग की मात्रा की कमी। मूत्रत्याग घट जाता है।

अमूत्रता (anuria) उग्र दशा है जिसमे मूत्र-त्याग नही होता।

ऐलबूमिनमेह (albuminuria) मूत्र मे एलबूमिन का उपस्थित होना है। यह वृक्कशोथ (nephritis) मे सबसे अधिक होता है। उसके उपस्थित होने पर विशेष शस्त्रकर्मपूर्व आयोजन करने आवश्यक है।

ग्लूकोजमेह (Glycosuria), अर्थात् मूत्र मे ग्लूकोज की उपस्थिति का सबसे बडा कारण डायबिटिज मेलिटस (मधुमेह) है यद्यपि वह कुछ अन्य दशाओ से भी हो सकता है।

पूयमेह (pyuria) मूत्र मे पूय की उपस्थिति मूत्र-पथ के सक्रमण की द्योतक है।

जीवाणुमेह (bacilluria), मूत्र मे जीवाणुओ का बडी सख्या मे उपस्थित होने का कारण रक्त से जीवाणुओ का साधारण उत्सर्जन हो सकता है; उसका अर्थ सदा मूत्र-पथ का सक्रमण नही होता।

वायुमेह (pneumaturia) मूत्र के साथ गैस निकलती है जो मूत्राशय-आत्र नालव्रण (vesicoenteric fistula) के कारण होता है या गैसोत्पादक जीवाणुओ द्वारा मूत्राशय के सक्रमण का फल होता है।

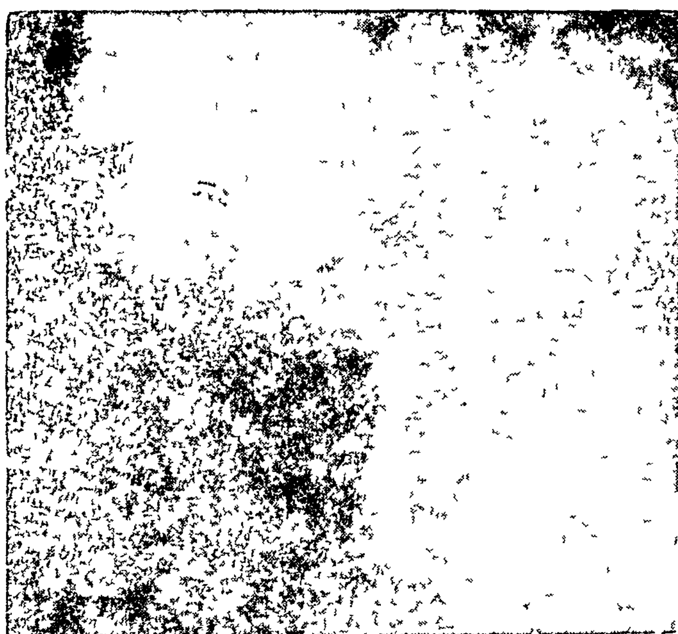
रक्तमेह (haematuria) मूत्र मे रक्त की उपस्थिति है। वह मूत्रसबधी रोग का साधारण लक्षण है।

परीक्षा की विशेष विधिया

एक्स-रे चित्रण (Radiography)

साधारण एक्स-रे चित्र (plane radiography) मे वृक्को की रूपरेखा, स्थिति और उनका आकार दीखता है। वृक्क प्रदेश मे, गवीनी के मार्ग मे तथा अधिजघन (suprapubic) प्रदेश मे ऐसे चित्रो मे एक्स-रे अपार्य (radiopaque) छाया उपस्थित दीख जाती है।

उत्सर्जन गोणिका-चित्रण (Excretion pyelography)—इस विधि मे यूरोमिलेक्टान नामक पदार्थ को शिरा द्वारा रक्त मे प्रविष्ट किया जाता है, जिसका उत्सर्जन वृक्को द्वारा होता है। 5,15 और 30 मिनट के पश्चात् एक्स-रे चित्र लिये जाते है। इससे वृक्क-गोणिकायें, आलबाल, गवीनिया और मूत्राशय स्पष्ट हो जाते हे, उनकी अपसामान्यताये चित्र मे दिखाई देगी। एक ओर रजक (dye) के उत्सर्जन न होने से उस ओर के वृक्क की अकर्मण्यता समझी जाएगी।



चित्र 78—एक रोगी का प्रतिगामी गोणिका चित्र जिसमे जलवृक्कता उपस्थित थी।

आरोही या प्रतिगामी गोणिका एक्स-रे चित्रण (ascending or ratrograde pyelography)

सिस्टोस्कोप की सहायता से गवीनी मे केथिटर प्रविष्ट करके उसमे 12 5 प्रतिशत सोडियम आयोडाइड का विलयन भर दिया जाता है। इस विधि से लिये हुए चित्र मे वृक्क आलवाल और गोणिका की स्पष्ट रूपरेखा दिखाई पडती है (चित्र 78)।

सिस्टोस्कोपी (Cystoscopy) द्वारा मूत्राशय का निरीक्षण हो सकता

है। यह मूत्राशय, पुरस्थ तथा गवीनियो के अधोप्रातो मे उपस्थित विकृत दशाओं को जानने की उत्तम विधि है।

वृक्क की क्षमता का निर्धारण

कुल मूत्रनिर्गम (output) 24 घटे मे कुल 1500 मि० लि० मूत्र निकलता है। यदि अधिक तरल देने से मूत्र की मात्रा बढ जाती है तो वृक्को का कार्य सतोषजनक है।

यूरिया सान्द्रण परीक्षण (Urea concentration test)

मुंह से 15 ग्राम यूरिया खिलाने के एक, दो और तीन घटे पश्चात् मूत्र एकत्र किया जाता है। प्रथम बार के मूत्र को फैक देते हैं। दूसरी और तीसरी बार के मूत्र मे यूरिया की मात्रा का आकलन किया जाता है। यदि मूत्र मे यूरिया का साद्रण 3-4 प्रतिशत से अधिक है तो वह वृक्क की उत्तम कार्य-क्षमता का सूचक है। परीक्षण प्रात काल विना कुछ खाये-पिये होना चाहिये।

रक्त-यूरिया—सामान्य रक्त-यूरिया की मात्रा प्रत्येक 100 मि० लि० रक्त मे 15-40 मि०ग्रा० होती है। 60 मि० ग्रा० यूरिया प्रति 100 मिलि० रक्त से अधिक होने पर वृक्क का कार्य सतोषजनक नही है और रोगी को सामान्य सवेदनाहारी नही सुघाया जा सकता।

यूरिया उत्सर्ग परीक्षण (Urea Clearance Test)—यूरिया आकलन या साद्रण की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म परीक्षण है। स्वस्थ व्यक्ति मे वृक्क प्रति मिनट 45 मिलि० रक्त से यूरिया का उत्सर्ग करता है, अर्थात् यूरिया को रक्त से पृथक् कर देता है। प्रात हलके उपाहार के पश्चात् रोगी को 2 गिलास जल पिलाया जाता है। एक घटे पश्चात् वह मूत्र-त्याग करता है और कुछ मूत्र एकत्र (नमूना न०1) किया जाता है। रक्त-यूरिया के आकलन के लिये रक्त भी लिया जाता है। दो घटे पश्चात् वह फिर मूत्र-त्याग करता है और फिर मूत्र जाच के लिये एकत्र (नमूना न०2) किया जाता है तथा रक्त-यूरिया आकलन के लिये रक्त भी लिया जाता है। जब मूत्र का उत्सर्ग 2 मि० लि० या अधिक प्रति मिनट होता है तो निम्नलिखित सूत्र के अनुसार अधिकतम यूरिया-उत्सर्ग (maximum urea clearance) निकाल लिया जाता है —

$$\frac{\text{मूत्र आयतन} \times \text{मूत्र का यूरिया सान्द्रण}}{\text{रक्तयूरिया सान्द्रण}}$$

सामान्य यूरिया-उत्सर्ग मानक-उत्सर्ग से 75 से 120 प्रतिशत भिन्न हो सकता है । 50 प्रतिशत से कम यूरिया उत्सर्ग वृक्क क्षति का द्योतक है ।

रक्त की अप्रोटीन नाइट्रोजन और क्रियेटिनीन (non-protein nitrogen and creatinine of the blood)

वृक्कह्रास मे ये बढ जाते है, उनकी वृद्धि यूरिया के अनुसार ही होती है । सामान्यतया 100 मि० लि० रक्त मे 1 5 मिग्रा० क्रियेटिनीन होती है ।

रजक-उत्सर्जन परीक्षण (dye excretion tests) मुख्य दो है .

(1) **इ डिगोकार्मीन** (indigo-carmine)—के 0.4 प्रतिशत विलयन के 4 मिलि० अतर्शिरा द्वारा दिये जाते है । 3-5 मिनट मे रजक मूत्र मे आ जाता है । प्रत्येक वृक्क के उन्सर्ग का ठीक-ठीक समय सिस्टोस्कोप से देखकर पृथक्-पृथक् वृक्क की कार्य-दक्षता का अनुमान किया जा सकता है । विलब से रग आने पर वृक्क मे क्षति समझनी चाहिये । केवल 25 प्रतिशत रजक का उत्सर्ग होता है । इसलिए केलोरीमित आकलन (calorimetric estimation) व्यर्थ है ।

(2) **फेनोसल्फोनथेलीन** (phenosulphonphthalein) पी० एस० पी—इस वर्णक का वृक्क द्वारा पूर्णत उत्सर्ग होता है और इस कारण उसका केलोरीमित आकलन वृक्क की कार्यक्षमता का उत्तम परीक्षण है । पी० एस० पी० के 0.6 प्रतिशत विलयन का 1 मि०लि० शिरा द्वारा दिया जाता है । इजैक्शन के आधा घटा पूर्व रोगी को 1000 मिलि० जल पिलाया जाता है । 15 मिनट के अतर से चार बार मूत्र का नमूना एकत्र करने के पश्चात् वर्णक के रग को स्पष्ट करने के लिये नमूनो मे प्रतिशत पोटाशियम हाइड्रोक्साइड विलयन की कुछ बूदे मिलाई जाती है । तत्पश्चात् उसको एक मानक के समान तनु (dilute) करके एक केलोरीमापक मे उससे तुलना करने से वर्णक का आकलन किया जा सकता है ।

बहुत से स्वस्थ वृक्को की परीक्षा से यह निष्कर्ष निकला हे कि 40-42 प्रतिशत रजक का प्रथम 15 मिनट मे उत्सर्जन हो जाता है, दूसरे 15 मिनट मे 18 प्रतिशत, तीसरे मे 8 और चौथे मे 7 प्रतिशत वर्णक निकलता है । तीसरे

या चौथे 15 मिनट मे सबसे अधिक रजक का उत्सर्जन वृक्क दोष को सूचित करता है। 70-80 प्रतिशत रजक पहले घटे मे और लगभग 6 प्रतिशत दूसरे घटे मे निकलना चाहिये।

दोनो वृक्को की क्षमता का पृथक्-पृथक् आकलन

यह उत्सर्जन एक्स-रे चित्रण से या उपर्युक्त रजक उत्सर्जन द्वारा किया जा सकता है। जहा एक वृक्क के रोगग्रस्त होने का भय हो वहा शस्त्रकर्म करने के पूर्व दूसरे वृक्क की दक्षता का पूर्ण बोध कर लेना बहुत आवश्यक है।

वृक्क के सक्रमण

वृक्क के सक्रमण दो प्रकार के हो सकते है (1) अविशिष्ट (monspecific), जिसका कारण एस्कीरिया कोलाई, प्रोटियस वल्गेरिस, स्यूडोमोनास पायोसिनियम, साल्मोनेला टाइफी और साल्मेनेला पैराटाइफी, स्टेफिलोकोकस और स्ट्रिप्टोकोकस होते है।

(2) विशिष्ट (specific) जो यक्ष्मा, गोनोरिया और सिफिलिस से उत्पन्न होते है।

विकृतिजनन (pathogenesis)

संक्रमण के मार्ग (Pathways of Infection)

रक्तजन्य विस्तार (haematogenous spread) वृक्क मे सक्रमण का विस्तार सबसे अधिक इसी प्रकार होता है और शरीर मे अन्यत्र कही भी स्थित केन्द्र से पहुच सकता है, जैसे फुन्सी या पनसिका (furuncle), टौसिल शोथ, उण्डुकपुच्छ शोथ, पित्ताशय शोथ, दतमूल सक्रमण (dental root infection) आदि।

आरोही संक्रमण (ascending infection)—साधारणतया गवीनी-मूत्राशय सवरणी (uretero-vesical sphincter) मूत्राशय के सक्रमण को गवीनी मे पहुचने से रोकती है। कुछ समय तक गवीनी मे प्रतीप दाब (back pressure) के अधिक रहने से गवीनी-मूत्राशय सवरणिका (ureterovesical sphincter) दुर्बल होकर सक्रमण को ऊपर जाने से नही रोक पाती। विवर्धित पुरस्थ, मूत्र-मार्ग निकुचन (urethral stricture) आदि दशाये प्रतीप दाब का कारण होती है जो बहुत काल तक बने रहने से सवरिणिका पेशी को अकर्मण्य

कर देती है। इस कारण ऐसे रोगियो मे शस्त्रो को प्रविष्ट करते समय या शस्त्रकर्म मे बहुत सावधान रहना आवश्यक होता है। स्त्रियो या लघु वयस्क कन्याओ मे गुदा से सक्रमण मूत्रमार्ग द्वारा प्रसार कर सकता है।

लसीकान्यज विस्तार (lymphogenous spread)—लसीकावाहिकाओ द्वारा सक्रमण के मूत्र-पथ मे पहुँचने के प्रमाण मिल चुके है, किन्तु कदाचित् यह सामान्य विधि नही है। बृहदान्त्र या अधान्त्र से सक्रमण लसीका-वाहिकाओ द्वारा वृक्को मे पहुच सकता है। परिमूत्रमार्ग लसीका वाहिकाये (periurethral lymphatics) पथ के निम्न भाग से वृक्को मे सक्रमण पहुँचा सकती है।

निकटस्थ अगो से सीधा विस्तार—अन्तर्पर्युदर्या विद्रधि, उण्डुकपुच्छ विद्रधि अथवा विपुटीशोथ (diverticulitis) से सक्रमण सीधा वृक्क मे पहुच सकता है।

अन्य सहायक कारण—मूत्रावरोध तथा मूत्रस्थितिकता (urinary stasis), शल्य की उपस्थिति (foreign body) जैसे वृक्काश्मरी तथा शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास, सक्रमण के सहायक होते है।

लिग और वय—प्रथम और द्वितीय दशको मे स्त्री और पुरुषो मे रोग समान रूप से पाया जाता है। किन्तु उसके पश्चात कोष्ठबद्धता की अधिक प्रवृत्ति, मूत्रमार्ग का छोटा होना और गुदद्वार की समीपता के कारण स्त्रियो मे सक्रमण अधिक होता है। वाम की अपेक्षा दक्षिण वृक्क अधिक ग्रस्त होता है ; अनेक बार दोनो ओर होता है। सब ही वय मे वृक्कसक्रमण हो सकते है।

तीव्र गोणिकावृक्क शोथ (acute pyelonephritis)

विकृति

गोणिका शोथ (pyelitis) का अर्थ गोणिका मे सक्रमण है, किन्तु अधिकतर वृक्क का सार ऊतक अथवा पैरिन्काइमा भी ग्रस्त होता है , इस कारण इसको गोणिकावृक्कशोथ कहा जाता है। ऐस्कीरिया कोलाई के सक्रमण मे प्रथम गोणिका आक्रान्त होती है, उसके पश्चात सक्रमण प्रान्तस्था मे पहुंच सकता है, मूत्र पूयकोशिकाओ से भरा रहता है और उसकी प्रतिक्रिया आम्लिक होती है। इसके विपरीत पूयजनक कोकाई प्रान्तस्था मे पिन के आकार की विद्रधिया उत्पन्न करती है। वे विशेषकर केशिका-स्तवको (glomeruli) मे होती हैं, वहा से सक्रमण सूक्ष्म-नलिकाओ द्वारा अन्तस्था और पिरामिडो मे पहुचता है।

मूत्र मे अत्यल्प पूय कोशिकाये और एलबूमिन लेशमात्र होते हैं और जीवाणुओं की अमोनियाजनक शक्ति के कारण मूत्र क्षारीय होता है। नियमत दोनों वृक्क ग्रस्त होते है, किन्तु एक वृक्क मे रोग की प्रवलता अधिक होती है।

तीव्र अवस्था मे वृक्क रक्त-सकुलित और शोथयुक्त होता है, गोणिका लाल और पूयपूरित होती है। सम्पुट के नीचे अनेक पीत विन्दु होते हैं। काटने पर प्रान्तस्था मे पूयभवन के वृत्ताकार क्षेत्र मिलते हैं। यदि पूयभवन वढता है तो वृक्क का नाश होकर उसके स्थान मे विद्रधियो की गुहिकायें वनती चली जाती है जिससे आलवालो के आकार मे विरूपता आ जाती है, जो उत्सर्जन एक्स-रे चित्र मे दीखती हैं।

कभी रोग वहुत धीरे धीरे प्रच्छन्न रूप से उत्पन्न होता है, पूय अधिक नही वनती। शोथ चिरकारी होता है और तान्तव ऊतक के अधिक वनने से वृक्क सकुचित हो जाता है जो गोणिवृक्कशोथज सकुचित वृक्क (pyelonep-hritic contracted kidney) कहा जाता है।

सूक्ष्मदर्शकीय आकृति—प्रान्तस्था मे सूक्ष्म विद्रधिये हो सकती है। वहुरूपी केन्द्रकी श्वेतरक्तकोशिकावहुलता भी हो सकती है। अधिकतर गोलकोशिका-अत सचरित रेखाकार क्षेत्र पिरामिडो मे पाये जाते है। धीरे धीरे सूक्ष्म नलिकाओ के स्थान मे क्षताक ऊतक वनता जाता है, वीच-वीच मे स्वस्थ सूक्ष्म नलिकाये भी होती हे। आक्रान्त सूक्ष्म नलिकाये कालाइडवत् पदार्थ से पूरित दीखती हैं जो गोणिकावृक्क शोथ का मुख्य लक्षण है मूत्र मे श्वेत रक्तकोशिक निर्मोको (leucocytic casts) की उपस्थिति का यही कारण है। धमनियो मे लोपी अन्तर्धमनी शोथ (endarteritis obliterans) पाया जाता है जो रोग का अभिलक्षक है, उनके कचुक मोटे और कडे हो जाने से धमनी तनाव (रक्तदाव) वढ जाता हे (गोल्डब्लाट घटना)। ऐसे अतिरक्तदाव के रोगियो मे केवल एक वृक्क के ग्रस्त होने पर उसको निकाल देने से लक्षणो का शमन होता है।

लक्षण और निदान

तीव्र रोग आक्रमण के पूर्व कुछ समय से रोगी थका हुआ-सा और अस्वस्थ प्रतीत करता रहा है। रोगी को एक या दोनो कटिपार्श्वो मे अथवा सामने व्यथा प्रतीत होती है जो प्रत्येक समय वनी रहती है। वह पुरुषो मे जघन प्रात या वृषण मे अथवा स्त्रियो मे वृहत् भगोष्ठ मे प्रतीत हो सकती है। साथ मे ज्वर 103-104 होता है, शीत कप, वमन तथा जलन के साथ वार-वार

मूत्रत्याग भी होता है।

परीक्षा पर वृक्ककोण पर अत्यत असहता होती है, पेशियो के आकर्ष के कारण वृक्क का परिस्पर्शन न होना सभव है। उदर मे आध्मान हो सकता है, परिश्रवण पर मूक उदर मिलता है। श्वेतरक्तकोशिका बहुलता 20,000 से 40,000 हो सकती है। मूत्र मे एलबूमिन अल्प, पूय कोशिकाये अत्यधिक, थोडी लाल रक्तकोशिकाये और जीवाणु उपस्थित होते है। सवर्धन से जीवाणु के स्वभाव और प्ररूप मालूम किये जा सकते है। ठीक निदान कठिन नही है।

सापेक्ष निदान—कभी-कभी रोग का प्रारभ, विशेषतया प्रचण्ड रूप मे, इतना तीव्र और उग्र होता है कि 'उग्र उदर' (acute abdomen), जैसे पैप्टिक व्रण के वेध, तीव्र उण्डुक-पुच्छशोथ, तीव्र पित्ताशय शोथ, आदि का, विशेषकर जब वेदना अग्र ओर होती है, आभास होता है। उपयुक्त परीक्षा से विशेष वृक्कासहता प्रतीत होती है। उदर पेशियो की कठोरता का अभाव होता है, और न स्थानीकृत स्पर्शासहता ही होती है। मूत्र-परीक्षा से निदान का समर्थन हो जाएगा।

तीव्र विपुटीशोथ (acute diverticulitis) मे वाम उदरपार्श्व मे वेदना होगी। पृष्ठ मे तीव्र पीडा से तीव्र अग्न्याशय शोथ का सन्देह हो सकता है, किन्तु सीरम एमायलेज़ और मूत्र का डाइस्टेज निदान मे सहायक होगे, मूत्र मे पूय न होगी।

उपद्रव

शीघ्र निदान और पर्याप्त उपयुक्त चिकित्सा न होने से रोग की चिरकारी होने की प्रवृत्ति होती है। चिरकारी सक्रमण से दोनो ओर का गोणिका-वृक्क-शोथ हो सकता है जिससे वृक्को की अत्यत क्षति होती है।

गोणिकावृक्कशोथ के अन्य प्रकार

रोग के कुछ प्रकारो का वर्णन किया जाता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि सब प्रकारो मे रोग समान होता है।

सगर्भता का तीव्र गोणिकावृक्कशोथ (acute pyelonephritis of pregnancy)—यह सभव है कि प्रत्येक स्त्री मे सगर्भता के चोथे, पाचवे और छठे मास मे प्रोजेस्टरोन हारमोन की क्रिया से गवीनियो और वृक्को का विस्फार (dilatation) होता हो। सगर्भता के बढने पर मूत्राशय का त्रिभुज अ गे को खिच जाता है और गवीनियो के मूत्राशय मे प्रवेश का कोण बढने से विस्फार

हो जाता है । यह दक्षिण ओर अधिक होता है । इस कारण गोणिकावृक्क शोथ भी दक्षिण ओर ही अधिक होता है । विस्फार से सक्रमण की प्रवृत्ति होती है जो आरोही प्रकार का होता है । जीवाणु प्राय· ऐस्कीरिया कोलाई होता है ।

शिशुओ और बालको में गोणिकावृक्कशोथ—दो वर्ष से कम के बालको और वालिकाओ मे वहुत होता है । यह एक उग्र रोग होता है जिसमे ज्वर अत्युच्च हो जाता है । चिकित्सा से रोग का शमन होता है । यदि पुनरावृत्ति हो तो वृक्क और गवीनियो की सहज असगतियो को ढूढना चाहिये ।

गोणिकावृक्कशोथ, मूत्र अवधारणसहित—(pyelonephritis with retention of urine) यह अनेक बार वृद्धावस्था मे मूत्राशय की ग्रीवा पर विवर्धित पुरस्थ या निकुचन (stricture) के कारण अवरोध होने पर होता है । सक्रमण प्राय दोनो ओर होता है और प्राय कैथीटर के प्रवेश या मूत्रमार्ग के विस्फारण या निम्नमूत्रमार्ग के किसी शस्त्रकर्म के पश्चात् प्रारभ होता है । रोग अत्युग्र हो सकता है जिसमे प्रान्तस्था मे सक्रमण के बहुत से केन्द्र बन जाते है। वृक्कपात (renal failure) और यूरीमिया तक हो सकते है ।

चिकित्सा

सामान्य आयोजन

रोग की तीव्र अवस्था मे रोगी का शैयारूढ करना आवश्यक है । मूत्राशय की क्षोभ्यता (irritability) को कम करने के लिये क्षारो और आक्षेपकहरो (antispasmodics) का प्रयोग किया जाय । पोटासियम साइट्रेट (20 ग्रेन), टिंचर वेलाडोना (10 मि) या टिंचर हायोसियेमस (25 मि) का मिश्रण प्रति चार घटे पर देना उपयोगी है । वेदनाशमन के लिये वृक्क-प्रदेश पर ऊष्मस्वेद करना चाहिये या फिनोवारविटोल दिया जाय । रोगी को 24 घटे मे 3000-4000 मिलि. अक्षोभक तरल अवश्य पिलाया जाय (सर्वोत्तम साधारण जल है), जिससे वृक्क उत्तिक्त (flushed) हो जाय और मूत्रोत्सर्जन होता रहे। निर्जलित (dehydrated) रोगियो को या जिनको वमन हो रहे है उनको 24 घटे तक 5 प्रतिशत ग्लूकोज विलयन सिरा द्वारा देते रहना चाहिये ।

विशिष्ट आयोजन मूत्र के सवर्धन (culture) से विशेष रासायनौषध और प्रतिजीवाणुक की सुग्राहिता (sensitivity) मालूम करनी चाहिये। औषधि सक्रमण के प्रकार (विशेष जिवाणु) तथा रोग की उग्रता पर निर्भर करती है । अनुग्ररोग से ग्रस्त रोगियो मे सल्फोनेमाइड से लाभ होता है । किन्तु उग्र और

प्रचड सक्रमणो मे वहुप्रभावी प्रतिजीवियो जैसे क्लोरेम्फिनिकोल का प्रयोग कराना उचित है। कुछ मे सल्फोनेमाइड और बहुप्रभावी प्रतिजीवी दोनो देना आवश्यक होगा। औषधि 7-10 दिन तक दी जाय। सवर्धन और सुग्राहिता परीक्षण कम-से-कम प्रत्येक चौथे दिन अवश्य किये जाय जिनसे औपधि का प्रभाव मालूम होता रहे। जव तक मूत्र तीन बार निर्जीवाणुक प्रमाणित न हो जाय औपधियो का प्रयोग जारी रखा जाय।

चिरकारी गोणिकावृक्कशोथ (chronic pyelonephritis)

उग्र गोणिका वृक्क शोथ की उपयुक्त चिकित्सा न होने पर वह चिरकारी हो जाता है, विशेपकर यदि मूत्र-पथ मे कोई अवरोधकर क्षति उपस्थित होती है।

विकृति—उग्र रोग ही के समान है, किन्तु वह निरतर बढती रहती है। सूक्ष्म नलिकाओ के स्थान मे क्षताक बनता रहता है और वृक्क कार्य का ह्रास होता जाता है।

चिरकारी रोग पुरुपो की अपेक्षा स्त्रियो मे तीन गुणा अधिक होता है। स्त्रियो मे 40 वर्ष की वय से पूर्व अधिक होता हे, किन्तु पुरुपो मे 40 वर्ष के पश्चात अधिक होता है और मूत्राशय की ग्रीवा के अवरोध के साथ होता है।

लक्षण

रोग लक्षणहीन हो सकता है। कटिपार्श्व मे मन्दवेदना हो सकती है और मूत्र-त्याग की आवृत्ति बढ जाती है। कुछ रोगयो मे अतिरक्तदाब हो सकती है।

मूत्र मे एलबूमिन का लेश तथा पूयकोशिकाये होती है। सवर्धन पर रोगोत्पादक जीवाणु प्राय ऐस्कीरिया कोलाई या स्ट्रिप्टोकोकस फीकेलिस पाये जाते है।

चिकित्सा—सतोपप्रद नही होती। यदि कोई अवरोध, विवर्धित पुरस्थ, आदि हो तो उसकी उचित चिकित्सा की जाय। मूत्र-पूति-रोधियो (urinary antiseptics) का प्रयोग करवाया जाय। मैडेलिक अम्ल-चिकित्साक्रम का कुछ रोगियो पर उत्तम प्रभाव होता है। शरीर मे अन्यत्र उपस्थित सक्रमण-केन्द्र का अपहरण आवश्यक है।

दीर्घकाल के रोगियो मे एक वृक्क के पूर्ण स्वस्थ होने पर रोगग्रस्त वृक्क के उच्छेदन का विचार करना पडेगा। एकवृक्करोग के साथ अतिरक्तदाब होने पर भी ऐसा विचार आवश्यक होता है।

वृक्क का कारवंकल (carbuncle)

यह अत्यन्त विरल है और त्वक-पनसिका से रक्त द्वारा स्टेफिलोकोकस औरियस के सक्रमण के एक वृक्क मे पहुँचने से होता है।

विकृति

वृक्क के प्रान्तस्था मे सक्रमण के स्थानातरण से सार-ऊतक (पैरिकाइमा) के एक क्षेत्र मे कई वहुकोष्ठीय विद्रधिया वन जाती है जिससे परिगलन (necrosis) होता है। यह विद्रधि परिवृक्क-ऊतक मे फूटकर परिवृक्क-विद्रधि वना देती है।

लक्षण

यह दशा गोणिका वृक्कशोथ के समान होती है और उससे भेद नही किया जा सकता। कटि प्रदेश मे पिंड प्रतीत हो सकता है। जीवविषाक्तता तथा ज्वर कई सप्ताह तक उच्च बने रहते है। उत्सर्जन-एक्सरे चित्र मे क्षति की गुहिका दीखती है और प्रतीप एक्सरे-चित्र मे आलवाल विरूप दीखते है।
रक्त मे श्वेत कोशिकाओ की अतिवहुलता होती है। मूत्र मे पूय कोशिकाये तभी अधिक होती है जब विद्रधि गोणिका मे फूट जाती है।

चिकित्सा

पैसिलिन की बृहद मात्राये सल्फोनेमाइड के साथ दी जाती हैं। परिवृक्क-विद्रधि वनने पर शस्त्रकर्म द्वारा पूय के निर्हरण का आयोजन आवश्यक है। इनसे सफलता न होने पर वृक्कोच्छेदन का विचार करना होता है।

पूय अपवृक्कता (pyonephrosis)

इस दशा मे गोणिका और आलवाल विशेपतया विस्फारित होकर पूय से भर जाते हैं, सार-ऊतक नष्ट होना है। ऐसा वृक्क विवर्धित होता है। यह (enlarged) दशा जलापवृक्कता मे सक्रमण होने से या गोणिका-वृक्क-शोथ मे अवरोध उत्पन्न होने से होती है।

विकृति

वृक्क विशेपतया विवर्धित हो जाता है। सम्पुट भी मोटा और प्रान्तस्था पर आसजित होता है। वास्तव मे, वृक्क पूय का कई कोष्ठ वाला थैला हो जाता

है यह पूय मूत्र मे निकल सकती है। सिस्टोस्कोप से परीक्षा करने पर गवीनी द्वारा पूय एक पतली रज्जुका के समान निकलती हुई दीखती है। सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर वृक्क की भित्ति मे वृक्क-ऊतक का लेश भी नही दिखाई देता।

लक्षण

वेदना, ज्वर, जैवविपरक्तता परिस्पर्श्य और विवर्धित वृक्क और पूयमेह हो सकते है। बन्द प्ररूप (closed type) के रोग मे पूयमेह नही होता। साधारण एक्सरे मे विवर्धित वृक्क की छाया दीखती है। उत्सर्जन गोणिका चित्र से कार्यहीन वृक्क मालूम होता है।

चिकित्सा—वृक्कोच्छेदन है।

परिवृक्क विद्रधि (perinephric abscess)

यह दो प्रकार की होती है, (1) प्राथमिक, जो परिवृक्क हीमेटोमा के स्टेफिलोकोकसो द्वारा रक्तजन्य सक्रमण से उत्पन्न होती है। सक्रमण फुन्सी या अवसम्पुटी (sub-capsular) विद्रधि के परिवृक्क-ऊतक मे फूटने से पहुँचता है। विद्रधि स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे और वाम ओर की अपेक्षा दक्षिण ओर अधिक होती है। (2) द्वितीयक, जो समीप के किसी अग के शोथ के उपद्रव रूप होती है, जैसे, उण्डुकपुच्छशोथ, पित्ताशयशोथ, डिम्ववाहिनी-शोथ, यकृत-विद्रधि, एम्पायीमा, (empyema), वह वृक्क या पृष्ठवश के यक्ष्मा से भी हो सकती है।

लक्षण और चिह्न

कटि वेदना शीतकप सहित, ज्वर तथा स्वेदन हो सकते हैं। वारम्वार फोडे होने का इतिवृत्त प्राय होता है और रोगी कृश हो सकता है। वृक्क अथवा समीप के अगो के पूर्व मे शोथग्रस्त होने का इतिहास हो या न हो। नियमत. मूत्र मे कोई अपसामान्यता नही होती। वृक्ककोण पर स्पर्शासहता और, आगे चलकर, वहा सूजन मिलती है। सीधे एक्सरेचित्र मे कटिलम्वनी और वृक्क की छायाओ का उस ओर लोप दीखता है और मध्यच्छदिका ऊची उठी दीखती है।

उत्सर्जन गोणिकाचित्र मे आलवाल विस्थापित दीखते है।

चिकित्सा

प्रारभ मे स्थानिक ऊष्माप्रयोग मे वेदना और पेशी आकर्षण का शमन हो सकता है। विद्रधि प्रतीत होने पर उसका पार्श्व द्वारा निर्हरण आवश्यक है। उपयुक्त प्रतिजीवी का प्रयोग अनिवार्य है।

रोगी के स्वस्थ होने पर उधर के वृक्क की दशा का उत्सर्जन एक्सरे-चित्रो द्वारा अन्वेषण करना चाहिये। उसके रोगग्रस्त होने पर उपयुक्त चिकित्सा की जाय। प्राथमिक रूप की परिवृक्कविद्रधि मे प्राग्ज्ञान उत्तम है क्योकि वृक्क-कार्य का ह्रास नही होता।

वृक्क के विशिष्ट सक्रमण—यक्ष्मा (tuberculosis)

वृक्क-यक्ष्मा कभी प्राथमिक नही होता। वह सदा किसी दूसरे अग फुप्फुस, लसीकापर्व अथवा अस्थि के यक्ष्मा ग्रस्त होने पर द्वितीयक होता है।

वह प्राय 15 और 40 वर्ष के बीच की आयु का रोग है और प्रारभ मे



चित्र 79—एक यक्ष्माग्रस्त वृक्क का अनुदैर्ध्य परिच्छेद जिसमे वृक्कतन्तु का विस्तृत विनाश और गुहिकाओ का बनना दीख रहा है।

सदा एकपार्श्वी होता है वह वहुत काल तक वैसा ही रह सकता है। प्राय दक्षिण वृक्क प्रथम आक्रात होता है, किन्तु अत मे दोनो वृक्क ग्रस्त हो जाते है।

विकृति—यक्ष्मा का सक्रमण वृक्क मे सदा रक्तद्वारा पहुचता हे यद्यपि कभी कभी मूत्राशय से परिगवीनी लसीकावाहिकाओ (periureteral lymphatics) द्वारा आरोहण करके पहुँच सकता है। दूसरे वृक्क मे सक्रमण पहुचने का यही मार्ग है। प्रारभिक क्षति पिरामिड के आधार पर उसके गोणिका मे उभरे हुए शिखर पर स्थित एक सूक्ष्म यक्ष्मिका (tubercle) होती है जिससे वृक्क यक्ष्मा-जीवाणुओ का मूत्र मे उत्सर्जन होता रहता है। इस प्रारभिक क्षति से लसीका-वाहिकाओ द्वारा रोग प्रातस्था और अतस्था तथा वृक्क के बाह्य पृष्ठ पर भी फैल जाता है। यक्ष्मिका के व्रण वन जाने पर रोग का गोणिका मे प्रसार होता है जिसकी श्लेष्मिक कला असम और द्युतिहीन हो जाती है। उसके पश्चात् वृक्क के सार-ऊतक का अधिकाधिक नाश होता रहता और गुहिकाये बनती रहती है। वृक्क विवर्धित हो जाता है और यह प्रक्रम परिवृक्क ऊतक मे विस्तृत हो सकता है। वृक्क को काटने पर उसके कटे पृष्ठ पर ये विक्षतयाँ (lesion) दिखाई पडती है, (1) किलाटी (caseous) पदार्थ से भरी कई गुहिकाये—रोग का गह्वर (cavernous) रूप (2) पिरामिडो से प्रातस्था तक फैली हुई सक्रमण की पीताभ (yellowish) रेखाये—यक्ष्माजन्य गोणिकावृक्कशोथ ; (3) गवीनी के अवरोध से सारा वृक्क विवर्धित हो सकता है तथा गोणिका का विस्तृत विनाश पाया जा सकता हे—क्षयजन्य जल-अपवृक्कता (hydro-nephrosis) चित्र 79, (4) वृक्क पूय की वहुकोष्ठकी थैली हो सकता है—क्षयजन्य पूयापवृक्कता, (5) गवीनी मोटी और विस्फारित होती है।

कभी-कभी पूयापवृक्कता वन्द होकर उसका कैल्सीकरण हो जाता है जिससे यक्ष्मा-सक्रमण नष्ट हो जाता है और वृक्कवस्तु का भी नाश होता है। अतएव वृक्क क्रियाहीन हो जाता है ; इसको स्वत वृक्कोच्छेदन (auto-nephrectomy) कहते है।

लक्षण और चिह्न

यद्यपि रोग वृक्क मे प्रारभ होता है किन्तु लक्षण मूत्राशय सबधी होते है। प्रारभिक लक्षण ये है। (1) मूत्र-त्याग बारम्बार होना, जिसका कारण प्रारभ मे किलाटी पदार्थ का वृक्क से मूत्राशय मे आना और आगे चलकर स्वय मूत्राशय का आक्रात होना होता है जिससे उसकी धारिता कम हो जाती है, (2) वेदनाहीन रक्तमेह प्रारभिक लक्षण हो सकता है, साधारणतया मूत्र मे कुछ लाल

रक्तकोशिका मे उपस्थित मिलती है , (3) वृक्कशूल विशेष लक्षण नही होना, कटि-प्रदेश मे मन्द वेदना हो सकती है कभी-कभी वृक्कशूल किलाटी पदार्थ के गवीनी मे होकर आने के कारण हो सकता है। क्षयजन्य जैवविषरक्तता (toxaemia) हो सकती है जिससे शरीरभारक्षय, मध्यकालीन तापवृद्धि, और स्वेदन, रोग के बढ जाने पर होते ह।

परीक्षा पर कोई अपसामान्यता न मालूम हो। कभी-कभी वृक्क विवर्धित और परिस्पर्श्य होता है। उदरभित्तियो द्वारा श्रोणि पर्यन्त पर गवीनी परिस्पर्शन (दुबले-पतले व्यक्ति मे) या मलाशय या योनि द्वारा गवीनी के मोटे हुए अध-प्रात को स्पर्श करना असाधारण हे।

अन्वेषण

मूत्र परीक्षा—करने पर पूय कोशिकाये तथा कुछ लालरक्त-कोशिकाय मिलती है। यक्ष्मा जीवाणु 24 घटे तक एकत्र किये हुए मूत्र की तलछट (sediment) मे मिल सकते है, किन्तु सदा नही। 98 प्रतिशत रोगियो मे मूत्र का सवर्धन (culture) और गिनीपिगो के निवेशन प्रयोग (inoculation experiments) धनात्मक होते हैं।

एक्स-रे परीक्षा

एक साधारण एक्स-रे चित्र मे वृक्क का कैल्सीभवन (calcification) दीख सकता है। वक्ष की परीक्षा से फुप्फुस की विक्षति मालूम करनी चाहिये। उत्सर्जन-गोणिकाचित्रण से पिरामिडो मे अनियमित गुहिकाओ का बनना, आलवालो (कैलिक्सो) का विस्फार, गवीनी मे एक या अधिक निकुचनो (stricture) का होना अथवा वृक्क की कार्यहीनता का पता चल सकता है। आरोही या प्रतीपगामी गोणिकाचित्रण एक ध्रुव (pole) मे प्रारभिक गुहिका-भवन (cavitation) को जानने के लिये उपयोगी है। किन्तु उससे रोग के उग्र हो जाने और द्वितीयक सक्रमण के प्रवेश का भय है।

सिस्टोस्कोप द्वारा परीक्षा

प्रारभिक अवस्था मे कोई अपसामान्यता न मिले, केवल रोगग्रस्त ओर से धुधला मूत्र या पूय निकलती दिखाई दे सकती है। गवीनी का मुख शोथयुक्त या सकुलित हो ; आगे चलकर उसके चारो ओर यक्ष्मिकाये तक दीख सकती है , कुछ मे वह ऊपर को खिचा हुआ दीखता है, यद्यपि मुख खुला रहता है , यह

गोल्फहोल (golfhole) गवीनी कही जाती है।

संवर्धन और गिनीपिग निवेशन (inoculation) के लिये मूत्र किसी भी वृक्क से एकत्र किया जा सकता है।

उपद्रव

निम्नलिखित उपद्रव हो सकते हैं (1) उपयुक्त चिकित्सा या रोगग्रस्त वृक्क के अपहरण द्वारा रोग का नियन्त्रण न होने पर दूसरा वृक्क सदा आक्रांत हो जाता है, (2) परिवृक्क विद्रधि, (3) यक्ष्माजन्य मूत्राशयशोथ (cystitis), जिससे मूत्राशय का आकार बहुत छोटा हो जाता है, (4) जननपथ, अर्थात् पुरस्थ, अधिवृषण और शुक्राशयों मे रोग का प्रसार होता है।

चिकित्सा

यक्ष्मा की साधारण रोग की भांति शैया-विश्राम, प्रतियक्ष्मा-रासायनी चिकित्सा और आहार द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि जीवाणवीय अध्ययन और गोणिका एक्स-रे चित्रण द्वारा रोग के एक ओर ही परिमित होने का निश्चय हो जाय तो शैया-विश्राम और प्रतियक्ष्मा चिकित्सा को 18-24 मास तक जारी रखा जाय।

सर्जरी द्वारा चिकित्सा

यदि उत्सर्जन-गोणिका-चित्रण से विरूपता (deformity) या वृक्क की कर्महीनता मालूम हो तो शीघ्र ही वृक्कोच्छेदन करना उचित है जिससे रोग दूसरी ओर के वृक्क को ग्रस्त न करे। वृक्कोच्छेदन करने से पूर्व उत्सर्जन एक्स-रे चित्रण द्वारा दूसरी ओर के वृक्क के पूर्ण कार्यक्षम होने का निश्चय करना अनिवार्य है। किस प्रकार का शस्त्रकर्म करना होगा, यह कितना वृक्क ग्रस्त है इस पर निर्भर करेगा।

आंशिक वृक्कोच्छेदन (partial nephrectomy) उस दशा मे उपयुक्त है जब रोग वृक्क के एक ही ध्रुव मे या अश्वनालाकार वृक्क के एक ही शृंग (horn) मे परिमित हो। कभी-कभी दोनो वृक्को के ग्रस्त होने पर भी, यदि रोग वृक्को के एक ही ध्रुव मे परिमित होता है तो आंशिक उच्छेदन किया जाता है।

वृक्क और गवीनी दोनो के रोगग्रस्त होने पर वृक्क-गवीनी-उच्छेदन (nephrourecterectomy) उपयुक्त शस्त्रकर्म है। मूत्राशय मे रोग होना इसका

निषेधात्मक नही है। इस कर्म के पश्चात् मूत्राशय का रोग शात होकर उसका विरोहण हो जाता है।

वृक्कक्षय मे वृक्कोच्छेदन या वृक्क-गवीनी-उच्छेदन तात्कालिक आवश्यक शस्त्रकर्म नही है। शस्त्रकर्म के पश्चात् भी प्रतिक्षय-चिकित्सा कुछ महीनो तक जारी रखनी चाहिये।

दोनो वृक्को के ग्रस्त होने पर शस्त्रकर्म का परामर्श नही दिया जाता, जब तक कि रोग दोनो वृक्को मे केवल एक ही ध्रुव मे परिमित न हो, अथवा एक वृक्क पूर्णतया नष्ट और अकर्मण्य न हो गया हो।

वृक्क के आघात

वृक्क के आघात साधारणतया नही होते, किन्तु वे मार्मिक होते है और उनके साथ अन्य आभ्यन्तरागो—यकृत, प्लीहा, फुप्फुस-के भी आघात हो सकते है।

हेतुकी

वृक्क के आघात खुले हुए घावो के कारण हो सकते है, अथवा वे प्रत्यक्ष या कुठाग्र-अभिघात का फल हो सकते है।

अनावृत (open) आघात—ये साधारण जनता मे बहुत असाधारण है और अधिकतर गोली लगने या तीव्र धार वाले शस्त्र से भेदने (stab) का फल होते है। उनके साथ बाह्य रक्तस्राव होता है और वृक्क की गोणिका के क्षत हो जाने पर उनमे होकर मूत्र भी निकलता है। ऐसे क्षतो से मूत्र-व्रणनाल (urinary fistula) बन जाते है, किन्तु वे अधिकतर स्वत विरोहित (heal) हो जाते है।

आवृत या बंद (closed) आघात—यह अधिक साधारण आघात उदर या उसके पार्श्व पर सीधी चोट लगने से होता है। कभी-कभी रोगी के कुछ ऊचाई से नितम्बो पर गिरने से वृक्क को आघात पहुच सकता है, वृक्क का वृन्त विदीर्ण हो सकता है। विरल दशा मे वृक्क के विवर्धित होने पर, जैसे जलाप-वृक्कता (hydronephrosis) मे, पेशियो के अकस्मात सकोच से वृक्क विदीर्ण हो सकता है।

विकृति तथा वर्गीकरण

वृक्क का विदरण (laceration) अनुप्रस्थ हो सकता है अथवा वह

हाइलम से परिसर की ओर विकरित (radiate) हो। ऐसी दशा मे वह मूत्र-सूक्ष्मनलिकाओ (urinary tubules) की रेखा का अनुसरण करता है। वृक्क के आघात निम्न प्रकार से वर्गीकृत किए जा सकते है—

(1) सामान्य नीललाछन (bruising, ecchymosis)

(2) वृक्क का कुट्टज (contusion), वृक्क सम्पुट के विदर (tear) और परिवृक्क रक्तगुल्म (haematoma) सहित।

(3) अपूर्ण विदर (incomplete fissure)—केवल गोणिका के विदर से रक्तमेह (haematuria) और मूत्र का परिस्राव (extravasation of urine) होगा। यदि केवल सारऊतक (पैरिन्कायमा) विदरित हुआ है तो एक बडा परिवृक्करक्तगुल्म वन जायगा।

(4) विदरण (laceration)—केवल एक ध्रुव का विदरण अथवा कई विदरण हो सकते है। गोणिका, और सार-ऊतक मे विस्तृत विदरण से परिवृक्क रक्तगुल्म वन जाता है और मूत्र परिस्राव तथा रक्तमेह होते है।

(5) वृक्क वृन्त (renal pedicle) के विदरण (rupture) से आभ्यन्तर रक्तस्राव होता है जो वढता जाता है और घातक प्रमाणित हो सकता है।

(6) दस वर्ष से कम आयु वाले वालको मे साथ ही पर्युदर्या का भी विदर हो सकता है जिससे पर्युदर्यागुहा मे रक्त और मूत्र एकत्र हो जाते है और परिवृक्क वसा की अल्पता के कारण मूत्रपरिस्राव भी होता है।

लक्षण और चिह्न

आघात का इतिवृत्त मिलता है। लक्षण और चिह्न कटि प्रदेश मे परिमित होते है जहा वेदना होती है, तथा जी मिचलाना, वमन और रक्तमेह भी होते है जो सतत हो या सविराम हो सकते है। उदर का आध्मान, मूत्रावधारण (retention of urine), मूत्राल्पता (oliguria) अथवा अमूत्रता (anuria) तक हो सकती है तथा अन्य अगो के आघात के लक्षण भी उपस्थित हो सकते है।

स्तब्धता तथा आभ्यन्तर रक्तस्राव के लक्षण, अर्थात् तीव्र गति वाली नाडी और रक्तदाब का ह्रास, उपस्थित हो सकते है। पार्श्व पर नीललाछन दिखाई दे सकता है। परिस्पर्शन से वृक्क कोण पर स्पर्शासहता प्रतीत होती है, उदरभित्ति की कठोरता और कटिप्रदेश मे एक पिंड भी प्रतीत हो सकते है।

रक्तगणना और हीमेटोक्रिट, यदि किये जाय तो वे, रक्तस्राव की प्रगति

जानने के लिए उपयोगी साधन है। बहुधा मूत्र मे रक्त अधिक मात्रा मे उपस्थित होता है।

अन्वेषण

एक्स-रे चित्रण—साधारण एक्स-रे चित्र मे वृक्क और कटि लम्बनिकाओ की छाया अनुपस्थित हो सकती है। अन्तिम दो पर्शुकाओ का अथवा अनुप्रस्थ प्रवर्धो का अस्थिभग मिल सकता है। स्तब्धता के समय उत्सर्जन एक्स-रे-चित्र न लेना चाहिए। कुछ समय पश्चात् आघात की ओर के चित्र मे विरूपित आलवाल तथा परिवृक्क ऊतक मे लीक किया हुआ रजक दीख सकते है। प्रतिगामी गोणिका एक्स-रे चित्र आलवालो की विक्षति को स्पष्टतया दिखा सकता है।

सिस्टोस्कोप परीक्षा द्वारा गवीनी मे से आघात की ओर रक्त आता हुआ दिखाई देता है।

उपद्रव

विदारण के विस्तृत होने पर तात्कालिक उपद्रव तीव्र रक्तह्रास होता है।

मूत्र परिस्राव से सक्रमण हो जाता है जिसकी सूचक तापवृद्धि है। विलबित उपद्रव गवीनी या गोणिका के विदरण के विरोहण के फलस्वरूप अवरोध और तज्जनित जलापवृक्कता है। यदि आघात के कारण वृक्क-रक्तवाहिनिया क्षत हो गई है तो उससे स्थानिक अरक्तता (ischaemia) होकर वृक्क का शोथ हो जायगा।

चिकित्सा—लगभग दो-तिहाई रोगी सरक्षी चिकित्सा से आरोग्य लाभ करते है। रोगी को शैयारूढ करके तीव्र रक्तमेह के रोगी को 1/4 ग्रेन मार्फीन देकर रक्ताधान प्रारम्भ कर दिया जाता है। सक्रमण को रोकने के लिए पेनिसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन दिये जाते है। रक्तस्राव रुक जाने के पश्चात् 7-10 दिन तक पूर्ण शैया-विश्राम कराया जाता है। रोगी को मुक्त करने से पूर्व वृक्क की कार्यक्षमता को जानने के लिए उत्सर्जन गोणिका एक्स-रेचित्रण उपयोगी होता है।

शस्त्रकर्म आयोजन—20 से 30 प्रतिशत रोगियो मे सर्जरी आवश्यक होती है। परिवृक्क अवकाश का निस्राव, विदर की सीवन, आशिक अथवा पूर्ण वृक्कोच्छेदन करना आवश्यक हो सकता है। मूत्राशय से रक्त के थक्को को बिगेलो के निस्सारक (Bigellow's evacuator) और केनुला की सहायता से

अथवा अधिजघन मूत्राशय छेदन (suprapubic cystotomy) द्वारा निकालना उचित है ।

जल-अपवृक्कता (Hydronephrosis)

जल-अपवृक्कता वृक्क की गोणिका और आलवालो का अपूतित विस्फार (asceptic dilatation) है जिसमे साथ ही वृक्क के सार-ऊतक का भी नाश हो जाता है । यह दशा मूत्र के वहि प्रवाह के अवरोध के कारण उत्पन्न होती है । अवरोध वृक्कान्तर्गत हो सकता है जिसमे आलवालो का विस्फार हो जाता हे अथवा वह वृक्कवाह्य होता है जिसमे गोणिका का विशेष विस्फार होता है । (चित्र स० 80)

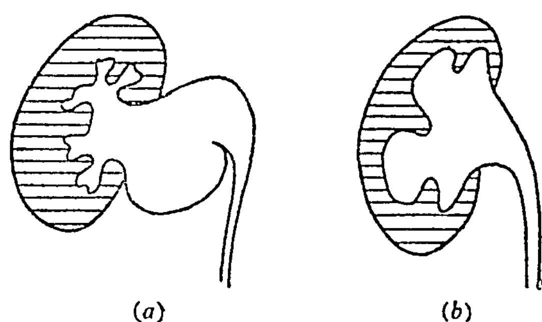
हेतुकी

गोणिका गवीनी सगम और गवीनी के निम्न प्रात के बीच मे अवरोध होने से एक ओर जलापवृक्कता होती है । किन्तु मूत्राशय की ग्रीवा या मूत्र मार्ग मे अवरोध होने पर दोनो वृक्को मे रोग होता है ।

कारण सहज और उपलब्ध दो प्रकार के होते है । सहज कारण ये है अश्वनालाकार वृक्क , अस्थानिक वृक्क (ectopic kidney) , गोणिका-गवीनी-संगम की सकीर्णता (stenosis) , गवीनी मे पुटक (folds) या मरोड (twist) , मूत्राशय मे गवीनी का मुख पिन की नोक के समान होना , गवीनीमुख की अपसामान्य स्थिति, जैसे योनि या गर्भाशय मे , विपथी (aberrant) वृक्क-रक्तवाहिकाये , मूत्रमार्ग के बहिर्द्वार का अति सूक्ष्म होना तथा फाइमोसिस , कुछ रोगियो मे गोणिका-गवीनी सगम अथवा गवीनी के मूत्राशय मे प्रवेश पर तन्त्रिका-पेशी असतुलन (neuromuscular imbalance) कारण माना जाता है ।

उपलब्ध कारणो मे इनको माना जाता है गवीनी की अश्मरी , निकुचन (stricture) या अर्बुद , गवीनी की हर्निया, मूत्राशय की विपुटी अथवा अर्बुद का गवीनी के निम्न प्रात पर दबाव, गवीनी का वाह्य ओर से दबना, जैसे अर्बुद से , कभी-कभी चलायमान वृक्क, मूत्राशय, गर्भाशय ग्रीवा या मलाशय का कार्सिनोमा, विवर्धित पुरस्थ और मूत्र मार्ग का निकुचन ।

जलापवृक्कता किसी भी वय पर हो सकती है । गर्भ मे जल्पापवृक्ता कष्ट; प्रसव का कारण होती है । रोग के लक्षण प्राय 25 और 30 वर्ष के वीच मे प्रगट होते है ।



चित्र 80—(a)वृक्कवाह्य (exterenal) और (b) वृक्काभ्यन्तर (interenal) जलापवृक्कता



चित्र 81—जलापवृक्कताग्रस्त वृक्क का अनुदैर्ध्य परिच्छेद

विकृति

गोणिका की प्रसामान्य धारिता 5-10 मि० लि० होती है। जलापवृक्कता मे यह वहुत वढ जाती है। एक वृहद जलापवृक्कताकोग की धारिता 3600 मि० ली० पाई गई। जलापवृक्कता साधारणतया सविराम और अपूर्ण अवरोध से होती है। यह माना जाता था कि अकस्मात और पूर्ण अवरोध से वृक्क का शोष हो जाता है, किन्तु अव यह प्रमाणित हो चुका है कि उससे जलापवृक्कता

होती है जिससे 3 सप्ताह के पश्चात् वृक्क अकर्मण्य हो जाता है। किन्तु पूर्व अवरोध को दूर कर देने से वृक्क फिर से कार्य करने लगता है।

अन्तर्गोणिकादाव के बढने से गोणिका तथा आलवालो का आकार बढ जाता है और पिरामिड चपटी हो जाती हैं। आलवाल चपकाकार से मुद्गर आकार के हो जाते है। अन्त मे वृक्क जलसम स्वच्छ तरल से भरे कोष्ठको-युक्त थैला बन जाता है (चित्र स० 81)। तरल मे यूरिया, यूरिक अम्ल और लवण अल्प मात्रा मे होते है। उसमे सक्रमण हो जाने से वह पूय अपवृक्कता (pyonephrosis) कही जाती है।

सूक्ष्मदर्शी आकृति

सूक्ष्मनलिकाओ का नाश उसकी मुख्य विशेपता है जब कि केशिका-स्तवक अपेक्षत वैसे ही बने रहते हैं। आगे चलकर उनका तन्तुवन (fibrosis) हो जाता है यद्यपि उनको अन्त तक पहिचाना जा सकता हे।

जलापवृक्कता मे तरल, स्तबको द्वारा निरतर स्रवित तथा शोषित होने से नवीन (fresh) बना रहता है। वह सूक्ष्म नलिकाओ अथवा लसीका-वाहिकाओ द्वारा, न कि गोणिकाशिराओ द्वारा जैसा माना जाता था, शोषित होता रहता है।

लक्षण और चिह्न

जलापवृक्कता स्त्रियो मे पुरुषो से कुछ अधिक होती है और वह भी दाहिनी ओर की।

जलापवृक्कता दो प्रकार की होती है, एक बन्द (closed) और दूसरी सविरामी (intermittent)। बन्द प्रकार मे कोई लक्षण नही होते, कटिप्रात मे केवल मन्द वेदना रहती है और एक उभार या सूजन बन जाती है। सविरामी प्रकार मे जो अधिक होता है, कटिप्रदेश मे वेदना और उभार होते है जो बहुत से मूत्रत्याग पर जाते रहते है।

लक्षण ये हैं कटिप्रदेश मे मन्द वेदना, गवीनी मे अश्मरी होने पर सविराम शूल (intermittent colic), बहुमूत्रता तथा रक्तमेह हो सकते है। परिस्पर्शन से कटिप्रदेश मे उभार प्रतीत होता है जिसमे वृक्कसबधी वृद्धि के सब लक्षण होते है। पूर्ण चलायमान होने पर उसको डिबग्रथि की पुटी (ovarian cyst) समझा जा सकता है।

द्विपार्श्वी रोग मे एक ओर का वृक्क अधिक ग्रस्त होता है, दूसरी ओर

कटिप्रदेश मे मन्द वेदना बनी रहती है। कितनी ही बार मूत्राशय की ग्रीवा पर अवरोध होने से वृक्क की ओर ध्यान नही जाता। बहुमूत्रता हो सकती है जिसमे वृक्क के कार्यह्रास के कारण अल्प गुरुत्व का मूत्रत्याग होता है।

अन्वेषण

एक्स-रे-चित्रण—साधारण एक्स-रे चित्र मे अश्मरी दीख सकती है। वृक्क छाया का विवर्धन स्पष्ट हो सकता है।

उत्सर्जन-गोणिका-चित्रण मे वृक्कगोणिका का विस्फार दीखता है। आलवाल चपकवत से मुद्गराकार हो जाते है, उनका आकार बढ जाता है। आगे चलकर रजक का सान्द्रण उत्तम नही होता, रोग के बढने पर 6-24 घटे पश्चात् लिये हुए चित्रो मे रजक का कुछ सान्द्रण दिखाई पडता है और अस्पष्ट छाया बनती है।

उत्सर्जन-चित्रण के सफल न होने पर प्रतीपगामी चित्रण आवश्यक होता है। उससे आलवालो और गोणिका का स्पष्ट चित्र दीखता है। (चित्र स० 78)

सिस्टोस्कोपी—इससे मूत्राशय मे या गवीनी मुख पर उपस्थित कारण मालूम हो सकता है।

चिकित्सा

कारण पर चिकित्साविधि निर्भर करती है। एक पार्श्वी रोग मे गवीनी से अश्मरी का अपहरण आवश्यक हो सकता है। विपथी रक्तवाहिका के होने पर उसका विभाजन उचित है। वृक्क के सक्रिय होने और गोणिका-गवीनी-सगम पर उपस्थित अवरोध वाले रोगियो मे, जिनमे गोणिका विरूप हो जाती है, अनेक प्रकार के प्लास्टिक शस्त्रकर्मों का आयोजन किया गया है। इन शस्त्रकर्मों मे गोणिका के अतिरिक्त भाग का उच्छेदन करके नई गोणिका मे गवीनी को आरोपित किया जाता है जिसका वृक्कछिद्रीकरण (nephrostomy) द्वारा कुछ दिनो तक निर्हरण (drained) होता रहता है। केवल वृक्क-छिद्रीकरण से वृक्क की कार्यक्षमता के पुन स्थापन मे सफलता हो सकती है जिससे मूत्रप्रवाह पुन होने लगता है और वृक्क की रक्षा हो जाती है। एकपार्श्वी रोगियो मे वृक्क के पूर्णतया कार्यहीन हो जाने पर अथवा वेदना और रक्तमेह होने पर वृक्कोच्छेदन करना आवश्यक होता है।

कुछ, किन्तु बहुत कम, रोगियो मे वृक्क का अनुकपी तन्त्रिकोच्छेदन वाछित हो सकता है।

यदि द्विपार्श्वी रोगियो मे निम्न मूत्रावरोध हो तो कारण को दूर करना उचित है। वृक्क का कार्य उत्तम न होने पर उभय पार्श्वी रोगियो मे दोनो ओर वृक्कछिद्रीकरण लाभदायक हो सकता है।

सर्पी वृक्क (वृक्कभ्रंश)
Movable Kidney (Nephroptosis)

'सर्पी वृक्क' मे पर्युदर्याबाह्य (extra peritoneal) तल मे वृक्क की ऊपर तथा नीचे की दिशा मे अपसामान्य गति सभव है। 'चलवृक्क' (floating kidney) सब दिशाओ मे चलायमान होता है।

हेतुकी

वृक्कभ्रंश स्त्रियो मे अधिक होता है और दक्षिण की ओर 10-12 गुणा अधिक होता है। वह प्राय आशयभ्रंश (visceroptosis) के रोगियो मे होता है और परिवृक्क वसा के अवशोषण या औदरिक पेशियो की दुर्बलता (बहुप्रसव के कारण) अथवा पराकशेरुक खातो (paravertebral fossae) के उत्तान (shallow) होने का फल हो सकता है।

विकृति

वृक्क के नीचे की ओर गति करने पर उसका ऊर्ध्व ध्रुव निम्न ध्रुव की अपेक्षा मध्यरेखा के समीप आ जाता है और उसके वृन्त की लम्बाई बढ जाती है। गवीनी पश्च भित्ति पर स्थिर रहती है। जिससे वृन्त मे मरोड (twist) की प्रवृत्ति आ जाती है। इससे 'डीटल सकट' (Dietl's crisis) और जलापवृक्कता तथा वृक्कवाहिकाओ के मरोड (twist) से रक्तमेह उत्पन्न होता है।

लक्षण और चिह्न

दशा लक्षणहीन हो सकती है और केवल उदरीय परीक्षा पर आकस्मिक निदान होता है। कटिप्रदेश मे तीव्र वेदना सहित सविरामी जल अपवृक्कता हो सकती है। कभी-कभी वृन्त के मरोड से वृक्कशूल और अल्पमूत्रता (oliguria) उत्पन्न हो जाते है। मरोड के खुल जाने से प्रचुर मूत्रत्याग होता है। परिस्पर्शन से एक चलायमान वृक्कवृद्धि प्रतीत होती है। चल वृक्क मे वृक्क को किसी भी ओर चलाया जा सकता है; कुछ मे निम्न ध्रुव, किन्तु अधिक मे

वृक्क का ऊर्ध्व ध्रुव परिस्पर्श्य होता है। वृक्क के सम्पीडन से जी मिचला सकता है। सकटावस्था (crisis) मे वृक्क विवर्धित हो सकता है।

निदान

वेदना और उभार के अभिलक्षक इतिवृत्त से सहज मे निदान हो जाता है। रोगी को खडाकर के गोणिका-चित्रण से निदान का समर्थन होता है। उदर के अन्य चल अर्बुदो या गुल्मो, जैसे पित्ताशय का श्लेष्मागुल्म (mucocele), वपापुटी (omnetal cyst), लम्बे वृन्तवाली डिबग्रन्थिपुटी और कभी-कभी बृहदान्त्र की चलवृद्धि (अर्बुद)–से उसका सापेक्ष निदान करना आवश्यक होता है।

चिकित्सा

एक कसी हुई उदर पेटी (abdominal belt) और शरीरभार बढाने वाला वसामय उत्तम भोजन अधिकतर रोगियो को लाभदायक होता है। शस्त्रकर्म का परामर्श प्राय, विशेपकर मनोदौर्बल्य (neuresthenia) के रोगियो को, नही दिया जाता। डीटल सकट (Dietl's crisis) के रोगियो मे वृक्क स्थिरीकरण (nephropexy) आवश्यक हो सकता है।

मूत्राश्मरी (Urinary stones)

प्राचीनकाल से मूत्रमार्गों मे अश्मरी होने का ज्ञान था। उत्तर भारत मे, विशेपकर पजाब, राजस्थान, और पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे यह रोग बहुत होता है। पश्चिमी पाकिस्तान, ईराक, ईजिप्ट, अरब, चीन, बाल्कन प्रायद्वीप और वोल्गा की घाटी मे भी अश्मरी रोग साधारण है।

हेतुकी

मूत्र मे निम्नलिखित पदार्थ घुले रहते है।

क्रिस्टेलाइड—यूरिक अम्ल, सोडियम, पोटासिम और मैगनेसियम यूरेट, कैल्सियम आक्जेलैट, कैलसियम फौस्फेट, एमोनियम मैगनेसियम फौस्फेट, कैल्सियम कार्वोनेट, सिस्टीन, और नील (Indigo), यूरिया, आणवीय विलयन (molecular solution) मे, और कालाइड-म्यूसिन और कोन्ड्रिटिन सल्फ्युरिक अम्ल।

क्रिस्टेलाइड अतिसतृप्त विलयन (supersaturated solution) के रूप मे कालाइडो से अधिशोपित (absorbed) रहते है। यदि कालाइडो को घटा

दिया जाय या क्रिस्टेलाइडो को बढा दिया जाय तो क्रिस्टलीकरण हो सकता है। यद्यपि अश्मरी बनने के कारण को हम नही जानते, उसकी प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाले कई कारणो का ज्ञान प्राप्त हो चुका है जिनका नीचे उल्लेख किया जाता है।

(1) किसी वैकृत प्रक्रम (pnthological process) से मूत्र मे **कालाइड-क्रिस्टलाइड सतुलन का अस्तव्यस्त** हो जाना।

(2) **मूत्र का रुका रहना** (stasis),—जैसे गोणिका गवीनी-सगम पर वृक्काश्मरी से मूत्र प्रवाह मे अवरोध, मूत्राशयाश्मरी, पुरस्थ का विवर्धन, मूत्रमार्ग का निकुचन।

(3) **मूत्रपथ के सक्रमण**—से मूत्र का एमोनियामय अपघटन (ammoniacal decomposition)होता है जिससे त्रिफास्फेट (tripple phosphates)-अश्मरी वृक्क या मूत्राशय मे बनती है।

(4) **अतिसाद्रिन्त मूत्र (highly concentrated urine)**—अल्पजल पीने या वायुमडल ताप की अधिकता के कारण।

(5) **आहारजनित**—जिन देशो मे कुपोषण (malnutrition) अधिक है वहा अश्मरी रोग बहुत होता है। प्रयोगो द्वारा विटामिन-ए की कमी से चूहो मे अश्मरी उत्पन्न की गई है। सभव है योरुप और अमरीका मे अश्मरी रोग न होने का कारण दूध, मक्खन, चीज, मास, मछली आदि का आहार मे प्रचुर प्रयोग हो।

(6) **अतिपरावटुता (hyperparathyroidism)** मे मूत्र द्वारा केल्सियम और फास्फोरस के आयनो की अत्यधिक हानि होती है। किन्तु अतिकैल्सियम-रक्तता (hypercalcaemia) हो जाती है। इस असाधारण कारण को अश्मरी की बारबार पुनरावृत्ति होने पर स्मरण रखना चाहिये।

(7) जिन रोगियो को बहुत समय तक शैयारूढ रहना पडता है उनमे मूत्राश्मरी बन सकती है, जिसका कारण मूत्र मे कैल्सियम की अधिकता तथा मूत्र की स्थैतिकता (stasis) हो सकती है।

(8) **रैडल की परिकल्पना (Randall's hypothesis)**—रैडल ने प्रयोगो द्वारा दिखाया है कि कैलसियम को अवउपकलाप्रदेश (subepithelial zone) मे वृक्काकुर (renal papilla) के शिखर पर निक्षेपित (deposited) किया जा सकता है और उसके पश्चात उस पर अन्यक्रिस्टे लाइड (मूत्र के) भी निक्षेपित हो सकते है। उपकला-आस्तर के एक बार नष्ट होने पर यह निक्षेप अश्मरी बन सकता है।

मूत्राश्मरी प्राथमिक (primary) अथवा द्वितीयक (secondary) हो सकती



चित्र 82—एक वृक्क का परिच्छेद जिसमे शाखा-युक्त आश्मरी दीख रही है।

है। प्राथमिक अश्मरी केवल उन ही पदार्थों से बनती है जो मूत्र मे उपस्थित होते है, मूत्र अपूतित (aseptic) होता है। द्वितीयक अश्मरी पहले से बने हुए केन्द्रक के चारो ओर प्राय: सक्रमित मूत्रपथ मे बनती है। अश्मरी का केन्द्रक एक रक्त का थक्का, विशल्कित (desquamated) उपकला-कौशिकायें, पूयकोशिका पुज, जीवाणु या कभी-कभी आगन्तुक शल्य हो सकते है।

अश्मरियो का सघटन

फास्फेट वर्ग (phosphatic group)—ये केवल केल्सियम फास्फेट और केल्सियम एमोनियम मैगनेसियम फास्फेट (त्रिफास्फेट) की बनी होती है। वे मैले श्वेतरग की गोणिका के रूप की, होती है। यदि वे आलवालो मे विस्तृत हो जाती है तो स्टैंगहार्न (एक प्रकार का कोरल) आकार ले लेती है। (चित्र स० 82) मूत्राशय मे वे गोल या अडाकार होती है। फास्फेट अश्मरिया क्षारीय मूत्र मे होती है और अत्यन्त एक्स-रे-अापार्य (radio opaque) होती है।

आक्जेलेट अश्मरिया (**कैल्सियम आक्जेलेट**)—ये अत्यन्त कठोर और अनियमित अर्थात् असम पृष्ठ की होती है। पृष्ठ पर उठे हुए प्रवर्धो के कारण उनकी समता शहतूत से दी जाती है। रक्त मिश्रित होने के कारण वे कालिमा-

युक्त होती हैं। वे आम्लिक मूत्र मे पाई जाती है और एक्स-रे-अपार्य होती हैं।

यूरिक अम्ल वर्ग (uric acid group)—केवल यूरिक अम्ल से निर्मित अश्मरिया असाधारण होती है। उनका पृष्ठ चिकना और पीताभ या हल्के भूरे रग का होता है। वे आम्लिक मूत्र मे पाई जाती है। शुद्ध यूरिकअम्ल अश्मरी एक्स-रे-अपार्य नही होती। अधिकतर अश्मरियो पर कैल्सियम एकत्र हो जाता है जिससे वे एक्स-रे अपार्य हो जाती है।

विरल अश्मरिया - कैलीसयम कार्वोनेट – खडियामय और अत्यन्त एक्स-रे अपार्य होती है, **सिस्टीन (cystine)**—ये अश्मरिया सिस्टीनमेह के रोगियो मे सूक्ष्म नलिकाओ द्वारा सिस्टीन के पुन शोषित न होने के कारण पाई जाती है, वे नरम, और निकालने के समय गुलाबीपन लिये पीले रग की होती है जो पीछे हल्का हरा हो जाता है, **जैन्थीन (zanthine)**—अत्यन्त विरल, चिकनी, गोल, गहरे लाल रग की, फलकोयुक्त (lamellar structure) रचना वाली तथा एक्स-रे-अपार्य (non opaque) होती है। **नील अश्मरिया(indigo calculi)**—इडीकन से बनती है। वे नीले रग की किन्तु अत्यन्त असाधारण हैं। **सल्फोनेमाइड निक्षेप (sulphonamide deposits)** सूक्ष्म नलिकाओ मे कीचड के समान अक्रिम्टलीय सग्रह होते है, **फाइब्रिन अश्मरी (fibrin calculi)** पूय अपवृक्कता (pyonephrosis) मे विरल रोगियो मे होती है, वह शुष्क हुए एलवूमिन का पिड होता है, वास्तविक अश्मरी नही होती। **जीवाणुकृत अश्मरी (bacterial calculli)** अत्यन्त साधारण छोटी अडाकार और धूसर रग की होती है।

वृक्क अश्मरी (renal calculus) प्राय. गोणिका मे पाई जाती है। वडी होने के पूर्व वह गवीनी मे होकर मूत्राशय मे पहुचकर मूत्राशयअश्मरी वन जाती है अथवा मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकल जाती है। गोणिका मे स्वतन्त्र रहने से वह गोल आकार की होती है, किन्तु गोणिका मे अन्तर्घट्टित (impacted) होने पर कोणीय (angular) तथा आलवालो मे विस्तृत होने पर स्टैगहार्न आकार की हो जाती है। साधारणतया एक ही अश्मरी होती है, किन्तु कभी-कभी कई छोटी-छोटी अश्मरिया मिल जाती है।

वृक्क पर अश्मरी के प्रभाव उसके द्वारा मूत्रप्रवाह के अवरोध, सक्रमण तथा चिरकारी क्षोभ (chronic irritation) पर निर्भर करते है। गवीनी-गोणिका-सगम पर अवरोध से जल-अपवृक्कता हो जाती है। सक्रमण गोणिका वृक्कशोथ (pyelonephritis) उत्पन्न करता है जिससे अवरोध की उपस्थिति

मे पूय-अपवृक्कता, परिवृक्कशोथ या परिवृक्क विद्रधि उत्पन्न हो सकती है। गोणिका मे कई वर्ष तक चिरकारी क्षोभ रहने से वहा की उपकला मे परिवर्तन होकर कार्सिनोमा हो सकता है।

दूसरी ओर के वृक्क मे पूरक अतिवृद्धि (compensatory hypeɪtrophy), मूत्राशय से सक्रमण के आरोहण के फलस्वरूप आरोही गोणिका-वृक्क-शोथ (ascendıng pyelonephrıtıs), तथा अश्मरीनिर्माण तक हो सकते है।

लक्षण और चिह्न – अश्मरी के चिरसम्मत लक्षण वेदना, आवृत्ति (frequency) और रक्तमेह है।

वेदना—वृक्काश्मरी बहुत समय तक लक्षणहीन रह सकती है, विशेषकर यदि वह बडी हो, अथवा आलवाल या सारऊतक मे स्थिर हो, अथवा स्टैग-हार्न प्रकार की हो। लघु अश्मरिया, स्वतन्त्र होने के कारण अधिक वेदनाकर होती हे। वेदना दो प्रकार की होती है **स्थानिक या स्थिर (fixed paın)** कटिप्रदेश मे मन्द प्रकार की वेदना वृक्क कोण (renal angle) पर होती रहती है और जो व्यायाम या परिश्रम से बढ जाती है। कभी-कभी वेदना उदर मे सामने अवपर्शुक प्रदेश मे प्रतीत हो सकती है। वृक्क शूल (renal colıc) मे दारुण व्यथा होती है जिसको वास्तव मे गवीनी शूल (ureterıc colıc) कहना चाहिये। उसका प्रारम्भ, अकस्मात् विश्राम के समय या परिश्रम करते हुए, हो सकता है और साथ ही वमन होते है, स्वेदन बहुत होता है और वर्ण रक्तहीनता दीखने लगती है। वेदना वृक्ककोण से प्रारम्भ होकर गवीनी की रेखा मे नीचे वृषण, अथवा वृहद भगोष्ठ और कभी कभी ऊरु के भीतर की ओर जाती प्रतीत होती है। रोगी वेदना से छटपटाता है और करवट बदलता रहता है। शूल कुछ घटे तक जारी रहता है और अश्मरी के गोणिका मे लौट आने अथवा मूत्राशय मे निकल जाने पर उतना ही आकस्मिक बन्द हो जाता है जैसे वह प्रारम्भ हुआ था। शूल के पश्चात् बहुमूत्रता हो सकती है जिसमे अश्मरी निकल सकती है।

आवृत्ति—मूत्रत्याग का अधिक वार होना अश्मरी का साधारण लक्षण नही है। किन्तु वह गवीनी द्वारा अश्मरी के नीचे को जाने के समय अथवा सक्रमण होने पर प्रगट होता है।

रक्तमेह (haematurıa) शूल के आक्रमण के समय हो सकता है। नियमत मूत्र गदला मा होता है और उसमे लाल रक्त कोशिकाये होती है। बहुधा परिश्रम या झटका लगने से वह प्रारम्भ होता है।

परीक्षा करने से वृक्क कोण पर स्पर्शासहता प्रतीत होती है, सामने उदर

पर नही होती । प्राय उदर के पार्श्व की पेशियो मे कठोरता या दृढता (rigidity) आ जाती है, किन्तु समोदरिका (rectus abdominis) मे नही होती । विवर्धित और जलअपवृक्कता न होने पर वृक्क परिस्पर्श्य नही होता ।

अन्वेषण—आक्रमणो के अन्तर काल मे मूत्रपथ का पूर्ण अन्वेषण करना उचित है । मूत्र मे परीक्षा पर लाल रक्तकोशिकाये या पूय कोशिकाये मिल सकती है ।

एक्स-रे-चित्रण

साधारण एक्स-रे-चित्र मे कैल्सियम कार्बोनेट कैल्सियम, फास्फेट अथवा कैल्सियम आक्जेलेट की अश्मरिया दिखाई देगी, शुद्ध यूरिक अम्ल की अश्मरी की छाया नही बनेगी, किन्तु उस पर कैल्सियम का स्तर चढ जाने से वह दीखेगी । वृक्काश्मरी की छाया दूसरे कटिकशेरुक के सम्मुख स्थित होती है । वृक्काश्मरी की छाया को पित्ताश्मरी की छाया (दक्षिण ओर) तथा कैल्सीकृत यक्ष्मा पर्व (tubercular node), विरोहित यक्ष्माग्रस्त वृक्क, कैल्सीकृत पर्शुक उपास्थि और मलाश्मरी (faecolith) से पहिचानना आवश्यक है ।

गोणिकाचित्र मे वृक्काश्मरी का निश्चय हो जाता है ।

चिकित्सा

वृक्कशूल के लिये 1/4 ग्रेन (15-20 मि० ग्रा०) मार्फीन और 1/100 ग्रेन (0 6 मि० ग्रा०) एट्रोपीन या 100 मिलीग्राम पैथीडीन हाइड्रोक्लोराइड दिया जाय । कभी-कभी वेदना इतनी तीव्र होती है कि मार्फीन आदि से उसका शमन नही होता । ऐसे रोगियो मे 10 प्रतिशत कैल्सियम ग्लूकोनेट विलयन के 10 मिली लिटर अन्तर्शिरा मार्ग से अथवा डिप्रोपेनेक्स (अग्न्याशय सत्व) के 3-4 मि० लि० अन्तर्पेशी मार्ग से देने से गवीनी के पेशीस्तर का आकर्ष दूर होता है और रोगी को बहुत विश्राम मिलता है । रोगी के वेदनामुक्त होने तक, मूत्रपरीक्षा और श्वेत-रक्तकोशिकागणना के अतिरिक्त, अन्य अन्वेषणो को स्थगित रखना उचित है । सक्रमण होने पर सवर्धन परीक्षा के पश्चात् उपयुक्त प्रतिजीवी तथा रासायनिक औषधि का उपयोग करना चाहिये ।

शल्य चिकित्सा

अधिकतर एक्स-रे-चित्र मे दृश्य वृक्काश्मरियो का अपहरण आवश्यक है । लघु आलवाल या वृक्कवस्तु मे स्थित 1 से० मी० व्यास से कम की लक्षणहीन

अश्मरी इसका अपवाद है। यदि वह गोणिका मे स्वतन्त्र हो तो उसको निकाल देना ही उत्तम है, नही तो उससे जल-अपवृक्कता हो जायगी · दोनो वृक्को के ग्रस्त होने पर जिसका कार्य अधिक सतोषजनक हो उसपर शस्त्रकर्म किया जाय। जहा एक वृक्क पूयापवृक्क बन गया हो और रोगी विपाक्त हो वहा यह नियम लागू नही होता। कौन-सा शस्त्रकर्म किया जाय यह अश्मरी की स्थिति और उनकी सख्या तथा वृक्क की कार्यक्षमता पर निर्भर करता है। निम्न मे से कोई एक शस्त्रकर्म किया जा सकता है।

(1) गोणिका-अश्मरी-निष्कासन (pyelolithotomy)—गोणिका मे अश्मरी होने पर, (2) वृक्काश्मरी-निष्कासन (nephro-lithotomy) आलवाल मे लघु अश्मरियो के लिये, (3) गोणिका-वृक्काश्मरी-निष्कासन (pyelonephro lithotomy) आलवाल और गोणिका मे कई अश्मरियो के होने पर, (4) आशिक वृक्कोछेदन (partial nephrectomy) बहु अश्मरियो युक्त वृक्क का, जिसका निम्न ध्रुव नष्ट हो चुका है (आशिक जलापवृक्कता) (5) वृक्क के कार्यहीन हो चुकने पर उसका वृक्कोच्छेदन, यदि दूसरा वृक्क प्रसामान्य है (6) अश्मरी अमूत्रता (calculus anuria) मे वृक्कोच्छेदन जीवन रक्षक हो सकता है।

गवीनी की अश्मरी

प्राय सभी गवीनी की अश्मरिया वृक्क मे बनती है और पुर सरण (peristalsis) तथा गुरुत्व (gravity) द्वारा गवीनी मे होती हुई नीचे को जाती है। अधिकतर वे आक्जेलेट की बनी होती है और एक ही अश्मरी होती है। धीरे-धीरे वह लम्बूतरी हो जाती है। उतरते समय वह जहा गवीनी सकुचित हो गई है, अर्थात् गोणिका-गवीनी सगम है या जहा सामान्य श्रोणिफलक-वाहिकाये उसको पार करती है, अथवा गवीनी-मूत्राशय-सगम के पास तथा अन्तर्मूत्राशय भाग मे, अटक सकती है। अश्मरी के अन्तर्घट्टन (impaction) से अथवा आशिक अवरोध उत्पन्न होने से जलापवृक्कता हो सकती है।

लक्षण तथा चिह्न

गवीनी द्वारा अश्मरी के नीचे की ओर गति करने से गवीनी शूल (ureteric colic) उत्पन्न होता है जो अत्यन्त दारुण व्यथा होती है और कटि से वक्षण प्रदेश को चली आती है। उसके साथ जी मिचलाना, वमन, उदर का आध्मान और कोष्ठबद्धता आदि जठरान्त्र लक्षण भी होते है। आक्रान्त ओर

उदर के पार्श्व मे कुछ पेशी कठोरता भी हो जाती है। गवीनी के निम्न तृतीयाश की अश्मरी से उत्पन्न व्यथा नीचे पहुच कर पुरुप मे वृपण मे और स्त्रियो मे वृहद भगोष्ठ मे, प्रतीत होती है। अन्तर्मूत्राशय भाग की अश्मरीजन्य वेदना शिश्नाग्र पर मालूम होती है और स्त्री-पुरुप दोनो मे मूत्र-त्याग की आवृत्ति वढाती है। गवीनी शूल के आक्रमणो के वीच मे वृक्क कोण मे मन्द वेदना प्रतीत होती रहती है जिसका कारण गोणिका का विस्तार होता है। कभी-कभी, साधारणतया अल्प, रक्तमेह भी होता है।

अन्वेषण

मूत्र-परीक्षा से मूत्र मे लाल रक्त कोशिकाये उपस्थित पाई जा सकती है। सक्रमण होने पर पूय कोशिकायें मिलेगी। मूत्रपथ के साधारण एक्स-रे चित्र मे गवीनी की रेखा मे एक एक्स-रे अपार्य लम्बूतरी छाया दिखाई देगी। उत्सर्जन एक्स-रे चित्र गवीनी की अवकाशिका मे एक्स-रे अपार्य छाया दिखाकर या जल-गवीनी (hydroureter) का प्रमाण देकर निदान का समर्थन करेगा।

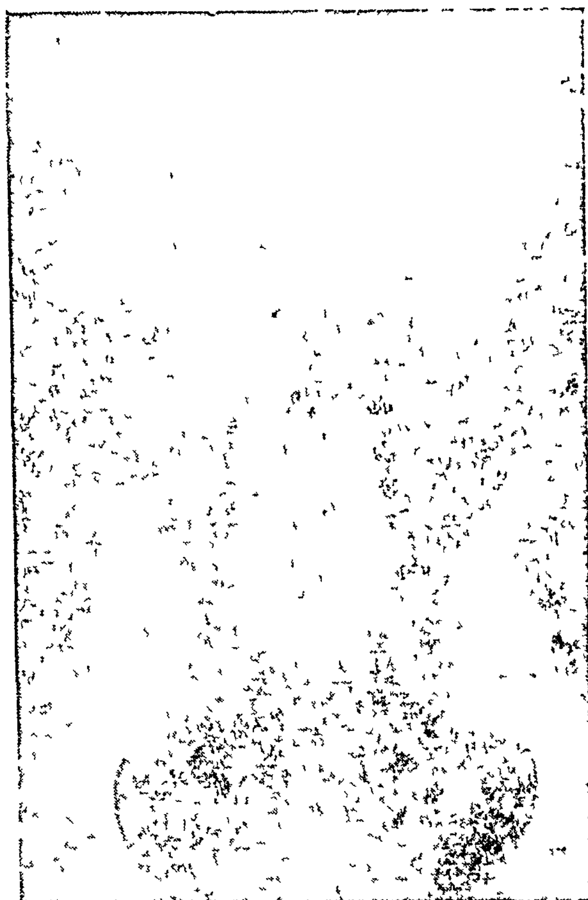
सिस्टोस्कोप गवीनी द्वार मे अश्मरी को अन्तर्घटित दिखा सकता है अथवा उससे अन्तर्मूत्राशय भित्ति मे उपस्थित अश्मरी (intramural calculus) मे अधोश्लेष्मिक ज्वालाकार (submucous flameshaped) रक्तस्राव और गवीनी द्वार के चारो ओर शोफ दीखेगे।

गवीनी मे केथिटर प्रवेश करना अनावश्यक है किन्तु सन्देह होने पर किया जा सकता है। केथिटर का शिरा अश्मरी पर पहुचकर रुक जायगा।

चिकित्सा

लघु अश्मरियो के लिए, जो शूल के पुन -पुन आक्रमण के लिए उत्तर-दायी होती है, रोगी को, तरल प्रचुर मात्रा मे पिलाने तथा आक्षेपहर (antispasmodics) औषधियो के प्रयोग द्वारा सरक्षी चिकित्सा की जाती हैं। ऐसी अश्मरियो के निकल जाने की सभावना रहती है।

समय-समय पर साधारण एक्स-रे चित्रो द्वारा अश्मरी का अवरोहन मालूम किया जाता हे। अन्तर्शिरीय मूत्रपथ चित्रण से वृक्क की कार्यक्षमता का महीने मे एक वार पता लगाना आवश्यक है। उसमे जल गवीनी और जलाप-वृक्कता का भी पता लगता रहता है। यदि अवरोहण मे अश्मरी अतर्घटित हो जाय और सक्रमण या जलगवीनी और जलापवृक्कता होने की आशका हो तो सरक्षी चिकित्सा वन्द कर देनी चाहिये।



चित्र 83—एक उत्सर्जन गोणिकाचित्र जिसमे गवीनी के निम्नभाग मे अश्मरी की उपस्थिति से उत्पन्न जलगवीनी (hydroureter) और जलवृक्कता (hydronephrosis) दीख रही है।

गवीनी के निम्न तृतीयाश से अश्मरी केथिटर प्रवेश करके और द्रव पैरेफिन, ग्लिसरिन, पापावरीन या प्रोकेन विलयन प्रविष्ट करने से, निकाली जा सकती है। अन्तर्मूत्राशय गवीनी मे अन्तर्घटित अश्मरी को डायथर्मी छुरिका द्वारा गवीनी कुहरछेदन (ureteric meatotomy) करके निकाला जा सकता है।

मरक्षी चिकित्सा और यत्र प्रयोग के असफल होने पर गवीनी-अश्मरी-निष्कासन (ureterolithotomy) किया जाता है।

अश्मरी अमूत्रता (calculous anuria)

अश्मरियो से पूर्ण अमूत्रता हो सकती है, केवल एक ही कार्यक्रम वृक्क की

गवीनी मे अश्मरी के अन्तर्घटित होने से, एक ओर की गवीनी मे अन्तर्घटन से दूसरी ओर के वृक्क का प्रतिवर्ती सदमन (reflex inhibition) होने पर, अथवा दोनो गवीनियो के एक ही समय अन्तर्घटन से यह दशा उत्पन्न हो सकती है।

गवीनी शूल के पश्चात् 3-12 दिन तक अल्पमूत्रता (oliguria) शनैः शनैः बढकर पूर्ण अश्मरी अमूत्रता हो जाती है। उसके प्रारभ होने से पूर्व रोगी स्वस्थ प्रतीत करता है।

मूत्रोत्सर्जन के पूर्णतया बन्द होने पर रक्त-यूरिया शीघ्रता से बढती है और यूरियारक्तता (uraemia) प्रकट हो जाती है। साधारणतया दोनो ओर के अश्मरी रोग का लम्बा इतिवृत्त मिलता है।

निदान

मूत्राशय रिक्त होता है जिससे तीव्र अवधारण (retention) की सभावना मिट जाती है। उदर परिस्पर्शन से अतिम अवरोध की ओर कटिपार्श्व की पेशिया कठोर मिलती है और वृक्क कोण स्पर्शासह होता है। साधारण एक्स-रे चित्र मे अश्मरी दीख सकती है। किन्तु प्राय गैसपूरित आत्र की छाया उसको अस्पष्ट कर देती है।

चिकित्सा

अतिम शूल आक्रमण की ओर की गवीनी मे केथिटर प्रवेश किया जाता है। यदि केथिटर अश्मरी पर से निकल जाता है तो उसको ऊरु पर प्लास्टर से चिपका कर उसी स्थिति मे छोड दिया जाता है। दोनो ओर के अवरोध मे दूसरी गवीनी मे भी केथिटर प्रवेश किया जाता हे। केथिटर प्रवेश न होने पर गोणिका छिद्रीकरण (pyelostomy) करना उचित हे। वृक्क छिद्रीकरण (nephrostomy) मे रक्तस्राव बहुत होता है और समय भी अधिक लगता है।

वृक्क के अर्बुद (Tumours of Kidney)

वर्गीकरण

वृक्क के अर्वुद दो प्रकार के होते है एक सार ऊतक (parenchyma) के और दूसरे गोणिका (pelvis) के।

अर्वुद का रूप	वृक्क का सारऊतक	वृक्क गोणिका
सुदम	ग्रन्थ्यर्वुद (adenoma)	वाहिकार्वुद (angıoma) अंकुरार्वुद (papılloma)
दुर्दम	एडिनोकार्सिनोमा (हाइपरनेफ्रोमा या ग्राविज अर्वुद), ऐम्ब्रियोमा (नेफ्रोब्लास्टोमा या विल्म अर्वुद	अंकुरीय कार्सिनोमा, ऐपीडर्माइड कार्सिनोमा

क्रियात्मक दृष्टि से वृक्क के अर्वुदो को दुर्दम समझना चाहिये और उसी प्रकार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये। सुदम अर्वुद असाधारण होते हैं और उनमे भी दुर्दम हो जाने की प्रवृत्ति होती है।

एडिनोकार्सिनोमा (हाइपरनेफ्रोमा या ग्राविज अर्वुद)

एडिनोकार्सिनोमा वृक्क मे सबसे अधिक होने वाला अर्बुद है। वह वृक्क की सूक्ष्मनलिकाओ की उपकला से निकलता है, न कि वृक्क मे उपस्थित अधिवृक्क नीडो (adrenal rests) से, जैसा ग्राविज का मत था। अधिवृक्क नीड पृथुस्नायु, यकृत और पर्युदर्यापश्च ऊतक मे भी पाये जाते हैं, किन्तु उनमे हाइपरनेफ्रोमा कभी नही होता। इसके अतिरिक्त अधिवृक्क प्रातस्था की कोशिकाओ के अर्बुदो से लिंग (sex) परिवर्तन होते है जो इस रोग मे कभी नही होते। अधिवृक्क नीड वृक्क के प्रातस्था मे होते है, जबकि हाइपरनेफ्रोमा अतस्था मे उत्पन्न होता है।

विकृत रचना—साधारणतया अर्बुद वृक्क के ऊर्ध्व ध्रुव से निकलता है, किन्तु निम्नध्रुव से भी निकल सकता है। वह गोल सम्पुटित पिंड होता है जिससे वृक्क का आकार प्रभावित नही होता। अर्बुद को काटने पर उसमे कई प्रकार की आकृति दीखती है, स्वर्णपीत (golden yellow) क्षेत्र, लाल क्षेत्र, रक्तस्राव के कारण, तथा कई आकार की पुटिया (cysts), कुछ पुटियो मे स्वच्छ तरल और कुछ मे रक्त भरा होता है। प्रथम अवस्था मे अर्बुद सम्पुटित होता है। किन्तु आगे चलकर सम्पुट फट जाता है, अर्बुद गोणिका को आक्रात करता है।

सूक्ष्मदर्शी परीक्षा—से आकृति मे भिन्नता पाई जाती है। अधिकतर मे

अधिवृक्क ग्रथि के बाह्यतम कोशिका स्तर की कोशिकाओ के समान कोशिकाओ के विस्तृत स्तर पाये जाते है। ये कोशिकाये साधारणतया स्वच्छ कोशिका प्ररूप होती है और उनकी नलिकाकार या अकुराकार रचना होती है, अथवा वे चादरो के समान विन्यस्त होती हैं जिनसे उनके ग्रथिक उद्भव का आभास भी नही होता।

अर्बुद का विस्तार—बहुधा अर्बुद आलवालो की वस्तु मे धीरे-धीरे फैलता है और जब वह गोणिका को आक्रात करता है तब रक्तमेह होता है। इस अर्बुद का एक प्रमुख लक्षण उसका वृक्क शिरा के द्वारा फैलना है जो कभी-कभी कोशिकाओ के ठोस स्तभ से भर जाती है। यह स्तभ वृक्क शिरा मे होता हुआ अधो-महाशिरा और दक्षिण हृदय मे पहुच सकता है। अतएव फुप्फुस और अस्थियो मे उसका अत्यधिक स्थलातरण होना आश्चर्य नही है। वक्ष मे वेदना, फुप्फुस से रक्तस्राव (haemoptysis) अथवा विकृतिजन्य अस्थिभग (pathological fracture) रोग का प्रथम लक्षण हो सकता है। अस्थि स्थलातरण साधारणतया पृष्ठवश, पर्शुकाओ, उरोस्थि, करोटि और दीर्घ अस्थियो के प्रातो मे मिलते है। कभी-कभी एक ही दूरस्थ स्थलातरण होता है जिसके अपहरण से रोगी का जीवन कई वर्ष बढ सकता है। समीप के कटि लसीका पर्वों का विवर्धन रोग के बढने पर पाया जाता है जब रोग समीप के अगो को भी ग्रस्त कर लेता है।

लक्षण और चिह्न

यह रोग 40 वर्ष से अधिक की वय पर स्त्री-पुरुष दोनो को होता है। इसके तीन मुख्य लक्षण रक्तमेह, उभार या वृद्धि, और वेदना है।

रक्तमेह (haematuria)—यह मुख्य लक्षण है। अधिकतर रोगियो मे यह शीघ्र ही प्रारभ हो जाता है, किन्तु लगभग तृतीयाश रोगियो मे देर से प्रकट होता है। रक्त मूत्र मे मिला रहता है, किन्तु कृमिवत् निर्मोको (casts) के रूप मे भी निकल सकता है।

उभार या वृद्धि (swelling or growth)—अधिकतर रोगियो मे परिस्पर्श्य वृद्धि उपस्थित होती है। अर्बुद गोल, चिकना होता है और श्वास के समय गति करता है। वृक्क प्रतिलोढनीय (ballottable) होता है।

वेदना—सदा नही होती और होने पर वह वृक्क सम्पुट के खिचाव के कारण हो सकती है। कभी-कभी रक्त के थक्के का गवीनी द्वारा उतरना वेदना का कारण होता है।

ज्वर—असाधारण नही है। अज्ञात हेतुक ज्वर के कारणो मे हाइपरनेफ्रोमा को न भूलना चाहिये। सक्रमण के विना ही यह ज्वर होता है और वृक्कोच्छेदन पर जाता रहता है।

निदान—प्रारभ ही मे निदान आवश्यक है। सब लक्षणो के प्रकट होने तक प्राय स्थलातरण हो चुकता है। वेदनाहीन रक्तमेह या निर्बंध (persistent) उच्चताप रहने पर गोणिका-चित्रण और सिस्टोस्कोप द्वारा पूर्ण अन्वेषण आवश्यक है। उत्सर्जन गोणिका-चित्र मे भरण अपूर्णता (filling defect) दिखाई देगी। यदि उत्सर्जन एक्से-रे-चित्रण से रोग स्पष्ट न हो तो प्रतिगामी गोणिका-चित्रण करना चाहिये। जलापवृक्कता और वहुपुटी (polycystic) वृक्क से सापेक्ष निदान आवश्यक है।

चिकित्सा

पर्युदर्यापार (transperitoneal) वृक्कोच्छेदन, परिवृक्क वसा सहित, वाछित चिकित्सा है।

फुप्फुस या अस्थि मे हुए एकल द्वितीयक निक्षेपो का अपहरण सभव है। इस कर्म के पश्चात् कुछ रोगमुक्तियो का उल्लेख मिलता है।

भ्रूणार्वुद, ऐम्ब्रियोमा (नेफ्रोब्लास्टोमा या विल्म का अर्वुद)

यह प्रारभिक वाल्यकाल का सवसे साधारण अर्वुद है और दो या तीन वर्ष की वय मे मिलता है, 8 या 10 वर्ष के पश्चात् वह अति असाधारण है। वह एम्ब्रियोमा या वृक्क का मिश्रित अवुद इस कारण कहलाता है कि वह वृक्क ब्लेस्टीमा (blastema) से निकलता है और उसमे जटिल ऊतक होते है जिनमे रेखित पेशी भी एक है। अर्वुद बहुत दुर्दम होता है।

विकृति रचना—अर्वुद के आकार मे भिन्नता पाई जाती है जो कभी-कभी वहुत छोटा होता है, किन्तु बहुधा वहुत बडे आकार का होता है। वह प्राय एक ओर होता है, किन्तु दोनो ओर भी हो सकता है। अर्वुद गोलाकार अथवा अडाकार हो सकता है। वह वृक्क वस्तु से प्रारभ होता है और वहुत समय तक सम्पुट के भीतर ही बढता रहता है। उसको काटने पर उसका एकसम पृष्ठ धूसरमथ लाल रग का दीखता है।

सूक्ष्मदर्शी आकृति—अर्वुद मे कई प्रकार की कोशिकाये होती है। सबसे अधिक उपकला कोशिकाये सूक्ष्मनलिकाओ के समान होती है जिनके साथ सरल और रेखित पेशी, उपास्थि, अस्थि तथा बसा भी होती है।



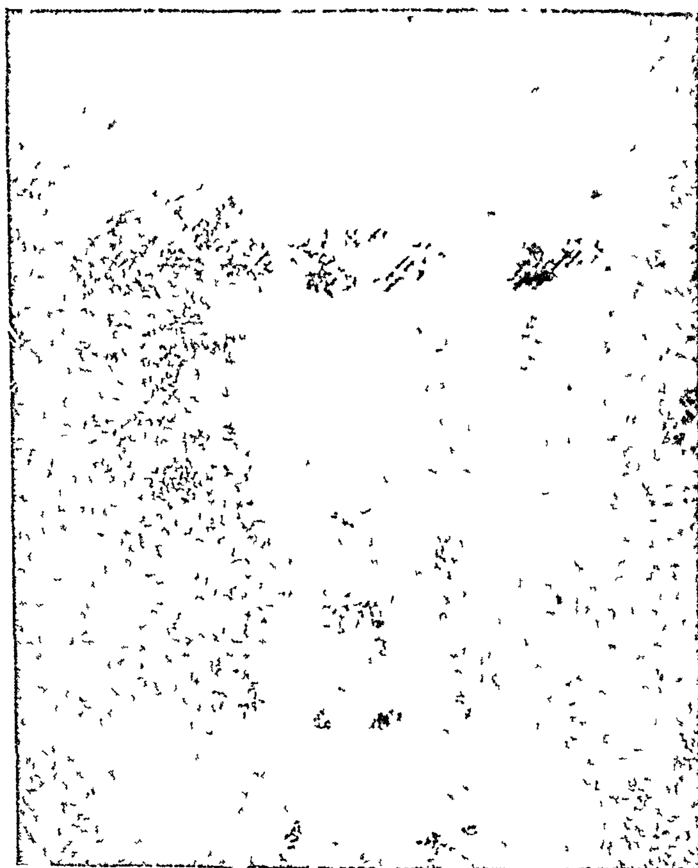
चित्र 84—एक वृक्क का अनुदैर्ध्य परिच्छेद जिसमे हाइपरनेफ्रोमा की विविध-रगी रचना दीख रही है।

फैलना—अर्बुद पास के पर्वो मे, लसीका-वाहिनियो तथा फुप्फुस मे रक्त प्रवाह द्वारा फैलता है।

लक्षण और चिह्न

अर्बुद बहुत समय तक लक्षणहीन रह सकता है। प्रथम लक्षण एक पिंड की उपस्थिति हो सकती है, जिसका आकार बहुत बढ सकता है। मूत्र सबधी लक्षण विरल होते है और रक्तमेह असाधारण है। वास्तव मे रक्तमेह अत्यत अशुभसूचक है, रक्तमेह प्रारभ होने पर बच्चे की जीवन-रक्षा अतिदुस्तर है। अर्बुद के व्यपजनन और रक्तस्राव के कारण ज्वर होता है। सबसे प्रमुख लक्षण गोल या अडाकार पिंड की उपस्थिति है जो ऊपर पर्शुक परिसर के पीछे से नीचे श्रोणि-फलक शिखा तक और उदर मे पार्श्व से मध्यधारा के दूसरी ओर तक विस्तृत हो सकता है। अर्बुद स्थिर प्रतीत होता है।

ऐक्स-रे परीक्षा—उदर के साधारण एक्स-रे चित्र मे एक विस्तृत एक्स-रे अपार्य पिंड दीखता है जिससे आत्र दूसरी ओर को विस्थापित हो जाता है। अतर्शिरीय गोणिका-चित्रण से सपीडित (compressed) और लम्बी सी गोणिका



चित्र 85—ग्रा हाइपरनेफ्रोमा के रोगी का उत्सर्जन गोणिकाचित्र जिन मे ऊर्ध्व ध्रुव के रोगग्रस्त होने ऊर्ध्व आलवाल की विरूपता दीख रही है।



चित्र 86—वृक्क के विल्म (Wilm) अर्बुद का परिच्छेद जिसका कटा पृष्ठ प्रायः समतल है।

दीखती है।

प्राग्ज्ञान

विल्म अर्बुद अत्यत घातक होता है और अभी तक प्राग्ज्ञान अत्यत अशुभ था। किन्तु प्रारभिक अवस्था मे अर्बुद के पूर्ण उच्छेदन से वोस्टन के वाल चिकित्सालय के ग्रोस महोदय द्वारा किये गये शस्त्रकर्मों के परिणाम सतोषजनक हुए हैं।

चिकित्सा—जितना शीघ्र हो सके अर्बुद का उच्छेदन करना चाहिये। अर्बुद का परिस्पर्शन अधिक व्यक्तियो द्वारा या अधिक बार न करना चाहिये, उससे रोग का विस्तार होता है। शस्त्रकर्म-पूर्व एक्स-रे किरणन से, जिसका कुछ लोग परामर्श देते है, कोई लाभ नही होता। शस्त्रकर्म से पूर्व रक्ताधान द्वारा अरक्तता को सुधारने के पश्चात् पारउदरछेदन द्वारा वृक्क को स्पष्ट करके उसके वृन्त का बधन (ligature) करने के पश्चात् वृक्क को उसके स्थान से हटाकर उसका उच्छेदन कर दिया जाता है। शस्त्रकर्मपश्च एक्स-रे किरणन बहुत लाभदायक होता है। किरणन की प्रथम मात्रा, शस्त्रकर्म के प्रथम दिन ही, सवेदनाहरण के पश्चात् चेतना होने के पूर्व ही दी जाती है। वोस्टन के वाल चिकित्सालय मे सब वय के रोगियो मे इस विधि से उत्साहवर्धक परिणाम हुए हैं, विशेषकर 1 वर्ष से कम वय वाले रोगियो मे। अधिकतर मृत्यु प्रथम वर्ष मे रोग की पुनरावृत्ति से होती हे। अतएव एक वर्ष तक बच्चे के जीवित रहने मे प्राग्ज्ञान उत्तम हो जाता हे।

वृक्कगोणिका के अर्बुद—ये अर्बुद उपकलाजन्य माने जाते है।

वृक्कगोणिका का अंकुरार्बुद (papilloma)

इसकी रचना मूत्राशय के अकुरार्बुद के समान होती है। उसकी गवीनी मे फैलने की प्रवृत्ति होती है और उसमे दुर्दम परिवर्तन हो सकते है।

लक्षणो मे रक्तमेह दीर्घकाल तक हो सकता है जिसमे रक्तातत्र (clot of blood) गवीनी शूल का कारण बन सकता है। उत्सर्जन गोणिका चित्रण मे भरण अपूर्णता दीख सकती हे। इसकी चिकित्सा वृक्क गवीनी उच्छेदन है।

उपत्वचाभ कार्सीनोमा (Epidermoid carcinoma) या गोणिका का एपीथीलियोमा असाधारण है और उसका प्राग्ज्ञान अत्यत अशुभ है। गोणिका की भित्ति चूर्ण्य वृद्धि से ढक जाती है।

मूत्राशय (Urinary Bladder)

रचना तथा क्रिया

शरीर-रचना

मूत्राशय मासपेशीकृत अग है जो मूत्र के सग्रहस्थान का काम करता है। उसकी धारिता 400-500 मिलि० है। रिक्त होने पर वह त्रिकोणाकार होता है और श्रोणि के भीतर रहता है। उसमे ऊर्ध्वपृष्ठ या बुघ्न, आधार, जो पुरुष मे मलाशय से शुक्राशय और पुरस्थ द्वारा पृथक् रहता है, और एक अग्र-पार्श्व पृष्ठ होता है, जो जघनास्थि के पश्चपृष्ठ से सबंधित रहता है। ऊर्ध्व पृष्ठ उत्तल हे और पर्युदर्या से ढका हुआ और क्षुद्रान्त्र के कुडलो अथवा श्रोणिगत बृहदात्र के एक पाश के सपर्क मे रहता है। मूत्राशय के भरने पर उसका शिखर ऊचा उठता हे और उसके अधो और पार्श्वपृष्ठ जो पर्युदर्या से ढके नही रहते उदरमध्य रेखा (linea alba) से सम्पर्क करते है जो अव पर्युदर्या रहित हो जाती है। इससे पर्युदर्या को क्षत किये विना जघन सधानक (symphysis pubic) से ऊपर विवर्धित मूत्राशय का वेधन (puncture) किया जा सकता है।

मूत्राशय मे तीन सरल पेशीस्तर होते हे जिनमे से मध्यस्तर सबसे प्रमुख हे और मूत्राशय ग्रीवा पर सदरणी (sphincter) वन जाता है। अनुदैर्घ्य ततु मुख्यतया निस्सारक पेशी वनाते है। उसकी श्लैष्मिक कला कोमल, गुलावी और वल्लरित है। त्रिभुज (trigone) मे कला स्निग्ध और अतिसवेदनशील हे। त्रिभुज समपार्श्वी त्रिकोण के समान है जिसके आधार के दोनो कोनो पर गवीनियो के द्वार है और शिखर पर मूत्र-मार्ग का अन्त द्वार खुलता है। दोनो गवीनी द्वारो के वीच अन्तरागवीनी बध (interureteric band) होता है।

अधोजठर (hypogastric artery) धमनी की ऊर्ध्व, मध्य और अधो आशयिक शाखाये मूत्राशय मे रक्त ले जाती है। शिराये मूत्राशय की भित्ति मे प्रारभ होती है और मूत्राशय पुरस्थ जालिका (puboprostatic plexus) मे अन्त होती है जहा से रक्त अधोजठर शिराओ मे लौटता है।

तन्त्रिका सप्राप्ति

मूत्राशय मे अनुकम्पी और परानुकम्पी दोनो प्रकार की तन्त्रिकाये आती है। अनुकपी तन्त्रिका ततु दूसरी, तीसरी और चौथी कटि गडिकाओ से पुरोत्रिक (presacral nerves) तन्त्रिकाओ और अधोजठर जालिका (hypogastric-

plexus) मे होकर आते है। वे मूत्राशय को भरने वाली तन्त्रिकाये है। परानुकपी तन्त्रिकाये दूसरे, तीसरे और चौथे त्रिक खडाशो से अधोजठर जालिका द्वारा आती है। वे मूत्राशय की प्रेरक या उसको खाली करने वाली तन्त्रिकाये है और निस्सारक पेशी मे जाती है। गुह्य तन्त्रिका कला-मूत्रमार्ग (membranous urethra) की सवरणिका मे ततु भेजती है।

लसीका वाहिनियां— मूत्राशय से बाह्य और आभ्यतर श्रोणिफलक पर्वो मे लसीका ले जाती है।

क्रिया—मूत्राशय का काम मूत्रसग्रह करना है। मूत्राशय के भर जाने की सवेदना अभिवाही (afferent) तन्त्रिकाओ द्वारा मेरुरज्जु मे और वहा से मस्तिष्क मे पहुचती है। मूत्र-त्याग की सुगमता न होने पर वहा से मूत्राशय के शिथिलन (relaxation) के लिए सवेग (impulses) जाते है। मूत्राशय को रिक्त करने के लिए मस्तिष्क के प्रातस्था से सवेग मेरुरज्जु मे होते हुए परानुकम्पी तन्त्रिकाओ मे पहुचते है और निस्सारक पेशी का सकोच तथा सवरणी का शिथिलन होने से मूत्र-त्याग होता है। मूत्र-त्याग एक प्रतिवर्त क्रिया है जिसका नियत्रण मेरुरज्जु के दूसरे, तीसरे और चौथे त्रिक खडाश मे स्थित केन्द्र द्वारा होता है। नवजात शिशु मे यह नियत्रण अनुपस्थित होता है, किन्तु तीसरे वर्ष तक विकसित हो जाता है। मेरुरज्जु के आघात मे यह नियत्रण नष्ट हो जाता है किन्तु मेरुरज्जु की स्तब्धता के अन्त होने पर त्रिक केन्द्रो द्वारा नियत्रण पुन स्थापित हो जाता है।

मूत्र-त्याग की असगतिया

मस्तिष्क और मेरुरज्जु के कई रोगो मे मूत्राशय का कार्य अस्तव्यस्त हो जाता है। विशेषतया टैबीज डार्सेलिस और प्रसृत काठिन्य (disseminated sclerosis) मे तथा मेरुरज्जु के आघातो और अयुक्त मेरुदड (spina bifida) मे ऐसा होता है। टेबीज डार्सेलिस और प्रसृत काठिन्य मे मूत्र-त्याग बारबार होता है, किन्तु त्याग प्रारभ करना कठिन होता है और समाप्त करने के पश्चात् भी बूंद-बूंद निकला करता है। मेरुरज्जु के आघातो से मूत्राशय को रिक्त करने वाली तन्त्रिकाओ का घात (paralysis) होता है जिससे मूत्राशय का निष्क्रिय विस्फार (passive dilatation) होता है और आप्लावी मूत्रअसयति (overflow incontinence) हो जाती है। अयुक्त मेरुदड से भी कभी-कभी यही होता है।

मूत्र असयति (incontinence of urine)

यह कई कारणो से हो सकती है। वृद्धो मे प्रमस्तिष्क व्यपजनक विक्षतियो (cerebral degenerative lesions) जैसे प्रमस्तिष्क घनास्रता, मूत्राशय की सवरणी का आघात जैसा पुरस्थोच्छेदन के पश्चात हो जाता है, स्त्रियो मे गर्भाशय भ्र श (prolapse of uterus) तथा सिस्टोसील (cystocele), मेरुदड तथा प्रसृत काठिन्य की विलम्बित दशाओ मे।

अवधारण (retention) के पश्चात् मूत्राशय के विस्फार से भी आप्लावी मूत्र असयति होती है।

निशा मूत्रअसयति (nocturnal incontinence)

बच्चे बहुधा रात्रि को बिस्तर भिगो देते है। मूत्र-त्याग के नियत्रण की शक्ति बच्चे मे 3 वर्ष के पश्चात् आती है। इस दशा का कारण प्राय बच्चे को अभ्यास कराने का दोष होता है, अन्य कारण ये है · फाइमोसिस, शिश्न-मुडशोथ (balanitis), मूत्रमार्ग द्वार मे व्रण, फास्फेटमेह, मूत्राशयाश्मरी, जीवाणुमेह (bacilluria), वेरुमोन्टेनम शोथ (verumontanitis), त्रिभुज शोथ (trigonitis) अथवा सूत्रकृमि सक्रमण (threadworm infection)। गवीनी की सहज अस्थानता, विशेषकर अतिरिक्त गवीनी, मूत्र के सतत लीक करने का कारण हो सकता है।

चिकित्सा—कारण को ढूँढकर दूर करना चाहिये। बच्चे को उपयुक्त अभ्यास (training) कराना आवश्यक है। सध्या को 4 बजे के पश्चात् तरल न्यून मात्रा मे दिये जाय और रात्रि को बच्चे को कई बार उठाकर पेशाब कराया जाय। इफेड्रीन (ephedrine) कभी-कभी लाभ करती है।

मूत्रावधारण (retention of urine)

इसका अमूत्रता से भेद करना आवश्यक है जिसमे मूत्राशय मे मूत्र आता ही नही। अवधारण मे मूत्राशय का विस्फार हो जाता है और अधिजघन (suprapubic) प्रदेश मे उसका तुम्बिकाकार उत्सेध प्रतीत किया जा सकता है जो परिताडन पर अननुनादी (dull) होता है।

हेतुकी—मूत्रावधारण कई कारणो से हो सकता है, जैसे—

तीव्र मूत्रमार्ग शोथ (urethritis), मूत्रमार्ग मे अश्मरी, पुरस्थ विवर्धन, मूत्रमार्ग निकुचन (stricture), शस्त्रकर्म पश्च आकर्ष, बडे ग्रन्थि अर्बुद और स्त्रियो मे पश्चनत (retroverted) सगर्भ गर्भाशय (retroverted pregnant

uterus), अगघात (paralysis), जैसे तन्त्रिका रोगो और मेरुरज्जु आघातो मे ।

चिकित्सा—कारणानुसार होती है । शस्त्रकर्मपश्च अवस्था मे मार्फीन द्वारा वेदना के गमन और रोगी को बैठकर मूत्र-त्याग करने को उत्साहित करने से सफलता मिल सकती है । 1 मिलि0 कार्बेकोल का अन्तर्पेशी इजेक्शन सहायक हो सकता है । किन्तु उसके प्रयोग मे, विशेपकर, यदि आत्र सम्मिलन न किया गया हे तो, सावधानी आवश्यक है । उपर्युक्त उपायो के असफल होने पर अपूतिता (asepsis) का आयोजन करके केथिटर द्वारा मूत्र निकालना होगा ।

पुरस्थ विवर्धन के साथ मूत्रावधारण मे 'बाईकूड' (bicoude) केथिटर से सफलता मिल सकती है । रबट केथिटर बहुधा, असफल होता है । ऐसी दशा मे मूत्राशय का धीरे-धीरे विसम्पीडन (decompression) करना चाहिये जिससे अमूत्रता का उपद्रव न होने पाये । इसमे असफल होने पर अधिजघन मूत्राशयछेदन (suprapubic cystostomy) करना आवश्यक है ।

मूत्रमार्ग निकुचन (stricture) होने पर सूत्राकार बूजी (filiform bougie) प्रविष्ट करना आवश्यक हो सकता है, जिसके पश्चात् उचित विस्फारण किया जाता है । बूजीयो के असफल होने पर स्थानिक सज्ञाहरन करके, अधिजघन प्रदेश मे कटिवेधन (lumbar puncture needle) सूचिका द्वारा, मूत्राशय का वेधन किया जा सकता है । मूत्राशय के फिर से भरने के पूर्व निकुचन पर का शोथ शात हो जायगा और मूत्र निकलने लगेगा । तीव्र मूत्रमार्ग शोथजन्य अवधारण मे सल्फोनेमाइडो के प्रयोग के साथ इस विधि से लाभ होता है । मूत्रमार्ग की अश्मरी एलीगेटर सन्देश द्वारा निकाल देनी चाहिये । स्त्रियो मे बडे आकार के श्रोणि अर्बुदो से उत्पन्न अवधारण मे अर्बुद के अपहरण के पूर्व केथिटर द्वारा मूत्राशय को रिक्त करना आवश्यक है ।

मूत्राशय और मूत्रमार्ग की जन्मजात असगतिया
(Congenital anomalies of Bladder and Urethra)

मूत्राशय अस्थानता अथवा मूत्राशय की बहिर्मुखता (ectopia vesicae, or extroversion of the bladder)

इस दशा मे मूत्राशय की अग्रभित्ति और नाभि से नीचे की उदर की अग्रभित्ति अनुपस्थित होती है और उस अपूर्णता द्वारा मूत्राशय की पश्चभित्ति सामने निकली रहती है जिस पर गवीनियो के द्वारो से मूत्र की बूदें निकलती

रहती है। साथ ही बच्चे को अधिमूत्रमार्गता (epispadias) होती है, और जघन सधानिक की अनुपस्थिति, वृषण ग्रन्थि का अपूर्ण अवरोहण और वृषण-कोश तथा शिश्न का अपूर्ण विकास होता है। मूत्र के लीक करने से यह दशा बड़ी कष्टदायक होती है।

चिकित्सा अवग्रह वृहदान्त्र (sigmoid colon)—मे गवीनियो का प्रतिरोपण (transplantation) है। चार या पाच वर्ष के पश्चात् यह शस्त्रकर्म किया जा सकता है। इसके पश्चात मूत्राशय की श्लेष्मिक उपकला का उच्छेदन और अभ्युदर हर्निया (ventral hernia) तथा अधिमूत्रमार्गता का सुधार किया जाता है। गवीनियो के प्रतिरोपण के दीर्घकालिक परिणाम सतोषजनक नही होते, आरोही मूत्र-पथ सक्रमण हो जाता है, यद्यपि रोगी का जीवन अधिक सुखी होता है।

निर्बन्ध यूरेकस (persistent urachus)—एलेन्टाइस के अन्तर्रुद्ध न होने का फल होता है और मूत्राशय से नाभि तक एक नाल व्रण (fistulous tract) पथ के रूप मे उपस्थित हो सकता है, अथवा अपूर्णतया रुद्ध होने पर अधोनाभि प्रदेश एक पुटी के समान दीखता है।

चिकित्सा—व्रण नाल पथ या पुटी का उच्छेदन है। मूत्रमार्ग मे यदि कोई अवरोध हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

पश्च मूत्रमार्ग कपाटिकाओ (posterior urethral valves) के कारण अवरोध

यह मूत्रोत्सर्जन तन्त्र की अत्यन्त गभीर अपसामान्यता है, इन क्षुद्र कपाटिकाओ के कारण इतना अधिक अवरोध हो सकता है कि जलापवृक्कता तथा वृक्क क्षति हो सकती है और उस पर सक्रमण हो सकता है। अभी तक यह दशा अचिकित्स्य थी, किन्तु अन्तर्दर्शक (endoscope) यत्र की सहायता से कपाटिकोच्छेदन की नवीन आविष्कृत विधियो के सफल परिणाम हुए है।

एपिस्पैडियास, अधिमूत्रमार्गता (epispadias)

यह शिश्न की असाधारण अपसामान्यता है जिसमे उसके अभिपृष्ठ तल पर एक विदर मे खुला हुआ मूत्रमार्ग होता है। इस विरूपता को सुधारने के लिए, प्लास्टिक विधियो का उपयोग किया गया है। डूप्ले (Duplay) शस्त्रकर्म मे किनारो का उच्छेदन करके उनको एक केथिटर पर मिलाकर सी दिया जाता है। इससे मूत्रमार्ग का रूप सतोषजनक हो जाता है और असयति की चिकित्सा

भी सभव है। इसके साथ विवृत मूत्राशय भी होने पर गवीनियो का श्रोणि बृहदान्त्र मे प्रतिरोपण किया जाता है।

हाइपोस्पैडियास-अधोमूत्रमार्गता (hypospadias)

एपिस्पैडियास की अपेक्षा हाइपोस्पैडियास अधिक पाया जाता है और जनन पुटको (genital folds) की अपूर्ण सयुक्ति (fusion) का फल होता है। मूत्र मार्ग का शिश्न बध (fraenum penis) के क्षेत्र मे (glandular hypospadias), शिश्नवृषण सगम के क्षेत्र मे, शिश्न के अभ्युदर पृष्ठ पर (penile hypospadias) अथवा मूलाधार (perineal hypospadias) मे अन्त हो सकता है। कुछ कौर्डी (chordae) अवश्य होती है जिससे शिश्न नीचे की ओर झुका रहता है।

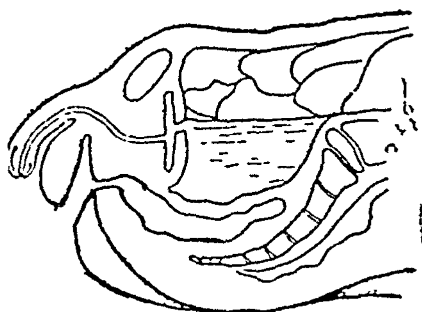
शस्त्रकर्म मे इस दशा को बालक के स्कूल जाने के पूर्व सुधारना होता है। प्रथम अवस्था मे सकुचित तान्तव ऊतक का उच्छेदन करके शिश्न को सीधा किया जाता है। इससे मूत्रमार्ग का अस्थानिक द्वार ओर भी पीछे हट जाता है। दो अवस्था वाले (stage), अर्थात्, दो बार मे किये जाने वाले शस्त्रकर्म मे नया मूत्रमार्ग बनाया जाता है। मूत्र के निकलने के लिए, जब तक शस्त्रकर्म के क्षत का पूर्ण विरोहन न हो जाये, मूलाधार मूत्रमार्गछेदन (perineal urethrostomy) या अधिजघन मूत्राशय छेदन (supra pubic cystostomy) द्वारा नया मार्ग बना दिया जाता है। नया मूत्रमार्ग त्वचा की एक छोटी धज्जी या पत्ती (strip) से बनाया जाता है (Denis Browne's method) अथवा रबड नली के चारो ओर विभक्त त्वचा आरोप (McIndoe's method) द्वारा या शिश्न के अधोपृष्ठ की त्वचा ही से (Ombredanne's method) मूत्रमार्ग का निर्माण किया जाता है। ऊतको के शोफ और टाको को काटने से नालव्रण (fistula) बन सकता है। किन्तु कुशल विशेषज्ञो के हाथो मे परिणाम उत्तम होते है।

मूत्राशय का विदरण
(Rupture of Bladder)

श्रोणि के अस्थिभग या मूत्राशय के प्रसरित होने पर उदर के निम्न भाग पर चोट लगने से मूत्राशय मे विदरण हो सकता है। विदार पर्युदर्याबाह्य (extraperitoneal) हो अथवा अन्त पर्युदर्या (intraperitoneal) हो। इन दोनो मे, सडको पर दुर्घटनाओ के अधिक होने से, पर्युदर्याबाह्य प्रकार का विदार अधिक पाया जाता है।

पर्युदर्याबाह्य विदरण (extraperitoneal rupture)

दस प्रतिशत श्रोणि अस्थि भग मे मूत्राशय का विदरण होता है । जघनास्थि के टुकडे से विद्ध होने या भग हुए अस्थि-भागो द्वारा मूत्राशय की अग्र स्नायु के खिचने से मूत्राशय की अग्र भित्ति का निम्न भाग फट जाता है। स्तब्धता दूर होने पर रोगी को मूत्र-त्याग की इच्छा होती है, किन्तु केवल कुछ बूदे रक्त निकलता है। पुरोमूत्राशय (prevesical) अवकाश मे परिस्रवण (extravasation) के कारण मूत्र पर्युदर्या और अग्र उदरभित्ति के पश्चपृष्ठ पर आच्छादित, अनुप्रस्थिका प्रावरणी के बीच मे एकत्र हो जाता है , जघन प्रदेश मे एक स्पर्शासह उभार बन जाता है । मूत्र अत्यन्त विषैला (toxic) होने के कारण सयोजी ऊनक का परिगलन (necrosis) होने लगता है जिससे विस्तृत श्रोणि सयोजी ऊतकशोथ (pelvic cellulitis) हो जाता है और पूयभवन और गादी विषाक्तता भी होती है ।



चित्र 87—चित्र मे मूत्राशय का अन्त पर्युदर्या विदार (intraperitoneal rupture) दिखाया गया है ।

चिकित्सा—अधिजघन मूत्राशयछेदन करके पुरोमूत्राशय अवकाश का निर्हरण किया जाता है । विदरण को सीना आवश्यक नहीं है ।

अन्त पर्युदर्या विदरण (intraperitoneal rupture)

मूत्र का प्रवाहपर्युदर्या गुहा मे होता है जिससे विषैले मूत्र के कारण धीमी किन्तु गभीर प्रकार का पर्युदर्याशोथ हो जाता है ।

आघात के पश्चात् ही निम्न उदर मे तीव्र वेदना और गभीर स्तब्धता हो जाती है । मूत्र-त्याग की इच्छा होती है किन्तु मूत्र नही निकलता । परीक्षा पर निम्न उदरभित्ति कडी पाई जाती है । वर्तनी अननुनाद (shifting dullness) कभी-कभी उपस्थित मिलता है। गुद-अगुली-परीक्षा से मलाशय मूत्राशय कोष्ठिका (rectovesical pouch) मे उभार प्रतीत होता है । कैथिटर द्वारा कुछ तरल को प्रविष्ट करके उसकी मात्रा की पुन प्राप्ति की निदान के समर्थन

की विधि का उपयोग अनुचित है। वह विश्वसनीय नही हे और उससे सक्रमण का विस्तार हो सकता है ।

चिकित्सा

उदरछेदन के पश्चात् मूत्राशय के विदरण को सीना आवश्यक है जो प्राय· मूत्राशय के बुघ्न के पश्च भाग मे स्थित होता है। एक स्वधारक (self-retaining) केथिटर से अधिजघन प्रदेश द्वारा मूत्राशय का निर्हरण किया जाता है।

मूत्राशय के आगन्तुक शल्य

केथिटर के टुकडे अथवा पेंसिल के सीसे के बाहर से प्रविष्ट किये हुए टुकडे अश्मरी का केन्द्र बन सकते है ।

मूत्राशय शोथ (Cystitis)

प्रवर्तक कारण (predisposing causes)

मूत्राशय मे पूयजनक जीवाणु सक्रमण के प्रतिरोध की बहुत शक्ति होती है ; इस कारण मूत्राशय शोथ निम्न मे से किसी प्रवर्तक कारण पर निर्भर करता है ।

(1) मूत्रमार्ग के निकुचन, पुरस्थ विवर्धन, मूत्राशय की विपुटी (diverticulum) और अतानिक (atonic bladder) मूत्राशय, के कारण मूत्र की स्थितिकता या रुके रहना । स्त्रियो मे सगर्भता, गर्भाशय भ्र श और सिस्टोसील के कारण मूत्र रुका रह सकता है । ऐसी दशा मे केथिटर डालने ही से संक्रमण सहज मे पहुच जाता है ।

(2) आगन्तुक शल्य, जैसे मूत्राशय अश्मर या बाहर से प्रविष्ट वस्तुये ।

(3) मूत्राशय के अर्बुद, विशेपकर यदि उनमे परिगलन और व्रणोत्पत्ति हो जाय ।

(4) ऊर्ध्व मूत्रपथ से पुन -पुन सक्रमण, जैसे गोणिका-वृक्क शोथ, अथवा, निम्न मूत्रपथ से जैसे भगयोनि शोथ (vulvovaginitis) अथवा मूत्राशय बृहदान्त्र नालव्रण (vesico-colic fistula) द्वारा ।

तीव्र मूत्राशय शोथ (Acute Cystitis)

मूत्रमार्ग के ह्रस्व होने के कारण यह रोग स्त्रियो मे अधिक होता है । साधारणतया उसका कारण एस्कीरिया कोलाई होती हे । स्ट्रेप्टोकोकस फिकेलिस,

स्टेफिलोकाकस औरियस, प्रोटियस वल्गेरिस, स्यूडोमोनास पायोसीनिया, ये सब रोग उत्पन्न कर सकते हैं ।

लक्षण और चिह्न

रोग शीत, केथिटर प्रवेश अथवा मद्यपान के पश्चात् अकस्मात् प्रारम्भ होता है । वेदना सहित वेग से मूत्र-त्याग की आवृत्ति बढ जाती है । वेदना मूत्रमार्ग द्वार पर प्रतीत होती है और मूलाधार मे फैल जाती है , वह मूत्र-त्याग के अन्त पर अधिक होती है । मूत्र गदला और पूयकोशिकायुक्त होता है । मूत्राशय की श्लेष्मला (mucosa) मे व्रण बन जाने पर मूत्र मे रक्त भी आ सकता है । प्राय ज्वर होता है जो सतत अथवा सविराम हो सकता है ।

चिकित्सा

मूत्र सवर्धन और सुग्राहिता जाच के लिए भेजना चाहिये । इस समय मे चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये । रोगी को तरल, विशेषकर यवजल (वार्ले-वाटर), प्रचुर मात्रा मे दिया जाय । मूत्र के आम्लिक होने पर क्षारीय मिश्रण (alkaline mixture) दिया जाता है । ऐस्कीरिया कोलाई के लिए सल्फा-डियाजीन, स्ट्रिप्टोमायसिन अथवा फ्यूराडैन्टिन दिये जाते हैं । मूत्र-परीक्षा के फलानुसार इनको बदला जा सकता है । मूत्रावरोध या अन्य प्रवर्तक कारण दूर करने चाहिये ।

चिरकारी मूत्राशय शोथ (chronic cystitis)—तीव्र वृक्क शोथ के पश्चात् हो सकता है अथवा वह स्वत शनै -शनै. प्रारम्भ होता है । प्राय वह पूय-जनक जीवाणुजन्य होता है और अवरोध अश्मरी अर्बुद, विपुटी अथवा शल्य से सबधित रहता है ।

लक्षण और चिह्न

लक्षण तीव्र मूत्राशय शोथ के, किन्तु मृदु होते हैं। मूत्रत्याग की अधिकता, मूलाधार और मूत्रमार्ग मे वेदना, स्वास्थ्य का ह्रास, ये विशेष लक्षण है । मूत्र क्षारीय होता है (स्ट्रिप्टो, स्टैफिलोकोकाई, प्रोटियस वल्गेरिस के कारण) । ऐस्कीरिया कोलाई संक्रमण होने पर मूत्र की आम्लिक प्रतिक्रिया होती है । अधिकतर, पूय की प्रचुर मात्रा उपस्थित रहती है ।

सापेक्ष निदान (differential diagnosis)

(1) मधुमेह की बहुमूत्रता मे वेदना नही होती ।

(2) पुरस्थ विवर्धन मे मूत्रत्याग रात्रि मे अधिक वार होता है। किन्तु उपद्रव न होने पर मूत्र स्वच्छ और पूय कोशिकाओ से मुक्त होता है।

(3) गोणिका शोथ मे कटिपार्श्व मे वेदना होती है और मूत्र मे पूय कोशिकाये तथा जीवाणु होते है।

(4) मूत्राशय अमरी मे वेदना और बारम्बार मूत्रत्याग होता हे, किंतु उपद्रव-रहित रोगियो मे मूत्र निर्जीवाणुक होता है।

चिकित्सा

रोग के कारण का अपहरण अत्यन्त आवश्यक है, चिकित्सा तीव्र मूत्राशय शोथ ही के ममान की जाती है। निर्वन्ध रोग हो जाने पर अधिजघन निर्हरण आवश्यक हो सकता है।

मूत्राशय का यक्ष्मा
(Tuberculosis of the Bladder)

मूत्राशय मे यक्ष्मा मदा मूत्र-पथ मे अन्यत्र स्थित रोग का द्वितीयक होता है। अधिकतर सक्रमण वृक्क से और कभी-कभी पुरुप मे जननेन्द्रियो, पुरस्थ या शुक्राशयो से आता है। रोग प्राय गवीनी द्वार के चारो ओर प्रारम्भ होता है जहा प्रथम शोथ का चिह्न दिखाई देता है और फिर वहा यक्ष्मिकाये (tubercles) वन जाती हे जिनके फूट जाने से व्रण बनते है। क्षताक जन्य गवीनी द्वार सकुचन से गौल्फीछिद्र (golshole) गवीनीद्वार बनता है। दीर्घ-कालिक रोगियो मे मूत्राशय भित्ति की तन्तुमयता (fibrosis) होने से मूत्राशय की धारिता (capacity) बहुत घट जाती है (40-50 मिलि०)।

लक्षण और चिह्न

मूत्राशय के क्षोभ (irritation) से मूत्रत्याग आवृत्ति बहुत बढ जाती है, आगे चलकर, वेदना तथा विन्दुमूत्र कृच्छ (strangury) भी होने लगते है। शरीर भारक्षय, नक्तम्वेद (night sweats) और ज्वर—ये लक्षण यक्ष्माजन्य जैवविपरक्तता के है जो प्रकट हो जाते है। मूत्र मे क्षय जीवाणु न मिलने पर भी गिनीपिग परीक्षण धनात्मक होते है।

चिकित्सा

प्राथमिक यक्ष्मा क्षत का अपहरण, जैसे क्षयग्रस्त वृक्क के लिए वृक्कोच्छेदन, आवश्यक है। प्रतिक्षय रासायनी चिकित्सा लाभदायक है। मूत्राशय

धारिता के विशेष ह्रास पर शेषान्त्र-मूत्राशय प्लास्टी (ıleocysto plasty) करनी पडती है।

मूत्राशय की अश्मरी (Vesıcal Calculus)

भारत, पाकिस्तान, ईराक, चीन और दक्षिणी अमरीका मे अश्मरी रोग बहुत होता है। अश्मरी दो प्रकार की होती है, प्राथमिक, जो निर्जीवाणुक (sterıle) मूत्र मे बनती है, और द्वितीयक अश्मरिया जो सक्रमित मूत्राशय मे बनती है और प्राय किसी प्रकार के मूत्रावरोध, विवर्धित पुरस्थ या मूत्र-मार्ग निकुचन से सबधित होती है। प्रथम प्रकार की अश्मरी बच्चो मे और दूसरे प्रकार की वयस्को मे होती है। जो मूत्राशय मे किसी शल्य (foreıgn body) के चारो ओर बन सकती है।

मूत्राशय अश्मरियो का सघटन वृक्क अश्मरियो के समान होता है, अधिकतर यूरेट और फास्फेट अश्मरिया होती है। मूत्राशय की अश्मरियों के बीच मे एक केन्द्रक होता है और उस पर फास्फेट और यूरेटो के स्तर चढे होते है। कैल्सियम आक्जेलेट अश्मरिया अत्यन्त कठोर होती है और उनके असम पृष्ठ पर काटे से (अश्मरीकृत) उठे रहते है। मूत्राशय अश्मरिया गोल या अडाकार होती है। किन्तु कई अश्मरिया होने पर उन पर पृष्ठक (faceted) बन जाते है।

लक्षण और चिह्न

स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे रोग अधिक होता है। मुख्य लक्षण ये है :

वेदना

कैल्सियम आक्जेलेट अश्मरी का यह मुख्य लक्षण है। मूत्रत्याग के अन्त मे वेदना अधिक होती है और शिश्न के सिरे पर तथा मूलाधार मे प्रतीत होती है, इस कारण बच्चा शिश्न मुडच्छद को सदा खीचा करता है। लेट जाने पर अश्मरी के सवेदनाशील त्रिभुज पर से हट जाने के कारण वेदना कम हो जाती है। द्वितीयक अश्मरिया वेदनाहीन हो सकती है, क्योकि अश्मरी पुरस्थपश्च थैली मे पडी रह सकती है, जिसमे अवशिष्ट (resıdual) मूत्र भरा रहता है।

अवृत्ति—मूत्रत्याग की आवृत्ति का बढ जाना प्रारभिक लक्षण है। दिन मे मूत्रत्याग बहुत बार होता है।

रक्तमेह—मूत्रत्याग के पश्चात् लाल रक्त की कुछ बूंदे निकलती है जो त्रिभुज की श्लेष्मिक कला के अश्मरी द्वारा छिल जाने से आती है। कई बार मूत्र-प्रवाह अकस्मात् रुक जाता है जिसका कारण आभ्यन्तर मूत्रमार्ग का

अश्मरी द्वारा अवरोध होता है।

निदान

रोगी के इतिवृत्त तथा सिस्टोस्कोपी और ऐक्स-रे चित्रण से निदान सहज है। बच्चो मे और पतले-दुबले रोगियो मे उभयहस्त परिस्पर्शन से गुद-अगुलि-परीक्षा द्वारा अश्मरी प्रतीत की जा सकती है।

चिकित्सा

अश्मरी भजन (litholapaxy)—विपरीत दशा उपस्थित न होने पर अश्मरी भजन सर्वोत्तम चिकित्सा विधि है। मूत्रमार्ग निकुचन, मूत्राशय शोथ, मूत्राशय विपुटी, अनिसकुचित मूत्राशय, वृक्क कार्यक्षमता का ह्रास, बहुत बडी या नरम अश्मरी—ये सब इस शस्त्रकर्म के निषेधक है।

लिथोट्राइट (अश्मरी भजक) नामक यन्त्र से अश्मरी को सूक्ष्म कणो मे तोडकर बिगेलो के ईवेकुएटर (Bigelow's evacuator) द्वारा उनको निकाल लिया जाता है।

अधिजघन मूत्राशयछेदन (suprapubic lithotomy)—जहा अश्मरी भजन नही हो सकता वहा इस विधि से अश्मरी निकाली जाती है। सर्जन के अश्मरी भजन मे दक्ष न होने पर उसको इसी विधि का उपयोग करना चाहिये। मूत्र सक्रमण न होने पर मूत्राशय को सीकर बन्द किया जा सकता है; एक मूत्राशय निर्हरण नलिका रख दी जाय। तथा चार-पाच दिन तक स्वत धारक (self-retaining) केथिटर का प्रयोग किया जाय। मूत्र सक्रमण होने पर अधिजघन नली द्वारा मूत्राशय का निर्हरण आवश्यक है।

मूत्राशय के अर्बुद

मूत्राशय मे सुदम और दुर्दम दोनो प्रकार के अर्वुद हो सकते है

सुदम अर्बुद		दुर्दम अर्बुद	
		कार्सिनोमा	सारकोमा
अकुरार्वुद (साधारण)		दुर्दम अकुरार्वुद	
ग्रन्थ्यर्वुद	अ	पर्विल प्रकार	
एन्डोमेट्रियोमा	सा	व्रणकारी या	
		अन्त सचारी	अत्यन्त
तन्तु अर्वुद	धार	एडिनोकार्सिनोमा	असाधारण
वाहिकार्वुद	ण	शल्की कार्सिनोमा	अर्वुद

सामान्य अकुरार्बुद (simple papilloma)

यह वृन्तयुक्त अर्वुद मूत्राशय के आधार मे गवीनी द्वार के पास मिलता है। कभी-कभी वह गवीनी द्वार को अवरुद्ध कर देता है जिससे उस ओर जलाप-वृक्कता हो जाती है। अर्वुद मे अकुरो की बहुत सख्या होती है। सूक्ष्म रचना-नुसार प्रत्येक अकुर के बीच मे एक सयोजी ऊतक की डोर होती है जिसके पृष्ठ पर परिवर्तनी उपकला छाई रहती है। ये अर्वुद यद्यपि सुदम होते है, तथापि वे मूत्राशय के अन्य भागो मे तथा अधिकतर सम्पर्क के स्थान मे आरोपित हो सकते है। उनमे दुर्दम हो जाने की प्रवृत्ति भी होती है। सुदम और दुर्दम के बीच की सीमा के अर्बुद चौड़े आधार वाले और वृन्तहीन होते हैं।



चित्र ४४—मूत्राशय की एक अवृन्त वृद्धि

लक्षण और चिन्ह

सबसे साधारण लक्षण वेदना रहित रक्तमेह है जो प्रचुर और आवर्ती होता है। अकस्मात् प्रारम्भ होकर वह कुछ ही दिनो मे स्वत रुक सकता हे। मूत्राशय मे रक्त का आतच (clot) होने पर या अर्वुद के एक अश के उससे पृथक् होकर आभ्यन्तर मूत्रमार्ग द्वार को अवरुद्ध करने पर वेदना होती हे और स्ट्रेंगुरी हो सकती है, सुदम अकुरार्वुद मे प्राय मूत्राशय शोथ नही होता।

निदान

सिस्टोस्कोप द्वारा गवीनीद्वार के पास से निकला हुआ वृन्तयुक्त अकुरो वाला अर्बुद दिखाई देगा। उसका दुर्दम अर्बुद से भेद करना आवश्यक है। दुर्दम अर्बुद का आधार वृन्तहीन (sessile) होता है और अकुर छोटे-छोटे होते है तथा रक्तवाहिकाये उसके पृष्ठ पर फैली रहती हे। दुर्दम अर्बुद के आधार के चारो ओर की कला सकुलित (congested) होती है। स्वत प्रवर्तित (spontaneous) मूत्राशय शोथ होता है, सुदम अर्बुद मे मूत्राशय शोथ नही होता। कई अर्बुद होने पर उनके सुदम होने की मम्भावना हे। मूत्राशय चित्रण मे और भी प्रमाण मिल सकता है। दुर्दम अर्बुद होने पर मूत्राशय की अनियमित रूपरेखा दिखाई देती है। किन्तु सुदम मे रूपरेखा नियमित रहती है।

चिकित्सा

सामान्य खुला हुआ शस्त्रकर्म नही किया जाता। ऐन्डोस्कोपी (अन्तर्दर्शी) विद्युदातचन (electrocoagulation) अथवा फल्गुरेशन (विद्युत दहन) सर्वोत्तम चिकित्सा है। यह क्रिया कई वार की जा सकती हे, जब तक सारा अर्बुद दग्ध न हो जाय। समस्त अर्बुद के नष्ट होने तक रोगी को अस्पताल मे रखना आवश्यक है। रोगी को कई वर्ष तक निरीक्षण मे रखा जाय जिससे किसी पर्वक (nodule) के फिर से उत्पन्न होने पर उसका तुरन्त ही दहन दिया जा सके।

आशिक मूत्राशयोच्छेदन (partial cystectomy)—केवल एक ही अकुरार्बुद होने पर यदि वह दृढ हो या श्लेष्मिक कला पर स्थिर हो अथवा उसके दुर्दम होने का सन्देह हो यह शस्त्रकर्म किया जाता है। सक्रमणयुक्त विरल रोगियो मे अधिजघन उच्छेदन तथा शस्त्रकर्मोत्तर मूत्राशयछेदन (post-operative cystostomy) करना आवश्यक होता है।

मूत्राशय का कार्सिनोमा

यह पुरुषो मे स्त्रियो की अपेक्षा तीन गुना अधिक होता है और प्राय 50 और 60 वर्ष के वीच मे प्रकट होता है।

हेतुकी

मूत्राशय मे लूकोप्लेकिया (श्वेतशल्कता) कार्सिनोमा का पूर्वरूप हो सकता है। फ्रैंकफर्ट के रेन (Rehn) ने 1895 मे प्रथम बार इस वात की ओर ध्यान

दिलाया था कि एनिलीन रगो को वनाने वाली फैक्टरियो मे काम करने वालो मे मूत्राशय का कार्सिनोमा अधिक होता है ।

विकृति

दुर्दम अकुरार्बुद—यह एक वृन्तहीन अर्बुद होता है, उसके अकुर, ह्रस्व अतिरक्तमय होते है और सारे पृष्ठ पर व्रण वने होते है, उसके आधार की श्लेष्मिक कला शोफयुक्त होती है और प्राय मूत्राशय शोथ होता है। अर्बुद का मूत्राशयभित्ति के भीतर तक प्रसारित होना दुर्दमता का लक्षण है। ड्यूक ने अर्बुद को पाच कोटियो मे वाटा है · कोटि 1, जब अर्बुद केवल श्लेष्मिक कला तक परिमित हो, कोटि 2, जब वह मूत्राशय भित्ति के उपस्थित पृष्ठ को पार कर चुका हो, कोटि 3, जब उसने समस्त भित्ति को आक्रान्त कर दिया हो, कोटि 4, जब मूत्राशय भित्ति से बाहर के ऊतक ग्रस्त हो गये हो और कोटि 5, जब सुदूर अगो मे स्थलान्तरण हो चुका हो। 3 और 4 कोटियो मे प्रादेशिक लसीका पर्व, जैसे वाह्य और अन्तर श्रोणिफलक पर्व, भी ग्रस्त हो जाते हैं।

कार्सिनोमा व्रण (carcinomatous ulcer)—यह मूत्राशय के आधार और त्रिभुज मे होता है और कार्सिनोमा का सवसे अधिक दुर्दम रूप है।

स्थलान्तरण—वाह्य और आभ्यन्तर श्रोणिफलक पर्वों मे और फिर कटि पर्वो मे अर्बुद फैल जाता है। दूरस्थ अगो—फुप्फुस, यकृत, अस्थिया और मस्तिष्क मे अर्बुद का रक्त-प्रवाह द्वारा प्रसार होता है।

लक्षण और चिन्ह

सविरामी रक्तमेह प्रथम और सवसे अधिक होने वाला लक्षण है। रक्त मूत्र मे अपूर्णतया मिला रहता है और मूत्रत्याग के अन्त पर अधिक होता है। आवृत्ति बहुत बढ जाती है। वेदना प्रारम्भ मे नही होती, किन्तु अर्बुद के मूत्राशय भित्ति मे प्रविष्ट होने पर अत्यन्त कष्टदायक होती है। वेदना की मूलाधार, गुदा, जघन प्रदेश और ऊरुओ मे भी अन्यत्रानुभूति होती है।

मूत्रत्यागकष्ट (dysuria), विन्दु मूत्रकृच्छ (स्ट्रेंगुरी), तथा मूत्रावधारण (retention of urine) हो सकते है। पूयमेह हो सकता है। मूत्राशय शोथ इस दशा मे बहुत होता है जिससे रोगी का कष्ट और बढ जाता है। आरोही गोणिका वृक्क शोथ, शरीर भार क्षय और समापन्न (impending) यूरिया रक्तता (uraemia) के कारण जठरान्त्र विकार भी हो जाते हैं।

अन्वेषण

मूत्र-परीक्षा से लाल रक्त कोशिकायें और पूय कोशिकाये दीख जाती है। सिस्टोस्कोपी से अर्बुद की स्थिति और आकार और मूत्राशय चित्रण से भरण न्यूनता और मूत्राशय की अनियमित रूपरेखा दीखती है। सज्ञाहरण के पश्चात् उभयहस्त परीक्षा अर्बुद के विस्तार के ज्ञान की उत्तम विधि है। मूत्राशय के मोटा हो जाने और अर्बुद के अचलायमान होने मे अर्बुद का भित्ति मे प्रसार समझना चाहिये।

जीवोति परीक्षा (Biopsy) धनात्मक होने पर उपयोगी है, किन्तु नकारात्मक रिपोर्ट व्यर्थ होती है।

चिकित्सा

सम्पूर्ण मूत्राशयोच्छेदन सर्वोत्तम चिकित्सा है। मूत्र निर्हरण के लिए गवीनियो को वृहदात्र या शेपात्र के एक कुडल मे प्रत्यारोपित किया जाता है, जिसका एक सिरा निर्हरण के लिए शेपात्र-छिद्रीकरण थैले (ileostomy bag) मे निकाल दिया जाता है। इस विधि से मूत्राशय के चलायमान होने तथा लसीकापर्वो मे स्थलातरण न होने पर ही रोगमुक्ति हो सकती है। लघु परिमित अर्बुद के लिए आशिक मूत्राशयोच्छेदन किया जा सकता है जिसमे स्वस्थ भित्ति का कुछ भाग भी निकाल दिया जाता है। अर्बुद का एक्स-रे किरणन बहुत सतोषजनक नही होता है। शस्त्रकर्मातीत अर्बुद मे शामक (palliative) उपचार बहुत असतोषजनक होता है। उच्च वोल्टता (high voltage) किरणन से रक्तमेह रुकता है और अर्बुद का कुछ प्रतीपगमन ((regression) होता है। पुरोत्रिक तत्रिकोच्छेदन (presacral neurectomy) से दुर्दांत वेदना का शमन नही होता। स्ट्रैंगुरी का शमन गवीनी-आत्र सम्मिलन द्वारा हो सकता है।

मूत्राशय की विपुटी (Diverticulum of Bladder)

मूत्राशय की विपुटी उसके पेशीस्तर के किसी दुर्बल स्थान द्वारा श्लेष्मिक कला की हर्निया होती है जिससे एक कलाकृत थैली बाहर को निकल जाती है। सहज विपुटी भी हो सकती है।-कई छोटी-छोटी विपुटी भी चिरकारी अवरोध की दशा मे बन सकती है, जैसे पुरस्थ विवर्धन मे। बिना अवरोध के भी एक बडी विपुटी हो सकती है जो बढकर मूत्राशय के समान आकार की हो जाती है। वे प्राय वयस्क अवस्था मे विलब से उत्पन्न होती है और आकार

मे बढकर विपुटी मूत्राशय के समान हो सकती है ।

लक्षण और चिह्न

कोई भी लक्षण न हो। कभी-कभी मूत्रत्याग के अधिक होने के सविरामी आक्रमण, मूत्रत्याग कष्ट और अवधारण तक हो जाते है। कुछ रोगियो मे मूत्राशयशोथ हो सकता है, कुछ मे विपुटी मे अश्मरी वन जाती है। विपुटी से, मूत्राशय मे छिद्र के सकुचित होने के कारण मूत्र का पूर्ण त्याग नही होता और उसका पेशीस्तर भी दुर्बल होता है । विपुटी मे एकत्र मूत्र अतिपूतित हो सकता है, कुछ रोगियो मे स्वच्छ मूत्र निकलने के पश्चात् गदला मूत्र निकलता है ।

निदान

सिस्टोस्कोपी या सोडियम आयोडाइड विलयन के मूत्राशय मे भरने के पश्चात् मूत्राशय का एक्स-रे चित्र लेने से निदान का निश्चय किया जा सकता है ।

उपद्रव

मूत्राशयशोथ, अश्मरी निर्माण, वृक्क सक्रमण, जलापवृक्कता और कभी-कभी कार्सिनोमा हो सकते है ।

चिकित्सा

चिरकारी अवरोध सबधित विपुटियो की चिकित्सा अवरोध की चिकित्सा के अतिरिक्त और कुछ नही है। विपुटियो के भीतर उपस्थित अश्मरियो को अधिजघन मूत्राशयछेदन करके निकाल देना चाहिये । लक्षणहीन लघु विपुटियो को वैसे ही छोड दिया जाय। वडी विपुटियो का, जिनमे मूत्र भर जाता है, जहा तक सम्भव हो, पर्युदर्याबाह्य उच्छेदन उचित है।

रक्तमेह (Haematuria)

रक्तमेह का अर्थ है मूत्र मे रक्त की उपस्थिति । यदि अधिक रक्त होता है तो साधारण नेत्रो से देखने ही से मालूम हो जाता है। वृक्क के रक्तस्राव मे कृमि के समान रक्त आतच (clot) के टुकडे निकलते है जो गवीनी का रूप ले लेते है। मूत्राशय की भित्ति से निकला रक्त मूत्र मे मिलने से मूत्र लाल दिखाई देता है। पुरस्थ अथवा पश्च या अग्र मूत्रमार्ग से आया हुआ रक्त

चमकता लाल होता है। रक्त की अल्प मात्रा होने पर मूत्र पोर्ट शराब की भाति या धुधला दीखता है। रक्त मे लाल रक्तकोशिकाओ की उपस्थिति द्वारा रक्तमेह का हीमोग्लोबिनेमह तथा रेवन्दचीनी (rhubarb) सनाय या सल्फोनाल के रग से भेद किया जा सकता है।

हेतुकी— रक्त मूत्रपथ के किसी भी भाग के अभिघात, अर्बुद या अश्मरी के कारण आ सकता है।

वृक्क—तीव्र वृक्कशोथ, यक्ष्मा, रोधगलिताश (infarct), अश्मरी आघात, अर्बुद (गोणिका का अकुरार्बुद, हाइपरनेफ्रोमा)।

गवीनी—अश्मरी, अर्बुद (अकुरार्बुद)

मूत्राशय—मूत्राशयशोथ, अश्मरी, अर्बुद (अकुरार्बुद कार्सिनोमा), विपुटी, यक्ष्मा, बिलहार्जिया रोग।

पुरस्थ—विवर्धित पुरस्थ (सुदम, दुर्दम)।

मूत्रमार्ग—अश्मरी, अकुरार्बुद, विदरण।

रक्तस्राव का स्थाननिर्धारण

मूत्रपथ के पूर्ण अन्वेषण के पश्चात् ही रक्तस्राव का स्थान निर्धारित करना सम्भव है। आघात लगने के इतिवृत्त से कारण स्पष्ट हो जाता है। शूल, जो मूत्रपथ मे अश्मरी की उपस्थिति के कारण होता है, रक्तमेह के साथ होता है। वेदनाहीन रक्तमेह वृक्क या मूत्राशय के अर्बुद से उत्पन्न होता है। कभी-कभी इतिवृत्त और लक्षणो से अनुमान किया जा सकता है।

वृक्क—रक्त मूत्र मे पूर्णतया मिला होता है। कृमिवत आतचो के निकलने से वेदना हो सकती है। वृक्क प्रदेश मे पिड हो सकता है तथा वृक्क कोण पर स्पर्शासहता मिल सकती है जो शोथ की द्योतक है।

गवीनी—वृक्क शूल मे वेदना गवीनी की रेखा मे नीचे को जाती प्रतीत होती है, उसका इतिवृत्त भी मिल सकता है।

मूत्राशय—रक्त की मात्रा प्रचुर होती है। रक्तमूत्र मे मिला न हो। अश्मरी मे प्राय मूत्रत्याग के अन्त के समीप रक्त आता है।

पुरस्थ—मूत्रत्याग के अन्त पर बहुत रक्त निकलता है। विवर्धित पुरस्थ का इतिवृत्त मिलता है।

मूत्रमार्ग—रक्त तुरत का होता है। मूत्रमार्ग विदरण के लक्षण होते हैं।

अन्वेषण

पूर्ण मूत्रपथ परीक्षा अनिवार्य हे। प्रथम, सिस्टोस्कोपी द्वारा रक्तस्राव

का स्थान, मूत्राशय, पुरस्थ या गवीनी द्वार, मालूम करना चाहिये। गवीनी केथिटर भी प्रविष्ट किया जाय और उसके द्वारा प्रतिगामी गोणिका एक्स-रे चित्र लिये जाये। पूर्ण मूत्र-परीक्षा और मूत्र-पथ के साधारण एक्स-रे चित्र आवश्यक है।

अज्ञातहेतुक रक्तमेह (essential haematuria)

बिना किसी ज्ञात कारण के वृक्क से होने वाले रक्तस्राव के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। रक्तस्राव अधिक और आवर्ती हो सकता है। प्राय एक छोटा वाहिकार्बुद (angioma) या अकुरार्बुद होता है, जिसका व्यतिरेक (exclusion) आवश्यक है।

14

पुरुष जनन पथ
(Male Genital Tract)

एस एस आनन्द
(S S Anand)

मूत्रमार्ग और शिश्न
(Urethra and Penis)

मूत्रमार्गद्वार संकीर्णता (meatal stenosis)

मूत्रमार्ग का वाह्य द्वार जन्मत सकीर्ण हो सकता है (congenital stenosis)। जिनकी सुन्नत (circumscission) हुई है उनमे सक्रमण के फलस्वरूप मूत्रमार्ग द्वार की उपार्जित सकीर्णता (acquired stenosis) हो जाती है। द्वार पिन की नोक के समान हो सकता है जिससे चिरकारी मूत्रावरोध हो जाता है और अस्त्र प्रवेश असम्भव होता है।

चिकित्सा—कुहरछेदन (meatotomy) है। वेधस पत्र से कुहर को नीचे की ओर को विभक्त किया जाता है, एक महीने तक प्रति सप्ताह एक बार बूजी को प्रयोग करना चाहिये।

मूत्रमार्ग का विदर (Rupture)

मूत्रमार्ग का विदर दो स्थितियो मे होता है, कन्दीय मूत्रमार्ग (bulbous urethra) या कला मूत्रमार्ग (membranous urethra) मे।

कन्दीय मूत्रमार्ग का विदर (rupture of bulbous urethra)

मूलाधार मे आघात लगने से मूत्रमार्ग जघनचाप पर कुचल जाता है।

मूलाधार पर ठोकर लगने, साइकिल पर आगे को फिसल जाने या किसी कठोर वस्तु से विदर हो सकता है।

लक्षण और चिह्न

मूलाधार मे रक्तगुल्म (haematoma) बन जाता है; रोगी कुछ मूत्र-त्याग कर सकता है, किन्तु सवरणी के सकोच के कारण मूत्र नही निकलता और मूत्राशय का विस्तार हो जाता है। रोगी को मूत्रत्याग के प्रयत्न की मनाही होनी चाहिये, उससे मूत्र परिस्रवण (extra vasation of urine) हो सकता है। परिस्रवित मूत्र मूलाधार के अधस्त्वक ऊतक, वृषण कोश, शिश्न तथा अग्र उदर भित्ति मे उपरिस्थ प्रावरणी के गभीर स्तर के नीचे फैल जाता है। वह मूलाधार प्रावरणी के मूत्रजनन (urogenital) डायाफ्राम के पश्च भाग मे जुडे होने के कारण पश्च ओर को नही फैल पाता, और न वह ऊरु मे, स्कार्पा प्रावरणी के ऊरु प्रावरणी से जुडे होने के कारण फैल सकता हे।

कन्दी मूत्रमार्ग का विदरण पूर्ण या अपूर्ण हो सकता है जिसमे केवल श्लेष्मिक कला फटती है, पूर्ण होने पर मूत्राशय मे केथिटर प्रविष्ट नही किया जा सकता, अपूर्ण मे प्रवेश सभव हो सकता है।

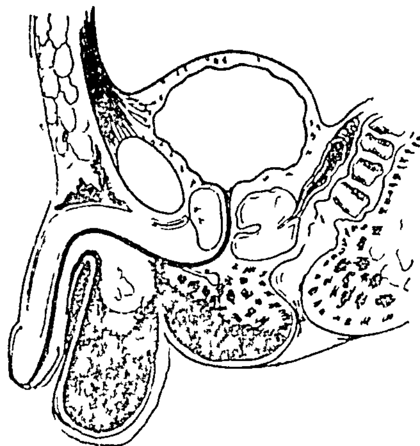
चिकित्सा – विदर के अपूर्ण होने पर अधिजघन मूत्राशयछेदन करके उसके द्वारा स्वधारक (self-retaining) केथिटर को मूत्राशय मे रखा जाता है जिसके द्वारा मूत्राशय से मूत्र निर्हरण होता रहता है। तत्पश्चात् रोगी को लिथोटोमी स्थिति मे लिटाकर मूलाधार मे छेदन करके उसके द्वारा एकत्र हुए रक्त को निकालकर क्षत मे गौज भरके उसको खुला छोड देते हैं।

विदर के पूर्ण होने पर अधिजघन मूत्राशयछेदन और मूलाधार के रक्त-गुल्म पर छेदन के पश्चात् मूत्राशय के छेदन की ओर से मूत्रमार्ग मे गवेषणी को प्रविष्ट करते है जिससे मूत्रमार्ग का विदरण स्पष्ट हो जाता है। तव मूत्र-मार्ग की क्षत या ऊर्ध्व भित्ति का पतली कैटगट से पुनर्निर्माण किया जाता है। किन्तु उसकी अधोभित्ति या फर्श को फिर से बनाने का कोई प्रयत्न नही किया जाता, उसको गौज भर कर छोड देते है।

उत्तर चिकित्सा (after treatment)—रोगी को पैनिसिलिन और स्ट्रिप्टोमाइसिन दिये जाते है और 10-14 दिन पश्चात् मूत्रमार्ग का विस्फारण किया जाता हे।

कलामूत्रमार्ग का विदर (rupture of membranous urethra)

यह मूत्रमार्ग का पुरस्थ के शिखर पर, श्रोण्यन्तर्गत विदर है जो श्रोणि के अस्थिभग का उपद्रव होता है। मूत्र परिमूत्राशय अवकाश मे भर जाता है और जघनपुरस्थ (puboprostatic lig) स्नायु के टूट जाने के कारण पुरस्थ और मूत्राशय पीछे को विस्थापित हो जाते है, जिससे विदीर्ण मूत्रमार्ग के दोनो सिरो के बीच का अन्तर बढ जाता है।



चित्र 89—आरेख मे कन्दीय मूत्रमार्ग (bulbous urethra) के विदार के कारण मूत्र का परिस्राव (extravasation) दिखाया गया है।

लक्षण और चिह्न

स्तब्धता तथा श्रोणि अस्थिभग के लक्षण होते है, मूत्रमार्ग से अल्प रक्त-स्राव हो सकता है। रोगी मूत्रत्याग नही कर पाता। उदरपरिस्पर्शन से अधिजघन प्रदेश मे अनिश्चित स्पर्शासह उभार प्रतीत होता है। मलाशय द्वारा अगुली परीक्षा से पुरस्थ नही प्रतीत होता।

चिकित्सा

अधिजघन छेदन द्वारा मूत्रमार्ग विदर का निश्चय किया जाता है, मूत्राशय को खोलकर मूत्रमार्ग के आभ्यन्तर द्वार से एक गवेषणी विदरण स्थान तक प्रविष्ट की जाती है और दूसरी गवेषणी को नीचे से वहा तक पहुचाया जाता है। दोनो गवेषणियो के मिलने पर ऊपर की गवेषणी को बाहर को खीचते जाते है और नीचे की गवेषणी को प्रविष्ट करते जाते है, जब तक वह मूत्राशय मे नही पहुच जाती। मूत्राशय मे पहुचने पर उस पर एक स्वधारक केथिटर चढा दिया जाता है जो गवेषणी को धीरे-धीरे नीचे को

खीचने पर अग्र मूत्रमार्ग मे आ जाता है । इससे मूत्रमार्ग के दोनो कटे हुए सिरे एक दूसरे के सपर्क मे आ जाते है । मूत्राशय का अधिजघन मार्ग से निर्हरण किया जाता है । स्वधारक केथिटर 10-20 दिन तक पडा रहता है जिसके पश्चात् मूत्रमार्ग का विस्फारण (dilatation) प्रारम्भ किया जाता है जिससे निकोचन न बनने पावे ।

मूत्र का उपरिस्थ परिस्रवण (superficial extravasation)

कन्दीय मूत्रमार्ग के पूर्ण विदरण के 12-24 घटे पश्चात् तक शस्त्रकर्म न होने पर मूत्र का परिस्रवण होने लगता है । उपर्युक्तानुसार, रोगी के मूत्रत्याग का उद्योग करने से शिश्न, वृषणकोश और अग्र उदर भित्ति के अधस्त्वक ऊतक मे परिस्रवण होता है । मूत्र के सक्रमित होने के कारण, उसका निर्हरण न करने से सयोजी ऊतक शोथ (cellulitis) हो जाता है ।

चिकित्सा

अन्त सचरित (infiltrated) ऊतको मे कई छेदन किये जाते है और अधिजघन मूत्राशयछेदन भी किया जाता है । विदरण के स्थान पर मूलाधार का भी निर्हरण आवश्यक है, किन्तु मूत्रमार्ग वैसा ही छोड दिया जाता है । पूतिता के नियन्त्रण के पश्चात् मूत्रमार्ग को अभिपृष्ठ की ओर ठीक करते है ।

मूत्र का गभीर परिस्रवण (deep extravasation)

मूत्राशय के पर्युदर्याबाह्य विदर या कलामूत्रमार्ग के विदर से यह होता है । अधिजघन मूत्राशयछेदन और परिमूत्राशय अवकाश के निर्हरण द्वारा चिकित्सा की जाती है ।

मूत्रमार्ग का निकोचन (Stricture)

जन्मजात सहज निकोचन (congenital stricture)—यह अत्यन्त विरल है । वह पुरस्थ मूत्रमार्ग मे कपाटिकाओ की उपस्थिति के कारण हो सकता है जिसका उल्लेख मूत्रमार्ग की असगतियो के साथ किया गया है ।

अभिघातज निकोचन (traumatic stricture)—यह अधिकतर कन्दीय मूत्रमार्ग मे होता है । निकोचन प्रायः एक होता है ।

गोनोमेह जन्य या शोथज निकोचन (gonococcal, inflammatory)—ये कई होते है और कन्दीय मूत्रमार्ग मे स्थित होते है । कन्द सबसे निचला भाग

होने के कारण वहा पूय एकत्र हो जाती है। शोथज निकोचन वलयाकार, लगाम के समान या उपास्थिसम होते है। वह पूर्ण निकोचन हो सकता है या अपूर्ण हो। पूर्ण निकोचन द्वारा मूत्र नही निकल सकता, अपूर्ण होने पर निकल सकता है।

लक्षण और चिह्न—लक्षण शनै -शनै प्रकट होते है, मूत्रत्याग मे कठिनाई धीरे-धीरे वढती जाती है। मूत्र की धारा धीरे-धीरे पतली होती जाती है, दो धाराये निकल सकती है। रोगी को मूत्रत्याग करने मे बल लगाना पडता है। मूत्रत्याग के पश्चात् बूँदे टपकती रहती है। कुछ रोगियो मे मूलाधार मे मूत्र-मार्ग की रेखा मे कठोरता या दृढीभवन (induration) प्रतीत किया जा सकता है।

निदान—मूत्रत्याग मे कठिनाई और मूत्र की धार के पतले हो जाने का इतिवृत्त निदान मे सहायक है। मूत्रमार्ग एक्स-रे चित्रण से निकोचन के निदान का समर्थन और उसकी लम्बाई मालूम होती है।

चिकित्सा

बूजियो से विस्फारण (dilatation with bougies)—ही मुख्य चिकित्सा है। कूट मार्ग (false passage) न बन जाय, इस आपत्ति को रोकने के लिए मध्यम आकार की बूजियो से प्रारभ करना चाहिये। उनके असफल होने पर पतली बूजी प्रविष्ट की जाती है। मूत्रमार्गदर्शी (urethroscope) द्वारा बहुत पतली बूजी प्रविष्ट की जा सकती है। निकोचन का विस्फारण धीरे-धीरे करना चाहिये, वल न लगाना चाहिये, उद्देश्य निकोचन को चौडाने का है न कि उसको विभक्त करने या फाड देने का। प्रथम सप्ताह मे एक बार विस्फारण किया जाय, फिर अन्तर वढा दिया जाय। प्रत्येक विस्फारण के पश्चात् केथिटर ज्वर को रोकने के लिए पेनिसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन का एक इजैक्शन देना उचित है।

उच्छेदन—कुछ रोगियो मे लघु निकोचन का उच्छेदन करने के पश्चात् मार्ग का पुन निर्माण सम्भव होता है।

आभ्यतर मूत्रमार्गछेदन (internal urethrotomy)—कुछ रोगियो मे यूरेथ्रोटोम से कडे और नम्य (resilient) निकोचन को विभक्त किया जाता है किन्तु उसके पश्चात् बूजियो से विस्फारण करना जारी रखना चाहिये।

बाह्य मूत्रमार्गछेदन (external urethrotomy)—व्हीलहाउस का शस्त्र-कर्म वहुत किया जाता था जिसमे निकोचन को, मूलाधार मे, बाहर से विभक्त

किया जाता है और कणिकाओ (granulation) से उसका आरोहण होता है।

जोहनसन का मूत्रमार्ग संधान या प्लास्टी (urethroplasty)—निकोचन के विस्तृत होने पर यह उपयुक्त शस्त्रकर्म है। मूत्रमार्ग की अनुदैर्घ्य भित्ति को निकोचन पर तथा उसके कुछ आगे और पीछे तक विभक्त कर दिया जाता है और उसकी श्लेष्मिक कला को सावधानी से त्वचा से सी दिया जाता है जिससे अधोमूत्रमार्गता (hypospadias) की दशा उत्पन्न हो जाती है। तीन मास पश्चात् डैनिस ब्राउन की अधोमूत्रमार्गता के सुधार की विधि से मूत्रमार्ग का पुननिर्माण करना होता है। इसके परिणाम उत्तम होते है और रोगी पुन पुन विस्फारण से बच जाता है।

परिमूत्रमार्ग विद्रधि (Peri-urethral abscess)

परिमूत्रमार्ग विद्रधि निकोचन के उपद्रव रूप से उत्पन्न होती है। कभी-कभी वह मूत्रमार्ग मे शोथ या अश्मरी होने से भी बन जाती है। विद्रधि मूलाधार मे हो सकती है। उससे मूत्रमार्ग नालव्रण (urethral fistula) या मूत्र परिस्रवण हो सकते है।

चिकित्सा

कुछ रोगियो मे बूजी के प्रवेश से विद्रधि मूत्रमार्ग मे फट जाती है और इस प्रकार उसका निर्हरण हो जाता है। प्राय उसका बाहर से छेदन करके निर्हरण किया जाता है।

फाइमोसिस, निरुद्धप्रकश (Phimosis)

फाइमोसिस मे शिश्नमुडच्छद (prepuce) लम्बा किन्तु सकुचित मुख का होता है जिससे उसका पीछे को मुड पर निवर्तन (retraction) नही हो पाता। यह दशा प्राय· जन्मजात होती है, किन्तु त्वक्शोथ से भी हो सकता है। उसका परिणाम मूत्र कष्ट होता है। वयस्को मे वह शिश्नमुड शोथ (balanitis) या गोनोमेह से उत्पन्न हो सकता है।

उपद्रव

फाइमोसिस के कारण शिश्नमुडच्छद के नीचे स्मेग्मा (smegma) एकत्र होकर शिश्नमुड शोथ तथा लघु अश्मरिया उत्पन्न कर देता है। वयस्को मे उससे कार्सिनोमा की प्रवृत्ति हो जाती है।

चिकित्सा

शिशुओ मे धमनी सदश के फलो द्वारा फाइमोसिस को चौडाया जा सकता है। मुडच्छद के लम्बा होने पर उसका उच्छेदन या खतना (circumcision) करना उचित है।

पराफाइमोसिस (Paraphimosis)

यह फाइमोसिस का उपद्रव है जिसमे मुडच्छद मुड के पीछे निवर्तित होकर इतना कडा हो जाता है कि उसके द्वारा मूत्रपथ रक्तधर काय (corpus spongiosum penis) विपाशित (strangulated) हो जाता है जिससे मुड बहुत सूज जाता है।

चिकित्सा

बर्फ के जल मे भीगे स्वाब को मुड पर लपेट कर अगुष्ठ और तर्जनी से मुड को कुछ मिनटो तक दाबने से मुडच्छद को मुड पर लौटाया जा सकता है। इसमे सफलता न होने पर मुडच्छद की सकीर्णता को छिन्न कर दिया जाता है और दो सप्ताह पश्चात् मुडच्छदोच्छेदन (खतना) किया जाता है।

शिश्नमुड शोथ (Balanitis)

इस रोग मे शिश्नमुडच्छद (prepuce) के अन्त पृष्ठ और शिश्न की त्वचा का शोथ होता है। वह फाइमोसिस, अश्मरी, सिफिलिस, गोनोरिया या उपदश से हो सकता है। आक्रात अग मे वेदना और उससे पूययुक्त निस्राव निकलता है।

चिकित्सा

मुडच्छद को ऊपर से छिन्न करके जैन्शियन वायोलेट या 2 प्रतिशत मर्क्यूरोम को शिश्नमुडच्छद पर लगाया जाता है तथा पारद विलयन से धोया जाता है। सिफिलिस या गोनोरिया की चिकित्सा स्वत की जाय।

शिश्न के अर्बुद (Neoplasms of Penis)

सुदम अर्बुद अकुरार्बुद (papilloma), रतिज चर्मकील (venereal warts)—ये प्राय (शिश्नमुड के पीछे) किरीटी परिखा (coronal sulcus) मे होते है, किन्तु अन्यत्र शिश्न, वृषणकोश, मूलाधार और गुद क्षेत्र मे भी हो सकते है।

उनके आर्द्रपृष्ठ से एक प्रकार की दुर्गन्धि निकलती रहती है।

चिकित्सा

पोडोफाइलिन का टिंचर बैंजोइन मे 20 प्रतिशत विलयन अर्बुद पर लगाया जाता है जो शुष्क हो जाता है। तीस मिनट पश्चात् उसको धो डालते है। धीरे-धीरे अकुरार्बुद जाता रहता है। यह चिकित्सा वेदनामय होती है। डायाथर्मी से विद्युतदाह किया जा सकता है।

उपकलार्बुद (epithelioma)

उपकलार्बुद शिश्नमुड से या मुडच्छद के गभीर पृष्ठ से निकलता है। खतना हुए व्यक्तियो मे वह प्राय नही होता। कई बार वह वृद्ध व्यक्तियो मे, जिनको फाइमोसिस होती है, मुडच्छद के नीचे एक कठोर पर्व के रूप मे प्रकट होता है। अधिकतर वह एक बडे प्रफली पिंड के रूप मे सारे शिश्नमुड को आक्रान्त किये होता है जिससे रक्तमिश्रित दुर्गंधित निस्राव निकला करता है। वक्षण ग्रन्थिया विवर्धित होती है जो आगे चलकर दुर्दम व्रण बना देती है।

चिकित्सा

प्रारम्भिक अवस्था मे शिश्न का आशिक अगोच्छेदन (amputation) और बढी हुई अवस्था मे पूर्ण उच्छेदन किया जाता है। प्रत्येक रोगी मे वक्षण पर्वों का सामूहिक व्यवच्छेदन आवश्यक हैं। अर्बुद के केवल शिश्नमुड मे परिमित होने पर रेडियम चिकित्सा उपयोगी हो सकती है।

वृपणग्रन्थि और वृषणकोश
(Testis and Scrotum)

वृक्षण ग्रन्थि का परिवर्धन उदर मे पर्युदर्या के कटि प्रदेश मे जनन कटक (genital ridge) से होता है और तब वह उतर कर वृपण कोश मे आती है। इस ग्रन्थि के अवतरण का कारण सरल पेशीकृत गुबर्नेकुलम टेस्टिस (gubernaculum testis) माना जाता है जो एक ओर वृपण ग्रन्थि के निम्न-ध्रुव से और दूसरी ओर वृषण थैली (scrotal pouch) से जुडा रहता है। ज्यो-ज्यो गुबर्नेकुलम सकोच करता है त्यो त्यो वृषणग्रन्थि वक्षण नलिका मे होती हुई वृपणकोश मे खिच आती है। यह अवरोहण अन्तर्गर्भ काल (intra-

uterine life) के चौथे मास मे प्रारम्भ होता है और जन्म के पूर्व नवे मास मे समाप्त होता है।

वृपणग्रन्थि का अपूर्ण अवतरण

अपूर्ण अवरोहण—अवरोहण के मार्ग मे कही पर भी उदर मे वक्षण नलिका मे या वाह्य वक्षण नलिका द्वार पर ग्रन्थि रुक सकती है। इनमे से वहुतो मे व्यस्कता के पूर्व ग्रन्थि कोश मे उतार आती है।

अपावरोही या अस्थानिक वृषण (maldescended or ectopic testis)

इस दशा मे वृपण ग्रन्थि वाह्य वक्षण द्वार (external abdominal ring) से निकलने के पश्चात् किसी अपसामान्य स्थिति मे चली जाती है। वह वक्षण प्रदेश के अधस्त्वक ऊतक मे या जघन सधानक (symphysis) के सामने शिश्न के मूल पर स्थित हो सकती है, अथवा मूलाधार मे पहुच सकती है।

अपूर्ण अवरोही वृपण ग्रन्थि यदि छै वर्ष के वय के पश्चात् उदर मे रह जाती है तो ताप की अधिकता के कारण उसका परिवर्धन नही होता और वह युवावस्था मे शुक्राणुओ को उत्पन्न करने मे असमर्थ होती है। दोनो ओर ऐसी दशा होने पर पुरुप वन्ध्य या निर्वीज (sterile) होता हे। किन्तु वह अन्त स्राव या हारमोन उत्पन्न करती रहती है जिससे पुरुष मैथुन शक्ति सम्पन्न होता है। अनावरोही वृपण ग्रन्थि मे दुर्दम हो जाने की प्रवृत्ति मानी जाती है। 70 प्रतिशत ऐसे पुरुपो मे अप्रत्यक्ष वक्षणी हर्निया भी होती है।

निदान

अपूर्ण अवरोहित वृषण को शीत के कारण कोश मे निर्वतित (retracted) ग्रन्थि से भिन्न करना आवश्यक है। निर्वतित ग्रन्थि को खीचकर नीचे लाया जा सकता है। किन्तु अपूर्ण अवरोहित ग्रन्थि वक्षण क्षेत्र मे प्रतीत होती है। अनावरोहित ग्रन्थि वाह्य वक्षणी द्वार के पास स्पर्श होती है, किन्तु स्थानिक ग्रन्थि को त्वचा के नीचे श्रोणिफलक कटक की ओर सहज मे चलाया जा सकता है।

चिकित्सा

जिन वालको को हर्निया भी हो उनका शस्त्रकर्म कर देना चाहिये। हर्निया-

छेदन के पश्चात् वृषण ग्रन्थि कोश मे लाई जा सकती है। जिनको हर्निया न हो उन बालको को निरीक्षण मे रखा जाय। और यदि 12 वर्ष के वय तक वृषण न उतरे तो हारमोन चिकित्सा उपादेय हो सकती है। प्रैगनिल (pregnyl एक अपरा से निकाला हुआ गोनद प्रेरक हारमोन) के 1000 मात्रक (I U) प्रति सप्ताह एक बार, 10 सप्ताह तक दिये जाये। यह हारमोन द्वितीयक लैंगिक गुणो (secondary sexual characters) का कालपूर्व विकास करता है, इस कारण उसका सावधानी से प्रयोग करना चाहिये। अस्थानिक वृषण का शस्त्रकर्म आवश्यक है।

वृषण की मरोड (Torsion)

अडधर कचुक के भीतर वृषण कभी-कभी मरोड खा जाता है जिससे रक्त-वाहिकाओ मे घनासता (thrombosis) और कोथ (gangrene) हो जाते है। यह अनावरोही वृषण मे अधिक होता है। इनमे वृषणयोजनी (mesorchium) लम्बी हो सकती है।

लक्षण और चिन्ह

रोगी को वहिपार्श्व मे तथा उदर के निम्न भाग मे अकस्मात् दारुण असह्य वेदना होती है। वृषणकोश के भीतर या बाह्य वक्षणी नलिका द्वार पर सूजन हो जाती है जो एक गोल स्पर्शासह अर्बुद के समान प्रतीत होती है। कुछ घटो के पश्चात् वृषणकोश लाल और शोथयुक्त दीखता है। इस दशा का विपाशित हर्निया से विभेद करना होता है।

चिकित्सा

वृषण को खोल कर मरोड को सुधारना चाहिये। यदि वृषण कोथ-युक्त हो गया हो तो उसका उच्छेदन आवश्यक है।

तीव्र अधिवृषण-वृषणशोथ (Acute Epididymo-orchitis)

तीव्र शोथ से अधिवृषण (epididymis) और वृषण (testis) दोनो ग्रस्त हो सकते है। नियमत अधिवृषण मे सक्रमण शुक्रवहा द्वारा जाता है। जब कि वृषण मे रक्त द्वारा पहुचता है। अधिवृषण शोथ गोनोरियाजन्य मूत्रमार्ग शोथ या अस्त्रप्रयोग से अथवा पुरस्थोच्छेदन के पश्चात् हो सकता है। कभी-

कभी फाइलेइया सक्रमण भी उसका कारण होता है। साधारणतया गोनोकोकस, स्टेफिलोकोकस और एस्कीरिया कोलाई रोग का कारण होते है। प्रारम्भ मे शोथ वृपण या अधिवृपण मे परिमित रह सकता है, किन्तु शीघ्र ही दोनो ग्रस्त हो जाते है।

गोनोमेहजन्य अधिवृषण शोथ (gonorrheal epididymitis)

इस प्रकार का रोग सबसे अधिक होता है। यह पश्च मूल-मार्ग शोथ का एक उपद्रव है और दो-तीन सप्ताह के पश्चात् होता है। रोग शीतकप के साथ अकस्मात् प्रारम्भ होता है, ज्वर बढ जाता है, वृपणकोप सूज जाता है और अधिवृपण विवर्धित और स्पर्शासह होता है। वृपण रज्जु भी मोटी हो जाती है और निम्न उदर मे वेदना होती है। मूत्रमार्ग के निस्राव की परीक्षा से निदान निश्चित हो जाता है।

कनफेड (मम्प्स) मे वृषणशोथ (orchitis in mumps)

यह कम वय वाले वयस्को मे होता है और उसके साथ पैरोटिड ग्रन्थि मे शोथ तथा वृपण वेदनायुक्त हो जाते है। 30 प्रतिशत मे रोग दोनो ओर होता है। उसके पश्चात् वृषण का शोथ हो सकता है और उभयपार्श्वी रोग से पुरुप मे वध्यता हो जाती है। चिकित्सा सामान्य क्रमानुसार होती है।

वृपण और अधिवृषण के चिरकारी सक्रमण

अधिवृषण का यक्ष्माजन्यशोथ (tuberculous epididymitis) — सक्रमण की विधि अनिश्चित है। वह पुरस्थ से अथवा शुक्राशयो से शुक्रवहा द्वारा पहुच सकता है अथवा रक्तमवाहित हो सकता है।

प्रथम अधिवृपण का निम्न ध्रुव आक्रान्त होता है, रोग वही तक सीमित रह सकता है अथवा सारे अधिवृषण को आक्रान्त करने के पश्चात् वृपण मे फैल सकता है। अधिवृपण कडा हो जाता है, वह पर्विल हो सकता है, और त्वचा से आसजित हो जाता है, किलाटीभवन (caseation) और मृदु होने (softening) पर वृषणकोश के निम्न और पार्श्व भाग मे एक नाडी व्रण (sinus) बन जाता है। चिकित्सा न करने से रोग उभयपार्श्वी हो सकता है। रोग के विस्तार करने पर शुक्रवहा मोटी और पर्विल (nodular) हो जाती है। शुक्राशय भी विवर्धित और परिस्पर्श्य हो जाते है।



चित्र 90—यक्ष्माग्रस्त होने से रोग के बढ जाने पर वृषण का विनाश

लक्षण और चिन्ह

रोग का प्रारम्भ मन्द, प्रच्छन्न (insidious) और वेदनारहित होता है। अधिवृपण विवर्धिता, पर्विल और स्पर्शासह हो जाता है, शुक्रवहा भी मोटी और पर्वयुक्त सी प्रतीत होती है। त्वचा अधिवृषण से आसजित हो जाती है और शीघ्र ही एक नाडी व्रण बन जाता है। मलाशय द्वारा अगुली-परीक्षा से शुक्राशय और पुरस्त पर्विल और कडे प्रतीत होते है। दूसरे वृषण की परीक्षा ध्यान-पूर्वक करनी चाहिये। मूत्र की यक्ष्मा जीवाणुओ के लिए परीक्षा आवश्यक है। वृक्को की भी इस सक्रमण के लिए परीक्षा की जाय।

निदान—कठिन नही है।

चिकित्सा—कई मास तक प्रति यक्ष्मा रासायनी चिकित्सा आवश्यक है। एक ओर के रोग मे अधिवृपणोच्छेदन और रोग बढने पर वृपणोच्छेदन करना उचित है।

चिरकारी गमाजन्य वृषण शोथ (chronic gummatous orchitis)

पर्याप्त प्रतिसिफिलिसी चिकित्सा से यह रोग बहुत कम हो गया है। वृपण कठोर, चिकना और वेदनाहीन होता है। वृपण प्रतीति (testicular sensation) नष्ट हो जाती है।

निदान—धनात्मक सीरम परीक्षणो (वासरमैन) से निदान का निश्चय किया जाता है ।

चिकित्सा—उपयुक्त प्रतिसिफिलिसी चिकित्सा आवश्यक और पर्याप्त है ।

वृषण के अर्बुद
(Tumours of testis)

सुदम अर्बुद वृषण मे अत्यन्त असाधारण है । दुर्दम अर्बुद वृषण की काय मे उत्पन्न होते है जो निम्नलिखित है ।

सेमिनोमा (seminoma)—सूक्ष्म शुक्राणुजन नलिकाओ (seminiferous tubules) से उत्पन्न होते है । अर्बुद कडा, ठोस, एक समान आकृति वाला होता है । वह बृहत आकार का हो सकता है ।

टरेटोमा (teratoma)—इसमे दो या तीन जनन कोशिका स्तर होते है । उसमे पुटी अवकाश (cystic spaces) हो सकते है । इसको वृषण का तन्तुपुटी (fibrocystic) रोग कहा जाता था । अर्बुद मे पेशी, तान्तव ऊतक और उपास्थि कोशिकाये होती है और रक्तस्राव क्षेत्र (haemorrhagic areas) भी हो सकते है ।

कोरियन उपकलार्बुद (chorionepithelioma)—यह वृषण का सबसे दुर्दम अर्वुद असाधारण है ।

ये दुर्दम अर्बुद अनावरोहित वृपण मे अधिक होते है । अभिघात अर्बुदोत्पत्ति के प्रारम्भ का कारण मालूम होता है ।

लक्षण और चिन्ह

वृपणकोप का द्रुत विवर्धन होता है और द्वितीयक जलवृपण (hydrocele) हो जाता है । अर्बुद चिकना, ठोस और एक समान होता हे, किन्तु पर्विल हो सकता है । अर्बुद भारयुक्त होता है और रोगी को वृपण के खिचने का सा अनुभव होता है । आगे चलकर त्वचा वृषण से आसजित और व्रणयुक्त हो जाती है ।

वृषणरज्जु धमनी (spermatic artery) के प्रारभ पर स्थित परामहाधमानी पर्वो (para-aortic nodes) मे स्थलातरण होता है जिससे नाभि के एक ओर उदर मे एक प्ररूपक (typical) पिंड वन जाता है । कुछ रोगियो मे क्षीणता (cachexia) भी होती है ।

निदान—अर्बुद की अभिलक्षक आकृति—चिकना, एकसमान, अण्डाकार और भारी—से निदान सहज होता है। एश्नीमजोन्डेक परीक्षण धनात्मक होता है।



चित्र 91—वृषण का अनुदैर्घ्य परिच्छेद जिसमे सेमीनोमा की एकसम (uniform) आकृति दीख रही है।



चित्र 92—अनुदैर्घ्य परिच्छेद मे वृषण का टरेटोमा

चिकित्सा—वृषणोच्छेदन और वृषणरज्जु का उच्चबधन (ligation) किया जाता है। उसके पश्चात् परामहाधमानी पर्वो की गम्भीर एक्स-रे चिकित्सा उचित है।

वैरिकोसील, अपस्फीत शिरा वृषण (Varicocele)

इस रोग मे पैम्पिनिफार्म शिरा जालिका की शिराये अपस्फीत (varicose) हो जाती है जिसका कारण अज्ञात है। यह दशा बाईं ओर अधिक पाई जाती है। साधारणतया शिराभित्तियो की अदृढता, वाम वृषण का अधिक लटका होना, वृषणरज्जु शिरा का वाम वृक्कशिरा से समकोण पर सयोजन और श्रोणिगत वृहदान्त्र का आभ्यतर वृषणरज्जु शिरा पर अधिक भार, इस दशा के कारण माने जाते है। दक्षिण ओर यह दशा उन रोगियो मे मिलती है जिनमे दक्षिण ओर वृक्क का अर्बुद होता है जिससे उधर की आभ्यतर वृषणरज्जु शिरा का अन्तर्रोध हो जाता है।

लक्षण और चिह्न

नियमत कोई लक्षण नही होते। कभी-कभी ऊरु और वृषण मे नीचे को खिचाव या भार का कष्ट होता है। रोगी के खडे होने पर अपस्फीत शिराये दीखती हैं, परिस्पर्शन पर वे कृमियो के समान प्रतीत होती है। ऐसे वृषण की समता कृमियो से भरे थैले से दी जाती है।

चिकित्सा—लक्षण न होने पर आवश्यक नही है। सेना या सरकारी नौकरी के इच्छुक नवयुवको मे शस्त्रकर्म करना होता है। वक्षणी नलिका के आभ्यतर द्वार के ऊपर पिम्पनी फार्म जालिका का, जिसमे वहा केवल दो या तीन शिराये होती हैं, बधन (ligation) पर्याप्त है।

हाइड्रोसील, जलवृषण (Hydrocele)

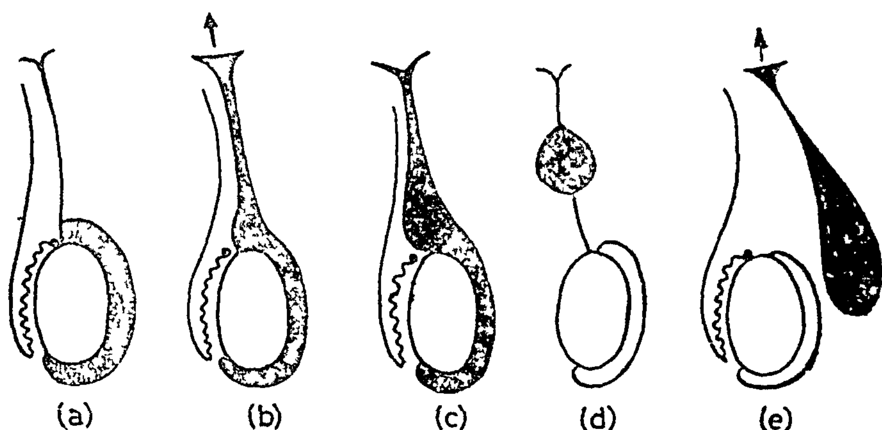
हाइड्रोसील मे अडधर कचुक (tunica vaginalis) मे हलके पीले रग का ऐल्बूमेनयुक्त तरल एकत्र हो जाता है। रोग के मुख्य दो प्रकार हे एक प्राथमिक या अज्ञात हेतुक, जो विना किसी ज्ञात कारण के हो जाता है, दूसरा द्वितीयक हाइड्रोसील जो अधिवृषण या वृषण के सिफिलिस या अर्वुद के साथ होता हे।

हेतुकी

प्राथमिक हाइड्रोसील का कारण अज्ञात हे। वह कोश मे तरल के अधिक स्राव से, अथवा अडधर कचुक के द्वारा पूर्ण अवशोपण न होने से या वृपणरज्जु की लसीका वाहिकाओ के निर्हरण के दोप से कचुक मे एकत्र हो जाता है।

फाइलेरिया उसका एक कारण हो सकता है।

हाइड्रोसील का तरल हल्के पीले रग का, 1022 से 1024 विशिष्ट घनत्व का होता है , उसमे जल, लवण और 6 प्रतिशत एलबूमिन होता है और कोलेस्टरोल के क्रिस्टल हो सकते है जिससे तरल चमकीला होता है।



चित्र 93—आरेख मे प्राथमिक हाइड्रोसील के भिन्न-भिन्न प्ररूप दिखाये गये है, (a) अडधरकचुकी (b) उदर अडधरकचुकी (c) रज्जु-अडधरकचुकी, (d)वृपणरज्जुकी और (e) उदर-वृपणरज्जुकी

वर्गीकरण—प्राथमिक हाइड्रोसील को निम्न प्रकारो मे बाटा गया है वृपणधर कचुक हाइड्रोसील (vagınal), जन्मजात (congenıtal) हाइड्रोसील, शैशव (ınfantıle) हाइड्रोसील, विपुटित (encysted) हाइड्रोसील, वालुकायत्र (hourglass) अथवा द्विकोष्ठी (bılocular) हाइड्रोसील। मद्रास के नम्बियार ने हाइड्रोसील के शरीररचनात्मक विस्तारानुसार निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

वृषणधर कचुक हाइड्रोसील—सामान्यतया वृषण ग्रन्थि के चारो ओर के भाग को छोडकर समस्त अडधर प्रवर्ध (vagınal process) अन्तरुद्ध (oblıterated) हो जाता है। इसी ग्रन्थि के चारो ओर के भाग मे जिसको वृषणधर कचुक (tunıca vagınalıs) कहते है, तरल एकत्र होता है।

उदर अडधर कचुक हाइड्रोसील(abdomıno-vagınal)—इस प्रकार मे तरल वृपणधर कचुक से (अरुद्ध प्रवर्ध मे होता हुआ) वक्षणी नलिका के आभ्यतर द्वार तक विस्तृत होता है और पर्युदर्या गुहा तक चला जाता है। यह जन्मजात हाइड्रोसील कही जाती थी।

रज्जुका-वृषणधर कंचुक (Funiculo vaginal) हाइड्रोसील—इस प्रकार मे तरल कचुक से आभ्यतर वक्षणी द्वार तक विस्तृत होता है, किन्तु पर्युदर्यागुहा से उसका संबध नही होता। यह शैशव हाइड्रोसील कही जाती है।

रज्जुका (Funicular) हाइड्रोसील—रज्जुका प्रवर्ध (funicular process) के एक भाग मे तरल पुटी (cyst) के रूप मे उपस्थित होता है। वृपणधर कचुक मे तरल नही होता। यह वृपणरज्जु की पुटित हाइड्रोसील कही जाती थी।

उदर-रज्जुका (abdomino-funicular) हाइड्रोसील—इस प्रकार मे वृपण-धर कचुक के ऊर्ध्व प्रात मे लेकर समस्त रज्जुका प्रवर्ध मे होता हुआ तरल आभ्यतर वक्षणी द्वार तक विस्तृत होता है और पर्युदर्या गुहा से भी सयोजित रहता है, किन्तु वृपणधर कचुक मे तरल नही होता। इस दशा को पहले हाइड्रो-सील नही कहा जाता था।

लक्षण चिह्न—हाइड्रोसील वृपणकोश मे चिकना, लम्बा, नम्य और तना हुआ, परिताडन पर आनुनादी और पारभासी तरल का सग्रह होता है, उसकी ऊपरी सीमा सदा प्रतीत होती है, सीमा के ऊपर अगुलिया पहुचाई जा सकती है।

निदान

उसके प्ररूपी लक्षणो से निदान सरल होता है। हर्निया मे ऊपरी सीमा का स्पर्श नही किया जा सकता, खासने पर सवेग (धक्का) प्रतीत होता है और दावने से वह उदर मे लौट जाती है। हिमेटोसील अपारदर्शी होती है।

चिकित्सा

प्राथमिक हाइड्रोसील शस्त्रकर्म चिकित्स्य है। कोश (sac) को खोलकर उसको उलट दिया जाता है, अन्तर पृष्ठ वाह्य और वाह्य पृष्ठ आभ्यतर हो जाते है। तव उनको वृपण के पीछे सीकर जोड दिया जाता है। कोश के वहुत वडा तथा कडा होने पर उसका उच्छेदन उचित है। पुनः पुन उसका टेपिंग और काठिन्यकर (sclerosing) द्रवो का प्रयोग अनुचित है।

स्पर्मेटोसील (Spermatocele) शुक्राणुवृषण

स्पर्मेटोसील वृषणग्रन्थि के ऊर्ध्व ध्रुव पर स्थित एक पुटी होती है जिसके भीतर दूध के समान द्रव भरा रहता है जिसमे शुक्राणु होते है। शुक्राणु अववाही

सूक्ष्म नलिकाओं के अवशेष [illegible] कुछ पुटी वृषण-अनुवर्ध (appendix testis) [illegible] (paramesonephric duct) [illegible] नहीं होते।

हिमैटोसील, रक्त वृषण (Haematocele)

वृषणावरण कंचुक में रक्तस्राव हो जाने को हिमैटोसील [illegible]। वृषण पर आघात लगने, या हाइड्रोसील [illegible] लगने के कारण यह उत्पन्न होती है।

वृषणकोष में शीघ्रता से [illegible], विवर्ण और परिस्पर्शन पर [illegible] होता है। प्रथम वेदना होती है। फिर वह जाती रहती है। [illegible] वह कड़ा होने पर उसको अर्बुद से भिन्न करना कठिन होता है।

चिकित्सा

प्रारम्भिक दशा में वृषण कोष के नीचे के भाग में छेदन [illegible] का निर्हरण करने के पश्चात् उसमें एक रबड़ नलिका रख दी जाती है। पुनः [illegible] हो जाने पर कोश को खोलकर भूरे रंग के तरल तथा [illegible] निकालने के पश्चात् कोश का उच्छेदन किया जाता है। वृषण के शोष (atrophy) हो जाने पर वृषणोच्छेदन उचित है।

पुरस्थ (Prostate)

रचना

पुरस्थ एक पेशी और ग्रन्थियुक्त अंग है जो मूत्राशय की ग्रीवा तथा पुरुष में मूत्र-मार्ग के प्रथम भाग को घेरे हुए है। वह जघन संधानिका के नीचे और त्रिभुज स्नायु की अधः प्रावरणी के पीछे स्थित है। उसका पश्च पृष्ठ मलाशय पर आश्रित रहता है। आकार और रूप में वह अखरोट के समान है, किन्तु अनुप्रस्थ दिशा में अधिक चौड़ा होता है। पुरस्थ मूत्रमार्ग उसमें होकर जाता है।

उसमें पांच खंड होते हैं, मूत्रमार्ग के सामने अग्र खंड, कीलक के आकार का, दोनों प्रसेचक (ejaculatory ducts) वाहिनियों के बीच में स्थित मध्य खंड, मध्य खंड के पीछे पश्च खंड, दो पार्श्व खंड, जो मूत्रमार्ग के दोनों ओर रहते हैं।

ग्रन्थि की सुदम अतिवृद्धि सदा पार्श्व खडो या मध्य खड मे होती है, अग्र या पश्च खडो मे कभी नही होती। पुरस्थ मे दो सम्पुट है, यथार्थ (true) सम्पुट ग्रन्थि के परिसर के घनीभवन से बनता है, और दूसरा श्रोणिप्रावरणी के आशयिक स्तर से बना हुआ कूट (false) सम्पुट है। दोनो सम्पुटो के बीच मे परिपुरस्थ (periprostatic) शिराजालिका है जिसमे आगे की ओर शिश्न की अभिपृष्ठ शिरा (dorsal vein of penis) आकर मिलती है। सुदम अतिवृद्धि मे ग्रन्थि का प्रसामान्य भाग परिसर की ओर हट जाता है। ग्रन्थि का परिवर्धन और सक्रियता वृषण के हारमोन पर निर्भर करते है। वृषण की अनुपस्थिति मे ग्रन्थि का परिवर्धन नही होता। वृषणोच्छेदन (castration) पर ग्रन्थि का शोष (atrophy) हो जाता है। ईस्ट्रोजन हारमोनो को देने से ग्रन्थि की उपकला स्तम्भाकार से बदल कर शल्की हो जाती है और तन्तुपेशी निर्मित पीठिका की अतिवृद्धि होती है। पश्च खड मे कोई परिवर्तन नही होता।

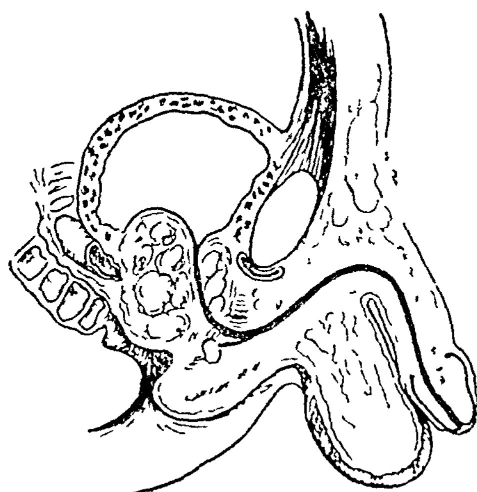
पुरस्थ का सुदम विवर्धन
(Benign Enlargement of Prostate)

सुदम विवर्धन 50 की वय के पश्चात् होता है और 70 वर्ष के पश्चात् और भी अधिक पाया जाता है। वृषण के द्वारा उत्पन्न एन्ड्रोजन और अधिवृक्क जन्य ईस्ट्रोजनो के अनुपात के अस्तव्यस्त होने से उत्पन्न हुई उत्तेजना पुरस्थ विवर्धन का कारण मानी जाती है। इस आयु पर वृषण हारमोन का ह्रास भी होता है। इस दशा को 'पुरुष शुक्रनिवृत्ति' (male climacteric) भी कहा जाता है। यह पाया गया है कि घरेलू पशुओ मे भी, जैसे कुत्ते मे, वृद्धावस्था मे पुरस्थ का सुदम विवर्धन होता है।

विकृति

ग्रन्थि मे दो विशेष परिवर्तन होते है, ग्रन्थि ऊतक की अतिवृद्धि और तान्तव ऊतक की विसरित (diffuse) वृद्धि। इनमे से एक की अधिकता होती है और उस ही के अनुसार पुरस्थ कडी या नरम होती है। इस दशा की भिन्नता ग्रन्थि के भिन्न-भिन्न भागो मे पाई जा सकती है। बहुधा कुछ पर्व बन कर जुड जाते है और वे प्रसामान्य ग्रन्थि ऊतक को बाहर को धकेल देते है जिससे ग्रन्थि को निकालना सरल हो जाता है। विवर्धन केवल पार्श्व खडो और मध्य खड मे होता है। पश्च खड का विवर्धन कभी नही होता। पार्श्व खडो के

विवर्धन से मूत्रमार्ग लम्बा और एक ओर से दूसरी ओर को सपीडित हो जाता है। कभी-कभी दोनो पार्श्व खडो के असमान विवर्धन से मूत्रमार्ग विरूप हो जाता है या एक ओर को विस्थापित हो जाता है। मध्यखड विवर्धित होकर सामने आभ्यन्तर कुहर (internal meatus) मे होता हुआ मूत्राशय मे बढ जाता है जिससे उसके भीतर एक उभार बनकर मूत्रत्याग के समय एक कपाटिका की भाति काम करता है। इसके अतिरिक्त मूत्रमार्ग सामने को विस्थापित होकर वह कन्द (bulbous) मूत्रमार्ग के साथ न्यूनकोण बना देता है। पुरस्थ विवर्धन के कम या अधिक होने का लक्षणो की उग्रता से कोई सबध नही होता। अतिविवर्धित पुरस्थ लक्षणहीन हो सकता है।



चित्र 94—आरेख मे पुरस्थ ग्रन्थि के मध्यखड का उभार दिखाया गया है।

पुरस्थ विवर्धन के प्रभाव

पुरस्थ मूत्रमार्ग लम्वा और विकृत (टेढा-मेढा) हो जाता है।

मूत्राशय की अतिवृद्धि होती है और पेशिया ट्रैवीकुलीवत प्रमुख हो जाती है। जिनके वीच-वीच मे श्लेष्मिक कला की वलियो (folds) के कारण कोष्ठक (sacculation) से वन जाते है। कभी-कभी वास्तविक विपुटी (diverticulum) वन जाती है। आगे चलकर मूत्राशय भित्ति का शोष (atrophy) होता है और एक पुरस्थपश्च कोष्ठ (postprostatic pouch) वन जाता है जिसमे अवशिष्ट मूत्र एकत्र होता रहता है, जिससे सक्रमण और फास्फेटकृत वहुअश्मरी निर्माण होता है। एकत्र हुआ मूत्र केथिटर प्रवेश मे सहज मे सक्रमित हो जाता है।

गवीनी और वृक्क—चिरकारी प्रतीयदाब (back-pressure) से जलगवीनी (hydroureter) और जलापवृक्कता तथा चिर अन्तराली वृक्क शोथ (chronic interstitial nephritis) उत्पन्न हो सकते है। आरोही सक्रमण तथा पूयवृक्क शोथ की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। वास्तव मे, पुरस्थ के सुदम विवर्धन मे होने वाली मृत्यु का सबसे बडा कारण वृक्कपात (renal failure) होता है।

लक्षण और चिह्न

दिन और रात, दोनो मे मूत्रत्याग अधिक बार होता है जिसका कारण पुरस्थ का मूत्राशय के भीतर सामने की ओर बढना होता है। मध्यखड के बढने से सवरणी पेशी चौड जाती है और एक बूद मूत्र सहज मे पुरस्थ मार्ग मे पहुचकर मूत्रत्याग की इच्छा उत्पन्न कर देता है, रोगी को मूत्रत्याग रोकना कठिन होता है।

मूत्रत्याग प्रारम्भ पर भी धीमा होता है और बल करने से और भी रुक जाता है, मूत्रत्याग के पश्चात् वह बूद-बूद टपकता रहता है। कभी तीव्र अवधारण हो जाता है, विशेषकर शीत लगने या मद्यपान के पश्चात्। अनेक बार तीव्र अवधारण (acute retention) के साथ आप्लावन (overflow) होने लगता है, रोगी मूत्र को बूद-बूद निकलते रहने का कष्ट बताता है। मूत्राशय विस्तृत मिलता है। मूत्राशय की ग्रीवा पर किसी अपस्फीत शिरा के फटने से कभी-कभी रक्तमेह हो सकता है। अधिजघन प्रदेश मे मूत्राशय शोथ या अश्मरी के कारण वेदना होती है। शुष्क जिह्वा, शिरोवेदना, प्यास, अरुचि, जी मिचलाना और वमन या यूरियारक्तता तक हो सकते है जो भावी वृक्कपात के लक्षण है।

अन्वेषण

पूर्ण नैदानिक परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है जिसमे हृदय-वाहिका और श्वसन तन्त्रो पर विशेष ध्यान दिया जाय। भावी यूरियारक्तता के चिह्नो को भलीभांति खोजना चाहिये।

मलाशय द्वारा अगुली-परीक्षा से विवर्धित, प्रत्यास्थ (elastic) या कडी पुरस्थ ग्रन्थि प्रतीत होगी, जिस पर श्लेष्मिक कला पूर्णतया चलायमान होती है। यदि उसमे पर्व प्रतीत हो तो वे दुर्दमता के द्योतक है।

चौबीस घटे मे आने वाले मूत्र की मात्रा तथा उसकी पूर्ण परीक्षा का ज्ञान

आवश्यक है। मूत्र धारा के बीच के भाग को सवर्धन और सुग्राहिता (sensitivity) परीक्षा के लिए भेजना चाहिये।

वृक्क कार्य परीक्षण अर्थात् रक्तयूरिया, यूरियासह्यता (urea tolerance) यूरिया सान्द्रता और गोणिका चित्रण (pyelography) आवश्यक है।

उत्सर्जन गोणिका चित्रण से अवशिष्ट (residual) मूत्र की मात्रा का भी पता चल जायेगा, प्रथम चित्र लेने के पश्चात् रोगी से मूत्रत्याग करने को कहा जाय, उसके पश्चात् लिए हुए चित्र मे अवशिष्ट मूत्र दीखेगा। इससे अवशिष्ट मूत्र की मात्रा जानने के लिए केथिटर प्रवेश की आवश्यकता न रहेगी और सक्रमण की सम्भावना भी न होगी। सिस्टोस्कोपी निदान का निश्चय और अन्य दशाओ विपुटी, अश्मरी आदि का व्यतिरेक करने मे उपयोगी है। पुरस्थोच्छेदन के पूर्व यह परीक्षा करनी चाहिये।

चिकित्सा

पुरस्थ विवर्धन बढने वाला रोग है। अतएव वृक्क अपर्याप्तता (renal insufficiency) या मूत्र-पथ का सक्रमण होने से पूर्व ही शस्त्रकर्म करना उचित है।

पूर्वकर्म—मे रोगी की उपर्युक्तानुसार पूर्ण परीक्षा—हृदयावाहिका और श्वसन तत्रो की, वृक्क कार्यक्षमता की, अरक्तता, कुपोषण, निर्जलीकरण आदि की परीक्षा करके उपयुक्त आयोजनो द्वारा रोगी की दशा को सुधारा जाता है। रक्त-परीक्षा, रक्त-वर्गीकरण (blood grouping) तथा रक्ततुलनाकरण (matching of blood) सहित करनी चाहिये और रक्ताधान के सब प्रबन्ध कर लिये जाये।

शस्त्रकर्म निम्न विधियो मे से किसी से किया जा सकता है फ्रेयर का अधिजघन शस्त्रकर्म, मिलिन का प्रत्यक्जघन (जघन पश्च) कर्म, यग की मूलाधार प्रवधि, अथवा पारमूत्रमार्ग उच्छेदन।

यग का मूलाधार पुरस्थोच्छेदन भारतवर्ष मे नही किया जाता। अधिवृषण तथा वृषणशोथ को रोकने के लिए प्रत्येक मे पहले शुक्रवहोच्छेदन (vasectomy) किया जाता है।

फ्रेयर का अधिजघन पुरस्थोच्छेदन (Freyer's suprapubic prostatectomy)—साधारणतया इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। कुछ निषेधक अवस्थाओ को छोडकर जैसे रोगी की शस्त्रकर्म को सहन करने की अयोग्यता, चिरकारी अवधारण (chronic retention), वृक्क कार्यह्रास और मूत्राशय

का सक्रमण । शस्त्रकर्म एक ही बार मे किया जाता है । उपर्युक्त निषेधक दशाओ की उपस्थिति पर दो बार मे शस्त्रकर्म करना चाहिये । प्रथम अवस्था मे अधिजघन मार्ग से मूत्राशय का एक अन्त वासी केथिटर (indwelling catheter) द्वारा निर्हरण किया जाता है । वृक्क कार्यदक्षता के उन्नत हो जाने पर जैसे रक्तयूरिया के 40 मिग्रा० प्रति 100 मि० लि० रक्त होने पर, या यूरिया उत्सर्जन (clearance) के 50 प्रतिशत होने पर, अथवा मूत्र सक्रमण के शमन पर, शेष शस्त्रकर्म किया जाता है ; अधिजघन छेदन को नीचे की ओर लम्बा करके अगुलि से पुरस्थ का उन्मूलन (enucleation) सहज मे हो जाता है । ऊष्ण लवण विलयन सिंचन से रक्तस्राव का नियत्रण करते हे । यदि रक्तस्राव बना रहता है तो पुरस्थकोष्ठ मे गौज या गैल-फोम भर दिया जाता है या फौले (Foley's) के केथिटर द्वारा भित्तियो पर दबाव डाला जाता है । एक अधिजघन नली को रखकर मूत्राशय को बन्द कर देते है और जघनपश्च अवकाश मे निर्हरण नली रखने के पश्चात् उदर भित्ति के छेदन को सी दिया जाता है। इस नली को दूसरे दिन निकाल देते हे और अधिजघन नली को पाचवे दिन । रोगी को जितना भी शीघ्र हो सके चलने के लिए उत्साहित करना चाहिये । अधिजघन क्षत का 10-15 दिन मे विरोहन हो जाता है और रोगी स्वाभाविक मार्ग से मूत्रत्याग करने लगता है ।

रक्तस्राव को, क्षत मे गौज भरने तथा रक्ताधान द्वारा रक्तहानि की पूर्ति से, नियत्रित किया जाता है ।

सक्रमण प्रतिजीवियो तथा रासायनी औषधियो द्वारा बहुत कम हो गया है ।

निर्बंध अधिजघन नालव्रण (persistent suprapubic fistula) नवीन पुरस्थ मूत्रमार्ग मे निकोचन या श्लेष्मिक कला की कपाटिका (valve) बन जाने का परिणाम होता है और विस्फारण द्वारा ठीक किया जाता है । वह सक्रमण का भी परिणाम हो सकता है जिसकी चिकित्सा आवश्यक है ।

अधिवृषण शोथ (epididymitis)—पहले शुक्रवहोच्छेदन (vasectomy) कर देने से रोका जा सकता है जो प्रत्येक रोगी मे किया जाता है ।

प्रत्येक जघन पुरस्थोच्छेदन (retropubic prostatectomy)—पुरस्थ के सम्पुट मे एक अनुप्रस्थ छेदन लगाया जाता है और सीधे पुरस्थ को देखकर उसका उच्छेदन किया जाता है । इससे रक्तस्राव का उत्तम नियत्रण होता है । मूत्राशय को खोलना आवश्यक नही होता । फोलेकेथिटर के विस्तृत सिरे को भीतर रखकर सम्पुट का छेदन बन्द करना चाहिये ।

पारमूत्रमार्ग उच्छेदन (transurethral resection)—यह कर्म मैकार्थी (McCarthy's resectoscope) रिसेक्टोस्कोप की सहायता से किया जाता है। यद्यपि इसमे कई प्रकार के लाभ है, किन्तु उसके लिए दक्ष और इस विधि मे अनुभवी सर्जन की आवश्यकता है।

पुरस्थ की तन्तुमयता (Prostatic fibrosis)

इस दशा मे ग्रन्थि शोषित (atrophic) और तन्तुमय (fibrotic) हो जाती है। आभ्यन्तर मूत्रमार्ग द्वार पर एक मध्यम दंड या कटक (median bar or ridge) बन सकता है। लक्षण ग्रन्थि के मृदु विवर्धन के ही समान होते है। मलाशय द्वारा अगुली-परीक्षा पर एक छोटा किन्तु दृढ पुरस्थ प्रतीत होता है जिस पर उसकी श्लेष्मिक कला पूर्णतया चलायमान होती है। सिस्टोस्कोप से निदान का निश्चय हो सकता है। चिकित्सा रिसेक्टोस्कोप की सहायता से पारमूत्र मार्ग उच्छेदन है।

पुरस्थ का कार्सिनोमा

स्वस्थ पुरस्थ मे कार्सिनोमा होने पर प्राथमिक कार्सिनोमा कहा जाता है। किन्तु जब वह पहले ही से विवर्धित पुरस्थ मे होता है तो द्वितीयक कहलाता है। प्राथमिक कार्सिनोमा सदा पुरस्थ के पश्च खड मे प्रारम्भ होता है।

कैंसर के प्ररूप

कैंसर तीन प्रकार का होता हे नैदानिक, प्रच्छन्न, गुप्त।

नैदानिक कार्सिनोमा (clinical)—मे मूत्राशय की ग्रीवा पर अवरोध हो जाने से लक्षण प्रकट होते है और मूत्रावधारण हो जाता है।

प्रच्छन्न कार्सिनोमा (occult)—यह छिपा हुआ किन्तु सक्रिय होता है। इससे कोई लक्षण नही उत्पन्न होते। किन्तु वह अस्थियो मे स्थलान्तरण के रूप मे अपने को प्रकट करता है।

गुप्त कार्सिनोमा (latent)—यह भी छिपा हुआ और अक्रिय होता है। केवल ऊति परीक्षा पर उसका ज्ञान होता है। ये गुप्त, मन्दवर्धी वृद्धिया कई वर्ष तक बिना लक्षण के पडी रह सकती है। मालूम होता है कि उनको सक्रिय होने के लिये किसी हारमोन द्वारा उत्तेजना की आवश्यकता होती है। बहुत सी शवपरीक्षाओ से पता लगा है कि 40 वर्ष से ऊपर के 15 प्रतिशत व्यक्तियो मे गुप्त कार्सिनोमा होता है।

विकृति की रचना

अर्बुद का मुख्य अभिलक्षण उसकी कठोरता (hardness) और पर्विलता (nodularity) है। सूक्ष्म रचनानुसार वह एडिनोकार्सिनोमा है। काटने पर वह शितकणी (gritty) प्रतीत होता है।

विस्तार

प्रथम बार देखने के समय ही अधिकतर रोगी शस्त्रकर्मातीत होते है। कुछ अर्वुद स्थानिक विस्तार करते है, दूसरे शीघ्र स्थलान्तरण करते है। स्थानिक विस्तार शुक्राशयो, मलाशय, या मूत्राशय के त्रिभुज मे होता है। वह मलाशय या मूत्राशय मे व्रण बना कर उनमे पहुच जाता है। दूरवर्ती स्थलान्तरण लसीका तथा रक्तवाहिकाओ दोनो के द्वारा होता है। लसीका वाहिकाओ द्वारा वह आभ्यतर श्रोणिफलक लसीका पर्वो, मुख्य लसीका वाहिनी और अधिजत्रुक (supraclavicular) पर्वो तक मे पहुचता है। अस्थियो मे स्थलान्तरण बहुत पाया जाता है और रक्त द्वारा कशेरुकाओ श्रोणि की अस्थियो, पर्शुकाओ और ऊर्वस्थित मे स्थलान्तरण साधारण है।

अन्वेषण

फास्फेटेज सक्रियता (Phosphatase activity)

प्राय. अधिकतर रोगियो मे आम्लिक फास्फेटेज बहुत बढ जाता है, यद्यपि कभी-कभी उसकी मात्रा निकासी (anaplastic) कैंसर कोशिकाओ के आम्लिक फास्फेटेजन बताने के कारण, प्रसामान्य रहती है। अस्थियो मे स्थलान्तरण होने पर फास्फेटेज का स्तर और भी बढ जाता है। इसके साथ ही क्षारीय फास्फेटेज भी बढता है जिसका कारण अस्थिप्रसू क्रिया होती है, अस्थि स्थलान्तरण अश (metastases) अस्थि काठिन्यकर (osteosclerotic) होते है, अस्थिलायी (osteolytic) नही होते।

लक्षण और चिन्ह

अधिकतर रोगी 50 या 60 वर्ष से अधिक वय के होते है। प्रारम्भ मे लक्षण सुदम पुरस्थ विवर्धन के से होते है, अर्थात् दिन और रात मे मूत्रत्याग अधिक होना और कभी-कभी मूत्रत्याग प्रारम्भ करने मे कठिनाई। विशेष लक्षण

वेदना का शीघ्र ही आरम्भ होना और बढते जाना होता है। मूत्रत्याग के अतिरिक्त मन्द वेदना रह सकती है। श्रोणि की तन्त्रिकाओ के अन्त:सरित (infiltrated) होने पर शिश्न, मूलाधार, पीठ और उरु मे तीव्र वेदना रहती है। चिर अवधारण साधारण लक्षण है, किन्तु कभी-कभी बीच मे तीव्र अवधारण के आक्रमण भी हो जाते है। प्रारम्भिक लक्षण सदा पुरस्थ के कारण नही होते। द्वितीयक स्थलान्तरण हो सकता है, अथवा विवर्धित आभ्यन्तर श्रोणिफलक पर्व उपस्थित हो सकते है जिनमे रक्त के लौटने के अवरोध के कारण अथवा यकृत स्थलान्तरणाओ के कारण जघा शोफ युक्त हो जाती है। स्वत अस्थिभग देखे जाते है।

निदान

मूत्राशय को रिक्त करवा कर मलाशय द्वारा अगुली-परीक्षा से निदान हो सकता है। पुरस्थ सामान्य आकार का मिलता है, किन्तु उसमे कठोर पर्वक परिस्पर्श्य होते है। पुरस्थ के दोनो खडो के बीच की खातिका लुप्त हो जाती है और आगे चलकर मलाशय की श्लेष्मला ग्रन्थि पर चलायमान नही रहती। सारी ग्रन्थि अर्बुद के कारण कठोर मिल सकती है। रोग बढने पर अर्बुद मलाशय मे व्रण बनाता है और वहा वृद्धि करता है।

सिस्टोस्कोप से मूत्राशय की ग्रीवा या त्रिभुज के आक्रान्त होने का पता चल जाता है।

सीरम आम्लिक फास्फेटेज की वृद्धि निदान की समर्थक है। श्रोणि और मेरुदड की एक्सरे-परीक्षा से अस्थि निक्षेप (deposits) तथा घनीभूत क्षेत्र दीखेगे।

चिकित्सा

प्राय निदान मे विलम्ब होता है जिससे उन्मूलक पुरस्थोच्छेदन नही हो सकता। प्रारम्भिक अवस्था मे शस्त्रकर्म मूलाधार या प्रत्यक्जघन मार्ग से किया जा सकता है।

अधिकतर रोगियो को उनके जीवन के अन्त तक स्टिलबीस्ट्रोल (stilboestrol), 5-15 मिलीग्राम दिन मे तीन बार लेना होता है। कुछ रोगियो मे ईस्ट्रोजन की क्रिया की वृद्धि से लिए वृषणोच्छेदन कर दिया जाता है। इस चिकित्सा से रोगी को विश्राम मिलता है और बहुत से रोगी कई वर्षो तक जीवित रहते है। चिर अवधारण वाले रोगियो मे पारमूत्र मार्ग उच्छेदन

(transurethral resection) आवश्यक हो सकता है। अधिजघन मूत्राशय-छेदन, जो इस रोग मे प्राय किया जाता था, जहा तक सम्भव हो न करना चाहिये।

पुरस्थ की अश्मरिया

ये कई अश्मरिया होती है जो पुरस्थ मे फैली रहती है। ये कैलशियम और मैगनेशियम फास्फेट या कार्बोनेट की बनी होती है। एक्सरे-चित्र मे उनकी छाया दीखती है।

लक्षण

कोई भी लक्षण न हो, या केवल पुरस्थ विवर्धन के लक्षण हो सकते है।

चिकित्सा

प्रत्यक्जघन (retropubic) अथवा मूलाधार (perineal) पुरस्थोच्छेदन रोग की चिकित्सा है।



15

स्तन के रोग
(Diseases of Breast)

ए० के० वसु और रानेस सी० चक्रवर्ती

शरीर-रचना (Anatomy)

परिवर्धन और सरचना

मानव स्तन वहिर्जनस्तर (ectoderm) के पृष्ठ के सघनित दो क्षेत्रो (प्रत्येक ओर एक) से परिवर्धित होता है जो गर्भ (foetus) मे कक्षा (axilla) से वक्षण (inguinal region) तक वन जाते है। ये 'दुग्ध कटक' (milk ridges) कहलाते हे जो साधारणतया वृद्धि होने पर, उरुच्छद पेशियो के प्रदेश के अतिरिक्त, लुप्त हो जाने है और वहा स्तर वनाते है। वयस्क स्तन ऊतक के लसीका वाहिका विन्यास मे त्वचा का यह निकट मवध दिखाई देता है। अधिकतर स्तर लसीका वाहिकाये स्तन-परिवेश (areola) के नीचे स्थित एक लसीका जालिका मे अभिसरित (converge) होती हे। स्तर वक्षभित्ति की पेशियो और उन पर छाई हुई प्रावरणी से उपरिस्थ (superficial) तल के ऊतको मे परिवर्धित होता है। इस कारण वक्षभित्ति और स्तन की लसीका वाहिकाओ का अन्तर्मिश्रण वहुत कम होता है। स्तन के खडको (lobules) के इस प्रदेश मे परिवर्धन के साथ वहा के तातव ऊतक के घनीभवन से ट्रेवीकुला भी वन जाते है जो स्तन के आकार और रूप वनाने मे सहायक होते है। ये तातव वध स्तन के परिवेश की ओर अभिसरण करते है और स्तन पर की त्वचा मे लगते है। स्तन ऊतक के तीव्र सक्रमण के सवध मे वे (एस्लेकूपर की स्नायु) विशेष महत्त्व के प्रमाणित होते है।

दूध पिलाने वाली स्त्रियो मे स्तन पूर्णत परिवर्धित होते है। ऐसे स्तन मे,

वसा मे अन्तर्निहित और कूपर की स्नायुओ द्वारा आश्रित, कितने ही खडक या खडिकाये (lobules) होती है और प्रत्येक खडक मे कितनी ही कोष्ठिकाये (alveolı, जो दुग्धस्राव करती है) होती है जिनसे स्राव अर्थात् दूध एक सूक्ष्म-वाहिनी (ductule) मे जाता है। कई सूक्ष्मवाहिनियो के मिलने से एक वाहिनी वनती है जो सम्पूर्ण खडक का स्राव ले जाती है। ये वाहिनिया परिवेश की ओर अभिसरण करती है और चूचुक (nıpple) पर सूक्ष्म छिद्रो द्वारा खुलती है। प्रत्येक स्तन मे 18-24 वाहिनिया (ducts) होती है। चूचुक पर पहुचकर वाहिनी चौडी हो जाती है जो कलशिका (ampulla or lactıferous sınus) या दुग्धजन साइनस कहा जाता है। प्रत्येक कोष्ठिका घनाकार (cuboıdal) या वर्तुलाकार (cylındrıcal) उपकला कोशिकाओ की बनी है जो एक धारक कला (basement membrane) पर आश्रित है। लघुतर वाहिनिया और सूक्ष्मवाहिनिया निम्न (low) कुछ अनियमित घनाकार या स्तभाकार कोशिकाओ के एक स्तर से आस्तरित है। इनके और बाहरी पतली आधार कला के वीच मे 'पेशी-उपकला' (myoepıthelıal) कोशिकाओ का एक दूसरा स्तर है। वडी मुख्य वाहिनियो मे पूर्ण विकसित घनाकार कोशिकाओ के दो स्तर होते है और अन्त मे परिस्तरित शल्की उपकला का एक स्तर होता है।

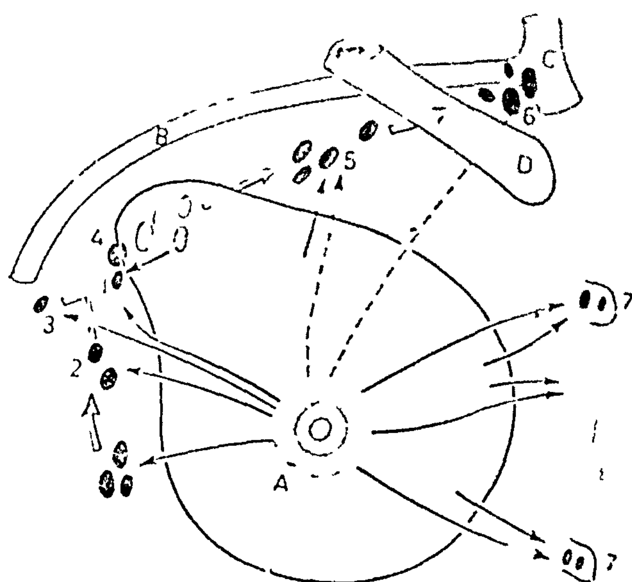
प्रसामान्य स्त्रीस्तन चक्राभ (dıscoıdal) आकार का होता है और दूसरी से छठी पर्शुकाओ के ऊपर के क्षेत्र मे स्थित होता है। किन्तु उसका ऊर्ध्वबाह्य चतुर्थांश कक्षा की ओर प्रलम्बित होता है जो उसकी कक्षापुच्छ (axıllary taıl) कहलाती है। यह प्रलम्बित भाग अग्र कक्षा पुटक को ढके रहता है और बृहत् उरुच्छदिका की पुनर्वर्तित (recurved) कडरा की अधोधारा पर रहता है तथा अग्र दन्तुरिका (serratus anterıor) से सपर्क करता है।

यौवनारभ के पूर्व और रजोनिवृत्ति के पश्चात स्त्रियो तथा पुरुषो के स्तनो की रचना उपर्युक्त वर्णन ही के अनुसार होती है। पुरुष के स्तन मे वसा अत्यल्प होने के कारण वह वक्षभित्ति की पेशियो से निकटतया सबधित होता है।

लसीका सवहन

स्तन के दुर्दम अर्बुदो की चिकित्सा के लिए उसके लसीका निर्हरण का ज्ञान बहुत महत्त्व का है। सामान्यतया कोष्ठिकाओ (acını) के चारो ओर से निकलने वाली लसीका वाहिकाये वाहिनियो (ducts) और सूक्ष्म वाहिनियो के साथ चूचुक की ओर अभिसरण करती है। यहा वे परिवेश के नीचे और उसके चारो ओर एक लसीका वाहिका कृत जाल मे खुलती है। इस उपरिस्थ जालिका से

दो या अधिक संग्राहक वाहिकाये पार्श्व को जाकर बृहत उरच्छदिका (pector-alis major) की अधोधारा पर घूमती हुई कक्ष के पार्श्व लसीका पर्वो मे लसीका ले जाती है। कुछ स्तन की लसीका वाहिकाये गहरी प्रत्यवस्तन लसीका जालिका (retromammary plexus) मे चली जाती है। उस उरच्छदा प्रावरणी के सन्निकट स्थित जालिका से कुछ नलिकाये निकलकर बृहत उरच्छदिका की धारा पर से घूमकर और इस पेशी और लघु उरच्छदिका के बीच से होकर या एक अथवा दोनो उरुच्छदिकाओ की वस्तु मे से निकलकर कक्षा के मध्यवर्ती (central) और शिखरीय (apical) लसीका पर्वो मे चली जाती है। ये प्रत्येक उरच्छद (retropectoral) और पारउरच्छद मार्ग (transpectoral route) कहे जाते है।



चित्र 95—स्तन का लसीका निकास (सवहन), (A) परिवेश परिसीमक (circumaredlar plexus) जालिका, (B)कक्षा और अधोजत्रुक शिरा; (C) आभ्यन्तर जुगुल ग्रीवा शिरा, (D) जत्रुक, (1) निम्न अव असफलक पर्व, (2) ऊर्ध्व अव असफलक पर्व, कक्षा अथवा पार्श्विक पर्व, (4)केन्द्रीय पर्व, (5) अवशिरवरीय (subapical) और शिखरीय (apical) पर्व, (b) अधिजत्रुक पर्व, (7) आभ्यन्तर स्तन पर्व। पतली काली रेखाये वडे लसीकानिकास के मार्गो की द्योतक है, बिन्दुकित रेखाये इन मार्गो की सूचक है जिनका प्रयोग कम होता किन्तु रोग का सीधा प्रसार करने के कारण अधिक महत्व के है। और वाण कक्ष के पर्वो मे लसीका प्रवाह की दिशा के सूचक है।

स्तन कैंसर के नैदानिक प्रमाणो से और स्थलातरण (metastasis) पर्वो की स्थिति से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्तन के वहिरार्ध भाग की लसीका वाहिकाये कक्षीय लसीका पर्वों से लसीका ले जाती है। स्तन के अन्तरार्ध की लसीका वाहिनियो द्वारा आभ्यतर स्तन धमनी (internal mammary artery) के चारो ओर स्थित पराउरोस्थि पर्वो मे लसीका प्रवाह होता है। मुख्यतया स्तन के अन्तरार्ध से और कुछ वहिरार्ध से जाने वाली लसीका नलिकाये अभिमध्य और जाकर अन्तरा पर्शुका धमनियो की वेधक (perforating branches of intercostal art) शाखाओ के साथ प्रथम से सातवे अन्तरा पर्शुकअवकाश मे, अन्तर्स्तन धमनी के दोनो पार्श्वों पर स्थित लसीका पर्वो मे जाती है। कक्षा मे लसीका प्रवाह की साधारण दिशा परिसरीय समूहो (अधोअसफलक, पार्श्व उरुच्छद और पार्श्विक) के पर्वो से मध्यवर्ती कक्षीय पर्वों मे और उनसे शिखरीय कक्षा पर्वों मे और अन्त मे वहा से अधिजत्रुक पर्वसमूह (supraclavicular group) मे जाती है। आभ्यतर स्तन धमनी पर के पर्व पार्श्ववक्ष भित्ति के पर्वों से मिले रहते है। अतएव उनसे लसीका-निर्हरण ऊपर ग्रीवा मूल मे, तथा पार्श्व और पश्च मध्य-स्थानिका पर्वो (middle mediastinal nodes) मे दोनो ओर को होता है।

यद्यपि उपर्युक्त साधारण मार्ग है, स्तन ऊतक से ग्रीवा के निम्न भाग तक कभी-कभी सीधा मार्ग भी होता हे जो वीच के पर्व समूहो को पार किये विना सीधा ग्रीवा मे पहुचता है। इसी प्रकार स्तन लसीकावाहिकाओ का परियकृत (perihepatic) पर्वो से और समोदरिका पिधान (rectus sheath) द्वारा उदर के लसीका पर्वो से तथा दूसरे ओर के कक्षा, स्तन, आभ्यतर स्तन और अधिजत्रुक पर्वों तक से सम्वध है।

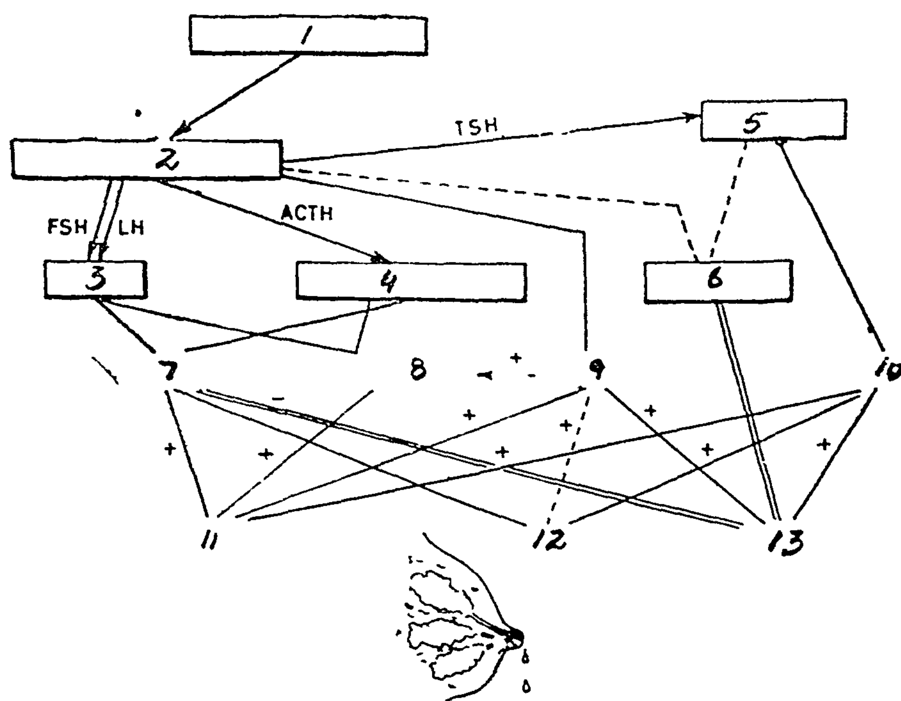
शरीर-क्रिया (Physiology)

स्तन द्वितीयक लैगिक अग है जिनका मुख्य कार्य नवजात शिशु के लिए दूध वनाना है। अतएव उनका लिंग हारमोनो द्वारा पूर्ण नियत्रण होता है।

हारमोनो द्वारा नियंत्रण

इसका मुख्य हारमोन डिव ग्रन्थि मे उत्पन्न हुआ ईस्ट्रोजन हारमोन मालूम होता है। मनुष्य मे हारमोन के वहुत काल तक प्रयोग से स्तन मे उपकला का प्रफलन (epithelial proliferation) होता है और सूक्ष्म पुटिया वन जाती है। स्तन ऊतक की सगर्भता के प्रथम चार मास मे विशेप वृद्धि का कारण

प्रोजेस्टरोन नामक डिम्बग्रन्थि जन्य हारमोन बताया जाता है। पशुओ मे यह भलीभाति प्रमाणित हो चुका है, यद्यपि मनुष्य मे इसका कोई प्रमाण नही मिलता। इन दोनो प्रत्यक्ष क्रिया करने वाले हारमोनो के अतिरिक्त, अग्रपीयूपिका अवटुका और अधिवृक्क सब ही अपने हारमोनो द्वारा स्तन के परिवर्धन और उसकी क्रियाशीलता को प्रभावित करते हैं। पीयूपिकोच्छेदन से स्तन पर ईस्ट्रोजन की क्रिया बन्द हो जाती है। सगर्भ पशु मे अग्र पीयूपिका के प्रोलेक्टान हारमोन की क्रिया से दुग्धोत्पत्ति प्रारभ होती हे तथा होती रहती है। फिर अग्र पीयूपिका के (F S H, L. H) हारमोनो की क्रिया से ईस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन की उत्पत्ति का नियत्रण होता है। अधिवृक्क प्रातस्था भी ईस्ट्रोजनो को बनाने के लिए उत्तरदायी है, विशेपत. डिम्बग्रन्थि उच्छेदित (Oophorectomised) पशुओ मे अग्र पीयूपिका की क्रिया से वह ईस्ट्रोजनो की प्रचुर मात्रा उत्पन्न कर सकता है। साथ के चित्र मे अग्रपीयूपिका का अन्य ग्रन्थियो पर प्रभाव और उनका दुग्धस्राव से सबध दिखाया गया है।



चित्र 96—स्त्री के स्तन पर हारमोनी नियन्त्रण का कल्पित आरेख

स्त्री के स्तन मे परिवर्तन

इन हारमोनो की समन्वित क्रिया से स्त्री-स्तन मे समय-समय पर परिवर्तन

होते रहते है । यौवनारभ पर ततुवसा (fibro fatty) ऊतक मे अन्तर्निहित कुछ वाहिनियो के पुज से बढकर वह एक बडे आकार की ग्रन्थि बन जाता है, उसमे वाहिनियो की सख्या तथा पीठिका (stroma) ऊतक दोनो की विशेप वृद्धि होती है । प्रत्येक आर्तव काल पर स्तन मे रक्ताधिक्य हो जाता है जो आर्तव हो चुकने पर जाता रहता है । गर्भस्थापित होने पर वाहिनियो की सख्या मे बहुत वृद्धि होती है, नई कोष्ठिकाये भी बहुत बनती है और पीठिका ऊतक की विशेप अतिवृद्धि (hypertrophy) और अतिविकसन (hyperplasia) होता है । दुग्धस्राव स्तन की अतिम क्रिया है जो शिशु के जन्म के साथ ही प्रारभ होती है और शिशु के दूध पीना बन्द करने पर समाप्त होती है । रजोनिवृत्ति पर ये सब परिवर्तन अन्त हो जाते है और सक्रिय ऊतको का ह्रास और शोप होने लगता है तथा उनका स्थान तातव ऊतक ले लेता है ।

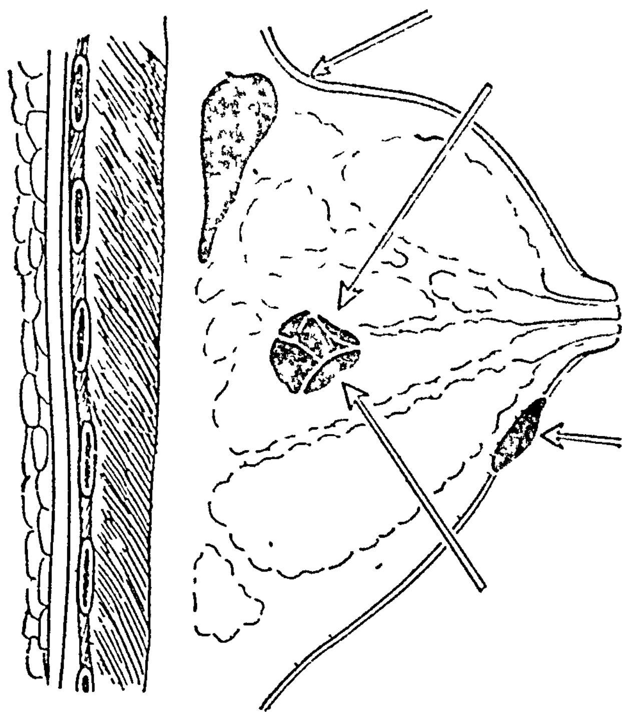
जन्मजात असगतिया

अतिरिक्त चूचुक (accessory nipples) अथवा अधिसाख्यिक स्तन (supernumerary breasts) ऊतक सहज असगतिया है। कभी-कभी एक या दोनो स्तन नही होते (अस्तनता, amazia or amastia) । दोनो स्तन असमान हो सकते है । कुछ व्यक्तियो मे एक या दोनो चूचुक प्रतिलोमित (inverted) या निर्वर्तित (retracted) होते है जिससे दूध पिलाने मे कठिनाई होती है, उनको विकृत (patholog'cal) समझा जा सकता है ।

तीव्र सक्रमण रोग

स्तन का तीव्र सक्रामी रोग स्तन विद्रधि प्राय दूध पिलाने के काल मे होती है और उसका कारण स्टेपिलोकोकस ऑरियस होता है । जीवाणु प्रवेश चूचुक द्वारा होता है जिसको स्वच्छ नही रखा जाता । दूध भरे स्तन जीवाणु वृद्धि के लिए अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है । अतएव प्राय एक विद्रधि बन जाती है जिसके साथ सक्रमण के अन्य दैहिक तीव्र लक्षण भी होते है । विद्रधि त्वचा और स्तन ऊनक के बीच मे स्थित हो सकती है जो **पुरोस्तन विद्रधि (premammary abscess)** कही जाती है, ऊतको के बीच मे होने से **अन्तर्स्तन (intramammary)** विद्रधि कहलाती है और स्तन के नीचे, अर्थात् स्तन और वक्षभित्ति के बीच स्थित होने पर वह **प्रत्यकस्तन** या **स्तनपश्च (retromammary)** विद्रधि होती है । अन्तर्स्तन विद्रधि मे बहुत बार कूपर के स्नायु के बधो द्वारा कोष्ठ बन जाते है । विद्रधि के निर्हरण के समय इन

कोष्ठिकाओ को तोड देना चाहिये जिससे पूर्ण निर्हरण हो सके, नही तो लघु कोष्ठिका मे सक्रमण बना रहेगा ।



चित्र 97—स्तन के ऊर्ध्वाधर परिच्छेद का आरेख जिसमे भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्रधियो की स्थितियाँ और उनसे पूय के निकास के (शस्त्रकर्म द्वारा) लिये मार्ग को (बाणो द्वारा) दिखाया गया है ।

चिकित्सा

स्तन विद्रधि की चिकित्सा शरीर मे अन्यत्र कही की भी विदधि की चिकित्सा के समान की जाती है । दैहिक लक्षणो के लिए प्रचुर मात्रा मे तरल तथा वेदनाहर (analgesics) और ज्वरहारी (antipyretics) औपधिया देना चाहिये । ज्वर के साथ होने वाली अम्लमयता (acidosis) के लिये क्षार देना उचित है । स्तन आश्रित (उठाकर) रखा जाय और उसमे का दूध स्तनपप (breast pump) से निकाल दिया जाय । शिशु को सक्रमित स्तन से दूध पिलाना उचित नही है । तीव्र दशा मे ईस्ट्रोजनो (स्टिलबीस्ट्रोल) को दुग्धस्राव बन्द करने के लिए दिया जा सकता है । कोई सल्फोनेमाइड योग या उपयुक्त प्रतिजीवी पर्याप्त मात्रा मे दिये जाये । कितनी ही बार प्रारभ ही से इस चिकित्सा क्रम से रोग का शमन हो जाता है ।

विद्रधि बन जाने पर उसका निर्हरण आवश्यक है । पुरोस्तन विद्रधि मे त्वचारेखाओ की दिशाओ मे एक छेदन पर्याप्त होता है । अन्तर्स्तन विद्रधि मे

सबसे नीचे के भाग मे छेदन करना चाहिये और अगुली को प्रविष्ट करके जो भी कोष्ठिकाये मिले उनको तोड देना चाहिये, जिससे विद्रधि का पूर्ण निर्हरण हो सके । यदि विद्रधि स्तन के ऊर्ध्व चतुर्थांश (upper quadrant) मे स्थित हो तो एक प्रतिछेदन (counter-incision) करना आवश्यक है जिसके द्वारा एक रबड नली विद्रधि मे रख दी जाय और उससे पूर्ण निर्हरण होता रहे। प्रत्यक्स्तन विद्रधि का बहाव नीचे ही की ओर को होता है। इस कारण अवस्तन पुटक (submammary folds) मे छेदन करने से उसका निर्हरण हो सकता है। उससे निकली हुई पूय का सवर्धन तथा सुग्राहिता परीक्षण (culture and sensitivity test) करके जीवाणु और उसके लिए उपयुक्त सल्फोनोमाइड या प्रतीजीवी मालूम करना चाहिये ।

चिरकारी स्तन सक्रमण

पश्चिम के उन्नत देशो मे विशिष्ट जीवाणुओ द्वारा चिर सक्रमण असाधारण है। किन्तु जहा जीवन और स्वास्थ्य स्तर निम्न कोटि के है, स्तन का यक्ष्मा और फाइलेरिया जनित द्वितीयक परिवर्तनो वाले स्तन पाये जाते है।

यक्ष्मा रोग (tuberculosis)

स्तन का यक्ष्मा रोग भारत मे पाया जाता है। प्राय वह उन युवतियो मे मिलता है जिनमे सामान्य यक्ष्मा विशेषत फुप्फुस के यक्ष्मा के लक्षण होते है। कभी-कभी वक्षभित्ति की यक्ष्माजन्य शीत विद्रधि मे सकेत (point) करती है। ध्यान से पूर्ण इतिवृत्त से और परीक्षा से इस दशा का ज्ञान हो जाता है। किन्तु केवल स्तन मे उपस्थित यक्ष्मा केन्द्र को खोज निकालना अतिदुस्तर है। ऐसे रोगियो के स्तन मे प्राय एक विसरित वेदनायुक्त स्पर्शासह पिंड होता है जिसका इतिवृत्त दीर्घ होता है। यक्ष्मा के अन्य लक्षण, सध्या कालीन मन्द ज्वर, शरीर-भार-क्षय आदि हो सकते है। कक्षीय पर्व और कभी-कभी अधिजत्रुक पर्व भी विवर्धित होते है। चूचुक से सीरमी (serious) या पूययुक्त निस्राव प्राय: होता है, निश्चित रोगग्रस्त व्यक्तियो के एक समूह मे आधे से अधिक रोगियो मे ऐसा स्राव उपस्थित मिला। स्तन मे का पिंड धीरे-धीरे बढता है, किलाटीभूत (caseate) होकर वह नरम हो जाता है और स्पर्शतरग युक्त (fluctuating) पिंड बन जाता है तथा त्वचा मे एक नाडी व्रण (sinus) बन कर उससे निस्राव निकलने लगता है। ऐसे नाडी व्रणो मे अन्यत्र के यक्ष्मा-जन्य व्रणो के लक्षण नही होते। यक्ष्माग्रस्त पर्वो से भी ऐसे ही नाडीव्रण बन

सकते है जिनसे निस्राव निकलता रहता है । एक्सरे-परीक्षा से ऐसे रोगियो के फुप्फुसो मे रोग के केन्द्र पाये जाते है, उनकी लोहित कोशिका अवसादन दर (E S R) बढ जाती है और अल्पवर्णी अरक्तता (bypochromic anaemia) हो जाती है ।

निदान

कैंसर से सापेक्षनिदान कठिन है और केवल लक्षणो द्वार: प्राय असम्भव है । नाडीव्रण उपस्थित होने पर उसके निस्राव की सूक्ष्मदर्शी परीक्षा से जीवाणु का पता चल जायगा । पूर्ण अन्वेपण द्वारा कैंसर की सभावना का व्यतिरेक आवश्यक है । जीवोति परीक्षा से रोग के रूप का निश्चय हो सकता है ।

चिकित्सा

प्रामाणिक प्रतियक्ष्मा चिकित्सा रासायनी औपधियो और प्रतिजीवियो तथा बलदायक आहार आदि से करनी चाहिये । रोग की सक्रियता के शमन होने पर विक्षतिकारक केन्द्रो का अपहरण किया जा सकता है ।

फाइलेरिया रोग (filariasis)

फाइलेरिया से स्तन का लसीका शोफ (lymphoedema) हो सकता है । ये रोगी रोग का प्ररूप (typical) इतिवृत्त बताते है—ज्वर के सविराम आक्रमण जिसमे स्तन लाल और शोथयुक्त हो जाता था । प्रारम्भ मे ज्वर के पश्चात् शोथ का पूर्ण शमन हो जाता है । समय बीतने पर ज्वर के आक्रमणो के बीच मे भी कुछ शोथ बना रहता है और अन्त मे रोगी का स्तन विरूप हो जाता है। प्राय एक, और कभी-कभी, दोनो, स्तन विवर्धित होते है । यह विवर्धन त्वचा के मोटे हो जाने के कारण होता है, न कि स्तन के सार ऊनक की वृद्धि के कारण । आगे चलकर त्वचा सन्तरे के छिलके के समान हो जाती है जैसा कैन्सर के बढने पर होता है । रोग का इतिवृत्त और नैदानिक लक्षण तथा चिह्न निश्चयात्मक होते है । सन्देह होने पर आक्रान्त त्वचा की जीवोति परीक्षा से दशा स्पष्ट हो जायगी ।

चिकित्सा—सामान्य प्रतिफाइलेरिया और प्रतिजीवाणुक चिकित्सा से त्वचा मे हो चुके परिवर्तन प्राय दूर नही होते । रोग बढने से विरूपण अधिक होने पर स्तन का पुनर्निर्माण किया जाता है जिससे उसका आकार छोटा हो जाता है ।

अन्य चिरकारी संक्रमण

सिफिलिस, ब्लैस्टोमाइकोसिस, आदि अन्य विशिष्ट सक्रामी रोगो का वर्णन किया गया है, किन्तु वे अत्यन्त विरल है।

स्तन का पुटी रोग (Cystic disease)

यह स्तन का सभवत सबसे अधिक होने वाला रोग है। तान्तव ग्रन्थि-मयता (fibro-adenosis), चिर पुटीय स्तनशोथ (chronic cystic mastitis), तन्तुपुटी स्तनविकृति (fibrocystic mastopathy), शिमिलबुश रोग (Schimmelbusch's disease) इसके पर्यायवाची नाम है। इसका कारण अज्ञात है। किन्तु यकृत कार्य के ह्रास से ईस्ट्रोजनो के अक्रिय न होने के कारण जो रक्त मे उनकी अधिकता हो जाती है उसको कुछ विद्वानो ने रोग का कारण प्रस्तावित किया है। अतएव उनके अनुसार यकृत की अक्रिया या दुष्क्रिया से रोग उत्पन्न होता है। इसका कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता।

विकृति

सूक्ष्म रचनानुसार स्तन के पुटी रोग मे कोष्ठिकाओ और वाहिनियो की सख्या मे वृद्धि हो जाती है, उनकी आस्तर उपकला का प्रफलन होता है, जिसके साथ वाहिनियो और कोष्ठिकाओ का इतरविकसन (metaplasia) तथा विस्फारण होकर पुटी बन जाती है। साधारण नेत्रो से रोगग्रस्त स्तन मे तन्तु-मयता के क्षेत्रो के बीच-बीच विभिन्न आकारो की पुटी बन जाती है।

लक्षण और चिह्न

साधारणतया यह रोग स्त्रियो के तीसरे और चौथे दशक का सूचक है। स्तन मे वेदना के आवर्ती आक्रमण होते रहते है जो मासिक के समय तथा पूर्व विशेषकर तीव्र हो जाते है। कभी-कभी ज्वर भी होता है। त्वचा के मोटी हो जाने के क्षेत्र दोनो स्तनो के ऊर्ध्व और बाह्य चतुर्थाशो मे अधिक होते है। पुटियो के बहुत छोटी होने पर त्वचा कणीय (granular) प्रतीत होती है। बडी पुटी परिस्पर्श्य होती है। कई बार रोगी की पुटी अकस्मात् बढती और फिर घटती प्रतीत होती है। चूचुक से सीरीय निस्राव हो सकता है। परीक्षा पर स्तन मे विसरित पर्वक मिल सकते है या स्थानीकृत (localised) पिंड प्रतीत हो सकते है। ये क्षेत्र कुछ स्पर्शासह होते है। पिंड अनिश्चित होते है

जिनके उपान्त स्पष्ट नही प्रतीत होते, वे हथेली की अपेक्षा अंगुलियो मे अधिक प्रतीत किये जा सकते है। साधारणतया कक्षापर्व परिस्पर्श्य नही होते। किन्तु 10 प्रतिशत रोगियो मे लघु और मासल, अनासजित (non-adherent) विवर्धित पर्व कक्ष मे परिस्पर्श्य मिल सकते हैं, विशेपतया ऋतुकाल मे।

चिकित्सा—इस रोग की कोई विशेष चिकित्सा नही है। यकृत कार्य को उन्नत करने के लिए विटामिन बी-समग्र की उच्च मात्रायें और अतिप्रोटीन और कार्वोहाइड्रेट किन्तु अल्पवसामय आहार दिया जाय। यदि रोगी को वेदना हो तो स्तन को पट्टी बाधकर, उस पर आश्रित किया जाय, विशेपतया आर्तव के काल मे पुटी का आचूपण (aspirated) किया जा सकता है। हारमोन चिकित्सा उपयोगी नही है। सन्देह होने पर आक्रान्त चतुर्थाश का उच्छेदन करना उचित है तथा कैन्सर का सन्देह दूर करने के लिए उसकी जीवोति परीक्षा की जाय।

पुटी रोग और कार्सिनोमा

स्तन का पुटी रोग पुरोकार्सिनोमा दशा नही है। किन्तु उसमे कैन्सर उत्पन्न होने की सभावना अधिक होती है। इस कारण पुटी रोग के निश्चय होने पर रोगी को आश्वासन नही दिया जा सकता, न ऐसे रोगी मे वैल्प्यकर सर्जरी करना ही आवश्यक है। हा, उसकी समय-समय पर परीक्षा करते रहना उचित है जिससे उसमे कैन्सर होने पर उसके पहिचानने मे विलम्ब न हो।

स्तन की पुटिया (Cyst)

दुग्धस्रावी स्तन मे स्राव के रुक जाने (अवधारण) से पुटी (सिस्ट) वन जाती है। ऐसी पुटी (गेलेक्टोसील) प्राय परिवेश के पास वनती है। वाहिनी मे उपकला के प्रफलन से मार्ग रुक जाने पर कई वडे आकार की पुटी वन जाती हैं। कभी-कभी एक ही वृहद पुटी वनती है जिसमे स्वच्छ पतले पारभासी से लेकर मैले हरे रग तक का तरल भरा होता है। ऐसी पुटी, स्वच्छ तरल भरे होने के कारण हल्के नीले रग की दीखती है। अन्य प्रकार की पुटिये लसीका पुटी या हाइडेटिड पुटी भी स्तन मे हो सकती है, यद्यपि विरल है।

अन्य असक्रामी (non-infective), अनार्बुदी (non-neoplastic), स्तन मे होने वाले असाधारण रोग वसा परिगलन, स्तन वाहिनी विस्फार (mammary duct ectasia) और प्लाज्मा कोशिका स्तनशोथ, स्तन ग्रन्थि-

मयता (adenosis) और तान्तव स्तनरोग (fibrous mastopathy) है।

चूचुक से निस्राव
(Discharge from Nipple)

प्रजनन वय की स्त्रियो मे अनेक बार यह दशा पाई जाती है। चूचुक से कुछ स्राव निकला करता है जिसका कारण मालूम करना कठिन हो सकता है। नवजात शिशुओ मे कभी-कभी विवर्धित चूचुक मिलते है जिनसे स्वच्छ सीरीय तरल निकलता है। यह माता के हारमोनो का प्रभाव बने रहने से होता है। इसकी कोई चिकित्सा आवश्यक नही है। वह स्वत कुछ दिनो मे बन्द हो जाता है।

वयस्क स्त्रियो मे निस्राव, सीरीय, रक्तमिश्रित अथवा दुग्धयुक्त हो सकता है। कभी-कभी बालक के दूध पीना छोडने पर भी कुछ समय तक दुग्धस्राव होता रहता है। गैलेक्टोसील या सक्रमण न होने पर चिकित्सा आवश्यक नही है। सीरीय या रक्तयुक्त स्राव, विना किसी कारण के, कुछ समय तक होते रहने का उल्लेख मिलता है। साधारणतया सुदम विकृतिया स्राव का कारण होती है, किन्तु कभी-कभी कार्सिनोमा भी स्रावोत्पत्ति करता है। इस कारण चूचुक से स्राव के कारण का यथार्थ निश्चय अत्यावश्यक है। स्राव की परीक्षा पर अर्बुद कोशिकाओ या जीवाणुओ (क्षय) के मिलने से निदान निश्चित हो जाता है। पूर्ण शारीरिक परीक्षा करना उचित है। प्राय स्तन के पुटी रोग से पतला, सीरीय निस्राव होता है, किन्तु कई बार निस्राव रक्तवर्णको के मिलने से रक्तरजित, भूरा या हरा-सा होता है। वाहिनी के अकुरार्बुद (duct papilloma) से सीधा रक्तस्राव होता है, सीरीय निस्राव बहुत कम होता है। वाहिनी के भीतर (intraductal) कार्सिनोमा से भी ऐसा ही होता है। यदि वह अन्य उपायो से बन्द न हो तो स्तन के अपसामान्यत युक्त क्षेत्र का उच्छेदन करके उसकी जीवोति (biopsy) परीक्षा करवानी चाहिये।

स्तन के अर्बुद

स्तन मे सुदम और दुर्दम दोनो प्रकार के अर्बुद होते है। वास्तव के स्त्रियो मे, गर्भाशय के पश्चात् स्तन मे सबसे अधिक कार्सिनोमा होता है। स्तन के सामान्य अर्बुदो का निम्न प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

सारऊतक (parenchyma) और पीठिका (stroma) से निकलने वाले		
	मृदम	तान्तवग्रन्थ्यर्बुद (fibroadenoma), सूक्ष्म नलिकाओं के भीतर या उनके बाहर के ऊतक में होने वाले (intracanalicular, pericanalicular)।
	सीमा वाले (borderline)	सिस्टोसार्कोमा फिल्लोइडीज (cystosarcoma phylloides)।
सारऊतक से निकलने वाले		
	सुदम	वाहिनी अंकुरार्बुद (duct papilloma)
	दुर्दम	अन्तर्वाहिनी कार्सिनोमा (intraduct carcinoma), अन्त सचारी कार्सिनोमा (infiltrating carcinoma), चूचुक का पेजेट रोग। विरल प्रकार, जैसे कोलाइड कार्सिनोमा, एपोक्राइन कार्सिनोमा, ग्रन्थयाभपुटीमय कार्सिनोमा।
पीठिका से निकलने वाले		
	सुदम	तान्तवार्बुद (fibroma), वसार्बुद (lipoma)
	दुर्दम	सारकोमा

स्तन का तान्तव ग्रन्थ्यर्बुद (fibro-adenoma)

यह स्तन का सबसे अधिक होने वाला सुदम अर्बुद है और नवयुवतियो मे पाया जाता है। वह धीरे-धीरे बढता है और एक पिंड के अतिरिक्त, लक्षण-हीन होता है। एक ही स्तन मे कई अर्बुद हो सकते है। तन्तु ऊतक (fibrous tissue) की मात्रा के अनुसार वह दृढ या कठोर हो सकता है। उसकी विशेषता है स्तनऊनक मे पूर्ण चलायमानता। कक्षा के पर्वो का भी विवर्धन नही होता, वे प्रमामान्य रहते है।

तान्तव ग्रन्थ्यर्वुदो के दो प्ररूपो का वर्णन किया गया है; एक सूक्ष्म नलिकान्तर्गत (intracanalicular) और परिसूक्ष्मनलिकीय (pericanalicular)। किन्तु उनमे कोई अन्तर नही होता, बहुधा एक ही अर्बुद मे दोनो मिश्रित मिलते हैं।

यह अर्बुद सम्पुटित होता है। और 1 से 6 सेन्टीमीटर व्यास का हो सकता है। उसका पृष्ठ समान और चिकना होता है, और काटने हर भीतर का ऊतक छेदन मे उभर आता है। कटा हुआ पृष्ठ गुलाबी से लेकर भूरे रग तक का दीखता है जिमका कारण तान्तव ऊतक का कम या अधिक होना है, उमी के अनुसार उमकी कठोरता मे भी भेद पाया जाता है, वह नम्य हो अथवा कठोर हो। कभी-कभी तान्तव पीठिका का श्लेष्माभ व्यपजनन (mucoid degeneration) हो जाता है और छिन्न पृष्ठ पारभासी दीखता है।

सूक्ष्म रचनानुसार अन्त सूक्ष्मनलिकीय (intracanalicular) अर्बुद मे झिरी (slit) के समान ग्रन्थ्यावकाश (glandular spaces) होते है जो सूक्ष्म-वाहिनियो मे अतिविकसनी (hyperplastic) सयोजी ऊतककृत पीठिका के अन्त-र्वलन (invagination) से बनते है। पीठिका मे मिक्सोमेटी व्यपजनन हो सकता है।

परि-सूक्ष्मनलिकीय अर्बुद तान्तव सयोजी ऊतक की पीठिका मे अन्तर्निहित सम्पीडित उपकला द्वारा आस्तरित अनेक वाहिनियो का बना होता है, जो बहुधा उत्केन्द्रित (eccentrically) प्रकार से मेखला (whorl) के रूप मे स्थित होती है। कभी-कभी ग्रथि घटक (वस्तु) अधिक होता है।

चिकित्सा—किसी भी प्रकार का एडीनोमा कैन्सर पूर्व-रूप नही होता। उसको सम्पुट सहित निकाल देना उचित है। यदि सभव हो तो छेदन के पश्चात् उसकी हिमीभूत परिच्छेद प्रविधि (frozen section method) द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। रोगी की युवावस्था और अर्बुद के सुदम होने के कारण

सरक्षी सर्जरी पर्याप्त है।

वाहिनी अकुरार्बुद (duct papilloma)

साधारणतया इस प्रकार का [illegible] वाहिनी के [illegible] (ampullary part) मे निकलता है, अर्थात् [illegible] (subareolar) [illegible] होता है। एक से अधिक वाहिनी का आक्रान्त होना [illegible] है। [illegible] चतुर्थ शतक मे होता है, यद्यपि [illegible] मे भी हो [illegible] है। [illegible] लक्षण चूचुक से निरंतर (persistent) [illegible] (sero-sanguineous) होता है, किन्तु [illegible] है। [illegible] के क्षेत्र मे एक पर्वत प्राय उपस्थित होता है [illegible] निकलने लगता है और निदान का [illegible] हो जाता है।

चिकित्सा

वाहिनी अकुरार्बुद, पहले के मत के विरुद्ध, पुर्वकैंसरीय (pre-cancerous) नही होते। इस कारण उनका सरक्षी विधि से उच्छेदन करना चाहिये, अर्थात् केवल अर्बुद से आक्रान्त भाग निकाला जाय। किन्तु [illegible] अकुरकीय अन्तर्वाहिनी (papillary intraduct carcinoma) कार्सिनोमा होता है। इस कारण अर्बुद को निकालकर अथवा जिस रोगी के चूचुक से [illegible] होता हो उसके आक्रान्त क्षेत्र को निकाल कर उसकी जीवोति परीक्षा करवाना आवश्यक है।

सिस्टोसारकोमा फिल्लोइडीज (cystosarcoma phylloides)

यह एक असाधारण प्रकार का स्तन अर्बुद है जो तातव ग्रन्थ्यर्बुद से उत्पन्न हुआ माना जाता है। ग्रन्थ्यर्बुद का प्रसामान्य ऊतक के द्रुत प्रफलन (proliferation) से वहुत वडा अर्बुद वन जाता है जिससे स्तन विरूप हो जाता है। इसको महा तातवग्रन्थ्यर्बुद (giant fibro-adenoma), एडीनोसारकोमा, भीम अन्तर्वाहिनी सिकसोमा, आदि नामो से भी पुकारा जाता है। रोगी का इतिवृत्त प्ररूपी होता है। उसको कई वर्ष से एक छोटा-सा अर्बुद था जिसकी अकस्मात् द्रुत वृद्धि होने लगी है। परीक्षा पर सारा स्तन कठोर अर्बुद से भरा प्रतीत होता है जिसमे जहा-तहा कभी-कभी पुटी वन जाती है। आगे चलकर उसके दवाव से त्वचा के फट जाने से उसमे से अर्बुद निकल आता है और वृद्धि करता है। किन्तु त्वचा मे वास्तव मे दुर्दम व्रण नही वनता। कक्षा के पर्वो का गस्त होना

असाधारण है । सूक्ष्मदर्शी रचनानुसार, उसके उपकला तत्त्व तातव ग्रन्थ्यर्बुद के समान होते है , पीठिका मे तातव ऊतक की प्रधानता होती है जो बहुधा शोफयुक्त होता है । ऐसी नैदानिक और रचनात्मक रूप होने पर भी अर्बुद सुदम के समान आचरण करता है । 25 प्रतिशत रोगियो मे उसका क्रम अधिक दुर्दम होता है और उसका स्थलातरण भी होता है ।



चित्र 98—सिस्टोसार्कोमा फिल्लोइडीज (cystosarcoma phylloıdes)

चिकित्सा

अर्बुद का उच्छेदन, चारो ओर के थोडे स्वस्थ ऊतक सहित, उपयुक्त चिकित्सा है । बडा अर्बुद होने पर साधारण स्तनोच्छेदन अथवा उन्मूलक (radıcal mastectomy) उच्छेदन तक किया जाता है ।

कार्सिनोमा

आजकल स्तन कार्सिनोमा चिकित्सक के लिए एक कठिन प्रश्न बन गया है । यह आश्चर्यजनक है कि उसकी उपरिस्थ स्थिति होने पर भी उसके निदान मे विलव होता है । यह देखते हुए कि प्रारभिक दशा मे स्तन कैंसर की उपयुक्त चिकित्सा के सतोपजनक परिणाम होते हे, यह और भी दु ख की बात है ।

विस्तृत अन्वेपणो पर भी रोग का कारण अभी तक नही मालूम हो पाया

है। यह प्रमाणित हो चुका है कि कुछ परिवारों में कैंसर अधिक होता है। कुछ चूहों के दूध से जिनमे कैंसर उत्पत्ति बहुत थी, एक वाइरस पृथक् किया गया है। किन्तु अन्वेषणों के ये फल कहा तक मनुष्य में भी लागू होते है, यह अभी तक अज्ञात है।



चित्र 99—सिस्टोसार्कोमा फिल्लोडडीज की समूल स्तनोच्छेदित निदर्श (radical mastectomy specimen)

आघटन (incidence)

स्तन कैंसर उन स्त्रियो मे अधिक होता है जिनको बच्चे कभी नही हुए हैं। दूध पिलाने की अवधि और स्तन कैंसर आघटन के बीच, वास्तव मे, व्युत्क्रमानुपात (inverse ratio) प्रतीत होता है, अर्थात् जितने लम्बे काल तक

बच्चे को दूध पिलाया जाता है उतना ही कैंसर कम होता है। सब ही एशिया के देशो मे स्तन कैंसर साधारण है। किन्तु बहुत से क्षेत्रो के आकडे प्राप्त न होने से उनके सबध मे कुछ नही कहा जा सकता। विश्व स्वास्थ्य सघ (W H O) के आकडो के अनुसार, उन देशो मे मे जिनमे आकडे रखे जाते है, जापान मे स्तन कैंसर की दर अतिन्यून है।

सूक्ष्म रचना विकृति (*Histopathology*)

अधिकतर स्तन कैंसर तान्तव पीठिका मे स्थित गोलाभ (spheroidal) कोशिकाओ का बना होता है। पीठिका मे तान्तव ऊतक की मात्रा मे भिन्नता पाई जा सकती है जिसके अनुसार वे मन्दवर्धी (slow-growing) या द्रुत गति से बढने वाले और कठोर या मृदु होते है। शोषी (atrophic) या स्किरस (scirrhus) कैन्सर मे पीठिका ऊतक अधिक होता है। जिसके बीच मे, उससे प्राय विपाशित (strangled) कुछ गोलाभ कोशिकाये होती है। ये कैसर अत्यन्त मन्द वृद्धि करते है और दीर्घ जीवन के अनुकूल होते है। दूसरी ओर मृदु या एन्केफेलाईड (encephaloid) कैसर है जो अधिकतर सक्रिय प्रफलनी अर्बुद ऊतक के बने होते है और पीठिका की अल्पमात्रा होती है। इनकी द्रुत वृद्धि होती है और शीघ्र ही स्थलान्तरण करने लगते हे।

कुछ विशेष रचना वाले स्तन कैसर विशेप प्रकार का नैदानिक आचरण करते है। मज्जीय कैसर (medullary cancer) जिसका विस्तृत लसीकाभ अत सचरण (extensive lymphoid infiltration) हो चुका है, धीरे-धीरे बढता है और उसका स्थलान्तरण भी देर से होता है। अन्तर्वाहिनी कैसर का प्राक्ज्ञान भी अपेक्षत अनुकूल होता है।

यद्यपि आकृत्यानुसार कई प्रकारो का वर्णन किया गया है वे सब विस्फारित वाहिनियो मे परिमित रहते है। इस वर्ग के सुविभेदित कैन्सरो मे भी, उनके वाहिनी की भित्ति बाहर अन्त सचरण न होने पर, उनका सुदम वाहिनी अकुरार्बुद से भेद करना कठिन होता है। कालाइड (या श्लेष्माभ) कैसर अपेक्षत असाधारण होते हे जो सुविभेदित पीठिका मे दूर-दूर स्थित गोलाभ कोशिकाओ के बने होते है और पीठिका के जाल मे श्लेष्माभ ऊतक भरा होता है। ये कैन्सर मन्दवर्धी होते है, बहुधा उनका आकार बहुत बढ जाता है। अपेक्षत उनका प्राक्ज्ञान अनुकूल होता है।

स्तन कैसर का प्रसार

स्तन कैसर के प्रसार का मार्ग अन्य प्रदेशो के कैसर ही के समान है।

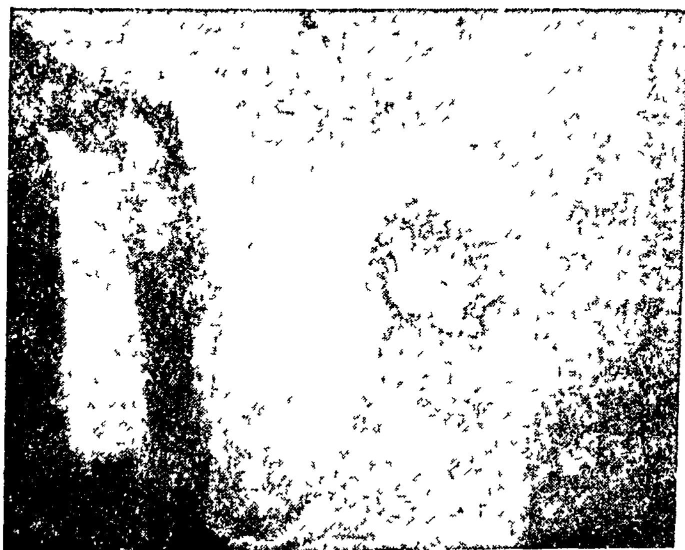
स्थानिक प्रसार—यह बहुत होता है और कितने ही लक्षणों के लिए उत्तर-दायी है। तान्तव ट्रेबीकुली जो स्तन को सभाले रहती है, शीघ्र ही आक्रात हो जाती है और अर्बुद त्वचा की ओर बढता है। ट्रेबीकुली के आक्रान्त होने से स्तन ऊतक त्वचा से जुड जाता है, इसी से त्वचा मे गढा (dimple) बन जाता है जो त्वचा को तानने पर स्पष्ट दीखता है। चूचुक मे भी ऐसा हो हो सकता है जिससे वह विरूप हो जाता है अथवा उनका प्रतीपन (inversion) होता है (चित्र 100) त्वचा स्वय अर्बुदऊतक से अन्त सचरित हो सकती है



चित्र 100—स्तन का प्रगत (advanced) कार्सिनोमा जिसमे स्तन पर व्रण बन गये है और चूचुक अन्तर्वर्तन (nipple inversion) हो चुका है। अरीय रेखाये परिवेश के चारो ओर की जालिका की लसीका वाहिनियो के अन्तर्रुद्ध होने से बन गई है।

और एक स्थानिक पिंड बन जाता है जो कुछ समय मे त्वचा को भेद कर बढने लगता है और एक प्ररूपी (typical) दुर्दम व्रण बन जाता है, इस व्रण के किनारे उठे हुए और बाहर को मुडे हुए (everted) होते है, तल कणयुक्त (granular), अनियमित और रक्तस्रावी होता है और आधार स्थिर और दृढी-भूत (fixed, indurated) होता है। त्वचा की लसीका वाहिकाओ के कैंसर कोशिकाओ द्वारा अवरुद्ध हो जाने से स्थानिक लसीका शोफ (lymphoedema)

हो जाता है जिसकी शूकर चर्म से अथवा सन्तरे के छिलके (orangepeel) से समता दी गई है, जिसको प्यू-डी ओरेंज (peau d' orange) कहा गया है। कई बार द्वितीयक लसीका शोफ न होकर त्वचा तथा अधस्त्वक ऊतक मे कैंसर प्रविष्ट होकर कठोर क्षेत्र या प्लेक (plaque) बना देता है जो कुछ दूर तक स्तन मे या वक्षभित्ति मे फैला रहता है। इनको कार्सिनोमाजन्य गजचर्मता (pachyderma) या कार्सिनोमा-एन क्युरासे (cacinoma en cuirasse) कहा जाता है।



चित्र 101—स्तन का कार्सिनोमा जिसने बढकर स्तन को नष्ट कर दिया है और वक्ष पर प्ररूपी दुर्दम्य व्रण रह गया है।

स्तन कार्सिनोमा के प्रावरणी तल (fascial planes) के सुनिश्चित होने के कारण, गभीर प्रसार असाधारण है। किन्तु कुछ समय पश्चात् उरुच्छद प्रावरणी आक्रान्त हो जाती है जिससे वक्षभित्ति की बाह्य पेशिया भी ग्रस्त होती है और अन्तरापर्शुका पेशिया तथा पशुकायें तक नही बचती।

लसीका द्वारा प्रसार

स्तन कार्सिनोमा की कक्ष के निर्हारक (draining) पर्वो मे प्रसार की प्रवृत्ति होती है। पर्वो का ग्रस्त होना बहुत नैदानिक महत्त्व का माना जाता है। वे

रोग के प्रसार के द्योतक होते है। भारतवर्ष मे 80-90 प्रतिशत रोगी पर्वों के ग्रस्त होने पर चिकित्सा के लिए आते है। पश्चिमी देशो मे यह अक 50-60 है। इसका अर्थ निदान मे विलव है।

आभ्यन्तर स्तन पर्वश्रृखला (internal mammary chain) की ओर हाल ही मे ध्यान दिया गया है। यह पाया गया है कि शस्त्रकर्म के समय 25 प्रतिशत रोगियो मे स्थलान्तरण हो चुकता है। प्राथमिक अर्बुद की यह स्थिति होने पर 15-20 प्रतिशत रोगियो मे यह पर्वश्रृखला आक्रान्त होती है। अन्तरार्ध के अर्बुदो मे यह सख्या बढ कर 30-40 प्रतिशत हो जाती है। लसीका पर्व प्राय अन्त शल्यता (embolism) द्वारा आक्रान्त होते है जिनमे कैसर कोशिकाओ के लघुपुज लसीका प्रवाह द्वारा पर्वों मे पहुचते है और उनसे फिर अपवाहिकाओ द्वारा दूर के पर्वों मे पहुच जाते हैं और इस प्रकार अन्त मे वे वाम और लसीका महावाहिनी (thoracic duct) द्वारा और दक्षिण ओर दक्षिण लसीका वाहिनी (right lymphatic duct) द्वारा सीधे प्रगडशीर्ष (brachi ocephalic) शिरा मे पहुचने लगते है।

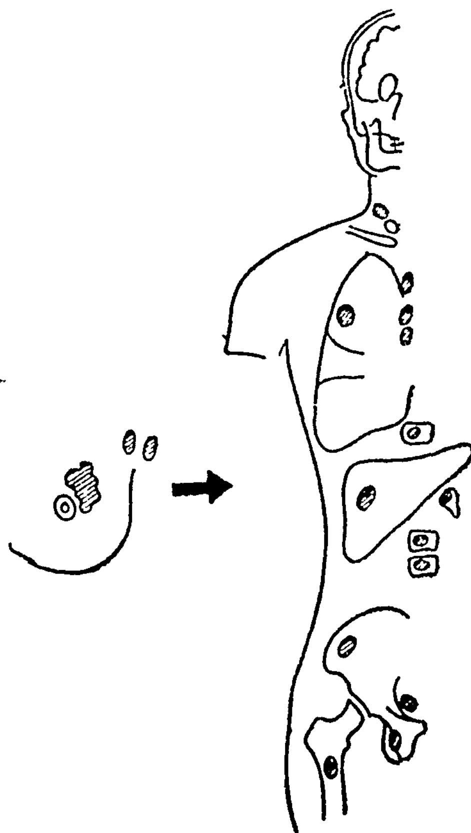
जब लसीका पर्व को नष्ट करके अर्बुद ऊतक उसका स्थान ले लेता है तो अभिवाही लसीका वाहिनी मे लसीका प्रवाह का रोध हो जाता है। उस समय रुद्ध लसीका वाहिकाओ मे प्रतीपगामी लसीका प्रसार हो सकता है। लसीका पर्वों मे कैसर कोशिकाओ का प्रसार पारगमन (permeation) द्वारा भी होता है, इस प्रकार प्राथमिक अर्बुद से आभ्यन्तर स्तन पर्वों (internal mammary nodes) मे या कक्षा पर्वों मे कैसर कोशिकाये फैलती है और वहा से वे अधिजत्रुक (supraclavicular) और पश्च मध्यस्थानिका (mediastinum) के पर्वों मे प्रसारित होती है।

रक्तप्रवाह द्वारा फैलना—कैसर कोशिकाओ के फैलने का तीसरा मार्ग रक्तप्रवाह द्वारा है। अर्बुदाश स्तन से जाने वाली शिराओ, कक्षा शिरा, अधोजत्रुक शिरा और प्रगडशीर्ष शिरा द्वारा सीधे दक्षिण हृदय मे पहुचकर ऊर्ध्व महाशिरा मे चले जाते है। वहा से वे फुप्फुस की केशिका शैया मे जाते है। जहाँ कुछ को पृथक् कर लिया जाता है और शेप हृदय के वाम भाग मे पहुचकर महाधमनी मे होते हुए सारे शरीर मे फैल जाते है। ऐसे स्थलान्तरित अश फुप्फुस, दीर्घ अस्थियो, कशेरुकाओ और पर्शुकाओ मे अधिक पाये जाते है (जिनमे अतिरक्तमय मज्जा जीवन मे बहुत काल तक बनी रहती है)। किन्तु वे किसी भी अग मे पाये जा सकते है, जैसे अधिवृक्क, डिंब ग्रन्थि, प्लूरा, पर्युदर्या, यकृत, मस्तिष्क आदि। कशेरुक शिरा-जाल द्वारा भी वे फैल सकते है।

लक्षण और चिह्न

स्तन का कार्सिनोमा 20 वर्ष की वय के पश्चात् किसी भी वय मे हो सकता है। हिन्दुस्तान मे 40 और 44 वर्षों के बीच मे यह सबसे अधिक होता है और दक्षिण की अपेक्षा वाम स्तन का अर्बुद अधिक साधारण है। स्तन मे का पिड कठोर और अनियमित होता है और चारो ओर के प्रसामान्य स्तन ऊतक और अर्बुद के बीच कोई निश्चित सीमा नही होती। स्थानिक अन्त सचरण के कारण वह कभी अधिक चलायमान नही होता और आगे चलकर पास की मरचनायें भी आक्रात हो सकती है। भिन्न-भिन्न चिह्नो की उत्पत्ति विधि पहले बताई जा चुकी है।

सक्षेपत नैदानिक परीक्षाओ द्वारा निम्न धनात्मक उपलब्धियो (findings)



मस्तिष्क	कपालान्तर लक्षण
अधिजत्रुकपर्व	रक्तवाहिकाओ द्वारा प्रसार
मध्यस्थानिका पर्व	निगरण कष्ट
फुप्फुस	श्वास कष्ट प्लूरीय नि सरण
अस्थि	पात
यकृत	यकृत पात
अधिवृक्क प्रान्तस्था	दौर्बल्य, जलोदर
अस्थि	अरक्तता
डिम्ब ग्रन्थि	जलोदर
अस्थि	वैकृत अस्थिभग

चित्र 102—स्तन के कैन्सर के स्थलान्तरण (metastases) की मामान्य स्थितिया और उसके परिणाम।

या विशेषताओ को देखना चाहिये , प्रारभ मे त्वचा के आक्रात होने का चिह्न त्वचा मे गढा बनना (dimpling) ; त्वचा के आक्रात होने मे पिड का बनना जो त्वचा के नीचे रहे या उसके द्वारा फूट निकले , अधस्त्वक लसीका अवरोध, जिससे सतरे के छिलके के समान त्वचा हो जाती है , त्वचा से प्रसार के कारण कार्सिनोमी गजचर्मता (pachydermia) ; चूचुक की विरूपता या निवर्तन ; वक्षभित्ति का स्थिर हो जाना (fixation) ।

इसके पश्चात् लसीका द्वारा प्रसार के चिह्नो की ओर ध्यान देना चाहिये । उसी ओर के कक्षा लसीका पर्वो की प्रथम परीक्षा की जाय ; प्रारभ मे वे ग्रस्त नही होते । सक्रमण होने पर वे विवर्धित (स्थिर नही), अल्पस्पर्शासह और चलायमान होते हे , स्थलातरण पर वे विवर्धित, वेदनाहीन और आगे चलकर त्वचा से या गभीर ऊतको से जुड जाते है । अधिक वृद्धि करने पर वे त्वचा को फाडकर कक्षा मे दुर्दम व्रण उत्पन्न कर सकते है । कक्षा के लसीका अवरोध का चिह्न वाहु की मासल शोफ है या त्वचा पर्वको मे मिल सकते है । इसी प्रकार अर्बुद की ओर के अधिजत्रुक और दूसरी ओर के भी अधिजत्रुक और कक्षापर्वो की परीक्षा करनी चाहिये , उरोकर्णमूलिका (sternomastoid) के नीचे विशेषत उसके दोनो शिरो, के प्रारभ के नीचे भी गभीर परिस्पर्शन आवश्यक है ।

दूरवर्ती प्रसार के लिए भी परीक्षा करनी उचित है, जिसके श्वास कष्ट (फुप्फुस मे स्थलातरण, प्लूरा नि स्राव), खासी, अस्थि वेदना और तीव्र अरक्तता (अस्थि स्थलातरण) और तत्रिका तत्र के परिवर्तन (मस्तिष्क स्थलातरण) अगो मे अश स्थलातरण के द्योतक है । सदेह होने पर अन्य आवश्यक परीक्षण भी किये जाये । सदेह न होने पर भी स्तन कैंसर के सब रोगियो मे त्वचा के पर्वो की दूरवर्ती स्थलातरण के लिए परीक्षा की जाय, तथा यकृतिवृद्धि अवश्य देखनी चाहिये । वक्ष का ऐक्स-रे चित्रण सदा अनिवार्य है ।

परीक्षा की विधि

जहा तक सभव हो, रोगी को लिटा कर दोनो कधो के वीच तकिया लगा दिया जाय और उसकी बाहुए दोनो पार्श्वो पर सीधी रखी रहे जिससे स्तन के नीचे की पेशी शिथिल रहे । इस स्थिति के सम्भव न होने पर रोगी को बिठा कर रखा जाय, उसके दोनो हाथ शिर पर ढीले रखे रहे या दोनो ओर पार्श्व मे लटकते रहे । परीक्षक रोगी के सामने खडा होकर स्तन का निरीक्षण करके दोनो ओर के स्तनो की तुलना करे और जिधर रोग का सदेह हो, उधर के

स्तन की असममिति (asymmetry), त्वचा ग्रस्त है या नही, चूचुक की स्थिति तथा दशा मे परिवर्तन आदि, का ज्ञान प्राप्त करे। तब वह परिस्पर्शन, प्रथम स्वस्थ स्तन का और तब आक्रात ओर का, करके पिंड आदि का रूप, सबध, स्थिरता आदि का पता लगाये। यह परीक्षा क्रम से एक चतुर्थांश से आरम्भ करके चक्रवत स्थित चारो चतुर्थांशो की चूचुक से परिसर की ओर को करे, और तब स्तन की कक्षीय पुच्छ की परीक्षा की जाय। तब रोगी दोनो हाथो को शिर पर बल से दबाये या यदि वे पार्श्व मे लटक रही हे तो उनको कूल्हो पर रखकर दबाये। इससे उरश्छदिका पेशी तथा उस पर की प्रावरणी तन जाती है और तब अर्बुद की पेशी तथा प्रावरणी पर चलायमानता या आसजन (adhesion) का ठीक पता लगता है। तब, यदि रोगी बैठा हुआ है तो उससे बाहु को नीचे लाकर और मोडकर परीक्षक की अग्रबाहु पर रखने को कहा जाता है। इससे कक्षा पुटक (folds of axilla) की पेशियो के पूर्ण शिथिल हो जाने से कक्ष की प्रावरणी ढीली हो जाती है और कक्षा के शिखर पर स्थित पर्वो की परीक्षा सम्भव होती है। अब कक्षा भित्तियो पर स्थित पर्वो की बारी बारी से अगुलियो के सिरो को दबाकर, परीक्षा की जाती है। अधिजत्रुक पर्वो का परिस्पर्शन पीछे की ओर खडे होकर और रोगी की ग्रीवा को आगे को झुका कर उत्तम प्रकार से होता है। अगुलि के सिरो को अधिजत्रुक प्रदेश मे दबाकर उर कर्णमूलिका के शिरो के पीछे, बीच मे तथा नीचे के क्षेत्रो की परीक्षा करना उचित है। कभी-कभी रोगी के दोनो हाथो पर आगे को झुक जाने पर, जब स्तन अनाश्रित लटकने लगते है, पिंड का उत्तम परिस्पर्शन होता है।

निदान

स्तन के कैंसर का शीघ्रातिशीघ्र निदान आवश्यक है, अर्थात् पिंड के त्वचा तथा नीचे की पेशियो से आसजित होने, तथा लसीका पर्वो के विवर्धन से पूर्व उसका निदान होना चाहिये, जिससे चिकित्सा की सफलता की आशा की जा सके। बीस वर्ष से अधिक वय के रोगी मे स्तनपिंड के कैंसरीय होने की विशेष सम्भावना को सदा ध्यान मे रखने से ही यह सम्भव है जिसके लिए जीवोति परीक्षा आवश्यक हो सकती है।

जितने भी स्तन कैंसर के चिह्न गत पृष्ठो मे बताये गये है वे सब कैंसर की बढी हुई अवस्था के चिह्न हे। स्तन मे पिंड की उपस्थिति पर चिह्नो के प्रकट होने की प्रतीक्षा भयकर भूल है। पिंड मे चौडी सूचिका को प्रविष्ट करके

सिरिंज द्वारा आचूपण किये हुए द्रव्य की सूक्ष्मदर्शक परीक्षा पर कैंसर कोशिकायें मिल सकती है। जहा इस परीक्षा की सुविधा न हो वहा सवेदनाहरण के पश्चात् रोगी के स्तन मे एक छेदन लगाकर पिंड का लघु अश निकाल कर प्रयोगशाला मे द्रुत हिमीकरण परिच्छेद विधि से परीक्षा के लिए भेजना चाहिये। सदिग्ध स्तन पिंड की चिकित्सा मे असावधानी और विलब का तनिक भी स्थान नही है।

अवस्थायें (Stages)

रोग की प्रगति को समझने और उसकी तुलना करने के लिए रोग को चार अवस्थाओ मे बाटने का प्रयत्न किया गया है। निम्न वर्गीकरण जटिल न होने के कारण सामान्य चिकित्सा व्यवहार मे उपयोगी पाया गया है।

अवस्था 1—अर्बुद स्तन मे परिमित या स्थानीकृत। न त्वचा से आसजन, न कक्ष पर्वो मे प्रसार और न स्थलातरण।

अवस्था 2—अर्बुद स्तन मे स्थानीकृत, गभीर सरचनाओ मे आसजित नही, त्वचा अर्बुद की परिधि से अल्प क्षेत्र मे आसजित, कक्षा पर्व परिस्पर्श्य, किन्तु चलायमान, दूरवर्ती स्थलातरण नही।

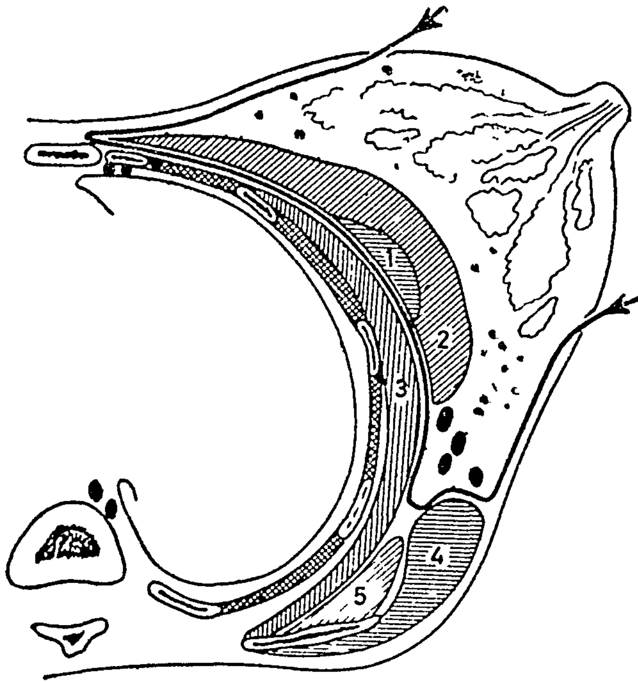
अवस्था 3—अर्बुद का उरुच्छद प्रावरणी मे प्रारभिक आसजन, अर्बुद विस्तार मे अधिक त्वचा क्षेत्र का आसजन, कक्षा पर्वो का उनके नीचे स्थित सरचनाओ से आशिक आसजन, दूरस्थलातरण नही।

अवस्था 4—दूर स्थलातरण, पर्वो मे या अगो मे, जो अर्बुद के स्थानिक विस्तार या रूप के असगत हो (जैसे अधिजत्रुक पर्वो मे)।

भिन्न-भिन्न रोग अन्वेषण केन्द्रो मे मापदड (criterion) के भिन्न होने से कैंसर प्रतिरोधक अन्तर्राष्ट्रीय सघ (International Union against Cancer) ने अवस्थानिर्धारण (staging) का एक क्रम बनाया है जिसके मुख्य तीन तत्त्व हे। T (अर्बुद), N (कक्ष लसीका पर्व) और M (स्थलातरण)। अर्बुद के विस्तार की सीमा और कक्ष पर्वो की ग्रस्तता 1 से 4 अको द्वारा दर्शायी जाती है। इसके अनुसार कैंसर, जिसका त्वचा से आसजन प्रारभ हुआ है और विवर्धित किन्तु चलायमान कक्षा पर्व है, किन्तु दूरवर्ती स्थलातरण नही हुआ है, $T_1 N_2 M_0$ सकेत मे लिखा जायगा। इस वर्गीकरण का अभी प्रचार नही हुआ और कुछ झझट वाला भी है। किन्तु अवस्थानिर्धारण मे एक समानता लाने के सभी प्रयत्न स्तुत्य है।

चिकित्सा

स्थानीकृत स्तन कैंसर की प्रारंभिक दशाओ मे, निर्मूलक स्तनोच्छेदन (radical mastectomy) उपयुक्त चिकित्सा है । ससार के कैंसर केन्द्रो द्वारा गत 66 वर्ष मे यह शस्त्रकर्म मानकीकृत (standardised) हो गया है । इस शस्त्रकर्म मे स्तन लघु उरुच्छदिका सहित, वृहत् उरुच्छदिका पेशी के पर्शुक भाग तातव, वसा और लसीका ऊतक और कक्ष के लसीका पर्वों को एक साथ निकाल दिया जाता है । स्तन की लसीका वाहिकाओ के अधोपरिवेश (subareolar) और परि-परिवेश (circumareolar) क्षेत्रो पर अभिसरण करने के कारण चूचुक



चित्र 103—स्तन के द्वारा एक अनुप्रस्थ परिच्छेद, मुख्य सबधो को दिखाने के लिए । एक मानक समूल स्तनोच्छेदन शस्त्रकर्म मे अपहरण किये जाने वाले तन्तुओ की सूचक वह रेखा है जो दोनो वाणो को जोडती है । (1) लघु उरुच्छदिका (2) वृहद उरुच्छदिका, (3) अग्रदन्तुरिका (4) करिपार्श्वच्छदिका (5) अधोअसफलकिका । कक्षा, आभ्यन्तर स्तन और पश्च मध्यस्थानिका पर्वों की आपेक्षिकता ध्यान देने योग्य है ।

और परिवेश को, उसके चारो ओर की 2 5 सेन्टीमीटर स्वस्थ त्वचा सहित, निकाल देना अत्यावश्यक है, प्राथमिक अर्बुद चाहे कही भी स्थित हो।

सामान्य स्तनोच्छेदन और उसके पश्चात् एक्स-रे किरणन भी निर्मूलक शस्त्रकर्म के स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। किन्तु अवस्था 1 और 2 के लिए निर्मूलक उच्छेदन ही सर्वमान्य चिकित्सा है। कक्षा लसीका पर्वो के ग्रस्त होने पर अधिजत्रुक और आभ्यतर स्तन प्रदेशो का किरणन आवश्यक है। अवस्था 3 और 4 के कार्सिनोमा मे स्थानिक स्तनोच्छेदन शमन के लिए किया जा सकता है। स्थानीकृत अस्थि स्थलातरण के लिए किरणन चिकित्सा उपयोगी है।

हारमोन चिकित्सा—दैहिक स्थलातरण करने वाले स्तन कार्सिनोमाओ का हारमोन चिकित्सा द्वारा कई बार शमन हो जाता है। रजोनिवृत्ति पूर्वकाल के रोगियो मे डिम्बग्रन्थि उच्छेदन (oophorectomy) और ऐन्ड्रोजन (पुरुष हारमोन) चिकित्सा करनी चाहिये। रजोनिवृत्ति पश्चकाल मे ईस्ट्रोजन से कभी-कभी लाभ होता है। जिन रोगियो मे डिम्बग्रन्थि उच्छेदन के पश्चात् रोग रुक गया है उनमे कुछ काल तक पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अधिवृक्कोच्छेदन (adrenalectomy) उपयोगी होता है।

प्राक्ज्ञान (prognosis)

उपयुक्त चिकित्सा के पश्चात् स्तन कैसर की भिन्न-भिन्न अवस्था वाले रोगियो मे 5 वर्ष तक जीते रहने की अवधि का औसत इस प्रकार पाया गया है। अवस्था—1, 80 प्रतिशत, अवस्था—2, 40 प्रतिशत, अवस्था—3, 20 प्रतिशत, अवस्था—4, 0 प्रतिशत।

निम्नलिखित विशेष प्रकार के कार्सिनोमाओ का कुछ अधिक उल्लेख आवश्यक है।

चूचुक का पेजेटरोग (Paget's disease)

यह चूचुक की स्रावी एक्जिमासम विक्षति (weeping eczematoid lesion) है जो चूचुक की त्वचा पर प्रारभ होता है। विक्षति निरतर बढती रहती है और प्रथम चूचुक को और तब पूर्ण स्तन को नष्ट कर डालती है। इस रोग का कारण स्तन कार्सिनोमा का अधस्त्वक (subdermal) ऊतक मे प्रसार होता है। सूक्ष्मदर्शी परीक्षा से उसमे पेजेट कोशिकाये (शोफयुक्त फूली हुई) पायी जाती है। इसका चूचक के एक्जीमा से विभेद करना अत्यत आवश्यक है।

चूचुक का एक्जीमा जो दो सप्ताह की उपयुक्त चिकित्सा से शात नही होता, उसकी जीवोति परीक्षा द्वारा रोग का निश्चय किया जाय। पेजेट रोग की चिकित्सा निर्मूलक स्तनोच्छेदन है।

स्तन का शोथयुक्त कार्सिनोमा (Inflammatory Carcinoma)

यह स्तन का सबसे तीव्र गति से बढने वाला कैंसर है। वह प्राय गर्भवती या दूध पिलाने वाली स्त्री के स्तनो मे एक पिंड के रूप मे प्रारंभ होता है जो शीघ्रता से बढता है और चारो ओर की सरचनाओ मे अन्त सचरित हो जाता है। स्तन के उपरिस्थ ऊतक शोथयुक्त हो जाते है और वह सूज जाता है तथा तीव्र स्तनशोथ के समान दिखाई देता है। कितनी ही बार दूसरा स्तन भी ग्रस्त हो जाता है। कक्षा के लसीका पर्व भी शीघ्र ही द्रुत गति से बढते है। रोग की अदम्य वृद्धि से शीघ्र ही स्थलातरण प्रारभ हो जाता है जिससे रोगी की मृत्यु हो जातो है। शोथयुक्त कार्सिनोमा की कोई उपयोगी चिकित्सा अभी तक नही मालूम हुई है। निर्मूलक स्तनोच्छेदन से कोई लाभ नही होता और न उसका परामर्श ही दिया जाता है। शमनकारी (palliative) एक्स-रे चिकित्सा की जा सकती है और हारमोन रोधा उपायो से उसमे सहायता मिल सकती है।

पुरुष स्तन का कार्सिनोमा

एक प्रतिशत स्तन कैंसर पुरुप मे होते है जिनमे रोग की द्रुत वृद्धि का इतिहास पाया जाता है। इसका कारण वसा आदि धारक (supporting) ऊतक की अनुपस्थिति होती है।

पुरुष के स्तन कैंसर की चिकित्सा निर्मूलक स्तनोच्छेदन है। अर्बुद के बढ जाने और स्थलातरण होने पर वृपणोच्छेदन कुछ समय के लिए रोगशमन मे उपयोगी होता है।

स्तन पर के छेदन (Incisions)

मध्यवर्ती विक्षतियो (central lesions) के लिए परिवेश और स्तन की सामान्य त्वचा के सगम पर छेदन उत्तम होता है। उससे क्षति स्पष्ट हो जाती है और विरूपता भी नही होती। छेदन परिवेश की परिधि मे उसके द्वि-तृतीयाश से अधिक न होना चाहिये।

परिसरीय अर्बुद के लिए अरीय (radial incision) छेदन उपदिष्ट है। किन्तु स्तन की त्वचा रेखाओ (skin lines) की दशा मे लगाये छेदन द्वारा

ग्रन्थि पर पहुचकर शेष कर्म अरीय दिशा मे किया जा सकता है। ऐसे चापाकार छेदन से उत्तम क्षताक (scar) बनता है और कीलार्बुद (keloid) बनने की सम्भावना कम हो जाती है, जो भारतीय रोगियो मे बहुत होता है।

स्तनपश्च अर्बुदो या क्षतो के लिए, या जो स्तन के निम्न भाग मे स्थित हो, अवस्तनपुटक (submammary fold), अर्थात् स्तन के निम्न भाग और वक्षभित्ति की त्वचा के बीच की घाई मे छेदन लगाया जाता है। इसमे उत्तम अनावरण (exposure) होता है और क्षताक स्तन के निम्न भाग मे ढका रहता है।



पारिभाषिक शब्दावली

हिन्दी	अंग्रेजी
अकल डाढ	wisdom tooth
अकुरार्बुद	papilloma
अकुरक पेशी	papillary muscles
अकुरकी पुटि-ग्रन्थ्यर्बुद	papillary cystadenoma
अग्न्याशय	duodenum
अग्न्याशय-ग्रहणी-उच्छेदन	pancreatico-duodenectomy
अग्न्याशयपुच्छ-मध्यान्त्र सयोजन	caudal pancreaticojejunostomy
अग्न्याशयशोथ	pancreatitis
अग्रखात करोटि	anterior fossa (skull)
अज्ञातहेतुक	idiopathic
अग्र त्रिभुज	anterior triangle
अग्र चर्वणक	premolar
अग्र दन्तुरिका	serratus anterior
अग्र-निम्न	anteroinferior
अग्र पोलियोमेरुरज्जुशोथ	anterior poliomyelitis
अग्राहिता	insensitivity
अगाकुचन	contracture
अगघात	palsy
अगराग	cosmetics
अचालक	nonconductor
अडाकार रन्ध्र	foramen ovale
अडाकार खात	fossa ovalic
अत्यवटुता	hyperthyroidism
अत्याकुचन आघात	hyperflexion injury
अत्यूष्मा/अतिताप	hyperthermia
अक्रिस्टलीय अन्तरालीय परिवर्तन	amorphous interstitial change
अघ्राणता	anosmia

अतानिक	atonic
अतालता	arrhythmia
अतिकोलेस्टरोलता	hypercholesteraemia
अतिज्वर	hyperpyrexia
अतिपरासारी	hypertonic
अतिपरासारी ग्लूकोज	hypertonic glucose
अतिप्रसारण	hyperextension
अतिप्रसारित	hyperextended
अतिवृद्धि	hypertrophy
अतिवृद्ध जठरशोथ	hypertrophic gastritis
अतिरक्तता	hyperaemia
अतिरक्तदाब	hypertension
अतिरिक्त चूचुक	accessory nipple
अतिविकसन	hyperplasia
अतिविकसनी/अतिविकसनित	hyperplastic
अतिवोल्टता	supervoltage
अतिव्यापन	overlapping
अतिसार	dysentery
अतिसार कणिकागुल्म	dysenteric granuloma
अतिस्वेदलता	hyperhidrosis
अतिस्राव	hypersection
अतिसवेदिता	hyperaesthesia
अदुर्दमता	nonmalignant
अधराग-घात	paraplegia
अधि-अग्न्याशय	suprapancreatic
अध्यारूढ	supervene
अध्युरोभगिका	suprasternalnotch
अधिकठद्वारीय	supraglottic
अधिकठद्वार अवकाश	supraglottic space
अधिकतम यूरिया-उत्सर्ग	maximum urea clearance
अधिकठिका	suprahyoid
अधिकतम श्वसनक्षमता	maximum breathing capacity

अधिकर्णपटह दरी	epıtympanıc recess
अधिचक्रक ग्रन्थिशोथ	epıtrochlear adenıtıo
अधिजघन मूत्राशयछेदन	suprapubıc cystotomy
अधिजघन पुरस्थोच्छेदन	suprapubıc prostectomy
अधिजत्रुक	supoaelavıcular
अधिदृढतानिकी	epıdural
अधिनाभि अभ्युदग हर्निया	supraumbılıcal ventral hernıa
अधिनेत्रगुहा भगिका	supraorbıtal notch
अधिमूत्रमागता/एपिस्पेडिआस	epıspadıas
अधियकृत	suprahepatıc
अधिमस्तिष्कछदि	supratentorıal
अधिवृक्कोच्छेदन	adrenclectomy
अधिवृषण	epıdıdymus
अधिवृपण-वृपणशोथ	epıdıdymo-orchıtıs
अधिसाख्यिक स्तन	supernumerary breasts
अधिस्थापन	supervene
अधिस्थूलक अस्थिभग	supracondylar fracture
अधिस्थूल्क कीलक अस्थिछेदन	supracondylar cuneıform osteo-tomy
अधीरता	nervousness
अधोजठर	hypogastrıc
अधोजत्रुक धमनी	subclavıan artory
अधोजिह्वा ग्रन्थि	sublıngual gland
अधोजिह्वा तन्त्रिका	hypoglosıal nerve
अधोमूत्रमार्गता	hypospadıas
अधोहनु	mandıble
अधोहनु का कोण	
अधोहनु प्रवर्ध	mandıbular process
अधोहनु विभाग	mandıbular dıvısıon
अधोहनु स्तभ	lock jaw
अध शाखाशिरा, वृहत्	saphenous veın, greater
अननुनादी क्षेत्र	dull area

अनाइट्रोजनज प्रोटीन	non-nitrogenous protein
अनाक्सीजनित	unoxygenated
अननुपातिक वृद्धि	disproportionate growth
अनर्थन्तट्टित अस्थिभग	unimpacted fracture
अनावरण	exposure
अनवरोधिता	patency
अनवरोधक	non-obstuctive
अनावृत	open
अनावृत क्षेत्र	bare area
अनवशेषी आहार	non-residual diet
अनासजित	non-adherent
अनिवार्य रक्तमेह	essential haematuria
अनुकम्पी रोध	sympathetic block
अनुकम्पी उच्छेदन	sympathectomy
अनुक्रमानुपाती	directly proportional
अनुक्रिया	response
अनुतीव्र	subacute
अनुद्विद्ध	unerupted
अनुक्रिया यत्रावलि क्रियाविधि	responsive mechanism
अनुगम	sequelae
अनुग्र	mild
अनुचालन	taxis
अनुच्छेदनीय	unresectable
अनुत्रिकास्थि	coccyx
अनुत्रिक वेदना	coccydyma
अनुनादी	resonant
अनुप्रयोग	application
अनुप्रस्थ	transverse
अनुप्रस्थ औदरिका	transverous abdominis
अनुप्रस्थिका प्रावरणी	fascia transversalis
अनुमस्तिष्क वृन्त	cerebellar peduncles

अनुमापन/निर्धारण	assessment
अणुविक्षोभ	molecular disturbance
अकुश दौरे	uncinate fits
अगरेखाकन	surface marking
अगुष्ठ मूलोत्सेध	thenar emminence
अगोच्छेदन	amputation
अन्तरास्थि	interosseous
अन्तरास्थि-तारलगाना	interosseous wiring
अन्त कचुक	intima
अन्तर्गम	inlet
अन्तर्गर्भकाल/अन्तर्गर्भाशय काल	intrauterine life
अन्तर्ग्रथन-सबध `	synaptic connection
अन्तर्घट्टन	impaction
अन्तर्घट्टित अस्थिभग	impacted fracture
अन्तर्जघिका	tib'a
अन्तराजघिक उलूखल	tibiofibular mortice
अन्तरातुगक भगिका	intertragic notch
अन्तर्नासा-निरसन	intranasal exenteration
अन्तरान्यूरोन विघटन	inter neuronal breakdown
अत -प्रमस्तिष्क	intracerebral
अन्तर्मज्जा कील	intramedullary nail
अन्त यकृत	intrahepatic
अतर्नत प्रकोष्ठ	cubitus varus
अतर्वाहिनी—	intraductal
अतर्वासी केथिटर	indwelling catheter
अतर्विष्ट पुटी	inclusion cyst
अत -सचरण/सरण	infiltration
अत सरणी	infiltrating
अत -स्तनविद्रधि	intramammary abscess
अन्त स्थ	intrinsic
अत स्थित निरोप	inlay graft
अतर्जनस्तरकृत बहिर्वलन	enterodermal evagination

अतर्जीव विष	endotoxin
अंत -प्रकोष्ठिका	ulna
अतराप्रकोष्ठ सधि	radioulnar joint
अतर्धमनी शोथ	endarteritis
अतर्धमनी शोथ, लोपी	endarteritis obliterans
अतर्नति	varus
अतर्निहित	embedded
अत पुटी	endocyst
अतर्मुखी	introspective
अतरीयक कोशिकाये	ependymal cells
अतरीयकार्बुद	ependymoma
आत्रान्त्र प्रवेश	intussusception
अतस्त्वक्	intradermal
अतर्मणिबध आकुचिका	flexor carpii ulnaris
आत्राविष्टाश	intussusceptum
अतर्रोध	occlusion
अतर्वलन	invagination
अतर्वस्तु	contents
अतर्वाहिका	intravascular
अतर्वेष्टन	intrathecal
अत वक्ष प्रावरणी	endothoracic fascia
अत्य	terminal
अत्य परपोषी	definitive host
अतर्लसीका दाव	endolymphatic pressure
अतर्लोपी	obliterative
अत.शल्यता	embolism
अतः-शल्योच्छेदन	embolectomy
अतस्थल	endplates
अत स्रावी त्रुटि	endocrine defeciency
अतर्हृद्	endocardium
अतर्हृद शोथ	endocarditis
अतरालीय	interstitial

अतराली अनुप्रयोग	interstitial application
अतरागुलि	interphalangeal
अतराली हर्निया	interstitial hernia
अतरावग्रह	intersigmoid
अतरादत तार बाधना	interdental wiring
अतराधमनी रक्ताधान	interarterial transfusion
अतराफलक	interlaminar
अतरालिन्दी खातिका	interatrial groove
अतरावकाशी	interlumenal
अतरावग्रह	intersigmoid
अतराशिखरक	intertrochanteric
अतरास्थूलक भगिका	intertrochanteric notch
असफलक	scapula
अन्त स्राव	internal secretion
अदम्य आक्षेप	uncontrollable convulsion
अद्वार गुद	imperforate anus
अंधभौमिक प्रदीप्ति	darkground illumination
अध रध्र	foramen caecum
अधात्र	caecum
अधात्र-	caecal
अधात्र खात	caecal fossa
अधात्र छिद्रीकरण	caecostomy
अधात्र पश्च	retrocaecal
अन्यत्रानुभूत वेदना	referred pain
असकूट-अक्षक सधि	acromioclavicular joint
असकूट प्रवर्ध	acromion process
असगर्त खात	glenoid fossa
असगर्त-प्रगड स्नायु	glenohumeral lig
असतुड प्रवर्ध	coracoid process
असतुडाक्षक	coracoclavicular
अनुकम्पी उच्छेदन	sympathectomy
अनुक्रमानुपाती	directly proportional

अपकर्षण	distraction
अपकेन्द्रण	centrifugalise
अपकेन्द्रित	centrifugalised
अपघर्षण	abrasion
अपरदन	erosion
अपवर्तन	abduction
अपवर्तन फ्रेम	abduction frame
अपवर्तिका	abductors
अपवर्धन	maldevelopment
अप्रत्यक्ष	indirect
अपवाही ततु	efferent fibres
अपसामान्यता	abnormality
अपसामान्य गतिशीलता	abnormal mobility
अपस्फीत एन्यूरिज्म	varicose aneurysm
अपस्मार	epilepsy
अपसवेदन	paraesthesia
अपसवेदी ऊर्वार्ति	meralgia paraesthetica
अपहरण/एब्लेशन	ablation
अपहृत करना	strip off
अपार्यता	opacity
अपावरोही वृपण	maldescended testes
अपुन स्थापित सधिच्युति	unreduced dislocation
अपुन स्थाप्य	irreducible
अपित्तमेही कामला	acholuric jaundice
अपूतिता	asepsis
अप्रकुचन	asystole
अभिघात	trauma
अभिघातज निकुचन	traumatic stricture
अभिघातज प्रलाप	traumatic delerium
अभिघातज वातस्फीति	surgical emphysema
अभिघातोत्तर ज्वर	posttraumatic fever
अभिमध्य गुल्फिका स्नायु	medial malleolar ligament

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible] stomatitis
[illegible]	[illegible]
[illegible]	indications
[illegible]	[illegible]
[illegible]	achalasia cardia
[illegible]	anuria
[illegible]	amoebiasis
[illegible]	amoebic dysentery
[illegible]	amoebic abscess
[illegible]	amoeboma
[illegible]	aneurysm, false
[illegible]	cranium bifidum
[illegible]	spina bifida
[illegible]	avascular necrosis
[illegible]	anaemia
[illegible]	non-haemolytic
अरुचि	anorexia
अरीय	radiating
अर्धचन्द्र उपास्थि	semilunar cartilage
अर्धचन्द्राकार रेखा	Linea semilunaris
अर्धचन्द्राभ	lunate
अर्धांगघात	hemiplegia
अर्धजिह्वोच्छेदन	hemiglossectomy

अर्धदृष्टिता	hemianopia
अर्धवृहदान्त्रोच्छेदन	hemicolectomy
अर्ध सन्यास	semicoma
अर्धावनत	midprone
अर्बुद	tumour
अल्पावशेषी आहार	low-residue diet
अल्पघनास्त्री बिम्बाणु परप्यूरा	thromboeytopaenic purpura
अल्पतम	minimal
अल्पताप	hypothermia
अल्पदन्द्रोन कोशिकायें	oligodendroglia cells
अल्पपरिवर्धन	underdevelopment
अल्पप्रोटीन रक्तता	hypoproteinaemia
अल्पमूत्रता	oliguria
अल्परंजित	hypopigmented
अल्पवर्णी अरक्तता	hypochromic anaemia
अल्पविकसन	hypoplasia
अल्पसंवेदिता	hypoaesthesia
अल्पशर्करारक्तता	hypoglycaemia
अलिन्द पर सीवन	atroseptopexy
अलिन्द-विकम्पन	atrial fibrillation
अलुप्त	unobliterated
अव-अधात्र	subcaecal
अव-अधोहनु	submandibular
अव-असफलक	subscapular
अवासफलका	subscapularis
अवासपृष्ठिका	infraspinatus
अवअरकनाइड रक्तस्राव	subarachnoid haemorrhage
अवकाश	space
अवकाश पूरक क्षति	space occupying lesion
अवकाशिका	lumen
अवकाशी ऊतक	areolar tissue
अवकेन्द्रिक	intranuclear

अवकण्ठद्वारीय	infraglottic
अवचिबुक	submental
अवगमी	perceptive
अवग्रह	sigmoid
अवग्रह बृहदान्त्र दर्शन/सिगमाइडोस्कोपी	sigmoidoscopy
अवघुटिका मध्यपदकूर्च अन्तर्वर्तन	subtellar midtarsal inversion
अवघुटिका सधिस्थिरीकरण	subtellar arthrodesis
अवचेतक दुष्क्रियता	hypothalamic dysfunction
अवतीव्र जीवाणुज अन्तर्हृद्शोथ	subacute bacterial endocarditis
अवजिह्वा डरमाइड	sublingual dermoid
अवजिह्वा पुटी	thyroglossal cyst
अवटुजिह्वा वाहिनी	thyroglossal duct
अवतानन	pronation
अवतुण्डक	subcoracoid
अवत्वक्	subdermal
अवदृढतानिका रक्तस्राव	subdural haemorrhage
अवधारण	retention
अवधारण एनीमा	retention enema
अवधारण पुटी	retention cyst
अवनमन	depression
अवपर्यस्थि रक्तगुल्म/हीमेटोमा	subperiosteal haematoma
अवपर्यस्थि विद्रधि	subperiosteal abscess
अवपर्शुक	subcostal
अवमध्यच्छद विद्रधि	subphrenic abscess
अवमस्तिष्कच्छदीय	infratentorial
अविवरता	atresia
अवरणित रोगी	unselected cases
अवरुद्धपथ कामला	obstructive jaundice
अवरोधक	obstructive
अवशिखरक	subtrochanteric
अवशख अन्वेषण	subtemporal exploration

अवश्लेष्मिक उच्छेद	submucous resection
अवश्लेष्मल कला/अवश्लेष्मल	submucosa/submucous membrane
अवश्लेष्मिक मार्ग	submucous approach
अवसंधि भ्रंश	luxation
अवसम्पुटीय	subscapular
अवस्थान भ्रंश	subluxation
अवसादन/अवसन्नता	prostration
अवस्तनपुटक	submammary fold
अवाप्तिया	findings
अवासकूट	subacromial
अवासगर्तिक	subglenoid
अविकसन	anaplasia
अविकसनित	anaplastic
अविभक्त	unipartite
अविटामिनता	avitaminosis
अवशिष्ट	residual
अवशिष्ट अंगघात	residual paralysis
अविशिष्ट कणिकागुल्म	nonspecific granuloma
अविशिष्ट अभिष्यन्दी नासाशोथ	nonspecific catarrhal rhinitis
अविशिष्ट संक्रमण	nonspecific infection
अविस्तारणीय पाती फुप्फुस	unexpandable atelectic lung
अवृन्ती/वृन्तहीन	sessile
अवोपास्थि पुटी	subchondral cyst
अवोष्ठविवर छिद्रीकरण	sublabial anterostomy
अशक्तता	morbidity
अशक्त/मूढ	imbecile
अश्मरी	calculus
अश्मरी अमूत्रता	calculus anuria
अश्मरी भंजन	litholapaxy
अश्वपाद	equinus
अश्रुस्राव	epiphora

अगस्थलान्तरण/विक्षेपण	metastasis
अश	piles, haemarrhoids
अर्श आभ्यतर	internal piles/inthaemarhoids
अर्श, बाह्य	external piles/ext "
असत्यमार्ग/कूटमार्ग	false passage
अस्तनता	amazia, amastia
अस्थानता	ectopia
अस्थानी मूत्राशय	ectopia vesitcae
अस्थानी वृषण	ectopic testes
अपुन स्थापित सविच्युति	unreduced dislocation
अस्थिकर पेशीशोप	myositis ossificans
अस्थिकर आवेष्टन	bony shell
अस्थि-ड्रिल	bone drill
अस्थिनिरोपण	bone grafting
अस्थि निरोप	bone graft
अस्थ्यर्बुद	*osteoma*
अस्थ्योपास्थिमय	osteocartilaginous
अस्थिजनक सारकोमा	osteo genetic sarcoma
अस्थि दुष्पोपण	osteodystrophy
अस्थिभग	fracture of bone
—अनुदैर्घ्य	—longitudinal
—अनुप्रस्थ	—transverse
—अपूर्ण	—incomplete
—अवनत	—depressed
—उपद्रवयुक्त	—complicated
—नवशाखा/ग्रीनस्टिक	—greenstick
—पूर्ण	—complete
—सपीडन	—compression
—सर्पिल	—spiral
—रेखाकार	—linear
—विवृत	—compound, open,
—सवृत	—simple, closed

अस्थिभंगुरता	fragilitas ossium
अस्थिमज्जा शोथ	osteomyelitis
अस्थिमृदुता	osteomalacia
अस्थिरता	instability
अस्थिविकास	ossification
अस्थिसंधि विकृति	osteoarthropathy
अस्थिसंधि शोथ	osteoarthritis
अस्थिशोष/अस्थिसुषिरता	osteoporosis
अपूय	non-suppurative
असमन्वय	inco-ordination
असंयोजन	non-union
असंतुलित	unbalanced
असंतुलन	imbalance
असममिति	asymmetry
असममित	asymmetrical
असंवेदिता/असंवेदन संज्ञाहरण	anaesthesia
अक्षक	axis (vert.)
अक्षिदोलन	nystagmus
अक्षिबिम्ब शोफ	papilloedema

आ

आकर्ष/उद्वेष्ट	spasm
आकर्षी	spasmodic
आकर्षरोधी/आकर्षहर	antispasmodic
आकुंचक उपबंधनी	flexor retinaculum
आकृत्यनुसार	morphologically
आकृतिकी	morphology
आक्सीजन अल्पता/अल्पाक्सीयता	hypoxia
आखुरण	scrapings
आगन्तुक शल्य	foreign bodies
आघटन	incidence
आघात	injury

आचूषण	aspiration
आतत भाग	pars tensa
आतचन/स्कंदन	coagulation
आतचनरोधी	anticoagulant
आतचनीयता	coagulability
आण्वीय विलयन	molecular solution
आद्य	primitive
आद्य आन्त्र	primitive gut
आद्य मुखपथ	stomodaeum
आद्यांगिक	rudimentary
आधारी	basal
आधारी कुंड	basal cistern
आधारी कोशिका इपीथीलिओमा	basal cell epithelioma
आधारी कोशिका कार्सिनोमा	basal cell carcinoma
आधारी प्लूरा-फुप्फुसशोथ	pleuropulmonary inflammation
आध्मान	tympanitis/distension of intes-tines
आननघात/आनन अंगघात	facial paralysis
आनन-ग्रस्तता	facial involvement
आनन-तन्त्रिका	facial nerve
आनन-विदर	facial cleft
आन्त्रावरोध	intestinal obstruction
आन्त्रचूषण	intestinal suction
आन्त्रधावन	bowel washes
आन्त्रयोजनी घनास्रता	mesenteric thrombosis
आन्त्रयोजनी-भित्तिक खात	mesentero-parietal fossa
आन्त्र की वातपुटिकामयता	cystic pneumatosis of intes tines
आन्त्रवायु नली	flatus tube
आपात	emergency
आपाती सर्जरी	emergent surgery
आप्लावी मूत्र असंयति	overflow incontinee of urine

आभ्यन्तर अर्श	internal haemarrhoids
आभ्यन्तर औदरिक द्वार	internal abdominal ring
आभ्यन्तर तिर्यक् औदरिका	obliquus abdominis internus
आमाशय	stomach
आमाशयदर्शी,गैस्ट्रोस्कोप	gastroscope
आमाशय प्रक्षालन नली	stomach tube
आरोही गोणिकावृक्कशोथ	ascending-pyelonephritis
आरोही गोणिका-एक्सरे-चित्रण	ascending pyelography
आरोही प्रशाखा	ascending ramus
आरोही सक्रामी पैरोटिडशोथ	ascending infective parotitis
आलवाल	calyx
आलव	fulcrum
आवर्तक अधरागघात	recurrent paraplegia
आवर्धन	magnification
आवृत्ति क्रम	frequency range
आशयिक	splanchnic/visceral
आशय-अनुकम्पी तन्त्रकोच्छेदन	splanchnicectomy
आशयनि सरण	eventration
आशयभ्रं श	visceroptosis
आंशिक जठरोच्छेदन	partial gastrectomy
आंशिक वृक्कोच्छेदन	partial nephrectomy
आस्तर	lining
आसन कटक	ischial spine
आसन गुलिका	ischial tuberosity
आसन मलाशय खात	ischiorectal fossa
आसजन	adhesion
आसजित	adherent
आसजित प्लास्तर	adhesive plaster
आहारोत्तर	postpandral
आक्षेप	convulsions
इतरविकसन	metaplasia
इतिवृत्त	history

इनैमल अग	enamel organs
इफेड्रिन	ephedrine
इवैकुएटर/ निस्सारक	evacuator
उग्र उदर	acute abdomen
उच्छ्रायी	erectile
उच्छ्रयण	erection
उच्छेदन	excision
उच्छेद जीवोतिपरीक्षा	excision biopsy
उच्छेद सम्मिलन	resection-anastomosis
उत्केन्द्रित	eccentric
उत्क्रमणीय/उत्कक्रणशील	reversible
उत्खनित उपान्त/परिसीमा	underground margin
उत्तान/उथला	shallow
उत्पादक/जननिक	germinal
उत्सर्जन कार्य	excretory function
उत्सर्जन गोणिका एक्सरे-चित्र	excretory pyelogram
उत्सिक्त	flushed
उद्भवन काल	incubation period
उदर-कचुक हाइड्रोसील	abdomino-vaginal hydrocele
उदरछेदन	laparotomy
उदरपार आरोपण	transcoelomic implantation
उदरमध्य रेखा	linea alba
उदरभित्ति	abdominal wall
उदरभित्ति के छेदन	abdominal incision
उदर-मूलाधार-उच्छेदन	abdominoperineal resection
उदर-रज्जुका हाइड्रोसील	abdomino-funicular hydrocele
उदर-वक्ष	abdomino-thoracic
उद्वर्ध/अपवृद्धि	excrescence
उद्वृद्धि	outgrowth
उ डुकपुच्छ	vermiform appendix
उ डुकपुच्छोच्छेदन	appendicectomy
उ डुकपुच्छयोजनी	mesoappendix

उ डुकपुच्छशोथ	appendicitis
उडुकपुच्छोच्छेदनोत्तर सलक्षण	post appendicectomy syndrome
उन्मूलन	enucleation
उपकला प्रचुरोद्भवन	epithelial proliferation
उपत्वचाभ कार्सिनोमा	epidermoid carcinoma
उपद्रव	complications
उपरिस्थ	superficial
उपरिस्थ उपस्थ	superficial pudendal
उपरिस्थ पैरोटिडोच्छेदन	superficial parotidectomy
उपरिस्थ परिभ्रमी घनास्त्रशिराशोथ	superficial migratory thrombophlebitis
उपस्कर	equipment
उपार्जित	acquired
उपार्जित त्रुटियाँ	acquired defects
उपात्त	data
उपान्त	margin
उपान्तीय	marginal
उपास्थ्यर्बुद	chondroma
उपास्थि दुर्विकसन	dyschondroplasia
उपास्थिमृदुता	chondromalacia
उभार	bulge
उरोऽस्थि	sternon
उरोस्थिजत्रुक सधि	sternoclavicular joint
उर कटि व॒हि प्रवाह	thoracolumbar outflow
उर जत्रुककर्णमूलिका	sternocleidomastoideus
उरोस्थि मुण्ठक	manubrium sterni
उलूखल	acetabulum
उलूखलोष्ठ	acetabular labium
उलूखल सधि	ball and socket joint
उल्लाघता काल	convalescence
उल्व	amnion
ऊतक विकृति	histopathology

ऊतक शोथ	cellulitis
ऊर्ध्व अग्न्याशयग्रहणीधमनी	superior pancreaticoduodenal artery
ऊर्ध्व आन्त्रयोजनी धमनी	superior mesenteric artery
ऊर्ध्व चतुर्थांश अर्धदृष्टिता	upper quadrantic heminopsia
ऊर्ध्वोष्ठ खात	philtrum
ऊर्ध्व प्रेरक न्यूरोन	upper motor neurone
ऊर्ध्वाधर	vertical
ऊर्ध्व संकीर्णिका	superior constrictor
ऊर्ध्व हनु	maxilla
ऊर्ध्व हनुकोटर	maxillary antrum
ऊर्ध्व हनु प्रवर्ध	maxillary process
ऊर्ध्व हनु विवर	maxillary sinus
ऊर्ध्व हनु विवरशोथ	maxillary sinusitis
ऊष्मा नियामक केन्द्र	heat regulating centre
ऊष्मस्वेदन	hot fomentation
एक-कोष्ठकी	unicellular
एक-पार्श्वी	unilateral
एकल गुलिका	tuberculum impar
ऐक्टिनोमाइकोसिस	actinomycosis
एक्सरेअपार्य	radiopaque
ऐक्सरेपार्य	non-radiopaque
ऐक्सरे चिकित्सा	x-ray therapy
ऐक्सोन-तन्तु विच्छेद	axontmesis
ऐटिक	attic
ऐंठन/मरोड	twist
ऐडीनाइड	adenoids
ऐडीनाइडोच्छेदन	adenoidectomy
ऐडीमेन्टोमा	adementoma
एथमाइड	ethmoid
एथमाइडी विवर	ethmoidal sinus
एथमाइड शोथ	ethmoiditis

ऐथीटोसिस/वलन	athetosis
ऐथीटोसी	athetotic
ऐन्यूरिज्म	aneuryson
ऐन्यूरिज्मी वेरिक्स	aneurysmal varix
ऐप्थी	aphthac
ऐप्थसी मुखपाक	aphthous stomatitis
ऐप्यूलिस	epulis
ऐमोनियामय विघटन	ammoniacal decomposition
ऐम्पाईमा/अन्त पूयता	empyema
ऐपेसिरिलास	erysipelas
ऐराइथ्रोमाइसिन	erythromycin
ऐलर्जी	allergy
ऐलबूमिनमेह	albuminuria
ऐस्कीरिया कोलाई	escheria coli
ओमेगा	omega
ओष्ठ	lip
औटोफानी	otophony
और्वी कैल्कर/कैल्कर फैमोरेल	calcar femorale
और्वी चतु शिरस्का	quadriceps femoris
और्वी पट	septum femorale
और्वी त्रिभुज	femoral triangle
और्वी नलिका	femoral canal
और्वी हर्निया	femoral hernia

क

ककाल्कर्षण/अस्थिकर्षण	skeletal traction
कर्कतिका क्षेत्र	pectinate area
कणुप्ररूप	miliary type
कटकोत्कर्षिका	erector spinae
कटिपार्श्वच्छदिका	latissimuosdorsi
कटिवेधन	lumbar puncture
कटि लवनिका	psoas

कंठद्वार	glottis
कठोर/कठिन	sclerous
कठिन कार्सिनोमा	scirrhus carcinoma
कडराकला/कडरावितान	aponeurosis
कडराकल्पिका	semiten dinosus
कडराछेदन	tenotomy
कडरारज्जु	chonda tendinae
कडराश्लेष्मकलाशोथ	tenosynovitis
कणिका-ऊतक	granulation tissue
कणिकागुल्म/ग्रेनूलोमा	granuloma
कणिकागुल्मी एप्यूलिस	granulomatous epulis
कडरापुटी, गठिका	ganglion
कन्दरिका/वैलीकुला	vallecula
कन्दबहि प्रवाह	bulbar outflow
कन्द प्ररूप	bulbar type
कनफेड	mumps
कनिष्ठा	little finger
कनिष्ठामूलोत्सेध	lypothenar emminence
कपाटिका	valve
कपाटिकीय प्रत्यावहन	valvular regurgitation
कपाल अन्तराल	fontanelle
कपाल-अस्थि-सयोजन	craniosyntosis
कपालत्रिक वहि प्रवाह	craniosacral outflow
कपालबाह्य उपद्रव	extracranial complications
कपाली वायुपुटी	cranial pneumatocele
कपालशीर्ष	vertex
कफस्राव	expectoration
कवकाकार	fungiform
करभास्थिया	metacarpal bones
करभ-अगुलि सधि	metacarhophalangeal joint
कर्ण	ear
कर्णकाठिन्य	otosclerosis

कर्ण गडिका	otic ganglion
कर्णदर्शन	otoscopy
कर्णपल्लव	auricle
कर्णपालि	lobule of ear
कर्णमूथ	wax (in ear)/cerumen
कर्णमूल कोटर	mastoid antrum
कर्णपटह छेदन	myringotomy
कर्णमूलोच्छेदन	mastoidectomy
कर्णमूल प्रवर्ध	mastoid process
कर्णमूल शोथ	mastoiditis
कर्षण	traction
कर्णस्वरयत्र विद्	otolaryngologist
कर्णक्ष्वेड	tinnitus
कण्डू	pruritis
करोत्तानिका	supinator
कर्तन अस्थिभग	shear fracture
कर्तन आघात	shear injury
क्रमाकित	graduated
क्रान्ति	crisis
क्रान्तिक क्षेत्र	critical area
क्रियाविधि	mechanism
क्रेपिटस/करकर	crepitus
क्रोन रोग	crohn disease
कला मध्यछद/डायाफ्राम	membranous diaphragm
कलामध्य मूत्रमार्ग	membranous urethra
क्लान्तिशीलता	fatiguability
कशेरुका अग्रसर्पण	spondylolisthesia
कक्षपुटक	axillary fold
कक्षपुच्छ	axillary tail
काकलक/युवुला	uvula
कठोरता/दृढता	rigidity
काठिन्य	sclerosis

काठिन्यकर विलयन	sclerosing solution
काड	shaft
काय/देह/शरीर	body, soma
कायिक	somatic
कार्यात्मक वाचाघात/क्रियात्मक वाचाघात	functional aphonia
कार्यात्मक/क्रियात्मक अपविन्यास	functional derangement
कारोनरी हृद्रोग	coronary heart disease
कार्बाकोल	carbachol
कारवकल	carbuncle
कारसिनोमावत अर्बुद	carcinoid tumours
किण्वन	fermentation
किरेटिनीकृत कोशिकाये	kera'inised cells
किरीटी पट	coronal septum
किरीटी परिखा	coronal sulcus
किरणन	irradiation
किरण कवक	ray fungus
किलाटी पदार्थ	caseous material
किलाटीभवन	caseate/caseation
क्विन्सी	uinsy
कुविवर्तन/कुघूर्णन	malrotation
कीपवक्ष	funnel chest (pectus excavatus)
कीलक	wedge
कीलकाकार उच्छेद	wedgeshaped resection
कीलकपद कूर्चोच्छेदन	wedge tarsectomy
किलाइड	keloid
कुटिल	tortous
कुठित व्यवच्छेदन	blunt dissection
कुपोषण	malnutrition
कुब्जता	kyphosis
कुर्बरित	mottled
कुल्या	aquaeduct

कुष्ठ	leprosy
कुसयोजन	malunion
कुक्षि	coeliac
कुक्षिधमनी	coeliac artery
कूट	spurious, false, pseudo
कूटकलायुक्त मुखपाक	pseudomembranous stomatitis
कूटवद्धता सलक्षण	entrapment syndrome
कूटवन्धक स्थान	entrapment point
कूटमिकसोमा	pseudomyxoma
कूटम्यूसिन	pseudomucin
कूटम्यूसिनी पुटी	pseudomucinous cyst
कूटसधिता	pseudoarthrosis
कूटसम्पुट	pseudocapsule
कूप दन्तार्बुद	follicular odontome
कूर्पर/कफोणी सधि	elbow joint
कूर्पर प्रवर्ध	olecranon process
कृन्तक दात	incisors
कृत्रिम वातलवक्ष	artificial pneumothorax
कृष्ण जिह्वाशोथ	glossitis nigrano
केथिटर/मूत्रशलाका	catheter
केथिटर प्रवेशन	catheterization
केनुला	canula
केलोरीय परीक्षण	caloric testing
केवर्नोमिटी	cavernomatous
केशिकाशैया	capillary bed
केशिका वाहिकार्बुद	capillary haemangioma
केशिका स्तवक	glomerulus
केसोन रोग	cason disease
कैन्सर	cancer
कैरोटिड गह्वर नालव्रण	carotid cavernous fistula
कैरोटिड रक्तस्राव	carotid haenorrhage
कैलस	callus

कैल्सीकरण	calcification
क्लैब्स-लोफलर दडाणु	klebbs-loffler bacillus
कोटर	antrum
कोथ	gangrene
कोथयुक्त पित्ताशयशोथ	gangrenous cholecystitis
कोथयुक्त मुखपाक	gangrenous stomatitis
कोबाल्ट किरणपुज	cobalt beam
कोरिया	chorea
कोरियनइपीथीलियोमा	chorion epithelioma
कोरियो एथीटोसिस	chorioethetosis
कोलीन धर्मी	cholergic
कोलाइड प्ररूप	colloid type
कोशिका नीड	cell nests
कोष्ठक	acinus
कोष्ठिकायें/कोष्ठिकी-भवन	sacculations
कोष्ठिकीय	acinous
कोर्डी	chordae
कोटरीकरण	cauterization
कौकसावारा/अन्तर्नत नितव	coxa vara
कोकसा वाल्गा/वहिर्नत कूनितव	coxa valga
कौन्ट्रेकूप/विपरीताग पात	contre coup
कौर्नीबैक्टीरियम डिप्थरी	cornybacterium diphtheriae
कौलीसिस्टेटिओमा	cholecysteatoma
कौलेस्टरोसिस/कौलेस्टरोलता	cholesterosis
खडाश	segments
खडतालु	lobe cleftpalate
खडीय निमोनिया	lobar pneumonia
खडकीय निमोनिया	lobular pneumonia
खडोच्छेदन	segmental resection
खडाशोच्छेदन	lobectomy
खडक	lobule
खात	fossa

खातिका	groove
खातिकायुक्त	grooved
खुला हुआ अंडाकार रंध्र	patent foramen ovale
खुली धमनीवाहिनी	patent ductus artoriosus
गजचर्मता	pachyderma
गड़े हुए स्थूणक	burried stump
गतिकारक	pacemaker
गतिविभ्रम	ataxia
गतिशीलता/चलत्व	mobility
गंडिका, चाप	zygoma
गंडिका,कंडरापुटी	ganglion
गंडिकातंत्रिकार्बुद	ganglioneuroma
गंडिकापूर्व परिच्छेदन	preganglionic section
गंडिकारोधन	ganglion blocking
गभीर	deep
गम्मा	gumma
गम्माजन्य, गम्मीय	gummatous
ग्रन्थ्यर्बुद	adenoma
गरारे, कुल्ले करना	gargle
ग्रसनी	pharynx
ग्रसनी-ग्रासप्रणाल संगम	pharyngo-oesophageal junction
ग्रसनी थैली	pharyngeal pouch
ग्रह	seizure
ग्रहणी, आन्त्रावरोध	duodenal ileus
ग्रहणी टोपी	duodenal cap
ग्रहणी नलिकाप्रवेशन	duodenal intubation
ग्रहणी प्रत्यावहन	duodenal regurgitation
ग्रहणी वेध	duodenal perforation
ग्रहणी-मध्यान्त्र वक्र	duodeno-jejunal flexure
ग्रास प्रणाल	oesophagus
ग्रासप्रणाल-जठर संयोजन	oesophago-gastric anastomosis

ग्रासप्रणाल द्वार/छिद्र	oesophageal piatus
ग्रीवा/ग्रैव	cervical
ग्रीवा अंसकंठिका पर्व	jugulo-omohyoid node
ग्रीवा खिंचाव	cervical strain
ग्रीवा-द्विपिंडिका पर्वसमूह	jugulodigastric nodc group
ग्रीवा-रंध्र सलक्षण	jugular foramen syndrome
ग्रीवा घनास्रशिराशोथ	jugular thrombophlebitis
ग्रीवा शिरा	jugular vein
ग्रीष्म प्रवाहिका	summer diarrhoea
ग्रैव पर्शुका	cervical ribs
ग्रैव हर्नियाभवन	cervical herniation
गल तोरणिका	fauces
गलतोरणिका टॉसिल	faucial tonsil
गलतोरणिका स्तंभ	pillars of fauces
गलदाह	sore throat
गलपिचु	throat swab
ग्लायोमा	glioma
गवाक्ष	obturator
गवीनी	ureter
गवीनी अश्मरीनिष्कासन	ureterolithotomy
गवीनी कलिका	ureteric bud
गवीनी कुहरछेदन	ureteric meatotomy
गवीनी-मूत्राशय संवरणिका	uretero vesical sphincter
गवीनी शूल	ureteric colic
गह्वर रक्तवाहिकार्बुद	cavernous haemangioma
गह्वर शिरानाल	cavernous sinus
गह्वर शिरानाल घनास्रता	cavernous sinus thrombosis
गिल चाप	branchial arch
ग्लिस्सन सम्पुट	glissons capsule
गुच्छित	racemose
गुद अन्तरापेशीपट	anal intermuscular septum
गुद आकर्ष	rectal spasm

गुदानुत्रिक राफे	anococcygeal raphe
गुद उन्नमनी	levator ani
गुद कडू	pruritis ani
गुद गर्तिका	anal pit
गुद मलाशय भगन्दर	anorectal fistula
गुद मलाशय वलय	anorectal ring
गुद विदार	anal fissure
गुद सकीर्णता	anal stenosis
गुद सवरणी	anal sphincter
गुद दर्शन	proctoscopy
गुद नालव्रण	anal fistula
गुप्त अयुक्त मेरुदड	spina bifida occulta
गुप्त वृषणता	cryptorchidism
गुवर्नेकुलम टेस्टिस	gubernaculum testis
गुम्वद	dome
गुरुत्व	gravity
गुरुत्वीय वल	gravitational force
गुल्फ प्रतिक्षेप	ankle jerk
गुल्फिका/गुल्फ	malleolus
गुल्फ अवमोटन	ankle clonus
गुहा/गुहिका	cavity
गुहिका/गुहा	cavus
गूढ/गुप्त	occult
ग्लूकोजमेह	glucosuria/glycosuria
गृध्रसी	sciatica
गृध्रसी हर्निया	sciatic hernia
गृहचिकित्सक	house physician
गोणिका	pelvis
गोणिका अश्मरी निष्कासन	pyelolithotomy
गोणिका-गवीनी सगम	pelviureteric junction
गोणिका छिद्रीकरण	pyelostomy
गोणिकावृक्काश्मरी निष्कासन	pyelonephrolithotomy

गोणिकावृक्कशोथ	pyelonephritis
गोणिकावृक्कशोथज सकुंचित वृक्क	pyelonephritic kidney
गोणिकाशोथ	pyelitis
गोनोमेहजन्य निकोचन	gonorrhoeal stricture
गोलकपश्च तन्त्रिकाशोथ	retrobulbar neuritis
गोलकोशिकाकृत सारकोमा	roundcelled sarcoma
गोल रुधिरकोशिका बहुलता	spherocytosis
गोलाकार प्रवर्ध	globular processes
गोलार्धोच्छेदन	hemispherectomy
घट्टा	corn
घनास्र-अन्तर्धमनी-उच्छेदन	thrombo-endarterectomy
घनास्रशिराशोथ	thrombophlebitis
घनास्रित	thrombosed
घनीभवन	consolidation
घर्घर	stridor
घर्षण ध्वनि	friction rub
घातक अरक्तता	pernicious anaemia
घातज आन्त्रावरोध	paralytic ileus
घातित	paralysed
घ्राण तन्त्रिका	olfactory nerve
घुटिका	talus
घुमेड	dizziness
चक्कर	whorl
चक्रक	trochlear
चक्रिका	disc
चक्रिकाभ/चक्रिक	discoidal
चञ्चु प्रवर्ध	coronoid process
चतुर्थांश	quadrant/one-fourth
चतुष्पुच्छ	four tailed
चप्पा	chip
चयापचय कार्य	metabolic function
चर्वणक दांत	molar teeth

चर्वणिका	masseter
चर्मकील	wart
चर्मिल आमाशय	leather-bottle stomach
चतुरस्र अवतानिका	pronator quadratus
चतुर्विकृति	tetrology
चतुरांगघात	quadriplegia
चलप्लीहा	mobile spleen
चलवृक्क	floating kidney
चलायमान	mobile
चलीकरण	mobilization
चापजंघा	bowleg
चापपद	pes cavus
चार आलव विधि	fourflap method
चालक	conductor
चालकीय बधिरता	conductive deafness
चालनीवत् आच्छादन	cribriform covering
चालित	mobilized
चिरकारी आवर्ती पैरोटिड-शोथ	chronic relapsing parotitis
चिरकारी अतिवृद्धिक/अतिवर्धी, नासा-शोथ	chronic hypertrophic rhinitis
चिरकारी गमाजन्य वृषणशोथ	chronic gummatous orchitis
चिरकारी-पर-तीव्र	acute-on-chronic
चिरकारी ग्रसनीपश्च विद्रधि	chronic retropharyngeal abscess
चुम्बन कैंसर	kissing cancer
चुम्बन व्रण	kissing ulcer
चूचुक	nipple
चूर्ण्य	friable
चूषण	suction
चूषक कवलिका	suctorial pad
चूषिका	lozenges/troches
चेचक	small pox
चेतक	thalamus

चेतन्त अन्तराल	lucid interval
चेतनाह्रास	loss of consciousness
छाले/बुलबुले	blebs, bullae
छिद्र/द्वार	aperture
छिम्नमस्तिष्क दृढता	decerebrate rigidity
छेदन	incision
छेदनोत्तर हर्निया	post incisional hernia
छेनी	chisel
छोर सम्मिलन	end-to-end anastomosis
जघन गुलिका	pubic tubercle
जघन पुरस्थ स्नायु	puboprostatic ligament
जघनास्थि	pubic bone
जघनानुलिका	puboc-coccygeus
जठरान्त्र	gastrointestinal
जठरान्त्र आचूषण	gastrointestinal aspiration
जठरान्त्रपथ	gastrointestinal tract
जठरचूषण	gastric suction
जठरग्रहणी उच्छेद	gastroduodenal resection
जठरग्रहणी धमनी	gastroduodenal artery
जठरछिद्रीकरण	gastrostomy
जठरछेदन	gastrotomy
जठरोच्छेदन	gastrectomy
जघरनिर्गम सकीर्णता	pyloric stenosis
जठरनिर्गम प्रान्त	pyloric end
जठरप्लीहा स्नायु	gastro splenic ligament
जठरवपा धमनी	gastroepiploic arti
जठरमध्यान्त्र बृहदान्त्र नालव्रण	gastro-jejuno-colic fistula
जठरमध्यान्त्र सम्मिलन	gastrojejunostomy
जठरबृहदान्त्र	gastrocolic
जठरयकृतवपा	gastrohepatic omentum
जठर व्रण	gastric ulcer
जड वामन	cretins

जतूक-एथमाइडी दरी	spheno-ethmoidal recess
जतूक कटक	sphenoidal ridge
जतूक विवर	sphenoidal sinus
जतूकशोथ	sphenoiditis
जनन कटक	genital ridge
जनन पुटक	genital fold
जन्मजात	congenital
जघापिंडिका	gastrocnemius
जराबधिरता	presbycusis
जलाभेद्य अपवाहिका	waterseal drain
जलगवीनी	hydroureter
जलनिमग्न व्यायाम	under water exercises
जलमस्तिष्क	hydrocephalus
जलवृषण/डाइड्रोसील	hydrocele
ज्वालाकार	flameshaped
जलशोफयुक्त कोशिका	hydropic cell
जलापवृक्कता	hydronephrosis
जानुसधि	knee joint
जानुका	patella
जानुका स्नायु	ligamentum patellae
जानुकोच्छेदन	patellectomy
जानुपृष्ठ शिरा	popliteal vein
जालक अन्त.कला अर्बुदी दशा	reticulo-endothelial neoplastic condition
जालक अन्त कला तत्र	reticulo endothelial system
जालक कोशिकाबहुलता	reticulocytosis
जालक मेरुरज्जुपथ	reticulospinal tract
जालक रचना	reticular formation
जालिका रूपी तन्त्रिकातन्तु अर्बुद	plexiform neurofibromata
जिह्वा अवटुका	lingual thyroid
जिह्वा की सोराइसिस	psoriasis linguae
जिह्वा टौंसिल	lingual tonsil

जिह्वा ग्रसनी तन्त्रिका	glossopharyngeal nerve
जिह्वाग्रह	ankyloglossia
जिह्वा धमनी	lingual artery
जिह्वा बधनी	frenum linguae
जिह्वाशोथ	glossitis
जीवनशक्ति	vitality
जीवनक्षम	viable
जीवाणुमेह	bacilluria
जैतून का तेल	olive oil
जैन्थीन	zanthine
जैवविषरक्तता	toxaemia
जैवोति परीक्षा	biopsy
झनझनाहट	tingling
टरेटोमा	teratoma
ट्रस/आत की पेटी	truss
ट्रिगर अगुलि	trigger finger
टीनिया/पट्टक/पट्टिका	taenia
टीनिया एकिनोकोकस	taenia ecchinococcus
टैट्राडियम	tetradium
ट्रैंडिलिनवर्ग स्थिति	trendelenburg position
ट्रैवीकुल	trabecula
टोमोग्राफी	tomography
ठेस	callosities
ठोस/घन	solid
डिप्थीरिया	diphtheria
डिबग्रन्थि उच्छेदन	oopherectomy
डिब-वाहिनी-ग्रन्थिशोथ	salpingo-oophoritis
डुपट्रिन का सकोच	dupuytren's contracture
डैन्टीन	dentine
डैस्माइड	desmoid
तडाग अस्थिभग	pond fracture
तनु (adj)	dilute

तनुकरना (verb)	dilute
तनूकृत	diluted
तनु पेशी/तनुका	gracilis muscle
तनुतानिका शोथ	leptomeningitis
तन्तु अर्बुद	fibroma
तन्तुकर अस्थ्यर्बुद	fibrosing osteoma
तन्तुग्रन्थिलता	fibroadenosis
तन्तूपास्थिकृत	fibrocartilaginous
तन्तुपुटीय	fibrocystic
तन्तुपुटी रोग	fibrocystic disease
तन्तुकृत/तन्तुमय	fibrosed
तन्तुपुटीय स्तनविकृति	fibrocystic mastopathy
तन्तुमयता	fibrosis
तन्तु सारकोमा	fibrosarcoma
ततिकार्ति	neuralgia
तत्रिकाकार्य-विच्छेद	neurapraxia
तत्रिकातन्तु-अर्बुद	neurofibroma
तत्रिकात	nerve ending
तत्रिका प्रभावन यत्रावलि	neuro-effector mechanism
तत्रिका प्रसू अर्बुद	neuroblastoma
तत्रिकापेशी असमन्वय	neuromuscular inco-ordination
तत्रिकामोचन	nenrolysis
तत्रिकाविकृतिजन्य सधिविकृति	neuropathic arthropathy
तत्रिकावरणार्बुद	neuronoma/neurolemoma
तत्रिकाविच्छेदन	neurotmesis
तत्रिकाविक्षिप्ति	neurosis
तत्रिकावसाद/न्यूरेस्थीनिया	neurasthenia
तत्रिकीय त्रुटि	neurological deficit
तर्कुरूप	spindle shaped
तप्त तरलदाह	scalding
तरल स्तर	fluid/level
त्रिकपर्दी अविवरता	tricuspid atresia

त्रिकपर्दी सकीर्णता	tricuspid stenosis
त्रिकास्थि	sacrum
त्रिकोणकार गोफण	triangular sling
त्रिकोणिका	deltoideus
त्रिधारा तंत्रिकार्ति	trigeminal neuralgia
त्रिधारा पथछेदन	trigeminal tractotomy
त्रिशिरस्का बाह्वी	triceps brachii
तलछट	sediment
त्वक् शोथ	dermatitis
त्वग्वसा पुटिका	sebacious cyst
त्वचापूयता	pyodermia
त्वचाभंगिका	corrugator cutis
त्वचारोपण/निरोपण	skin grafting
तान	tone
तारककोशिकार्बुद	astrocytoma
ताराविस्फार	mydriasis
तालु	palate
तालुग्रसनिका	palatopharyngeus
तालुटॉसिल	palatine tonsil
तालुजिह्विका	palatoglossus
तालुतानिका	tensor palati/tensor veli palati
तालुप्रवर्ध	palatine process
तिर्यक	oblique
तिर्यकता	obliquity
तीव्र	acute
तीव्र उदर	acute abdomen
तीव्र जठरशोथ	acute gastritis
तीव्र सपूय मध्यकर्णशोथ	acute suppurative otitis media
तीव्र सार ऊतकी जिह्वाशोथ	acute parenchymatous glossitis
तृतीयक सिफिलिस	tertiary syphilis
थोरेकोप्लास्टी/वक्ष सधान	thoracoplasty
दन्तकूप	tooth follicle

दन्तकोश	dental sac
दन्तधर पुटी	dentigerous cyst
दन्तपुटी	dental cyst
दन्तपूति	dental sepsis
दन्तप्रसू	odontoblast
दन्तमज्जा	tooth pulp
दन्तमूल की विद्रधि	root abscess
दन्तवल्कलार्बुद	adamantinoma
दन्तमूल सक्रमण	dental root infection
दन्तार्बुद	odontoma
दन्ताभ प्रवर्ध	odontoid process
दन्तावलि, कृत्रिम	denture, artificial teeth
दन्तुर स्नायु	dentate ligament
दन्तोलूखल विद्रधि	alveolar abscess
दन्तोलूखल उपान्त	alveolar margin
दन्तोलूखल (धारा) उपान्त	alveolar margin
दरी	crypt
द्रवण, द्रावण	liquifaction
द्रवनिवेशन	perfusion
द्रवस्थैतिक	hydrostatic
दात्राकार स्नायु	falciform ligament
दानेदार/शितकणी	gritty
दाब प्रवणता	pressure gradient
दाब व्रण	pressure sores
द्वार नृत्य/हाइलरनृत्य	hilar dance
दाहार्ति	causalgia
द्राक्षगुच्छाभ	racemose
द्विकपर्दी अक्षमता	mitral incompetence
द्विकपर्दी द्वारा/माइट्रल द्वार	mitral orifice
द्विकपर्दी प्रत्यावहन	mitral regurgitation
द्विकपर्दी सकीर्णता	mitral stenosis
द्वितीयक	secondary

द्वितीयक प्रक्षेपी	secondary metastatic
द्वितीयक वृद्धियां	secondary growths
द्वितीयक रक्तस्राव	secondary haemorrhage
द्वितीयक लैंगिक गुण/गौण लैंगिक गुण	secondary sexual characters
द्वितीयक सिफिलिस	secondary syphilis
द्वितीयक सीवन	secondary suture
द्विपार्श्वी/उभयपार्श्वी	bilateral
द्विशाखन	bifurcation
द्विशिख यूवुला	bifid uvula
द्विशिरस्की खातिका	bicipital groove
दुहिता पुटी	daughter cyst
द्विहस्त परिस्पर्शन	bimanual palpation
दीर्घ अक्ष	long axis
दीर्घ अंगुष्ठ आकुंचिका	flexor poll cis longus
दीर्घ अंगुष्ठ प्रसारिका	extensor pollicis longus
दीर्घतमा	sartorius
दुर्गंधित नासास्राव	ozena
दुर्दम	malignant
दुर्दम अवरोध	malignant obstruc ion
दुर्दमता	malignancy
दुर्विकसन	dysplasia
दुर्विकसित	dysplastic
दुष्कार्य	dysfunction
दु साध्य	intractable
दूरानुभूत वेदना	referred pain
दृढतानिकाबाह्य (विद्रधि)	extra dura (abscess)
दृढीभवन	induration
दृढीभूत	indurated
दृष्टितन्त्रिका	optic nerve
दृष्टितन्त्रिकाशोष	optic atrophy
दृष्टिपात/दृष्टिहानि	failure of vision
दृष्टिविक्षोभ	disturbance of vision

दृष्टिक्षेत्र	visual field
दोलनमापी	oscillometer
धड़ाका	explosion
धनात्मक सवातन	positive ventilation
धमनी	artery
धमनीकाठिन्य, लोपी	arteriosclerosis obliterans
धमनी घनास्रता	arterial thrombosis
धमनी मदचेतनता	arterial stupor
धमनी लघुपथ/उपपथ	arterial bypath
धमनी स्नायु	ligamentum arteriosum
धारक कला	basement membrane
धारक कोशिकायें	supporting cells
धावन	lavage
ध्रुव	pole
नखरहस्त	clawhand
नम्य	resilient
न्यायवैद्यक	medicolegal
न्यूमोकोकसजन्य एम्पायीमा	pneumococcal empyema
नलिका प्रवेशन	intubation
नवजात वौलवूलस	volvuls neonatorum
नाडी दाब	pulse pressure
नाडीव्रण	sinus
नाभिबाह्य हर्निया	examphalos
नाभि रज्जु	umbilical cord
नाभि हर्निया	umbilical hernia
नाम पद्धति	nomenclature
नासा/नासिका	nose
नासाश्मरी	rhinolith
नासागर्त	nasal pit
नासाग्रसनी अभिष्यन्द/प्रतिश्याय	nasopharyngeal catarrh
नासाग्रसनी टौंसिल	nasopharyngeal toncil
नासाग्रसनी ततु अर्बुद	nasopharyngeal fibroma

नासाडिप्थीरिया	nasal diphtheria
नासादर्शन	rhinoscopy
नासापट	nasal septum
नासापनसिका	nasal furunculosis
नासापोलिप	nasalpolyp
नासाश्रय	nasal support
नासाशोथ	rhinitis
नासारक्तस्राव	epistaxis
नासास्वर	nasal twang
निकटस्थ	proximal
निकोचन	stricture
निगरणकष्ट	dysphagia
नितम्ब पुटक	gluteal fold
नितम्ब स्नान	hip bath
नितम्ब संधि	hip joint
निदान	diagnosis
निमोनिया	pneumonia
निम्न/अव-अधोहनु लाला ग्रन्थियां	submandibular salivary glands
निम्न प्रेरक न्यूरोन प्ररूप	lower motor neurone type
नियततापी	warm blooded
निरोप	graft
निर्गत	output
निर्जलित	dehydrated
निर्जलीकरण	dehydration
निर्जीवाणुकरण	sterilization
निर्बंध	persistant
निर्भेद	perforation
निर्मूलक	radical
निर्मूलक स्तनोच्छेदन	radical mastectomy
निलय	ventricle
निलयकुंडछिद्रीकरण	ventriculocisternostomy
निलयछिद्रीकरण	ventriculostomy

निलेटन रेखा	nelaton's line
निवर्तन/प्रतिगमन	retraction
निवर्तित्र	retractor
निर्विषीकरण	detoxicating
निवेशन प्रयोग	inoculation experiments
निशे	nitche
निशा मूत्र असयति	nocturnal incontinence
निश्चलकरण/अचलीकरण	immobilization
निःश्वसन	expiration
नि श्वसनकष्ट	expiratory dyspnoea
निस्तानिका	tenesmus
निस्त्वचन	excoriation
नि स्रवण/नि स्राव	exudation, exude
नि स्राव	discharge
निस्सारक	evacuator
निर्हरण/निकास	drainage
निक्षेप	deposit
नील	contusion
नीलाभता	lividity
नील अश्मरिया	indigo calculus
नेत्रछद	eyelid
नेत्रपेशीघात	ophthalmoplegia
नेत्र श्लेष्मला	conjunctiva
नेत्रश्लेष्मला शोफ	chemosis
नेत्रशिरा	ophthalmic vein
नेत्रोत्सेध	exophthalmos
नेफ्रोब्लैस्टोमा	nephroblastoma
नोदन	pulsion
नौकाभ	scaphoid
पट	septum
पट्टक	squamma
पट प्रसर	septal spur

पथमार्ग	path way
पदपात	foot drop
पनसिका	furunculosis
पराउरोस्थि	parasternal
पराकशेरुक खात	paravertebral fossa
पराकशेरुक रोध	paravertebral block
परागकण	pollen grains
पराग्रहणी खात	paraduodenal fossa
पराग्रसनी विद्रधि	parapharyngeal abscess
परानाभि	paraumbilical
परानासाविवर	paranasal sinuses
पराफाइमोसिस/परिवर्तिका	paraphimosis
पराबृहदान्त्र	paracolic
परामध्यम छेदन	paramedian incision
परामध्य वृक्कवाहिनी	paramesonephric duct
परामलोदर छेदन	pararectal incision
परिकपाल	pericranium
परिगलन	necrosis
परिगलनक स्टेफिलोकॉकसजन्य आन्त्र-शोथ	necrotising staphylococcal enteritis
परिगवीनी लसीकावाहिकायें	periureteric lymphatics
परिगुदा अवकाश	perianal space
परिगुदा पूयता/पूयीभवन	perianal suppuration
परिग्रहणी	periduodenal
परिसारी ग्रैव सयोजीऊतक शोथ	spreading cervical cellulitis
परिजठर	perigastric
परितन्त्रिका प्रसू अर्बुद	perineural fibroblastoma
परिताडन	percussion
परिदृढतानिका तन्तुमयता	peridural fibrosis
परिधीय स्वजात निरोप	circumferntial autogenous graft
परिपरिवेश	circumareola
परिमलाशय पूयता/पूयीभवन	perirectal suppuration

परिमित	circumscribed
परिमूत्रमार्ग विद्रधि	periurethral abscess
परिवर्ती कोशिकाकृत सारकोमा	transitional celled sarcoma
परिवर्धन	development
परिवर्धनात्मक दोष	developmental defects
परिवर्धनात्मक असंगतियां	developmental anomalies
परिवर्धन पुटी	developmental cyst
परिविपुटी विद्रधि	peridiverticular abscess
परिवृक्क	perirenal
परिवृक्क विद्रधि	perinephric abscess
परिवृत्त अंकुरक	circumvallate papillae
परिवाहिनी लसीकावाहिकायें	periductal lymphatics
परिशिराशोथ	periphlebitis
परिशुद्ध अलकोहल	absolute alcohol
परिशिखरक/पैरिट्रोकैन्टर	peritronchanteric
परिसरी अस्थिभंग/उपान्तीय अस्थिभंग	marginal fracture
परिसूक्ष्मनलिकीय	pericanalicular
परिस्पर्शन	palpation
परिस्पर्श्य/परिस्पर्शनीय	palpable
पर्याणिका	sella turcica
पर्याणिका तानिकार्बुद	sellar meningioma
पर्याण नासिका	saddle nose
पर्याणपृष्ठ	saddle back
पर्युदान्तर बंध	intraperitoneal bands
पर्युपास्थि शोथ	perichondritis
पर्युदर्या	peritoneum
पर्युदर्या दरिया	peritoneal recesses
पर्युदर्यापश्च अर्बुद	retro peritoneal tumour
पर्युदर्याशोथ	peritonitis
पर्युदर्या शोथ तीव्र विसरित	peritonitis, acute diffuse
पर्यस्थिशोथ	periostitis
पर्व	node

पर्विल अन्तःसरण	nodular infiltration
पर्विलता	nodularity
पर्शुकोच्छेदन	costotransversectomy
पर्शुक उपान्त	costal margin
पर्शुकाकशेरुक	costovertebral
पर्शुकान्तरा धमनी/अन्तरापर्शुक धमनी	intercostal artery
परिहृद्	pericardium
परिहृद् शोथ	pericarditis
प्रकाश परिवर्त	light reffex
प्रकाशभीति	photophobia
प्रकाश शंकु	cone of light
प्रकीर्णन	dissemination
प्रकुंचनी मर्मर	systolic murmur
प्रक्रम	technique
प्रगंडास्थि	humerus
प्रगंडिका	brachialis
प्रगंड जालिका	brachial plexus
प्रगंडशीर्ष धमनी, शिरा	brachiocephalic artery, vein
प्रघाणकार्य परीक्षण	vestibular function test
प्रघाण पुटक	vestibular folds
प्रघाणशोथ	vestibulitis
प्रचुरोद्भवी/प्रफलनी	proliferating
प्रचुरोद्भवन/प्रफलन	proliferation
प्रच्छन्न/गुप्त	invidious
प्रत्यावहन	regurgitation
प्रतानन	stretching
प्रत्यावाही	regurgitant
प्रत्यास्थ	elastic
प्रति अमीबी	antiamoebic
प्रतिकफोणी/प्रतिकूर्पर	anticubital
प्रतिक्रमण	regression
प्रतिकर्षण	countertraction

प्रतिकारी शोफ	reactive oedema
प्रतिक्रियात्मक रक्तस्राव	reactionary haemorrhage
प्रतिक्रियाशील तापन्यूनता	reactive hypothermia
प्रतिगमन	recession
प्रतिगामी	retrograde
प्रतिगामी गोणिका चित्रण	retro grade pyelography
प्रतिगामी स्मृतिलोप	retrograde amnesia
प्रतिगामी शिराघनास्रता	retrograde veus thrombosis
प्रतिच्छेदन	counterincision
प्रतिजन/एन्टीजन	antigen
प्रतिजीवी	antibioties
प्रतिदर्श	sample
प्रतिदीप्तिदर्शन	fluorscopy
प्रतिदीप्तिदर्शी	fluorocope
प्रतिदीप्ति पट	fluoroscopic screen
प्रतिपिंड	antibody
प्रतिपिंड अनुमापी	antibody titre
प्रतिमान	pattern
प्रतिस्थापन	replacement
प्रतिस्थापन संधिसंधान	replacement arthroplasty
प्रतिहारी अतिरक्तदाब	portal hyper tension
प्रतिहारीतंत्र	portal system
प्रतिहारीद्वार	porta hepatis
प्रतिहारी पूयरक्तता	portal pyaemia
प्रतिहारी-महाशिरा पार्श्व पथ	porto caval shunt
प्रतिहारी शिरा	portal vein
प्रतिहारी शैया	portal bed
प्रतिक्षेपी स्पर्शासहता	rebounding tenderness
प्रतीप दाब	backpressure
प्रतिरोपण	transplantation
प्रतिलोठन	ballotment
प्रतिलोमित/व्युत्क्रमित	inverted

प्रतिलोमित/व्युत्क्रमित, अस्थिवर्ध स्थूल निरोप	inverted diaphyseal massive graft
प्रतिवर्ती सदमन	reflex inhibition
प्रत्यक्जघन/जघनपश्च पुरस्थोच्छेदन	retropubic prostectomy
प्रत्यक् पर्यदर्या/पर्युदर्यापश्च	retroperitoneal
प्रत्यक् बृहदान्त्र/बृहदान्त्रपश्च	retrocolic
प्रत्यक्स्तन/स्तनपश्च, विद्रधि	retromammary abscess
प्रत्यक्स्तनजालिका	retromammary plexus
प्रत्यक्ष	direct
प्रत्यक्ष अभिघात	direct violence/trauma
प्रत्यक्ष निरोपण	direct implantation
प्रथम सहाय	first aid
प्रधूमन/फूंकना	insufflation
प्रपद दंड	metatarsal bar
प्रपदास्थि	meta tarsal
प्रबल/उग्र	virulent
प्रबलता/उग्रता	virulence
प्रमस्तिष्क मेरु तरल दाब	cerebrospinal fluid pressure
प्रमस्तिष्कतानिका क्षताक	cerebromeningeal cicatrix
प्रमस्तिष्कमेरु तरल	cerebrospinal fluid
प्रमस्तिष्क व्यपजनक विक्षति	cerebral degenerative lesion
प्रमस्तिष्की सस्तंभी अंगघात	cerebral spastic paraplegia
प्रमस्तिष्क क्षोभ	cerebral irritation
प्रयाण/प्रगम, अस्थिभंग	march fracture
प्ररूप	type
प्ररूपक	typical
प्रलेपक ज्वर	hectic fever
प्रवर्ध	process
प्रवाहिका	diarrhoea
प्रविधि	technique
प्रवेगी निशि श्वासकष्ट	paroxysmal nocturnal dyspnoea
प्रशीतन	refrigeration

प्रश्वसन	inspiration
प्रसृत काठिन्य	disseminated sclerosis
प्रस्फोटी (कपाल)	bursting (cranium)
प्रसवोत्तर पूतित	puerperal fever
प्रेरक अपह्लास	motor deterioration
प्रस्फोट (विद्युत तरग)	bursts (electric waves)
प्रस्वेद्य	d ffluent
प्रक्षेप	projection
प्रक्षेपी वमन	projectile vomitting
पल्लविका-शख तन्त्रिका	auriculotemporal nerve
प्लस्तर शैया	plaster bed
प्लस्तर स्वस्तिका	plaster spica
प्लीहावृक्क पार्श्वपथ	lineorenal shunt
प्लीहावृक्क स्नायु	lineorenal ligament
पश्चदाब	back pressure
पश्चनासाद्वार पौलिप	antrochoanal polyp
पश्चनत	retro verted
पश्चमुद्रिकावटुकी	posterior cricothyroideus
पश्चात् चिकित्सा	after treatment
पश्चायाम	opisthotonos
पश्चाभिमध्य	posteromedial
पश्चकपाल	occipital
पश्चखात (करोटि)	posterioi fossa (cranium)
पक्षाभ अकुश	pterygoid hamulus
पक्षान्तरण	transposition
पाडुर पिड	globus pallidus
पात	collapse
पात चिकित्सा	collapse therapy
पाद	crus
पादपृष्ठाकुचन	dorsiflexion
पारउरश्छद मार्ग	transpectoral route
पारगमन	permeation

पारजठर निर्गमतल	trans
अनुप्रस्थजठरनिर्गमतल	transpyloric plane
पारपट/अनुप्रस्थपट	transseptal
पारपर्युदर्या	transperitoneal
पारशिखरक/अनुप्रस्थ-ट्रोकैन्टर	transtrochanter
पारप्रदीपन/पारप्रदीप्ति	transillumination
पारवेधन टाके	transfixation suture
पारभासी	translucent
पारमूत्रमार्ग उच्छेदन	transurethral resection
पाररेखाकन	cross striation
पारसयोजन	cross-union
पारिवारिक अति सुग्राहिता	familial hypersensitiveness
पाश/स्नेयर	snare, loop
पाठिर्णका	caleaneus
पार्श्वकुब्जता	scoliosis
पार्श्विका	parietal
पार्श्विकोत्सेध	emminentia parietatis
पार्श्वपिंड	lateral mass
पार्ष्णिकडरा	tendoachilles
प्राक्ज्ञान	prognosis
प्राथमिक	primary
प्राथमिक वृद्धि	primary growth
प्राथमिक सयोजन	primary union
प्राथमिक सिफिलिस	primary syphilis
प्राणयाम व्यायाम	deep breathing exercises
प्रान्तस्था (केन्द्रक) अधता	cortical (central) blindness
/प्रान्तस्थीय ,, ,,	cortical ,, ,,
प्रान्तस्था प्रमस्तिष्क शोष	cortio-cerebral atrophy
प्रारभी/आरब्धी/आरभमाण	incipient
प्रालब	flap
प्रालब कपाटिका	flap value
आवरणी छेदन	fasciotomy

प्रावरणी-शिरा तल	fascio-venous plane
प्लास्टिक रूप	plastic type
पिचु	swab
पित्त केशिका	bile capillaries
पित्तवाहिनीचित्रण	cholangiography
पित्तवाहक पथ	billiary passage
पित्तवाहिनी विद्रधि	cholangitic abscess
पित्ताश्मरी	gallstones
पित्त श्मरीयता	cholelithiasis
पित्ताशयछेदन	cholecystotomy
पित्ताशयोच्छेदन	cholecystectomy
पित्ताशय-जठर छिद्रकरण	cholecystogastrostomy
पित्ताशयवाहिनी	cystic duct
पित्ताशयशोथ	cholecystitis
पित्तवाहनीशोथ	cholangitis
पित्ती/शीतपित्त	urticaria
पीठिका	stroma
पीतक कोश	yellow sac
पीतरजकता/जैन्थोक्रोमिया	xanthochromia
पीयूषिकावाहिनी अर्बुद	craniopharyngioma
प्लीहा	spleen
प्लीहिका	splenicule
प्लीहातिवृद्धि	splenomegaly
प्लीहावेध	splenic puncture
प्लीहावक	splenic flexure
प्लीहोच्छेदन	splenectomy
पुच्छान्त	caudal end
पुच्छाभिगमन	caudal migration
पुच्छी केन्द्रक	caudate nucleus
पुटामिन	putamen
पुटी	cyst
पुटी भित्ति	cyst wall

पुटी रोग	cystic disease
पुनरारोपण	reimplantation
पुनरावर्ती/पुनरावर्तक	recurring/recurrent
पुनरभ्यास	reeducation
पुनर्वक्रन	recurvatum
पुनरावर्ती पैरोटिड ग्रन्थिशोथ	recurrent parotitis
पुन स्थापन	reduction
पुनर्वासिन	rehabilitation
पुरस्थपश्च कोष्ठक	postprostatic pouch
पुरुषजनन पथ	male genital tract
पुरुषशुक्रनिवृत्ति	male climacteric
पुरस्थ	prostate
पुर कुब्जता	lardosis
पुर.सरण	peristalisis
पुरीष नालव्रण	foecal fistula
पुरोउलूखली	prealveolar
पुर ऊर्ध्वहनु	premaxilla
पुरोकैंन्सरीय	precancerous
पुरश्चर्वणिका	premasseteric
पुर.पल्लविका	preauricular
पुरोमहाधमनी	preaortic
पुरोललाट	prefrontal
पुरोशेषान्त्र	prileal
पुरिस्द्रोनवधित	premammary abscess
पुरोहृद	precordial
पुरस्त्रिक-तन्त्रिकोच्छेदन	presacral neurectomy
पुरस्त्रिक	presacral
पूर्ण असयोजन	absolute non-union
पूति, पूतित	sepsis
पूतिजीवरक्तता	septicaemia
पूतित अन्त शल्य	septic embolus

पूतित उपद्रव	septic complication
पूतिरोधी	antiseptic
पूतिस्वेदलता	bromidrosis
पूय	pus
पूयता/पूयीभवन	suppuration
पूय अपवृक्कता	pyonephrosis
पूयमेह	pyuria
पूयरक्तज विद्रधि	pyaemic abscess
पूयरक्तता	pyaemia
पूरक अतिवृद्धि	compensatory hypertrophy
पूरक वन्धन/स्थिरीकरण	complement fixation
पूर्वगामी	precursor
प्लूरापर्युदर्या नलिका	pleuroperitoneal canal
प्लूराबाह्य सम्पीडन	extrapleural plombage
पृथुस्नायु	broad ligament
पृष्ठक	facet
पृष्ठवेदना	backache
पेप्टिक व्रण	peptic ulcer
पेशी-आकर्ष	muscle spasm
पेशीद्वार/पेशीछिद्र	muscle hiatus
पेशीछेदन	myotomy
पेशीजन्य अभिघात	muscular violence
पेशीशोषी पार्श्वकाठिन्य	amyotrophic lateral sclerosis
पैत्तिक	biliary/bilious
पैरोटिड अश्मरी	parotid calculi
पैरोटिड ग्रन्थि	parotid gland
पैरोटिड नालव्रण	parotid fistula
पैरोटिड वाहिनी	parotid duct
पैरोटिड शोथ	parotitis
प्लैटीवेसिता	platibasia
पॉन्सीय	pontine
पॉलिप	polyp

पालिपता/पॉलिपमयता	polyposis
पोलियो	poliomyelitis
—आरोही प्ररूप	—ascending type
—मेरुशीर्ष	—bulbar type
—मेरुरज्जु	—spinal type
फलक	lamina
फलकित/स्तरित	laminated
फलकोच्छेदन	laminectomy
फार्निकस/तोरणिका/चापिका	fornix
फाइब्रिनी परिहृदशोथ	fibrinous pericarditis
फाइमोसिस	phimosis
फाइलेरिया रोग/फाइलेरियेसिस	filariasis
फास्फेट वर्ग	phosphatic group
फास्फेटेज सक्रियता	phosphatase activity
फिनौसल्फोथेलीन	phenolsulphonpthalein
फुप्फुसोच्छेदन	pneumenectomy
फुप्फुसपात, फुप्फुस अनुन्मीलन	atelectasis
फुप्फुसशोथ	pneumonitis
फुप्फुसी अन्त शल्यता	pulmonary embolism
फुप्फुसी प्रतिरक्तदाब	pulmonary hypertension
फुप्फुसी वाहिका-प्रतिरोध	pulmonary vascular resistance
फुप्फुसी सकीर्णता	pulmonary stenosis
फैलोपी नली	fallopian tube
फोड़े/फुन्सी	boils
फौर्शेट	fourchette
बटुआ सीवन	purse-string suture
बद्ध पाश	closed loop
बधिरता	deafness
बक	flexure
बध्यकरण	castration
बधन	ligature/ligation
बपा	omentum

वल/शक्ति	force, power
वलात्/वलपूर्वक	forcible
वहि स्थ	extrinsic
वहिर्गम	outlet
वहिर्जनस्तर	ectoderm
वहिर्जंघिका	fibula
वहिर्जंघिक	peroneal
वहिर्नति	valgus
वहिर्नत प्रकोष्ठ	cubitus valgus
वहुपुटीय वृक्क	polycystic kidneys
वहि प्रकोष्ठिका	radius
वहिर्वर्तित/वहिर्वर्ती	everted
वहिर्वर्तन	eversion
वहिर्वलन	evagination
वहिश्छद/टैक्टम	tectum
वहिश्छदवहिःप्रवाह	tectal outflow
वहि क्षेपण/उत्सारण	extrusion
वहुकेन्द्रिक पुनरावृत्ति	multicentric recurrence
वहुप्रभावी प्रतिजीवी/विस्तृत स्पैक्ट्रम प्रतिजीवी	broad spectrum antibiotic
वहु तन्तुकर अस्थिविकृति	multiple osteitis fibrosa
वहुमूत्रता	polyuria
वहुरूपीकेन्द्रक श्वेतकोशिका-वहुलता	polymorphonuclear leucocytosis
वहुवृद्धि	overgrowth
वालुकायत्र सकीर्णन/रेतघडी सकीर्णन	hourglass constriction
वालुकायत्र हाइड्रोसील	hourglass hydrocele
वाह्य अध्यस्थि	exostosis
वाह्य औदरिक द्वार/वलय	external abdominal ring
वाह्यीकरण	exterioization
वाह्यकर्णशोथ	otitis externa
वाह्य कैरोटिड धमनी	external carotid arti

बाह्य जानुपृष्ठ धमनी	external popliteal art
बाह्यतिर्यक् औदरिका	obliquus extornus abdominis
बाह्यस्थ निरोप	outlay graft
बाह्य मूत्रपथ कुहर	external urinary meatus
बाह्य श्रवण कुहर	external auditary meatus
ब्रायन्ट का त्रिभुज	bryant's triangle
विद्ध अस्थिभग	punctured fracture
विभव, शक्य	potential
बिन्दुक विधि	drip method
बिन्दुकित	spotted
बिन्दुपातन	instilation
बिन्दुमूत्रकृच्छ	strangury
बिन्दुक सक्रमण	droplet infection
बिलबित सयोजन	delayed union
बिलिरुबिन	billirubin
बुध्न	fundus
बूजी	bougie
वेध/छिद्र	perforation
वेध	stab
वेधी	penetrating
वेधन	penetration
वेधक शाखाए	perforating
वेधन/वेध	puncture
ब्रेस	brace
ब्लास्टीमा/प्रसूकोशिकापुज	bastema
बौमन सम्पुट	bowman capsule
ब्रौकोनिमोनिया	bronchopneumonia
ब्रौकोस्कोपी/श्वसनीदर्शन	bronchoscopy
बृहत् अभिवर्तिका	adductor magnus
बृहत् ग्रहणी-अकुरक	major duodenal papilla
बृहत् जिह्वता	macro glossia
बृहत् मुखद्वार	macrostoma

वृद्धिया	growths
वृहदान्त्रान्त्र	colocolic
वृहदान्त्र छिद्रीकरण	colostomy
वृहदान्त्रछेदन	colotomy
वृहदान्त्रदर्शी	sigmoidoscope
वृहदान्त्रयोजनी	mesocolon
भगन्दर	fistula-in-ano
भरण-अपूर्णता	filling defect
भ्रमि	vertigo
भ्रमि अक्षिदोलन	vertigonystagmus
भित्तिपत्रक	mural leaflet
भिन्नात्मक प्रयोगाहार	fractional meal
भूमि/तल	floor
भौतिक चिकित्सा	physiotherapy
भ्रंश	prolapse
भ्रूण	embryo
भ्रूणार्बुद	embryoma
मचली/उत्क्लेश	nausea
मज्जार्बुद	myeloma
मज्जीय अर्बुद	medullary tumous
मज्जी केन्द्रक/न्यूक्लियस पल्पोसस	nucleus pulposus
मणिबध	wrist
मणिबध-पात	wrist-drop
मणिबध सुरंग	carpal tunnel
मणिबध सुरग सलक्षण	carpal tunnel syndrome
मधुमेह	diabetes mellitus
मध्यम/मध्य	median,
मध्य/मध्यस्थ	intermediate, middle
मध्यान्त्र पाश	jejunal loop
मध्यान्त्र योजनी	mesojejunum
मध्यकर्ण गुहिका	tympanic cavity
मध्यकर्णछद	tegmen-tympani

मध्यकर्ण विदर	middle earcleft
मध्यकुहर	middle meatus
मध्यकचुक	middle coat
मध्यकर्ण-पट्टिका	tympanic plate
मध्यकर्ण पटहतन्त्रिका	chorda tympani
मध्यकर्णशोथ	otitis media
मध्यखात (करोटि)	middle fossa (skull)
मध्यच्छदिका	diaphragm
मध्यच्छद-तन्त्रिका	phrenic nerve
मध्यच्छद हर्निया	diaphragmatic hernia
मध्यतानिका धमनी	middle meningeal artery
मध्य-नितम्बिका	gluteus medius
मध्य-पोषद	intermediate host
मध्यम प्रक्षेप	median projection
मध्यरेखा छेदन	midline incision
मध्यवर्ती/केन्द्रीय-तन्त्रिका तन्त्र	central nervous system
मध्यस्थानिका अर्बुद	mediastinal tumour
मध्यस्थानिका-शोथ	mediastinitis
मनोप्रेरक	psychomotor
मनोविक्षिप्ति	neurosis
मन शल्यचिकित्सा	psychosurgery
मण्डूकानन विरूपता	frog face deformity
मन्द उत्प्लावी नाडी	slow bounding pulse
मन्दवर्धी	slow growing
मन्यास्तम्भ	torticollis
मनस्तन्त्रिका विक्षिप्ति	psychoneurosis
मरोड	torsion
मर्फी त्रिक	murphy triad
मलवमन/विष्ठावमन	foecal vomitting
मलाश्मरी/विष्ठाश्मरी	stercolith, faecolith
मलाशय कणिकागुल्म	rectal granuloma
मलाशयदर्शन/प्रौक्टोस्कोपी	proctoscopy

मलाशय-वस्ति-कोष्ठ	recto vesical pouch
मलाशय अवग्रहान्त्रोच्छेदन/रैक्टोसिग-माइडक्टोमी	rectosigmoidectomy
मलाशय अवग्रहान्त्र	rectosigmoid
मसूरिका	measles
सौम्य	bland
मस्तिष्कछदि-छिद्र	tentorial hiatus
मस्तिष्क निलयचित्रण	ventriculography
मस्तिष्कमूल/मस्तिष्क स्तभ	brainstem
मस्तिष्कवाहिका-चित्रण	cerebral angiography
मस्तिष्क विकप	concussion (brain)
मस्तिष्क विद्रधि	brain abscess
मस्तिष्कशोथ	encephalitis
मस्तिष्कावरण अर्बुद/तानिकार्बुद	meningioma
मस्तिष्कावरणशोथ/तानिकाशोथ	meningitis
मस्तिष्कावरण हर्निया/तानिका हर्निया	meningocele
महाकायता	gigantism
महाकोशिका तत्र	giant cell system
महाकोशिकार्बुद	giant cell tumour
महाधमनी चित्रण	aortography
महाधमनी पत्रक	aortic leaflet
महाधमनी फुप्फुसी गवाक्ष	aorto-pulmonary window
महाधमनी शोथ	aortitis
महाधमनी का सपीडन	coarctation of aorta
महारन्ध्र	foramen magnum
मात्रक/यूनिक	unit
मात्रात्मक परीक्षण	quantitative test
मातृ अपरा	maternal placenta
मानव प्रकार	human strain
मानसजन्य	psycnogenic
मानसिक अतिमन्दन	mental retardation

मानसिक अभिघात	psychic trauma
मानसिक त्रुटि	mental deficit
मासपेशी पिंड	muscular mass
मार्सूपियलीकरण	marsupialization
सगलन/गलन/मिलन	fuse
सगलित/सयुक्त	fused
मिक्सो-उपास्थि-ग्रन्थ्यर्बुद	myxo-chondro-adenoma
मुक्त/स्वतत्र	free
मुक्त रक्त	free blood
मुखकोथ	cancrum oris
मुख गैग	mouth gag
मुख-ग्रसनी	oropharyngeal, oropharynx
मुखग्रसनी-सवरणी	oropharyngeal sphincter
मुखपाक	stomatitis
मुख-भूमि/मुखतल	floor of mouth
मुडक	capitutum
मुडिका	capitate (bone)
मुद्गरपाद/टैलिपेस	talipes
मुद्गरपाद	club foot
मुद्गरभवन	clubbing
मुद्रिका उपास्थि	cricoid cartilage
मूत्रावधारण	retention of urine
मूत्र असयति	incontinence of urine
मूत्र कृच्छ्र	incontinence of urine
मूत्र प्रजनन	urogenital
मूत्र त्यागकष्ट	dysuria
मूत्रनालव्रण	urinary fistula
मूत्रपथकुहरोच्छेदन	meatotomy
मूत्रपरिस्रवण	extra vacation of urine
मूत्रपूतिरोधी	urinary antiseptic
मूत्रपथरक्तधरकाय	corpus spongiosum
मूत्रमार्ग	urethra

मूत्रमार्गछेदन	urethrotomy
मूत्रमार्ग नालव्रण	urethral fistula
मूत्रमार्गसधान/यूरेथ्रोप्लास्टी	urethroplasty
मूत्राशय	urinary bladder
मूत्राशय अस्थानता	ectopia vesicae
मूत्राश्मरी	urinary calculus
मूत्राशय वृहदान्त्र नालव्रण	vesicocolic fistula
मूत्राशयशोथ	cystitis
मूर्छा	syncope
मूलाधार पिंड	perineal body
मूलाधार मूत्रमार्ग छेदन	perineal urethrotomy
मूलक	radical, radicular
मूल सम्पीडन	root compression
मूलक्षोभ	root irritation
मूषकपुच्छ आकृति	rat tailing appearance
म्यूकोसील/श्लेष्म पुटिका	mucocoele
मृत अवकाश	dead space
मृदुकरण	softening
मेटानेफ्रोस/पश्चवृक्क प्रसू	metanephros
मेरुचेतक पथ	spinothalamic tract
मेरुतन्त्रिका	spinal nerve
मेरुनलिका-विदर	rachischisis
मेरुनलिका	spinal canal
मेरुरज्जु पुच्छ	cauda equina
मेरुरज्जुतानिका हर्निया	medulla oblongata
मेरुशीर्ष	medullary
मैकबर्नी बिन्दु	Mcburney's point
मैकबर्नी मार्ग	Mcburney's approach
मैकिल विपुटी/मैकिल अपवर्त	Meckel's diverticulum
मैगट	maggots
मैट्रैस/गद्दा	mattress
मैलियोलस के पुटक	malleolar folds

मोच	sprain
मोच अस्थिभग	sprain fracture
मोचक छेदन	release cut
मोटन	kinking
यकृत	liver
यकृत-अग्न्याशय कलशिका	hepatopancreatic ampulla
यकृतोच्छेदन	hepatectomy
यकृत खडिका	hepatic lobule
यकृत धमनी	hepatic artery
यकृत पात	hepatic failure
यकृत प्रतिहार	porta hepatis
यकृत वक	hepatic flexure
यकृत (सामान्य) वाहिनी	hepatic duct, common
यकृत शिरा	hepatic vein
यथार्थ एन्यूरिज्म	true aneurysm
यक्ष्मिका, गुलिका	tubercles
यक्ष्मिकागुल्म	tuberculoma
यक्ष्मारोधी	antitubercular
युवन	adolescent
यूरिया उत्सर्ग परीक्षण	urea clearance test
यूरिया सान्द्रण परीक्षण	urea concentration test
यूरीमिया	uraemia
यूरेकस	urachus
यूस्टेकी नली	eustaachian tube
यूस्टेकी नलीशोथ	eustachian salpingitis
रुधिर	blood
रक्तातच	blood clot
रक्तजन्य सक्रमण	haematogenous infection
रक्ततुलनाकरण	matching of blood
रक्तदाबह्रासी	hypotensive
रक्तदावमापी	sphygmo manometer
रक्तमेरुरज्जु	haematomyelia

रक्तविम्वाणु	blood platelets
रक्तमेह	haematuria
रक्तवमन	haematemesis
रक्तजन्य विस्तार	haematogenous spread
रक्तजनन कार्य	haemopoietic function
रक्तयूरिया	blood urea
रक्तलायी	haemolytic
रक्तवक्ष	haemothorax
रक्तवाहिकामय वृन्तक	vascular peduncle
रक्तवाहिकाहीनपरिगलन/अवाहिका	avascular necrosis
रक्तनिष्ठीवन	haemoptysis
रक्तसचरण पात	circulatory collapse
रक्तसंधि	haemarthrosis
रक्तसलायी अरक्तता	haemolytic anaemia
रक्तस्राव	haemorrhage
रक्तसलायी स्ट्रिप्टोकोकस	haemolytic streptococci
रक्तसवर्धन	blood culture
रक्तसान्द्रण	haemoconcentration
रक्ताधान	transfusion of blood
रक्तिम लपस	lapus erythematosus
रचनात्मक नस्य मजूषा	anatomical snuffbox
रज्जुका-कचुका हाइड्रोसील	funiculo-vaginal hydrocoele
रज्जुका डाइड्रोसील	funicular hydrocele
रजक	dye
रदनक खात	canine fossa
रक्षक कठोरता	guarding rigidity
राइनोस्क्लेरोमा	rhinoscleroma
राइनोस्पोरीडिओसिस	rhinosporidiosis
रासायनिक नियामक	chemical mediators
रिक्त	hollow, empty
रिले	relay

रिसेक्टोस्कोप	resectscoope
रुधिरज कालामल/मेलीना	melaena
रेडियम सूचिकायें	radium needles
रेडोन बीज	radon seeds
रेनूला	ranula
रेनो रोग	Raynaud's disease
रोग प्रकोपन	exacerbation
रोगनिरोध	prophylaxis
रोगशमन	resolution
रोगक्षमता	immunity
रोडैन्ट व्रण	rodent ulcer
रोधगलन	infarction
रोमक उपकला	ciliated epithelium
रोमत्वग्वसा कूप	pilosebaceous follicle
रोमिका	cilia
लालाट खडछेदन	frontal lobotomy
लालाटनासा प्रक्षेप	frontonasal projection
ललाटनासा वाहिनी	frontonasal duct
ललाट विवर	frontal sinus
ललाट विवरशोथ	frontal sinusitis
लसीकार्बुद	lymphoma
लसीका इपीथीलिओमा	lympho-epithelioma
लसीका कूप	lymphatic follicle
लसीकाग्रन्थि विकृतियां	lymphadenopathies
लसीका जालिकायें	lymph plexuses
लसीका पारगमन	lymphatic permeation
लसीका महावाहिनी	thoracic duct
लसीकाभ ऊतक	lymphoid tissue
लसीकावाहिकार्बुद	lymphangiomata, lymphangioma
लसीकाशोफ	lymphoedema
लसीका सारकोमा	lymph sarcoma
लघु	minor,

लघु अगुष्ठ आकुचिका	flexor pollicis brevis
लघुकोश	lesser sac
लघुपथ	short circuit
लघुपथकर शस्त्रकर्म	short circuiting operation
लघुमुख द्वार	microstoma
लघुतरवक्र	lesser curvature
लघुतरवपाकोश	lesser omental sac
लाला ग्रन्थिया	salivary glands
लाला चित्रण	sialography
लाला ग्रन्थिशोथ	sialoadenitis
लालास्रवण/लालास्राव	lalivation
लिथोट्राइट/अश्मरी भजक	lithotrite
लिथोट्राइटी/अश्मरी भजन	lithotrity
लिपियोडोल	lipiodol
लिविडोरेटी क्यूलेमि	diviloreticulasis
लिसलिसा	slimy
लीक अभेद्य	leak proof
लीक करना/चूना	leak (verb)
लुडविग शोथ	Ludgwig's angina
लूकीमिया	leukaemia
लूपस	lupus, lupus vulgaris
लोगन की चाप	Logan's bow
लोठनी हायेटस हर्निया	rolling hiatus hernia
लोपी घनास्र धमनीशोथ	thromboangitis obliterans
लोहिताणु अवसादन दर	erythrocytic sedimentation rate
वक्र उत्क्रमित 3 चिन्ह	curve-reversed 3 sign
वक्र गडिका	geniculate ganglion
वर्गीकरण	classification
वर्णकता	pigmentation
वर्णकविरागी	chromophobe
वर्तुलाकार	cylindrical
वर्धीअगघात	progressive paralysis

वर्धी मेरुपेशीशोथ	progressive spinal muscular atrophy
वर्धी विस्फार	progressive dilatation
वय की परमावधिया	extremes of life
वलयाकार	annular
वलय कारिसनोमा	ring carcinoma
वक्षछेदन	thoracotomy
वलि/पुटक	fold
वलि/झुर्री	rugae
वसा-अन्त शल्यता	fat embolism
वसा अन्त सचरण	fatty infiltration
वसातन्तु सारकोमा	lipofibrosarcoma
वसार्बुद	lipoma
वसासम्पुट	fatty capsule
वस्तुनिष्ठमापन	objective measurement
वेगसछेदन	vagotomy
वाक्हानि /स्वरहानि	aphonia
वाचाघात	aphasia
वातनिरपेक्षी	anaerobic
वातमस्तिष्कचित्रण /मस्तिष्कवायुचित्रण	pneumo-encephalography
वातस्फीति	emphysema
वातिल अग्निमाद्य	flatulent dyspepsia
वामपार्श्व	left lateral
वायुगद्दी	aircushion
वायुपर्युदर्या	pneumoperitoneum
वायुमेह	pneumaturia
वास्तविक सधिग्रह /यथार्थ सधिग्रह	true ankylosis
वाहक कोण	carrying angle
वाहिकार्बुद	angioma
वाहिकाकर्ष जन्यरोग	vasospastic disease

वाहिकातन्त्रिकीय शोफ	angioneurotic oedema
वाहिकाप्रेरक विक्षोभ	vasomotor disturbances
वाहिका बोलस	vascular bolus
वाहिकामय	vascular
वाहिकावलय	vascular ring
वाहिकाहृदचित्रण	angio-cardiography
वाहिनी अंकुरार्बुद	duct-papilloma
वाहिनी पश्च	postductal
विकरित, विकरण करना	radiate
विकरण उष्मा	radiant heat
विकंपन	fibrillation
विकलांग जूता	orthopaedic shoe
विकलांगी विरूपता	orthopaedic deformity
विकारस्थानी	focal
विकिरण-सुग्राही	radiosensitive
विकीर्ण	sporadic
विकृतशरीरक्रिया /विकारी शरीरक्रिया	pathophysiology
विकृतिजनन	pathogenesis
वैकृत अस्थिभंग	pathological fracture
विकैल्सीकरण/विकैल्सीभवन	decalcification
विखंडित अस्थिभंग	comminuted fracture
विखनिजीकरण	demineralisation
विच्छिन्न	interrupted, loose
विचलन	deviation
विचलनीय अनुनाद /चल मन्दस्वनता	shifting dullness
विचूर्ण्य	crumbling, friable
विजातीय निरोप	heterogenous graft
विटामिन त्रुटि/न्यूनता	vitamin defeciency
विदर,	tear, cleft, fissure
विदारक एन्यूरिज्म	dissecting aneurism

विदारण	laceration
वदीर्ण अस्थिभग	fissured fracture
विद्युद् अपघट्य	electrolytes
विद्युत्-अवरोधी	insulated
विद्युदातचन/विद्युत्-स्कन्दन	electro-coagulation
विद्युत्-पेशीलेखन	electro-myography
विद्युन्मस्तिष्कलेखन	electro encephalography
वद्युन्मस्तिष्कलेख	electro-encephalograph
विद्युत्-हृद्लेख	electro-cardiogram
विद्रधि	abscess
वैद्युत् विसर्जन	electrical discharge
विन्सेट एजाइना	Vincent's angina
विन्सेट मुखपाक	Vincent's angina
विपथी	aberrant
विपर्यास मेरुरज्जुचित्रण	contrast myelography
विपर्यास स्नान	contrast bath
विपाशन	strangulation
विपुटी	diverticulum
विपुटीयता	diverticulosis
विपुटीशोथ/आर्तवशोथ	divorticulitis
विभेदित	differentiated
विमाइलिनीकरण/भवन	demyelination
विरूप	deformed
विरूपक पेशीदुस्तानता	dystonia musculorum deformans
विरूपता	deformity
विरूपागतायें	malformations
विरोधाभासी श्वसन	paradoxical respiration
विरोहण	healing
विविशोथ	sinusitis
विवर्णता/पाण्डुता	pallor
विवर्तिका (पेशिया)	peronei

विवर्तनी अवसंधिभ्रंश	rotatory subluxation
विवर्तनी संधिच्युति	rotatory dislocation
विवर्धित	enlargement
विवर्धित संवलन चिन्ह	increased convolutional impression
विविक्त	sequestrum
विविक्तोच्छेदन	sequesterectomy
विविक्तीभवन	sequestration
विविक्तीभवन डरमाइड	sequestration dermoid
विवृत मूत्राशय	extroversion
विवृति, सहज	dehiscence
विशल्कित	desquemated
विशिष्ट संक्रमण	specific infection
विश्रान्त रस	resting juice
विषनिराकरण	detoxication
विसर्ग	remission
विसरित यकृतशोथ	diffuse hepatitis
विसरित, विसार, विसरण	diffuse
विसरित दृढ सूजन	diffuse indurated swelling
विसरित विवर्धन	diffuse enlargement
विसरित हृत्पेशीशोथ	diffuse myocarditis
विसम्पीडन	decompression
विसुग्राहीकरण	desensitization
विस्तृत पर्युदर्याशोथ	generalised peritonitis
विस्तरण	elaboration
विस्थापन	displacement
विस्थापित	displaced,
विस्फार, विस्फारण	dilatation
विस्फारक	dilator
विस्फारित	dilated
विस्फोट	rash
V-y प्रगम	V-Y advance

वीक्षण	visualisation
वूल्फे का निरोप	Wolfe's graft
वृक्क	kidney
वृक्काश्मरी	renal calculus
वृक्काश्मरी निष्कासन	nephrolithotomy
वृक्क कोण	renal angle
वृक्क छिद्रीकरण	nephrostomy
वृक्क, नालाकार	horse-shoe kidney
वृक्कपात	renal failure
वृक्क प्रावरणी	renal fascia
वृक्क वृन्त	renal pedicle
वृक्क शूल	renal colic
वृक्क शोथ	nephritis
वृक्क स्थिरीकरण	nephropexy
वृन्तयुक्त प्रालब	pedunculated flap
वृन्तक	pedicle
वृषण अनुबध	adpendix testes
वृषणकोश	scrotum
वृषणधर कचुक	tunica vaginalis
वृषणधरकचुक डाइड्रोसील	vaginal hydrocele
वृपण थैली	scrotal pouch
वृषणधर कचुक प्रवर्ध	processus vaginalis
वृषण प्रतीति	testiculor feeling
वृषण योजनी	mesorchium
वृपणरज्जु	spermatic cord
वृषणरज्जुशोथ	funiculitis
वृपणशोथ	orchitis
वृपण उत्कर्षिका पेशी	cremasteric muscle
वृषणोत्कर्षणी प्रावरणी	cremasteric fascia
वृपणोच्छेदन	orchectomy
वेटर की कलशिका	ampulla of Vater
वेणु अस्थिभग	bamboo fiacture (infraction)

वेदनाहर	analgesic
वेरूमोन्टेनम शोथ	verumontanitis
वैकृत	pathological
वैरिकोसील	varicocele
वौकमैन का स्थानिक अरक्तिक अवकुचन	Volkman's ischaemic contracture
वोलवूलस	volvulus
वक्षण	groin
वक्षणी हर्निया	inguinal hernia
व्यवच्छेदन	dissection,
व्यपजनन	degeneration
व्यतिरेक	exclusion
व्यावसायिक चिकित्सा	occupational therapy
व्यवर्तन	opposition
व्यावर्तिका	opponens
व्युत्क्रमानुपात/अन्तर्वर्तन	inversion
व्युत्क्रमानुपात	inverse ratio
व्रण	ulcer
व्रणोत्पादी	ulcerating
शक्तिपात/अवसादन/अवसन्नता	prostration
शमन	resolution
शर प्रवर्ध	styloid process
शरीरक्रिया विज्ञान/शरीर वृत्ति	physiology
शरीरबाह्य परिसंचरण	extracorporal circulation
शल्की	squammous
शल्की उपकला	squammous epithelium
शल्की कोशिका कार्सिनोमा	squammous celled carcinoma
शल्की कोशिका इपीथीलिओमा	squammous cell epithelioma
शस्त्रकर्म	operation
शस्त्रकर्मोत्तर	postoperative
शस्त्रकर्मोत्तर भित्तिक घनास्रता	postoperative mural thrombosis
शस्त्रकर्म पूर्व	preoperative

शाखादीर्घता/एक्रोमेगेली	acromegaly
शाखाश्यावता	acrocyanosis
शान्त	silent
शामक	demulcent
शामक/उपशामक	palliative
शिकणी	gritty
शिखर विद्रधि	apical abscess
शिखर—	apical
शिथिलन	relaxation
शिथिलभाग	pars flaocida
शिरचकराना	giddiness
शिराघनास्रता	phlebothrombosis
शिरास्फीति	varicosity
शिरिका	veinules
शिरीय अन्तर्रोधी प्लैथिस्मोग्राफी	venous acclusive plethysmography
शिरोवेदना	headache
शिरोवल्क	scalp
शिरोवल्कन	scalping
शिरोवल्क रक्तगुल्म	scalp haematoma
शिश्न	penis
शिश्न फ्रीनम (बधनी)	frenum penis
शिश्नमुण्डशोथ	balanitis
शिस्टोसोमा रुग्णता	schistosomiasis
शीतकप	rigor
शीतनिष्क्रिया	hibernation
शीर्षधर	atlas
शीर्ष प्रान्त	cephalicend
शीर्ष ब्रुइ	cephalic bruit
शीर्षरक्तगुल्म	cephalhaematoma
शीर्षविरूपता	cap deformity
शुक्रवह	vas deferens

शुक्रवहा उच्छेदन	vasectomy
शुक्तिकाये	turbinator
शुक्राणुजन सूक्ष्मनलिकाये	seminiferous tubules
शूक अपसामान्यताये/स्पाइक अपसामान्यताये	spike abnormalities
शूलवत	colicky
शृ ग	horn
शेषान्त्र छिद्रीकरण	ileostomy
शेषान्त्र छिद्रीकरण थैली	ileostomy bag
शेषान्त्र छिद्रीकरण, द्विबैरल	double barelled ileostomy
शेषान्त्रपश्च	postileal
शेषान्त्र-मलाशय सम्मिलन	ileorectal anastomosis
शेष-बृहदान्त्र शिरा	ileocolic vein
शेषान्त्र योजनी	ileal mesentery
शेषान्त्रशोथ	ileitis
शैशव अर्धांगघात	infantile hemiplegia
शोथ	inflammation
शोफ	oedema
शोषकर अस्थ्युपास्थि विलगन	osteochondritis dessicans
शोष	atrophy
शोषित	atrophied
शोषीजठर शोथ	atrophic gastritis
शकुक	conoid
शखास्थि का अश्म भाग	petrous portion of temporal
शख-अधोहनु सधि	temporomandibular joint
शख-अधोहनु सधिशोथ	temporomandibular arthritis
शबूक-पथव्रण	snail track ulcer
श्यावता	cyanosis
श्याव	cyanotic
श्रवण नलिका	auditary canal
श्रवणमिति परीक्षण	audiometric test
श्रोणि	pelvis

श्रोणिफलकानुत्रिका	ileococcygeus
श्रोणिफलक-कटिलबनिका	ileopsoas
श्रोणिफलककटकअग्रोर्ध्व	iliac spine, ant sup
श्रोणिफलक खात	iliac fossa
श्रोणिगत बृहदान्त्र	pelvic colon
श्रोणिलक-वक्षणी	ilioinguinal
श्रोणिफलक शिखा	iliac crest
श्रोणिभूमि	pelvic floor
श्रोणि मलाशय विद्रधि	pelvirectal abscess
श्लथ पिंड	loose bodies
श्लीपद	elephantisis
श्लेषक अस्थ्योपस्थि रुगणता	synovial osteochondro matosis
श्लेष्म पर्यस्थि	mucoperiosteum
श्लेष्माभ	mucoid
श्लेष्मपूय	mucopus
श्लेष्माभ व्यपजनन	mucoid degeneration
श्लेष्मलावलय/श्लेष्मला कपाटिकाये	valvulac connivartes
श्लेष्मिक	mucous
श्लेष्मिक चकत्ते	mucous patches
श्लेष्मल जठरशोथ	phlegmonous garstritis
श्लेष्मिक पुटी	mucous cyst
श्लेष्मल पेशिका	muscularis mucosae
श्लेष्मला	mucosa
श्वसन वायु	tidal air
श्वसनी चित्रण	bronchiography
श्वसनी छेदन	bronchotomy
श्वसनीजन्य कार्सिनोमा	bronchiogenic
श्वसनी-वहिका खंड	bronchio-vascular segment
श्वसनी विस्फार	bronchiectasis
श्वसनी वृक्ष	bronchial tree
श्वसनीशोथ	bronchitis
श्वानार्बुद	Schwannoma

श्वान का पिधान	sheath of Schwan
श्वासावरोध	asphyxia
श्वासकष्ट	dyspnoea
श्वासधारिता	vital capacity
श्वासप्रणाल	trachea
श्वासप्रणाल-ग्रासप्रणाल नालव्रण	tracheobranchial fistula
श्वासप्रणाल छिद्रीकरण	tracheastomy
श्वेत कोशिका	leucocyte
श्वेतकोशिका वहुलता	leucocytosis
श्वेतरक्तकोशिका निर्मोक	leucocytic cast
श्वेत जवा	white leg
श्वेतरक्तता	lukaemia
श्वेत रेखा	white line
श्वेत शल्कता	lleukop-akia
सगर्भता	pregnancy
सघन	dense
सजातीय निरोप	homogenous graft
सनालव्रण	fistilous
सन्निधान/सन्निकटन	approximnaiton
सन्निधि	contiguity
सन्तरी अर्श	sentinel pile
सन्यास	coma
सपाट पाद	flapfoot
सपीड-कुन्थन	tenesmus
सतन्तुपुटीमय अस्थिशोथ	ostitis fibrocystitis
सपूय पैरोटिड शोथ	suppurative parotitis
सपूय गोणिका शिराशोथ	suppurative phyelophlebitis
सपूय नासास्राव	purulant rhinitis
सपूय निःस्राव	purulent exudate
सपूय पित्तवाहिनी शोथ	suppurative cholangitis
सपूय विवरशोथ	suppurative sinusitis
सपूय सधिशोथ	supparative arthritis

समनिरोप	homograft
समजात	homologue
सम्पूर्ण जिह्वोच्छेदन	total glossectomy
सम्पीडन पट्टी	compression bandage
सम्पीडन सलक्षण	compression syndrome
सम्पीड्य	compressible
समन्वय करना	coordination
समयानुक्रमित श्वासधारिता	tuned vital capacity
समलम्बाभ	trapezoid
समलविका	trapezium
समाग/समागी	homogenious
समापीडन	coarctation
समलोच्छेदन	extirpation
समोदरिका	rectus abdominis
समोदरिका विधान	rectus sheath
समूह गति	mass movement
समूह व्यवच्छेदन	block dissections
सम्पुट	capsule
सम्पीडन आघात	compression injuries
सरला	planus
सरलपेशी अर्बुद	leiomyoma
सर्पिल	spiral
सर्पीवृक्क/चलवृक्क	movealbl kidney
सर्पी हर्निया	sliding hernia
सर्वकोशिकाल्पता	pancyto penia
सविरामी	intermittent
सव्रण बृहदान्त्रशोथ	ulcerative colitis
सव्रण मुखपाक	ulcerative stomatitis
सहज अविवरता	congenital atrosia
सहवर्ती	coexisting
सकट	crisis
सकीर्णांक अतिवृद्धि	stenosing hypertrophy

सकीर्णता	stenosis
सकीर्णक परिहृदशोथ	constative pericarditis
सकीर्णन	constriction
सकीर्णक वध	constricting band
सकेन्द्री	concerntric
सकुचनशील	contractile
सकुलता	congestion
सकुलित/रक्तधिक्ययुक्त	congested
सकुलज दक्षिण हृत्पात	congestive rightsided heart failure
सकुलनहर	decongestive
सक्रमण	infection
सक्रामी चर्मकील	infective wart
सक्रामक कोथ	infective gangrene
सग्राहक सूक्ष्मनलिका	collecting tubule
सतत आचूषण	continous aspiration
सतति पुटी	daughter cyst
सदमी	inhibitory
सदमन	inhibition
सदूषण	contamination
सधर/क्लैम्प	clamp
सधायक प्रवर्ध	articular process
सधिग्रह	ankylosis of joint
संधिच्युति	dislocation
सधिजाड्य	locking of joint
सधिग्राही कशेरुशोथ	ankylosing spondylitis
सधिशोथ	arthritis
सधिस्थिरीकरण	arthrodesis
सपिडन	consolidation
सयुक्त कडरा	conjoined tendon
सयुक्तवृक्क	fused kidney
सयोजी ऊतक	connective tissue

सयोजिकाछेदन	commissurotomy
सयोजिका विभाजन/सयोजिका विभाग	commissural division
सयोजीऊतकशोथ	cellulitis
सरक्षी	conservative, protective
सरक्षी अवरोध	protective barrier
संरूपण	configuration
संलग्नशील	tenacious
सलक्षण	syndrome
संलगन	attatchment
सवर्धन	culture
सवरणी अतानता /सवरणी ह्रास	sphincter atony
सवातन नाल	ventilation shaft
सवृत अस्थिभग	closed (simple) fracture
सस्तभी अगघात	spastic paralysis
सस्थिति	position
सस्थितिज निर्हरण	postural drainage
सहत	compact
सज्ञाहीन/सवेदनाहीन	insensitive
स्कन्दनता	coagulabilitay
स्कधसधि	shoulder joint
स्टेन्सनवाहिनी	Stenson's duct
स्टेमिटिल	stemitil
स्ट्रेंगुरी/बिन्दु मूत्रकृच्छ	strangury
स्तन	breast
स्तन पप	breast pump
स्तन परिवेश	areola of breast
स्तनवाहिनी विस्फार	mammary duct ectasia
स्तब्धता	shock
स्तभाकार	columnar
स्तभिका	columella
स्तरित	stratified
स्तवकी वृक्कशोथ	glomerular nephritis

स्थाणुक अवर्ध	clinoid process
स्थलान्तरण अंश/विक्षेप	metastases
स्थाननिर्धारण चिन्ह /स्थानीकरण चिन्ह	localising signs
स्थानिक संवेदनाहारी फुहार	local anaesthetic spray
स्थानीकृत	localised
स्थूलौष्ठता	macrocheilia
स्थूल	massive
स्थूल घनास्रता	massive thrombosis
स्थूल रूप	macroscopic form
स्थूलक	condyle
स्थैतिकता	stasis
स्नेहक	lubricant
स्नेहित	lubricated
स्पन्दी नेत्रोत्सेध	pulsating exophthalmos
स्पन्दी/स्पन्दनयुक्त	pulsatile
स्पर्मेटोसील/शुक्रपुटी	spermatocele
स्पर्शतरंग	fluctuation
स्पर्शतरंगयुक्त	fluctuating
स्मेग्मा	smegma
स्मृतिलोप	amnesia
स्रावी	secretory, secreting
स्वतः	spontaneous
स्वत शमन/स्वत रोगमुक्ति	spontaneous cure
स्पर्शासहता	tenderness
स्फोटकज्वर	erruptive fever
स्फीतशिरायें/अपस्फीत शिरायें	varicose veins
स्वच्छ उपस्थि/शुभ्रउपस्थि	hyaline cartilage
स्वजात निरोप/स्वअस्थि निरोप	autogenous graft
स्वत वृक्कोच्छेदन	autonephrectomy
स्वधारक केथिटर	self retaining catheter
स्वप्रदीप्त कर्णदर्शी	selfilluminating otoscope

स्वरभंग	hoarseness of voice
स्वरयंत्रग्रसनी	laryngopharynx
स्वरयंत्रघात	laryngeal paralysis
स्वरयंत्रक डिप्थीरिया	laryngeal diphtheria
स्वरयंत्रदर्शन	laryngoscopy
स्वरयंत्रदर्शी	laryngoscope
स्वरयंत्रशोथ	laryngeal oedema
स्वरयंत्र-श्वासप्रणाल श्वसनीशोथ	laryngo-tracheo bronchitis
स्वरयंत्र संकीर्णता	laryngeal stenosis
स्वस्तिक स्नायु	cruciate ligament
स्वररज्जु	vocal cords
स्वरयंत्र	laryngitis
स्वरित्रद्विभुज	tuning fork
सांख्यिकीय प्रमाण	statistical proof
साग्रही/निर्बंध	persistant
सातत्य	continuity
सार ऊतक	parenchyma
सापेक्ष निदान	differential diagnosis
सापेक्ष श्यावना	differential cyanosis
सामान्य पित्तवाहिनी	common bileduct
सायुज्य/संगलन	fusion
सारकोइडोसिस	sarcoidosis
सार्कोमा	sarcoma
सालमोनेला	salmonella
सांस उखड़ना	breathlessness
स्रावी उपकला	secretory epithelium
स्रावी एक्जिमा विक्षति/स्रावी पामा विक्षति	weeping eczematoid lesion
स्रावप्रेरक तन्तु	secretomotor fibres
स्वाद अंग	taste organs
सिरिंगोमाइलिआ	syringomyelia
सिरोसिस	cirrhosis

स्वचालित तन्त्रिकातन्त्र	autonomic nervous system
स्वायत्त ”	”
सिरसाइड एन्यूरिज्म	cirsoid aneurysm
सिस्टीन	cystine
सिस्टोसील	cystocoele
सिस्टोसर्कोसिस/सिस्टोसर्कस रुग्णता	cystocercosis
सिस्टोस्कोपी/मूत्राशयदर्शन	cystoscopy
सिंहवन् करोटि	leontiasis ossea
स्किरस/कठोर	scirrhus
स्थिरता	fixity
स्थिरीकरण	fixation
स्ट्रेप्टोकोकसजन्यपर्युदर्याशोथ	streptococcal peritonitis
स्ट्रेप्टोकोकस फिकेलिस	streptococcus faecalis
स्पिगेली खड	spigelian lobe
स्प्लिन्ट/कुशा	splint
स्मिथपिटर्सन कील	Smith-Peterson nail
सीमेन्ट	cement
सीमेन्टार्बुद	cementoma
सीरमी कचुक	serous coat
सीरीर क्तमय	serosanguinous
सीलोम	coelom
सीवन/टाके	sutures, suturing
सीस	lead
स्क्लीरोडर्मा	scleroderma
सुग्राही	sensitive
सुग्राहिता	sensitivity
सुदम	benign
सुधार/विरोहण	repair
सुधारक असगति	corrective anomaly
सुन्नत करना/खतना	circumcision
सुन्नता/सज्ञाहीनता	numbness
सुरक्षा वाल्व	safety valve

सुविभेदित	welldifferentiated
सुषिर अस्थ्यर्बुद	cancellous osteoma
सुषिर पट्टिका	cribriform plate
सूखा रोग	marasmus
सूजन	swelling
सूत्राकार	filiform
सूत्राकार बूजी	fiitiform bougie
सूत्रकृमि	thread worm
सूक्ष्मनलिकान्तर	intracanalicular
हनु	jaw
हनुस्तभ	trismus, lockjaw
हर्निया	hernia
हर्नियाछेदन	herniotomy
हर्नियासीवन	herniorrhaphy
हर्नियासधान	hernioplasty
हर्पीज जोस्टर	herpes zoster
हर्षणी तन्त्रिकायें	nervi erigentes
हस्तकौशल	manipulation
हाइलम, हाइलस	hialum, hialus
हाइडेटिड पुटी	niadatid cyst
हिमीकरण-शुष्कीकृत	freeze-dried
हिमीभूत परिच्छेद प्रविधि	fiozen section method
हिमेटोसील/रक्तवृषण	haematocele
हिस्टोसाइटता	histo eytosts
हुक	hook
हुकलेट	hooklet
हृदय	heart
हृदयायास	heart strain
हृद् चक्र	caidiac cycle
हृद् छेदन	cardiotomy
हृद् धमनी घनास्रता	coronary thrombosia
हृद् टैम्पोनाड	cardiac temponade
हृद् पात	cardiac outpot
हृद्पेशी	myocardium

हृद् पेशीशोथ	myocarditis
हृद् मन्दता	bradycardia
हृद् परिसंचरण	coronary circulation
हृद्-फुफ्फुस मशीन	heartlung machine
हृद्रोध	heart block
हृद्वपाशि स्थिरीकरण	capdio omentopexy
हृद् विराम	cardiac arrest
हृद् संदमन केन्द्र	cardio inhibitory centre
हृद्-क्षति अपूर्ति	cardiac decompensation
हृद्क्षिप्रता	tachycardia
हेतुकी	aetiology
हेमार्टोमा	hamartoma
हेनले का नवलित पाश	convoluted tubule of Henle
हौस्टन कटिका	Hauston's valve
क्षति/विक्षति	lesion
क्षतांक	scar, cicatrix
क्षतांकन	cicatrixation
क्षत संक्रमण	wound infection
क्षयग्रस्त पर्व	tubercular node
क्षयजन्य अंधान्त्र विक्षति	tuberculous coccal lesion
क्षयजन्य पर्युदर्याशोथ	tuberculous peritonitis
क्षयजन्य भगन्दर	tuberculous fistula
क्षार	alkali
क्षाररक्तता	alkalaemia
क्षारमयता	alkalosis
क्षीणता	cachexia
क्षुद्रान्त्र	small intestine
क्षुद्रान्त्र योजनी	mesentery
क्षुधावेदना	hunger pain
क्षेपण लक्षण	dumping syndrome
क्षैतिज	horizontal
क्षैतिज प्रवर्ध	horizontal process
क्षोभ	irritation
क्षोभक	irritant